श्री १०८ सद्गुरु कबीर साहेब कृत

बीजक।

४२४२६

शिशुबोधिनी टीका सहित

तृतीय ३ से द्वादश १२ प्रकरणान्त।

* जिसको *

भक्त जितलाल मुन्सी और फतुहा के

महन्त साहेब ने

मैनेजर-महेश प्रसाद द्वारा-

सत्यनाम प्रेस, मैदागिन, बनारस सिटी में

छपवाकर प्रकाशित किया।

पुस्तक मिलने का पता-फतुहा कबीर साहबका स्थान-श्री शिवधर दास जी

प्रथम बार १०००] [सं० १९८४

अथ श्रीसद्गुरु कबीरसाहेब कृत बीजकाह्वग्रन्थस्य शिशु-बोधिनीटीकासहितं तृतीयं कहराप्रकरणम् ।

रामं नित्याप्तकामं क्षणमनुविवसत्स्वप्रणश्यत्स्वरूपं,
सानन्दं ज्ञानरूपं गुरुवरवचसा भक्तिभावैकगम्यम् ।
संसारासक्तचित्तैः सुरमुनिमनुजैः सर्वयत्नै रगम्यं,
वन्दे कैवल्यभानुं स्थिरहृदिविदितं योगगम्यं त्वगम्यम् ॥ १ ॥

टिप्पणी—नित्याप्तकाम, अनुक्षण विनश्वर में अविनाशी स्वरूप, आनन्द-सहित, ज्ञान-स्वरूप गुरुवरके उपदेशसे और एक भक्तिभावसे प्राप्त होने योग्य संसारमें आसक्त-चित्तवाले देवादि से किसी प्रकार भी नहीं प्राप्त होने योग्य, स्थिर-हृदयमें प्रगट-योगसे प्राप्य, वस्तुतः अप्राप्य, मुक्तिके भानु राम को मैं बन्दना करता हूं ।

प्रथम कहरा ।

ऐसन देह निरापन बौरे, मुये छुवै नहिं कोई हो ।
डंड़बक डोरवा तोरि लड़वलन, जो कोटिन धन होई हो ॥
ऊर्ध्व श्वाँसा उपजी त्रासा, हँकराइन परिवार हो ।
जो कोइ आवै बेगि चलावै, पल इक रहन न पारा हो ॥
चन्दन चरचि चतुर सब लेपिन, गले गजमुक्ता हारा हो ।
चहुँ दिशि गीध मुये तन लूटे, जम्बुकन ऊदर फारा हो ॥
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, ज्ञानहीन मतिहीना हो ।
इक इक दिन एही गति सब की, क्या राव क्या दीना हो ॥

टीका—शब्दप्रकरणमें विस्तार पूर्वक संसारमें मायिकता, अनित्यता, दुःखरूपता आदिका तथा ज्ञान और अज्ञानके साधनोंका तथा ज्ञानी और उनकी स्थिति आदिका वर्णन करके इस कहरा-प्रकरणमें साहेबने संक्षेपसे आत्मादि वस्तुका उपदेश दियाहै, और संसारमें दुःखरूपताका तथा संसारी जीवोंमें दुःखीपनका वर्णन किया है। वहां कठिन गम्भीर दुःखादिकोंको लोकमें कहर कहते हैं, जैसे यह

मुमूर्षु कहर दुःखमें पड़ाहै, यह कहर दरियावहै, यह मनुष्य दुःखसे कहँर रहाहै इत्यादि लोग व्यवहार करते हैं। और मरण जन्मादि कठिन दुःख तथा संसारका वर्णन पूर्वक इस प्रकरणमें उपदेश दिया गया है। इससे इस प्रकरणको कहरा कहा गया है। और कहरा नामक विशेषराग होनेसेभी इस प्रकरण को कहरा कहते हैं। और अन्तिम शब्दमें साहेबने उपदेश दिया है कि झूठ वस्तुमें विश्वास न करो। वहां सम्पूर्ण मिथ्या झूठ वस्तुओंमें आसक्ति विश्वास, शरीरमें आसक्ति विश्वास-पूर्वक होते हैं। इसलिये प्रथम स्थूल शरीरके दुर्दशा आदिका साहेब वर्णन करते हैं, और उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो! जिस शरीरके लिये तुम मिथ्या स्त्री पुत्र धनादिमें आशक्त होते हो, वह ज्ञान ध्यानादिके साधनरूप भी यह 'ऐसन' अर्थात् अमूल्य श्रेष्ठ मानव शरीर 'निरापन' यानी अपना नहीं है। और जिसका अभिमान करते हो जिसे पवित्र समझते हो उस शरीरको मरनेके पीछे कोई छूनाभी नहीं है। यदि छूता है तो स्नानादिरूप शौच करताहै। अथवा कोई मरा हुआ जीव फिर मृत-शरीरको छूताभी नहीहै, किन्तु अन्य नवीन शरीरका धारण करता है। इसलिये कोई शरीर वस्तुतः अपना सदा साथ रहनेवाला नहीं है। अथवा यह देह 'ऐसन' नाम ऐसा 'निरापन' नाम अपावन अशुचि है कि इसे मुये पीछे कोई छूताभी नहीं है। और हे मनुष्यो! मुये पीछे 'डंड़बक' नाम कटि देशके डोराको भी लोग तोड़ कर 'लड़वलन' नाम फेंक दिये वा फेंक देते हैं, अर्थात् एक तन्तु तकभी किसीके साथ नहीं जाता है, चाहे मृत्युसे प्राप्त पुरुषके पास प्रथमका करोड़ो रुपयादि धनभी होवें तोभी उसके साथ देहादि कुछभी किसी प्रकार नहीं जा सकते इसलिये ये कोई भी अपने नहीं हैं। और हे मनुष्यो! जब मरनेसे प्रथम 'ऊर्ध्वश्वाँस होता है, तब उसे देखकर अन्य मनुष्योंको भी त्रास [भय] उपजाता है, उसकी दशातो वाणीका अविषय रहती है। और त्रास-युक्त होकर वे पास-वर्ती मनुष्य अपने 'परिवारोंको' हंकराते हैं यानी पुकारते हैं, पुकारनेपर जो कोई आतेहैं वे मृतक शरीरको गृहसे वेगि [शीघ्र] ही चलाते हैं, यानी घरसे बाहर करनेके लिये यत्न करते हैं, और कहते हैं कि अब यह एकपलभी यहां पड़ा हुआ नहीं रहने पावे सो करो। अथवा ऊर्ध्वश्वाँस दशामें ही घरसे शीघ्र चलाते हैं, जिससे यह पुरुष एक पलभी घरमें नहीं रहने पाता है। इससे सिद्धहुआ कि इस शरीरके वा जीवके न वास्तविक कोई घर हैं न बन्धु हैं, किन्तु सब स्वप्न सदृश मिथ्या ही थोड़े देर के लिये अपने प्रतीत होते हैं, परन्तु ऐसा समझे विना जिस शरीरको आत्मा वा अपना मानकर मनुष्य इसमें आसक्त होते हैं। और 'चतुर' यानी विषयोपभोगादिमें कुशल लोग सब चन्दनको चरचि [घिसकर] जिसमें लेपते हैं, अथवा चरचि [चर्चा अध्ययन] करके चतुर पुरुष सब जिसमें चन्दन लेपते हैं। और गलेमें गजमुक्ता आदिके हारादि जिस शरीरकी शोभाके लिये पहनतेहैं। साहेब कहते हैं कि मुये पीछे उसे फेंक देने पर उस शरीरके चारों तरफ बैठकर उसे गीध सब लूटते हैं यानी खाते हैं। और जम्बुक [गीदड़] पेट फाड़ता है। और हे सन्तो! जिज्ञासुओ! सुनो कि जो पुरुष अपने स्वरूप-ज्ञानसे हीन हैं [रहित हैं] तथा मतिहीन हैं यानी भावी जन्मादिसे रहित होनेके लिये जो विचार सत्सङ्गादि नहीं करते हैं इससे विचारादि युक्त बुद्धिसे जो रहित हैं, उन सबोंकी एक एक दिन यही गति होती है। अर्थात् पूर्वोक्त ही हाल सबका होताहै,

चाहे कोई राव [राजा] होवे तोभी क्या ? वा दीन [दरीद्र] होवे तोभी क्या ? सबका उक्तही हाल होता है। यद्यपि ज्ञानी और मतिमान् के शरीर भी एक दिन अवश्य नष्ट होते हैं तथापि ज्ञानहीन तथा मतिहीन की ही एक एक दिन यह गति होती है यह साहेबने कहा है। उसका यह भाव है कि ज्ञानी मतिमान् पुरुष जीवित दशामें ही शरीरको अनात्म अपवित्र अनित्य दुःखरूप जानकर इस विषयक अभिमान आसक्तिसे रहित होजातेहैं, और विवेकदृष्टि द्वारा इससे अत्यन्त-भिन्नके सदृश होजाते हैं। इसलिये इसके नाश विद्दत्त दुर्गति आदिसे अपना नाशादि नहीं समझते हैं, और वस्तुतः उन्हें नाश तथा कष्टादि प्राप्तभी नहीं होतेहैं, किन्तु अविवेकियोंको ही नाशादि सब स्वरूपमें भासतेहैं और वे लोग जिसे अपना स्वरूपादि मानते हैं, उसके नाशादि होते भी हैं। इसलिये ज्ञानादि-हीनको एकदिन नाशादि अवश्य प्राप्त होते हैं, ज्ञानी मतिमान्को नहीं प्राप्त होतेहैं। दूसरी बात यह है कि ज्ञानी जीवन् मुक्त पुरुष शरीरका त्यागकालमें विदेह मुक्त होकर आनन्दघन परब्रह्म स्वरूपसे स्थिर होते हैं। इसलिये उनका नाश नहीं होता है बल्कि सब नाशादिसे रहित होजाते हैं। और ज्ञानहीन नाशको प्राप्त होते हैं, और जिन धन सम्पत्ति भाई बन्धु आदिकोंको अपनी रक्षकादि समझते हैं, सो कोई भी उनकी रक्षा न करते हैं न करही सकते हैं। क्योंकि जैसे क्षुधा आदि जन्य दुःखोंका निवारण अपनेसे भोजन करे विना अन्यसे नहीं होसकता है, वैसेही अपने अज्ञानादि जन्य दुःखोंका निवारण भी अन्यसे नहीं होसकता है, किन्तु अपने ही विचारादिसे होसकता है। इसलिये हे सज्जनो ! शरीरविषयक आसक्ति अभिमानादिको त्यागकर सब दुःखोंसे रहित मुक्त होजावो। अथवा साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! हे ज्ञानहीन मतिहीनो !! सब कोई सुनो कि सबकी एक दिन यही गति होती है, चाहे राजारंकादि कोई भी होवे, इससे शीघ्र मनमें चेतकरके रामको भजो, तथा इस शरीरविषयक आसक्तिको त्यागो ॥ मुये छुवें नहि के मुवले छुवें न। पारा के पावे। चहुँदिशिके चौंसठ वा चौंचन। यही के इहे पाठ भेद हैं तहां चिल्हको चौंसठ कहतेहैं। पाराके परारहना अर्थ है ॥ लिखा है कि—

[यदङ्गमद्यसंवीतं कौशेयस्रग्विलेपनैः। दिगम्बरं तदेव श्वो दूरे विशरिताऽवटे ॥ १ ॥ बलीनां दुर्बलानां च ह्रस्वानां महतामपि। अपक्रामति नोकश्चिज्जरां मृत्युं च मानवः ॥२॥ धनपुत्रकलत्रादि शरीरमपि बान्धवाः अनित्यं सर्वमेवेदं तस्माद्धर्मंसमाचरेत ॥ ३ ॥ यावद्देहमनः प्राणबुद्ध्यादिष्वभिमानवान्। तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्व सुखदुःखादिभाग भवेत् ॥ ४ ॥]

जो किसीका शरीर वर्तमान कालमें कौशेय वस्त्र,माला, चन्दनादिसे ढका रहता है, वही कल्ह वस्त्र रहित और दूर गड़हेमें फेंका जाता है ॥ १ ॥ बली दुर्बल छोटा बड़ामेंसे कोई भी मनुष्य जरामरणका अतिक्रमण नहीं करताहै॥२॥ धन,पुत्र,स्त्री,शरीर,बन्धु, ये सब अनित्य हैं। इसलिये इनमें आसक्त नहीं होकर अपने कल्याणके लिये धर्माचरण करना चाहिये ॥ ३ ॥ और जानना चाहिये

॥ ३ ॥ **सर्वे एव परिक्षीणाः सन्देहा यस्य वस्तुतः । सर्वार्थेषु विवेकेन स विश्रान्तः परेपदे ॥ ४ ॥**

दृश्य मायिक वस्तुमें स्नेहयुक्त पुरुष जैसे स्वप्न और जाग्रतमें दृश्यहीको देखते हैं तैसेही अदृश्य पदमें रत पुरुष उस अदृश्य पदको देखते हैं ॥ १ ॥ परन्तु यत्नके विस्तार बिना उस अदृश्य पदकी सिद्धि नही होती है। इसलिये महान अभ्यासरूप वृक्षके फलरूप पर पदको जानो ॥ २ ॥ और कृपणता, मत्सर, दम्भ, क्रोध, तृष्णा, भय, मद, ये सब अनर्थ अर्थसे उत्पन्न होतेहैं सो प्राज्ञ लोग जानते हैं ॥ ३ ॥ और वस्तुतः सब वस्तुमें विवेकसे जिसके सब सन्देह नष्ट हो गये हैं वेही पुरुष वस्तुतः पर पद में विश्रान्त हैं ॥ ४ ॥

३ तृतीय कहरा

ननदी गे तैं विषम सोहागिनि, तैं निगले संसारा गे।
आवत देखि एक संग सूती, तैं औ खसम हमारा गे॥
मोर बाप कहे दुइ मेहररुआ, मैं अरु मोर जेठानी गे।
जबहम अइलि रसिक के सँग में, तबहिं बात जग जानी गे॥
माय मोर मुवलि पिता के संगे, सरा रचि मुवल सँघाती गे।
आपुहिं मुई और लै मुवली, लोग कुटुम्ब सँग माता गे॥
जब लगि श्वाँस रहे घट भीतर, तब लगि कुशल परी हैं गे।
कहहिं कबिर जब श्वाँस निसरिगौ, मन्दर अनल जरी हैं गे॥

टीका—पूर्वकहरामें कहा गयाहै कि सर्वात्मस्वरूप एक रामको भजे, तथा बिचारे बिना सब मनुष्य लौकिक चतुराई करते रहनेपर भी संसारात्मक समुद्रमें बूड़े। इस तृतीय कहरामें उन बूड़नेवाले मनुष्योंको ही साहेबने ननदी पदसे कहा है, क्योंकि वे लोग सांसारिक विषय सुख सम्पत्ति नाता गोता आदिको सत्य मानकर इनका अभिनन्दन स्वीकार करते हैं। और तटस्थ कल्पित पतियोंसे ये लोग उक्त पतियोंके बहनकी नाई प्रेम करतेहैं, अर्थात् मिथ्या पति आदिमें इनकी बुद्धि आसक्त रहती है और उन्हींका अन्य जीवोंके प्रति उपदेश करते हैं। उनकी प्राप्ति करते कराते हैं, इससे मिथ्या पति विषयादिमें आसक्त गुरुवा आदिको प्रकृतमें ननदी शब्दसे कहतेहैं। और 'गे' शब्दसे बिहार प्रान्तमें स्त्रीका सम्बोधन किया जाता है, और रमयणी प्रकरणमें कर्मीको नारी सदृश कह आये हैं और उपासक भी देवादिमें पति बुद्धि करके अपनेमें उनकी स्त्री सदृशताकी बुद्धि

करता है, इससे प्रकृतमें 'गे' शब्दसे कर्मी, उपासकादिका सम्बोधन किया गयाहै। अर्थ है कि गेननदी! अर्थात् हेकर्मठो! असत उपासको !! गुरुवाओ!!! विषयासक्त पुरुषो!!!! तुम सब सम अखण्ड एकरस सुखरूप चेतन वस्तुरूप वास्तविक खसमको तथा गुरुरूप खसमको छोडकर विषम यानी कठिन, भयानक, सखण्ड, परिणामी, एकदेशी, जड़, मायिक, वस्तुओंके ही 'सोहागिनि हुएहो' यानी सोहागवाली स्त्रीके सदृश तुम विषम-वस्तुमें प्रेम आसक्ति कियेहो। और हे गुरुवाओ! तैं (तुम) लोगोंने असत उपदेशादिसे संसारको भी निगले हो (नष्ट किये हो) और करते हो, अर्थात् मिथ्या-पदार्थ विषयक स्नेह लोक चतुराईसे आप भी नष्ट होते हो और अन्यको भी नष्ट करते हो। और जिन मिथ्या पदार्थोंको अपना खसम मानते हो, वे जन्म लेकर संसारमें आते समय तेरे सङ्ग न आये थे, न जाते समय साथ जायेंगे, किन्तु मैंने तो विचारादिसे यह बात देखी है कि हेविषम-सोहागिनी! आते समय 'तैं' एक वस्तुके ही सङ्गमें सूती थी [सोई हुई थी] और हमरे स्वरूप जो खसम हे सो तेरे साथ सोया था, अर्थात् बुद्धिरूप गुफामें तुम जीव और चेतनरूप साक्षी दो ही थे, पश्चात् अनेकों कल्पना कर लिये हो और सुन लिये हो। अथवा संसारमें आते समय [सृष्टि कालमें] तै और हमारा खसम दोनों एक सङ्ग होकर संसारको सूती [उत्पन्न करती] हुई देखी गई है। और उक्त खसम स्वरूप मोर बाप [पिता] के ही 'मे और मोर जेठानी' यानी मुझसे भी श्रेष्ठ विदेह मुक्त वा जीवन् मुक्त रूपसे संसारमें विचरनेवाले वामदेवादि दोनों मेहरारु सदृश साथ रहनेवाले हैं, अर्थात् वर्तमान भूत दोनों कालके ज्ञानी लोग अधिष्ठानरूपसे जगत्के पिता स्वरूप वास्तविक पतिसे वास्तविक रक्षा मुक्ति पाये हैं। और अज्ञानी नही पाये हैं। और वास्तविक पति द्वारा मुक्ति पानेसे दु ख रहित हो जानेके कारण ही साहेब कहते हैं कि जब हम रसिकके सङ्गमें अइली [प्राप्त हुआ] 'तबहि जगको बात मात्र जान लिया' जिससे दुःखके हेतुके अभावसे मैंने दु.खरहित मुक्त हुआ। अर्थात्—

रसो वै स। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति

इस श्रुतिके अनुसार रस नाम आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्मा है। और उस रसको अनुभव करने करानेवाला सद्गुरु रसिक हैं। और उस गुरुके शरणमें प्राप्त होनेसे जिज्ञासु संसारको वाचारम्भण-मात्र जान लेता है। इससे इस संसारमें न आसक्त होता है न दुखी होता है। और सब ज्ञानीमें अभेद दृष्टिसे साहेबने कहा है कि मैं जब रसिकके सङ्गमें आया तब जगको बातरूप जान लिया। और कहते हैं कि रसिकके सङ्गमें आनेसे तथा जगको बातमात्र जाननेसे ही बारबार जन्मके हेतुरूप अविद्या तथा माया पिताके सङ्गमें मर गई नाम चेतन स्वरूपसे भिन्न सत्तावाली तथा जन्मादिके हेतुरूप नही रही किन्तु मिथ्या तुच्छ हो गई। अथवा मेरी मातारूप अविद्या माया ईश्वररूप पिताके साथ मर गई, यानी माता पिता दोनों मर गये, अर्थात् मायामे मिथ्या बुद्धिसे मायाके अधीन सिद्ध होनेवाला मायिक ईश्वरमें भी मिथ्याबुद्धि होगई। और मायाके मरनेपर स्थूल

शरीरादिरूप संघात [समुदाय] भी ज्ञानाग्निकी सरा [चिता] रचकर मर गये। और जब प्रकृतिरूप माया आप मरने लगी तो अन्य अनेकों लोग कुटुम्बादिकोंके लिये मुई हुई अर्थात् लोकादि विषयक मोह ममता राग द्वेषादि सहित वह नष्ट हो गई। अथवा इन्द्रियरूप लोग कुटुम्ब सहित मुई। और बुद्धि अहंकार पाञ्च तन्मात्रा ये सात जो सङ्ग रहनेवाले हैं, अर्थात् भूत भौतिक सृष्टिमें प्रकृतिके सहायक हैं उन सातोंके सङ्ग उनके सहित माया मुई। अथवा अविद्यारूप माया पिताके सङ्ग मुई। और जब वह मरने लगी तब स्थूल सूक्ष्म संघातकी सरा [चिता] रचकर उसमें ज्ञानाग्नि लगाकर आपभी मरी इससे वह आप भी मुई और अन्य लोग कुटुम्बादि सङ्गके वस्तुओंको भी साथ लेकर मुई, अर्थात् विद्याके साथ अविद्याका विरोध होनेसे विद्यासे अविद्या साक्षात् नष्ट हुई और होती है। और अविद्यारूप कारणके अभावसे सब मिथ्या हो जाते हैं। भाव यह है कि जिसके स्वरूप रहनेसे दुःख होता है उस अविद्याके स्वरूपका ही ज्ञानसे अभाव हो जाता है। और जिन्हें सत्य भासनेसे दुःख होता है, उन सबमें मिथ्या बुद्धि हो जानेसे ही दुःखका अभाव हो जाता है। शंकाहुई कि यदि ज्ञान होने ही कारणरूप अज्ञानका अभाव हो जाता है तो ज्ञानीके शरीरका भी तुरन्त ही अभाव हो जाना चाहिये, अर्थात् ज्ञानोत्पत्तिके अव्यवहित उत्तरक्षणमें ज्ञानीके शरीरका पात होजाना चाहिये, क्यों कि कारण बिना कार्य रह नहीं सकता इत्यादि। तब साहेब कहते हैं कि प्रारब्धकर्मके अधीन जबतक इस शरीरके अन्दर श्वॉस रहते हैं यानी ज्ञानसे अनिवार्य प्रारब्धकर्म जबतक इसमें प्राणवायुको स्थिर रखता है, तबतक इस शरीरका कुशल पड़ता है, यह नष्ट नहीं होता है। और प्रारब्धकर्मके क्षय होनेसे जब जिस ज्ञानीके प्राण निसर गये [नष्ट हो गये] वा होजाते हैं तब उस ज्ञानीके शरीररूप मन्दर अग्निसे अत्यन्त जर गये और जर जाते हैं। यद्यपि प्राण छुटनेपर सभी प्राणियोंके वर्तमान शरीर नष्ट हो जाते हैं, तथापि भावी शरीरकी निवृत्ति नहीं होती है और ज्ञानीके ज्ञानाग्निसे भावी शरीर भी नष्ट हो जाते हैं, इसलिये मनुष्यको चाहिये कि विषमसे सोहागको त्यागकर गुरुरूप रसिकका सङ्ग करे, और समवस्तुसे सोहाग करे, जिससे जन्मादि रहित होनेसे नित्य मुक्त हो जावेगा। अथवा निसरि पदका निकलना अर्थ है और ज्ञानीके प्राण नहीं निकलते हैं। इससे भाव यह है कि जो विषम सोहागिनी ननदीरूप हैं उन्हें तो संसार निगलता है अर्थात् अपने वशमें रखता है, परन्तु जिन्होंने संसारको आते हुये और एक वस्तुके सङ्ग सत्तासे मायाको जगकी उत्पत्ति करती हुई देखाहै। और जो संसारमें नष्ट होनेवालेहैं उन्हें तथा ज्ञानी के आकाश तुल्य असङ्ग स्वरूपको जिन्होंने देखा है। और जिन्होंने मेरे स्वरूप भूत बापके अविद्या और मायारूप दोनों स्त्रीको देखा है। और मुझे तथा मेरे जेठानीको जिन्होंने देखाहै, और जब मैं रसिकके सङ्गमें आया था तबकी बातको भी जिन्होंने 'जग' नाम संसार रूपही जानलियाहै। उन पुरुषोंके लिये तो माया आदिरूप मोर माय आदि सब मर गई, और उनका सदाके लिये कुशल होगया, परन्तु जो विषम सोहागिनी हैं, उनके घट भीतर जबतक श्वॉस रहेंगे तभीतक उन्हें कुशल प्राप्त है, जब उनके श्वॉस निकल जायेंगे तब मन्दर सहित अनलमें जरेंगे। अर्थात् लौकिकाग्निमें शरीर जरेगा। और आप नरकाग्निमें जरेंगे, फिर गर्भाग्निमें जरेंगे। इससे हे मनुष्यो! यदि नित्य कल्याण चाहो

तो संसार तुझे नहीं निगले, ऐसा यत्न करो और पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति करो ॥ निगलेके निन्दले। सङ्गमें के जगमें साना के साथा पाठ भेद हैं ॥ लिखा है कि—

चित्तसम्मोहमात्रेऽस्मि ह्लोकोऽयंपरिखिद्यते। दिङ्मोहाकुलविज्ञानो नष्टमार्ग इवाध्वगः ॥१॥ जन्मदाताऽन्नदाता च माताऽन्ये गुरवस्तथा। पारं कर्तुं न शक्तास्ते घोरसंसार सागरे ॥ २ ॥ अज्ञानप्रभवा लोका वेदाश्चाज्ञानसंभवाः। विदितात्मसतत्त्वस्य नेहनानास्तिकिञ्चन ॥ ३ ॥

चित्तके सम्मोह मात्ररूप पदार्थमें अज्ञानी लोक खेद सहते हैं, जैसे दिग्भ्रम युक्त बुद्धिवाला पथिक कुमार्गमें प्राप्त होकर दुःखी होता है ॥ १ ॥ जन्मदाता पिता अन्नदाता राजा आदि माता तथा अन्य कोई गुरु घोर संसारात्मक सागरमें पतित मनुष्यको पार करनेके लिये समर्थ नहीं होते हैं, किन्तु सत्यात्माकी शिक्षा देनेवाले गुरु संसारसे पार कर देते हैं ॥ २ ॥ क्योंकि लोक वेदादि सब अज्ञानसे सिद्ध हैं। और तत्त्वसहित आत्मवस्तुको जाननेवाला ज्ञानीकी दृष्टिमें नानापन नहीं रह जाते है ॥ ३ ॥

चतुर्थ कहरा।

रामनामबिनु रामनामबिनु, मिथ्या जन्म गमायहु हो।
सीमर सेइ शुगा ज्यों जहड़े, ऊन परे पछताई हो ॥
जैसे मदुआ गांठि अर्थ दै, घरहुंक अकिल गमाई हो।
स्वादे उदर भरे नहिं कबहूं, ओसे प्यास न जाई हो।
द्रव्यहीन कैसन पुरुषारथ, मनहिं मांह पछताई हो ॥
गांठीरतन मरम नहिं जाने, पारख दीन्हा छोरी हो।
कहहिं कबीर यह अवसर बीते, रतन न मिलै बहोरी हो ॥

टीका—इस मानव शरीरके प्राप्त होनेपर अवश्य जन्मादि दुःखसे रहित होनेके लिये यत्न करना चाहिये, अन्यथा मानव शरीरको निष्फल समझना चाहिये इत्यादि उपदेश साहेब करते हैं कि हे मनुष्यो! तुम रामनामके जाने और प्राप्त किये बिना, अर्थात् रामनाम वालेको आत्मस्वरूपसे अनुभव किये बिना मिथ्या यानी मायिक बिषम पदार्थोंमें इस अमूल्य जन्मको व्यर्थ ही गँवा दिये, और गँवा रहे हो, अभी भी चेतकर इस जन्मको सफल करो। अथवा रामनामके ही बिना मिथ्या [व्यर्थ] जन्म बीताते हो, अब भी सम्हल कर सफल करो, अर्थात् सर्वात्मस्वरूप

रामके जाने बिना अनेकों विषयादि चाहते हो और उनकी प्राप्तिके ही लिये अनेकों कर्म उपासना करते हो जिससे जन्म परम्परा की निवृत्ति नहीं होती है, बल्कि तुझे जन्म परम्परा और दुःखकी प्राप्ति होती है। और तुम विषय पदार्थ कर्मोपासनादिसे सुख चाहते हो, परन्तु रामनाम विना तुम्हारा कैसा हाल होता है कि जैसे शुग्गा सीमरको फलके लोभसे सेवन करके जहँड़ता है, यानी अन्य सत्य रस युक्त फलके प्राप्ति विना दुःखी होता है, और उस सीमरके फलसे ऊन (रुआ) उड़कर देहपर पड़नेसे वह शुक पश्चात्ताप करता है कि मैंने व्यर्थ ही इतने कालतक इसका सेवन किया इत्यादि, तैसे ही संसारात्मक सेमरको सेकर तुम भी जहँड़ते और पश्चात्ताप करते हो या भविष्यमें करोगे। और भी रामनाम विना तुम्हारा कैसा हाल होता है कि जैसे कोई मदुआ [मद्यप] पुरुष अपने गांठिके द्रव्य कलालको देताहै और मादक मदिरा लेकर पीताहै, जिससे वह अपने घर शरीरादिके होसरूप अकिल भी गँवा लेता है। अथवा गृहसे आते समय जो उसकी बुद्धि रहती है, उसे भी वह नष्ट कर लेता है। और पागल सब विचारसे रहित हो जाता है। वैसे ही तुम भी गुरुवा वा परस्त्री वेश्यादिके यहां जाकर गांठिके द्रव्य देकर मद गर्व काम ज्वरादिके हेतुरूप बातोंको सुनते हो, जिससे शरीरादिके ज्ञान विचार भी नष्ट होजाते हैं। और हे मनुष्यो ! जिस विषय स्त्री आदिका स्वादमें अर्थात् भोगमें तुम आसक्त हो रामनाम बिना उस स्वादे [स्वादसे] कबहुँ उदर नहीं भरता है, यानी तृप्ति नहीं होती है, जैसे ओससे वस्तुतः पिपासा नहीं जाती है। और हे मनुष्यो ! देखो कि द्रव्य हीन मनुष्योंके दान धर्म काम रूप पुरुषारथ कैसे होते हैं ? अर्थात् किस प्रकार होते हैं ? किन्तु किसी प्रकार नहीं होते हैं। इससे वे मनुष्य मनमें ही पश्चात्ताप करतेहैं कि हम लोगोंने कैसा कर्म किये थे ? जिससे द्रव्यहीन दरिद्र हुये हैं इत्यादि, वैसे ही सर्वात्मस्वरूप द्रव्यकी प्राप्ति बिना वास्तविक मोक्षरूप पुरुषारथ कैसा होता है ? अर्थात् नहीं होता है। और विषम पदार्थकी प्राप्ति उपभोगसे किसी प्रकार भी पुरुष संसरात्मक बन्धनसे रहित नित्य तृप्त नहीं होता है, इससे फिर मनमें पश्चात्ताप करता है। जिज्ञासा हुई कि जिस आत्मारामरूप द्रव्य बिना मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है, वह द्रव्य कहां है ? और उसकी प्राप्ति किन साधनोंसे होती है ? तब साहेब कहते हैं कि वह राम कहीं दूर नहीं है, किन्तु किसीके गांठीमें बाँधा हुआ रत्नकी नाईं सबके हृदय गुफामें विराजमान है, परन्तु उस रामरूप रत्नका मनुष्य मर्म नहीं जानते हैं। क्योंकि उसका पारख करना विचारादिसे पहिचाननेके लिये यत्न करना मनुष्य छोड़ दिये हैं। इससे जैसे गाँठीके रत्नका भी जो मनुष्य मर्म नहीं जानता हो, और उसका पारख करना छोड़ दिया हो तो उसको रत्न प्राप्त रहते भी अप्राप्तके सदृश रहता है। वैसे ही सबको आत्माराम रत्न अप्राप्त है। अथवा जड़ चेतनका परस्पर अध्यास रूपी गाँठीमें चेतनात्मारूप रतन है, परन्तु मनुष्य उसके मर्मको नहीं जानते हैं। क्योंकि गाँठीकी निवृत्तिका हेतुरूप पारखको मनुष्य छोड़ दिये हैं इससे वह राम दूर और अप्राप्त सदृश भासता है। और साहेब कहते हैं कि हेमनुष्यो ! पारख करो, तथा गुरुसे उस रत्नके मर्मको समझो, नहीं तो इस अमूल्य अवसरके बीतने पर बहोरी [फिर] अन्य शरीरादिमें तुझे उक्त रत्नकी प्राप्ति नहीं होसकेगी तब पश्चात्ताप कर और दुःखी होवोगे। इस-

लिये इस जन्मको राम नाम बिना मिथ्या नहीं गमावो । दो बार राम नाम बिनु कहनेका भाव यह है कि केवल राम नाम बिना ही यह जन्म व्यर्थ होता है । और अन्य कोई कर्म उपासना या वस्तु बिना व्यर्थ नहीं होता है । इसलिये अन्य दान परोपकारादि बन सके तो करो जो कोई कर्मादि तुमसे असाध्य होवे, वा रामकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक अर्थात् देर करानेवाला हो, उसे बिचारकर अवश्य त्यागो, परन्तु रामकी प्राप्ति किसी प्रकार अवश्य करो । यदि इस जन्ममें तुझे रामकी प्राप्ति की सम्भावना नहीं भी हो, तो जन्मान्तरमें भी जिससे प्राप्ति हो वही साधन करो, अन्यको त्यागो इत्यादि॥ गमायहु के गमाई । जैसे मदुआके जैसे मदपिवा वैसहिं मदुआ । भरे नहिं कबहुँ के भरे धौं कैसे । पारख दीन्हा के पारख लीन्हा ये पाठ भेद हैं । तहाँ वैसहिं मदुआ पक्षका अर्थ है कि जैसे शुगा सीमर सेकर जहँड़ता और पश्चात्ताप करता है, वैसेही विषमसे सोहाग करनेवाले संसारात्मक मदसे माते हुए मनुष्य गाँठीके अर्थ सदृश मोक्षसुख आत्माराम रूप वस्तुको देकर यानी सेमर सदृश संसारका सेवनमें खोकर जहँड़ते पश्चात्ताप करते हैं। और घरके अकिल गँवाते हैं, यानी घर सदृश सबके आश्रय वस्तुको नहीं जानते हैं। और अकिल रहित मनुष्योंके उदर उन विषम वस्तुओंके स्वाद या अनुभव से कभी भरता नहीं है, जैसे आकाशसे मुखमें पड़ा हुआ ओसस नाम अत्यन्त सूक्ष्म अदृश्य जलके कणसे प्यास नहीं जाती है। और रामरूप द्रव्यसे हीन मनुष्योंको अन्य पुरुषार्थकी प्राप्ति कैसी हो सकती है ? अर्थात् सब पुरुषार्थ ओस सदृश ही राम बिना होते हैं। इसीसे राम बिना कितने भी अर्थादि प्राप्त होवें, परन्तु तृप्ति नहीं होतीहै, किन्तु सदा मनमें पश्चात्ताप करना पड़ताहै। साहेब कहतेहैं कि हे मनुष्यो ! तेरे गांठि में रत्न सदृश आत्मवस्तु है उसके मर्मको तुम नहीं जानते हो । इससे उस रत्नके पारखको छोड़कर तुम विषम वस्तु लिये हो । जो रत्न इस अवसरके बीतने पर फिर नहीं मिल सकता है इत्यादि ।

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य नित्यं यस्तु न साधयेत् । स याति नरकं घोरं कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥ १ ॥ अनेकजन्मार्जितपुण्यसञ्चया दवाप्यमानुष्यमतीवदुर्लभम् । सुरद्रुमं जन्मविनाशभेषजं कथं नरो दस्युवशे भवेदयम् ॥ २ ॥ आत्मनोऽर्थातिरिक्तं हि प्राप्यते येन केनचित् । विद्यया कर्मणा वापि दुर्लभं नैवतत्स्मृतम् ॥ ३ ॥

जो दुर्लभ मनुष्यत्वको प्राप्त करके नित्यकी प्राप्ति नहीं करता है वह घोर नरकमें प्राप्त होता है। और उससे अन्य जड़ कौन है ? ॥ १ ॥ अनेक जन्मोंमें उपार्जित पुण्य समुदायसे अत्यन्त दुर्लभ कल्प वृक्ष रूप जन्म मरण रूप रोगका औषध रूप मनुष्यत्वको पाकर सचेत यह मनुष्य कामादिरूप चोरोंके वशमें कैसे होसकता है ? ॥ २ ॥ और आत्मासे भिन्न वस्तु जिस किसी विद्या या कर्मसे प्राप्त होजातेहैं। इससे वे दुर्लभ नहींहैं, किन्तु दुर्लभ मनुष्य तन पाके भी आत्म-प्राप्तिही दुर्लभहै॥३॥

५ पञ्चम कहरा ।

मति सुनु माणिक मति सुनु माणिक, हृदया बन्ध निवारहु हो ।
अट पट कुम्हरा करै कुम्हरैया, चमरा गाम न बाँचै हो ।
निनि उठि कोरिया बेठ भरतु है, छिपिया आँगन नाचै हो ।
निति उठि नौवा नाव चढ़तु है, बेरहिं बेरा बारे हो ॥
राउर के कछु खबर न जानहु, कैसे झगर निबारे हो ।
एकगाम बसे पांच तरुणिया, ता महं जेठ जेठानी हो ॥
आपन आपन झगर पसारिन, पिय सों प्रीति नशानी हो ।
भैंसिन माहँ रहै नित बकुला, तकुला ताकि न लीन्हा हो ।
गायन माहं बसेहु नहिं कबहूँ, कइसे के पद चीन्हा हो ? ॥
पन्थिक पन्थ चीन्ह नहिं लीन्हा, मूढ़हिं मूढ़ गमारा हो ।
घाट छोड़ि कस अवघट रेंगहु, कैसे लगवहु पारा हो ? ॥
जत इनके घन हेरिया ललची, कोद इत के मन दौरा हो ।
दुइ चकरी लै दरन पसारिन, तब पैहौं थिनि ठौरा हो ॥
प्रेमबाण एक सतगुरु दीन्हा, गाढ़ो तीर कमाना हो ।
दास कबीर कियो यह कहरा, महरा माहँ समाना हो ॥

टीका—पूर्व कहरामें कहा गया है, कि जिस रामके जाने विना मनुष्य सब मिथ्या पदार्थों में जन्म गमाते हैं, और मनुष्यतनके बीतने पर जिसके विना पश्चात्ताप करतेहैं, वह राम गांठिमें बाँधे हुए रत्न सदृश हृदय में वर्तमान है, और सदा प्राप्त है, परन्तु पारख विना अप्राप्त सदृश है इत्यादि। फिर इस कहरामें साहेब उपदेश देतेहैं कि हे माणिक [हे पूर्व कहे रत्न विशेष हीरा] सदृश स्वयं प्रकाश चेतनस्वरूप जीवो ! तुम सब 'मति सुनु' यानी आगामी दुःखोंकी निवृत्तिका हेतुरूप महात्माओंके मत विचार उपदेशोंको सुनो और उपदेशको सुनकर अध्यास काम वासना आदिरूप हृदयके बन्धनोंको 'निवारो' नाम अभ्यास विचार वैराग्यादिसे उन्हें नष्ट करो। यहाँ माणिक पदसे जीवके सम्बोधनसे जीवमें पूर्वकहे रत्नरूपता रामरूपताका उपदेश दिये हैं । और मति श्रवणमें अवश्य कर्तव्यताका बोध करानेके लिये दोबार कहेहैं। अथवा हेमाणिक ! गुरुवाओंके बात वा अन्य सांसारिक बात तुम मति सुनु [नहीं सुनो] किन्तु इस दुर्लभ शरीरको प्राप्त करके हृदयके बन्धनोंका

निवारण करो जिससे तेरा कल्याण हो, हृदय-बन्धन की निवृत्ति न करने से ही तुम अटपट कुम्हरैया कुम्हार सदृश करते हो, और दुःखी होते हो, और कुम्हार के सदृश जिस अटपट यानी नीच ऊंच योनि के शरीरोंको बनाना रूप कुम्हरैया तुम करते हो, सो शरीररूप चमरा गाम, वाँचता भी नहीं है। अर्थात् चाममें लिपटा हुआ मलमूत्र मांसादिके समुदायरूप शरीरोंको तुम कामकर्मादिसे रचते हो, परन्तु वे अवश्य नष्ट होजाते हैं। भाव यह है कि, कुम्हार जैसे अपनी जीविकाके लिये छोटा बड़ा भला बुरा सब तरहका घड़ा आदि बनाता है वैसे तुम भी अपने कर्मोंको भोगनेके लिये नीच ऊंच शरीरोंकी रचनारूप कुम्हरैया करते हो, अर्थात् कुम्हारका काम करते हो। और जिस शरीर की रचना करते हो वह नष्ट होजाताहै, जिससे फिर नवीन २ रचतेही जातेहो कभी विश्राम नहीं पाते हो, तथा सदा दुःखी रहतेहो। इसलिये हृदय-बन्धन की निवृत्ति करके सुखी होवो। और हृदय-बन्धन की निवृत्ति नहीं करने से ही तुम नित उठि अर्थात् सदा जन्म लेलेकर कोरिया (जुलाहे) के सदृश वेठ [बयाना] भरते हो। और छिपिया (छीपाजाति विशेष) के सदृश 'आंगन' यानी इससंसार रूप आंगन (गृह मध्य) में वा शरीरके हृदय और नेत्रादि रूप अङ्गोंमें तुम नाचते हो। भाव यह है कि कपड़ा वेचनेवाले दूकानदार (बजाज) दोचार सौ रुपयेके कपड़ोंके लिये दश बीश रुपये वेठ प्रथम देदेते हैं जिसको बयाना अगुवार भी कहतेहैं। और दश वा बीस रुपये वेठ [बयाना] लेकर जबतक दो वा चार सौ रुपयेके कपड़ा जुलाहे नहीं देते हैं तबतक दूकानदारसे जुलाहे पूर्ण मूल्य नहीं पातेहैं, और कपड़ा बना २ कर दूकानदारको देते जाते हैं, उसे वेठ भरना कहते हैं। और यदि दूकानदार जुलाहेको अपने बशमें रखना चाहता है, तो प्रथम वेठके पूर्णदाम चुकानेके समय वा उससेभी प्रथमही दस बीस रुपये आगेके लिये वेठ देदेता है, जिससे उस जुलाहे को सदा वेठ बीनते रहना पड़ताहै। अथवा मजदूरी की वर्तमान कालमें प्राप्ति बिना बीननेको भी वेठ भरना कहते हैं। कहीं बेगारी (बिना मजदूरी)के काम को वेठ कहते हैं, जैसे जुलाहा वेठ बीनता है। वैसेही हृदय-बन्धनसे युक्त सब जीव पूर्वोपार्जित कर्मों मेंसे प्रारब्ध कर्मरूप वेठको भरते हैं यानी भोग कर उसे खतम करते हैं। और प्रारब्ध के भोगकालमें किये वर्तमान कर्मके फल इन्हें शीघ्र नहीं मिलते हैं। और वर्तमान शरीर छूटनेके साथही पूर्व प्रारब्ध का नाश होता है, और उसी समय दूसरे कर्मभोग देनेके लिये उन्मुख होनेसे प्रारब्धरूप होजाते हैं वेही फिर वेठ सदृश होजाते हैं। इससे मोक्षरूप वास्तविक पूर्ण फलके बिनाही बेगारी सदृश अनेकों कष्टसाध्य व्यवहार जीव करते हैं। और अज्ञानी जीव संसाररूप वा शरीररूप वा शरीरके अवयवों रूप अनेकों आंगन में उस वेठको भरने ही के लिये छीपा सदृश नाचतेहैं। इसलिये हे मनुष्यो! हृदय-बन्धनका निवारण करो जिससे वेठ भरना नाचना नहीं होवे, और हे जीवो! हृदय-बन्धनका निवारण नहीं करनेसे ही संसार-सागरसे पार सुखमय अवस्थाको तुम नहीं प्राप्त होते हो किन्तु संसारकेही अन्दर 'नौवा' यानी शरीर रूप एक नौका परसे दूसरा 'नाव' नाम शरीररूप नौका पर सदा चढ़ते हो। अथवा सदा नौवा होकर यानी शरीररूप नावके अभिमानी होकर तुम उक्त नावपर चढ़ते हो। और संसार सागरसे पार करने योग्य मानव शरीररूप जितनी वेरायें तुझे प्राप्त होती हैं, उन वेरही वेराको तुम बारण करते हो, यानी उन सब वेराओं को तुम त्याग देते हो अर्थात् विषय भोगमें मनुष्य जन्मकोभी व्यर्थ

ही बोता देते हो। अथवा चिट्ठी पत्र पहुचाने वाला नौवाके सदृश गुरुवा रूप होकर शास्त्र रूप नौका पर चढ़ते हो परन्तु सब सत् शास्त्र रूप बेरा को बारते हो वा बेर [सुसमय] रूप बेराको बारते हो, यानी शास्त्रको पढ़कर उसके अनुसार तथा समयके अनुसार व्यवहार नहीं करते हो। इससे हे जीवो! राउरके यानी सबश्रेष्ठ सर्वोत्तम स्वरूप पूर्वकहे रामका तुम कुछभी खबर नहीं जानते हो, कि वह राम कौन है? किस प्रकारसे क्या करता है? इत्यादि अवश्य जानने योग्य बात तुम कुछभी नहीं जानते हो, तो इन्द्रिय कुबुद्धि रूप झगड़ालुओ के झगड़ोंको तुम कैसे निबारण कर सकते हो? यानी इन्हें अनिष्ट बिषय कुकर्मादिसे कैसे बचा वा हटा सकते हो, तथा दुःखमय संसारात्मक सागरसे कैसे पार लग सकते हो? क्योंकि शरीररूप इस एक ग्राममेंही पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय रूप पाञ्च तरुणी युवा-स्त्री) बसती हैं, और तामहँ यानी इनके ही साथमें इन सबसे जेठ [बड़ा श्रेष्ठ] एक मन है, और कुबुद्धिरूप जेठानी भी इसके साथ शरीरमें रहती है। अथवा विषयासक्त पाञ्चेन्द्रिय पाञ्चतरुणी हैं, और उनमें ही सबसे जेठ नाम बड़ी कुबुद्धिरूप जेठानी रहती है। और वे सब अपने अपने विषयोंकी तरफ प्रवृत्ति आसक्तिरूप आपन आपन झगड़ा पसारे हैं, (फैलाये हैं) जिससे पूर्वकहे रामरूप पियसे जीवोंकी प्रीति नशानी है, [नष्ट हो गई है] या अपने ज्ञानमात्रसे रक्षा करनेवाला आत्मासे उपदेश द्वारा पालन कर्ता गुरुसे प्रीतिको उन स्त्रियोंने नष्ट करदी हैं, और हे जीवो! कुबुद्धि आदि द्वारा वास्तविक पियसे प्रीतिको नष्ट होनेसेही तुम बकुला सदृश मिथ्या विषयादिका ध्यान करके बकध्यानी होकर 'भैंसिन माहँ यानी विचारादि हीन अपवित्रात्मा मूर्खोंके सङ्गमें सदा रहते हो, अर्थात् बकुला सदृश होकर भैंसी सदृशके सङ्ग करते हो। और तकुला [ताकने योग्य] अर्थात् सत्सङ्ग विचारादिसे अवश्य देखने, जानने, अनुभव करने योग्य आत्मवस्तु को तुम ताक नहीं लिया, न ताकलेते हो। अर्थात् अमूल्य मानवतन पाकर भी अनुभवसे ब्रह्मात्माकी प्राप्ति नहीं करते हो, स्वात्मास्वरूप रामको बकध्यानी होनेसे नहीं समझे न समझते हो। और हे जीवो! तुम भैंस सदृशोंके सङ्गको त्याग पूर्वक गायन माहँ नाम सत्यवक्ता उपदेशक ज्ञानी महात्माओंके सङ्गमें कभी नहीं बसते हो, न बसे हो, तो मोक्ष पद तथा आत्मवस्तुको तुम कैसे चीन्ह सकते हो? अर्थात् सुसङ्ग बिना न पद पहिचान सकते हो न सुखी हो सकते हो, जैसे गानेवाले का सङ्ग किये बिना स्वर राग रागिनी आदि युक्त पदोंको (शब्दों को, मनुष्य नहीं जान सकता है। वैसेही महात्माओंके सङ्ग बिना तात्पर्यादि सहित शास्त्रके उपदेशोंको तथा उनसे प्राप्य पदोंको भी मनुष्य नहीं जान सकताहै, न प्राप्त कर सकता है। इसलिये केवल अपने मन द्वारा पुस्तक आदि वांचने से भी पद के प्राप्तिकी आश को छोड़कर सत्सङ्ग विचारादि करना चाहिये जिससे कल्याण होवे यह भाव है। औरभी साहेब कहते हैं कि हे पथिक! यानी हे संसारात्मक जङ्गल में भटकनेवाले और जन्म मरणादि दुःखरूप संसारात्मक सागरसे पारजानेकी-इच्छावाले पथिको! तुमने सुसङ्गति बिना इस संसारात्मक जङ्गलसे तथा जन्मादि दुःखरूप संसारसे पार जानेके लिये पन्थ 'मार्ग' नहीं चीन्ह लिया है, अर्थात् गुरुसे सतमार्ग नहीं जान लिया है और न जाननेके लिये ठीक २ यत्न ही करते हो, किन्तु तुम स्वयं मूढ़ही हो (मोहादि युक्तही हो) और अन्य

मूढ़ तथा गँवार अविवेकी आदि का सङ्गादि करते हो। अथवा तुम सब मूढ़ही गूढ़हो अर्थात् अत्यन्त मूढ़ हो, और गँवार हो। इसीसे संसारसे पार होनेके घाटरूप विचार शम दमादिको छोड़कर अवघट (कुघाट कुमार्ग) में रेंगते हो (जाते हो) सो कस अवघट रेंगहु याना अवघट में क्यों जाते हो ? अभी भी कुघाट में जाना विचारादि से त्यागो उस मार्गमें तुझे कुछभी वास्तविक फलकी प्राप्ति नहीं होसकती है। हे मनुष्यो ! उस कुघाटमें रेंगनेसे तुम संसार-समुद्रसे कैसे पार लग सकतेहो ? अर्थात् किसी प्रकार भी अवघटमें रेंगनेसे पार नहीं लगसकते हो। और हेमनुष्यो ! पन्थ चीन्हे बिनाही तुम जत इतके (जहां तहां) घनहेरिया (आनन्दघन आनन्दस्वरूप वस्तु) को और उसके साधनोंको खोजतेहो, अर्थात् विषयादिको अत्यन्त आनन्द जनक मानकर उन्हें लोक परलोकमें हेरते (खोजते) हो। और अन्य पुरुषोंके धनादि देखकर 'ललची' अर्थात् पन्थ चीन्हे बिना लालच करते हो। अथवा ललच कर मार्ग जाने बिना जहाँ तहाँ 'घन हेरते हो' यानी अत्यन्त सुख साधनोंको ढूँढ़ते हो और जब मार्ग बिना ज्ञान के नहीं पाते हो तब तुम्हारा मन इतके [इस तरफ] दौड़ता है कि कोद (इन धन सुखादिकों) के दाता कौन देवादि हैं ? कि जिनकी उपासना आदि से मैं भी धनादि की और नित्य सुखकी प्राप्ति करूं, ऐसा विचार संकल्प विकल्प तुम्हारा मन करता है। अथवा कोदइत (कोद्रव रूप कदन्न) सदृश विषयोंके लिये तुम्हारा मन दौड़ता है। और जैसे कोई मूर्ख मनुष्य धानके चावलादि को त्यागकर चकरीके दोनों भागसे कोद्रवही 'दरना' यानी उसमेंसे चावल निकालना आरम्भ करे कि इसीसे मुझे आनन्द होगा। साहेब कहते हैं कि वैसेही ये सब जीव नीचे के मर्त्यादि लोकरूप और ऊपरके स्वरादि लोकरूप दोचाक लेकर यानी इन लोकों को सुखका स्थान मानकर विषयरूप कोद्रवके भोगरूप दरन पसारे है, और समझते हैं कि 'तव पैहौं थिनि ठौरा' यानी इन विषयों के भोगसे ही मोक्षपद पाऊंगा। अथवा विषयोंका दाता कोई है इस विचारमें मनको दौड़ा कर कल्पित विषयके दाता देवादिके भजनादिरूप दरन दोनों लोकमें जीव सब पसारे हैं कि मैं शम-दमादि विचारादि बिनाही 'तवही' यानी देवादि के भजन करनेसे ही थिति ठौर बैकुण्ठादि पाऊंगा। वहाँ साहेब कहते हैं कि थिति ठौर मोक्षरूप लक्षकी प्राप्तिके लिये सतगुरुने तो एक सत्यवस्तु सत्यमार्ग विषयक प्रेम रूप बाण कल्याणार्थीके वास्ते दिया है (उसका उपदेश किया है) अर्थात् सत्य वस्तु सत्य मार्गादि विषयक प्रेम विश्वास सहित मनको सतगुरुने तीर बताया है और उस प्रेममें गाढ़पन (दृढ़ता) ही कमान है (धनुष है) जिस गाढ़पनसे सत्यमार्गमें प्रवृत्ति और सत्यवस्तुकी प्राप्ति अवश्य होती है। अथवा 'गाढ़' नाम सांसारिक दुःख दर्शन, उस प्रेमतीरके कमान सतगुरुने दिया है। अथवा ओङ्कार आत्मा रामादि शब्द द्वारा उपदेशरूप दृढ कमान सतगुरुने दिया है, जिससे जीव सब तापसे रहित नित्यमुक्त होजातेहैं, परन्तु साहेब कहते हैं कि ज्ञान विचारादि रहित विषय देवादिके दासरूप कबीर (जीव) सबने सतगुरुका दिया हुआ तीर तथा कमानको त्यागकर 'यह' यानी अवघटमें रेंगनारूप और दोचकरीमें दरन पसारनारूप 'कहरा' नाम अत्यन्त दुखदायी व्यवहार किया है, वह कहरा महराओं में भी (महान् पुरुषों में भी) समाना (समाया) है। अथवा इस विहारादि प्रान्तमें महरा शब्द चर्मकारका उपाधिरूप है, और कबीर साहेबने कहा है-कि

सतगुरु से परिचय बिना, चारो बर्ण चमार।

इसलिये अर्थहै कि सतगुरुसे दिये हुये तीरकमानसे रहित बिषम सोहागिनी दास कबीरों ने यह दुइचकरी में दरन पसारनारूप कहरा कियाहै। वह कहरा चर्मदृष्टिवाले शरीराभिमानी सतगुरुके परिचयसे रहित पुरुषोंमें ही समाया है जो चमाररूप है और बिवेक विचारादि शीलमें नहीं समायाहै। इसलिये हे मनुष्यो! विचार बिवेक परायण होकर शरीराभिमान कामादिरूप हृदय-बन्धनोंका निबारण करो जिससे दुःखका सर्वथा अभाव होजावे॥ माणिकके मानिक। कुम्हरैया के कुम्हरिया। वेठ के पेट। पारा के तीरा। घनहेरिया के धनहेरिया। लैदरन पसारिन के जनि दरन पसारहु। यह कहरा के एक कहरा ये पाठभेद हैं। वहां मानिकके एक उक्तही अर्थ है और दूसरा मन के बशबर्ती भी अर्थ है॥ और कोरिया जैसे सदा कपड़ा बीनकर पेट भरता है वैसे हृदय-वन्धनका निबारण बिना सब जीव शरीरात्मक पटकी प्राप्तिसे पेट भरते हैं यानी विषयों को भोगते हैं॥ धनहेरिया का धन खोजना अर्थ है॥ दुइ चकरी जनि दरन पसारहु इत्यादि पाठ के अर्थ हैं कि हे मनुष्यो! तेरा मन कोदइतके दौड़ता है, परन्तु उसे रोको और दुइ चकरीमें व्यवहाररूप दरन नहीं पसारो, तब मोक्षरूप थिनी ठौर पावोगे। और उसी तिथि ठौरके लिये सतगुरुने एक प्रेमवाण दिया है और जिस तीरके कमान गाढ़ है, परन्तु दासकबीर हृदयके वन्धनरूप एक कहरा किया है जो महाराओं में समाया है इत्यादि॥ स्पष्ट शब्दसे अर्थ भासता है कि मैं [कवीर दास] ने यह एक कहरा शब्द किया है जिसके मांहमें महरा समाया है यानी महान् वस्तु का निरूपण है। अथवा जो कहरा महरा उपाधि वालोंमें समाया है उनके चरित्रको कहता है इत्यादि॥ लिखा है कि—

भिद्यतेहृदयग्रन्थि श्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मान्दृष्टेपरावरे॥ १॥ सुचिराभ्यस्तभावंतु वासनाग्रचितंमनः। यत्रतत्रभ्रमतस्वर्गनरकादिप्रपश्यति॥ २॥ आसक्तिमाहुःकर्तृत्व मकर्तुरपितद्भवेत्। मौर्ख्येस्थितेहिमनसि तस्मान्मौर्ख्यंपरित्यजेत्॥ ३॥

पर अवर स्वरूप ब्रह्मात्माको आत्मस्वरूपसे प्रत्यक्ष अनुभव करने पर कामरूप हृदयग्रन्थि भिन्न नष्ट होजाता है। सब संशयके प्रवाह विच्छिन्न होजाते हैं। और काम संशय रहित इस मनुष्यके सञ्चित आगामी सब कर्म नष्ट होजाते हैं॥ १॥ अनादि कालसे पदार्थोंके अभ्यास सहित वासना युक्त अज्ञानीके मन जहां तहां भ्रमण करता हुआ वासना के अनुसार स्वर्ग नरकादि देखता है॥ २॥ आसक्तिको ही कर्तापन कहते हैं वह अकर्ता में भी रहती है जबतक मनमें मूर्खता रहती है, इसलिये मूर्खताको त्यागना चाहिये॥ ३॥

६ षष्ठ कहरा।

सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के बचन समाई हो।

मेलीशिस्त चराचित राखहु, रहहु दृष्टि लौ लाई हो ॥
जस दुख देखि रहहु यह अवसर, असमुख होइहिं पाई हो ।
जो खुटकार बेगि नहिं लागै, हृदय निवारहु कोहू हो ॥
मुक्ति की डोरि गाढि जनि खैंचहु, तब बाझिहिं बड़रोहू हो ।
मनुअहिं कहो रहो मनमारे, खिझुआ खीझि न बोले हो ॥
मानू मीत मितैयो न छोड़ै, कमऊँ गांठि न खोले हो ।
भोगहु भोग भुक्ति जनि भूलहु, योग युक्ति तन साधहु हो ॥
जा मतसे करहू मतवाली, तामत के चित बांधहु हो ।
नहिं तो ठाकुर हैं अति दारुण, करिहैं चाल कुचाली हो ॥
मारि बांधि डारि मय लीहैं, छूटिहिं मय मतवाली हो ।
जबही सावट आनि पहूंचा, पीठि साट भल टूटी हो ॥
ठाढ़े लोग कुटुम्ब सब देखैं, कहे न काहु कि छूटी हो ।
एक पै नष्ट पाँवपरि विनवै, बिनति किये नहिं मानै हो ॥
अनचीन्ह रहहु कियेहु न चीन्हारे, सो कैसे पहिचानै हो ?।
लेन बोलाय बात नहिं पूछै, केवट गर्वतन बोले हो ॥
जाके गांठि समर कछु नाहीं, सो निर्थाह भय डोलै हो।
जिन समयुक्ति अगुअनकै राखिन, धरिन मच्छमार डेहरि हो ॥
जेकरा हाथ पाँव कछु नाहीं, धरे लागु तेहि सोहरि हो ।
पेलना अछत पेलि चलु बौरे, तीर तीर का डोलहु हो ॥
उथले रहहु परहु जनि गहरे, मति हाथहुँ कै खोवहु हो ।
उपर के घाम तरे के भूँभुरि, छांह कतहुं नहिं पायहु हो ॥
ऐसे जानि पसीजहु सीझहु, कस न छतरिया छावहु हो ।
जो कछु खेल कियो सो कीयो, बहुरि खेल कस होई हो ॥
सासु ननद घर देत उलाटन, रहहु लाज मुख गोई हो ।
गुरु भौ ढील गोण भौ लचपच, कहा न मानहु मोरा हो ॥
ताजी तुरुकी कबहुं न साधेहु, चढ़ेहु काठ के घोरा हो ।

ताल झाँझभल बाजत आवै, कहरा सब कोई नाचै हो ॥
जेहिरङ्ग दुलहा ब्याहन आवै, तेहिरङ्ग दुलहिनि राँचै हो ।
नौका अछत खेवहुँ नहिं जानहुँ, कैसे लगबहु तीरा हो ॥
कहहिं कबीर रामरस माते, जोलहा दास कबीरा हो ।

टीका—सत्सङ्ग बिचारादि संसारसे पार होनेके लिये वस्तुतः साधन हैं, परन्तु उक्त साधनके करनेमें असमर्थ बहिर्मुख पुरुषोंके लिये—

प्रेमबाण एक सतगुरु दीन्हा, गाढ़ो तीर कमाना हो ।

इस वाक्यसे ज्ञानके साधनरूप योगका भी उपदेश साहेबने किया है और उसीका इस कहरामें स्पष्ट बर्णन किया है। और जो पुरुष बिचारादिसे आत्मानुभव नहीं करके इस योगकी रीतिसे भी आत्मानुभवादि की प्राप्ति नहीं करते हैं उन्हें कठिन यमयातना सहनी पड़ती है इसका भी वर्णन किया है। वहां यद्यपि—

राजयोगःसमाधिश्च उन्मनीच मनोन्मनी। अमरत्वं लयं तत्त्वं शून्याशून्यं परं पदम् ॥ अमनस्कंतथाऽद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम्। जीवन्मुक्तिश्चसहजा तुर्या चेत्येकवाचकाः ॥

इस बचनके अनुसार राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, शून्याशून्य, परपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरञ्जन, जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या ये सब समाधिके नाम हैं, तथापि—

जलसैन्धवयोः साम्यं यथा भवतियोगतः तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरिहभण्यते ॥

इस बचनके अनुसार लवण जलकी मेलसे एकताके सदृश आत्मा मनकी एकताको साधनरूप समाधि जानना चाहिये। और—

संयोगोयोगइत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः। परेणब्रह्मणासार्द्धमेकत्वंयन्नृपात्मनः। स एव योगोविख्यातः किमन्ययोगलक्षणम् ।

इस वाक्यके अनुसार जीवात्मा परमात्माके सम्यक् योगरूप यानी एक भावसे स्थितिरूप साध्यस्वरूप मुख्य समाधि जानना चाहिये। जिस साध्यस्वरूप समाधिको कहनेवाली बाणी है कि—

सन्तो ! सहजसमाधिभली है, गुरुपरताप भई जादिनते सुरत न अनत चली है ॥ टेक ॥ जहँ जहँ जाऊँ सोई परिकर्मा, जो कछु करौं सो पूजा। गृह बनखण्ड एक करि जानों, भाव मिटावौं दूजा ॥

आँख न मुन्दो कान न रूँधो, कायाकष्ट न धारूँ। खुले नैन हँसि हँसि पहिचानूं, सुन्दररूप निहारूँ॥ शब्दनिरन्तर मनुआ राते, मलिन बासना त्यागे। ऊठत बैठत कबहुँ न बिसरे, ऐसी तारी लागै॥ कहहिं कबीर यह उन्मुनी रहनी, सो प्रगटे करि गाई। सुख दुख से एक परे परमपद, सो पद है सुखदाई।

इस बचनसे सिद्ध होता है कि आँख कानादिको मूँदना आदिरूप हठके बिना ही पापादि-सङ्गसे रहित एक आत्मवस्तुको सुन्दररूप [शुद्ध स्वरूप] से सर्वत्र देखना सहज समाधि है। जिस समाधिके गुरुकृपासे लाभ होनेपर मनभी स्वभावसे ही गुरुके उपदेश-मार्गमें ही रहता है, और समूल मलिन वासनाको त्याग देता है, इससे कहीं नहीं जाता है, परन्तु दुःखद हठकी प्रक्रिया बिना इसे प्राप्त होनेसे इसे सहज समाधि कहते हैं। और सुगमसे प्राप्त होनेपर भी उत्तम फलका हेतु होनेसे इसे राजयोग कहते हैं, परन्तु जबतक गुरुसे उपदेश सुनकर आनन्द स्वरूप आत्माका अनुभव बिना ही साधक पुरुष भावना करता है तथा मनको उसमें स्थिर तदाकार करता है, तबतक साधनरूप राजयोग कहा जाता है। यद्यपि आनन्द स्वरूप आत्माके अनुभवके अभावसे तथा अनादि विषय-बासनासे सहज समाधिके साधक पुरुषके मन भी आत्मामें नहीं स्थिर होता है, किन्तु विषयादिमें भागता है, इसलिये उसे रोकनेमें उक्त साधकको भी दुःख होता है, तथापि सिद्धि आदिके हेतु हठयोगादिकी अपेक्षा इसमें बहुत न्यून कष्ट होता है, इससे साधनदशामें भी सहज समाधि कही जाती है। और

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

नाभिचक्रादि धारणके देशोंमें ध्येयाकार वृत्तिकी एकाकारताको ध्यान कहते हैं। और

श्वःश्रेयसंशिवंभद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्।
भावुकं भविकं भव्यं कुशलंक्षेममस्त्रियाम्॥ शस्तंच॥

इस कोशके अनुसार श्वःश्रेयसादि और शस्त शब्द कल्याणके वाचक हैं। और

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभंतत्त्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजाऽवस्था सद्गुरोःकरुणां बिना।

विषयका त्याग, तत्त्वदर्शन, और सहजावस्था नाम तुर्यावस्था सद्गुरुकी कृपा बिना दुर्लभ हैं। इस बचनमें तुर्यावस्थाको सहजावस्था कही गयी है, वह भी फल भूत साध्य समाधिरूप जानना चाहिये। और सहज ध्यान रहु, इस वाक्यमें ध्यान शब्द समाधिके ही वाचक है, क्योंकि ध्यान ही परिपाक अवस्थामें साधनरूप समाधि होजाता है, इसलिये ध्यान शब्दसे समाधिको

साहेबने कहाहै। अथवा पूर्वोक्त ध्यानही ध्यान शब्दका अर्थ है। इसलिये इस कहराका अर्थ है कि हेबिचारादि करनेमें असमर्थ जिज्ञासु पुरुषो! गुरुके उपदेशरूप बचनमें समाकर अर्थात् उनसे प्राप्त उपदेशामें श्रद्धा आदि युक्त होकर 'सहज ध्यान रहु' यानी सहज समाधिमें स्थिर रहो, उस समाधिमें लगे रहो। अथवा सहज समाधिकी सिद्धिके लिये [तुर्यावस्थारूप राजयोगकी सिद्धिके लिये] ध्यानमें लगे रहो। जिज्ञासा हुई कि किस प्रकार लगे रहें? तब साहेब कहते हैं कि चरनेके स्वभाववाला होनेसे चरा [चञ्चल] चित्तको शिस्त [शस्त] अर्थात् कल्याण स्वरूप बस्तुमें मेलकर (लगायकर) अभ्यास भावनासे उसे उस कल्याणरूप वस्तु और कल्याण मार्गमें ही लगाकर रखो, और विषयादिके तरफसे चित्तको रोको और उसी कल्याण स्वरूप बस्तुमें, गुरु-उपदेशसे सिद्ध मनकी वृत्तिरूप दृष्टिसे 'लौ' नाम प्रेम लगाये रहो। अथवा 'चराचित' नाम चर अचित अर्थात् चराचर जगतको लय चिन्तनकी रीतिसे कल्याण स्वरूप बस्तुमें 'मेलकर' नाम लय करके रखो, और उस कल्याणरूप बस्तुमें अपनी दृष्टिसे लौ लगाये रहो। अथवा शिष्टके स्थानमें शिस्त होनेसे अर्थ है कि हेशिष्ट [श्रेष्ठ] जिज्ञासुओ! 'चरा' नाम चलायमान मन आदि सब वस्तुओंको चित (चेतन) बस्तुमें मेलकर [मिलाकर] उसीमें रख दो, और सब बस्तुकी 'दृष्टि' नाम प्रकाशक चेतन बस्तुमें ही प्रेम लगाये रहो वा आत्मज्ञानरूप दृष्टिमें प्रेम लगाय रहो। जिज्ञासा हुई कि महान कष्ट करके अभ्यास बैराग्यादि द्वारा मनको रोककर आत्मवस्तुमें स्थिर करनेसे क्या फल मिलता है? तब साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! मनको विषयोंसे रोकनेमें जैसे महान् दुःखको देखकर भी तुम आत्मपरायण रहोगे वा रहते हो, ऐसे ही महान् सुख तुझे सदाके लिये पाई [प्राप्त होवेंगे] अर्थात् यत्न किये बिना कल्याण नहीं हो सकता है। और सुखके साधनोंके अनुष्ठान कालमें अवश्य कुछ दुःख सहना ही पड़ना है जिससे साधनकी प्राप्ति होती है, इसलिये तितिक्षा पूर्वक गुरुके उपदेशके अनुसार मनका निरोधकरो जिससे कल्याण होवेगा। और जो [जिस] कोह (क्रोध) के त्यागनेसे 'खुटकार' यानी दूसरे पापी मनुष्योंसे किये गये खोटे व्यवहारोंका बेग तुझे नहीं लगसके अर्थात् जिस क्रोधको त्यागनेसे तेरा कोई अत्यन्त अपकार नहीं कर सकता है उस क्रोध को तुम अपने हृदयसे निवारण करो नाम त्याग दो। अथवा बेगि नहिं इस वाक्यमें हि शब्द पाद पूरणार्थक है, और न शब्द निश्चयार्थक है। इससे अर्थ है कि जो (यदि) पापी आदि मनुष्य कृत खुटकारका बेगभी तुझे लगे तौभी क्रोधको पापरूप जानकर उसे हृदयसे त्याग दो। अथवा जो (जबतक) तुझे खुटकारका बेग नहीं लगे यानी अत्यन्त अपकार तेरा कोई नहीं करे, तबतक हृदयसे क्रोधको त्यागो तथा तुच्छ बातोंके लिये क्रोध न करो, किन्तु अत्यन्त अपकार करनेपर भी उसके प्रतिकारके लिये क्रोध करो। अथवा जो [जिससे] तुम्हारे क्रोधका बेग दूसरेको नहीं लगे इसलिये हृदयके कोहको त्यागो। और मुक्तिकी डोरीरूप जो आत्मवस्तुमें लगा हुआ चित्त होवे तो उसे 'गाढ़ि' नाम दुःखस्वरूप संसारमें जनि खैंचहु अथवा जैसे मछली बझाने वाले जालकी डोरीको गाढ़िसे नाम ज़ोरसे नहीं खींचता है, किन्तु धीरे धीरे खींचता है। तैसेही तुम भी मुक्तिकी डोरीको गाढ़िसे नहीं खींचो, किन्तु शीघ्रता घबराहटको त्याग

कर धैर्य पूर्वक साधनका अनुष्ठान करो, तब जैसे जालमें वड़ी रोहुनामवाली मछली बझती है,- वैसे तुझे मुक्ति प्राप्त होगी, तथा चञ्चल मनरूप मछली बझेगा यानी बशमें होगा। अथवा रुह बीजजन्मनि, प्रादुर्भावेच इस धातुके अर्थानुसार तेरे बारम्बार संसारमें, 'रोहु' नाम जन्म लेना-रूप प्रादुर्भाव होना बझ जावेगा, अर्थात् अनादि जन्मादि रोग छूट जावेंगे। और हेमनुष्यो! तुम लोग अपने मनुअहिं (अपने मनों) को कहो अर्थात् महात्माओंके उपदेश अभ्यासादिसे मनको सदा समझावो। और समझाकर उस मनको 'मारे रहो' नाम उसकी चञ्चलता मिथ्या विकल्पादि को रोके रहो, और खिझुआ (क्रोधी) होकर खीझि (क्रोध) करके नहीं बोलो। अथवा हे खिझुआ पुरुषो! अवसे भी ऐसा करो कि क्रोध करके नहीं बोलो किन्तु शान्त चित्त होकर विचार पूर्वक सुखद वचन बोलो। अथवा जो कोई खिझुआ होवे, तेरे प्रति कुछ क्रोधसे कहता होवे तो उस खिझुआसे भी खीझकर नहीं बोलो। और पुण्यात्मा तथा गुरु महात्माओंको तुम अपना मीत नाम मित्र उपकारक सहायक सुहृद मानो और उनके साथ तुम मित्रता करो। और मितैया नाम मित्रता को कामादि वश कभी नही छोड़ो, और उस मित्रताकी गाँठिको नाम दृढ़ बन्धन को कमऊँ [कबहूं] नही खोलो। अथवा 'कमऊँ' यानी काम की गाँठि [गँठरी] को नही खोलो, अर्थात् अत्यन्त कामी नहीं होवो, और कामनाओंको त्यागकर शरीरके स्थितिका हेतुरूप जो 'भोग' यानी उचित भोग्य वस्तु है उसे भोगो। और 'भुक्ति' नाम भोगमें ही भूला नही नाम लोभ तृष्णादिसे भोगमें आसक्त नही होवो। और योगरूप युक्तिसे अथवा योग शास्त्रमें वर्णित युक्तियोंसे तनको (स्थूल, सूक्ष्म शरीर को) साधो नाम वशमें तथा शुद्ध करो तथा रोगालस्यादिसे रहित करो या शरीरको ज्ञानके साधनोंसे युक्त करो जिससे ज्ञानकी प्राप्ति और कल्याण होवे। और हे मनुष्यो! जामतसे (जिस ममता आदि युक्त मति बुद्धिसे) तुम 'मतवालीपन' नाम गर्व अहंकारादि करतेहो, 'तामतको नाम उस ममत्वादि युक्त बुद्धिको 'चित' नाम चेतन स्वरूपमें 'बांधो' नाम चेतनस्वरूप विषयक ही ममता अभिमानादि करो तथा जानो कि चेतनात्माही सच्चा मेरा स्वरूप है, और अन्य सब वस्तु झूठे हैं। इस पूर्वकही रीतिसे जिज्ञासु सज्जनोंके प्रति सदुपदेश देकर फिर साहेब कहते हैं कि नहीं तो अर्थात् हे मनुष्यो! यदि पूर्वकही रीतिसे तुम अपने कल्याणके लिये सत्सङ्ग विचार योग ध्या-नादि कुछ भी नही करोगे, तो 'ठाकुर' यानी।

षटदर्शन पाखण्ड चलायो, तिरदेवा अधिकारी।
राजादेश बड़ो परपञ्ची रैयत रहत उजारी॥

इत्यादि बचनोंके अनुसार अज्ञानी संसारी जीवोंको दण्डादि देनेके लिये अधिकारी स्वरूप त्रिदेवरूप वा यमराजरूप वा ईश्वररूप ठाकुर, [स्वामी] तुम्हारे लिये अत्यन्त दारुण (क्रूर) स्वरूप है यह जानो। वह ठाकुर सत्सङ्गादिसे रहित स्वरूप तुम्हारे लिये कुचाली चाल करेगा यानी गर्भ नरकादि में प्राप्त कराना जो कठिन व्यवहार है वह तुम्हारे लिये करेगा। और तुझे बाँध

कर तथा मारकर सब अपराधों का डांरि (दण्ड) लेगा, अर्थात् सब अपराधोंके बदलेमें दण्ड देगा, तब तुम्हारी सब मतवाली छूट जावेगी नाम उस कष्टदशामें सब अहंकार गर्बजाते रहेंगे। अथवा सत्सङ्गादि रहितके लिये ठाकुर भी अत्यन्त दारुण है, क्योंकि वही ठाकुर इन्द्रियों के अधिष्ठाता उरप्रेरक होकर जीवोंके चालको कुचाल करता है, और फिर मार बाँधकर सब कुचालों का दण्ड लेगा, जिससे तेरी सब मलवाली छूटेगी। भाव यह है कि सत्सङ्ग बिचारादि रहित पुरुषोंको देवता वा ईश्वर भी सुखी नहीं कर सकते हैं, बल्कि बारमबार दुःख भोगाते हैं। अथवा हे मनुष्यो ! यदि पूर्ववर्णित योगकी रीतिसे वा सत्सङ्ग बिचारादिसे मनको बशमें नहीं करोगे तो-

मन एव मनुष्याणां कारणां बन्धमोक्षयोः। इन्द्रियाणां मनोनाथः

इत्यादि बचनोंके अनुसार इन्द्रियों का स्वामी और बन्धमोक्ष देनेमें समर्थ होनेसे ठाकुर जो मन है, वह बशमें हुये बिना अत्यन्त दारुण है इससे वह 'कुचाली' यानी कुचालवाला मन ऐसा तुम्हारी चाल करेगा कि वही तुझे बाँध, डार और मारकर तेरे सब सर्वस्वादिको लेलेगा, अर्थात् नष्ट कर देगा, तब तुम्हारी सब मतवाली छूट जावेगी। और हे मनुष्यो!'जबही' यानी जिस मरण आदि कालमें साबट [साट मारनेवाले] आनि यानी आकर पहुँच जायेंगे [प्राप्त हो जावेंगे] तब तुम्हारे पीठपर भली भाँतिसे साटि टूटेगी अर्थात् तुम्हारे दोष मनसे प्राप्त हुए यमदूत तुझे मारते२ कोरा बेंत तुम्हारे ऊपर तोड़ेंगे। भाव यह है कि सत्सङ्ग बिचार योगादि बिना तुझे भयानक यम तथा यमदूतादि मनके अधीन भासेंगे और तुम आतिबाहिक सूक्ष्म शरीरादिसे महान् कष्ट भोगोगे, फिर दुःखद योनियों में मन आदिके अधीन होकर प्राप्त होवोगे, और जिन लोग कुटुम्बादिकों के मोहके बशमें होकर तुम सत्सङ्गादिका त्याग किये हो वा करते हो, वे लोग कुटुम्बादि उस मरणादि कालमें ठाढ़े होकर देखते हैं वा देखेंगे, और वे लोग चाहेंगे, तथा कहेंगे भी कि हे भगवान्! परमेश्वर! यह मेरा सम्बन्धी दुख रहित होजावे इत्यादि, तौभी किसी मनुष्य कुटुम्बादिके कहेसे बिना भोगे तुझे छुट्टी नहीं मिलेगी। अथवा मरणकालमें जब तुम दुख भोगने लगोगे तब लोग कुटुम्ब सब ठाढ़े होकर देखेंगे, और तुम भी उन्हें देखोगे परन्तु किसीके प्रति कुछ कह नहीं सकोगे और न बिना भोगे उस दुःखसे छुट्टी ही मिलेगी। तौभी "एक पैनष्ट" यानी तुम केवल अकेलाही नाश समय उस दुःखदाता के "पाँव पर" के उसे "बिनवै" अर्थात् उसकी बिनती स्तुति करोगे, वा जो कोई उसके बशमें प्राप्त होता है वह नष्ट होता हुआ पाँवपरके बिनय करता है, परन्तु वह दुःखदाता बिनती करनेसे नहीं मानता है न मानेगा। अर्थात् दुःखकालके पश्चात्ताप बिनयादि से न कोई सुखी हुआ न होता है। क्योंकि स्वस्थावस्था में जब तुम सब कुछ अपने कल्याणके लिये कर सकते थे, उस समय उन यम आदिसे अनचिन्ह रहते हो, उससे चीन्हार न किये हो न करते हो। अर्थात् यमदूत यमयातना आदिको तुम नहीं समझते हो, और न उनसे रहित होनेके लिये ब्रह्मात्माको जानते हो न सत्सङ्गादि करते हो, तो हे मनुष्यो! 'सो' नाम वे कष्टदाता यमादि तुझे कैसे पहचान सकतेहैं? तथा तुझे कैसे छोड़ सकतेहैं? या तुम्हारी बिनती को कैसे सुन सकतेहैं? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं सुन सकते

हैं। अथवा जो पुरुष एक पै नष्ट हैं यानी सर्वात्म स्वरूप एक रामसे जो नष्ट अर्थात् छिपे हैं उस रामके संमुख बिचार वा योग मार्ग से नहीं होते हैं, तथा अपना स्वरूप ही जो रामको नहीं जानते हैं। अथवा जिनकी दृष्टिमें केवल एक वस्तु ही नष्ट हो गयी है, उनके ही लिये ठाकुर दारुण हैं, और यमादि सब हैं, कि जिन ठाकुर आदिके पाँव परके वे लोग विनय करते हैं, और तौभी आत्मस्वरूपमें भासते हुये वे ठाकुर आदि विनय किया हुआ नहीं मानते हैं। क्योंकि जिस अनन्त शक्ति युक्तसे तुम सदा अनचीन्ह सदृश रहते हो, वह तुझे उस समय कैसे पहचान सकता है ? अर्थात् उस कष्टदशामें वह ब्रह्मात्मा तुम्हारे पहचानमें कैसे आ सकता है ? कि जिससे भ्रमके अभावसे दुःखका अभाव होवे, इसलिये स्वस्थदशामें एक ब्रह्मात्माका पहचान करना चाहिये, जिससे कल्याण होवे। और साहेब कहते हैं कि प्रथमसे पहचान बिना वे ठाकुरादि तुझे 'लेन बोलाय' नाम शान्ति पूर्वक तुझे नहीं बोला लेते हैं न बोला लेंगे, और न शान्ति पूर्वक कोई बात ही पूछते हैं, किन्तु बलात्कार से पकड़कर ले जाते हैं। और इस शरीरसे दूसरे शरीरादिमें प्राप्त करानेवाले हैं, अतएव 'केवट' सदृश वे ठाकुरादि 'गर्वयुक्त तन' यानी शरीरवाले होकर बोलते हैं, अर्थात् धिक्कारादि देते हैं। अथवा पहचान करने पर जो संसारसागरसे पारकरनेमें केवट सदृश हैं, वेही गर्बका स्वरूप धारण करके बोलते हैं। और जब वे गर्बमय शरीरको धारण करके बोलते हैं, [भर्त्सना करते हैं] तब जिन पुरुषोंके गांठिमें कुछ सम्बल नहीं रहता है यानी जो लोग सतधर्म योगादिका भी उपार्जन नहीं किये रहते हैं, सो [वे] लोग 'निथाह होकर डोकते हैं' यानी डरके मारे थर २ कांपते हैं। अर्थात् जिन्होंने सत्सङ्ग विचारादिसे बिमुख रहकर ज्ञानके साधन निष्काम कर्म अहिंसा आदि सत धर्मका सम्पादन भी नहीं किये हैं, वा जो नहीं करते हैं, उनको कोई रक्षक नहीं मिलता है, इससे शरण-रहित अनाथ भय-भीत होकर अथाह दुःखसागरमें मग्न होते हैं और कांपते हैं। और जिन अगुअन [आगे के महात्माओं ने] समयुक्ति [सम्यक् युक्ति] करके धर्मका सम्पादन कर राखिन उन्हों ने 'भर डेहरी' यानी इच्छा के अनुसार पूर्ण स्वर्गादि रूप 'मच्छधरिन' यानी प्राप्त किया। अथवा जिन लोगोंने 'अगुअन' अर्थात् पूर्व कालसे ही सत धर्मरूप सम्बलको संयुक्त करके 'राखिन'वे लोग पूर्ण सुखको प्राप्त हुए, संयोगकर रखनेवाले अब भी सुखपातेहैं। अथवा जाके 'जिन पुरुषोंके' हृदयमें पूर्वकहे कामादिरूप गाँठि तो हैं, परन्तु संसारमार्गसे पार करनेवाले सत्सङ्ग बिचार योग ज्ञानादिरूप कुछ सम्बल जिनके हृदयमें नहीं है, वे पुरुष अथाह भयसे डोलते हैं। और जिन्हों ने जीवात्मा और मनको ब्रह्मात्मामें सम्यक् योग करके रखे हैं यानी एकरूप स्थिर किये हैं, उन लोगों ने 'भर डेहरी' यानी देहकी स्थिति पर्यन्त यावत् जीवन में ब्रह्मानन्दरूप मच्छ नाम मोक्षका ही धारण किये और करते हैं। अथवा ब्रह्माण्डरूप डेहरी में भरा हुआ माने पूर्ण आनन्दरूप मच्छको वे लोग धारण किये। जिज्ञासा हुई कि यमराज ठाकुरादि रूप तथा पूर्ण आनन्द स्वरूप कौन है ? तब साहेब कहते हैं कि 'सो हरिहो' नाम वेही ठाकुर आनन्दादि स्वरूप हरि हैं, अर्थात् हरिमें ही ठाकुरादिपन माया से भासतेहैं, और वेही वस्तुतः पूर्ण आनन्द स्वरूपहैं। और जेकरा [जिस ब्रह्मात्मा को] हाथ पाँवादि कुछ भी वस्तुतः नहीं हैं। वेही हरि ठाकुर यमादिरूप

होकर 'तेहि' नाम उन सम्बल रहितोंको धरेमें [पकड़ने में] लागु [लगे हैं] और लगते हैं। अथवा जिसको हाथ पाँव कुछ नहीं हैं तेहि[उस]हरि के 'धरे' यानी धड़ सब भी नहीं लागु होतेह, क्योंकि जो असङ्ग है और शरीर अवयवादिसे रहित है वही हरि है। अथवा जिन पुरुषोंने समयुक्ति करके राखिन, और भर डेहरि मच्छधरिन वे पुरुष उस हरि स्वरूप हो गये कि जिस हरिको हाथ पाँवादि नहीं हैं। वे पुरुष हरिरूप कैसे हुये? ऐसी जिज्ञासा होने पर साहेब कहते हैं कि 'तेहि' नाम उन समयुक्ति करनेवाले पुरुष में फिर कभी धड़ें नहीं लगते हैं इससे वे पुरुष हरि हैं। और साहेब उपदेश करतेहैं कि हे मनुष्यो! इस मानवशरीररूप 'पेलना को' नाम नौका को अछत (रहते ही) में वा इस शरीररूप नौकाको रागादिरूप छतिसे रहित रहते ही में इस नावको पेल कर (ठेल कर, खेव कर) इस संसारसागरसे पार चलो यानी संसारसे परले पार प्राप्त होनेके लिये इसी शरीरसे यत्न व्यापार करो। और यत्न व्यापार करके संसारसे पर ब्रह्मात्मामें प्राप्त होकर स्थिर होजावो। इस संसारसमुद्रके 'तीर तीर' में क्या डोलते हो, यानी अज्ञान वश तुच्छ विषय सुखादिके लिये अनेकों स्थानोंमें क्या भ्रमते हो? इस भ्रमणको त्याग दो, इसके तीर तीरमें डोलते रहनेसे गम्भीर दुःख-रूप अथाह समुद्रमें भी कभी प्राप्त होजावोगे, इसलिये इसके तीरोंमें डोलना त्यागकर इससे पार चलो। अथवा कहते हैं कि इस समुद्रको तीरो २ नाम तरो २ डोलते क्या हो? यानी इस समुद्रमें क्या बिचरते हो? और सुख मानते हो यह बिचरने आदिका स्थान नहीं है। इसलिये 'उथले' यानी उच्च आत्म वस्तुमें तथा विवेक वैराग्यादिमें 'रहहु' (रहो) अर्थात् संसार-विषयक आसक्तिको त्यागकर संसारसे उच्चपदमें स्थिर रहो, और रागद्वेषादि रूप गहिरा संसारात्मक समुद्रमें नहीं पड़ो। अथवा गम्भीर दुःखरूप संसारात्मक समुद्रमें नहीं पड़ो। और हे मनुष्यो! हाथमें प्राप्त वस्तुके सदृश इस अमूल्य अवसरको व्यर्थ व्यवहारोंमें तथा रागद्वेषादिमें 'मति खोवो' यानी नष्ट नहीं करो नहीं तो 'ऊपर के घाम तुझे लगेंगे' यानी जन्म लेनेके बाद तुझे त्रिविध ताप सहने पड़ेंगे। और तरेके (गर्भ के अन्दरके) भूँभुरि यानी कष्ट देनेवाले अतितप्त बालू आदिके सदृश वस्तु जन्य दुःख गर्भमें सहने पड़ेंगे। अथवा इस अवसरके खोने पर शारीरिक दुःखरूप ऊपरके तुझे घाम लगेंगे, और तरेके (अन्तःकरणके) अनेकों शोक मोहादिरूप भूँभुर भी तुझे सहने पड़ेंगे। अथवा ऊपरके [स्वर्गादिके] भी रागद्वेषादिरूप घाम तुझे लगेंगे, और उससे तरेके (नीचेके) भी भूँभुरि तुझे व्यापेंगे और इस अवसरमें चूकने पर उन तापोंको नष्ट करनेवाली उनसे रक्षा करनेवाली छाया तुम कतहुं नहीं पावोगे, और अभी तक भी तुम सत्सङ्गादि बिना कहीं छांह नहीं पायो है। और हेमनुष्यो! 'ऐसे जान कर भी' यानी इस प्रकारके दुःखोंको तुम देख सुनकर तथा अनुभव करके भी 'पसीजते हो' अर्थात् शोक मोहादिसे पीड़ित होते हो तथा 'सीजते हो' यानी शारीरिक दुःखोंसे पीड़ित होते हो, और सत्सङ्ग बिचार योग ज्ञानादिरूप, छत्री नहीं छाते हो, अर्थात् उक्त तापोंसे रक्षाके लिये इन छायाओंको नहीं सिद्ध करते हो, सो कस न छावहु (क्यों नहीं छाते हो?) अवश्य छावो जिससे तेरा कल्याण होवे, और हे मनुष्यो! भूलोंको त्यागकर संसारमें खेलना बिचरना छोड़ो अभी भी अपने कल्याणके लिये यत्न करो, नहीं तो जो कछु खेल, क्रीड़ा आनन्द इस मनुष्य

शरीरसे तुमने कियां सो कियो बहुरि [फिर] मरण यमयातना आदि कालमें कैसे खेल होसकता है ? किन्तु फिर खेल नहीं होगा मरने आदिके समय तथा पशु आदि योनियोंमें महाकष्ट भोगना होगा। और ब्रह्मा विष्णु आदिरूप पतियोंकी माता होनेसे सासु रूपी माया और उसकी लड़की रूपी, कुबुद्धि को होनेसे कुबुद्धि रूप ननद ये दोनों खेलनेवाले मनुष्योंके शरीररूप घरोंमें 'उलाटन देती हैं' यानी बारबार जन्म देती हैं वा गर्भादि में उलटे टांगती हैं, तथा अनेकों उलहना तिरस्कार दुःख लज्जा की बात और व्यवहारोंको प्राप्त कराती हैं। हे खेलनेवाले मनुष्यो ! तब उस उलाटनके समय तुम लाजके मारे मुख गोयकर (छिपाकर) रहते हो और रहोगे। अथवा पशु पक्षी आदि योनियोंमें लज्जित सदृश गूंगे होकर रहोगे। अथवा हे मनुष्यो ! तुम खेलमें फंसकर सासु [सुन्दर शिक्षा] और शिक्षक गुरुको तथा ननद (आनन्द संपत्ति) को प्राप्त करानेवाली सुन्दर शुद्ध बुद्धि को अपने घरसे (घट से) उलाटन देते हो यानी उलटते तथा तिरस्कार करतेहो, तथा शुद्ध प्रसन्न बिचार युक्त बुद्धिसे गुरुके श्रेष्ठ उपदेशोंको धारण नहीं करतेहो, किन्तु खेल करतेहो, इसीसे अज्ञानी निर्बुद्धि होकर लाजके मारे मुख छिपाकर रहते हो। अथवा लाजरूप मिथ्या मायिक वस्तु और व्यवहारोंमें सबके मुख्य प्रधान पोषणादि करनेवाला आत्मा और उसके बिचरादिको तुम छिपाय रहते हो वह भूल करते हो इसे त्यागो जिससे तेरा कल्याणहो। और हे मनुष्यो ! संसारात्मक सागर से पार करनेवाला मानव शरीररूप नौकाके गुरु ढील हो गयो यानी पाल बाँधनेका आश्रय बीचके स्तम्भ सदृश मेरुदण्ड ढीला होगया। और उस गुरुके बन्धनादि रूप गोणके सदृश वा घोड़े आदिके तङ्गादि सदृश जो मांस नाड़ी आदिरूप गोण हैं, वे सब भी लचपच हो गये (ढीले हो गये) वा हो जाते हैं तौ भी तुम मेरा कहल (उपदेश) न मानेहु (न मानते हो)। अर्थात् बृद्धावस्था आजानेपर भी तुम सद्गुरुके उपदेशोंको नहीं सुनते हो और सत्सङ्गादि भी नहीं करते हो, और सद्गुरुके कहा नहीं माननेसे ही ताजी (युवती) तुरुकी (तुरुक-स्थानकी घोड़ी) जो कि शीघ्रही इष्टस्थानपर पहुँचाती है, उसके सदृश शीघ्र मोक्षसुखको प्राप्त करानेवाले सत्सङ्ग बिचार शम दम अनासक्ति ज्ञानादिरूप निष्ठाओंको तुम कभी नहीं साधते हो। अथवा ताजी और तुरुकीके सदृश विवेक और वैराग्यको अथवा बिचारजन्य आत्मबुद्धि और योगजन्य आत्मबुद्धिको तुम कभी नहीं साधते हो, अर्थात् अभ्यासादिसे सिद्ध और परिपक्व नहीं करते हो, किन्तु काठके घोड़े सदृश विषयादि जड़ पदार्थपर चढ़ते हो यानी विषयादिमें आसक्त होते हो। अथवा चेतन वस्तुके बिचारादिको त्यागकर जड़की पूजा प्राप्ति आदि करते हो, वही मानो काठके घोड़ेपर चढ़ते हो, इससे कभी तेरा कल्याण नहीं हो सकताहै। अथवा शरीरमें अभिमान ही काठके घोड़े पर चढ़ना है वह करते हो, और मेरा कहा नहीं मानते हो, इससे ताजी तुरुकीके सदृश विषयादिमें अनासक्त मन बुद्धिको नहीं साधते हो। और हे मनुष्यो ! जिसलिये तुम ताजी तुरुकी सदृश ज्ञाननिष्ठा आदि की नहीं प्राप्ति किये हो, और मेरा कहा नहीं माने हो न मानते हो, किन्तु काठके घोड़ेपर चढ़े हो, इसीसे तुम्हारे बिबाहके लिये भली भांतिसे ताल झांझादि बाजते आते हैं, और 'कहरा' अर्थात् कठिन दुःखके मार्गमें प्राप्त मनुष्य सब भी अज्ञानादि बश नाचते हैं। अथवा सब कोई जड़ कहारके

सदृश नाचते हैं (आनन्द मानते हैं) या आनन्द पूर्वक घूमते हैं। और जिस अज्ञान शरीराभिमानादि रङ्गवाला पुरुष व्याहने आता है उसी रङ्गवाली दुलहिनको भी वे कहरा लोग राचते (संवारते) हैं, और उनके परस्पर व्याह करते कराते हैं, जिससे शरीर के अभिमानादिसे मोहात्मक जालकी वृद्धि और मजबूती होती है, जिससे संसारसे पार जाना असम्भव हो जाता है। अथवा हे मनुष्यो! ज्ञान निष्ठा आदि बिना तेरे साथ तालादि बाजते हैं, और कहरा होकर सब कोई नाचते हैं यानी अज्ञानी गुरुवा आदि उत्साह उत्सव बढ़ाते मनाते हुये आते हैं, और जिस विषयी कल्पित राजसादि रङ्गवाले देवता आदि दुलहा बनकर तुमसे व्याहने आतेहैं, तथा कहरा गुरुवा लोगोंने तुझे पुरुषरूपको भी उसी विषयी कल्पित राजसादि रङ्गवाली दुलहिनरूप रच देते हैं यानी तुमसे भिन्न दूसरा पति सिद्ध करके तुममें स्त्री रूपताका आरोप कर देते हैं। अथवा जिस जीव रङ्गवाला शरीराभिमानी पुरुष व्याहने आता है उसी रङ्गवाले पुरुषको ही गुरुवा लोग दुलहिन रचे हैं। अथवा गुरुवा लोग जिस रङ्गवाला होकर तुझसे व्याह करने आते हैं तुम भी दुलहिन शिष्यादि बनकर उसी रङ्गमें राचते हो (प्रेम करते हो)। और ताजी तुरुकी को नहीं साधने हो, इसीसे मानव शरीररूप नौकाके अछत (रहते) भी खेवना नहीं जानते हो, तो संसारात्मक समुद्रके तीरपर तुम कैसे लग सकते हो? यानी कैसे पहुंच सकते हो? अर्थात् नहीं पहुंच सकते हो। जिज्ञासा हुई कि मनुष्य उक्त नौकाको क्यों नहीं खेवना जानते हैं? तब साहेब कहते हैं कि जोलहा (मानव शरीर) को लाभ किये हुये और शरीरमें आसक्त होकर शरीररूप वस्त्रको ही बिननेवाले जो 'दासकबीरा हैं' यानी असत पति गुरुवा विषयादिके जो दास हैं, वे असत रामके रसमें माते रहते हैं यानी असत पति असत विषयादिके ही आनन्दमें मग्न रहते हैं, इससे उक्त नौकाका खेवना न जानते हैं न संसारसे पार ही होते हैं। इसलिये हे मनुष्यो! अभी भी असत रामरसको त्यागकर ज्ञान निष्ठा योग बिचारादिकी प्राप्ति करो जिससे तुम्हारा कल्याण हो॥ और प्रसिद्ध अर्थ है कि सत्य रामरससे माता हुआ मैं जोलहा दास कबीर पूर्वोक्त अर्थ कहता हूँ। शिश्न के सृष्टि। कमऊँ के कबहूं। जा मतसे करहु मतवाली के जो यहि भांति करहु मतवलिया। डाँरि के दण्ड। साबट के सावत। एक पै नष्टके एक तो निहुरि। लेन बोलायके लेइ बोलाय। सो निथाह भय डोलैके सो निर्धनिया डोले। अगुअनके, अगमन। धरे लागुके धरन लागु। ऊपरके ग्राम तरेके भूंभुरिके, तरेके धाम ऊपरके भूंभुरी इत्यादि पाठभेद हैं। वहां सृष्टि यानी संसारकी बासना तथा सांसारिक वस्तुओंको मेलकर (त्याग कर) वा संसारमें मिलाकर चित वस्तुमें चरा (प्रवृत्ति) राखो इत्यादि अर्थ हैं, सावत विरोधको वा विरोधीको कहते हैं। योगदर्शनमें लिखा है कि—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः। मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्याऽपुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥ १॥

इत्यादि। श्रुति, गीता, पुराणके वचन हैं कि

यच्छेद्वाङ्मनसिप्राज्ञ स्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि । ज्ञानमात्मानिमहतिनिय-च्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ २ ॥ बुद्ध्याविशुद्ध्या हि युक्तो धृत्त्यात्मानं नियम्य च । शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ३ ॥ विविक्तसेवीलघ्वासी यत्तवाक्कायमानसः । ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ४ ॥ अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् । विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५ ॥ शनैःशनैरुपरमे द्बुद्ध्या धृतिगृहीतया । आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ ६ ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन । न चेमंदेहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ७ ॥ नात्यश्नतस्तुयोगोस्ति नचैकान्तमनश्नतः । नचाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ ८ ॥ युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ ९ ॥ अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजाल-समावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १० ॥ ये नरा ज्ञानशी-लाश्च ते यान्ति परमां गतिम् । पापशीला नरा यान्ति दुःखेन यमयातनाम् ॥११॥ शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः। वाच्यमानोपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥ १२॥ क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तबालुके। कृच्छ्रेण पृष्ठे कषया च ताडित श्चलत्यशक्तोऽपिनिराश्रमोदके ॥ १३ ॥ जानामि संबल-बलं बलमध्वगानां नो संबलाय यतसे परलोकपान्थ । गन्तव्यमास्ति नव निश्चित-मेव तेन मार्गेण यत्र भवति क्रयविक्रयोहि ॥ १४ ॥

तत् यानी उस व्याधि अकर्मण्यता संशय प्रमादादिकी निवृत्तिके लिये एक ब्रह्मात्मस्वरूप तत्वके चिन्तनका अभ्यास करना चाहिये । और सुखीमें मैत्रीकी दुःखीमें करुणाकी पुण्यात्मामें मुदिताकी पापात्मामें उपेक्षाकी भावना करनी चाहिये, जिससे ईर्ष्या परअपकार असूया क्रोधके अभाव होनेसे चित्तको प्रसादन (प्रसन्नता) होती है ॥१॥ वागादि इन्द्रियोंको मनमें मनको व्यष्टि बुद्धिमें उसे समष्टि बुद्धिमें उसे शान्तस्वरूप साक्षीमें योगी पुरुष लीन करे ॥ २ ॥ छलादि रहित शुद्ध बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे कार्य करणके संघातरूप आत्माका नियमन करके शब्दादिरूप विषयोंको त्याग करके रागद्वेषको हृदयसे हटा करके ॥ ३ ॥ तथा एकान्तसेवी मिताहारी वाक् शरीर मनको वशमें रखनेवाला और ध्यान तथा योगमें सदा तत्पर वैराग्य युक्त होकर ॥ ४ ॥ कुलादिके अभिमानरूप अहंकार, मिथ्या आग्रहरूप बल, हर्ष जन्य मदरूप दर्प, काम, क्रोध, परिग्रह इन सबोंको त्याग करके ममता रहित शान्त स्वरूप होकर पुरुष ब्रह्म रूप नित्य मुक्त होनेके लिये समर्थ होता है ॥ ५ ॥ सात्त्विक धैर्यसे निगृहीत बुद्धिसे धीरे २ शान्त संसारसे उपराम होवे फिर ब्रह्मात्मामें मनको स्थिर करके किसी

अनात्म पदार्थ की चिन्ता नहीं करे ॥६॥ अनादरादि युक्त अतिवादको सहना चाहिये। और स्वयं किसीके अनादरादि योगीको नहीं करना चाहिये। और इस अस्थिर मानव शरीरको प्राप्त करके किसीके साथ बैर नहीं करना चाहिये ॥७॥ हेअर्जुन! अति भोजन करनेवाला वा अति उपवास करने वाला तथा अति सोने वा जागने वालाको योग सिद्ध नहीं होताहै॥८॥ किन्तु परिमित आहार विहार कर्मके आचरण करनेवालोंको तथा परिमित सोने जागने वालोंको योग दुःखको नष्ट करनेवाला होता है ॥६॥ और अनेक वस्तुओं में चित्तके लगनेसे विक्षिप्त चित्तवाले मोहरूप जालसे आच्छादित कामभोगमें आसक्त पुरुष अशुचि नरकमें गिरते हैं ॥१०॥ क्योंकि जो मनुष्य ज्ञानशील होतेहैं वेही मुक्तहोते हैं ॥११॥ और पापशील मनुष्य अवश्य दुःखसे यमयातनाको प्राप्त होतेहैं। कालात्मक पाश के वशमें प्राप्त मनुष्य सोया हुआ और बन्धुओं से घिरा हुआ रहता है परन्तु दुःखके मारे पूछने पर भी कुछ नहीं बोलताहै ॥१२॥ मरने पर आतिवाहिक शरीरवाला वह पुरुष क्षुधातृषासे व्याप्त होकर तथा सूर्य दवानल गर्म वायुसे ताप युक्त होकर चलनेमें असमर्थ होते भी कशासे पीठपर पीटनेसे विश्राम स्थान जल रहित तप्तबालू युक्त मार्गमें कठिन दुःखसे चलता है॥१३॥ हे परलोकके पथिक! यह जानते हो कि पथिकको सम्बल वाट खर्चका ही बल होता है तौभी धर्मादि रूप सम्बलके लिये यत्न नहीं करते हो, वह अनुचित करते हो, क्योंकि तुझे उस मार्गसे अवश्य ही जाना है कि जिस मार्गमें क्रयविक्रय भी नहीं होता है इत्यादि ॥१४॥

७ सप्तम कहरा।

ओढ़न मेरो राम नाम मैं, रामहिं के बनिजारा हो ॥
रामनाम के करौं बनिजिया, हरि मेरे हटवाई हो।
सहस नाम का करौं पसारा, दिन दिन होत सवाई हो ॥
जाको देव 'मैं'नव पंच सेरवा, ताको होत अढ़ाई हो।
कानतराजु सेर तिन पौवा, डहकिन ढोल बजाई हो ॥
सेर पसेरी पूरा करिलेहु, पासंग कतहुं न जाई हो।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, जोर चले जहड़ाई हो ॥

टीका—पूर्व कहरामें साहेबने योगका उपदेश दिये हैं, और उसके बिना लोक शास्त्रमें प्रसिद्ध दुर्गतिका वर्णन किया है, परन्तु यह योग सद्गुरुसे उपदेश प्राप्त करके सोपाधिक वा निरुपाधिक आत्मावस्तु विषयक करना चाहिये वही कल्याणका हेतु है, यह बात भी साहेबने बता दिये हैं, तथा हठ वा पातञ्जलकी युक्तिसे केवल मनके निरोधमें वा सिद्धियोंके ही निमित्तमात्र रूप योगमें साहेब

का तात्पर्य नहीं है। और कहराके अन्तमें साहेब कहे हैं कि असत रामरसमें माते हुये पुरुष संसार-सागरसे पार जानेकी युक्ति नहीं जानते हैं। फिर इस कहरामें उक्त असत राम विशेषके रसमें माते हुये मनुष्योंके कथन और समझका वर्णन करके उनके कल्याणके लिये उपदेश दिये हैं कि रामरसमें माते हुये दास कबीर कहते हैं कि योग ज्ञानादिकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दशरथापत्यादि रूप रामके नाम ही मेरा ओढ़ना है यानी शीत, बाना, तापादि जन्य दु खोंकी निवृत्तिके हेतु वस्त्रके सदृश सब दुःख पापोंकी निवृत्ति का हेतु रामका नाम ही है। रामनाम उपलक्षण है। भाव यह है कि मत भेदसे राम, कृष्ण, गणेश, महेशादि, नाम ही सबके ओढ़न है और कहते हैं कि मैं 'राम के' अर्थात् रामादि नामों ही का बनिजारा व्यापारी हूं, अर्थात् रामादि नामों द्वारा रामादिको प्राप्त करनेवाला हूं, और अन्य मनुष्योंको प्राप्त करानेवाला हूँ और मैं राम नाम की बनिजिया करता व्यापारी हूं, उससे मेरे रामनाम की बानिज्य व्यापारमें हरि ही हटवाई (हटवा) के काम करनेवाले हैं, अर्थात् दशरथापत्यादि रूप हरि ही कर्मफलको कर्मानुसार देनेवाले हैं, और उस हरि आदिके जो विष्णु सहस्र नामादि हैं उनके मैं पसारा (व्यवहार, पाठ, जपादि) करता हूं, जिससे दिन २[प्रतिदिन] दानादि कर्मके फलभी सवाई होते हैं। अथवा जिस सहस्र नामका मैं व्यापार करता हूं उस व्यापार में ही दिन २ सवाई उन्नति होतीहै और सवाई लाभ होता है, कभी घटी नहीं लगतीहै। और जिसको मैं नवपंच सेरवा देव [देता] हूँ, अर्थात् नवधा भक्ति, और रामायनमः कृष्णायनम, शिवायनमः, इत्यादि पञ्चाक्षर मन्त्रका उपदेश मैं जिसको देता हूँ, उसको कर्मादिके फलादि दिन २ ढ़ाई गुणा होते जाते हैं, अर्थात् केवल सहस्र नामके पाठादिसे दिन २ सवाई ही पुण्यादि की वृद्धि होती है, परन्तु नवधा भक्ति सहित पञ्चाक्षर मन्त्रका गुरुसे उपदेश लेनेसे ढ़ाई गुणा बृद्धि होती है। अथवा ढ़ाई मात्रारूप ओंकारके वाच्य अर्थ ईश्वरकी प्राप्ति उस पुरुषको होतीहै। अथवा जाको (जिसपुरुषको) चतुष्टय अन्तःकरण पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय रूप नव सेरवा और पाञ्च कर्मेन्द्रियरूप पंच सेरवा देव मैं नाम विष्णु आदि देवमय उनसे व्याप्त दिखते हैं उस पुरुषको पूर्वोक्त अढ़ाई प्राप्त होते हैं इत्यादि। वहां साहेब कहते हैं कि जैसे पासंग युक्त कानतराजूसे और तीन पावके सेरसे तौलकर जो कुछ लिया दिया जाता है, वह फिर ठीकसेर तराजूसे तौलने पर पूर्ण नहीं होता है। अर्थात् जिस तराजूकी दण्डीके ठीक बीचमें छीद्र नहीं होनेसे वह कान होवे (एकतरफ अधिक और एकतरफ कम होवे) तथा एक पल्ला भारी होवे और एक हलका होवे जिससे तुल्य ओजनवाला बस्तुको धरनेपर एक नीचे और एक ऊपर हो जावे, तो उससे तौलना ठीक नहीं होता है, वैसेही मायिक दुःखद होते भी स्वर्ग मर्त्यादि लोक ऊपर नीचे माने गये कान तराजू रूप हैं. और त्रिगुणमय पदार्थ तीन पावके सेररूप हैं। इनसे मनुष्य कभी पूर्णपद नहीं पासकता है तथापि गुरुवारूप तुरुकिनोंने इस काने तराजू और तिनपौवा सेरसे जिज्ञासु आदिको भी ढोल बजाकर प्रगट ही डहकिन है (डहकाये हैं) अर्थात् त्रिविध तापसे तपाये हैं। या जहड़ाये हैं वा निराश किये हैं इसलिये हे मनुष्यो! सहज ध्यान रहु इत्यादि। और पूर्वकही रीतिसे योगज्ञानादि रूप सेर पसेरी आदि पूराकरलो जिससे पूर्णपद की प्राप्ति हो। और हे मनुष्यो! भक्ति आदि करने पर भी कामना बासनारूप पासङ्ग, पूर्वोक्त योगज्ञान बिना कहीं नहीं

जाता है यानी नष्ट नहीं होता है, इसलिये ज्ञान योगादिसे उक्त पासङ्गको नष्ट करो यानी पापरूप सङ्ग वासना आसक्तिका निवारण करो। साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! मनुष्यो! सुनो जो गुरुवा के शिष्य लोग सेर पसेरी को पूरा नहीं किये तथा पासङ्गको भी नष्ट नहीं किये हैं किन्तु नामादिका ही ज़ोर किये, वे ज़ोर करनेवाले लोग आप जहँडे और अन्यको भी जहँडाकर चले गये और चले जाते हैं। इसलिये हे मनुष्यो! ज़ोर नाम जबरदस्ती करना छोड़ो और युक्ति अनुभवादि युक्त सतपन्थका आश्रयण करो जिससे संसारात्मक जङ्गलसे पार पहुंच कर दुःखसागरसे पार होजावोगे इत्यादि॥अथवा साहेब कहतेहैं कि दास कबीरा तो असत रामरसमें वा रामके मायिक रस विषयादि सम्बन्धी आनन्दमें माते हैं, परन्तु मेरे तो रामनाम अर्थात् सर्वात्मस्वरूप रामही ओढ़ना है मेरे शरीरके बाहर भीतर सर्वत्र वह रामही है और उसी रामका मैं व्यापारी हूँ उसी रामके उपदेशादि रूप बनिजी मैं करता हूँ, और उस उपदेशरूप हटवापनकी हटवाई (मजुरी) भी मुझे हरि ही [उक्त राम ही] प्राप्त होते हैं। और सहस नाम अर्थात् जिसके अनन्तों कल्पित नाम हैं उसीका मैं उपदेशसे पसारा करता हूँ तथा ज्ञानी लोग उसीके उपदेशका प्रचार करते हैं। जिस प्रचारसे मनुष्योंको दिन २ सवाई फल मिलताहै तथा धीरे २ अनुभवसे मुक्ति की प्राप्ति होतीहै। और जिस पुरुषके अन्तःकरणादि रूप नव पंच सेरवा सर्वात्मस्वरूप देवमय हो जाते हैं, उसको ढ़ाई मात्राके लक्ष्यस्वरूपकी प्राप्ति होती है, परन्तु स्वर्गादिरूप वा कामकर्मादिरूप कानतराजू और त्रिगुण पदार्थरूप तिनपौवा सेर ढोल बजाकर मनुष्योंको डहँकाते हैं इससे सबकी मुक्ति नही होती है। साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! ज्ञान योगादिरूप सेर पसेरी पूरा करलो और किसीका सङ्ग पाकर भी उस रामसे अन्यत्र कहीं नहीं जावो। और हे मनुष्यो! जोर नाम आत्मभिन्न वस्तुके साथ जोड़ मेल सङ्गमें जो चले सो पुरुष जहँड गये, इसलिये उससे वँचो जिससे तेरा कल्याण हो॥ जाको देव मैं इत्यादिके जाको देव वेद पछराखा, ताको होत हटवाई हो, डहकिन के तुर्किन, पाठ भेद हैं॥ उसका अर्थ है कि जिस रामका देवता और वेद पक्ष राखाहै, उसका तो पूर्ण हटवाई होती है, और तुर्किन (तुर्कोंकी बाणी) कानतराजू और तीनपौवा सेररूप त्रिगुणकी ही ढोल बजाई है, इत्यादि॥ भागवतादिमें लिखा है कि—

एतावताऽलमघनिर्हरणायपुंसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्। विक्रुश्यपुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि नारायणेतिम्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥१॥ पतितः स्खलितोभग्नः संदष्टस्तप्त आहतः। हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हतियातनाम्॥ २॥ अज्ञानादथवाज्ञाना दुत्तमश्लोकनाम यत्। संकीर्तितमघंपुंसो दहेदेधोयथाऽनलः॥३॥ नाम्नांसहस्रं दिव्यानां स्मरणे यत् फलंभवेत्। तत्फलं लभते नूनं रामोच्चारणमात्रतः॥ ४॥ इत्यादि।

भगवान् कृष्ण रामादिके गुणकर्म नामका संकीर्तन (कथन रूप] जो व्यापार है पतनाही पुरुषोंके पापकी निवृत्ति के लिये पूर्ण साधन है अन्य साधनका कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि अत्यन्त पापी अजामिल भी अपने पुत्रका नारायण इस प्रकार पुकारके मुक्ति पाया ॥ १ ॥ वृक्षादि परसे गिरा हुआ पिच्छिलादिमें ढमनाया हुआ, तरवारादिसे कटा हुआ, सर्पादिसे दंशा हुआ ज्वरादि से तपा हुआ लाठी आदिसे पिट गया हुआ भी परवशसे जो पुरुष हरि राम, कृष्णादि दो अक्षर कहता है वह फिर यमयातनाके योग्य नहीं रहता है ॥ २ ॥ क्योंकि अज्ञानसे वा ज्ञानसे उत्तमश्लोक हरिके नाम कहा हुआ पापको दग्ध करता है, जैसे अग्नि काष्ठको दग्ध करती है ॥ ३ ॥ परन्तु दिव्य सहस्र नामका स्मरणसे जो फल होता है वह फल राम नामका उच्चारण मात्रसे अवश्य ही होता है इत्यादि ॥ ४ ॥

८ अष्टमकहरा ।

रहहु सँभारे राम बिचारे, कहता हौं पुकारे हो ॥
मुड़मुड़ाय फूलि क्या बैठे, मुद्रापहिरि मँजूषा हो ।
ताऊपर कछु छार लपेटे, भितर भितर घर मूसा हो ॥
गामबसतुहैं गर्वभारती, काम क्रोध हंकारी हो ।
मोहन जहाँतहाँ लैजैहैं, नहिं पतिरही तुम्हारी हो ।
मांझ मझरिया बसै जो जानै, जन ह्वैहैं सो थीरा हो ।
निर्भय भय तहँ गुरुकी नगरिया, (सुख) सोवैं दास कबीरा हो ॥

टीका—योगका उपदेश करके साहेबने कहाहै कि जोर करनेवाले तथा असत रामरसमें माते हुए मनुष्य संसारात्मक सागरसे पार नहीं होतेहैं, तथा जहँड़कर जहँड़ाकर चलतेहैं । और कितने लोग बेषविशेषसे ही सिद्धि और महत्त्व मानते हैं वह प्रसिद्ध ही है । इससे इन हठ अज्ञान विपरीत ज्ञानादिकोंकी निवृत्तिके लिये साहेब फिर भी उपदेश करते हैं कि हे असत रामरसमें माते हुये जोर आदि करनेवाले मनुष्यो ! सँभारकर रहो, नाम मन तथा इन्द्रियोंको असत दुष्ट विषयादिसे सावधानता पूर्वक निरोध किये रहो । और रामको बिचारते रहो यानी सत्य सर्वात्मस्वरूप रामको जाननेके लिये सदा बिचारमें तत्पर रहो, नामोच्चारणादि मात्रसे अपनेको कृतकृत्य नहीं समझो, और हठादिको त्याग दो । अथवा रामके बिचारमें सावधानासे प्रवृत्त रहो या बिचार-सिद्ध राममें सम्हार कर स्थिर रहो, और मतवालापन मिथ्या आग्रहादिको छोड़ दो, जिससे तेरा कल्याण होवे, यह मैं पुकारकर कहता हूं । और बिचारादि बिना केवल, मूड़ मुड़ायकर क्या फूल

कर बैठे हो यानो क्या अभिमान दम्भसे युक्त होकर बैठे हो कि मैं माथ मुड़ानेसे तथा रामादि मन्त्रोंका सुनने तथा उच्चारण करनेसे मुक्त होगया हूँ इत्यादि, यह अभिमान निष्फल तथा तुच्छहै इसे त्यागो, और पूर्वोक्त विचार करो। और हेमनुष्यो! तुम नाथ बनकर कानोंमें मुद्रा पहिरकर 'मजूषा' क्या करते हो. यानी पञ्च मकारका सेवन क्यों करते हो ? इससे तेरी दुर्गति होगी। अथवा मुद्रारूप मजूषा मंजूषा) पहिर कर तथा माथ मूड़ाके फूल कर क्या बैठे हो? अर्थात् जैसे मञ्जूषा नाम पेटारी वस्तुकी रक्षा धारणके हेतु होती है, वैसे तुम मुद्राको मोक्षके हेतु संरक्षकादि मानकर धारण करते हो, और उसके गर्वसे फूलते हो यह तेरा फुलना मिथ्या है। अथवा शरीररूप मञ्जूषामें, महामुद्रा खेचरी मुद्रादि रूप मुद्राओंको पहिरकर यानी इनका सम्पादन तथा धारण करके भी क्या फूलते हो ? रामको विचारे बिना वे मुद्रायें भी कल्याण कारक नहीं होसकती हैं। और हेमनुष्यो! शरीरको मुण्डित जटिलादि बनाकर उस शरीरके ऊपर कुछ छार लपेटते हो, वह भी क्या करते हो? और उससे क्या होसकता है, क्योंकि काम क्रोध लोभ मोह हठ गर्वादि शरीरके भीतर रहनेवाले चोररूप मल हैं, उनका नाश सँभार रामके विचारादिसे होसकता है और छार लपेटनेसे नहीं होसकता। और वे कामदि भीतरे भीतर शरीर रूप घरको मूसते हैं, यानी शरीरके अन्दर रहकर विवेक बिचार सुख कल्याणको नष्ट करते हैं, इसलिये सावधानता पूर्वक आत्मविचारादिसे उन चोरोंको नष्ट करो यानी शरीरसे उन्हें दूर करो। भाव यहहै कि मुद्रा मञ्जूषाको पहिरकर तथा मूड़ मुड़ाकर फूलकर बैठते हो, और उसके ऊपरसे उसके बाद भी कुछ छार लपेटकर बैठते हो, और भीतर २ कामादि घर मूसे जाते हैं उसका तुझे कुछ खबर नहीं है, इसलिये सावधानता पूर्वक विचारसे तुम चेत करो। औरभी साहेब कहते हैं कि 'गाम' यानी ग्रामके ग्राम भारती आदि उपाधिके गर्ववाले संन्यासी बसते हैं, जो काम क्रोध अहंकारसे युक्त प्रायः दीखते हैं। अथवा कामी क्रोधी अहंकारी गर्वी भारती आदि नामधारी ग्राममें बसते हैं। अथवा जिनके लिये जङ्गल एकान्त विहित है, वे लोगे ग्राममें बसते हैं वा ग्राम्य धर्म स्त्री सम्बन्धी रतिमें आसक्त होकर वे कामी आदि बसते हैं। अथवा भारती यानी सरस्वती विद्याके गर्व करनेवाले भी कामी आदि ग्राम्य धर्म युक्त होकर बसते हैं, परन्तु हे मोहन! [मोह शील मनुष्यो!] वे कामादि तुझे जहां तहां लेजावेंगे, यानी नीचयोनि कष्टदशामें प्राप्त करावेंगे, तब तुम्हारी पति [पत, इज्जत, बड़ाई] वा पतिपन [विषयादि के स्वामीपन] नहीं रहेगी, इसलिये प्रथमसेही होस करो। अथवा मोहन यानी मोहित करनेवाले विषय मनमाया वा कामादि तुझे जहां तहां लेजावेंगे। या अज्ञानियोंको मायाशक्तिसे मोहित करनेवाला देव तुझे जहां तहां लेजावेगा तब तेरा कोई रक्षक पति नहीं रहेगा, इसलिये सम्हारकर रामको विचारते रहो। जिज्ञासा हुई कि मोहयुक्त कामी आदि पुरुष जहाँ तहाँ जाता है तो स्थिर कौन होता है ? तब साहते हैं कि जो पुरुष विवेकसे जागता हुआ और इस संसारके मांझ मझरिया [इसके बीच] में अनासक्त होकर बसने जानता है, वह जन थिर होता है और जहाँ तहाँ नहीं जाता है, न उसको कोई जहाँ तहाँ लेही जा सकता है। अर्थात् जो पुरुष—

काजर की है कोठरी। काजर ही का कोट॥
तोंदी कारी नहीं हुआ। रहा सु ओटहिं ओट॥

इस साखीमें कही रीतिसे शरीरको काजरकी (मलीन काली वस्तु की) कोठरी रूप जानता है, और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको काजरका कोट समझता है, और ऐसा जानकर इसमें रहते हुये भी माँझ२ में रहता है और भी ओटही ओट रहना है अर्थात् इनसे छिपे हुये की नाईं वा अनासक्त होनेसे इनसे भिन्नकी नाईं रहता है, वह जन जन्म मरण दुःख पापादिसे रहित स्थिर होजाता है। और जहाँ यानी जिस माँझ मंझरियामें अर्थात् जिस असङ्ग दशामें गुरुकी नगरिया है [गुरु की संगति है] वहाँ पर जो पुरुष गये यानी जो पुरुष असङ्ग स्थितिको प्राप्त किये वा करते हैं वे पुरुष निर्भय भै (भय रहित होगये) और होजाते हैं। अथवा जो पुरुष विचार सत्सङ्गादिसे जहां (जिस देश कालादिमें) निर्भय हुये उन पुरुषोंके लिये वहाँ ही गुरुकी नगरी सुखधाम है, और वे गुरुके दासरूप कबीरा (जीव) वहाँ सोते हैं (स्थिर होते हैं)। अथवा विचारादि करनेवाले तो मोहात्मक नींदसे रहित होकर निर्भय होते हैं और हुये, परन्तु विषय देवादिके दासरूप जीव इस संसारमें ही मोहात्मक नींद युक्त होकर सोते हैं, इससे स्थिर भी नहीं होते हैं। काम क्रोध हङ्कार के बाम काम हङ्कारा। नहीं पति रही तुम्हारी के नहीं पत रहा तुम्हारा। सोवैंके सुख सोवै पाठ भेदहैं। वहां बाम नाम स्त्री वा टेढ़े वस्तु आदि की कामना और अहङ्कार करनेवाले वा बाममार्ग कामादि में आसक्त भारती ग्राममें बसते हैं इत्यादि अर्थ है। पत इज्जत लज्जा को कहते हैं। गुरुके दास जीव गुरुकी नगरी में सुख पूर्वक सोता है इत्यादि। लिखा है कि—

वेदाभ्यासस्तपोज्ञान मिन्द्रियाणां च संयमः। अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयस्करं परमम्॥१॥ मनसश्चाऽजयाल्लोभा द्दम्भात्पाषण्डसंश्रयात्। शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम्॥ २॥ दस्यून् पुराषण् न विजित्य लुम्पतो मन्यन्त एकेस्वजिता दिशो दश। जितात्मनोज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे॥ ३॥ भयंत्वेकान्ततोऽविद्या कार्यमाहुर्विपश्चितः। यतो विज्ञाततत्त्वानां भीतिर्नास्ति कुतश्चन॥ ४॥

वेदका अभ्यास तप ज्ञान इन्द्रियोंका निरोध अहिंसा गुरुकी सेवा ये सब परम कल्याण कारक हैं॥ १॥ मनको न जीतना लोभ, दम्भ, पाखण्डका, आश्रयण करना शास्त्रका अभ्यास नहीं करना, इन सबसे ध्यान तथा योगके फल नष्ट हो गये और नष्ट होते हैं। ॥२॥ छेदनादि करने वाले इन्द्रिय रूप छः चोरोंको जीते बिना कोई अविवेकी राजा आदि समझते हैं कि हमने तो दशों दिशा में जय प्राप्त कर लिया है परन्तु जिस साधु पुरुषके चित्त बश

में होगया है उस सब प्राणीके लिये तुल्य स्वरूपवाला ज्ञानी पुरुषके तो कोई शत्रु ही कैसे होसकते हैं यानी उस महात्माके कोई शत्रु नहीं रह जाते हैं कि जिन्हें जीतना पड़े ॥३॥ विद्वान् लोग केवल अविद्याके कार्यरूप भयको कहते हैं जिससे तत्त्वज्ञानियोंको किसीसे भी भय नहीं होता है ॥४॥

९—नवम कहरा।

राम नाम का सेवा बीरा, दूरि नाहिं दुरि आशा हो।
आन देव का सेवहु बौरे, ई सब झूठी आशा हो॥
उपरक केश कहां भौ ऊजर, भीतर अजहूं कारो हो।
तनके बृद्ध कहां भौ बौरे, भीतर अजहूं बारो हो॥
मुख के दांत कहां गौ बौरे, भीतर दांत लोहे के हो।
फिरि फिरि चना विषय के चबै हौ, काम क्रोध मद लोभक हो॥
तनकी सकल संज्ञा घटि गयउ, मनहिं दिलाशा दूनी हो।
कहहिं कबिर एक राम भजे बिन, सकल सयानप ऊनी हो॥

टीका—पूर्व कहरामें कहेहैं कि विषय देवादिके दासरूप जीव संसारमें ही मोहात्मक नींदसे युक्त होकर सोते हैं उसीका स्पष्टवर्णन करते हैं कि हेबीरा! [सामर्थ्य युक्त जीवो!] तुम सब राम नामको का [क्या] सेते हो? अर्थात् बिचारादि बिना राम नाम क्या रटते हो? यदि ज्ञान बिचारादि बिना दूर व्यवहित साकेत बैकुण्ठ भावी विषयादि की आशा तेरी दूर नहीं हुई न होती है तो राम नाम की सेवासे क्या हुआ। और हे बौरे मनुष्यो! दूर देश विषयादिकी आशासे रामसे आनदेव [अन्यदेव] को भी क्या सेतेहो? क्योंकि ईसब [आनदेव दूर देश विषयादि की सब आशा] झूठी है, यानी सत्य सुखादि की प्राप्तिका हेतुरूप नहीं है। और हे मनुष्यो! जबतक आनदेव दूर देश लोक विषयादि की आशा निवृत्त नहीं हुई है, तबतक यदि ऊपरके केश उजले होगये तो उन्हें उजले होनेसे 'कहां भौ' यानी क्या हुआ उससे तेरे कल्याण वा तुझमें श्रेष्ठपन नहीं होसकतेहैं, क्योंकि आशारूप दोषको अन्दरमें रहनेसे तुम्हारे भीतरमें अजहूँ यानी वृद्धावस्था तक कारो [कालापन ही] है। और हे मनुष्यो! शरीरके बृद्ध होनेसे क्या हुआ? आशा रहनेसे तेरे भीतरमें अबही बारो यानी युवाही-पन है और हे बौरे! यदि मुखके दांत टूटके चले गये तो कहां गौ? [क्यागये] क्योंकि कालारूप वाला युवास्वरूप वाला तुम्हारे मनमें लोहेके दांत सदृश आशारूप दांत तुम्हारे शरीरके भीतर विद्यमान हैं। और उस आशाके रहनेसे ही 'काम क्रोध मद लोभक' यानी कामी क्रोधी गर्वी लोभी होकर फिरि २ [बारबार] उन आशारूप दांतोंसे तुम विषयके चना चबाते हो अर्थात् विषयजन्य सुख दुःख भोगते हो। अथवा फिरि २ (जन्म लेले कर) तथा संसारमें भटक २ कर तुम कामादि के तथा विषयके चना आशारूप दांतसे चबाते हो यानी इनसे जन्य सुख दुःखको आशा होसे भोगते हो,

और फिर भोगोगे। और हेमनुष्यो ! सर्वात्मस्वरूप एक रामके बिचारे तथा जाने बिना तुम्हारे तनकी अन्य सकल संज्ञा घट गई यानी नेत्रादि में जो वस्तुओंको सम्यक् जानने की शक्ति थी सो न्यून होगई, परन्तु मनमें दिलाशा (आशा) दूनी होती जाती है, यानी हृदयरूप दिलवृत्ति मनमें विषयादि की आशा दिन दिन बढ़ती ही जाती है। इसलिये साहेब कहते हैं कि सर्वात्मस्वरूप एक (अद्वितीय) रामके भजे बिना यानी उस रामके बिचार ध्यान समाधि ज्ञान बिना मनुष्योंके सकल सयानप [चतुराई ज्ञान भजन सेवा आदि] ऊनी ही हैं यानी न्यून हीन तुच्छ ही हैं, इसलिये सम्हार कर रामका बिचार करो जिससे पूर्णपदकी प्राप्ति मुक्ति होवे ॥ का सेवा केका सेवहु, के सेवा की सेवा। उपर के केश कहां भौ ऊजर के उपरक उजर कहां भौवीरं? । भीतर अजहूं बारो हो के मनुवा अजहूँ बारो हो। एक राम भजे बिन के सुनहु हो सन्तो ! इत्यादि पाठ भेद हैं ॥ वहां रामनामको सेवहु का अर्थ है कि हे वीरा ! नाम हे भाइयो ! 'राम नाम को' अर्थात् सर्वात्मस्वरूप रामको योग की रीतिसे सेवो जो राम वस्तुतः दूर नहीं है, किन्तु तेरी आशा ही दूर की है या विषयों की आशासेही वह राम दूर सदृश है। के सेवा पाठ का अर्थ है कि राम नाम की सेवा 'के' नाम कौन करते हैं ? जे 'वीरा' नाम इन्द्रियोंको जीतनेमें बीर होते हैं, और उनके लिये राम दूर भी नहीं हैं, किन्तु आशासे राम दूर हैं॥ 'कि सेवा' का अर्थ है कि सत्य राम की सेवाही संसारात्मक दुःखको नष्ट करनेके लिये बीरा (समर्थ) है जो राम दूर नहीं है, किन्तु अन्य वस्तु दूर हैं जिनकी आशा मनुष्य करते हैं। इससे हे वीरे ! मनुष्यो ! समीपमें प्राप्त सत्यरामकी सेवाको त्यागकर अन्य देवोंको क्या सेते होई सब (ये देवसब) झूठे हैं। और इनकी आशा झूठी है इत्यादि लिखा कि—

नतद्दूरं न निकटे नोर्ध्वे नाधो न ते न मे। न पूर्वं नाद्य न प्रात र्न सन्नासन्नमध्यगम् ॥ १ ॥ वैराग्याभ्यासवशत स्तथा तत्त्वाववोधनात्। संसारस्तीर्यते तेन तेष्वेवाभ्यासमाहर ॥ २॥ तेनाधीतंश्रुतंतेन तेन सर्वं मनुष्ठितम्। येनाशां पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥ ३ ॥ न तेन स्थविरो भवति येनास्य पलितंशिरः। वालेऽपियः प्रजानाति तं देवाः स्थविरंविदुः

वह ब्रह्म दूर वा निकटमें नहीं है, न तेरा है न मेरा है न ऊपर है न नीचे है न पूर्वकाल का न वर्तमान कालका वा प्रातः कालका उसमें सम्बन्ध है न सत् है न असत् न उभय रूप है किन्तु सब का आत्मा है ॥ १ ॥ वैराग्य अभ्यास तत्वज्ञानसे संसार तरा जाता है, इसलिये उन साधनोंके अभ्यासकी प्राप्ति करो ॥ २ जिस पुरुषने आशाको त्याग कर निराश पदका अवलम्बन किया उसने ही अध्ययन तथा श्रवण किया और उसने सब कुछ कर लिया ॥ ३ ॥ शिरके बालोंको पक जानेसे पुरुष स्थविर (बूढ़ा) नहीं होता है किन्तु जो बालक होते भी ज्ञानी होता है देवता लोग उसी को बूढा कहते है ॥ ४ ॥

१० दशमकहरा ।

हौं सबन में हौं ना हौं मोहि, बिलग बिलग बिलगाई हो ।
ओढ़न मोरा एक पिछौरा, लोग बोलु एकताई हो ॥
एक निरन्तर अन्तर नाहीं, ज्यों घट जल शशि झांई हो ।
एक समाना समुझत नाहीं, जरा मरन भ्रम जाई हो ॥
रैनि दिवस मैं तहवां नाहीं, नारि पुरुष समताई हो ।
नहिं मैं बालक बूढ़ो नाहीं, नहिं मेरे चिलकाई हो ॥
त्रिविधि रहौं सबहीं महँ बरतों, नाम मोर रमुराई हो ।
पठय न जाउं बोलय नहिं आऊं, सहज रहौं दुनियाई हो ॥
जोलहा तान बान नहिं जानै, फाट बिनै दशठांई हो ।
गुरुप्रसाद जिन्हें जस भाख्यो, जन बिरले सिधि पाई हो ॥
अनन्त कोटि मणि हीरा बेध्यो, फिटिक मोल नहिं पाई हो ।
सुरनर मुनि जा खोज परे हैं, कछु कछु कबिरन पाई हो ॥

टीका—पूर्व कहरामें कहा गया है कि सर्वात्मस्वरूप सब भेदसे रहित एक रामके भजे बिना सभी चतुराई ऊनी है। वहां जिज्ञासा हुई कि सर्वात्मस्वरूप एक राम कौन है ? वा उसे कैसे जानना चाहिये ? और यदि राम एक है तो अनेक क्यों भासता है ? और उस रामके जानने तथा भजनेसे कौन फल मिलता है ? और नहीं जानने आदिसे हानि क्या होती है ? तब साहेब कहते हैं कि जिस रामके भजे बिना सब चतुराई ऊनी है वह राम है यानी मैं ही हूँ अर्थात् वह राम मेरा ही स्वरूप है। और रामस्वरूप भी मैं सबनमें 'हौं' अर्थात् चराचरमें मैं ही हूं। और सबमें रहनेपर भी असङ्ग होनेसे 'ना हौं' अर्थात् किसीसे सङ्गवाला वा किसीके आश्रित मैं नहीं हूँ, या 'नाहौं' यानी असङ्ग पुरुष हौं। और मुमुक्षु जिज्ञासुको जानना चाहिये कि हौं (मैं) सबनमें और स्वतन्त्र पुरुष रामस्वरूप हौं । और मुझे एक रामस्वरूप होते भी अज्ञानी जीवोंने तथा माया अविद्या आदिरूप उपाधियोंने अज्ञान आवरण विक्षेपशक्तिसे मोहि (मुझे) बिलग २ (भिन्न २) बिलगाये हैं, यानी भेद युक्त पृथक् २ कर दिये हैं। और इस बिलगानेमें हेतुरूप भी माया वा अविद्या 'मोरा एक पिछौरारूप ओढ़न है' यानी सब उपाधि एक गमछा वा चादररूप ही है। और मेरे स्वरूपमें इनका वस्तुतः प्रवेश नहीं है किन्तु पिछौरेके सदृश मेरे एक देशमें हैं। अथवा सब मेरे ओढ़न (आवरण उपाधि एक पिछौरा रूप) हैं, मेरे विषे भेदके जनक वस्तुतः नहीं हैं, तौभी अज्ञानी लोग मुझे अनेकों भेदसे बिलगाते हैं। और जो ज्ञानी लोग हैं वे चराचरमें मेरी एकताई (एकता) ही बोलते हैं। [उपदेश करते हैं] और भी साहेब कहते हैं कि जो मैं सबमें एक हूँ उसे

सजाति आदि रूपसे एक नहीं जानना चाहिये, क्योंकि मैं 'एक हूँ' और 'निरन्तर हूँ' यानी खण्ड छिद्र किसीका व्यवधानसे रहित हूँ, और मुझमें किसी प्रकारका अन्तर [भेद] नहीं है। और ऐसा होनेपर भी जो मेरे चेतन स्वरूपमें भेद प्रतीत होता है, उस भेदको ऐसा जानना चाहिये कि ज्यों [जैसे] अनेकों घटके जलमें शशि [चन्द्रमा] की अनेकों झांई [छाया] प्रतीत होती है, और चन्द्रमा एक ही रहता है। वैसे ही आत्मा एक है उसकी झांई [छाया] प्रतिबिम्ब वा अभास अनेक हैं। उस अनेक मात्रको जाननेसे संसार बना रहता है, और एकमात्रको जाननेसे मुक्ति होता है, परन्तु चराचरमें एक और समान यानी अखण्ड एकरस अपरिणामी अतिशय रहित वस्तुको मनुष्य प्रायः नहीं समझता है, कि जिससे जरामरण भ्रम सब चले जायें। अथवा उस स्वरूपको लोग नहीं जानते हैं कि जिसके जाननेसे जरावस्थामरणादिके भ्रम नष्ट होजाये, या जरामरणादि और इनके हेतु सब भ्रम जिससे नष्ट होवें उसे कोई नहीं जानता है, किन्तु झांई आदिको ही जानताहै, इससे संसारी बना रहता है। इससे सिद्ध हुआ कि मुक्ति ही उक्त रामके ज्ञानका फल है, और अन्य चतुराईके जरामरणादि फल हैं, इसलिये अन्य चतुराई ऊनी हानि कारक हैं। औरभी साहेब कहते हैं कि 'मैं तहवां' यानी मेरे स्वरूपमें रैनि दिवसका भेद नहीं है, किन्तु मेरा स्वरूप सदा एकरस प्रकाशस्वरूप है। और नारी पुरुषमें भी मेरे रूपकी समताई [तुल्यता ही] है। अर्थात् नारी पुरुषमें जो भेद है सो शरीर अदृष्टादिमें है, आत्मामें भेद नहीं है। इसी प्रकार मैं बालक वा बूढ़ा नहीं हूँ, और चिलकाई (अत्यन्त नादान बचापन) भी मुझमें नहीं है, तौभी एकही मैं बालक बूढ़ा चिलका रूपसे 'त्रिविध' नाम तीन प्रकारसे रहता हूँ। अथवा एक अखण्ड होते भी त्रिविध [सत्, चित्, आनन्द] रूपसे, तथा जीव, ईश और ब्रह्मरूपसे, या स्त्री पुरुष नपुंसक रूपसे, या विश्व, तैजस, प्राज्ञ, रूपसे, या विराट, सूत्र, ईश, रूपसे, ब्रह्मा, विष्णु महेश, रूपसे, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, रूपसे, वा देव, मनुष्य, तिर्यक, रूपसे तीन प्रकारके मैं रहता हूँ। और अपना शुद्ध स्वरूपसे वा अन्तर्यामी रूपसे मैं ही सबमें वर्तता हूँ, इसलिये मेरा ही रमुराई नाम है। अर्थात् मैं ही सबमें रमनेवाला रामरूप राजा हूं। और सबमें रमनेवाला विभुराजा होनेहीसे किसीके 'पठावने' यानी कहीं भेजनेसे भी मैं कहीं नहीं जाता हूँ, और स्तुति आदि पूर्वक किसीके बोलानेसे मैं कहींसे आता भी नहीं हूँ, तौभी सहज [स्वाभाविक] सत चिदादिरूपसे दुनियाई [संसारमें] रहता हूँ। अथवा तौभी सहज यानी स्वभाव स्वरूप माया शक्तिसे दुनियाई [संसारी जीव] रूपसे भी रहता हूं। और जो 'जोलहा' अर्थात् दुनियाई रूपताको प्राप्त लाभ किया हुआ जो जीव संसाररूप पटका तान बान नहीं जानता है, यानी माया कृत तानी भरनी रूप स्थूल सूक्ष्म भूतोंको जो नहीं जानताहै, या जो सब तान बानको चेतनात्मरूप ही नहीं जानता है, अर्थात् सबमें आत्मवस्तुकी सत्ताको जो नहीं समझता है, सोई जीव दशठांई [दश स्थान] में फाटा हुआ यानी दश द्वार युक्त शरीररूप पटको विनता है, नाम कर्मादिसे बारम्बार प्राप्त करता है। और साहेब कहते हैं कि जिन जीवोंके स्वरूपको जस भाष्यो [जैसा कहा है] उस रूपकी सिद्धि गुरुके प्रसादसे कोई बिरले जन पाते हैं यानी गुरु प्रसादसे उक्त आत्मवस्तुका ज्ञान किसी विरले मनुष्यको होता है। जिस आत्मवस्तुकी प्राप्तिके आगे अनन्तों करोड़ वेधा हुआ

[पोया हुआ] हीरा और मणि भी फिटकी यानी तुच्छ फिटकिरीके मोल भी नहीं पाते हैं, अर्थात् आत्मवस्तु रूप सम्पत्तिकी अपेक्षा सब सम्पत्तियां तुच्छ हो जाती हैं। और सुर नर मुनि सब जिस आत्माराम संपत्तिके खोजमें पड़े हैं नाम नित्य मुक्त स्वरूप सब होना चाहते हैं, परन्तु कछु २ कबीरन [कोई२ जीव] उसी आत्मारामको पाते हैं वा पाये हैं। अथवा सुर नर मुनि सब उसके खोजमें पड़ेहैं, परन्तु गुरुप्रसादादि बिना इन कबिराओंने उस आत्मवस्तुके कछु२ औपाधिक रूपही को पाये हैं। सब जीवोंने खोजने परभी पूर्णात्माको नहीं पायेहैं, इससे सब मुक्त नहीं हुयेहैं, अतः मुमुक्षुको चाहिये कि पूर्णात्माकी प्राप्ति करके नित्यमुक्त होवें। अथवा हौ[मै] उपाधि युक्त स्वरूपवाला सब शरीरमेंहूँ और मुझे विलग२ विलगा करके मेरा एक ओढ़न पिछौरारूप रामहै यानी सब व्यष्टि उपाधि युक्त रूपवालाको आच्छादन करनेवाला राम है जिस राममें लोग एकनाही बोलते हैं। जो एक राम निरन्तर है जिस रामसे अन्तर [व्यवधान] में कोई पदार्थ नहीं है, और जो राम जैसे घट जलमें शशीझांई रूपसे रहता है, वैसेही सब घटमें है, और स्वरूपसे एक और सबमें समान है उस रामको कोई नहीं समझताहै, जिससे जरा आदिका भ्रम नष्ट होजायें और वही राम वस्तुतः मैं हूँ उस मेरेमें रात्रि आदि नहीं है इत्यादि। और वह रामरूप जोलहा वस्तुतः तानवान नहीं जानता है इससे माया शक्तिसे जीवों के कर्मानुसार दश ठांई फाट यानी क्षीण सघनता रहित बस्त्र बीनता है। साहेब कहते हैं कि गुरुके प्रसादसे जिन जीवोंके लिये मैं जैसा कहा हूँ वा गुरु कृपा करके जिन जीवोंके लिये जैसा कहे हैं उनमेंसे भी कोई बिरले जन सिद्धि पाते हैं, यानी उक्त रामको समझते हैं। और सो राम अनन्तों कोटि मणि हीरामें बेधे हैं परन्तु मणि आदिको मोल लेनेसे किसीने उस रामको नहीं पाया। और स्वेत स्फटिकमें उस रामको रहते भी उस फिटिक [स्फटिक] में भी उस रामकी छाया आदि किसीने नहीं पाया इत्यादि। लिखा है कि—

अहं ब्रह्मास्मि ॥ १ ॥ आत्माऽयं केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ॥ २ ॥ सर्वभूतान्तरात्मैकः स्वतन्त्रो माययावृतः। एकं स्वं बहुधा कुर्याद्बहुरूपो यथा नटः ॥३॥ यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ४ ॥ ईशावास्य मिदं सर्वमित्यादि ॥ ५ ॥

मैं ब्रह्म हूं ॥ १ ॥ यह आत्मा केवल, स्वच्छ, शुद्ध, सूक्ष्म, सनातन, सर्वान्तर, अपरोक्ष, चेतन रूप और तमसे परे है ॥ २ ॥ सब प्राणीके अन्तरात्मा एक स्वतन्त्र है वह माया युक्त होकर एक अपने रूपको नट सदृश बहुरूप कर लेता है ॥ ३ ॥ जब जीव सब भूतोंको आत्मा में आत्माको सब भूतोंमें देखता है तब ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ॥ ४ ॥ ईश्वरसे यह सब जगत आच्छादित है इत्यादि ॥ ५ ॥

११-एकादशमकहरा ।

छेम कुशल औ सही सलामत, कहहु कौन कहँ दीन्हा हो ?
आवत जात दुनों विधि लूटैं, सामर गहिरे लीन्हा हो ॥
सुर नर मुनि जत पीर औलिया, मीरा पैदा कीन्हा हो ।
कहँलै गणौं अनन्त कोटिलै, सकल पयाना दीन्हा हो ॥
पानी पवन अकाश जाहिंगे, चन्द जाहिंगे सूरा हो ।
येभि जाहिंगे वोभि जाहिंगे, परत न काहुक पूरा हो ॥
कुशल कहत कहत जग विनशल, कुशल काल की फांसी हो ।
कहहिं कबिर सारि दुनिया विनशल, रहल राम अविनासी हो ॥

टीका—पूर्व कहरामें कहा गया है कि आत्मस्वरूप सुखकी अपेक्षा अनन्तों कोटि मणि हीरा आदि विषय समुदाय और उससे जन्य सुख फिटिकका मोलको भी नहीं पाने हैं। वहां शंका हुई कि लौकिक पारलौकिक विषयोंसे ही सब किसीको क्षेम कुशल दिखते हैं, और विषयोंके बिना किसीके क्षेम कुशल नहीं दिखते हैं, इससे आत्मवस्तुकी अपेक्षा सबको अत्यन्त तुच्छ कहना नहीं बन सकता है। तब साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! कहहु [कहो] कि सांसारिक विषयादि कौनको [किसको] क्षेम कुशल दिये अर्थात् किसका कल्याण भलाई वा कुशलता प्राप्त करातेहैं। अर्थात राम बिना इनसे किसीको न क्षेम कुशल हुआ न होता है, किन्तु मोहादि वश इनसे बन्धन की ही प्राप्ति होतीहै और हुई। और इन विषयोंको 'सही' करनेसे यानी इन्हें सत्य निश्चय करनेसे ये विषय किसको 'सलामत' दिये यानी जन्म मरणादि रहित सुख किसको दिये ? अथवा सही सलामत [सत्य सलामत] किसको दिये ? अर्थात् किसीको नहीं दिये। उलटा आवत जात [जन्मते मरते] समय अपनी विषय बासनाओं द्वारा, 'दोनों बिधिसे' यानी जन्ममरण दोनों प्रकारसे जीवके वास्तविक सुखको लूटते हैं, यानी स्वरूप सुखके अभिभव तिरस्कार करते हैं । अर्थात् इन विषयों की बासनाही जन्म मरणकी प्राप्ति कराके जीवको दुखी करते हैं। और जिन विषयोंको जीव सब गहिरे [गम्भीर] सामर [सुखद सामग्री] जानकर लीन्हा [लिये हैं,] वेही विषयोंको आते जाते दोनों विधि लूटते हैं । अथवा ये विषयादिकही आते जाते लुटते हैं, और लूटमें जो जीवोंके गहिरे [गम्भीर] सुखकी सामग्री विवेक विचारादि हैं उन्हें ये विषयादि रूप संसार लेलिये हैं, अर्थात् विबेकादिको नाशादि कर दिये हैं। और इन विषयादिकोंने ही सुरनर मुनिको और जत [यत्नशील] को वा यति संन्यासीको, या सुरादि जत [जितने] हुये उन सबको, और ' पीर ' यानी मुसलमानोंके गुरुओंको और औलिया [मुसलमानी फकीर साधुओं] को और मीरा [श्रेष्ठराजा बादशाहादि] को भी पैदा किये हैं। अर्थात् जैसे पशु पक्षी आदि योनियोंमें जन्मादि दुःखके हेतु विषय

बासना कर्मादि हैं, वैसेही देवादि योनियों में भी जन्मादि दुःखके हेतु विषय-बासना कर्मादि हैं। और बिषय-बासना कर्मादिके ही अधीन देवादि सब जन्म लेकर फिर पयाना भी करते हैं, इससे मरण जन्य दुःख भी सब भोगते हैं। जिज्ञासा हुई कि कौन २ पयाना किये और करेंगे? तब साहेब कहते हैं कि जो अनन्तों कोटि देवादि हुये वे सब पयाना किये [मरण को प्राप्त हुये] और वे विषयादि इन्हें 'पयानादीन्हा' यानी दिये, प्राप्त कराये, सो कहँ लै गणौं नाम कहां तक गिनें। क्योंकि कोई बिरले ज्ञानी गमनागमन से रहित हुये और उनसे अन्य सकल जन्म लेनेवालोंको विषय कामकर्मादि पयाना दिये और देते हैं तथा देंगे। जिज्ञासा हुई कि अनन्तों कोटि देवादि मर कर कहां गये और जाते हैं? तब साहेब कहते हैं कि 'पानी पवन अकाश जाहिंगे' यानी कोई देवादि मरकर पानी में गये और जायँगे नाम कर्म वासनाके अनुसार कोई मरने पर जलजन्तु होंगे, कोई वायु लोकमें प्राप्त होंगे और वायु प्रधान शरीरको प्राप्त करेंगे, कोई आकाश [अन्तरीक्ष लोक]में प्राप्त होंगे, और लोकके अनुकूल शरीरको प्राप्त करेंगे। अथवा आकाश में प्राप्त होकर आति-बाहिक शरीरसे बिचरेंगे, या पक्षीरूप होकर आकाशमें उड़ेंगे। इसी प्रकार कोई चन्द्रलोकमें कोई सूर्यलोकमें प्राप्त होंगे। और कोई फिर येभि [इस मनुष्यलोक मानव शरीर में भी] जायँगे, कोई फिर वोभि [परोक्ष देवादि लोकादि में भी] प्राप्त होंगे, परन्तु ज्ञान विरागादि विना 'काहुको' यानी देवादि किसीको भी न पूरा पड़ता है न पड़ेगा, अर्थात् पूर्ण सुख मोक्षकी प्राप्ति नही होगी। अथवा अनन्त कोटि देवादि सबके पयानाको सुनकर शंका हुई कि योगयुक्ति रहित प्राणी पयाना करतेहैं परन्तु योगयुक्तिसे पानी पवनादि प्रकृति पर्यन्तको बशमें करके उन रूपताको प्राप्त योगी तथा देवादि नही पयाना करते हैं, क्योंकि योगी लोग जिन पानी पवनादि रूपताको प्राप्त होते हैं वे पानी आदि नित्यहै ; तब साहेब कहते हैं कि पानी, पवन, आकाश, चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी प्रकृति आदि सब जाजेंगे, सब परिणाम नाश बाधको प्राप्त होंगे, इसलिये पानीपवनादि रूपताको प्राप्त योगी देवादिको भी पयाना करना पड़ेगा। इसीसे विषयादिमय संसारको कुशल कहते२ जग [संसारी जीव] सब 'बिनशल' यानी विनाशको प्राप्त हुये। इसलिये जिन विषयादिकोंको अज्ञानी लोग कुशल कहते हैं वेही उनके लिये कालकी फांसीरूप महात्माओंकी दृष्टिसे हैं, इससे साहेब कहतेहैं कि विषयादि-रूप फांसीमें पड़कर सारी दुनियाँ विनशल [नष्ट हुई और होती है] किन्तु सर्वात्मस्वरूप अविनाशी राम 'रहल' यानी नष्ट नही हुआ न नष्ट होता है। इसलिये जो पुरुष उक्त रामको प्राप्त करके उक्त रामरूपसे स्थिर होता है वही अविनाशी सुखस्वरूप होजाता है और अन्य सब जीव जन्ममरणादि जन्य महा दुःख भोगते हैं, इसलिये मनुष्यको सब विषयादि की वासनाओंको नष्ट करके उक्त रामरूपमे स्थिर होना चाहिये लिखा है कि—

मयोऽन्यमात्मनः प्रियंब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियं रोत्स्यति ॥१॥ यावतःकुरुतेजन्तुः सम्बन्धानमनसःप्रियान्। तावन्तोऽस्यनिखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥२॥ नसंसा-

रोत्पन्नंचरितमनुपश्यामि कुशलं, विपाकःपुण्यानां जनयतिभयंमेविमृशतःमहद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्चविषयाःमहान्तोजायन्ते व्यसनमनुदातुंविषयिणाम्॥३॥

जो ज्ञानी पुरुष आत्मासे अन्यको प्रिय कहने वालोंके प्रति कहते हैं कि प्रिय अनात्म वस्तु तुझे रुलावेगा, सो ज्ञानी का कथन ठीकही होता है॥ १ ॥ जन्तु जितनेही मनके प्रिय सम्बन्ध करता है उतनेही इसके हृदयमें शोककी कील गाड़ी जाती हैं ॥ २ ॥ मैं संसारमें उत्पन्न किसी चरित व्यवहारको कुशल सुखद रूप नहीं देखता हूँ बिचारने पर मुझे पुण्यके फल स्वर्गादि भी भय उत्पन्न करते हैं, जिससे महान् पुण्य समूहसे चिरकाल तक प्राप्त भी महान् विषय विषयी लोगोंको मानो दुःखही देनेके लिये उत्पन्न होते हैं विषयोंके नाशादिसे विषयी लोगों को अत्यन्त दुःख होता है ॥ ३ ॥

१२—द्वादश कहरा ।

यह माया रघुनाथ कि बौरी, खेलन चली अहेरा हो ।
चतुर चिकनियाँ चुनि चुनि मारे, काहु न राख्यो न्यारा हो ॥
मौनी वीर दिगम्बर मारे, ध्यान धरन्ते योगी हो ।
जङ्गल में के जङ्गम मारे, माया किनहुं न भोगी हो ॥
वेद पढ़न्ते पांड़े मारे, पूजा करते स्वामी हो ।
अर्थ विचारत पण्डित मारे, बांध्यो सकल लगामी हो ॥
शृङ्गी ऋषि बनभीतर मारे, ब्रह्मा के शिर फोरी हो ।
नाथ मछन्दर चले पीठि दै, सिंहलहूं में बोरी हो ॥
सांकठ के घर कर्ता धर्ता, हरि भक्तन की चेरी हो ।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, ज्यों आवै त्यों फेरी हो ॥

इति श्री १०८ सद्गुरु कबीरसाहेबकृत बीजकाख्यग्रन्थस्य
तृतीयं कहराप्रकरणं समाप्तम्

टीका—पूर्व कहरामें कहा गया है कि ये विषयादि किसीको क्षेम कुशलादि नहीं देते हैं न दिये हैं, उलटा आते जाते लूटते हैं। उसीका फिर वर्णन करते हैं कि यह स्त्री विषयादि रूप पदार्थ 'रघुनाथकी' यानी गमनशील चराचरके स्वामी अधिष्ठान माया शक्तिसे सब को प्रेरक अबिनाशी रामकी माया रूप है, अर्थात् बिषयादि मय संसार तथा स्त्री रामकी मायारूप है, और वह भी बौरी (अविवेक स्वरूपा) है। और वह माया बिषयादि रूप जाल रचकर स्त्री आदि जङ्गमरूपसे तथा इच्छा आदिरूपसे अहेर [शिकार] खेलनेके लिये संसारमें चली है, और वह पूर्ण विवेक वैराग्यादि

रहित और लोक व्यवहारादिमें चतुरोंको और चिकनियाँ यानी रोज गुणियों को चुनचुन कर मार चुकी है और मारती है, किसी भी पामर विषयी रूप चतुरोंको वा शरीरमें आसक्त रजोगुणीको वह माया अपने जाल मोह फन्दसे न्यारा नहीं राखी है न रखती है, किन्तु सबको अपने जालमें फंसाकर मारती है। और यह माया मौन व्रत धारण करनेवाले मौनीको तथा लड़नेवाले वीरोंको, वस्त्र नहीं ओढ़ने वाले दिगम्बरोंको, भी मोहात्मक जालमें फंसाकर मारी और मारती है। और ध्यान धरते हुये योगियोंको भी मारी तथा मारती है। और जङ्गलमें रहनेवाले जङ्गम वेषधारी विशेषको भी मार दी तथा मारती है। वहां साहेब कहते हैं कि सब कोई मायाके भोगनेकी इच्छा करके माया से मारे जाते हैं, परन्तु मायाको किनहुं (किसी ने) भी नहीं भोगी यानी उस मायासे किसीको भी पूर्ण सुखकी वा उसका भोगसे तृप्तिकी किसीको भी प्राप्ति नहीं हुई वा विवेक वैराग्यादि बिना यह माया किसीके वशमें नहीं हुई। और वशमें नहीं होनेसे वेद पढ़तेहीमें वेदपाठी पांड़ेको मार दी और मारती है, तथा देव देवी आदिकी पूजा करतेही में धनादिके स्वामी क्षत्री वैश्यादिको मार दी और मारती है। और शास्त्रोंके अर्थ विचारते में वा अर्थ नाम द्रव्यको बिचारनेमें शास्त्रज्ञ पण्डितोंको मारती है और मरदी है। इससे जैसे घोड़ेको लगामसे वशमें करके बांधा जाता है वैसे वेद पढ़ने-वाले आदिको भी मोह वा मनरूप लगामसे वशमें करके माया इन्हें संसारमें बांधती है। और यह माया शृङ्गी ऋषिको बनके भीतर जाकर छल बलसे मारदी, यानी तपसे च्युत करके अपने वशमें करली। और ब्रह्माजीका शिर फोर डाली यानी कामासक्त ब्रह्माजीके शिरको शिवजी द्वारा कटवा डाली। और महा योगी गोरखनाथके गुरु मछन्दरनाथ भी मायाके तरफ पीठि देकर उससे बचनेके लिये सिंहलद्वीपमें भागकर चले गये तो उन्हें सिंहलद्वीपमें [लंकामें] भी वह माया बोरदी [डूबादी] अथवा जब माया उन्हें सिंहलद्वीपमें बोरदी तब योगादिसे पीठि देकर विषयादिमें मछन्दरनाथ चले। और यह माया पामर विषयी संसारी जीवरूप सांकठके घरमें तो कर्ता धर्ता बनकर उन्हें मारती है, अर्थात् आसुरी सम्पत्ति युक्त होनेसे असुर राक्षसादिरूप और विषयासक्तके घरमें स्वामिनी बनकर उन्हें सर्वथा अपने वशमें करती है, अर्थात् संसारात्मक चक्रमें डालकर पेरती है। और हरि भक्तोंके घरमें चेरी नाम चेरी वा टहलनी बनकर हरिभक्तोंको मारती है, अर्थात् दैवी सम्पत्ति युक्त होनेसे देवरूप भक्तोंके यहां वा संसारसे पार होनेके लिये गुरुभक्तिमें प्रवृत्त पुरुषोंके यहां वा सात्त्विक विष्णु नामक देवकी भक्ति करनेवालोंके यहां चेरी बनकर उन्हें भी अपने वशमें करती है, और संसारात्मक चक्रमें डालती है। इस मायासे कोई विरले ही सत्पुरुष बँचते हैं जो अत्यन्त सावधान रहते हैं और कभी इसके सङ्ग संग्रह आदि नहीं करते हैं। इससे साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! सुनो कि यदि पूर्व वर्णित मायाके फन्दसे बचना चाहते हो तो यह स्त्री रूप माया ज्योंही तुम्हारे पासमें दैवयोगसे आजाय त्योंही उसे फेर दो और उसके अङ्गादिका दर्शन भूलकर भी नहीं करो, तथा उससे बात व्यवहार नहीं करो किन्तु अपने मन नेत्र वागादिको उसको तरफसे फेर लो। और द्रव्यादिरूप माया ज्योंही आवे त्योंही उसे फेर दो नाम त्याग दो यानी भोगादिसे उसे समाप्त करदो जिससे पूर्ण सुखी नित्य निर्भय और नित्य तृप्त होकर नाश रहित हो जाओगे॥ अथवा पूर्व

कहरामें कहा गया है कि सब दुनियाँ बिनशी और बिनशती है, केवल एक रामही अविनाशी रहा और रहता है, तहां जिज्ञासा हुई की नामरूपात्मक यह प्रत्यक्ष संसार क्यों विनष्ट होता है ? आत्माराम सदृश अविनाशी क्यों नहीं रहता है ? तब साहेब कहते हैं कि यह सब दुनियाँ रघुनाथ (पूर्व कहे अविनाशी राम) की माया है, और वह बौरी है इससे अपने ही परस्पर नाशको प्राप्त होती है, और नाशके लिये ही अहेर खेलने चली है। और चतुर चिकनियाँको चुन २ कर मारती है अपनेमें लीन कर लेती है किसीको अपनेसे न्यारा नहीं रखती है,' इससे सिद्ध हुआ कि स्वप्नके पदार्थोंके सदृश सब दुनियाँ मायाके कार्यरूप और विनाशी माया मात्र हैं एक राम अविनाशी है। और उस अविनाशी राम में स्थिति विना यह माया 'मौनिको' अर्थात् शास्त्रको मनन करने वालों' को और वीरादिकोंको मारती है। और सांकठके नाम माया मायिक वस्तुमें आसक्त गुरुबिमुख पुरुषके शरीररूप घरमें उस पुरुषकी दृष्टिसे यह माया ही कर्ता धर्ता प्रतीत होती है, अर्थात् माया ही ईश्वर रूप और सबको धारण करने वाला स्वरूप सांकठ पुरुषोंको भासती है तथा उन्हें अपने बशमें रखती है। और हरिभक्त [गुरुभक्त] तथा सर्वोत्मस्वरूप हरिको चिन्तनादि करनेवाले आसक्ति रहित पुरुषोंकी यह माया चेरी है [दासी है] इससे सदा उनसे डरती रहती है कभी उन्हें अपना फन्देमें नहीं ला सकती है न लानेके लिये कोशिश हो करती है, किन्तु केवल शरीरकी स्थिति मात्रके लिये उपयोगी वस्तु देकर उन महात्माओंकी माया भी सेवा करती है। इसलिये साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! तुम इन मायिक पदार्थोंमें आसक्त नहीं हो जावो, किन्तु यह माया जैसे ही आवे वैसे ही इसे फेर दो [लौटा दो] जिससे यह चेरी होजावे॥ अथवा जिज्ञासा हुई कि यदि एक राम ही अविनाशी है और सब संसार नाशवाला है तो बड़े २ चतुर चिकनियाँ मौनी आदि लोग भी उक्त राम परायण नहीं रहकर शब्दस्पर्शादि विषयमें तथा स्त्री आदिमें क्यों आसक्त हो जाते हैं ? तब साहेब कहते हैं कि यह लोक प्रसिद्ध विषय स्त्री आदि रूप रघुनाथ नाम ईश्वरकी माया है, और वह अविवेकशीला बौरी है, इसलिये इस प्रत्यक्ष माया द्वारा वह परोक्ष ईश्वरकी शक्ति रूपा माया चतुर चिकनियाँ आदि सबको रामसे विमुख करके तथा संसारमें गिरा कर मारी है और मारती है, यानी दुःखी पीड़ित करती है। इससे बड़े २ लोग भी मायाके वश होकर रामसे बिमुख हुए और होते हैं, परन्तु कोई सम्हार कर फिर उठते हैं कोई सदा उसीके बशमें रहते हैं इत्यादि॥ लिखा है कि—

जलबुद्बुद्वत्सर्वंहि संसारंसचराचरम्। प्रभाते स्वप्नवन्मिथ्या मोहकारणमेवच ॥ १ ॥ दृष्ट्वास्त्रियं देवमायां तद्भावैराजितेन्द्रियः। प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ २ ॥ मारयति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पित्वा तु मारयति। तस्माद् दृष्टिविषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत ॥ ३ ॥ असारेऽस्मिन् हि संसारे दुःखपूरितजीविते। अक्षिपद्मप्रचलनसमाने जीविते पुमान् कुर्वीत सततं स्वस्मै हितं नापरमएवपि ॥ ४ ॥

चराचर सहित यह सम्पूर्ण संसार जल बुद्बुद सदृश है प्रभात कालमें जागनेपर जैसे स्वप्न मिथ्या हो जाता है वैसे ही यह भी मिथ्या है इसका अविवेकरूप मोह ही कारण है ॥ १ ॥ देवकी माया रूपी स्त्रीको देखकर उसके भावोंसे प्रलोभित अजितेन्द्रिय पुरुष मोहरूप अन्धतममें नाशके लिये पतङ्ग सदृश गिरता है ॥ २ ॥ स्त्रीको देख ही कर मनुष्य बावरा हो जाता है, मदिरा पीकर बावरा होता है इससे दृष्टि विष नारीको दूरसे ही त्यागना चाहिये ॥ ३ ॥ दुःखसे पूर्ण आंख-के पक्षके चलन समान चञ्चल जीविनमें सदा अपने लिये हित ही पुरुषको करना चाहिये। अणु-मात्र भी अहित नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

अशुचिकोशचयं परकीयकं निजधिया ग्रहणे भवभीतिदम्। परिनिरीक्ष्य शरीरकमीदृशं जहिहिमित्रकलेवरभावनाम् ॥ १ ॥ इदमसारमयं सकलं जग ज्जल-धरप्रतिबिम्बमिवास्थिरम्। परिविलोकय भोक्षणभङ्गुरम् भजचराममजं त्यज गर्व-कम् ॥ २ ॥ ममसुखंप्रविहायनरस्तु यो हितधिया विषयं खलु सेवते। व्रजतिमोऽत्रभवार्णवचक्रके नरनिवाक्यविवर्तविलोकनात् ॥ ३ ॥ भवविमुक्तिकरैर्भ-जनैर्बिना हृदिगतस्य परस्य विलोकनात्। मनुजदेहफलं नहि विद्यते इति-न यापयकालमतिस्फुटम् ॥ ४ ॥ श्रवणयोगविचारपरायणः करणसंयमयत्नपरो भव। हृदयबन्धनिवारणतत्पर स्त्यजसखे भवसंक्रमवासनाम् ॥ ५ ॥ नहिकुमार्ग-शतैः सुगतिर्भवे दिति सुमार्गविलोकनभक्तितः। गुरुवचस्समाहितचेतसा परि-विलोकय पावनपावनम् ॥ ६ ॥ सुखदयोगविपाकविलोकना त्कुरुशनैर्जितकामरुषं मनः। विमलबुद्धिविरागसमाधिभि र्जनाबिनाखलु भावययातनाम् ॥ ७ ॥

अपवित्र कोशोंके समुदायरूप कुत्ते आदिके भक्ष्य शरीरको निजबुद्धिसे ग्रहण करनेपर संसार-भयका दाता है इस प्रकार शरीरको जानकर हे मित्र! इस शरीरकी भावनाको त्याग दो ॥ १ ॥ यह सब संसार असार माया मय और मेघकी छाया सदृश है इससे क्षणभङ्गुर जानो अज रामको भजो तथा गर्वको तजो ॥ २ ॥ जो पुरुष मम सुखको त्याग कर हितबुद्धिसे विषयोंको सेवते हैं, सो संसारसमुद्रके चक्रमें पडते है, और वाचारम्भण मात्र जाननेसे तरते हैं ॥ ३ ॥ भवमुक्तिकर भजन बिना और हृदयगत परात्माके जाने बिना मनुष्य देहका अन्य फल नहीं है ऐसा जानकर इस सुन्दर कालको व्यर्थ नहीं बितावो ॥ ४ ॥ किन्तु हे मित्र! श्रवणादि परायण होकर इन्द्रियोंके संयममें तत्पर हो जावो, और कामादि रूप हृदयबन्धनोंका निवारणमें तत्पर होकर भवसंक्रमके हेतु वासनाको त्याग दो ॥ ५ ॥ सैकड़ों कुमार्गसे भी सुगति नहीं होती है, इसलिये सुमार्गका विलोकन विषयक भक्ति पूर्वक गुरुउपदेशमें समाहित चित्तसे पावनोंसे पावनको देखो ॥ ६ ॥ सुखद योगके फलको जाननेसे धीरे २ काम क्रोध रहित मनको करो और हे जनो! विमल बुद्धि विरागादि बिना यम यातना होती है वह जानो ॥ ७ ॥

॥ इति कहराप्रकरणस्य शिशुबोधिनी टीका समाप्ता ॥

अथचतुर्थप्रकरणविप्रमतीसी ।

१ चौपाई

सुनहु सबन मिलि विप्रमतीसी । हरि बिनु बूड़ी नाव भरीसी ।
ब्राह्मण ह्वै के ब्रह्म न जानै । घर महं जगत प्रतिग्रह आनै ॥
जे सिरजा तेहि नहिं पहिचानै । कर्म भरम लै बैठि बखानै ।
ग्रहण अमावस सायर दूजा । स्वस्तिक पात प्रयोजन पूजा ॥
प्रेत कनक मुख अन्तर बासा । आहुति सत्य होम की आसा ।
उत्तम कुल कलि माहँ कहावैं । फिरि फिरि मध्यम कर्म करावैं ॥
सुत दारा मिलि जूठो खाहीं । हरि भक्ता के छूति कराहीं ।
कर्म अशौच उच्छिष्टा खाहीं । मती भ्रष्ट यमलोकहिं जाहीं ॥
न्हाय खोरि उत्तम ह्वै आवैं । बिष्णु भक्त देखे दुख पावैं ॥
स्वार्थ लागि जे रहे विकाजा । नाम लेत पावक ज्यों डाजा ॥
राम कृष्ण की छोड़िन आशा । पढ़ि गुणि भये कृतम के दासा ॥
कर्म पढ़े कर्महिं कहं धावैं । जे पूछे तेहि कर्म दृढावैं ॥
निःकर्मी की निन्दा कीजै । कर्म करै ताही चित दीजै ।
ऐसी भक्ति हृदया महँ लावैं । हिरणाकश को पन्थ चलावैं ॥
देखहु स्मृतिकेर प्रकाशा । अभ्यन्तर भये कृतमके दासा ॥
जाके पूजे पाप न ऊड़े । नाम सुमरनी भव महं बूड़े ॥
पाप पुण्य कै हाथे पाशा । मारि जगत को कीन्ह विनाशा ॥
ईबान्हि कुल बन्ही कहारे । ईगृह जारे ऊगृह मारे ॥
बैठाते घर साहु कहावैं । भीतर भेद मुसमनुश्र लखावै ॥
ऐसी विधि सुर विप्र भनीजे । नाम लेत पीठा (च) सन दीजे ॥
बूड़ि गये नहिं आपु सम्हारा । ऊंच नीच कहु काहि जो हारा ॥
ऊंच नीच है मध्यम बानी । एकै पवन एक है पानी ॥
एकै मटिया एक कुम्हारा । एक सबन को सिरजन हारा ॥

एक चाक सब चित्र बनाया । नाद विन्द के मध्य समाया ॥
व्यापी एक सकल की गौती । नाम धरे का कहिये भौती ? ॥
राक्षस करणी देव कहावै । बाद करै गोपाल न भावै ॥
हंस देह ताजि न्यारा होई । ताकर जाति कहहु दहु कोई ? ॥
श्वेत स्याह कि राता पियारा । अबरण बरण कि ताता सियरा ? ॥
हिन्दू तुरुक की बूढा बारा ? । नारि पुरुष मिलि करहु विचारा ॥
कहिये काहि कहा नहिं माना । दास कबीर सोइ पैजाना ॥

१ साखी दोहा ।

बहिया है बहि जात है, करे गहे चहुँ ओर ।
जो कहा नहिं माने तो, दे धक्का दुई और ॥

इति श्री सद्गुरुकबीरसाहेबकृत बीजकाख्यग्रन्थस्य
चतुर्थविप्रमतीसी प्रकरणं समाप्तम् ।

टीका—अन्तिम कहरामें कहा गया है कि अविवेक रूप वाली माया बड़े २ चतुर चिकनियाँ को चुन २ कर मारी है और मारतीहै, जैसे कि मौनी आदिकों को भी मारी है इत्यादि । अब इस विप्रमतीसी प्रकरणमें उक्त अविवेक रूपी मायासे मारे गये ब्राह्मणों की मति तथा दशाका बर्णन करते हैं कि हे मनुष्यो ! विप्राकी जैसी मति होनी चाहिये और जैसी है उस मतिका मैं बर्णन करता हूं तुम सब मिलकर सुनो और विचारो । यहां मती शब्द में छन्दके लिये इकार को दीर्घ पढ़ा गया है, और सी भी पाद पूर्ती के लिये पढ़ा गया है । अथवा सीका जैसी अर्थ होनेमें भाव यह है कि जैसी विप्रो की मति है उसे सुनो कि जिस मतिसे 'भरीसी' यानी भरी हुई के तुल्य नाव संसार में हरिकी प्राप्ति बिना बूड़ी और बूड़ रही है । अर्थात् जैसे भरी हुई नाव सुन्दर केवट आदि बिना नदी समुद्रमें बूड़ जावे, तैसेही कुबुद्धि से सद्गुरु ब्रह्मात्माकी प्राप्ति बिना सुन्दर मनुष्य तन आदि पाकर भी संसारमें बूड़ते हैं । अथवा इनकी मतिरूप नौका विषय वासना आदि रूप भारसे भरी हुई सदृश है सो संसारमें बूड़ी है और बूड़ रहीहै । और वस्तुत. सर्वात्म स्वरूप ब्रह्मको जानने वालों का नाम ब्राह्मण है । जो ज्ञानी लोग सब प्राणीको अपना स्वरूप वा सदृश मानकर सब पर दया करते हैं, तथा राग द्वेषादिसे रहित होते हैं वे वस्तुतः ब्राह्मण हैं । और ये विप्र ब्राह्मण ह्वैके यानी ब्राह्मण पनका अभिमानादि करके भी ब्रह्मको नहीं जानतेहैं न जाननेके लिये यत्न करते हैं, या ब्राह्मण ह्वैके

यानी ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर भी ब्रह्मको नहीं जानते हैं, किन्तु केवल अपने घरमें जगतसे प्रतिग्रह ले आनते हैं, अर्थात् सबसे दान लेनेके लिये ब्राह्मण कहाते हैं परन्तु ब्रह्मात्माका ज्ञानके लिये यत्न नहीं करते हैं। और जे (जौन) माया मायी आदिकों ने इस संसारको तथा शरीरको सिरजते हैं, उन पदार्थोंको ये लोग नहीं पहचानते हैं, तथा जन्मके हेतु काम कर्मादिको नहीं समझते हैं इससे जन्म रहित होनेके लिये उपाय भी न स्वयं करते हैं न कराते हैं, किन्तु अनेकों सकाम कर्म और भ्रम, [मिथ्या वस्तु] तथा बातोंको लेकर (स्वीकार कर) के बैठकर अन्यके प्रति व्याख्यान करते हैं। अथवा प्रचीन कर्म जन्य जो शरीरादिमें अभिमानादि रूप भ्रम वा कर्मरूप ही जो भ्रम उसे प्राप्त करके उसीके गुणको बैठकर गाते हैं, तथा कभी ग्रहण माहात्म्य ग्रहण दानादिके माहात्म्योंका व्याख्यान करते हैं, कभी अमावस्याके व्रतादिका, कभी सायर (समुद्र) के दर्शन स्पर्शनादिका व्याख्यान करते हैं, और कभी दूजा, (द्वितीया) का वा ग्रहणादिसे अन्यका भी वर्णन करते हैं, और स्वस्तिके पातका वर्णन करते हैं यानी मृतक वा बीमारादिके नामसे अन्नादि के पातका अर्थात् अन्नादिसे पूर्णपात्र के दानादिका वर्णन करते हैं, तथा बिवाहादि रूप लौकिक प्रयोजनोंका मूर्ति आदिकी पूजाका वर्णन करते हैं, या जगतसे प्रतिग्रह लेते हैं, परन्तु अपनी माया शक्ति अविद्यादिसे सबको सिरजनिहार ब्रह्मात्माको नहीं जानते हैं। और प्रेत तथा कनक इन ब्राह्मण नामधारियोंके मुखमें और अन्तःकरणमें बसते हैं अर्थात् मृतक और सुवर्णका चिन्तन कथन किया करते हैं। अथवा प्रेत (मुर्दे) के मुखमें दिया हुआ जो कनक सोभी इनके अन्दर बसता है यानी उसे लेना चाहते हैं, और देवता पितृ आदिकी आहुति (आहवान स्तुति पुकारादि) तथा सत्य नाम कार्य विशेषमें दान लेनेके लिये सत्य संकल्पादि कराना और होम (अग्निहोत्र) इन सबकी ही ये विप्रलोग आशा करते हैं यानी आहुति सत्य होमसे ही द्रव्यकी तथा अपने कल्याणकी आशा करते हैं, और ब्रह्मको नहीं जानते हैं, इससे सब आशा दुखः से रहित नहीं होते हैं। अथवा आहुति नाम लौकिक अग्नि होत्र और सत्य होम नाम वैदिक अग्निहोत्रकी, या सत्यरूप प्राणमें विहित प्राणका हवनरूप सत्य होमकी या सत्य ब्रह्म, सत्य भाषणका होम [त्याग] की ही आशा करते हैं, और जो सिरजा है उसे जाननेकी आशा नहीं करते हैं, और कलियुगमें उत्तम कुल कहाते हैं, परन्तु फिरि २ [बार बार] पूर्वोक्तर वर्णित तथा हिंसा आदि रूप मध्यम [हीन कर्म] करते कराते हैं। अथवा कोई ब्राह्मण निषिद्ध अत्यन्त निकृष्ट हिंसा आदि नहीं करते हैं न कराते हैं, वे भी उत्तम कुल कहाकर भी मोक्षके हेतु निष्काम उत्तम कर्म तथा सत्सङ्ग विचारादि नहीं करते हैं न कराते हैं, किन्तु ग्राम नगरादिमें फिर फिर कर मध्यम लौकिकादि कर्म कराते हैं, और पूर्व वर्णित प्रेतके जूठको नाम प्रेतके लिये संकल्पित अन्नादिको सुतदारा सब मिलकर खाते हैं। अथवा सुतदारासे मिलकर परस्परके जूठ परस्पर खाते हैं, परन्तु सर्वात्मस्वरूप हरिके भक्तमें छूति कराते हैं यानी उन हरिभक्तोंके सङ्गादिसे दोष मानकर प्रायश्चित करते कराते हैं। अथवा कोई विप्र आचारादि रहित नामसे प्रेत वा पुत्रादिका जूठा खा लेते हैं, परन्तु हरिनामक सात्विक देवके सात्विक आचारादि युक्त भक्तोंमें छूति लगाते हैं, और अशौच कर्म रूप श्राद्ध

कर्ममें जो बिप्र प्रेतके उच्छिष्ट जूठा पिण्डादि खाते हैं, उनकी मति भ्रष्ट हो जाती है यानी बुद्धि नष्ट हो जाती है, इसीसे यमलोकमें जाते हैं तथा यम यातना सहते हैं। अथवा हिंसा मांस मद्यादिके भक्षण व्यभिचारादि रूप अपवित्र कर्म जो बिप्र करते हैं और सुतदारा आदिका उच्छिष्ट खाते हैं सो मति भ्रष्ट नाम नीच बाममार्गादि मतिको धारण करके यमलोक में ही जाते हैं। और ये कलिके ब्राह्मण न्हाय (स्नान] करके और खोरि [तिलक] करके उत्तम बनकर अपने गृहादिमें आते हैं, और वहां यदि सर्वात्मस्वरूप विष्णुके वा सात्विक देवरूप बिष्णु के भक्तको देखते हैं तो देखते ही महादुःख पाते हैं यानी दुःखी होते हैं। और कोई बिप्र अपने 'स्वार्थ' के लिये यानी लौकिक तुच्छ प्रयोजन वा पदार्थ के लिये 'बेकाज' में प्रवृत्त रहते हैं यानी निन्दित हिंसा पर अपकारादिमें प्रवृत्त रहते हैं, और यदि कोई नाम लेवे कि ब्राह्मणके लिये शम दम दया क्षमा आदि युक्त ही कर्म विहित और सुगति कारक है आप तुच्छ द्रव्य वा बकरोंके शिरके लिये अपवित्र हिंसादि क्यों करते कराते हो? तो इस प्रकार नाम लेतेही वे विप्र 'पावकज्यों' यानी अग्नि सदृश क्रोध युक्त होकर डाजा [डाहने, दग्ध, नष्ट] करनेके लिये उद्यत होते हैं, तथा कहने लगते हैं कि तुझे उपदेशादि देनेके ब्राह्मणके कर्मोंको जानने आदिके अधिकारादि नहीं है इत्यादि। और अन्य देवादिसे दशरथापत्य रामको तथा वासुदेव कृष्णको श्रेष्ठ जगतकर्ता मानकर भी इनकी आशा को भी बहुत ब्राह्मण छोड़ दिये, किन्तु पढ़गुण करभी 'कृतम' यानी कृततम अत्यन्त कार्यरूप मूर्ति मृतपिण्डादि के तथा काम कर्मादि और भैरव भूतादि के दास हो गये। अर्थात् पढ़ गुण कर भी ये लोग ब्रह्मात्मा की नहीं प्राप्ति कर सके न जिस रामजी आदिको कर्ता पुरुष सिद्ध किये उनका ही बिश्वास पूर्वक चिन्तनादि किये, किन्तु कल्पित कर्मादि में लग गये। अथवा सर्वात्मस्वरूप होनेसे राम रूप ही जो कृष्ण उनकी आशा भक्ति आदिको छोड़कर कृतम [कार्य] रूप राम कृष्ण के दास हुये तथा तुच्छ कर्मोंके दास हुये। और कृतमके दास होकर कर्म हीको पढ़ते हैं, यानी कार्यरूप वस्तुओंके प्रतिपादक तथा कल्पित क्रियाओंके प्रतिपादक ग्रन्थोंको ही पढ़ते हैं। और कर्महीको धावते हैं, यानी कर्मोंके फलोंकाही ध्यान करते हैं वा कर्मके फलोंके लिये दौड़े फिरते हैं। और जो कोई अपने कल्याणके लिये इनसे कुछ पूँछता है तो उसको सकाम कर्मही दृढ़ाते हैं। या सत शास्त्र तो मुमुक्षुके लिये विवेक वैराग्यादिका तथा निष्काम सत कर्मका विधान करता है, परन्तु ये लोग सदा सकामही कर्म करते कराते तथा दृढ़ाते हैं। और लोगोंके प्रति दृढ़ाते हैं कि 'निःकर्मी' यानी कर्मादि बन्धनसे रहित वैराग्यादि युक्त ज्ञानियोंकी 'नीन्दा कीजै' यानी उनका तिरस्कारादि करो, और जो पुरुष कर्मबन्धन-युक्त होकर कर्म करता है, उसीमें चित्त दीजै यानी उसकी सेवा भक्ति आदि करो। और सात्विक ब्राह्मणादि नाम धराके तथा सात्विक विष्णु और वीष्णु भक्तोंसे द्वेष करके अपने हृदयमें ऐसी भक्ति लाते हैं [प्राप्त करते हैं] कि जिस से मानों हिरण्यकश्यप दैत्यके ही मत पन्थ चलाते हैं। और हे मनुष्यो! स्मृति नाम बिचार स्मरण शक्तिका वा धर्मशास्त्रका जैसा इन्हें प्रकाश है [प्राप्ति है] वा ज्ञान है सो देखो कि जिससे ये लोग अभ्यन्तर [अन्तःकरण] से भी 'कृतम' अर्थात् अत्यन्त तुच्छ कार्योंके दास हुये हैं। अर्थात् परोक्ष

गुणने रपभी इन्हें बिचारादिका प्रकाश नहीं हुआहै, इससे सदा तुच्छ कार्यों के ही दास हुये रहतेहैं। अथवा तुम सत स्मृति शास्त्रके प्रकाशको देखो तथा बिचार कर जानो जिससे पता लग जायगा कि ये लोग अभ्यन्तरसे कृतमके ही दास हुएहैं। और हेमनुष्यो! ये लोग कार्यों में भी ऐसे कार्यके दास हुये हैं कि जिसको पूजनेसे पाप नहीं उड़ता है यानी चित्तसे अशुभ पाप वृत्ति जिसे पूजनेसे नहीं हटती है, बलिक जिन भूतप्रेत हिंसक कल्पित देवादिके 'नाम सुमरनी' अर्थात् नामोंको स्मरण करने वाला दुःखद भवसागरमें ही बूड़ता है। या ये लोग उस कार्य वस्तुके दास हुए हैं, कि जसके पूजा ज्ञानादिसे अविद्यादि रूप पाप नहीं ऊड़ते हैं [नष्ट नहीं होते हैं] और नामोंका स्मरण करते हुये भी ये लोग भवमें अविद्यादिसे बूड़ते हैं और माया बूड़ाती है। अथवा हे मनुष्यों! 'जाके' यानी जिन पूर्वकहे ब्राह्मणोंके पूजे [पूजनसे] पाप नहीं उड़ते हैं यानी अज्ञान हिंसा आदि नहीं छूटते हैं, उन ब्राह्मणोंके नामोंको याद करनेवाला मनुष्य भी भवमें ही बूड़ता है। अर्थात् इनके नाम गुणादि को स्मरण करके इनके सदृश हिंसादि रूप पापाचरणसे संसारमें बूड़ता है। इससे हे मनुष्यो! जानो कि ऐसे ब्राह्मणोंके हाथमें कल्पित पाप पुण्य का पाश [फांसी] है जिनमें फंसाय कर जगतको मार कर बिनाश किये हैं और करते हैं। अर्थात् हिंसा आदि पापको पुण्य बताकर कलिके ब्राह्मण उन द्वारा साधारण मनुष्यको नष्ट करते हैं, तथा मुमुक्षु जिज्ञासुको बिचार बैराग्य सत्सङ्गादिसे बिमुख करके नष्ट करते हैं और किये है। रे अज्ञानी मनुष्यो! इसीसे इन ब्राह्मणोंको ईबन्हि यानी जगतको नाश करने वाली अग्नि रूप और अपने कुलके लिये भी बन्हि रूप मैंने कहा है। और अग्नि रूप होने हीसे पूर्वकहे ब्राह्मण ईगृह को जारते हैं, तथा ऊगृह को मारते हैं, यानी लोक परलोक को नष्ट करते हैं तथा कराते हैं। और लोक परलोक को नष्ट करनेवाली मायाके बशमें पड़े हुए ते [वे] ब्राह्मण अपने घरमें बैठे हुए वे साहु कहाते हैं (श्रेष्ठ सत्य वक्ता सदाचारी आदि कहे जातेहैं) परन्तु शरीरके भीतर रहनेवाला मनुआँ (मन) को सदा 'मुसनेका' यानी अन्यके मालोंको अन्यायसे हरनेका भेद लखाते रहते हैं। अथवा भीतर के मनुआँ ही इन्हें मुसनेका भेद लखाते रहता है। या इनके भीतर भेद भासता है सो मनको मुसताहै इत्यादि। साहेब कहते है कि ऐसी [पूर्वकही रीति की] जिनकी 'बिधि' नाम चाल कै प्रकार हैं उनके विषयमें लोग कहते हैं कि इन्हें 'भूसर' और 'बिप्र' भनीजै अर्थात् इन्हें देवादि कहना चाहिये, और मैं ब्राह्मण हूं इस प्रकार नाम लेते ही पीठासन [उच्चासन] दीजै [देना चाहिये] तथा प्रणाम करना चाहिये इत्यादि, परन्तु बिचार करनेसे सिद्ध होता है कि ये ब्राह्मण आप संसारात्मक सागरमें बूड़ गये हैं, और इन्होंने अपनेको आप नहीं सम्भारे हैं यानी सुमार्ग बिचारादिमें अपने मनको नहीं लाये हैं, तथा बिचारादिसे अपने स्वरूप के पहचानादि नहीं किये हैं, इससे ये ऊँच कहाने वाले भी वस्तुतः नीच हैं। तब हे मनुष्यो! तुम काही [किसको] जोहार [प्रणाम] करते हो? वा करने के लिये कहते हो? या जो संसार में बूड़े हैं, इससे अपनेको नहीं सम्हारे हैं, और माया छल प्रपञ्च दिके बशमें पड़े हैं। हे विवेकी ऊँच पुरुषो! उन नीचों का किस वास्ते जुहार करते हो? अथवा उनमें भी ऊँच नीच बुद्धि करके किसके प्रति प्रणाम करते हो? उन सबोंको तुल्य ही समझो। और शरीराभिमानादि रहित आत्मनिष्ठ ब्राह्मणादिके प्रति तथा हिंसा

पाप कर्मादि रहित श्रेष्ठ पुरुषों के ही प्रति प्रणाम करो वे लोग वस्तुतः प्रणामके योग्य हैं। और उनसे भिन्न किसी अज्ञानी कुकर्मीके प्रति किस वास्ते प्रणाम करते हो? और हे मनुष्यो! शुभाचार धर्म बिबेक बैराग्य ज्ञानादि बिना शरीरादि की जाति अवस्था आदि की दृष्टिसे जो मनुष्यमें ऊंच नीचपनके बोधक बानी हैं यानी शास्त्रादिके कथन हैं वे मध्यम बाणी हैं। अथवा आत्मामें ऊँच नीच-पनके बोधक बाणी मध्यम बाणी है, क्योंकि सभी मनुष्यों के भौतिक शरीरमें एकै पवन हैं [एकही प्रकारके प्राण हैं] तथा एकही प्रकारके पानी [जल] के भाग हैं। और एकही प्रकारके मटिया [पार्थि-विभाग] हैं। और इस माटी के घड़ारूप शरीरको गढ़ने बनाने वाला कुम्हार सदृश मनुआँ सूक्ष्म संघात विशिष्ट जीवात्मा भी एक ही प्रकार के हैं। और अपनी इच्छा तथा सत्तासे सबको सिरजनिहार ईश्वर वा शुद्ध चेतनात्मा भी एक ही है। और गर्भाशय रूप एकही प्रकारके अतिनिन्दित चाक पर [चक्रवा सांचा पर] वह कुम्हार और सिरजनिहारने सब शरीररूप चित्रको बनाया है। और सो चित्र नाद [शब्द] और बिन्द [पिताके बीर्य] के मध्यमें समाया है अर्थात् रज बीर्यसे उत्पन्न होकर यह शरीर व्यवहारके लिये संज्ञारूप सब्दमें समाया है, इसलिये शरीर दृष्टिसे वस्तुतः कोई ऊँच नीच नहीं है। और 'सकल की गौती' यानी सबके गमनशील वा इन्द्रियोंमें वा उत्तमादि नामधारी सब गोत्र कुलमें एक ही आत्मा व्यापी [व्यापक] है, तो भौती [भौतिक] शरीरके उत्तम मध्यम अध-मादि जुदा जुदा नाम धरनेसे क्या कहा जा सकता है? अर्थात् आत्मामें ऊँच नीचपन की सिद्धि नहीं हो सकती है। और सत्य कोई ऊंच नीच वस्तु नहीं सिद्ध हो सकती हैं जो कही जावें। अथवा ऊंच नीच मध्यम बानी है यानी गुण आचारादिसे व्यवहारके लिये सिद्ध हुई यह बानी है और वस्तुतः एकही आत्मा पवन पानी माटी कुम्हार सबको सिरजनिहार रूपहै. नाम सर्वत्र सत्य स्वरूप आत्मा ही है। इससे वह एकही सब चाक और चित्रों को बनायाहै। और वह आप ही नाद बिन्दके मध्यमें सत्तारूप जीवादि रूपसे समाया भी है। और 'सकल की गौ' नाम इन्द्रियों से अतीत होकर सर्वत्र वही व्यापक है। इससे 'भौती' यानी भवसे अतीतरूप उस आत्मको ऊँच नीचादि क्या नाम रखा जाय? और क्या कहा जाय? अर्थात् आत्मदृष्टिसे, वा पवनादिकी दृष्टिसे या भौतिक शरीर की दृष्टिसे किसी मनुष्यको ऊँच नीचादि कोई नाम धरके नहीं कहा जा सकता है, किन्तु शुभाचरण विबेक बैराग्य ज्ञानादिसे ही मनुष्य श्रेष्ठ ऊँच कहा जा सकता है, और इनके बिना नीच कहा जाता है। और पूर्व वर्णित ब्राह्मणोंके मांस मद्यादिके खान पानादि रूप राक्षस की करनी रहती है, परन्तु देव कहाते हैं। और ये लोग मिथ्या वाद विवाद करते हैं, और गो (इन्द्रिय) पृथिवी आदिको पालन करनेवाला जाति आदि कृत भेद से रहित ब्रह्मात्मा रूप गोपाल इन्हें नहीं भाता है यानी उसके विचारादिमें इनका मन नहीं लगता है। यदि कोई कहे कि नर चाहे स्वेच्छाचारसे कुछ भी करे परन्तु सूक्ष्म संघात विशिष्ट जीवात्मामें ब्राह्मणत्वादि जाति रहती ही है, तब साहेब कहते हैं कि सूक्ष्म संघात विशिष्ट जीवरूप हंस जब स्थूल शरीररूप सरको त्यागकर न्यारा होता है (जुदा हो जाता है) तब उसकी कौन जाति रह जाती है? सो कोई भी चाहे अनुभव करके कह दो। अथवा कोई भी ब्राह्मणत्वादि जाति उसमें कह दो, अर्थात् नहीं

कह सकते हो न सिद्ध कर सकते हो। क्योंकि यदि जीवात्मामें नियत जाति होगी तो वह कर्मानुसार सब योनि जातिमें जन्म नहीं ले सकेगा, इससे उसमें ब्राह्मणत्वादि जातिनहीं है। यदि कोई मूढ़ आग्रहसे जीवात्मामें ही जाति मानता होवे तो उसके भ्रमकी निवृत्तिके लिये बिचारकी कर्तव्यताका साहेब उपदेश करते हैं कि शरीरसे भिन्न जीवात्मा श्वेत (उजला) है कि स्याह (काला) है, कि राता (लाल) है, कि पियरा (पीला) है, कि 'अवरण' यानी सब रङ्गवालेसे तथा सब रङ्गसे भिन्न है, कि 'बरण' अर्थात् सब रङ्गवाला सब रङ्गरूप है। अथवा वह श्वेत [सतो गुणी ब्राह्मणादि] है, कि स्याह [तमोगुणी शूद्रादि] है, कि राता [राजस क्षत्री] है कि पियरा [सात्विक राजस वैश्य रूप] है कि अबर्ण यानी चार बर्णसे भिन्न है, कि चारो बर्णरूप है ? और वह ताता [गर्म] है कि शियरा [शीतल] है। तथा हिन्दू है कि तुरुक है कि बूढा [वृद्ध] है कि बारा [युवा] है, इस प्रकार उस जीवात्माका नारी पुरुष सब परस्पर मिलकर बिचार करो, तब जीवात्मा आदिके ज्ञान आदिसे तुम सबको कल्याण होगा। बिचारका उपदेश देकर साहेब कहते हैं कि यह सत वस्तुका उपदेश भी काहि [किससे] कहिये ? क्योंकि प्रायः यह मनुष्य कहा हुआ सत उपदेशको नहीं मानता है, किन्तु असत विषयादिका दास होता है। और विषयादिके दासरूप जो कबीर नाम जीव सो 'सोई पै जाना' नाम अभ्यन्तरसे कृतमका दास होना बिचारादि बिना ऊंच नीच मानना ही जानता है। अथवा किससे कहें यह संसारी जीव तो कहा मानता ही नहीं है, किन्तु जो गुरुके दासरूप जिज्ञासु जीव है 'सोई पै' नाम केवल सो गुरु भक्त ही उक्त उपदेशके मर्मको जाना है और जानता है, इससे वही संसार दुःखसे रहित होता है। साहेब जिज्ञासु सज्जनोंके प्रति कहते हैं कि अज्ञानी विषयी जीव सब संसारात्मका सागररूप कुमार्गमें प्रथम बहचुके हैं, अब भी बहे जा रहे हैं। और जैसे कोई नदीमें बहता होवे,परन्तु मोह बश किसी वस्तुको हाथमें गहे रह जावे जिससे नहीं तैर सकनेसे अवश्य ही बूड़कर मर जावे, वैसेही विषयी आदि पुरुष संसारमें बह रहे हैं, और चहुँओर [चारों तरफ] से विषयादिकोंको करमें गहे हैं, अर्थात् चतुष्टय अन्तःकरणरूप चारों हाथोंसे विषयोंकी इच्छा बासना तृष्णा आदिका धारण किये हैं। इससे कहा नहीं मानते हैं, परन्तु तौभी हे सज्जनो ? उन्हें विषय बासनादिको त्यागनेके लिये तथा संसारसे पार होनेके लिये प्रथम एकबार कहो, और जो [यदि] वे पुरुष प्रथमका कहना नहीं मानें तो भी 'दोधक्का और दे दो' नाम सांसारिक भय दुःख यमयातना आदिको दर्शाते हुये दोबार अच्छी रीतिसे उनकी भलाईके लिये कह दो, नहीं माननेपर वे ही दोष भागी होंगे, तेरे तरफसे कसर नहीं रह जायगी, यदि द्वितीय तृतीय बारमें भी कोई मनुष्य समझ जायंगे तो उनका कल्याण हो जायगा। अथवा जीवात्मा श्वेतादि नहीं है किन्तु जो श्वेतादि वस्तु हैं वे कहे हुये है यानी वाचारम्भण मात्र हैं, परन्तु किससे कहा जावे इन्हें वाचारम्भणमात्र नहीं मानते हैं। और दास कबीरने 'वही' यानी जैसा नेत्रादिसे दीखता है वैसा ही सत्य जानते हैं और उसीमें बहे हैं तथा फिर भी बहे जाते हैं उन्हें ही चारों तरफ करते हैं और गहते हैं। और जो पुरुष इन श्वेतादिकोंको कहा हुआ वाचारम्भण मात्र नहीं मानते हैं, उन पुरुषोंको वे स्वेतादि विषय पदार्थादिक ही जन्म मरणरूप

दो धक्का और भी अनेकों बार देते हैं वा यावत् द्वन्द्व रूप दो धक्का बारम्बार देते हैं। जगत प्रतिग्रह के यज्ञ प्रतिग्रह स्वस्तिक पातके शान्ति पान्ति। उत्तम कुल कलि के कुल उत्तम जग। मतिभ्रष्टके मत भ्रष्ट। स्वार्थ लागि जे के स्वारथ लागी। ई बन्हि कुल बन्ही के ई बहिनी वै बहिनी। पीठासनके पीचासन। नारि पुरुष मिलिके नारि पुरुष कि। इत्यादि पाठ भेद हैं, वहां ई वहिनी इत्यादिके अर्थ है कि ब्राह्मण लोग इस लोक परलोकके वहिनी नाम प्राप्त करानेवाले कहाते हैं और लोक परलोक दोनोंको हिंसा आदि कराके जलाते हैं। पीचासनका अर्थ है कि 'पी' यानी पीने योग्य पवित्र जल पैर आदि धोनेके लिये दीजे च [पुनः] आसन दीजै इत्यादि नारि पुरुषकि इत्यादिका अर्थ है कि वह आत्मा नारी है कि पुरुष है? इस प्रकार सब कोई बिचार करो। और पीचाश प्रेत विशेषको कहते हैं, उस अर्थमें पीचास शब्द होवे तो उक्त पीचासनका भाव यह है कि उक्त विधिके जो ब्राह्मण कहे जाते होवें तो उन्हें नाम लेते ही हिंसक पीचासोंकी कोटिमें दे देना चाहिये यानी पीचास ही समझना चाहिये इत्यादि। अन्यके अर्थ स्पष्ट है—स्मृति भारत भविष्यमें लिखा है कि—

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दयाश्रुतम्। विद्या विज्ञानमास्तिक्य मेतद् ब्राह्मण लक्षणम् ॥ १ ॥ ये शान्तदान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधान्निवृत्ताः। प्रतिग्रहे संकुचिताग्रहस्तास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥ २ ॥ न योनि र्नापि संस्कारो न श्रुतं नच सन्ततिः। कारणानि द्विजत्वस्य वृतमेव तु कारणम्॥३॥ स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्य मुपजीवति। क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ब्रह्म भूयाय गच्छति ॥४॥ किं ब्राह्मणा ये सुकृतं त्यजन्ति॥५॥ हेयोपादेयतत्त्वज्ञा स्त्यक्ताऽन्यायपथागमाः। जितेन्द्रियमनोवाचः सदाचारपरायाणाः ॥ ६ ॥ विशोका विमदाः शान्ताः सर्वप्राणिहितैषिणः। सुखदुखसमालोका विविक्ता स्थानबासिनः ॥ ७ ॥ निर्ममा निरहङ्कारा दानशूरादयापराः। सत्यब्रह्मविदःशान्ताः सर्वशास्त्रेषुनिष्ठिताः ॥ ८ ॥ ब्रह्मणा कृतमर्यादा स्त एव ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ९ ॥ यो वेददिह सत्यानि गुरुं संतोषयेत च। हिंसितश्च न हिंसेत तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥१०॥अहिंसा सत्यवचन मानृसंश्यं दमो घृणा। एतत्तपो विदु र्धीरा न शरीरस्य शोषणम् ॥ ११ ॥

योग, तप, दम, दान, सत्य, शौच, दया, वेद, विद्या, विज्ञान और आस्तिकता ये सब ब्राह्मण के लक्षण हैं ॥ १ ॥ शम दम युक्त वेदादिका पूर्ण श्रवण कि ये हुये जितेन्द्रिय अहिंसक दान लेने में संकुचित हाथवाले ही ब्राह्मण मनुष्यको तारनेके लिये समर्थ होते हैं ॥ २ ॥ योनि संस्कार वेद सन्तति ये सब वस्तुतः द्विजपनके नहीं कारण हैं किन्तु सद्वृत्त ही कारण है ॥ ३ ॥ ब्राह्मणके धर्मों से युक्त रहनेवाला ब्राह्मणत्वको प्राप्त करता है, क्षत्री वा वैश्य भी धर्मसे ब्राह्मण भावको प्राप्त करता

है ॥ ४ ॥ जो पुण्यकर्मको त्यागते हैं वे ब्राह्मण क्यों हैं ॥ ५ ॥ हेय उपादेय तत्त्वको जाननेवाले अन्यायपथागमको त्यागनेवाले इन्द्रिय मन बचनको जीतने वाले सदाचारमें स्थिर शोक मद रहित शान्त सब प्राणीके हितैषी सुख दुःखमें सम बुद्धिवाले एकान्तवासी ममता अहङ्कारसे रहित दान में शूर दया परायण सत्य ब्रह्मको जानकर शान्त हुवे सब सत शास्त्रमें निष्ठायुक्त वेदकृत मर्य्यादाको पालन करनेवाले ही पुरुष वस्तुतः ब्राह्मण कहे गये हैं ॥ ६ ॥ जो सत्यही बोलता है, गुरुको सन्तुष्ट करता है, मारने पर भी किसी को नहीं मारता है, देवता लोग उसीको ब्राह्मण कहते हैं ॥ १० ॥ और अहिंसा, सत्य बचन, अक्रूरता, दम, दया, इन सबको धीर लोग तप कहते हैं। शरीर शोषण को नहीं कहते हैं इत्यादि ॥ ११ ॥

बन्दे ब्रह्माद्वितीयं त्वनशननिरतैः सत्यसंधैः प्रवेद्यं शौचाचारादिहीनैरपि धन-परमैर्ब्रह्ममन्यैरवेद्यम् । मांसस्वार्थादिचित्तैः परसुखविमुखैः क्रोधलोभाभिभूतैः नैवंवेद्यं कदाचिच्छमदमनिरतै र्ज्ञायते वै यथेदम् ॥ १ ॥

टिप्पण—अद्वितीय विषयाशनसे रहित सत्य तात्पर्यवालोंसे अपरोक्ष ज्ञेय और शौचाचारादिसे रहित धनादि परायण ब्रह्ममानियोंसे भी अवेद्य ब्रह्मकी मैं बन्दना करता हूँ कि जो ब्रह्म मांस स्वार्थादिमें तत्पर चित्तवाले पर सुखसे बिमुख क्रोध लोभसे अभिभूत पुरुषोंसे कभी ऐसा नहीं जाना जा सकता कि जैसा शम दमादि में निरतसे यह जाना जाता है ॥

॥ इति सटीकं चतुर्थं बिप्रमतीसीप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथपञ्चमहिंडोला प्रकरण

१ प्रथमहिंडोला

भरम हिंडोलाना, (जामें) सब जग झूलै आय ॥
पाप पुण्य के खम्भ दोऊ, मेरु माया मानि ।
लोभ मरुआ विषय भँवरा, काम कीला ठानि ॥
शुभ अशुभ बनाय डाँड़ी, गह्यो दोनों पानि ।
यह कर्म पटरी बैठिके, (को) को न झूलै आनि ॥
झूलै तो ब्रह्मादत्त शिव, झुलै (तो) सुरपति इन्द्र ।
झूलै तो नारद शारदा, झुलै व्यास फणीन्द्र ॥
झूलै तो गण गन्धर्व मुनि, झुलै सूरज चन्द ।

आपु निर्गुण सगुण होके, झूलिया गोविन्द ॥

छ्यारि चौद सात इक्कीस, तीनिलोक बनाय।

खानि बानी खोजि देखहु, स्थिर कोइ न रहाय ॥

खण्ड ब्रह्मण्ड खोजि देखहु, छूटत कतहुं नाहिं।

साधु सन्त बिचार देखहुं, जिव निस्तरि कहँ जाहिं ॥

(जहँ) रैनि दिवस न चन्द सूरज, तत्व पल्लव नाहिं।

काल अकाल प्रलय नहिं (तहँ), सन्त बिरले जाहिं ॥

तहँ के बिछुरे (बहु) कल्प बीते, भूमिपरे भुलाय।

साधु सङ्गति खोजि देखहुं, बहुरि (न) उलटि समाय ॥

यहि भूलवे की भय नहीं, जो होहिं सन्त सुजान।

कहहिं कबिर सत सुकृत मिलै [तो], बहुरि न झूलै आन ॥

टीका—विप्रमतीसीके अन्तमें कहा गया है कि एकही आत्मा सबमें व्यापक है। जिसमें भौतिक शरीर सम्बन्धी नामादिकृत भेदसे भी कभी भेद नहीं होता है। और सूक्ष्मसंघात विशिष्ट जीवात्मामें भी जाति वर्णादिकृत भेदका अभाव ही है, परन्तु उक्त आत्मतत्त्वके अज्ञान विपरीतज्ञानसे जीव सब संसार रूप सागरमें बहतेहैं इत्यादि। अब इस हिंडोला प्रकरणमें उक्त अज्ञान विपरीत ज्ञानादिसे अनेकों ऊंच नीच लोक योनि अवस्था आदिमें प्राप्ति रूप झूलनाका तथा उसके हेतुओंका स्पष्ट वर्णन किया जाताहै। और पाप पुण्यादि रचित संसार शरीरादिको हिंडोलारूप बताया जाताहै, संसारी जीवको झूलन हार रूपसे वर्णन किया जाता है कि भ्रम हिंडोलना इत्यादि। विपरीत मिथ्या ज्ञान और उसके मिथ्या विषयको भ्रम अध्यास अवभासादि कहते हैं, इससे 'ना' यानी पुरुष को, अर्थात् जीव को जो शरीर, स्त्री, पुत्र, धन, लोक और परलोकादिकमें आत्मत्व, आत्म-सम्बन्धित्व, सुखप्रदत्व, पवित्रत्व, नित्यत्व, सुख रूपत्वादिके भ्रम होते हैं, तथा आत्मामें जो एकदेशित्व, सुखित्व, दुखित्व, क्रियावत्व, संसर्गित्व, पर प्रेर्यत्वादिके भ्रम होते हैं, सो भ्रम और इनके विषय ही एक हिंडोला हैं। अर्थात् इन भ्रमोंसे सिद्ध जन्म मरणादिक युक्त संसार एक हिंडोलाहै। अथवा 'ना' माने हेपुरुषो! भ्रमरूप ही पाप पुण्य माया लोभादिके समुदायरूप हिंडोलाहै, जिस हिंडोलामें आकर सबजग झूलना है, अर्थात् सब संसारी जीव झूलते हैं। या ना (चेतन रूप पुरुष) में जो भ्रमरूप हिंडोला है, उसमें सब जीव आकर झूलते हैं यानी ऊंच नीच योनि आदिमें जन्म लेकर कर्मादिके अधीन सुखित्व दुःखित्वादि रूप ऊँच नीच अवस्थाओंको प्राप्त होतेहैं। भ्रम-सिद्ध हिंडोलाके स्वरूपका वर्णन करतेहैं कि ब्रह्महत्या सुरापानादि जन्य, तथा गो भूमि हिरण्य दानादि जन्य जो अन्तःकरणकी वृत्ति अदृष्ट

स्वरूप पाप पुण्य होते हैं, उनके दो खम्भेहैं. यानी संसारात्मक हिंडोलाके प्रधान कारण विशेषहैं, और अज्ञान मोहादिरूप मायाको मेरु मानो अर्थात् दोनों खम्भों पर रहनेवाला खम्भेके सदृश मायाको जानो। अर्थात् जैसे मेरु स्तम्भोंके ऊपर और दोनोंके सम्बन्धी तथा हिंडोलाके आश्रय होता है, वैसे ही पाप पुण्यके कारण वक्ष्यमाण हिंडोलाके आश्रय माया है। और धनी लोग हिंडोलेके पासमें छायाके लिये मेरु स्तम्भके पासमें मरुआ नामक लकड़ी लगाकर जहाँतक हिंडोलेके भ्रमनेके स्थान रहता है वहां तक छाया करवाते हैं। प्रकृतमें लोभ मरुआ है, और शब्दादि पाञ्च विषय भवँरा हैं, यानी हिंडोलाके भ्रमनेके लिये स्थान रूपहैं। अथवा विषयी लोग सुगन्धके लिये हिंडोले पर मरुआ आदि पुष्प भी बांध देते हैं, जिसका लोभसे वहां भवँरा नामक कीट विशेष आते हैं. प्रकृतमें लोभ मरुआ है, और विषय भवँरा है, क्योंकि लोभसे विषय प्राप्त किये जाते हैं । अथवा रस्सी गांठ आदि रूप मरुआ आदिके सदृश लोभादि हैं, और काम ही पापादिको परस्पर सम्बन्ध रखने वाला कीला (खूंटा) रूप ठाना गया है, (बनाया गया है) जिससे स्तम्भ-मेरु परस्पर बँधे रहते हैं, अर्थात् कामसे ही लोभ पापादि सब उत्पन्न होते हैं। और अपने कार्योंके लिये समर्थ होते हैं। और कर्मादि तथा अज्ञान विपरीत ज्ञानादिसे शुभ अशुभ पदार्थ शरीरादि रूप 'डांड़ी' नाम पकड़नेके लिये दण्डादि रूप बनाकर जीव सब दोनों पाणि (दोनों हाथों) से पकड़े हैं, तथा पाणिके सदृश अज्ञानयुक्त मन बुद्धि से वा ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रियोंसे गहे हैं । अथवा शुभ अशुभ दोनोंको जीव सब पाणि में गहेहैं। और साहेब कहते हैं कि उन शुभ अशुभ डाँड़ियों को पकड़ कर तथा प्रसिद्ध शुभ अशुभ कर्म रूप पटरी पर बैठ कर पूर्व बर्णित हिंडोले पर आन (आकर) के कौन नहीं झूलता है ? अर्थात् मानसिक, वाचिक, शारीरिक, शुभाशुभ, कर्म व्यापार रूप पटरी युक्त पुण्य पाप रचित माया मोह युक्त शरीर संसाररूप हिंडोलाको विषय भोगादि की कामनासे प्राप्त करने पर सब प्राणी झूलते हैं, यानी सुख, दुःख, ऊंच, नीच, अवस्थामें सबही प्राप्त होते हैं। इससे शुभ अशुभ दोनों विषयों की कामनाओंको त्यागना चाहिये ॥ इस हिंडोलेमें आकर और अपने कर्म रूप पटरी पर बैठ कर ब्रह्माजी तथा दत्त (दत्तात्रेय) शिवजी भी झूलते हैं, तथा सुरपति (देवपति इन्द्र) झूलते हैं, देवर्षि (नारद जी) झूलते हैं, तथा ब्रह्माजी की स्त्री सारदा [सरस्वती] झूलती हैं और व्यासदेव जी, तथा फणीन्द्र [शेष नाग] भी झूलते हैं। और विश्वावसु, तुषित, भास्वर, अनिलादि नामवाले गण देवता गन्धर्वदेव और मुनि लोग भी झूलते हैं, और सूर्य चन्द्रमा झूलतेहैं। अर्थात् ब्रह्मा आदिमें जो प्रथम हो चुके सो झूल चूके,और जो वर्तमानहैं सो सब झूल रहे हैं। और साहेब कहते हैं कि जो स्वयं स्वरूपसे आप निर्गुण है, सोई 'गोविन्द' अर्थात् मन आदि इन्द्रियोंको उपाधिरूपसे स्वीकार लाभ करनेवाला ब्रह्मात्मा ही सगुण ब्रह्म आदि रूप होकर झूलिया [झूला] और झूलता है। अर्थात् आप स्वयंनिर्गुण है परन्तु अन्तःकरणमें छाया,पड़ने से और अविवेकसे सगुण भासता है, तथा झूलता हुआ भासता है। अथवा गोविन्द नामवाले जो विष्णु हैं सो आप निर्गुण होकर यानी गुणमय स्थूल शरीरसे रहित होकर, और सगुण होकर, यानी स्थूल शरीर सहित होकर झूले। अथवा गोविन्द [मायी ईश्वर रूप पुरुष] ने ही सोपाधि निरुपाधि

दृष्टिसे सगुण निर्गुण सबरूपसे भूला और भूलताहै। अथवा जीवोंके प्रति कहतेहैं कि हे गोविन्द! [हे इन्द्रियादिके लाभ करनेवाले जीवो!] तुम आप निर्गुण स्वरूप हो, परन्तु अज्ञानसे सगुण होकर भूलिया, यानी संसार में भूलने लगे हो। और यह गोविन्दरूप ब्रह्मात्माने वा विष्णुरूप प्रजापतिने छ [छौ]। चार चौदह, एकईस, भूलनेकी सामग्रीको बनाकर पूर्वोक्त भूलने पर भूलता है। वहां, जन्म, सत्ता, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, नाश रूप वा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, रूप, वा जन्म, मरण, क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, रूप अथवा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, रूप पाञ्च तन्मात्रा और अहंकार रूप कार्य कारणात्मक छौ वस्तुको बनाया, और जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, चारखाना रूप वा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारात्मक अन्तःकरण की वृत्तिरूप वा बाल, किशोर, युवा, वृद्ध, चार अवस्था रूप वा सतयुगादि चारयुग रूप अवस्थात्मक वस्तुको बनाया, और चौदह भुवन वा चौदह मन्वन्तरको बनाया अथवा [चतुर्दश त्रिधो भूतसर्गः] इस सूत्रसे कहे हुये, ब्राह्म, प्रजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस, पैशाच, ये आठ प्रकारके देवसर्ग और पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप, स्थावर, ये पाञ्च प्रकारके तिर्यक् सर्ग और एक प्रकारके मानव सर्ग मिलाकर चौदह प्रकारका सर्ग बनाया। और [सप्तास्यासन् परिधय स्त्रिसप्त समिधः कृताः] इस पुरुष सूक्तके मन्त्रमें कहे गये पृथिवीके वा विराट् पुरुषके परिधि रूप सात समुद्रको, वा पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, को अथवा गायत्रादि रूप सात छन्दोंको बनाया, और त्रिसप्त [एकईस] समिध, [लकड़ी] सदृश यज्ञके साधनोंको बनाया, अर्थात् पाञ्च भूत, पाञ्च विषय, पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पाञ्च कर्मेन्द्रिय, मन, इन एकईस लकड़ी रूपसे कल्पित समिध नामक वस्तुको बनाया, और स्वर्गमर्त्य पाताल रूप, वा उत्तम मध्यम कनिष्ठ रूप तीन लोक को बनाया, और इन सबको बनाकर इन ही में भूलने लगा, इससे खानी बानी सबमें खोजकर देखो कि कोई भी स्थिर नहीं रहता है। अथवा ब्रह्मा आदि सब भूलते हैं यह बात कैसे निश्चय किया जाय ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि छः शास्त्रादिमें और चार वेद चार खानि आदिमें और चौदह विद्या भुवनादिमें और गायत्री आदि सात छन्द सात द्वीप सात समुद्रादिमें और—

(ऋग्वेदस्य शाखाः स्यु रेकविंशतिसंख्यकाः। नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज ॥१॥ सहस्रसंख्यया जाताः शाखाःसाम्नः परंतप। अथर्वणस्य शाखाः स्युःपञ्चासद्भेदतोहरे॥२॥कल्पो व्याकरणं शिक्षा निरुक्तं ज्योतिषं छन्द एतानिषडङ्गानि॥३॥ उपाङ्गमयनं चैव मीमांसान्यायविस्तरः। धर्मज्ञसेवितार्थंच वेदवेदोऽधिकं तथा ॥ ४ निबन्धाः सर्वशाखाश्च समयाचारसङ्गितिः। धर्मशास्त्रं महर्षीणा मन्तःकरणसम्भूतम् ॥५॥ इतिहास पुराणाख्य मुपाङ्गं च प्रकीर्तितम्। वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चतथामुने। आयुर्वेदश्च पञ्चैते उपवेदा प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥ दण्डो नीतिश्च

वार्ता च विद्या वायुजयः परः। एकविंशतिभेदोऽयं स्वप्रकाशः प्रकीर्तितः ॥७॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ।नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव वा॥८॥संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् संहतं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृतिकम् ॥ ९ ॥

लोहशङ्कुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीनदीम् ।असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेवच॥ १० ॥

इन बचनों में कहे गये ऋग्वेद की एकईस शाखाओं में अथवा स्वप्रकाश, यानी स्वतः प्रमाण रूप माने गये, कल्पादि छः अङ्ग, उपाङ्ग अयनरूप मीमांसा न्याय के विस्तार, वेदोंके वेद रूप वा उससे भी श्रेष्ठ जो धर्मज्ञसे सेवित अर्थवाला शास्त्र, सब निवन्ध वेदों की सब शाखाओं, समय [नियम] और आचार की सङ्गति, महर्षियों के अन्तःकरण से सिद्ध धर्मशास्त्र ये छौ उपाङ्ग और इतिहास पुराण के समुदाय रूप उपाङ्ग, और वास्तुवेद धनुर्वेद, गान्धर्व वेद और आयुर्वेद रूप पाञ्च उपवेद और दण्ड, नीति, वार्ता, वायु को जीतना रूप श्रेष्ठ योगविद्या, इन सबके समुदाय रूप एकईस में और इनसे भिन्न भी जो अनेकों खानि बानीहैं उन सबों में वा तामिस्र अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कालसूत्र, महानरक, संजीवन, महा बीची, तपन, संप्रतापन, संहत, सकाकोल, कुड्मल, पूतिमृतिक लोहशङ्कु, ऋजीष, पन्थ शाल्मली नदी, असिपत्रवन, लोहदारक, इन एकईस नरकों में खोजकर देखो, और तीन लोकों में भी बनाय [अच्छी तरह खोज] कर देखो, और खानी बानी को बिचार दृष्टि से बना कर देखो तो निश्चय होगा कि ब्रह्मा आदि कोई भी स्थिर रहने वाले नहीं हैं। और हे जिज्ञसुओ ! नवखण्ड तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में तुम खोज कर नाम बिचार कर देखो, शास्त्र सिद्धि आदि द्वारा अनुभव करो तथा समझो कि कहीं भी कोई विशेष नामरूपादि वाले झूलने से नहीं छूटते हैं, किन्तु जन्ममरण गमनागमन रूप झूलने में पड़े हैं। इससे हेसाधु यानी सज्जन ऊहापोह में कुशल जिज्ञासुओ ! सज्जन ज्ञानी महात्माओं के साथ बिचार कर देखो तथा जानो कि जीव कहां जाकर निस्तार मुक्ति पाते हैं? अर्थात् कहीं जाने से भी ज्ञानादि बिना मुक्ति नहीं पाते हैं, सो समझो। अथवा जीव मुक्त होकर कहाँ जाते हैं ? यह बिचार से जानो देशादि में जाना तो भुलना ही है, इसलिये देशादि में जाना नहीं जानो, किन्तु उनसे भिन्न आत्मस्वरूप मात्र को बिचारादि से समझो जिसकी गमनादि बिना ज्ञानादि से प्राप्ति होती है, और जिसमें रात दिन चन्द्र सूर्य नहीं हैं, तथा पाञ्च तत्त्व और इनका पल्लव [विस्तार] भी जिसमें नहीं है, और काल [अच्छा समय] तथा अकाल [बुरा समय] तथा प्रलय [नाश] भी जिसमें नहीं है, अर्थात् रात दिनादि से असङ्ग सदा एक रस अविनाशी जो वस्तु है उस नित्य मुक्त आत्मस्वरूप में कोई विरले ज्ञानी सन्त जाते हैं यानी प्राप्त होते हैं आवागमनादि से रहित स्वरूप से स्थिर होते हैं। हे साधु सन्तो ! उसीको बिचार कर देखो हे सज्जनो ! महा प्रलय काल में तुम उसी में लीन होते हो, और सृष्टि काल में अज्ञान से बिछुरते हो, इससे तुझे वहांके बिछुरे कल्पों बितते हैं, और उससे बिछुर कर[वियुक्त होकर] भूमि आदि में तथा पार्थिवादि शरीरों में पड़कर यानी अभिमानादि करके भुले रहते हो, वा भुलाय कर भूमि में पड़े हो, अर्थात् अनादि

कालसे अज्ञान बश वियुक्त होकर संसार में झूलते हो इससे साधु महात्माओं के सङ्गतमें उक्त आत्म-वस्तु को खोजकर देखो जिससे बहुरि [फिर] भी इस संसारसे उलट कर [संसारसे रहित होकर] इसकी बासना अज्ञानादि को त्याग कर तुम उस आत्म वस्तु में समा जावो । भाव यह है कि प्रलय सुषुप्ति आदि कालमें मन आदि रूप उपाधि सहित जीव ब्रह्मात्मा में लीन होते हैं, परन्तु अज्ञान रूप कारण के विद्यमान रहने से फिर भी मन आदि सहित प्रगट होते हैं । और तुम साधु सङ्गमें आत्मा को जानो, जिससे मन आदिके समूल नष्ट हो जानेसे तुम उलट कर समा जावो, और फिर कभी उत्थान नहीं होवे तथा झूलना छूट जावे, क्योंकि जो कोई सुजान [सुन्दर ज्ञानी सन्त] होते हैं, उन्हें इस झूलेका भय नहीं रह जाताहै । जिज्ञासा हुई कि पुरुष सुजान सन्त कब होता है ? तब साहेब कहते हैं कि सत [सत्य वक्ता] और सुकृत [ज्ञानादिसे पवित्रात्मा] गुरु जब मिलें तो ज्ञानकी प्राप्ति हो जानेसे जीव फिर इस संसारमें आन [आकर] नहीं झूलता है । अथवा सत [श्रेष्ठ] और सुकृत [निष्काम कर्म जन्य पुण्य] जब जीवको मिलता है तब जीव सुजान सन्त होता है, और मुक्त होता है, इससे फिर अन्य योनि आदिमें नहीं झूलता है । इसलिये सत सुकृतादिकी प्राप्ति करके जन्म मरणादि रूप झूलेसे रहित होना चाहिये । भ्रम हिंड़ोलना झूलै सब जग आय ऐसा पाठ भेद आदिमें है । और बहुरि उलटि समायके बहुरि न उलटि समाय पाठ भेद है । तब अर्थ है कि साधु सङ्गतिमें खोजकर आत्म वस्तुको देखो तथा जानो जिससे तुम फिर पूर्वोक्त झूलनेमें [गर्भादिमें] नहीं समावोगे इत्यादि ॥ लिखा है कि—

भ्रमति प्रकृतिस्ताव त्संसारे भ्रमरूपिणी । स्पन्दमात्रात्मिका सेच्छा चिच्छक्तिः पारमेश्वरी ॥ १ ॥ धर्मरज्ज्वा ब्रजेदूर्ध्वं पापरज्ज्वा ब्रजेदधः । द्वयं ज्ञानासिना छित्वा विदेहः शान्ति मृच्छति ॥ २ ॥ शुभैः प्रयोगैर्देवत्वं व्यामिश्रै र्मानवो भवेत् । अशुभैः केवलै श्चैव तिर्यग्योनिषु जायते ॥३॥

चेतनकी शक्ति रूपी परमेश्वर सम्बन्धिनी चैतनके स्पन्द रूप होनेसे भ्रमरूप मायी चेतनकी इच्छा रूपी प्रकृति संसारमें तबतक भ्रमती रहती है जबतक कल्याण स्वरूप आत्माको नहीं जानती है ॥ १ ॥ धर्मरज्जूसे बन्धे हुए जीव ऊपर जाते हैं, अधर्मसे नीचे जाते हैं, और दोनोंको ज्ञान रूप तलवारसे काट करके विदेह मुक्त होकर शान्तिको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ शुभ कर्मादिसे कामी पुरुष देव भावको प्राप्त होते हैं । और अशुभ तथा शुभ मिश्रितसे मनुष्य होते हैं । और केवल अशुभसे तिर्यग्योनिमें जन्म लेते हैं ॥ यहां शुभादिकी बहुलतासे केवल शुभ वा अशुभसे देव तिर्यग् भाव कहे गये हैं, वस्तुतः सब शरीर मिश्रित कर्मके ही फलहैं । और सुख दुःख दोनोंके हेतु हैं सो शास्त्र और अनुभवसे सिद्ध है ॥ ३ ॥

२ द्वितीयहिंड़ोला।

बहुविधि चित्र बनाय के हरि, रची क्रीडारास।
जेहि झूलवे कि इच्छा नहिं, अस बुद्धि (है) केहि पास॥
झुलत झुलत बहु कल्प बीते, मन नहिं छोड़त आस।
मचो रहत हिंड़ोल अहि निशि, चारियुग चौ मास॥
कबहुं (क) ऊंचे कबहुं (क) नीचे, स्वर्ग भूतले जाय।
अति भ्रमत फिरत हिंड़ोलवा [हो,] नेकु नहिं ठहराय॥
डरपत हौं यह झूलवे कि, राखु (हो) यादव राय।
कहैं कबिर गोपाल विनति, शरण हरि को पाय॥

टीका—पूर्व हिंड़ोलामें सिद्धान्त अर्थको कहकर इस हिंड़ोलासे तटस्थ ईश्वर बादिके मतका वर्णन करते हैं और उसके मतका विपद् वर्णनसे ही उत्तम पुरुषके प्रति उसके मतको तुच्छ दर्शाकर, अन्य पुरुषोंके प्रति तुच्छ दर्शानेके लिये तृतीय हिंड़ोलामें उक्त मतका निराकरण करेंगे। उक्त बादी लोग कहते हैं कि 'हरि' नाम विष्णु भगवान् रूप ईश्वरने ही बहु विधि (अनेकों प्रकारके) चित्र बनाकर यानी भूत, भौतिक, चन्द्र, सूर्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदिरूप कार्य्य आकार को उत्पन्न करके, उक्त हरिने क्रीडाकी रास [राशि, सग्रह] रची है। अथवा गोपी आदिरूप और पूर्व वर्णित स्वरूप चित्र बनाकर उस हरिने रास नामक क्रीड़ा वृन्दावन आदिमें रची है, अर्थात् जीवोंको और अपनेको संसार झूलना रासी क्रीड़ा जन्य आनन्दकी प्राप्तिके लिये ईश्वरने अपनी इच्छासे चित्र बनाया है, और क्रीड़ा रची है, सब संसार ईश्वरकी क्रीड़ा ही रूप है, जीवोंके पाप पुण्य कर्मादिकी ही विशेष अपेक्षा नहींहै किन्तु ईश्वर जैसा चाहताहै. वैसा करताहै, इसीसे वह हरि वृन्दावनमें रास किया, और जय विजयको सनकादिसे शाप दिलाकर राक्षस रूपताको प्राप्त जय विजयसे उक्त हरिने युद्ध किया इत्यादि। और जेहि [जिन पुरुषों] को झूलनेकी इच्छा नहीं होती है 'अस बुद्धि' यानी अनिच्छाके जनक रूप बुद्धि 'के हि पास' होती है वा है, अर्थात् किसी बिरले ज्ञानी महात्माओंके पास ऐसी बुद्धि है, कि जिससे उन महात्माओंको झूलनेकी इच्छा नहीं होती है परन्तु वह भी बुद्धि महात्माओंके अधीन नहीं है। अथवा जेहि [जिस] बुद्धिसे झूलनेकी इच्छा नहीं होती है ऐसी बुद्धि भी किसके पास है? अर्थात् किसी जीवके पास नही है यानी उस बुद्धि की प्राप्तिके लिये कोई भी जीव स्वतन्त्र नहीं है, किन्तु उक्त हरि जैसी बुद्धि देना चाहता है वैसी ही बुद्धि देकर जीवोंके साथ कीड़ा करता है। इसीसे जीवोंको झूलते २ अनन्त कल्प बीत

गये तौ भी इनके मन झूलनेकी आशाको नहीं छोड़ता है, न झूलना छोड़ सकता है, इसीसे अहिर्निशि [रात दिन] उक्त हिंड़ोला मचो रहता है यानी चलता झुलता रहता है। अथवा शुभ अशुभादि डाँड़ी आदिसे मचते रहता है [बनते चलते रहना है] जिज्ञासा हुई कि बर्षाके चतुर्मासेमें लोग प्रायः हिंड़ोला लगाते हैं, प्रकृतमें चतुर्मासा क्या है ? तब कहते हैं कि चार युगही चौमास जानो। और जैसे लौकिक हिंड़ोला कभी ऊपर कभी नीचे पुरुषको ले जाती है वैसे पूर्वोक्त हिंड़ोला भी जीवों को कभी ऊंचे स्वर्ग में, और कबहु नीचे भू [पृथिवी] में वा उसके भी तले [नीचे] ले जाती है। अथवा भूतल [भूमि] में ले जाती है और नीचे ऊपर ले जाने वाली यह हिंड़ोलवा अनन्तों स्थान में आकाश मण्डल में अत्यन्त वेग से भ्रमनी फिरती है और नेकु थोड़ा] भी ठहराय यानी स्थिर नहीं होती है। अर्थात् सभी लोक शरीरादि, क्रिया वा परिणाम से सदा चलाय मान रहते हैं, और उनमें आरूढ़ प्राप्त जीव भी सदा सुख दुख क्रियादि से चलायमान रहते हैं, इससे विचार बुद्धि आदि को भी ईश्वर की कृपा विना कभी नहीं पा सकते हैं। इसलिये 'कवीर लोग' यानी तटस्थ ईश्वर वादी आचार्य लोग 'कहैं' अर्थात् कहते हैं कि हे यादव राय ! [हे यदुवंशी कुलोंके राजा कृष्ण देव !] हे राम ! हे खुदा ! हे शिव आदि ! 'हम सब यह झूलेके लिये डरपत हौं' यानी इस झूले से डरता हूँ,इसलिये अब मुझे आप अपने शरण में राखु [राखिये] हे गोपाल ! अर्थात् हेपृथिवी आदि के पालन कर्त्ता परमेश्वर ! आप की विनती, स्तुति, नमस्कार, विनय से ही आप हरिके शरणको पूर्वके भक्त लोग पाये हैं इसलिये हम भी आपकी बिनती करते हैं। हमारा उद्धार किजिये संसारमें नहीं झूलाइये। अथवा हे हरे ! आपके शरण में प्राप्त होकर हे गोपाल ! आपकी विनती करता हूँ जब आपने पृथ्वी की रक्षा की है, तो मुझ ऐसे दास की रक्षा आपके लिये कठिन नहीं है, इसलिये मुझे भय जनक इस हिंड़ोले से रक्षा किजिये और शरण में रखिये, इस प्रकार कबिर लोग विनती करते हैं॥ अथवा इस हिंड़ोले का दूसरा अर्थ यह है, साहेब कहते हैं कि सर्वात्म स्वरूप हरि को नहीं जानने वाले कामी पुरुषों के लिये हरिने यानी जीवों के अदृष्टों के अनुसार संसारके हरण विस्तार पालन नाशादि करने वाला प्रत्यगभिन्न परमेश्वर ने ही बहु बिधि यानी बहुत रूप [बहुत प्रकार] वाले देव मनुष्यादिक का चित्र बनाकर, उन चित्रों में जीव रूपसे पैठ कर और स्वरूपसे सबका साक्षी अधिष्टान होकर क्रीड़ा की राशि रची है। और क्रीड़ा के लिये स्वर्ग मर्त्य पताल रूपी तथा अनेकों योनि आदि रूपी हिंड़ोला भी रची है। और यह ऐसी माया मय रचना की गई है कि जिससे इन चित्रों का धारण करके स्वर्गादि में जिसको झूलने की इच्छा नहीं होवे ऐसी बुद्धि किस के पास है ? अर्थात् किसी बिरले विवेकी ज्ञानीके पास ऐसी बुद्धि रहती है, जिससे उन्हें झूलने की इच्छा नहीं होती है, इसीसे वे लोग मुक्त होते हैं। और विवेक बुद्धि रहित अज्ञानी जीव इच्छा करके संसार में झूलते हैं, और उन्हें झूलते २ अनन्तों कल्प बीत गये परन्तु उनके मन झूलने की आशा को नहीं छोडता है। और झूलने की आशा को नहीं निवृत्त होने ही से यह हिंड़ोला रात दिन मची रहती है, [जारी रहती है] अर्थात् झूलती रहती है। और चार युग चातुर्मास होने हैं। और इस हिंड़ोलाके बश जीव कभी ऊंचे स्वर्गमें कभी नीचे भूतलमें जाता है।

और यह हिंड़ोला भी अति वेगसे भ्रमती फिरती है इसका थोड़ा भी ठहराव नहीं होता है। और इसे नहीं ठहरने से जीव सब कभी डरते हैं तब कोई कहते हैं कि हे यादव राय कृष्ण ! मैं इस झूलेसे डरता हूँ, इससे मुझे आप अपनें शरणमें रखिये। और आचार्य लोग भी हरि [विष्णु देव] के शरणको प्राप्त करके गोपालादि नामोंसे विनती कहते और करते हैं, परन्तु विवेक ज्ञान इच्छाके अभाव बिना किसीको संसार रूपी झूलाकी निवृत्ति नहीं होती है। इसलिये विवेक वैराग्यादि पूर्वक ज्ञानकी प्राप्ति करनी चाहिये कि जिससे कल्यान होवे। कहैं कबिरके स्थानमें कहहीं कबिर पाठ होय तो डरपत हौं, इत्यादिके यह अर्थ है कि अत्यन्त भ्रम युक्त इस हिंड़ोलापर झूलते २ किसी शुभ कर्मादिके बलसे जब जीवको इस संसारमें दुःख रूपता अनित्यता आदिका विवेकज ज्ञान हो जाता है, तब परमेश्वरसे प्रार्थना करता है कि हे यादव राय ! [हे परमेश्वर !] मैं इस झूलेसे डरता हूँ, इसलिये अब मुझे स्वरूपमें रखिये। और उक्त विनय करने वाले शिष्यके प्रति साहेब कहते हैं कि हे गोपाल ! अर्थात् इन्द्रियोंकी अपनी सत्तासे रक्षा करनेवाले हे जीव ! सर्वात्म स्वरूप हरिके शरणमें प्राप्त होकर उनकी ही विनती करो। अथवा हरि (गुरु) के शरण में प्राप्त होकर पृथ्वी आदिके पालन करनेवाले गोपाल [ईश्वर] की विनती उपासना करो, तथा जानों, जिससे तेरा कल्याण होवे॥ जेहि झूलवे कि इच्छा नहि के जांहि न इच्छा झूलवे की। मचो रहत के, रच्यो रहस। अतिभ्रमत फिरतके अति भ्रमित भरम ये पाठभेद हैं। वहां रच्यो रहस पाठ का भाव यहहै कि मन झूलने की आशा को नहीं छोड़ताहै, उसमें कारण यह है कि यह हिंड़ोला बड़ा रहस यानी गुप्त भेदयुक्त रची गयी है, अर्थात् असत्य होते भी सत्यकी नाईं, दुःखद होने भी सुखद की नाईं रची गयी है, तथा स्त्री, पुत्र, पशु, पक्षी, सूर्य, चन्द्रादि अनेकों रोचक मोह जनक, स्वादु, आदि पदार्थों के सहित रची गयी है। इससे दुःख होने पर भी जीव इसकी इच्छा करता है बासना रहित नहीं होता है, और इच्छा तथा वासना से ऊँचे नीचे आता जाता है इत्यादि। और अति भ्रमित भरम का भाव यह है कि यह भ्रम रूपी हिंड़ोला अत्यन्त भ्रमण युक्त है। अथवा भ्रम रूपी हिंड़ोला से ही जीव अत्यन्त भ्रम युक्त हुये हैं इससे न हिंड़ोला ठहरती है न जीवों के चित्त में नेकु ठहराव होता है, और ठहराव नहीं होने से जीव डरपते हैं इत्यादि॥ ब्रह्म संहिता में लिखा है कि

यच्छक्तयो विश्वमलं सृजन्ति रक्षन्ति निघ्नन्ति जनेषु विश्यन। तन्नामरूपाकृतिभिः स्वयंच विभिन्न चास्ते हि महाविभूतौ॥ १ ॥ उभयोरात्मभूतोऽयं स्वतन्त्रो धारको हरिः। प्रेरको मारको लिप्तो भोजको भोगवर्जितः ॥ २ ॥

जिस हरि की शक्तियां विश्वको अच्छी तरह सिरजती हैं, तथा रक्षा करती हैं और हरि भी जनों में प्रविष्ट हो कर उनके नाम रूप आकृति से स्वयं भी भिन्न होकर महा बिभूति में रहते हैं॥ १ ॥ और चित् अचित् रूप दोनों शरीर के आत्मा रूप यह हरि स्वतन्त्र हैं। और धारक है तथा प्रेरक और मारक है तथा लिप्त नाम सङ्गवाला है और भोजक है परन्तु स्वयं संसार का भोगसे रहित है॥ २ ॥

रमणार्थमिदंसर्वं ब्रह्मैव स्वेच्छयाऽभवत् । यथा सर्पः स्वेच्छया हि कुण्डलाकारतां गतः

क्रीड़ाके लिये ब्रह्म ही अपनी इच्छासे इस सब संसार रूप होगया, जैसे सर्प अपनी इच्छा से कुण्डलाकारताको प्राप्त होता है यह शुद्धाद्वैत मार्तण्डमें लिखा है । विशेष विचार उपोद्घातसे जानने योग्य है ।

३ तृतीय हिंडोला ।

लोभ मोह के खम्भ दोऊ, मनसे रची हिंड़ोर ।
झुलहिं जीव जहान जहंलो, कतहूं नहिं थित ठौर ॥
चतुर झुलहिं चतुराइया, झूलहिं राजा शेश ।
चान्द सूर्य दोउ झूलहिं, उनहुं न भौ उपदेश ॥
लक्ष चौरासि जिव झूलहिं, रवि सुत धरिया ध्यान ।
कोटिन कल्प युग वीतिया, अजहुं न मानै हान ॥
धरति अकाश दुइ झूलहीं, झूलहिं पवना नीर ।
देह धरे हरि झूलहीं, देखहिं हंस कबीर ॥

इति श्री १०८ सद्गुरु कबीर साहब कृत बीजकाख्य ग्रन्थस्य
पञ्चमं हिंड़ोलाप्रकरणं समाप्तम् ।

टीका—पूर्व हिंड़ोलामें वर्णित बादीके मतका निषेध पूर्वक सिद्धान्तका वर्णन इस हिंड़ोलामें साहेबने किया है । वहाँ अर्थ सिद्ध निषेधका यह तात्पर्य नहीं है कि संसारके कारण ईश्वर नहीं है, किन्तु बादीसे माना हुआ ईश्वर, सम्पूर्ण संसार रूपी हिंड़ोलाका कारण नहीं है न हो सकता है, और प्रत्यगभिन्न परमात्मा भी संसार को विशेष कारण नहीं है. तथा स्वतन्त्र कारण नहीं है । इससे जीवोंके लोभ मोह काम कर्मादिकी अपेक्षा प्रधान कारण भी नहीं है, किन्तु जीव तथा जीवोंके लोभ मोह अदृष्टादि संसारके विशेष कारण हैं । और जीवोंके कर्मापेक्ष ईश्वर साधारण कारण है । इस आशयसे कहते हैं कि सब अनर्थोंके कारण जो लोभ और अविवेक, मिथ्या ज्ञान आसक्तिरूप जो मोह उन लोभ मोहोंके दो खम्भे हैं, यानी संसार रूपी हिंड़ोलाके प्रधान कारण आधर रूपहैं । अर्थात् जैसे पाप पुण्य प्रधान विशेष कारण हैं, वैसेही लोभ मोह भी हैं। और समष्टि व्यष्टि जीवोंने अपने २ मन से मेरु डांड़ी पटरी आदि बनाकर संसार रूपी हिंड़ोर [हिंड़ोला] रचाहै ।

भाव यह है कि विषयाशक्त पुण्य, पाप, लोभ, मोह, युक्त अन्न तथा अशुद्ध मनसे ही व्यष्टि जीवोंको जन्म मरणादि लोकान्तर योन्यन्तरमें गमनागमनादि रूप सब दशाकी प्राप्ति होती है। और हिरण्य-गर्भादि भी अन्य सब जीवोंके कर्म बासनासे बासित बुद्धि तत्त्वसे ही सृष्टि करते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि 'मनसे' यानी समष्टि व्यष्टि रूप मन बुद्धिसे, अर्थात् अन्तःकरणसे ही यह संसार रूपी हिंडोला रची गयी है। और अपने २ मनसे हिंड़ोलाके रचनेसे ही अपने २ मनसे रच कर जहान [संसार] में जहं लो [जितने] जीव हैं, वे सब झूल रहे हैं, अर्थात् अपने अपने काम कर्म बासना आदिके अनुसार जन्मते मरते आदि हैं। यदि किसी तटस्थ ईश्वरादिके क्रीडा रूप संसार होता तो कोई २ अज्ञानी वैराग्यादि रहित जीव भी नहीं झूलते, किन्तु जैसे लौकिक क्रीड़ाको बहुत लोग तटस्थ होकर देखते हैं क्रीड़ा करने झूलने आदि वाले नर्तकादि न्यून होते हैं, वैसेही तटस्थ ईश्वरादि क्रीड़ा करते और अन्य जीव आनन्द पूर्वक देखते, और कामादिके बश होकर दुःखी नहीं होते, और ऐसा होता नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि सब जीव अज्ञान काम कर्मादि सहित अपने २ मनसे हिंड़ोल रचे हैं और झूलते हैं। और ईश्वरको स्वतन्त्र जगतका कारण मानने पर ईश्वरमें बिषमता निर्घृणता आदिकी भी प्राप्ति होती है, सो ईश्वरमें क्या कहना है, भले मनुष्यमें होना भी अनुचित है, इसलिये स्वतन्त्र तटस्थादि रूप ईश्वर जगतका विशेष कारण रूप नहीं है, किन्तु लोभ मोह मन आदि विशेष कारण हैं। और सर्वात्मस्वरूप ईश्वर साधारण कारण है। और हिंड़ोला तथा झूलनेके कारण रूप बासना काम कर्मादि सहित मन सब जीवोंके साथ रहतेहैं, इस से अशेष वासना आदिकी निवृत्ति होने बिना जीवोंकी, स्थितिके ठौर [स्थान] 'कतहुं नहींहै' अर्थात् ज्ञानादिसे बासना आदि की निवृत्ति होनेपर अपना स्वरूप ही स्थित ठौर है अन्य कहीं नहीं है न कोई रक्षा 'ही करनेवाला है। और स्थितिके ठौर अपने स्वरूपको नहीं जाननेसे चतुर लोग व्यवहारादिकी चतुराईसे संसारमें झूलते हैं, अर्थात् व्यावहारिक चतुर लोभादि बश संसारमें भटकते हैं, और पृथ्वीको पालन करनेवाला राजा, राज्यादिके लोभादि बश झूलते हैं। और पुराणसे सिद्ध पृथ्वीको धारण करनेवाले शेष नागादि पृथ्वीको धारण करना आदि रूप व्यापारमें झूलते हैं। अथवा शास्त्रादिमें कुशल चतुर ब्राह्मण शास्त्र सम्बन्धी लोभादि मूलक चतुराईसे झूलते हैं, तथा राजा [क्षत्री] भी झूलतेहैं, यानी ज्ञान बिना भ्रमतेहैं, और शेष यानी ब्राह्मण क्षत्रीसे अन्य यावत् अज्ञानी मनुष्य झूलते हैं। अथवा शेष यानी प्रलयकालमें भी अवशेष रहनेवाला अबिनाशी आत्म-स्वरूप राजा [ज्ञानी] भी शेष प्रारब्ध कर्म पर्यन्त झूलते हैं, फिर उन्हें नहीं झूलना होता है। और चाँद सूर्य नाम उन लोकोंके अभिमानी देवता वा उन लोकोंके बासी लोभ मोहादि बश झूलते हैं, क्योंकि उन्हें भी अनेकों दशा आदिकी प्राप्ति रूप झूलनेसे बचनेके लिये उपदेश नहीं हुआ है। भाव यह यह है कि जो कोई शरीरको धारण करके संसारमें श्रेष्ठ पद वा हीन पदको प्राप्ति किये हैं, सो सब अज्ञान लोभ मोहादि मूलक कर्मके फलोंको भोगनेसे संसार रूपी हिंड़ोले में झूल रहे हैं। क्योंकि ज्ञानोपदेश अपरोक्ष अनुभवादि दशा में बन्धन जन्मादि के हेतु रूप कर्म नहीं होते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि प्रथम हिंड़ोला में कहे ब्रह्मा आदि, और इस हिंड़ोला

में वर्णित चतुरादि, सब कोई उपदेश की अभाव दशा के कर्मोंके फलको भोगते हैं और भोगेंगे। और ज्ञान होने पर भी प्रारब्ध कर्म अवश्य भोगने पड़ते हैं। और लोभादि वश किये गये कर्म बश चौरासी लाख योनि के जीव सब भी झूल रहे हैं। और इन्हें पकड़ने के लिये रवि सुन [यम मृत्यु] ध्यान धरा है। अर्थात् अज्ञानी जीव सब शरीरों में आसक्त हो कर इसी में सुख आदि चाहते हैं। और कर्मानुसार मरणादि दुःख देने वाला यम चूहेके ऊपर बिलार की नाईं इनके ऊपर सदा ध्यान लगाये रहताहै। इससे वह यम इन जीवोंको कहीं भी सुख पूर्वक स्थिर नहीं रहने देता है। और साहेब कहते हैं कि इन जीवों के ऐसे ही झूलते २ अनन्तों कोटि कल्प और युग बीत गये। अर्थात् चौरासी लाख योनियों में अनादि कालसे जीव सब भ्रम रहे हैं, तौभी ये जीव सब अजहुं [अब भी] हान [हानि] नहीं मानते हैं, अर्थात् लोभादि करने से तुच्छ सुख मिलते हैं, और गर्भवास जन्म मरणादि सम्बन्धी महा कष्ट भोगने पड़ते हैं सो जीव सब नहीं समझे हैं, यह मोह की अपूर्व महिमा है, जिससे लोभादि करके सब झूल रहे हैं। और धरती [पृथिवी] उसकी अभिमनी देवता उसके ऊपर बसने वाले, और आकाश [स्वर्ग] वा भूताकाश उसकी अभिमानी देवता ये दोनों कोटि वाले भी झूलते हैं, अर्थात् उत्पत्ति नाश जन्म मरणादि को प्राप्त होते हैं। और पवन [वायु] उसके अभिमानी देवता और नीर [जल] उसके अभिमानी देवता आदि भी झूलते हैं। और जिस हरि की क्रीड़ा रूप संसार को लोग क ते हैं, वे हरि भी देहको धारण करके झूलते हैं, यानी अनेकों अवस्था आदि में प्राप्त होते हैं, सो हंसकबीर देखते हैं, अर्थात् सत्यासत्य ईश्वरानीश्वर आत्मानात्मादि के विवेक शील जीव इस बातको जानते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि भूत भौतिक संसार जीवोंके कर्मादिके अधीन उत्पन्न नष्ट हो रहे हैं। और जीव सब अज्ञान लोभादि मूलक कर्म बश ही संसार में झूल रहे हैं। कर्मादि निरपेक्ष स्वतन्त्र किसी ईश्वरादि की क्रीड़ा रूप संसार वा झूलना नहीं है। जो कहीं संसारको क्रीड़ा रूप सत शास्त्रमें लिखा है, उसका अनायास रचना, और स्वात्मसम्बन्धी प्रयोजन निरपेक्ष रचना मात्रमें तात्पर्य है, कर्मादि निरपेक्ष रचना आदिमें उसका तात्पर्य नहीं है। और द्वितीय हिंड़ोलाके द्वितीय अर्थ पक्षमें, अन्य रीतिसे भी हिंड़ोलाके वर्णनमें, तथा मानस हिंड़ोलाको ही दुःखके साधन रूप बतलानेमें साहेब का तात्पर्य है। और जहान के सब जीव मानस हिंड़ोला पर झूलते हैं, इससे उन्हें कहीं स्थिर क्रिया रहित ठौर नहीं मिलता है। और चतुर राजा शेष ये सब चतुराई में झूलते हैं, यानी चतुराई पूर्वक क्रिया करके झूलते हैं। जिज्ञासा हुई कि कहां झूलते हैं? तब साहेब कहते हैं कि चन्द्र सूर्य लोक रूप दोनों स्थानमें चतुर लोग झूलते हैं। क्योंकि उन कर्मों आदिकोंको झूलनासे रहित करनेवाला उपदेश नहीं प्राप्त हुआ है। और चौरासी लाख योनिमें भी जीव झूलते हैं, वहां रवि सुत इनके ऊपर ध्याम धरे रहता है। और करोड़ों कल्प युग बीत गये परन्तु वह यम अब भी इन अज्ञानियोंको मारनेमें हानि नहीं मानता है। ये जीव सब धरती आकाश दोनोंमें तथा पवन नीर दोनोंमें भी झूलते हैं, अर्थात् पाञ्चों तत्त्वों में और भौतिक सब शरीरोंमें झूलते हैं, और मनसे सब हिंडोले को रचते हैं, क्योंकि ये सब जीव

जीव परमात्मा स्वरूपहीहैं। इसीसे हंस कबीर (बिबेकी जीव) देखतेहैं, कि आप सर्वात्म स्वरूप हरिने ही मनमायासे कल्पित देहोंको बना कर, और आभास सहित अन्तःकरणादि रूप उपाधि द्वारा उन देहोंको धारण करके वह हरि आपही जीव रूपसे भूलता है। इत्यादि अर्थ है॥ लिखा है कि—

चिद्व्योम्नोऽत्यजतो रूपं स्वप्नवद् व्यस्तवेदनम्। तदिदं हि मनोराम ब्रह्मेत्युक्तः पितामहः॥ १॥ मनएव स्वयं ब्रह्मा स सर्गस्य हृदि स्थितः। करोत्यविरतं सर्वमजस्रं संहरत्यपि॥२॥ यत्र वेत्ति तु जीवत्वं तत्राविद्येति तिष्ठति। तत्र संसृतिनाम्नात्मा धत्ते रूपं तथा स्थितम्॥३॥ स्वयमेव हि कालेन बुद्ध्वास्वंरूपमात्मनः। स्वयमेवस्वरूपस्थं ब्रह्मैव भवति स्वयम्॥ ४॥

अविक्रिय शुद्ध रूपको नहीं त्याग कर जो चिदाकाश मायासे व्यस्त व्याकुल रूप देखता है, हे राम! सो देखना ही मन है। और उस मनको ही ब्रह्मा तथा पितामह कहते हैं॥१॥ मनही स्वयं ब्रह्मा है, सो संसारके हृदयमें स्थिर है, और निरन्तर सब को उत्पन्न तथा नष्ट करता है॥ २॥ और आत्मा जहां जीवपन देखता है वहां अविद्या स्थिरहै। और वही अविक्रिय आत्मा संसार नाम से वैसाही रूपका धारण करता है यानी माया शक्तिसे संसारी रूप भासता है॥ ३॥ फिर कभी अपने स्वरूपको जान कर अपना स्वरूप भूत ब्रह्महीं स्वयं हो जाता है॥४॥

पुण्यपापादिसम्भूता लोला दोला जगत् खलु। लोभमोहाश्रिताऽनित्या मनोमायादिनिर्मिता॥ १॥ यदज्ञानात्सुभासेयं सदेवासुररक्षसाम्। मनुष्याणां च सर्वेषां तन्नमामि जगद्गुरुम्॥ २॥

टिप्पणी। पुण्यपापादिरूप निमित्तोंसे उत्पन्न यह जगत् चञ्चल हिंड़ोला रूप है। सो लोभ मोहके आश्रित और अनित्य तथा मन और मायारूप उपादानसे निर्मित है॥ १॥ और वह हिंड़ोला जिस जगद्गुरुके अज्ञानसे देव असुर राक्षस सहित सब मनुष्योंको सुन्दर भासती है, उस जगद्गुरु को नमस्कार करता हूँ॥२॥

श्री० १०८ पूज्यपाद रमितादास हरिहर सुधी विनेय साधु हनुमद्दासकृता
हिंड़ोलाप्रकरणस्य शिशुबोधिनी टीका समाप्ता॥

अथपञ्चप्रकरण बसन्त

१ प्रथम बसन्त

शिव काशी कस भई तोहारि। अजहूं हो शिव देखु बिचारि॥
चोवा चन्दन अगर पान। घर घर स्मृति होत पुराण॥
बहुविधि भवनन लागु भोग। (अस) नगर कोलाहल करत लोग॥
बहुविधि परजा लोग तोर। तेहि कारण चित ढीठ मोर॥
मुनि के शंकर भयेउ कोह। अस काहू नहिं कहल मोह॥
सुर नर मुनि सब धरहिं ध्यान। तूं बालक कछु कहे न जान॥
हमरा बलकवक इहै ज्ञान। तोहरा को समुझावै आन॥
जेहि जाहि मनसे रहल आय। जिव को मरण कहु कहां समाय॥
ताकर जो कछु होय अकाज। ताहि दोष नहिं साहेब लाज॥
हर हर्षित अस कहल भेव। जहं हम तहं दूसर न केव॥
दिनाचारि मन धरहु धीर। जस देखहिं तस कहहिं कबीर॥

टीका—पूर्व वर्णित भ्रम रूप पाप पुण्य लोभ मोहादि निमित्त जन्य, बीजाङ्कुर न्याय से अनादि संसाररूप मानस हिंडोला की निवृत्ति के लिये, बिचार विराग विबेकादि की कर्तव्यता का और विचारादि बिना दुर्दशा का वर्णन बसन्त प्रकरण में साहेब ने किया है, क्योंकि भ्रमादि जन्य संसार की विचारादि जन्य धारणा सहित दृढ ज्ञान बिना निवृत्ति नहीं हो सकती है, और भ्रमादि से अप्राप्त स्वरूप भूत आनन्द की भी प्राप्ति नहीं हो सकती है, इसलिये निरन्तर बिचार ज्ञानाभ्यासादि का उपदेश इस प्रकरण में साहेब ने किया है। और, बसन्त, मलार, सारङ्ग, दीपक, भैरव, सोरठा, ये छःराग होते हैं। और इस प्रकरण के बचनों के बसन्त राग हैं, इनसे इस प्रकरण को बसन्त कहते हैं। और यद्यपि चैत्र वैशाख बसन्त ऋतु कहा जाता है, तथापि माघशुक्ल पञ्चमी से लोग प्रायः बसन्त राग गातेहैं, इससे साहेब ने लिखा है कि (फगुआ मांगे बैकुण्ठ बास) इत्यादि। और जैसे बसन्त ऋतु में अनेकों प्रकार के पुष्प पत्ते बन में लग जाते हैं, जिन्हें देखने आदि से मनुष्यादि आनन्द को प्राप्त करते हैं, वैसे ही बाह्य पदार्थों के तथा योग जन्य प्रकाश ज्योति आदि के दर्शन का उस से जन्य आनन्द का और विचारादि जन्य सत्यात्मा के दर्शन का उससे प्राप्य आनन्द का इस प्रकरण में वर्णन किया गया है, इससे भी इस प्रकरण को बसन्त कहते हैं। साहेब

उपदेश करते हैं कि हे शिव ! यानी विवेक दृष्टि से कल्याण स्वरूप हे जीव ! काशी नगर के सदृश यह संसार रूप काशी तोहारि [तेरी] कस [कैसी] भई है ? यानी तुम संसारी कैसे हुए हो ? अर्थात् तुम कल्याण स्वरूप हो तौभी गमनशील संसारमें कैसे फंसे हो, इस संसार और सांसारिक मिथ्या वस्तुओं को कैसे अपना मान रहे हो, जिससे इस संसार हिंड़ोले पर झूल रहे हो इस बात को अजहुं[अब भी] विचार कर देखो, तथा जानो। अर्थात् अनादि कालसे विचारादि विना अज्ञान से संसारमें झूल रहे हो, अब की समझ कर इससे रहित होजावो, नहीं तो फिर गर्भादिमें अधोमुखादि हो कर अनेकों बार झूलना होगा। इससे बीती हुई बातोंको छोड़ दो, परन्तु ऐसे विचारादि से मार्ग समझ बूझादि की प्राप्ति करो कि जिससे आगामी दुःखों की निवृत्ति होवे। क्योंकि आगामी दुःख को अत्यन्त निवृत्त कर देना ही मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। अथवा हे शिव ! अजहुं, अर्थात् अजन्मा अनादि स्वस्वरूप होनेभी तुम्हारो 'काशी' यानी गमन शील संसारी गति जन्म उत्पत्तिकैसे हुई ? सो विचार कर देखो। विचारका उपदेश करने पर जिज्ञासा हुई कि, कल्याण स्वरूप को कैसे काशी हुई है ? सो कहना चाहिये। तब साहेब अज्ञान जन्य विषयासक्ति मोह ममता आदि को ही काशी की प्राप्ति के हेतु रूप बताते हैं कि हे शिव ! काशी रूप इस संसार में 'घर घर' यानी देव मानवादि शरीरों में तुझे चोवा चन्दन अगर पानादि उपभोग के लिये मिलते हैं। और घर २ में स्मृति पुराण भी होते हैं, यानी स्मृति पुराणादि से लोक लोकान्तर विषयान्तरादि की कथायें सुनने में आती हैं। तथा विषय उपभोगादि के उपाय स्मृति आदि में सुने जाते हैं कि ज्ञानादि विना ही पुत्र दान यागादि से लोक परलोकादि में अत्यन्त सुख मिलते हैं इत्यादि। अथवा घर २ में तुझे पुराण स्मृतियां होती हैं, अर्थात् प्राचीन वासनाओं के अनुसार प्रथम भोगे विषयादि के ही तुझे स्मृतियां होती हैं, उन विषयों में अनुकूलादि बुद्धि होती है, जिससे स्त्री पुत्र धनादि के ही सम्पादनादि करते हो। और उन भोग्य विषयों से इन शरीर रूप भवनों में तुझे, बहु विधि भोग लगते हैं, अर्थात् अनेकों प्रकार के भोग की प्राप्ति तुझे शरीर में होती है। और इस संसार रूप काशी नगर में लोग भी चोवा चन्दनादि उपभोग की प्राप्ति करके स्मृति पुराण को सुनकर भोग जन्य आनन्द से 'कोलाहल करते हैं, यानी भोग में आसक्त हो कर राग द्वेषादि पूर्वक अनेकों प्रकार के शब्दों का उच्चारण करते हैं। और कही तोर [तुझे] बहु विधि [अनेकों प्रकार] के प्रजा लोग प्राप्त होते हैं 'तेहि कारण' अर्थात् पूर्व कहे उन कारणों से ही संसार में सुख आदि मान कर यह मोर [हम सबों का] चित्त ढीठ हुआ है यानी निर्भय हुआ है, अर्थात् हे शिव ! पूर्व वर्णित हेतुओं से तेरा चित्त निर्भय होकर संसार में आसक्त होता है। और इसीसे संसार हुआ है और होता है। अथवा तेहि कारणसे तेरा चित्त ढीठहै और विषयादिकों को मोर (मेरा) अपना कहते हो अर्थात् उनमें ममता करते हो कि ये स्त्री पुत्र धनादि मेरे हैं। हे कल्याण रूप जीव ! इन पूर्व जन्म सम्बन्धी में मेरी बुद्धिसे ही यह वर्तमान काशी रूप संसार शरीर तुझे हुए हैं, और ऐसी बुद्धि रहनेसे फिर होंगे, इसलिये विचारादिसे इस बुद्धिको त्याग दो। अथवा विचार कर देखो, ऐसा उपदेश करने पर जिज्ञासा हुई कि किस प्रकार विचार कर देखें ? तब साहेब कहते हैं कि चोवा

आदि स्मृति आदिकी प्राप्तिसे नगरमें लोग कोलाहल करते हैं, उन्हें देखनेसे तथा कोलाहल सुननेसे, और 'तोर' यानी अन्य कोलाहलादि करने वालेके बहुविध प्रजाओंको देखनेसे मेरा चित्त ढीठहै, इस प्रकार बिचार कर देखो। अर्थात् चोवा चन्दनादिकी प्राप्तिरूप कारणोंसे ही मेरा चित्त निर्भय होकर संसारमें आसक्त है, इस प्रकार बिचारसे जानो। और जानकर संसारमें दुःखादि रूपताकी भावना आदिसे आसक्ति रहित होवो जिससे तेरा कल्याण होवे। इस सदुपदेशको सुन कर तमोगुणी पुरुषोंका जो हाल होता है उसका वर्णन करते हैं। और इसीसे तमोगुणी पुरुष पूर्वोक्त उपदेशका अनधिकारी होता है यह बात भी बताते हैं कि पूर्व कहे उपदेशोंको सुनि के (सुनकर) शंकर को कोह [क्रोध] हुआ और होताहै। अर्थात् विषयोंके भोग उपभोगादिसेही शं (सुख) की कामनाआदि करने वाले तमोगुणी पुरुष पूर्व वर्णित उपदेशको सुनकर क्रोध करते हैं। अथवा बिचार दृष्टिसे शंकररूप [आनन्द कर ब्रह्मस्वरूप] भी तमोगुणी पुरुष उक्त उपदेशसे क्रोध युक्त होजाते हैं, और कहते है कि मोह [मुझे] अलाज्ञ दुःखी ईश्वरादिके दास रूप जीवका ऐसा कोई नही कहा है, यानी शिवको जाननेवाले भक्त किसी महात्माओंने तुम्हारे सदृश नहीं कहा है कि तुम शिव स्वरूप हो। और चोवा चन्दनादिके उपभोगादि जन्य ममता आदिसे ही तुझे संसारहै इत्यादि। और सुर नर मुनि सब जिस ईश्वरका ध्यान धरते हैं उस शिव स्वरूप अशिव रूप मुझ जीवको तुम कहते हो, इससे तुम बालक हो [अज्ञहो] और कुछ भी कहने का हाल नही जानते हो। तब गुरु कहते हैं कि हे तमोगुणी! वा शिवरूप पुरुषो! तुम लोग चाहे मुझे बालक कहो, परन्तु 'हमरा बलकबक' यानी तुम्हारी दृष्टिसे जो मैं बालक हूँ उस मुझ बालकका तो 'इहै' यानी पूर्व वर्णित ही ज्ञान है, अर्थात् संसार बन्धनको नष्ट करनेवाला ही मेरा अनुभव है। और तुम उस ज्ञान मार्गको सुनते वा विचारते ही नहीं हो तो तोहरा के [तुझे,] आन [अन्य] कौन समझा सकता है? अर्थात् कौन सत्य बोध करा सकताहै? तुम तो ज्ञानियों कोही बालक समझते हो। अथवा 'हमरा बलकवक' नाम मेरे वा सद्गुरु मात्रके भक्त शिष्योंके तो पूर्व वर्णित ही ज्ञान [अनुभव] है परन्तु गुरु बिमुख तोहराके अन्य कौन समझा सकताहै? अर्थात् गुरु बिमुखको ईश्वरादि भी नहीं ज्ञान दे सकतेहैं। यहां इस कथनसे यह भी बोध कराते हैं कि दैवयोगसे कोई अनधिकारी शिष्यादि रूपसे प्राप्त हो जावे, और गुरुसे प्रश्न करे, परन्तु प्रश्नके यथार्थ योग्य उत्तर देनेपर वह अनुचित व्यवहार तथा अनुचित भाषण क्रोधादि करे तो उसके प्रति भी नम्र भावसे व्यवहार करनेवाले क्रोधी आदिके प्रति भी क्रोधादि रहित रहने वाले ही पूर्ण गुरुपदके योग्य ज्ञानी पुरुष हैं। और कहते हैं कि जो पुरुष गुरु तथा सत विचारसे बिमुख हैं, उनमें से जेहि [जिन पुरुषों] ने जीवित दशामें मनसे [मन द्वारा] 'जाहि' यानी जिन विषय व्यवहार योनि भावादि में रहे वा रहते हैं वा मरण कालमें मनसे जिसमें रहे वा रहते हैं, मरनेके बाद भी आय कर [जन्म लेकर] उन्ही विषयादिकोंमें रहे और रहते हैं। और हे शिव! जो जीव जहां मनसे रहते हैं तहां आये वा आते हैं, तो कहो कि उन जीवोंका मरण कहां समाय? यानी कहां कैसे मरण निवृत्त हो सकता है? किन्तु जन्म लेने पर मरण भी अवश्य ही होता है, इसलिये गुरुविचारादि विमुखोंके जन्म मरण प्रवाह बनेही रहते हैं। और तकर [उन गुरु-बिचार

बिमुखोंके] जो कुछ अकाज होता है यानी जन्मादि दुःखोंकी निवृत्ति और मोक्ष सुख की प्राप्तिरूप कार्यका जो अभाव होता है, वह परम पदकी अप्राप्ति रूप अकाज 'ताहि दोष' अर्थात् उन बिचारादि बिमुखोंके ही अपराधसे होता है, इससे साहेब [ईश्वर] क वा गुरुको कोई लाज नहीं है। अर्थात् ईश्वर वा गुरु का कुछ दोष नहीं है किन्तु अपने ही अविवेक अबिचार काम कर्मादिके फल सब जीव भोगते हैं। और सद्गुरु दुःखसे रहित होनेके लिये यथार्थ उपदेश देतेहैं, रागद्वेषादि रहित सबके साधारण कारण ईश्वर हैं इससे साहेबका दोष नहीं है, परन्तु उपदेशादिको सुन जान कर भी जीव सब कल्याणके लिये बिचार अनुष्ठानादि नहीं करते हैं, इमसे दोषी हैं। और सदुपदेशोंको सुनकर भी विषयोंसे 'हर्षित हर' ऐसा भेद कहे हैं, और कहते हैं । अर्थात् सांसारिक विषयोंसे हर्ष आनन्द माननेवाले और उस आनन्दके लिये विषयोंके हरण[प्राप्ति]करनेवाले जीव ऐसा अपना भेद तात्पर्य कहते हैं कि जहां हम हैं वहां 'दूसरे केव' यानी कोई उपदेशकादि नहीं हैं, इस प्रकार अभिमान करने वालोंके प्रति गुरु व्यङ्ग बचन कहते हैं कि 'चारदिना' अर्थात् इस स्वस्थ मनुष्य देह भर धीर [धैर्य] धरो तब तुझे इस बातका पता लग जायगा कि कैसे तुम्हारे सामने कोई नहीं है, अर्थात् इस अभिमानका फल तुझे थोड़े ही दिनोंमें मिलेगा। यदि कोई कहे कि गुरुके बचनको नहीं माननेसे पूर्वकही रीतिसे गुरु शाप देते हैं वह उचित नहीं है, तब साहेब कहते हैं कि पूर्वकही बात शाप रूप नहीं है, किन्तु कबीर जैसा अभिमानादिके फल देखते हैं वैसा कहते हैं। अथवा आत्मानन्दसे हर्षित जो हर यानी संसार दुःखको नष्ट करनेवाले ज्ञानी महात्मा हैं, सो ऐसा भेद रहस्य उपदेश कहे हैं कि जहां [जिस पुरुषमें] वा अवस्थामें हम ऐसा अभिमान रहता है, वहाँ दूसर कोई उपदेशादि नहीं प्राप्त होते हैं, इसलिये अभिमान को त्याग कर चार दिन धैर्यको धारण करो। अथवा जहां [जिस पुरुष में] हम [गुरु] प्रवेश किये हैं, जो मेरा उपदेश मानता है उस पुरुष में जन्मादि दूसरे कोई प्रपञ्च नहीं रह जाते हैं, इसलिये हे धीर पुरुषो! तुम सब थोड़े दिनों तक विषयोंसे निरोध करके मनको धरो, यानी गुरुके बताये मार्गमें मनको लगावो, क्योंकि वह सुखद सत्य मार्ग है महात्मा लोग जैसा देखते हैं, वैसाही कहते हैं। अथवा हे हर! (हे शिव!) तुम हर्षित आनन्द, कल्याण) स्वरूप हो, ऐसा भेद मैंने तुझे कहाहै। अथवा हर्षित नाम ब्रह्मानन्द को प्राप्त मैं तेरे प्रति यह मर्म बतलाया है, इसलिये तुम बिचारो कि जहां हम रहूँगा, यानी जब मैं अपने को शिवरूप समझूंगा तब दूसरा कोई प्रपञ्च नहीं रहेगा। अथवा जानो कि जिस निज महिमा स्वरूपमें मैं हूँ उसमें दूसरा कोई संसार वस्तुतः नहीं है। और थोड़े दिन धैर्य को धारण करो,तथा किसी विषयादिसे चञ्चल नहीं होजावो तो,सब दोष रहित मुक्त हो जाओगे,यह निश्चय समझो, क्योंकि कबीर साहेब जैसा देखते हैं वैसाही सत्य उपदेश कहते हैं॥ लिखा है कि-

वार्योद्गन्धमिवात्रेदं जगदादि च भासते। कोऽहंकथमिदंचेति विचारेणैवशाम्यति ॥१॥ कोऽहंकथमिदं दृश्यं को जीवः किञ्च जीवनम्। इतितत्त्वज्ञसंयोगा द्यावज्जीवं विचारयेत् ॥ २ ॥ किञ्चिन्नप्रोचतेतुभ्यं तद्बद्धोऽसि भवस्थितौ। नकिञ्चित्प्रोचते

चित्ते तन्मुक्तोऽसि भवस्थितौ॥३॥ यदा विवेकी पुरुषो भोगान्संत्यज्य तिष्ठति। तदा पलायतेऽज्ञानं छिन्ने वृक्षे पिशाचवत् ॥ ४ ॥

वायु में औपाधिक शीतता उष्णता आदिरूप द्वन्द्व सदृश आत्मा में ये जगत आदि भासते हैं। और मैं कौन हूँ? यह संसार कैसे हुआ है? इस प्रकार के बिचार जन्य अनुभवसे ही जगदादि नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥ मैं कौन हूँ? ये दृश्य शरीरादि कैसे हुए हैं? जीव क्या है? और जीवन क्या है? इस प्रकार जीवन पर्यन्त ज्ञानी के सङ्ग में बिचार करते रहना चाहिये ॥ २ ॥ संसारमें यदि तुझे कुछ भी अच्छा सुखद मालूम होता है तो तुम बद्ध हो यदि कुछ भी नहीं अच्छा बूझ पड़ता है तो मुक्त हो। ३ विवेकी पुरुष जब भोगोंको हृदयसे सम्यक् त्याग करके स्थिर होता है, तब कार्य सहित अज्ञान स्वयं भग जाता है, जैसे बृक्षके कट जाने पर उसपर रहने वाला पिशाच भी भाग जाता है ॥ ४ ॥

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥१॥

जिसका मन वश में रहता है उसका शासन कर्ता गुरू हैं, दुरात्माओंका शासन कर्ता राजा है, और गुप्त पाप करने वालों का शासन कर्ता वैवस्वत यम होता है ॥ १ ॥

२ द्वितीय बसन्त ।

घरहिं में बाबू बढ़लि रारि । उठि उठि लागै चपलि नारि ॥
एक बड़ि जाके पाँच हाथ । पांचहु केर पचीस साथ ।
पचीस बतावै और और । और बतावै कैउ ठौर ॥
अन्तर मध्ये अन्त लेत । झकझोरि झेला जीवहिं देत ॥
आपन आपन चाहै भोग । कहु कस कुशल परी है योग ॥
बिचार विवेक न करै कोय । (सब) खलक तमासा देखै लोय ॥
मुख फारि हँसे रावो रङ्क । (ताते) धरे न पावै एको अङ्क ॥
नियर न खोज बतावै दूरि । चहुं दिशि बागुर रहल पूरि ॥
लक्ष अहेरी एक जीव । ताते पुकारै पीव पीव ॥
अबकि बार जो करै चुकाव । कहहिं कबिर ताकि पूरि दाव ॥

टीका—प्रथम बसन्त में बाह्य वस्तु विषयक आसक्तिको संसारके हेतुरूप कहा है, और उसकी निवृत्तिके लिये बिचारका उपदेश किया गया है, परन्तु शरीरके भीतर रहने वाले और रार

मचाने वाले दुष्ट मन बुद्धि इन्द्रियादिकों को बश में किये बिना ममता आसक्ति आदि नष्ट नहीं हो सकते हैं। इससे बिचार पूर्वक अन्तर शत्रुओं को जीतने के लिये उनके स्वरूप व्यापारादि का बर्णन करते हुये साहेब उपदेश करते हैं कि हे बाबू ! [हे सज्जनो !] वा संसारी पुरुषो ! शरीररूप घर में ही रारि [झगरा, बैर] बढ़लि [बढ़ा] है तथा बिरोध फैला है, अर्थात् मन बुद्धि आदि जो भिन्न २ विषय चाहते हैं सोई मानो झगड़ा करते हैं। यद्यपि सब विषयों को जीव चाहते हैं जीवों कोही अनेकों कामनायें होती हैं तथापि मन बुद्धि आदि द्वारा ही चाहते हैं, इससे इनमें ही जगड़ा कहा जाता है। जिज्ञासा हुइ कि घरमें झगड़ा कैसे होता है ? तब साहेब कहते हैं कि अन्तःकरण ज्ञानेन्द्रिय रूप चपल [चञ्चल] नारी हैं यानी जीवात्मा रूप पुरुष की स्त्रियां हैं, सो प्रति दिन उठ उठ कर [प्रगट हो हो कर] उस पुरुष से लागती हैं तथा अपने २ विषयों में लगती हैं, अर्थात् पुरुष से लागती हैं, अपना २ भोग चाहती हैं। अथवा आगे वर्णित एक माया पाञ्च तत्त्व पचीस प्रकृतियां इस शरीर के अन्दर कारणादि रूपसे वर्तमान हैं, सो सब सृष्टि जागरणादि काल में उठ २ कर झगड़े में लगते हैं। सोई साहेब कहते हैं कि एक माया वा कुबुद्धि बड़ी नारी है, जिसके पाञ्च हाथके तुल्य आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, रूप पाञ्च भूतहैं वा पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय हैं। और उन पाञ्च भूतों के साथ में पचीस प्रकृतियांहैं। वहां आकाश के साथ, काम, क्रोध, लोभ,मोह भय, हैं। वायुके साथ चलन,वलन, धावन, प्रसारण, संकोचन हैं। तेज के साथ क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, मैथुन, हैं। जलके साथ लार, रक्त, स्वेद, मूत्र, वीर्य, हैं। पृथिवीके साथ हाड़, मांस, त्वक्, नाड़ी, लोम हैं। येही पचीसों ज्ञानेन्द्रियोंके साथभी हैं। अथवा पाञ्च अविद्या, पाञ्च प्राण, पाञ्च कर्मेन्द्रिय पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय जन्य पाञ्च ज्ञान। और गर्भदुःख, जन्मदुःख, जरादुःख व्याधिदुःख, मरणदुःख रूप पाञ्च दुःख, ये पचीसों ज्ञानेन्द्रिय के साथहैं। और शरीरके अन्दर रहने वाले पचीस प्रकृतियां 'और २' नाम भिन्न २ सुख के हेतुओं को बतलाती हैं, अर्थात् काम स्त्री आदि के भोगादि को, क्रोध पर अपकारादि को, लोभ पर द्रव्यापहरणादि को, मोह स्त्री पुत्रादि के साथ सङ्गादि को, और भय पलायनादि को बताता है। तथा चलन विचरणादि को, वलन युद्धादि को, धावन शीघ्र प्राप्ति आदि को, प्रसारण शयनादि को,संकोचन बैठना आदि को, सुख कर बतलाताहै। इसी प्रकार क्षुधा आदि भी अन्न पान शय्या आदि अपने २ अनुकूल वस्तु क्रिया औषधि आदिकोंको जीवों के प्रति सुखदायी बताते हैं। ऐसे ही अविद्यादि भिन्न २ वस्तुओं को सुखद बताते हैं। और 'और' यानी इन पचीसोंसे भिन्न वेद बाणी आदि भी कैक ठौर बताते हैं। और अन्तर में रहने वाले तथा अन्य अन्य को बताने वाले जो माया अविद्या भूत प्रकृति बुद्धि इन्द्रिय आदि हैं। इनके मध्ये [बीच में] वर्तमान जो जीव हैं, यानी इनमें आत्मादि बुद्धि करने वाले तथा इनके अनुकूल भोगादि करने वाले जो जीव हैं उन जीवों के ये सब, अन्त लेते हैं, अर्थात् जन्मादि के प्रवाह रूप नाशको ये सब प्राप्त कराते हैं। और लोकान्तरादिमें गमनागमन शोक मोह रागद्वेषादि रूप द्वन्द्वों से जीवों को, झक झोर कर [व्यग्र चञ्चल कर] के झेला देते हैं [महा कष्ट भोगाते हैं]। और ये सब प्रकृति इन्द्रियादि पूर्व कही रीतिसे अपना २ भोग चाहती हैं, तो हे बाब ! कहो और बिचार कर समझो कि इस अवस्था

में बिचारादि हीन पुरुषोंको कुशल [कल्याण] का योग कैसे पड़ सकती है ? अर्थात् परस्पर बिरोधी इन अनेकों के बशमें रहने वाले जीवों को किसी प्रकार भी कल्याण का योग नहीं हो सकता है, किन्तु महाकष्टही का योग होता है। परन्तु आश्चर्य है कि तौ भी कुशलके लिये कोई पुरुष बिवेक बिचारादि नहीं करता है, किन्तु दुःखही को सुख मानकर उसीके चिन्ता आदि में आयु बीताता है, और यह भारी आश्चर्य है कि जैसे पामर मनुष्य बिबेक बिचारादि नहीं करते हैं, वैसेही, 'खलक' यानी देवादि सबही संसार के लोय [लोग] सब प्राणी तमासा देखते हैं। अर्थात् विवेक बिचारादि नहीं करते हैं, किन्तु संसार के अन्दर और शरीर के अन्दर वर्तमान द्वन्द्वों से ही सब आनन्द मानते हैं उन्हेंही देखते हैं, और द्वन्द्वों की निवृत्तिके लिये यत्न नहीं करते हैं। और रावो [राजा] तथा रङ्क [दरिद्र] सबही बिबेकादि बिना मिथ्या आनन्द तमासा आदि से ही मुख फाड़कर हंसते हैं, और विवेक विचारादि सत्य आनन्द की प्राप्ति के लिये नहीं करते हैं। उससे कोई मनुष्यादि एको [एक] सत्यानन्द स्वरूप आत्म वस्तु को अपने अङ्क [गोद] में नहीं धरने पाते हैं, अर्थात् भूत प्रकृति विषय इन्द्रियादि मेंही आत्माऽनात्मादि के विवेकादि बिना मग्न रहने से एक आत्मानन्द का अपरोक्ष अनुभव नहीं करने पाते हैं। अथवा एक वस्तु अङ्क में प्राप्त की नाई अपना स्वरूप है उसे भी नहीं धरने पाते हैं। अथवा मुखफाड़ कर हँसते रहने आदि से शान्ति सुख ज्ञान शुभगति कल्याणके एको अङ्क यानी एको चिन्ह लक्षणको नहीं धारण करने पातेहैं। अथवा द्वन्द्वोंमेंही हंसते रहने से झगड़ने वाली अनेकों नारियों में से एको अङ्क, यानी एकको भी जीव नहीं धरने पाते हैं अर्थात् बशमें नहीं करने पाते हैं। और बिवेकादि का अभाव तथा विषयासक्तिसे ही ये जीव सब नियर (समीप] में नहीं खोजते हैं, अर्थात् अपने हृदयमें वर्तमान सुख स्वरूप आत्माको बिचारादि द्वारा नहीं खोजते हैं किन्तु स्वर्ग बैकुण्ठ आकाशादि दूर देश दिशा काल बस्तु आदिमें बताते हैं, और स्वयं भी दूर देशादिमें सुखादि खोजते हैं। और जिन दूर देश दिशा आदिमें सुखादि खोजतेहैं, उन सब देशादिकों में और चारों दिशाओं में दुःख देनेवाले 'बागुर' नाम मोहादि रूप जालही 'पूरी' नाम पूर्ण हो रहे हैं, अर्थात् बिचार विवेकादि रहित के लिये सर्व देशादि में मोहादि रूप जाल माया से फैलाये गये हैं, जिनमें फंसकर सुखादि खोजने वाले उलटा दुखी ही होतेहैं। और उन विवेक बिचारादि रहित जीवोंको मोहादि रूप जालों में फंसानेवाले गुरुआ स्त्री विषयादि रूप अहेरी [सिकारी] लाखों हैं [अनन्त हैं] और उन अनेकोंके वश में पड़े हुये बिचार बिबेकादि रहित, जीव एक हैं, इस से जब मोह जाल में फंस कर कामादि से अत्यन्त पीड़ित होते हैं तब [ताते] यानी पीड़ित होने पर पीव २ पुकारते हैं, अर्थात् हे ईश्वर ! हे देव ! मेरी रक्षा करो, इ यादि कहने लग जाते हैं, परन्तु बिबेकादि बिना अत्यन्त सुखी नहीं होते हैं, क्योंकि दुखः प्राप्त होने पर पीवादि पुकारते हैं, दुःख वीतने पर फिर दुःख के मार्ग में बिबेक बिना फँसते हैं। इसलिये साहेब कहते हैं कि जो पुरुष बिबेक बिचार वैराग्य शम दमादि से ज्ञानकी प्राप्ति करके, अबकि बार [इस मनुष्य जन्म] में ही चुकाव करलेता है, यानी सब द्वन्द्व संचित कर्म आदिको नष्ट कर देता है, ताकी [उसी पुरुषकी] दाव पूरी हो जाती है, और पूरी है, अर्थात् वही पुरुष संसार को जीतलेता है। और उसी का मानव

जन्म सफल है। और अन्य सब पशु पक्षी आदि सदृश हैं चाहे स्वर्ग सुख भी भोगते होवें, परन्तु उन में पशु आदि से वस्तुतः विषमता नहीं है। इसलिये भीतर के शत्रुओं को जीत कर संसारको जीतना और मानव जन्म को सफल करना चाहिये ॥ वास्तुतः इस बसन्त में संसार रूप वा शरीर रूप घर में रार करने वाली उठ २ कर लागने वाली चपल नारी रूप माया पाञ्च भूत पचीस प्रकृति नामक पचीस तत्त्व को ही जानना चाहिये, इन में एक माया बड़ी है पाञ्च भूत उसके हाथ हैं, पचीस तत्त्व उन भूतोंके साथ हैं, सो भूतके पचीस तत्त्व अन्य वस्तु आदि के अनुकूलादि बताते हैं। तथा और अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रियादि अन्तःकरण ये कैक ठौर [स्थानादि] बताते हैं। और ये सब अन्तर [गर्भादिके भीतर] वा परदामें, तथा 'मध्ये' नाम जन्मके बाद मरणसे प्रथम मध्य कालमें, और 'अन्त' नाम मरण कालमें जीवको लेते हैं, यानी अपने बशमें करते हैं वा नष्ट करते हैं। और झकझोर कर जीवको झेला देतेहैं इत्यादि अर्थ जानना चाहिये। परन्तु—

सन्तो घर महं झगरा भारी। राति दिवस मिलि उठि उठि लागं, पांच ढोटा एक नारी ॥

इस शब्दमें ढोटा नारी रूपसे कुबुद्धि तथा इन्द्रियोंका, ग्रहण है उसके अनुसार भी कथंचित् प्रथम अर्थ किया गया है ॥ लिखा है कि—

सुसाध्यः करटोद्भेदो मत्तैरावतदन्तिनः। नोत्पथप्रतिपन्नानां स्वेन्द्रियाणां विनिग्रहः ॥ १ ॥ यदा ब्रह्मगुणैर्जीवो युक्त स्त्यक्त्वामनोगुणान्। संशान्तकरण-ग्राम स्तदास्यात्सर्वगः प्रभुः ॥ २ ॥

मत्त ऐरावत हाथीके कपालको भेदन करना सहज है, परन्तु कुमार्गमें प्रवृत्त अपने इन्द्रियोंका निग्रह करना सहज नही है ॥ १ ॥ तौभी जब जीव ब्रह्मके गुण [स्वभाव] से युक्त होकर अर्थात् बिचारादिसे ब्रह्म निष्ठ होकर, और मनके गुणोंको त्यागकर सम्यक् शान्ति युक्त करण समुदाय वाला होता है तब व्यापक ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ॥ २ ॥

२ [illegible]बसन्त ।

राम नाम भजु लागु तीर, एसो दुर्लभ जात शरीर ॥

गयउ बेणु बलि गयउ कंस, गय दुर्योधन बूड़ेउ बंस ॥

पृथु गये पृथिवी के राव, गये त्रिबिक्रम रहा न काव ॥

छौचकवे मण्डलि के झारि, अजहूं हो नल देखु बिचारि ॥

हनुमत कश्यप जनक बालि, ईसब छेंकल यमके द्वालि ॥

गोपीचन्द भल कीन्ह योग, (जस) रावण मारे करत भोग ॥
ऐसो जात सबनको याम, कहहिं कबीर भजु राम नाम ॥

टीका—पूर्व वर्णित दो बसन्तोंमें बाह्य भीतरके द्विविध प्रपञ्चोंका, तथा विवेक बिचारादि बिना उन प्रपञ्चोंमें आसक्ति ममता आदिसे जन्म मरण प्रवाहादिका वर्णन किया गया है। और विवेक बिचारादिसे इस जन्ममें ही कर्म बन्धनको नष्ट कर देनेसे पूरी दाव मुक्तिका भी वर्णन किया गया है। अब इस बसन्तमें उक्त चुकावके लिये फिर भी प्रकारान्तरसे बिचारका उपदेश करते हैं, तथा सर्वात्म स्वरूप रामके चिन्तनादि रूप भक्तिका और वैराग्यका उपदेश करते हैं कि, हे सज्जन मनुष्यो! जिस वस्तुका राम नाम है उसको भजो अर्थात् उसके चिन्तन बिचारादिमें तत्पर हो जावो। और भजनसे उस रामके अनुभवादि करके इस दुःखद संसारात्मक सागरके तीर लागु, अर्थात् आत्मा रामका बिचार उस विषयक दृढ़ भक्ति आदि रूप पुरुषार्थ करके इस दुःखमय संसारसे पार हो जावो। क्योंकि 'ऐसो' यानी रामको भजने और ज्ञानादिकी प्राप्ति कराके संसारसे पार मुक्त करने योग्य, और दुर्लभ यह शरीर व्यर्थ बीता जा रहा है। क्योंकि अन्य शरीर बारबार होते हैं, और यह मानव शरीर बहुत कष्ट भोगनेपर कभी २ होता है, इससे दुर्लभ है। इसलिये इस शरीरको विषय भोगादिमें नहीं खोवो, किन्तु इसे मुक्तिकी निसेनी जानकर इसी द्वारा राम भजनादि करके संसारात्मक कष्टसे पार हो जावो। और संसारके अनित्य सुख उसके हेतु राज्यादिका लोभ नहीं करो, क्योंकि ये सब मिथ्या और नश्वर होनेसे दुःखके ही हेतु हैं, किसीको भी राज्यादि वा राज्यादि जन्य सुख सम्पत्ति सदा नहीं रहा है। देखो कि जो वेणु महा प्रतापी राजा था सो गया अर्थात् राज्यादिको छोड़ कर गया। और जो बलि देवताओंको भी अपने वशमें कर लिया था सो गया। और जो कंस कृष्णचन्द्रका भी विरोधी और महाप्रतापी था सो गया। और जो दुर्योधन महाबीर और अनेकों सहायक सम्पत्तिसे युक्त था सो भी गया। और उसका ऐसा हाल हुआ कि सौभाई रहनेपर भी वंश बूड़ गया, किसीका वंश नहीं रहा। और सम्पूर्ण पृथ्वीके राव [राजा] पृथु गये। तथा 'त्रिविक्रम' यानी तीनों लोकमें विशेष क्रमण करनेवाले अर्थात् तीनों लोकको अपने पैरसे व्याप्त करनेवाले बावनरूप विष्णु भी गये। इसी प्रकार सब बड़े २ राजा आदि गये कोई भी नहीं रहा और न रहेंगे, इससे किसीको राज्यादि सम्बन्धी सुख मान बड़ाई आदि भी सदा नहीं रहेंगे, सब कोई राज्य सुखादिसे च्युत भ्रष्ट हुए। इसलिये हे मनुष्यो! राज्यादिकी वासना इच्छा को त्याग कर रामको भज करके संसारसे मुक्त हो। और हे मनुष्यो! झारि [सम्पूर्ण मण्डलि] के जो वेणु आदि वा प्रथम प्रकरणमें वर्णित छौ 'चकवे' नाम चक्रवर्ती राजा हुये सो सब गये, ऐसा जान कर विरागका आश्रयण करो। और अजहूं (अभी भी) सर्वात्म स्वरूप रामका बिचार करके देखो, जिससे तेरा कल्याण हो। अथवा हे नल! तुम इस बात को बिचार कर देखो तथा विवेकादिको प्राप्त करो कि, झारि [सब मण्डलि] के चक्रवर्ती छौ राजा भी गये, और राज्यादिसे नित्य सुखी नहीं हुए न कुछ साथ ही गया, किन्तु व्यर्थ जन्म गया, तो तुम इन राज्य विषयादिसे

कैसे सुखी हो सकते हो ? किन्तु नहीं हो सकते हो। इसलिये राम नाम भज करके संसारके तीर लगो, नित्यसुखी हो। प्रथम बसन्तमें वर्णित चोवाचन्दनादि विषयोंसे बैराग्य और बिचारका उपदेश करके शरीरसे विरागका उपदेश करते हैं, और अन्तरमें झगड़ा डालने वालोंको बशमें करनेके लिये उपदेश देते हैं कि, हे सज्जन मनुष्यो ! यह भी बिचारो देखो कि, [हनुमान] ऐसे बली भक्त चिरजीवी और सब देव असुरोंके पिता कश्यप ऋषि और महान्,योगी राजर्षि जनक तथा महाप्रतापी बली, ये सबभी यमके द्वालि[द्वार]छेंके अर्थात् अनन्त कल्पोंमें अनन्तों हनुमानादि हुए और मृत्युको प्राप्त हुए, किसीका शरीर नहीं रहा। इससे तेरा भी शरीर नहीं रहेगा, इसलिये शरीरादि विषयक आसक्तिका त्याग करो। अथवा हे मनुष्यो ! तुम अब भी बिचार कर देखो कि, सब मण्डलीके छौचकवे, और हनुमानादि भी यमके द्वार छेंके, अर्थात्मृत्युके बशमें हुए, तो तेरा क्या कहना है। इसलिये शरीर विषयक आसक्ति को त्यागो, तथा शरीर के अन्दर जो झगड़ायें हैं उन्हें नष्ट करो। और उन झगड़ाओंके नष्ट करने के लिये गोपीचन्द ने भला योग किया था, वैसे ही तुम भी करो। और जैसे भोग करते हुए रावण को रामचन्द्र जी ने मारा था, तथा गोपीचन्द ने भी झगड़नेवाले सब इन्द्रिय माया भूत भौतिक बस्तुओं को ज्ञान योगादि से मारा था, वैसे ही तुम भी झगड़नेवालों का मार कर झगराओं को नष्ट करो। अथवा गोपीचन्द भलयोग भी किया था, तौ भी रावण जैसे भोग करते में मारा गया, वैसेही गोपीचन्द भी यम से मारा गया। इसलिये योग से जीवित रहने की आशा को छोड़ दो। अथवा गोपीचन्द यानी गोपियों को आनन्द करनेवाला कृष्णचन्द्र ने रामाऽवतार में भला योग [उपाय] किया कि जिस से भोग करते हुए रावण को भी मार डाला। साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो ! जैसे ये सब गये और इन सब के समय व्यवहारादि में बीत गये, वैसे ही सब मनुष्यों के याम [शुभ पहर समय] जा रहे हैं। यद्यपि चार घड़ी काल को याम कहते हैं तथापि मनुष्य के आयु मात्र के लिये यहां याम शब्द बोधक है। अथवा चारों युगों का बोधक है, तब भाव यह है कि मनुष्य जन्म और चारों युगों में भी विषयी पुरुषों के रावण के सदृश भोग में ही बीतते हैं, और बारबार रावण के सदृश ही नष्ट होतेहैं। इसलिये तुम भोग भावना को त्याग कर राम नाम भजो। अथवा याम नाम यमपुरी यम-बश यमयातना आदि में सब को इसी प्रकार जाते हुए देखकर राम नाम भजो जिससे कल्याण होवे॥ अथवा हनुमानादिको ज्ञानी पनके बर्णनका अभ्युपगमबादसे वसन्त का दूसरा अर्थ है कि हे मनुष्यो ! राम नाम भजकर तीर लगो, ऐसा श्रेष्ठ दुर्लभ शरीर जा रहा है। और तेरे शरीरों को कौन पूछे सब मण्डली के चकवे जो वेणु आदि छौ थे, वे भी गये। इससे अब भी बिचार कर देखो, और राम नाम भजो। और देखो कि रामनाम के भजने से ही हनुमान कश्यप जनक बालि ये सब यम के'द्वार' यानी मरण के रास्ता (दरवाजा) अज्ञानादि को रोक दिये। अर्थात् सर्वात्म स्वरूप रामकी प्राप्ति से जन्मादि रहित हो गये। और गोपीचन्द ने भी भला योग किया, जिससे यम के द्वार को छेंक दिया। और रावण यम के द्वार को नहीं रोका, इसी से रामचन्द्रजी ने भोग करते हुये रावण को मार डाला। और हे मनुष्यो ! भोग में ही रावण के सदृश सब ही का ऐसा अमूल्य याम [समय] जाता है, और सब मारे जा रहे हैं। इसलिये तुम राम नाम भजो,

और ज्ञानादि से यम के द्वारों को बन्द करो, जिससे कल्याण होवे ॥ अथवा वक्ष्यमाण अभ्युपगम-वाद से बसन्त का तीसरा अर्थ है कि, हे मनुष्यो! राम नाम को भज कर बाह्य भीतर के सब संसारों के किनारे लगो। और समझो कि ऐसा दुर्लभ शरीर जा रहा है। और उस राम को भजो कि जिस राम के भजे बिना वेणु बली आदि सम्पूर्ण मण्डली के चकवे भी संसारात्मक सागरमें गये। और दुर्योधन के वंश भी जिसे भजे बिना संसार रूप सागरमें बूड़ गया। और अन्य भी सब अज्ञानी संसारात्मक सागर में गये कोई भी बूड़े बिना नहीं रहे। और हे मनुष्यो! अब भी बिचार कर देखो कि अन्य की तो कथा ही क्या है, हनुमन कश्यपादि भी यम के द्वार में जिस रामको भजे जाने बिना छेंके गये हैं, उस राम को भजो। अर्थात् दशरथात्मजादि रूप राम को भजने मात्र से ये सब भी नहीं मुक्त हुए, किन्तु यम के द्वार में छेंके गये। इसलिये तुम सर्वात्म स्वरूप राम को भजो। अथवा यम के द्वार रूप मृत्यु मय माया स्वरूप अवतारात्मक राम में ये सब छेंके गये हैं। और जो गोपी-चन्द भला योग किया सोभी यम द्वार में छेंका गया। और ये लोग जिस राम को भज कर यम द्वार में छेंके गये वही राम रावण को भोग करते में मारे। और इस रामके भक्त सब मनुष्यों के 'ऐसो' यानी रावण के सदृश ही याम, [यम] के बश में जाता हुआ जानो। और सर्वात्म राम नाम को भजो। भाव यह है कि, रावणादि भी जय विजयादि रूप से उक्त विष्णु रूप राम के परम भक्त थे, सो उस गतिको प्राप्त हुए, वैसेही सब उक्त राम के भक्तों की दशाको जान कर सर्वात्म स्वरूप रामको भजो जिससे कल्याण होवे ॥ त्रिविक्रम गये रहा न कावके विक्रम गये रहा नहिं काव पाठभेद है। तब विक्रम पद के विक्रमादित्य नाम का राजा अर्थ है ॥ और [ऐसो जात सबन को जान,] ऐसा पाठ भेद है तब अर्थ है कि, ऐसे ही सब के जान [प्राण] जाते हैं, जैसे रावण के गये। अथवा रावण के ही सदृश सब को जाते हुवे जान [जानो] और राम नाम भजो ॥ परन्तु इस पाठ पक्ष में, राव नाम के स्थान में राम मान ऐसा पाठ उचित प्रतीत होता है ॥ लिखा है कि—

किंनामेदं किल सुखं यद्राज्यादि मनोऽङ्कुरम्। तत्त्वज्ञानैकविश्रान्तौ देवराज-पदं तृणम् ॥१॥ कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवात्मनात्मनि। यस्मिंस्तु पच्यते कालस्तन्न वेदेह कश्चन ॥ २ ॥

मनोङ्कुर रूप जो राज्यादि हैं, ये क्या सुख रूप हो सकते हैं? तत्त्वज्ञानसे एक आत्म वस्तु में विश्रान्ति होने पर देव राज पद भी तृण तुल्य हो जाता है ॥ १ ॥ काल ही सब भूतों को आप अपने में लीन कर लेता है, और जिसमें काल भी लीन होताहै उसको कोई जानता ही नहीं है॥२॥

४ चतुर्थ बसन्त ।

सबहिं मद मांते कोइ न जाग । सङ्गहिं चोर घर मूसन लाग ॥
पण्डित मांते पढी पुरान । योगी मांते योग ध्यान ॥
तपसी मांते तप के भेव । संन्यासी मांते करि हमेव ॥
मोलना मांते पढ़ि मोसाफ । काजी मांने देइ निसाफ ॥
संसारि मांते मायक धार । राजा मांते करि हंकार ॥
मांने शुक (देव) उद्धव अक्रूर । हनुमत माते धरि लङ्गूर ॥
शिव मांने हरि चरणन सेव । कलि मांते नामा जयदेव ॥
सत्य सत्य कहे स्मृति वेद । (जस) रावण मारे घर के भेद ॥
चञ्चल मन के अधम काम । कहहिं कबिर भजु राम नाम ॥

टीका—फिर भी द्वितीय बसन्त वर्णित अन्तर शत्रु अहङ्कारादिकों के बशवर्तिता का सबहीमें वर्णन करके उससे बचने के लिये सत्य रामके भजन का उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! तुम सबही मद [गर्व अहङ्कार]से मांते हो, और ये प्रथम हुवे वे भी मद से मांते। अर्थात् जैसे मदिरा से पुरुष बावरा होता है वैसे ही धन जाति विद्या आदिके अहङ्कार से सब मनुष्य मांत गये, और गर्व जन्य मोह निद्रा में सो गये, कोई भी जागा नहीं। अर्थात् बड़े २ अहङ्कारी कोई नहीं जागे, किन्तु अहङ्कार रहित कोई अत्यन्त विरक्त ही जागे, और जागते हैं। और जब पुरुष अहङ्कार से मोह निद्रा के बशमें होगये वा हो जाते हैं,तब सङ्गही में रहने वाले जो राग, द्वेष, काम, क्रोध, दुष्टबुद्धिइन्द्रियादि रूप चोरहैं, वे सब जीव के घर रूप शरीर को मूसने लगे और मूसने लग जाते हैं यानी शान्ति सुख विवेक विचारादि रूप सम्पत्तियों को हरने लग जाते हैं, इसलिये हे मनुष्यो ! अहङ्कार का त्याग करो। जिज्ञासा हुई कि कौन किस प्रकार मांते वा मांतते हैं ? तब साहेब कहते हैं कि पौराणिक पण्डित लोग पुराण पढ़ कर उसी के अहङ्कार से मांते हैं वा मांते। अर्थात् पण्डिताई के तथा पुराणों में वर्णित देवताओं के भक्तपन के और उसके पढने द्वारा प्राप्त मान बड़ाई आदि के अभिमान रूप रसके आस्वादन से ही मांत गये,किन्तु विचारादि से विवेक विज्ञान मोक्ष रूप अमृत रस की प्राप्ति नहीं किये। और विवेकादि रहित योगी लोग योग की युक्ति का अभिमान से तथा किसी देवता आदिके ध्यान के अभिमान से मांते, अर्थात् ध्यान से किसी ध्येय विशेष के प्रत्यक्षादि जन्य रसास्वाद से मांते। और तपसी [तपस्वी लोग] राजस तामस शारीरिक वाचिकादि तपों के भेव [भेद] को जानने के ही अभिमान से मांते वा तप विशेष की प्राप्ति के अभिमान से मांते। और

बेषादि के अभिमानी संन्यासी लोग भी हमेव (अहंभाव) से अर्थात् वर्णाश्रम में बड़ेपन के अभिमान से मांते। और मुसलमानों के मोलनाओं ने, मोसाफ पढ़ कर उसी के अभिमान से मांते। और काजी लोग मुसलमानों को कर्मादि करने आदिके लिये, 'इनसाफ' देकर यानी अपने मतकी न्याय मर्यादा को बताकर उसीके अभिमान से मांते। इसी प्रकार सब संसारी जीव माया के धार [प्रवाह] में यानी स्त्री पुत्र धनादि में मांते अर्थात् अज्ञानी जीव सब मायिक वस्तुओं में अभिमानादि से मांते, और राजा लोग राज्यादि के अहङ्कार से मांते, इससे पूर्व वर्णित कोई मनुष्य भी अज्ञान मोह नींद से विचारादि बिना नहीं जागे न जागते हैं। पूर्व वर्णित लोग तो बाहर तुच्छ विद्या वस्तु आदि के अहङ्कार से मांते परन्तु शुकदेव उद्धव अक्रूर, ये सब हरि की भक्ति आदि से मांते। और हनुमान ने लङ्गूर [पुच्छ] को धारण कर के उसके बल आदि से मांते। और शिवजी ने हरि [विष्णु] के चरण को सेकर उसी के अहङ्कार से मांते। और कलियुग में नामा और जयदेव भी हरिचरण को सेकर मांते। साहेब कहते हैं कि, स्मृति और वेद यह बात सत्य ही सत्य कहते हैं कि, जैसे रावण अपने घरके भेद ही से मारा गया, अर्थात् विभीषण को फूट कर रामचन्द्रजी से मिल करके लङ्का के भेदादि के बताने से, तथा महाभारत में वर्णित रीति से मेघनाद ने अदृश्य हो करके राम लक्ष्मण दोनों को मार कर गिरा दिया था, परन्तु विभीषणही औषधादि से उन्हें जीवितादि किया। इससे सिद्ध होता है कि, घर के भेद से [फूट से] रावण मारा गया, वैसेही सब जीव अपने २ शरीर रूप घर के भेद से मारे जाते हैं, अर्थात् मन बुद्धि आदि को एकत्र विचारादि परायण नहीं होने से किन्तु अनेकों शब्द अर्थ की प्राप्ति आदि करके अभिमान करने से, तथा सर्वात्म स्वरूप राम से भिन्न राम को मानने से जीव सब मारे जातेहैं। भाव यह है कि द्वितीय बसन्त से वर्णित घरके झगडोंसे ही जीव सब जन्म मरण रूप चक्रमें पड़ते हैं। क्योंकि झगड़े में फंसे हुये चञ्चल मन के काम सब अधम [नीच] होते हैं, जिससे जन्मादि दुःख की अवश्य प्राप्ति होती है। अथवा चञ्चल मन वाले जीवों के अधम काम होते हैं, जिससे बारबार मारे जाते हैं, और फिर जन्मते और दुःखी होतेहैं। इससे साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! सब अभिमान तथा चञ्चलता और उसके हेतु भेद दृष्टि को त्याग कर एक रामनाम को भजो, जिससे सबीज अभिमानादि की निवृत्ति हो जाने से तेरा कल्याण हो। विशेष बात यह है कि शुकदेवजी विषयक तथा जनकादि विषयक अपना सिद्धान्त साहेब ने प्रथम ही कहा है कि,

शुकाचार्य दुखही के कारण, गर्भहिं माया त्यागी।

परमतत्त्व का निज परमाना, सनकादिक नारद शुकमाना इत्यादि ॥

जिससे शुकदेव जी में आचार्य पन की तथा माया के त्यागी पन की सिद्धि से यद्यपि उनमें गर्वादि का वर्णन नहीं बन सकता है, क्योंकि माया के वा माया रूप मन के वशवर्ती मनुष्यों में ही गर्वादि सब दुर्गुण होते हैं, तथापि मन आदि को और शरीरादि के कारण रूप वा बासना रूप अविद्या पाञ्च तत्त्व पचीस प्रकृतिको अत्यन्त प्रबल समझानेमें, और उन सबों को अपने वशमें करने

के लिये अत्यन्त प्रौढ़ विवेक बिचार सावधानता के उपदेश में साहेब का तात्पर्य है। और यह भाव भी है कि शुकदेव जी आदि प्रथम ऊपर के व्यवहार की दृष्टिसे मायाको त्याग भी दिये थे, परन्तु भीतर से सूक्ष्म माया नहीं त्यागी गई थी, जिससे भेद बुद्धि गर्वादि होने पर फिर गर्वादिकों की निवृत्ति आदिके लिये अध्ययनादि किये। और जनकजीके यहां जाकर बिचारादिसे गर्वादि रहित हुए। और हनुमत कश्यप जनक बाली ये सब यम द्वार में छेंके गये। शुकदेवादि मांते, इन कथनों का यह भी गूढ़ भाव है कि, इतिहास पुराणमें इन सभोंको तटस्थ ईश्वरके भक्तादि कहा गया है। और लोकान्तर देवान्तर विषयक गति भी कही गई है। और गर्भसे ही मायाके त्यागी पनका और विवाहादि संसार विषयक रागादिका भी शुकदेवजी विषयक बर्णन देवी भागवतमें है। और कहीं स्त्री रूपता को धारण करके विष्णुके साथ क्रीड़ा विषयक भी इन सबोंका बर्णन है इत्यादि, जिससे सिद्ध होता है कि, ये सब भी किसी न किसी मदसे मांते थे, इस प्रकार यहां अभ्युपगमबाद है। और यथार्थ तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि, विबेक बिचारादि रहित पण्डित, योगी, तपसी, संन्यासी, मोलना, काजी, आदि सबही संसारी मायाके धारमें मदसे मांते, और जागे नहीं, इससे सङ्गमें रहने वाले कामादि तथा मृत्यु यम बार बार घरको मूसने लगे और मूसते हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि स्वतन्त्र संसारात्मक बन्धनसे रहित राजा(ज्ञानी) भी अहङ्कार करके प्रारब्धादि बश मांतते हैं। जैसे शुकादि मांते अनेकों व्यवहारादिमें मग्न हुये। हे मनुष्यो! अनेकों व्यवहारोंमें मग्न चञ्चल मनके काम अधम ही होतेहैं चाहे ज्ञानीके होंवे, वा अज्ञानीके होंवे,इसलिये चञ्चलताको त्यागकरएक राम-नामको भजो। और पूर्वोत्तरकी एक वाक्यतासे यह भाव माना जा सकता है कि, पण्डिताई आदिके अभिमानी सब तो मांतकर अभी भी नींदसे शयन किये हैं। और शुकदेवजी आदि भी प्रथम मांते, परन्तु फिर ये लोग सर्वात्म स्वरूप रामके विबेक बिचार विज्ञानादिसे मुक्त हुए, इसलिये हे मनुष्यो! तुम सब भी बिचारादि करो। यह भाव सबही पण्डितादिकोंको मांतनेका बर्णन करके तथा संसारीका वर्णन करके संसारी सबसे परे राजा शुकादिके वर्णनसे सिद्ध होता है। अर्थात् सब संसारी तो मायाके प्रवाहमें मांतेही रहते हैं, परन्तु संसारीसे भिन्न राजा, और मुक्त स्वरूप शुकादि परोक्ष मन्द ज्ञानादि कालमें थोड़ी देरके लिये अहङ्कारसे मांत गये। तथा हनुमानजी पुच्छको लेकर मांत गये, अर्थात् उससे लङ्काको दग्ध करके कोट बनाकर उससे युद्ध करके गर्व युक्त हुए इत्यादि, परन्तु फिर बिचारादिसे मुक्त हुये अन्य संसारियोंके सदृश मायाके धारमें ये लोग नहीं बहे इत्यादि॥ अथवा कबीर साहेबने दश अवतारको माया कहा है, इससे शुकदेवादिमें अवतारों के भक्तपनके अभ्युपगमबादसे मांतने का वर्णन हो सकता है॥ लिखा है कि—

सचोवाचप्रियारूपं लब्धवन्तं शुकं हरिः। त्वं मे प्रियतमा भद्रे! सदा तिष्ठ ममान्तिके॥१॥ नारायणः स्वयंभूश्च शिवश्चेन्द्रादयस्तथा। मुमुक्षवश्चमुक्ताश्च ऋषयश्चशुकादयः। तत्प्रभावंपरं मत्वा मन्त्रराजमुपासते॥ २॥

इत्यादि, पद्मपुराण वसिष्ठ संहितादिके वचन हैं । स्त्री रूपताको प्राप्त शुकदेवजीके प्रति सो हरि बोले कि, हे भद्रे ! तू मेरी अत्यन्त प्यारी हो इससे सदा मेरे पास रहो ॥१॥ नारायण, स्वयंभू, शिव, इन्द्रादि, मुमुक्षु, मुक्त, ऋषी, शुकादि, सब दशरथापत्य रामके नाम रूप मन्त्रके श्रेष्ठ प्रभावको जानकर उस नामात्मक मन्त्र राजकी सदा उपासना करते हैं ॥

५. पञ्चमबसन्त ।

हमरा कहल के नहिं पतियार । आपु बुड़े नल सलिल धार ॥
अन्ध कहे अन्धे पतियाय । जस वेश्या के लगन जाय ॥
सो तो कहिये ऐसो अबूझ । खसम ठाड़ ढिग नाहीं सूझ ॥
आपन आपन चाहै मान । झूठ प्रपञ्च साञ्च कै जान ॥
झूठा कबहुं न करिहैं काज । मैं बरजों तैं सुनु निलाज ॥
छाड़हु पाखण्ड मानहु बात । नहिं तो परिहौ यम के हात ।
कहहिं कबिर नल कियो न खोज । भटकि मुये जम बन के रोज ॥

टीका—पूर्व वर्णित बसन्तोंमें संसार हिंडोला जन्मादि कष्टसे रहित होनेके लिये उपदेश करके और भी साहेब उपदेश करते हैं कि, जिन मनुष्योंको हमरा कहलके [पूर्व वर्णित मेरे उपदेशोंके] तथा अन्य ज्ञानी महात्माओंके उपदेशोंके पतियार [प्रतीति] अर्थात् अनुभव नहीं होता है, और विश्वास नहीं होता है, न हुआ है । भाव यह है कि जिन्हें सत्य वक्ता ज्ञानी गुरुके बचनोंमें विश्वास नहीं हुआ है, वे नल [मनुष्य] आप [अपने] अज्ञानसे तथा अपने ही अपराधोंसे संसार सागर रूप, सलील धारमें बूड़े और बूड़ते हैं, अर्थात् दुःखादि रूप जलसे पूर्ण गम्भीर संसार सागरमें मग्न हुए और होते हैं । क्योंकि गुरुके बचनमें विश्वास रहित पुरुषोंके प्रति ज्ञान दृष्टिसे हीन अन्धा गुरुवा कहता है, अर्थात् असत मार्गका उपदेश करता है । और वे बिचारादिसे तथा ज्ञानादिसे हीन गुरु वचनमें विश्वास नहीं करने वाले अन्धे पुरुष गुरुवाओंके ही रोचक मिथ्या बात पतियाते हैं यानी उसमें विश्वास करतेहैं । इससे जैसे अन्धेसे कहे गये असत मार्गसे जाने वाला अन्धको अन्धकूप में पातहो, वैसेही इन गुरुवाओंके शिष्योंका संसाररूप अन्ध कूपमें पात होता है । और गुरुवाओं के वचनमें विश्वास करने वाले अज्ञानियोंका और भी कैसा हाल होता है कि 'जस वेश्याके लगन जाय' अर्थात् अनेकों असत पुरुषोंमें आसक्त किसी वेश्याका किसी अन्य असत पुरुषसे भी विवाहके लिये लग्न जाना, उस पुरुषके साथ विवाहके लिये लग्न मुहुर्तका खुशखबरी भेजना, जैसे अनुचित और निष्फल होता है । वैसेही जो अज्ञानी जीव विवेक बिचारादि रहित होनेसे देखे सुने अनेकों पदार्थ देव देवी आदि में प्रथम से ही

आसक्त हैं, उनका फिर किसी ब्रह्मा विष्णु महेश गणेशादिके साथ विवाहके लिये उन्हें मन्त्र देने आदिके लिये लग्न मुहूर्त सोचना अनुचित और निष्फल है, सोई गुरुवा लोग करते हैं। और भी साहेब कहते हैं कि 'सो तो' अर्थात् वह गुरुवा और उसके शिष्यको तो ऐसो [इस प्रकारके] अबूझ कहिये [अज्ञानी नादान कहना चाहिये] कि, जैसे किसी अन्धी के वा अन्य पुरुषमें आसक्त स्त्रीके ढिग [पास]में ही अपना पति ठाढ़ [खड़ा] हो, परन्तु आंखके अभावसे वा मनकी अनवस्थिरतासे उस स्त्रीको अपना पति नहीं सूझ पड़ता हो, जिससे पतिके पासमें रहते भी अन्य पुरुषकी चर्चा करती हो, वैसे ही गुरुवाओंके और उनके शिष्योंके पासमें ज्ञानी गुरुरूप और सर्वात्मा ब्रह्म रूप पतिको रहते भी, इन्हें वे पति नहीं सूझते हैं, इससे अन्य असत पतिकी चर्चा करते हैं, इसलिये उक्त स्त्रीके सदृश इन्हें अबूझ कहना चाहिये। अथवा प्रथमसे ही अनेकों पदार्थ देवादि में आसक्तके प्रति किसी देवादिरूप पतिका उपदेश देना अनुचित है। इस बातको सुनकर शंका हुई कि, यदि प्रथमसे अन्यमें आसक्तके प्रति किसी देवादि विषयक उपदेश देना व्यर्थ और अनुचित है, तो अन्यमें अनासक्त किसी बालकादिके प्रति वैकुण्ठादिमें बसने वाले विष्णु आदिका उपदेश देना अनुचित वा निष्फल नहीं हो सकता ? तब साहब कहते हैं कि, उसको भी तो ऐसा अबूझ कहना चाहिये कि, जैसे किसी के पासमें खसम ठाढ हो, और वह उसको नहीं सूझता हो, इससे दूरवर्ती किसी अन्य पुरुषकी बात कहती तथा सुनतीहो। और विवेक विचार विज्ञानादि बिना अन्यमें अनासक्त बालकादिका होना भी असम्भव है। क्योंकि मनुष्य अनेकों रागादि सहित ही जन्म लेता है, सो लिखा है कि [वीतराग जन्मा दर्शनात्] राग रहित किसीका जन्म नहीं देखनेसे भोक्ता जीव अनादि है, यह इस न्याय सूत्रका अर्थ है। और साहेब कहते हैं कि, सर्वात्म स्वरूप प्रत्यक्ष खसम नहीं सूझनेसे ही गुरुवा और उनके शिष्योंने आपन २ [अपनी २] बड़ाई चाहते हैं। और मान बड़ाईके लिये झूठ प्रपञ्च, [झूठा संसार] और इसके झूठे पाखण्ड मय व्यवहार छलादिको सांच करके मानते हैं, और अन्यको समझाते हैं। अर्थात् मिथ्या लोकादिको और मजहबी प्रपञ्चों को अपने २ मानोंके लिये सत्य सुखद बतलाते हैं। तहां साहेब दयावश उपदेश करते हैं कि, हे मनुष्यो! झूठा पदार्थ तथा मानादिके लिये अज्ञानादि वश झूठ बोलने वाले गुरुवा लोग तुम्हारा काज कभी नहीं करेंगे, इसलिये इन विषयक आसक्ति इनके सङ्गादिको छोड़दो। हे निलाज! [हे निर्लज्ज पुरुषो!] तुम्हारे कल्याणके लिये मैं बारबार बरजता [रोकता] हूं, निलाज कहनेका भाव यह है कि, जिन विषय तथा पुरुषके संग्रह सङ्गादिसे तुझे बराबर धिक्कार दुःखादि सहने पड़ते हैं, तोभी उन्हींके संग्रहादि तुम विचार विवेकादि बिना करतेहो, अत गुरुके उपदेशसे उनको त्याग कर विचार विवेकादि जन्य आनन्दका अनुभव करो। हे मनुष्यो! पाखण्डको त्यागो, यानी मिथ्या प्रपञ्च छयानवे पूर्व वर्णित पाखण्ड तथा यावत् [सब] मिथ्या व्यवहार छलादिको छोड़ दो, और सद्गुरुके सत्य उपदेशरूप बातको मानो। अथवा पाखण्ड छोड़ दो, यह बात कही जाती है सो मानो, और मानकर पाखण्डको त्याग दो, नहीं तो मिथ्या पाखण्डमें फंसे रहनेसे बारबार यम [मृत्यु] के हात [हाथ] में, अर्थात् वशमें पड़ोगे ॥ जिज्ञासा हुई कि, पाखण्डके त्यागे बिना मनुष्य यमके

हाथमें क्यों पड़ता है ? इत्यादि। तब साहेब कहते हैं कि, जब मनुष्य पाखण्डको त्यागता है, तब सद्गुरु सत्यात्माका खोज करता है, तथा सत्यात्माकी प्राप्तिके लिये सत्य मार्गका खोज करता है, और खोज कर सद्गुरुसे सत्य मार्ग द्वारा सत्यात्माकी प्राप्ति करके मुक्त हो जाता है। और जिन मनुष्योंने पाखण्डका त्याग नहीं किये, उन नल [मनुष्यों] ने खोज भी नहीं किये न करते हैं न करही सकते हैं। इससे वे लोग बनके रोज [रोझ नामक जन्तु] के सदृश संसारमें भटक कर मुये और मरते हैं। अथवा जैसे बनके पशु आदि रोज [प्रति दिन] भटककर बनमें ही मरते हैं. वैसेही पाखण्डी खोज रहित मनुष्य संसारमें भटक २ कर मरते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि, पाखण्ड के त्यागे बिना और बिचारादि करे बिना जीव सब आपही अज्ञान बासना काम कर्मादि बश जन्म मरणके फन्दोंमें पड़ते हैं, और कर्मादिके अधीन प्रतीथमान यमादिसे पीड़ित होते हैं, इसलिये अवश्य पाखण्डका त्याग और खोज करो॥ रोजके स्थानमें रोझ पाठ है॥ और चञ्चल मनके अधम काम होने ही से हमारे कहनेका विश्वास भी मनुष्योंको नहीं है, इससे रामको नहीं भजकर आपही नल सब सलील धारमें बूड़े और बूड़ते हैं। इस प्रकार भी सम्बन्ध जानना चाहिये। अथवा ये संसारादि हमारे कहल रूप हैं (वाचारम्भणमात्र मिथ्या हैं) इस बात का विश्वास नहीं है, इसीसे आपसे ही मनुष्य सलील धार सदृश प्रवाहरूप संसारमें पड़े और पड़ते बूड़ते हैं। और अन्ध गुरुवाके कहेको अन्धे लोग पतिआते हैं, जिससे इस संसारको सत्य मानते हैं। और वेश्याके जैसी जो माया लक्ष्मी आदि हैं, उन्हींके पास जाकर लग्न [सङ्ग] करते हैं, उन्हींको जो अपना पति आदि मानते हैं सो तो [वे पुरुष तो] ऐसा अबूझ कहाने योग्य हैं कि, जैसे ढिगहीमें खसम ठाढ़ रहे और सूझ नहीं पड़े। अथवा सो तो [वह रामरूप खसम तो] ऐसा अबूझ है नाम मन्द बुद्धि आदिसे ऐसा समझने में अयोग्य है कि, जिससे पासही में स्थिर रहते किसीको सूझ नहीं पड़ता है। और उसे जाने बिना सब मनुष्यादि अपना २ मान चाहतेहैं, और झूठ वाचारम्भणमात्र प्रपञ्च को सच करके मानते हैं परन्तु साहेब कहते हैं कि हे निलाज! मैं बरजता हूँ सुनो, झूठी वस्तुओंसे मान नहीं चाहो, ये झूठी वस्तुयें कभी भी तेरे काज नहीं आयगी। और हे मनुष्यो! पाखण्डको त्यागो, और संसारादिको बात मात्र मानो नहीं तो यमके हाथमें पड़ोगे। साहेब कहते हैं कि संसार तथा सांसारिक सुखादिकी बात मात्र मानकर सत्य वस्तुका खोज जिन्होंने नहीं कियेहैं वे लोग बनके रोझ सदृश भटक कर मुए, इसलिये संसारको बात मात्र जानकर सत्य रामको भजो तथा खोजो॥

६ षष्ठवसन्त।

बुढ़ि हँसि बोले मैं नितहिं बारि। मोहि अस तरुणि कहु कौनि नारि ?॥

दांत गयल मोर पान ग्वात। केश गयल मोर गंग नहात॥

नयन गयल मोर कजल देत। वयस गयल पर पुरुष लेत॥

जान पुरुषवा मोर अहार । अनजाने का करौं सिंगार ॥
कहहिं कबिर बुढ़ि आनन्द गाय । पूत भतारहिं बैठी खाय ॥

टीका—पूर्व कहा गया है कि संसारी जीव माया के धार में मांते, और जो गुरु के वचनों में विश्वास नहीं किये, वे मनुष्य माया के धार रूप सलील धार में वहे बूड़ इत्यादि । उसे सुन कर शंका हुई कि, यदि संसारी माया के धार में मांतते तथा बूड़ते हैं तो जब यह माया बुड्ढी हो जायगी तब पुरुषों को नहीं फँसावेगी, इससे तब पुरुष सब परिश्रम बिना ही मुक्त हो जायेंगे, अर्थात् जैसे प्रकृति स्वरूपा माया अनेकों कार्यों को उत्पन्न करके पुरुषों को भोग देती है, वैसेही पुरुष को स्वयं मुक्त कर देगी । इसलिये गुरु-शरण में प्राप्ति बिचार विवेकादि की कोई आवश्यकता नहीं है इत्यादि तब साहेब कहते हैं कि, हे सज्जनो ! अनादि होने से यह माया अभी भी बुड्ढी है तौभी वह बुड्ढी हँस कर बोलती है कि मैं नितहिं [सदाही] वारि [युवती] हूँ, यद्यपि माया स्वतन्त्र बोलने वाली व्यक्ति स्वरूपा नहीं है कि जो बोल सकेगी किन्तु चेतनाश्रिता अनिर्वचनीया शक्ति रूपा है,जिस शक्ति विशेष की वृत्ति रूपी इच्छा से सब संसार होता है, तथापि यहा बोलने आदि का बर्णन काल्पनिक है । भाव यह है कि, चेतन का आध्यासिक सम्बन्ध से वह अनादि माया सदा सब कार्य करने के लिये बलवती रहती है । और विचारादि शील विवेकी की दृष्टि से तथा विवेकियों के प्रति अबलवती बुड्ढी होने पर भी अज्ञानियों को संसार में फंसाने के लिये वह सदा तरुणी ही रहती है । इससे बिचार विवेकादि रहित अज्ञानी कभी भी मुक्त नहीं हो सकता है । इसलिये मुमुक्षुओं को अवश्य गुरु-शरण में प्राप्त होकर विचारादि से विवेक विज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिये । अथवा माया को ही अवस्था बिशेष रूपी स्त्री है और मन आदि हैं, सो स्त्री एक वृद्धा हो जाता है तो दूसरी युवती बनी रहती है,और मन की वृत्ति तो सदा ही युवती बनी रहती है, और इसी प्रकार अन्यभ माया के कार्य रूपी खानी बाणी रूप पदार्थ जीवों को फँसाने के लिये तथा मोहित करने के लिये नवीन ही बने रहते हैं । इससे माया कहती है कि, मोहि अस [मेरे समान] तरुणी नारी दुसरी एक व्यक्ति वाली कौन है ? क्योंकि अन्य कोई स्त्री एक काल में युवती बुड्ढी दोनों रूप वाली नहो रहती है । और मैं अनिर्वचनीया अद्भूत रूप वाली अनादि होने से दोनों रूप वाली सदा रहती हूँ । जिज्ञासा हुई कि यदि तूं युवती है तो तेरे दांत केश नेत्रावस्था क्यों नष्ट हुये प्रतीत होते हैं ? तो कहती है कि, जैसे किसी युवती स्त्री के दान्त अधिक पान खाने से नष्ट हो गये हों, वैसेही चतुर चिकनियाँ तथा अनेक कार्य रूप पान खाते २ मेरे दान्त नष्ट हो गये हैं । भाव यह है कि कालात्मक शक्ति से माया ही सब कार्य को नष्ट करती है, और वह काल भी क्षणभङ्गुर अदृश्य है । और कहती है कि, जैसे किसी युतवी का काला केश सदा गङ्गा में नहाने और झारने से नष्ट हो गया हो वैसे ही मेरा भी केश [कालापन] संसार-गंगा में नहाने से नष्ट हो गया । भाव यह है कि कृष्ण रूप तमोगुण प्रवृत्ति का प्रतिरोध रूपा अप्रवृत्ति का हेतु है । सो महा प्रलयादि काल में माया में स्पष्ट रूप से रहता है । सृष्टि काल में रजोगुण सत्त्वगुण से प्रवृत्ति और प्रकाश रूप कार्य स्पष्ट होते हैं । अथवा मेरे सम्बन्धी तमो·

गुण रूप केश गंगा स्नानादि रूप शुभ कर्म से चले गये वा चले जाते हैं। और यह बात बुढ़ियाँ कहती हैं की मेरा नयन [दर्शन शक्ति, ज्ञान शक्ति] कज्जल देने से चला गया है, अर्थात् मायिक सात्त्विक अंश सब जीवों के साथ हैं। सो अविवेक अविचार दुष्ट कर्म से नष्ट सदृश हुये हैं। जैसे किसी स्त्री के नेत्र अधिक दुष्ट कज्जल लगाने से नष्ट दृष्टि सदृश हो गये हो। जिज्ञासा हुई कि, यदि माया में ज्ञान-शक्ति भी है तो माया को अभी तक अपने पुरुष का ज्ञान क्यों नहीं हुआ है ? अर्थात् ज्ञान-शक्ति वाली माया ही व्यष्टि अन्तःकरणादि रूप से सब जीवों की उपाधि है, फिर भी अनादि काल से अब तक सब जीव ज्ञानी और मुक्त क्यों नहीं हुये हैं ? तब माया कहती है कि, जैसे किसी स्त्री की अवस्था पति से भिन्न पुरुष में प्रेम-युक्त ही बीत गई हो, वैसे ही हमारी वयस [अवस्था] पर, अर्थात् अपने वास्तविक पति से भिन्न पुरुष को लेने [स्वीकार करने] ही में बीत गई है। अर्थात् अनादि अज्ञानादि के बश जीव सब अनादि काल से ही अनात्म पदार्थ का ग्रहण उसकी उपासना भक्ति आदि करते आते हैं, किन्तु आत्म परायण नहीं होते हैं, इसी से ज्ञानी वा मुक्त भी नहीं होते हैं। और भी माया कहती है कि, पुरुषवा [अज्ञानी विचार विवेकादि रहित जीव] मोर [मेरे] ही अहारों, को 'जान' यानी जानता है, अर्थात् स्वाभाविक अन्तःकरण वृत्ति बिचारादि रहित ज्ञान शक्ति से माया ही की पूजा तथा पोषणादि करने का हाल जीव जानता है, अपने कल्याण का हाल नहीं जानता है, न उसके लिये यत्न ही करता है। इससे 'अनजाने' यानी उस अज्ञानी पुरुष का ही मैं अपना सिंगार करती हूँ, अर्थात् माया कहती है कि, आत्म तत्त्व को नहीं जानने वाले पुरुषों को बार बार जन्मादि कष्ट दशा तथा स्वर्गादि सुख दशा में नचा कर मैं अपना शृङ्गार शोभा करती बढ़ाती हूँ। साहेब कहते हैं कि, यह माया रूपी बुढ़ी स्वर्गादि में आनन्द गाकर (प्रगट आनन्द बता कर) अज्ञानी अल्प सामर्थ्य वाले जीव रूप पूत [पुत्र] को, और बड़े २ सामर्थ्य वाले जीव शिव रूप भर्तार को खाकर बैठी है, अर्थात् सबको अपने बश में कर रखी है। अथवा पूत [पवित्र] स्वरूप जो शुद्धात्मा रूप भतर्रा है, उसको अपनी आवरणादि शक्तिसे छिपा रखी है। इससे उस आत्मतत्त्वके जाने बिना जीव सब मायाके धारमें बहते हैं॥ अथवा नवम दशम रमयणीमें वर्णित रीतिसे सकाम कर्मोपासना करनेवाले पराधीन अज्ञानी पुरुष नारी हैं, और अनादिसे परबश रहनेसे तथा बुढ़ियाके सदृश लोकोंसे माननीय होनेसे गुरुवा लोग भी बुढ़ियाँ हैं, और जरा दुःखसे व्याप्त तथा सब सामर्थ्यसे हीन होनेसे भी बुढ़ियाँ हैं। सो बुढ़ियाँ हंसकर बोलती हैं कि, मैं सदा युवती हूं यानी सत्य पति सत्य सुखकी प्राप्ति करनेके लिये मैं समर्थ हूँ, मुझे ज्ञान मोक्षसे कोई जरूरत नहीं है, मैं अपने पतिसे ही तृप्त रहती हूं। मेरे समान तरुणी नारी यानी पतिको प्रसन्न करनेमें, तथा आनन्दका अनुभव करनेमें समर्था दूसरी स्त्री कहां कि, कौन है ? अर्थात् कोई नहींहै। यदि उनसे कहा जावे कि, तुम देवादिकी तरुणी नारी हो, तो तरुणी नारीके सदृश तेरे दान्तादि क्यों नहीं हैं ? तब कहते हैं कि, देवके प्रति अर्पित वस्तुओंका पान करने और खातेमें दुखमयी स्त्री रूपताके अभावसे स्त्री सदृश मेरे दांत गये, अथवा वृद्ध गुरुवा आदि कहतेहैं कि, परमेश्वरकी कृपासे पान खाते आनन्द करतेही मेरे दांत गये, फिर परमेश्वरकी कृपासे स्वर्ग सुख भोगूँगा, मोक्षसे क्या मतलब है ? और गंगा स्नानसे स्त्रीके

सदृश बाल भगादि नहीं हुये। अथवा गंगा स्नान करते २ मैं वृद्ध हुआ हूं, इससे मैं स्वर्गमें जाऊंगा। और देवोपासना आदि रूप अञ्जनसे स्त्री सम्बन्धी नेत्र गये वा दिव्याञ्जन करते २ मेरे आंख गये। इसलिये फिर इस नवीन नेत्रसे अपने पतिको देखूंगा। और पर पुरुषको लेनेसे [साक्षात् आदि करनेसे] स्त्री सम्बन्धी वयस मेरा गया वा पर पुरुष परमेश्वरके नामादि लेते २ मैं वृद्ध हुआ हूँ। और जाना हुआ वह पुरुषत्वा ही मेरा आहार [आधार] है। अथवा जो मेरा पुरुष है सो मेरा आहार जानता है, मेरा पोषण पालन कर्ता आनन्द दाता है, इसलिये मैं उसीकी प्राप्तिसे मुक्त सुखी होऊंगा। और 'अनजाने' यानी जिसको मैं नहीं जान सकता, ऐसा जो अज्ञेय पुरुष, उसके लिये का करौं सिंगार, अर्थात् उसके लिये गुरु भक्ति आदि क्या करूँ? अथवा जो ब्रह्मात्मा दूसरी वस्तुको हेय उपादेय शत्रु मित्रादि कुछ नहीं जानता है, उसे जाननेके लिये क्या सिंगार वेष धारणादि किया जावे? अर्थात् निर्विशेष वस्तुके लिये कुछ करना व्यर्थहै इत्यादि। तब साहेब कहते हैं कि, पूर्व कही रीतिसे गुरुवा आदिरूप बुढ्ढी स्वर्गादिमें आनन्द पाकर, और शुद्धात्मामें दोष बनाकर पूत [पवित्र] भर्तारको ही खाकर बैठी है। अथवा अज्ञानी शिष्यरूप पुत्रको और सत्तामात्रसे सबका कारणरूप भर्तारको खा बैठीहै, वा बैठे बैठे खातीहै। तथा शिष्योंकोभटका कर दुःखमें डाल देती है। और अपने स्वरूप ब्रह्मात्माको अज्ञानसे आवृत्त ही छोड़ देती है उसे विवेक करके जानती नहीं है॥ इस द्वितीय अर्थ पक्षमें पूर्व वसन्त वर्णित अन्ध मान चाहनेवाले अज्ञानी गुरुवाओंका बुढ्ढी शब्दसे ग्रहणहै। और प्रथम पक्षमें मायाका ग्रहण है, यह भेद है, और प्रायः मिलित ही भाव है। और प्रत्यक्ष अक्षरार्थका भाव यह है कि, स्त्री चाहे बुढ्ढी भी होवे तो दांत टूटने आदिमें कोई हेतु बनाकर पुरुषको फंसानेके लिये तत्पर होती है और फसाती है, इसलिये मुमुक्षु उसका सङ्ग नहीं करें॥

७ सप्तमवसन्त।

तुम बूझहु पण्डित कौनि नारि?। काहु न व्याहल है कुमारि॥
सब देवनन मिल हरिहिं दीन्ह। चारिहुं युग हरि सङ्ग लीन्ह॥
प्रथमे पद्मिनी रूप आय। ह्वै साँपिनी जग खेदि खाय॥
यह बर युवती वै बर नाह। अतिरे तेज तिय रैनि ताह॥
कहहिं कबिर यह जगत पियारि। अपना बलकवहिं रहलि मारि॥

टीका—पूर्व वर्णित माया आदिके फन्देसे बचनेके लिये जिज्ञासुओंके प्रति साहेब उपदेश देते हैं कि, हे जिज्ञासुओ! पूर्व वर्णित माया रूपी नारीको ज्ञानी पण्डितोंसे बूझहु [पूछ कर जानो] कि, यह नारी कौन वस्तुहै? और उसके फन्देसे बचो। अथवा हे पण्डित! [हे बुद्धिमान जिज्ञासुओ!]

पूर्व वर्णित माया रूपी नारीको बिचारादिसे समझो कि, वह कौन वस्तु है ? और कौन रूपवाली है ? क्या करती है ? इत्यादि। हे सज्जनो ! इस नारीको काहु [किसी] ने भी 'न व्याहल' यानी कोई इसको अपने बशमें नहीं किया। इससे यह कुमारी ही है, अर्थात् सबको अपने जालमें फंसानेके लिये स्वतन्त्रहै। अथवा यह मायाने ही किसी जीवको 'नहीं व्याहल' यानी अपना पति नहीं स्वीकार किया, किन्तु सबको अपना दास वा पुत्र ही बनाई है, इसीसे अभीतक कुमारी ही है। और उस मायाके ही स्वरूप वा कार्य विशेष रूपी लक्ष्मीको सब देवता लोग मिलकर हरि [विष्णु] के प्रति दिये, जिस लक्ष्मीको सुखद मानकर हरि भी चारहुं युगमें अपने सङ्गमें लिये रहते हैं, उसीके साथ बार बार जन्मते मरते हैं। और वह माया प्रथमे [पहले] सत्य युगादिमें 'पद्मिनी' यानी सुखद श्रेष्ठ रूपसे संसारमें आकर फिर दुःखदायी सर्पिनी मृत्यु रूप होकर जग [संसारी जीवों] को खेद कर [दौड़ा कर] बलात्कारसे खाती है। भाव यह है कि मायिक स्त्री पुत्र धनादि शब्द स्पर्शादि प्रथम प्रवृत्ति कालमें सुखद मालूम होते हैं, इससे रजोगुणी विषयी तथा पामर पुरुष उसके भोगमें प्रवृत्त हो जाते हैं। और पापादि कर्मोंके संचय होनेपर जब दुःख भोगनेका काल आता है, तब वही माया मायिक कार्य सर्प सदृश भयानक रूपको धारण करती है। जिन्हें देखते ही जीवोंको भय होता है। इसलिये उसमे भागना चाहते हैं, अर्थात् दुःख नहीं भोगना चाहते हैं, परन्तु माया अवश्य ही भोगाती है। और यह साँपिनी मायाही वर [श्रेष्ठ] युवती रूपी अज्ञानी जीवोंको भासती है। और वै [वह] अज्ञानी जीव वर [श्रेष्ठ] 'नाह' यानी उस मायाके नाथ पति बनते हैं। और ताह [उस] तिय अर्थात् माया रूपी नारीकी रैनि [रात्रि] में अत्यन्त तेज बढ़ती है, जिससे रात्रिके समय भोगमें फँसाकर पुरुषोंको दग्ध करतीहै। अथवा अज्ञानात्मक रैनिमें उस माया रूपी नारीकी तेजी अत्यन्त बढ़ जाती है, जिससे पुरुषोंको नष्ट करतीहै। साहेब कहते हैं कि अज्ञानियोंको नष्ट करनेवाली यह माया ही जगतकी प्यारी है, यानी माया ही सब जगतको अच्छी लगतीहै। और यह माया ऐसी दुष्टा है कि, अपना बालक रूप सब संसारको मार रही है। अर्थात् मिथ्या नाम रूपात्मक प्रपञ्चमें फँसाकर कष्ट दे रहीहै। इसलिये हे मुमुक्षु पुरुषो ! इसे विचारादिसे जानकर त्यागो, इसके बशमें नहीं होवो, नहीं तो यह ब्रह्मा आदिको नचानेवाली है वहां तुम्हारी दशा क्या कहनी है ?। पद्मिनी, हस्तिनी, शंखिनी, चित्रिणी, ये चार स्त्रियोंके प्रधान भेद हैं। और डंकिनी, नागिनी, दो गौण भेद हैं। वहां प्रधान पद्मिनी आदि, शशा, वृषभ, मृग, गर्दभ, रूप पुरुषोंको क्रमसे सुखद होती हैं। और सर्पिनी, डंकिनी चारों प्रकारके पुरुषोंको दुःख देने वाली होती हैं, और पूर्व वर्णितमें भी अन्यके साथ अन्यके योगसे विषय सुखकी प्राप्ति नहीं होती है। शशादिके लक्षण, सामुद्रिकादिसे जानने योग्य है। स्त्रियोंका लक्षण लिखा है कि—

स्निग्धश्यामलकान्तिस्तिलकुसुमसमाकारसुभगनासिका यस्याः। त्रिवलीतरङ्गमध्या वृतकुकुचा स्निग्धकृष्णकचा ॥ पद्ममुखी मधुगन्धा पद्माऽऽयतलोचना प्रियालापा। बिम्बोष्ठी हंसगति र्धर्मरतिः पद्मिनी भवति ॥ स्थूलदशना सुम-

ध्या गद्गदनादा सदोत्कण्ठा चपला। ह्रस्वोरुभुजग्रीवजंघा वादित्रगीतरतिः॥ स्निग्धतरङ्गकेशी पीनोन्नतविपुलवृत्तकुचकलशा। मत्तमतङ्गजगमना मद्गन्धा हस्तिनी भवति॥ विषमकुचा विषगन्धा दीर्घप्रसृतोरुनासिका नयना। तनु केशी खरचित्ता शंखरदा शंखिनी योषित्॥ तुङ्गपयोधरभारा विचित्रवस्त्रा प्रिया चलाऽऽलापा। मुत्तारगन्धिनी चित्ता चित्राक्षी चित्रिणी गदिता॥

सुन्दर श्यामकान्ति, तिलके पुष्प सदृश सुन्दर नासिका, पेटमें त्रिवली, गोलकुच, सुन्दर कालेबाल, पद्म सदृश मुख, मधुके सदृश मुखादिके गन्ध, कमल सदृश बड़ा नेत्र मीठी बोली तिरकोरके समान लाल ओष्ठ हंसके सदृश गति युक्त और धर्ममें प्रेमवाली स्त्रीको पद्मिनी कहते हैं॥ मोटे २ दांत सुन्दर कमर, गद्गदवाणी सदा मदसे उत्कण्ठा छोटे २ उरु भुजा गरदन जंघा, गाने बजानेमें प्रेम सुन्दर रङ्गवाले केश, मोटे ऊंचे भारी गोल कलश सदृश स्तन, मत्त हाथी सदृश चाल युक्त हस्तिनी कही जाती है॥ विषम छोटे बड़े कुच विष यानी कमल तन्तु सदृश गन्ध, लम्बे विस्तार युक्त उरु नासिका नेत्र, छोटे २ बाल, क्रोधी स्वभाव शंखके दान्तोंके सदृश दांत युक्तको शंखिनी कहते हैं॥ ऊंचे भारी स्तन, अनेक प्रकारके वस्त्र, प्यारी चञ्चल बोल, अत्यन्त क्षार गन्ध चित्ताके सदृश विचित्र आंख युक्तको चित्रिणी कहते हैं॥ अथवा इस बसन्तका दूसरा यह अर्थ है। साहेब कहते हैं कि हे पण्डितो! बूझो कि, लोकमें कौन नारी है? अर्थात् स्त्री शरीरमें भी जो जीव है वह नारी नहीं है। और उसको वस्तुतः किसीने व्याहा भी नहीं है। इससे वे सब जीव आजतक कुमार ही हैं। भाव यह है कि जीवोंके भर्तारके ज्ञान बिना जीवोंको वस्तुतः विवाह नहीं हुआ है। और कोई भी गुरु रूप घटक नहीं मिला है, इससे भी कुमार ही हैं। और सब देवता लोग मिलकर जीव रूप स्त्रीको हरि [विष्णु देव] के प्रति दान कर दिये। अर्थात् जीवोंके पति स्वरूप विष्णुको सिद्ध किये। इससे हरि भी उपासक जीवों को चारों युगों से सङ्ग में लिये हैं। और जो हरि को अपने पति रूप से उपासना करने वाले, और अपने में लक्ष्मी आदि स्त्री रूप से भावना करने वाले हैं, वे प्रथम उपासना के अनुसार 'पद्मिनी' स्त्री रूपसे संसार में आते हैं। फिर उस कर्म के क्षय होने पर स्त्रीपन की भावना संचित निषिद्ध कर्म से सर्पयोनि में प्राप्त होकर सर्पिनी होते हैं। और प्राणियों को खेद कर खाते दंशते हैं। ऐसी दशा होने पर भी यह जीव विष्णु की वर युवती होना चाहता है, और वै [विष्णु] को श्रेष्ठ पति बनाना चाहता है। अथवा यह जीव वर [विष्णु आदि रूप वर]की युवती होना चाहता है। और सब प्रकारसे भरण करने वाला 'वैवर' यानी पूर्व वर्णित आत्म स्वरूप वरको नहीं चाहता है। और उस तियके वरोंको अज्ञानरूप रैनी में अत्यन्त तेज रहता है। अथवा उपासना आदिसे लक्ष्मी आदि रूपताको प्राप्त जीवोंमें भी रैनि कालमें अत्यन्त तेज रहता है। और ये लोग जगतकी प्यारी होकर अपने तेजसे अपनेही बालको

को मारते हैं इत्यादि। हे पण्डितो ? नारा कौन है ? इस बातको जानकर और सत्यात्माकी प्राप्ति से रक्षा करनेवाला होजावो मृत्युरूप न बनो न मृत्युके बश में ही पड़ो॥

८ अष्टम बसन्त।

कर पल्लव केवल खेलै नारि। पण्डित होय सो करै विचारि॥
कपरा न पहिरे रहे उघारि। निर्जिव सो धनि अति पियारि॥
उलटी पलटी बाजू तार। काहू मारै काहु उबार॥
कहैं कबिर दासन के दास। काहू सुखदे काहु उदास॥

टीका—नाम रूपात्मक माया के रूपात्मक स्वरूप को दुःखद बताकर, नामात्मक स्वरूपको वा सामान्य रूपको फिर दुःखद बताते हैं कि पूर्व वर्णित माया 'कर पल्लव केवल' नाम लिखने वाले पुरुषों के हाथ रूप पल्लव (पत्ता) सदृश के बल [सामर्थ्य] से उक्त माया रूपी नारी खेलती है, यानी अनेकों वेद, पुराण कुरान, कितावादि रूपता को धारण करके क्रीड़ा करती है। अर्थात् ये सब भी माया ही के रूप हैं। और जो कोई पण्डित हो वा होता है, सो इस माया के स्वरूप का विचार करे वा करता है। अर्थात् शब्द स्वरूप भी माया ही है, इससे विवेक बिचारादि बिना केवल ग्रन्थात्मकादि शब्द विषयक आसक्ति भी बन्धन का हेतु है, इस बात को कोई विरले ही पण्डित बिचार करके जानतेहैं। और जाने बिना माया के बश में होकर जाल रूप से फैलाये हुये वाक्य बिस्तार में फंस कर मनुष्य मरता है। अथवा केवल[सिर्फ] अकेली माया रूपी नारी ने ही 'पल्लव' यानी अनेकों विस्तार करके खेल रही है। अर्थात् नाम रूपात्मक सब विस्तार माया कृत मायिक ही है। इस बात का कोई पण्डित बिचार कर सकता है, और जान सकता है। और पूर्व कही अनेकों शब्दात्मक आकार वाली माया कपड़ा नहीं पहनतीहै, इससे उघार रहती है। अर्थात् सब जीवों को अपने जाल में फंसाने के लिये प्रगट रहती है। और सो शब्द रूप 'निर्जीव धनी' यानी माया रूपी स्त्री लोगों को अति प्यारी लगती है। अथवा नाम रूपात्मिका माया जीवों के चेतन स्वरूप का आवरण करती है। इससे चेतन के कपड़ा स्वरूप माया स्वयं होती है, और आप कपड़ा नहीं पहिरती है, किन्तु सब जीवों को अपने में आसक्त करने के लिये कार्य रूप से व्यक्त रहती है। और इस प्रकार रहने वाली निर्जीव [जड़] स्वरूप सो माया रूपी धनी [स्त्री] पुरुषों को अत्यन्त प्यारी लगती है। अथवा निर्जीव गृह क्षेत्रादि रूपी माया की अपेक्षा सो धनी (लोक प्रसिद्ध स्त्री) रूपी माया अति प्यारी होती है। और साहेब कहते हैं कि यह शब्द रूपी माया 'उलट पलट कर तार' यानी बहुत उच्चस्वर से बाजती है,अर्थात् अकारादि वर्णरूप परिमित ही शब्द हैं। वेही उलट पलट कर अनन्तों पद वाक्य रूप शब्द कहे जाते हैं। और वेही वर्णादि रूप शब्द काहू (किसी) विचारादि हीन पुरुषों को तो मारते हैं, यानी अनेकों विषयादि की बासनाओं को प्रगट कराने द्वारा जन्म मरण के प्रवाह में बहाते हैं। और 'काहु' अर्थात् बिचारवान्

किसी पुरुष को उवार भी देते हैं, अर्थात् शब्द स्वरूपी माया किसी को बारबार मारती है, किसी को मुक्त करती है। जो पुरुष सदुपदेश रूप शब्द से नाम रूपात्मक माया को तुच्छ जानकर स्वरूप में स्थिर हो जाते हैं, उनको शब्द रूपी माया उवार देती है। अथवा नाम रूपात्मक स्वरूप को धारण की हुई जो माया है वही उलट पलट कर बीणा के तारों के सदृश बाजती है, अर्थात् प्राण अपान रूपता को और अनेकों नाड़ी इन्द्रिय मनादि रूपता को प्राप्त करके तार के सदृश बाजती है, तथा महा वायु रूप हो कर पूर्व पश्चिमादि से उलट पलट कर बाजती हुई तार रूप हुई है। और रविवारादि रूप होकर उलट पलट कर बाजती है, और तारती है, यानी वस्तुओं को लाँघती जाती है। अर्थात् सात दिन के ही उलट पलट से पक्ष मास वत्सर युगादि होते हैं। और उनके अन्दर कितने वस्तु उत्पन्न होते तथा नष्ट होते जाते हैं, वे सब माया करतीहै। और अनेक रूप से बाजती हुई भी यह माया काहु [बिचार शील] को उबार देती है, और विचार रहित को मारती है। माया बिषयक अपना सिद्धान्त कहकर अन्य आचार्यों का मत कहतेहैं कि, आत्म-ज्ञानादि रहित ईश्वरादि के दास जो देवता आदिहैं, उनके भी दास होने से दासोंके दास जो कबीर [कबि वा आचार्य] हैं। सो कहते हैं कि, देवी आदि रूपी माया किसीको मारती नहीं है, किन्तु किसीको संसारमें ही सुख देती है, और किसीको 'उदास' अर्थात् संसारसे उदासीन विरक्त मुक्त कर देतीहै। अर्थात् माया अपने भक्त उपासकोंको दुःख नहीं देती है किन्तु संसारमें सुख देकर फिर मुक्त कर देती है इत्यादि॥ अथवा इस सम्पूर्ण बसन्तमें अन्य मतका ही वर्णन है। कबीर लोग कहते हैं कि विस्तार करके वह नारी केवल खेलती है इत्यादि और कोई पण्डित होवे सो उसका बिचार करके उसे जान सकता है कि वही आवरण रहित विभु और जीवसे भिन्न धनी अर्थात् समर्थ और अत्यन्त प्रेमका विषय है इत्यादि॥

९ नवम बसन्त

मायि मोर मनुषा अति सुजान। धान कूटि कुटि करै बिहान॥
बड़े भोर उठि आँगन बाढ़ि। बड़े ग्वांच लै गोबर काढ़ि॥
बासी भात मनुषले ग्वाय। बड़े घैल ले पनियक जाय॥
अपन मयांके बांधों पाट॥ लैरे बेंचो हाटे हाट॥
कहहिं कबीर ई हरिके काज। जोइयक ढिग रहि नाहिं लाज॥

टीका—माया और उसके वशवर्तियोंके हालका तथा मायाके भक्त दासानुदासों के सिद्धान्त का संक्षेप से वर्णन करके मायाको तुच्छ जानकर उसके बशमें नहीं रहनेवाले, किन्तु उसे अपने बशमें करनेवाले चतुर गुरु-भक्तों के स्वभावोंका वर्णन द्वारा पूर्ववर्णित

प्रबल-माया से बचने के लिये उपाय बताते हैं कि, जो कोई मोर [मेरे] मायी[माया] को बश में करने वाले मनुषा [मनुष्य] हैं अर्थात् सद्गुरुके भक्त जो मनुष्य हैं वे ही अति सुजान हैं [अत्यन्त चतुर हैं]। वे मेरे दास मायासे सुख वा मुक्ति नहीं मानते हैं, किन्तु सुख वा मुक्तिके लिये, धान कूट कूट कर विहान करते हैं। भाव यह है कि पूर्व कही रीतिसे माया रूपी नारीकी तेजी रात्रिमें बढ़ जाती है, तब अविवेकी लोग उसके फन्देमें पड़कर जरते हैं, परन्तु गुरु-भक्त उसके फन्देमें नहीं पड़कर जैसे धान कूटनेवाला चावल और तुषको भिन्न २ करता है, वैसे आत्म अनात्म स्वरूप सत्यासत्य नित्यानित्य सुख दु ख रूपी वस्तुओंका विवेक करतेहैं। और विवेक करते ही करते अज्ञान रूपी रात्रिको बिता देते हैं। और विवेक करके नित्य प्रकाश सुख स्वरूपमें स्थिर होते हैं। और भोर सदृश आत्म प्रकाश उस विवेकीके लिये स्वयं उन्मुख हो जाता है। तथा गुरु-भक्त जीव लौकिक रात्रिमें भी संसारी अन्य जीवके सदृश विषय रङ्गसे रङ्गकर नहीं सोते हैं, किन्तु विवेक बिचार करते ही विहान [प्रभात] करते हैं। और 'बड़े भोर' अर्थात् विवेक रूप प्रथम प्रभात होते ही उठकर [तत्पर होकर] वैराग्यरूप झाड़ूसे हृदय रूप आंगन को गुरु-भक्त बाढ़ने हैं, यानी रागादिरूप मलकी निवृत्ति करके हृदयको साफ सुथरे कर देते हैं। तथा लौकिक प्रभात होते ही उठकर [आंगन] यानी शरीरको बाढ़ने [बुहारने] हैं अर्थात् गुरु-भक्त लोग स्नानादिसे शरीरको शुद्ध करते हैं। और विज्ञान रूप वा भक्ति युक्त बुद्धि बिचार रूप बड़ा भारी खाँच [टोकरी] ले कर मलिन बासना रूप वा मलिन वासना युक्त मन रूप, गोबरको काढ़ देते हैं, [नष्ट कर देते हैं] और बासी भात के सदृश जो पूर्वकाल-कृत कर्म विशेष रूप प्रारब्ध रहता है, उसको वे गुरु-भक्त मनुष्य हर्ष पूर्वक खा लेते हैं, यानी भोग लेते हैं। और विवेक बिचार शील बुद्धिरूप वा सत शास्त्र रूप बड़ा 'घयल' नाम घड़ा लेकर दृढ़ विज्ञान रूपी पानीके लिये, अर्थात् समूल संसार-मलको निवारण करनेवाला दृढ़-विज्ञानके लिये गुरुके शरण तथा सत्सङ्गादि रूपी गङ्गामें गुरु-भक्त जाते हैं। और गुरुके शरण तथा सत्सङ्गमें जाकर उक्त पानीसे सब मलको नष्ट करके नित्य तृप्त स्वरूप गुरु-भक्त होते हैं, परन्तु प्रथम गुरु-शरण सत्सङ्गमें प्राप्त होकर वे गुरु-भक्त गुरु सन्त महात्माओंके प्रति बिनय करते हैं कि, हे भगवन्! मैं इस संसारमें अपना सैयां [अपने पति] बिना बहुत दुःख भोग चुका हूं अब मुझे उपदेश दिजिये, अब मैं अपने सैयांके, उपदेशोंको बुद्धिरूप 'पाट' यानी श्रेष्ठ वस्त्रमें 'बांधों' यानी बांधलूंगा अर्थात् जैसे कोई श्रेष्ठ वस्तु शिरकी पगड़ीमें बांधा जावे वैसे मैं आपके उपदेशोंको हृदयमें धारण करूंगा। पूर्व कही रीतिसे विनय करनेपर गुरु सन्त महात्मा लोग विवेकादि युक्त जिज्ञासुके प्रति स्वात्म स्वरूप पतिका उपदेश देते हैं। और उपदेश देकर फिर भी शिक्षा देते हैं कि, रे शिष्य! जो मैं उपदेश दिया हूं सो लेकर, हाटे हाट बेंचो, अर्थात् संसार रूप शहरमें सज्जन जिज्ञासु पुरुषोंके स्थान रूप हाटोंमें इसकी चर्चा विचार करो उन्हें भी यह उपदेश दो, और अन्य ज्ञानी महात्माओंके साथ भी बिचारादि करो। सद्गुरु स्वरूप कबीर साहेब कहते हैं कि, ई यानी यह हाटे हाट उपदेशको प्राप्त कराना ही हरिका काज है, यानी यही ज्ञानी महात्माओंके काम है, वा यह सर्वात्म स्वरूप हरि सम्बन्धी कार्य है, और इस कार्यके किये बिना

ही मायारूप 'जोइयक' यानी माया रूपी स्त्रीके ढिग [पास] में रहनेवाले जीवोंको 'कोई' लाज यानी इज्जत मर्यादा नहीं रही, न रहती है। अथवा शिष्य ही बिनय करता है कि, हे भगवन्! मुझे उपदेश दिजिये, उसे पाटमें बांधूंगा, और रे [तुच्छ] जो मैं आपका शिष्य हूँ सो आपकी कृपासे उपदेश लेकर जिज्ञासुओंके हाटे हाट बेंचो अर्थात् बेंचूगा, अपने सदृश अन्य जीवोंका भी उद्धार करूंगा। इससे साहेब बतातेहैं कि, परोपकार दया भी ज्ञानके श्रेष्ठ साधनहैं गुरु-शरण प्राप्ति कालमें भी परोपकारकी भावना करनी चाहिये। और ज्ञानी पुरुषको भी शरणागत योग्य शिष्यके प्रति कृपा करके उपदेश देना चाहिये क्योंकि शिष्यका उद्धार करना ही महात्माओंके कार्य है। वही साहेब कहते हैं कि हाटे हाट बेचने योग्य शिष्योंके प्रति उपदेश देना यह हरिके काज है, इससे जिज्ञासु विनय करता है कि, हे भगवन्! माया रूपी जोइयाके ढिगमें, मेरी कोई लाज नहीं रही है, इसलिये अब मुझे उपदेश दिजिये मेरा उद्धार किजिये, जिससे मेरा कल्याण हो इत्यादि॥ लिखाहै कि

[पूर्वविवेकेनतनुत्वमेति रागोऽथवैरञ्चसमूलमेव । पश्चात्परिच्छीयतएवयत्नः सपावनोयत्रविवेकितास्ति ॥ १ ॥ दौर्भाग्यदायिनी दीना शुभहीनाऽविचारणा। घनदीर्घमहानिद्रा त्यज्यतां संप्रबुद्धयताम् ॥ २ ॥ भावमिच्छन्ति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः। सत्यवादीमृदुदान्तो यः स उत्तमपूरुषः ॥ ३ ॥]

विवेकसे प्रथम राग द्वेष सूक्ष्म होते हैं, फिर समूल नष्ट हो जाते हैं, फिर यत्न भी नष्ट हो जाता है, इससे जिसमें विवेकी मन है, वही पावन है ॥१॥ दुर्भाग्यको देनेवाली दीन शुभ रहित दीर्घघन महानिद्रा रूपी अविचारणाको त्यागो, मोहनिद्रासे रहित हो जावो ॥२॥ जो सभीको कल्याण चाहते हैं, किसीके अकल्याण नहीं चाहते हैं, और सत्य-वक्ता मृदु दान्त होते हैं वे ही उत्तम पुरुष हैं ॥३॥ माथि के माई। धान के धन्ध। करैं के करत। लैरं बेंचों के लै बेंचूंगी इत्यादि पाठ भेद है।

१० दशम बसन्त

रसना पढु हो श्रीबसन्त। पुनि जे परिहहु यमके फन्द॥
मेरुदण्ड पर डंक कीन्ह। अष्ट कमल पर जारि दीन्ह॥
ब्रह्म आगिन कीयो परकाश। अर्द्ध ऊर्ध्व तहं बहै बतास॥
नव नारी परिमाला गाँव। सखी पाञ्च तहँ देखन धाव॥
अनहद बाजा रहल पूरि। पुरुष बहत्तर खेलै धूरि॥
माय देखि कस रहहु भूलि। जस बनासपति रहली फूलि॥
कहैं कबीर हरिके दास। फगुआ मांगे बैकुण्ठ बास॥

टीका—मायाके पासमें लज्जा नहीं रहती है, इस बातको कहकर, वह माया कहांतक पहुंची है ? और विवेक तथा गुरुगम बिना सत्य ब्रह्मात्मा रूपी मायाको जानकर, किस प्रकार मायाको ही मन्द-पुरुष भजते हैं ? इत्यादि अर्थोंका वर्णन साहेब करते हैं। वहां मायाके ढिग रहनेवाले कहते हैं कि हे मेरी रसना (जिह्वा) श्रीबसन्त को पढ़ु यानी लक्ष्मी-रूप जो बसन्त सदृश सुखद वस्तु उसे पढ़ो। अथवा लक्ष्मी जिस विष्णु भगवान्‌के साथमें वा स्वरूप में वसती है, उस श्रीबसन्त विष्णुको पढ़ो, यानी उस विष्णुके सहस्रनामादिका पाठ करो, क्योंकि सो भगवान् लक्ष्मीको प्राप्ति करानेवाले तथा इसके द्वारा मुक्त करनेवाले हैं। और यदि श्रीबसन्तको नहीं भजेगी तो पुनि [फिर] तुम बारबार यमके फन्देमें पड़ेगी, अर्थात् हेरसना ! यदि तुम श्रीवसन्त नही पढ़ेगी तो मै यमके फन्देमें पड़ूंगा। इस प्रकार समझाय समझकर माया के ढिग रहनेवाले श्रीबसन्तके नामोंको जपते हैं, और जपें। और क्या किये तथा करते हैं ? कि, 'मेरुदण्ड पर डंक कीन्ह' यानी मूलाधारसे ग्रीवातक लम्बी पृष्ठकी हड्डीरूप मेरुदण्ड पर वे लोग चित्त वृत्तिको स्थिर किये और करते हैं। अर्थात् जिस मेरुदण्डके साथ होकर सुषम्ना नाड़ी दशम दरवाजे तक गई है, और नासिका तक भी आई है। उस मेरुदण्ड पर वा उस नाड़ीपर, विषयुक्त बिच्छू आदिके डंक सदृश, विषय माया विषयुक्त चित्तवृत्तिको वे लोग प्रथम लगाते हैं, और वहां श्रीबसन्तके ध्यानादि करते हैं। और फिर उसी डंकसे आठों कमलोंको परजार दिये [दग्ध किये] तथा करते हैं, अर्थात् आठों कमलों पर भी उसीके ध्यानादि रूपी वृत्तिका लगाते हैं। अथवा आठों कमलोंको पर-जार देते हैं [विकसित करते हैं] उनका प्रकाश करते हैं अर्थात् मूलाधार कमल से ध्यानका आरम्भ करके दशम दरवाजे पर जाकर दीप की ज्योति सदृश ज्योतिको वे लोग प्रत्यक्ष करते हैं। जो ज्योति वायु के निरोध से सिद्ध होती है, और बाहर से निरुद्ध चित्तसे दीख पड़ती है, और उसी को बहुत लोग ब्रह्मात्मा कहते हैं। इसलिये पूर्वकही रीतिसे इन लोगोंने ब्रह्माग्नि का प्रकाश किया, और अब भी अपने समझ से ब्रह्माग्निका प्रकाश करते हैं। और तहां (उस) दशम दरवाजे पर तथा आठों कमलों पर भी अर्द्ध (नीचे) और ऊर्ध्व [ऊपर] वतास [वायु] चलता है। और वायुका चल स्वभाव होनेसे दशम दरवाजे पर भी अत्यन्त स्थिर नहीं रहता है किन्तु सूक्ष्म रूप से नीचे ऊपर बहता रहता है। और चतुष्टय अन्तःकरण पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय रूपी नवनाड़ी भी बाहर की वृत्तियों को त्यागकर उस दशम दरवाजे पर परिमाला गाती है, अर्थात् उस ज्योति को परिमल अर्थात् निर्मल बताती है। अथवा (विमर्दोत्थेपरिमलोगन्धे जन-मनोहरे) इस कोशके अनुसार बसन्त ऋतुके पुष्पोंका मर्दन जन्य सुखद गन्धके सदृश उस ज्योतिका ही नवनाड़ी बताती है, अर्थात् योगाभ्यास रूप मर्दन जन्य प्रगट ब्रह्मानन्द बताती है। और अभ्यास से ही पाञ्च प्राण रूपी पाञ्च सखी तहां [उस दशम दरवाजे पर] मानों तमासा देखने को दौड़ती हैं। अर्थात् वहां सहज ही प्राण पहुंच जाते हैं। अथवा नवनाड़ी, यानी नवों दरवाजों पर फैली हुई चित्त वृत्ति वहां जाकर परिमाला [गन्ध] विशेष जन्य आनन्द को गाती है। और पाञ्च सखी [पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय] भी तहां देखनेके लिये दौड़ी हैं। अथवा दश नाड़ी प्रधान हैं

उनमेंसे सुषुम्नामें वह ज्योती दीखती है, और अन्य नवनाड़ी रूपी नव नारियाँ उसीको परिमाला गाती हैं, उसीकी बृद्धि आदि करती हैं। और पाञ्च इन्द्रिय देखनेके लिये दौड़ती हैं, यानी बाहरके बृत्तियोंको त्यागकर वहां पहुँचती हैं। और वहां अनहद शब्द रूपी बाजा भी पूर्ण रहती है। और बहत्तर पुरुषके सदृश जो बहत्तर कोठेकी वायु हैं वे अथवा बहत्तर हज़ार नाड़ियोंमेंसे प्रधान बहत्तर नाड़ीके वायु हैं, वे वहां बसन्तके सदृश धूरि खेलती हैं, अर्थात् इन सब कोठरी नाड़ियोंके वायु वहां जाकर परस्पर सूक्ष्मरूपसे मिलती हैं। और इन मायिक वायु इन्द्रिय अन्तःकरणादिकोंको उस संकुचित स्थानमें एकत्र होनेहीसे ज्योति दीख पडती है। और उसीको मायाके भक्त अविवेकी ब्रह्मात्मा मानते हैं। इससे साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम उस माया रूपी ज्योतिको देखकर कस [कैसे] भूले रहते हो ? कि, जैसे बसन्त ऋतुमें बनस्पति फूली हुई हो, और उसे देखकर कोई कामान्ध अपने कर्तव्यको भूल गया हो। अथवा बनस्पतिमें फूल बिनाही फल लगता है, वहां जैसे बनस्पतिमें फूल लगना आश्चर्यरूप हैं, वैसेही मायाको देखकर भूलना उसे सत्य ब्रह्मात्मा मानना भी आश्चर्य है। क्योंकि ब्रह्म अपना आत्मा है, इसलिये दीपक की ज्योति आदिके सदृश विषय रूपसे ज्ञेय नहींहै, किन्तु स्वयं प्रकाश और विदित पदार्थसे भिन्न है किन्तु बुद्धि विक्तिके साक्षी रूप से ही जानने योग्य है। साक्ष्य विषय स्वरूप माया है। और जैसे अग्नि अपने आत्मा को नहीं जलाती है, इससे अपने को आप विषय नहीं करती है, वैसे ही चेतनात्मा भी सर्वात्म स्वरूप होनेसे घटादिके सदृश किसीका विषय नहीं हो सकता है, इससे जो विषयमें ब्रह्म रूपका ज्ञान होता है उसको माया में ही ब्रह्मपन का ज्ञान रूप जानना चाहिये, उससे मोक्ष की प्राप्ति हो नहीं सकती। और श्रीबसन्त रूप हरिके दास लोग भी कहतेहैं कि 'फगुआ' यानी फाग बसन्त खेलने वाले बैकुण्ठ का बासही मांगते हैं, मुक्ति नहीं चाहतेहैं। अर्थात् विष्णु भगवान्‌के नामोंको जपने वाले,तथा ज्योति दर्शन करने वाले, तथा वायुके साथ फाग खेलने वाले यानी शरीरके अन्दर वायुका निरोधादि करके आनन्द विशेष के अनुभवादि करने वाले, वैकुण्ठादि में बास ही चाहते हैं मोक्ष नहीं चाहते। अथवा उनकी समझ से वैकुण्ठ बासादिक ही मोक्ष है, इससे वैकुण्ठ बास ही मांगते हैं। उस नाम के जपादि से होता है। और जीव ब्रह्म स्वरूप नहीं है, इससे विष्णु स्वरूप ज्योति को जीव देख भी सकता है इत्यादि॥ रसना पढ़ि लेहु श्रीबसन्त यह आदि में पाठ भेद है। काहुँ फन्दके स्थान में अन्त पाठ है, पर जारि के परजारि। परिमाला गाँव के परिमल सो गाँव इत्यादि पाठ भेद हैं॥ अथवा बसन्त का दूसरा अर्थ है। साहेब कहते हैं कि जिस लिये माया रूपी ओड़िया के ढिग में लाज नहीं रहती है, इसलिये उसे त्यागकर श्रीको बश में कराने वाले गुरु तथा ब्रह्मात्माको रसनासे पढ़लो। अथवा श्रीबसन्त यानी आनन्द स्वरूप वस्तु को पढ़ो नहीं तो फिर यम के बश में पड़ोगे, जिन पुरुषोंने श्रीबसन्तको पढ़े बिना, मेरुदण्ड पर डंक किया, और उसी डंकका आठों कमलों में प्रचार कर दिया, और जहां ब्रह्माग्नि का प्रकाश किया, वहां अर्द्ध ऊर्द्ध्व बतास बहती है, इत्यादि, उनके प्रति साहेब कहते हैं कि, माया देख कर कैसे भूले रहते हो इत्यादि। तब हरि के दास कहते हैं कि, यह जीव हरिसे फगुआ मांगता है,

और बैकुण्ठ में बास मांगता है, भूला हुआ नहींहै। अथवा साहेब उपदेश देते हैं कि हे श्रीबसन्त! (लौकिक आनन्द में मग्न) हे जीवो! अब तुम रस [विषय माया रस] को ना पढु (नहीं पढ़ो) उसका नाम तक भी नहीं लो, नहीं तो फिर यमके फन्दे में पड़ोगे। जो यम प्रथम मेरुदण्ड पर विषधर डंक मारा है, और आठों कमलों में अग्नि लगाया है, और ब्रह्माग्निका प्रकाश किया है, और उस ब्रह्माग्नि को [अत्यन्त भारी अग्नि को] बढ़ाने वाली अर्द्ध उर्ध्व बतास भी वहां बहती है, मरने पर तुम उस अग्नि में जरते हो, तौभी तेरी नव नाड़ियां वहां विषय रस रूपी परिमाला गाती हैं, इत्यादि। हे जीवो! सो तेरी भूलहै माया देखकर तुम कैसे भूले रहते हो इत्यादि॥ अथवा साहेब कहते हैं कि हेना! [हे पुरुषो!] श्रीबसन्त रूप रस को पढ़ो नहीं तो फिर यम के फन्दे में पड़ोगे, जिन जिज्ञासुओं श्रेष्ठ योगियों ने मेरुदण्ड पर मनकी वृत्ति को लगाई। और उसका कमलों में विस्तार किया, और उस वृत्ति से ब्रह्मात्मा का ज्ञान रूप अग्नि का जिन्होंने प्रकाश किया, उनके प्राण भी नीचे ऊपर उस ब्रह्म ही में बहता है, और नव नाड़ी निर्मल ब्रह्म ही को गाती हैं। इन्द्रियां भी उनके ब्रह्मात्मा ही को देखने के लिये दौड़ती हैं। उसी ब्रह्म में अनहद शब्द पूर्ण होते हैं। और बहत्तर कोठे के वायु रूप पुरुष भी ब्रह्म ही में धूरि खेलतेहैं। हे अज्ञानी पुरुषो! तुम माया देखकर क्यों भूले हो? यह माया ही वनस्पति के फूल सदृश संसार रूप फूल फूलो है, इस उपदेश को सुनकर हरि के दास कहते हैं कि, ये लोग माया के साथ फगुआ से बैकुण्ठ में बास मांगतेहैं भूले नहीं हैं इत्यादि पूर्व वर्णित षटचक्र सम्बन्धी छः कमल हैं, कहीं सात कमल लिखे हैं जैसे कि—

चतुर्दलंस्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षड्दलम्। नाभौ दशदलं पद्मं सूर्यसंख्यादलं हृदि॥ कण्ठे स्यात् षोड़शदलं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा। सहस्रदलमाख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथे॥

चार दलवाला आधारपद्म है १ छः दलवाला स्वाधिष्ठान है २ नाभी देशमें दशदल वाला है ३ बारह दल का हृदय कमल है४ कण्ठ में षोड़श दलवालाहै ५ भौहों के बीच में दुइ दल कमल है ६ ब्रह्मरन्ध्र रूप महापथ में सहस्रदल कमल है॥ ७॥ कहीं लिखा है कि,—

[गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम्॥ द्वितीयंस्वाधिष्ठानचक्रं षड्दलम्॥ तृतीयंनाभिचक्रम् मणिपूरचक्रं हृदयचक्रम्॥ कण्ठचक्रम्॥ तालुचक्रम्॥ सप्तमं भ्रूचक्रम्॥ आज्ञाचक्रमष्टमं ब्रह्मरन्ध्रम्॥ नवममाकाशचक्रम्]

इस में आकाश चक्र को छोड़ देने से आठ चक्र वा कमल कहे जाते हैं उन्हीका प्रकृत में ग्रहण है, विशेष विचार प्रथम ही लिखा गया है। और नाड़ियों के गौण प्रधान विस्तार संक्षेप इस प्रकार लिखा है कि—

हृदिह्येष आत्मा । अत्रैकशतनाड़ीनां तासां शतंशतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाड़ीसहस्राणि भवन्त्यासुव्यानश्चरति ।

लिङ्गात्मा साक्षी भास्य प्राण सहित जीव हृदय में रहता है, और इस हृदय में प्रधान नाड़ियां एक सौ एक हैं, और उन एक सौ एक नाड़ियों में से एक २ नाड़ियों के सौ सौ शाखा नाड़ी हैं इससे शाखा नाड़ी दश हज़ार सौ होती हैं। और एक एक शाखा नाड़ी के बहत्तर बहत्तर हज़ार प्रतिशाखा नाड़ियां होती हैं। इससे प्रतिशाखा नाड़ी बहत्तर कोटि बहत्तर लाख होती हैं, कुल मिलाकर ७२७२०००००० इतनी नाड़ी हुई, इन सब में व्यान वायु घूमता है ॥ योग के ग्रन्थ में लिखा है कि—

[ऊर्ध्वं मेढ़ादधो नाभेः कन्दो योनिः खगाण्डवत् । तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणांद्विसप्ततिः । तेपुनाड़ीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृताः प्राणवाहिन्यो भूयस्तासुदशस्मृताः] ।

इत्यादि । मेढ़ से ऊपर नाभि से नीचे सब नाड़ियों के योनि यानी कारण रूप पक्षी का अण्डा सदृश एक कन्द है, उसमें से बहत्तर हज़ार नाड़ी उत्पन्न हुई हैं, उनमें बहत्तर प्रधान कही गई हैं, उनमें भी, इड़ला, पिङ्गला, सुषुम्ना गन्धारी, हस्ति जिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अम्बुषा, कुहू, शङ्खिनी नामवाली दशनाड़ियां प्रधान हैं, जिन के द्वारा प्राण अधिक आते जाते हैं ॥ और अनहद्नाद विषयक वचन है कि--

[आदौ जलधिजीमूत भेरी झर्झरसंभवाः। मध्येमर्दलशंखोत्था घण्टाकाहलजास्तथा ॥ अन्तेतुकिंकिणीवंश वीणा भ्रमरनिश्वनाः। इतिनानाविधानादाः श्रूयन्ते देहमध्यगाः]

जब वायु प्रथम ब्रह्मरन्ध्र में जाने लग जाती है तब समुद्र मेघ भेरी झाँझ के शब्द सदृश शब्द ब्रह्मरन्ध्र में सुन पड़ते हैं, मध्यकाल में [सुषुम्ना में] वायु को स्थिर होने पर मर्दल शंख घन्टों के हलके शब्द सदृश शब्द सुन पड़ते हैं, अन्तमें ब्रह्मरन्ध्र में वायु की पूर्ण स्थिति हो जाने पर किंकिणी बसुरी बीणा भ्रमर के शब्द सदृश शब्द सुन पड़ते हैं। इस रीति से नाना प्रकार के देह के भीतर होनेवाले शब्द सुन पड़ते हैं।

११ एकादश बसन्त ।

(जाके) बारह मास बसन्त होय । (ताके) परमार्थ बूझै बिरल कोय ॥
बरषै अग्नि अखण्ड धार । हरियर (भौ) बन अठारह भार ॥

पनिया आदर धरै न लोय। पवन गहे कस मलिन धोय॥
बिनु तरुवर फूले आकाश। शिव विरञ्चि तहां लेहिं बास॥
सनकादि भूले भवँर होय। लक्ष चौरासी जीव जोय॥
जो तोहि सतगुरु सत्य लखाव। ताते न छूटै चरण भाव॥
अमर लोक फल लावै चाय। कहँ कबिर बूझै सो खाय॥

टीका—जप तथा हठ लय योगादि जन्य अनित्य सुखों का वर्णन करके, नित्य स्वरूप सुख का तथा आविर्भावरूप ज्ञान दशा का साहेब वर्णन करतेहैं कि, ज्ञानदशामें बारहों मास [सदा ही] निरन्तर बसन्त होता है यानी अत्यन्त आनन्द होता है। अर्थात् बसन्त ऋतु वा राग सदृश आनन्द स्वरूप ही आत्मा ज्ञानी को सदा भासता है, परन्तु उस परमार्थ आनन्द स्वरूप आत्म वस्तु को कोई बिरले ही पुरुष बूझते समझते हैं। और जो कोई बूझते हैं, उन की कैसी आनन्दमयी अवस्था होतीहै कि, जैसे बसन्त ऋतु में अखण्डधार यानी सदा सूर्य की गरमी रूप अग्नि बरसती है, तौभी अठारह भारबन, [बनस्पति] हरियर होता और रहता है, वैसे ही ज्ञानी पुरुषों में संसार रूप निर्जीव जड़ शुष्क काष्ठ को जलानेवाली ज्ञानाग्नि अखण्ड धार से बरसती है, अर्थात् व्यावहारिक ज्ञानादि से अखण्डनीय आत्माकार अन्तःकरण की वृत्ति होती है। यद्यपि व्यवहार काल में आत्माकार वृत्ति का अभाव हो जाता है, तथापि उसकी अबाधित दृढ़ बासना बनी रहती है। और उस ज्ञानाग्नि की वृष्टि काल में शरीर के रोम रूप अठारह भार बनस्पतियां हरियर पुलकित रहती हैं। अथवा छः ज्ञानेन्द्रिय छः ज्ञान छःविषय ये अठारह भार हरियर हो जाते हैं, सभी प्रसन्न सुखरूप भासते हैं। अथवा दैहिकादि तापरूप अखण्डधार अग्नि की वृष्टि होने पर भी ज्ञानी पुरुष के उक्त अठारह भार हरियर ही रहतेहैं। अथवा प्राणादि रूप षोड़शकला उनके प्रकृति रूप माया और कार्य रूप शरीर, ये सब हरियर अर्थात् आनन्द स्वरूप हो जातेहैं। अथवा सम्पूर्ण संसार रूप अठाहर भार बन हरियर आनन्दरूप हो जाते हैं। साहेब कहते हैं कि सब पाप दुःख संसार रूप मलको धोने नष्ट करनेवाला ज्ञान स्वरूप पानीहै। उस आत्मज्ञान को लोय [लोग] सब आदर [श्रद्धा भक्ति]से नहीं धरतेहैं, किन्तु पवन [प्राण वायु] को गहते हैं यानी हठनादाभ्यासादि से प्राण का निरोध मात्र करते हैं। जिससे थोड़ी देरके लिये मनका निरोध भी हो जाता है, परन्तु पवन को गहने मात्रसे मलिन कैसे धोई जा सकती है? अर्थात् जैसे लौकिक मलकी निवृत्ति निर्मल पानी बिना पूर्ण रीतिसे नहीं होती है, वैसेही अज्ञानादिरूप मलिनताकी अत्यन्त निवृत्ति भी निर्मल ज्ञानरूप पानी बिना नहीं हो सकती है। और हठादि मात्रसे प्राणादिके लय करने पर भी अज्ञानादिका लय नहीं होता है। जैसे सुषुप्ति कालमें आत्मस्वरूपमें सब कोई प्राप्त होजाते हैं, परन्तु उससे समूल संसारकी निवृत्ति नहीं होती है, तैसे हठलयादि योगसे भी वस्तुतः मुक्ति नहीं होती है। प्रकृतमें प्राणायाम प्राण निरोधका निषेधमें नहीं तात्पर्य है, किन्तु अज्ञानादिके प्राणयामादि अविरोधी है केवल विचारादि जन्य

ज्ञानादिकही अज्ञानादिके विरोधी हैं, इस अर्थमें तात्पर्य है। इससे स्थूल दोषका निवारणके लिये प्राणायामका विधायक शास्त्र बचनसे तथा (सहज ध्यान रहु) इत्यादि, योग विधायक स्वबचनसे भी विरोध नहीं है। और भी साहेब कहते हैं कि, ज्ञानादि बिना पवनको गहने आदिसे मलकी निवृत्ति नहीं होनेहीसे पवनको गहना आदिरूप कर्म करनेवालेको भी, बिना तरुवरके ही आकाश फूला हुआ मालूम होता है, अर्थात् सम्पूर्ण संसार और कल्पवृक्ष स्वर्गादि उन लोगोंको सत्य भासते हैं, तथा मिथ्या संसारके सुखभी सत्य भासते हैं। और स्वर्ग कल्पवृक्ष स्वर्गीय विषयोंको सुनकर अज्ञानसे उन्हें आनन्द स्वरूप मानते हैं। और समझते हैं कि शिव विरञ्चि आदि जगदीश्वर भी तहां [स्वर्ग में] ही बास लेते हैं। और सनकादिभी उस स्वर्ग सुखादिमें ही भँवर होकर भूले हैं। और चौरासी लाख योनिके जो भजन शील भले जीव हैं वे भी उस स्वर्ग वैकुण्ठमें जाते हैं। अथवा साहेब कहते हैं कि जो अज्ञानी कामीकी दृष्टिसे बिना तरुवरके आकाशमें फूल लगा है, वहां शिव विरञ्चि भी बास लिये हैं अन्यकी तो बातही क्या है। और सनकादि यानी निवृत्ति मार्गवाले वेषधारी भी उस आकाशके फूल सदृश मिथ्या वस्तु संसाररूप फूलमें ही भँवर होकर भूले हैं। अर्थात् जिसका कोई सत्य कारण नहीं है उसमें भूले हैं। और चौरासी लाख योनि के जीव जो हैं वे भी उस आकाशके फूलमें ही भूले हैं। अथवा दशम दरवाजारूप आकाशमें ज्योति आदिरूप फूल बिना तरुवरके फूले हैं, उनमें शिव विरञ्चि बास लिये हैं, ऐसा जानकर सनकादि लोग वहां भँवर होकर भूले हैं, जिससे चौरासी लाख जोवको जोते हैं. अर्थात् मुक्त नहीं होनेसे चौरासी लाख योनिके जीवोंको खोज २ कर सब योनियोंमें जन्म लेते हैं। अथवा भूले हुये जीव चौरासी लाख योनिको जोवतेहैं अर्थात् उनमें प्राप्त होतेहैं। संसार स्वर्ग और ब्रह्मरन्ध्रमें दृश्य सब एकदेशी पदार्थको आकाश पुष्पके सदृश मिथ्या सुनकर जिज्ञासा हुई कि, सब एकदेशी दृश्य पदार्थ यदि मिथ्या हैं तो सत्य पदार्थ कौन है? और उसका ज्ञान कैसे हो सकता है? तब साहेब कहते हैं कि जो सद्गुरु हैं वे यदि मिल जायें तो तोहि [तुझको] सत्य लखा देवे। अर्थात् हेय उपादेय से भिन्न तेरे स्वरूपको ही सद्गुरु सत चित आनन्द स्वरूप लखाते हैं। इससे यदि तुझे सत्य वस्तु के ज्ञान की इच्छा होवे तो 'ताते' यानी सत्य वस्तु के ज्ञान की प्राप्ति का हेतु होनेसे, उस गुरु के चरणों से भाव जैसे नहीं छुटे ऐसा करो। अथवा जो सद्गुरु तुझे सत लखा सकें वा लखाये हों उस गुरुके चरणों में से तेरा भाव नहीं छूटना चाहिये, अर्थात् सद्गुरुके चरणों में सदा भाव रखना, वेही सत्य वस्तुका प्राप्ति करा देंगे। और गुरुवाओं का सङ्ग नहीं करना, क्योंकि वे लोग कहते हैं कि, जो पुरुष अमर लोक [देवलोक] के फल की वा देवलोक रूप फलकी, चाह [इच्छा] लावे, [करे] और उन देवता आदिकोंको बूझै, उन्हें जाने, उनकी उपासना पूजा आदि करे, वह पुरुष देवलोकके फलोंको वा देवलोक रूप फलोंको खाता है, अर्थात् भोगता है। और वे देवलोकादि आकाश पुष्प के सदृश मिथ्या हैं, इसलिये अमर लोकादिको सत्य बताने वाले, कबिर, [कबि वा आचर्यों] का सङ्ग नहीं करना। जाके बारह ताके परमारथ। और आदर के अन्दर। होयके बोय। जीव जोय के योनि जोय। चाय के चाव, चाहि। खायके खाव, खाहि। पाठ

भेद हैं। वहां जाके नाम जिस ज्ञानीके स्वरूपमें वा हृदयमें बारहों मास बसन्त होता है, उस ज्ञानीके परमार्थ स्वरूप तथा सुखको बिरला ही कोई समुझता है। और सनकादि लोग 'भँवर' यानी संसारमें भ्रमणका बीज बोकर भूले, इससे वेषधारी सनकादि चौरासी लाख योनि जोये। अथवा इस सम्पूर्ण बसन्तमें मतान्तरकाही बर्णन है, वे लोग कहते हैं कि जिसको बैकुण्ठादिमें सदा बसन्त होता है, उसके सत्य सुखको बिरला ही कोई बूझता है। संसारमें अखण्ड अग्निकी धारा बरषने पर भी वहां अठारह भारबन हरा ही रहता है। परन्तु जो भक्तिरूप पानीको नहीं धरते हैं, उनके पाप, केवल पवन गहनेसे कैसे छूट सकते हैं। और जहां तरुवर बिना आकाश फूला रहता है, वहां भक्त शिवादि बास सुगन्ध [आनन्द] लेते हैं। तथा सनकादि भँवर होकर भूले रहते हैं। और चौरासी लाख योनिके जो जीव भक्त होते हैं, वे भी वहां भवँर होकर भूले रहते हैं। इससे हे मनुष्यो! जो सद्गुरु तुझे सत्य बैकुण्ठ वासी आदिको लखाया है, उनके चरणोंसे भाव न छूटे सोई करो इत्यादि। लिखा है कि—

इदंहेयमुपादेयमिदमित्यसदुत्थितौ निश्चयौ गलितौ यस्य ज्ञस्यासावतिदुर्लभः ॥ १ ॥ ये महामतयः सन्तः शूराश्चेन्द्रियशत्रुषु। जन्मज्वरविनाशाय त उपास्या महाधियः ॥ २ ॥ सर्वत्रपञ्चभूतानि षष्ठंकिञ्चिन्न विद्यते। पाताले भुवने स्वर्गे रतिमेतु क्वधीरधीः ॥ ३ ॥ स्वयंस्वप्नइवाभाति मृतस्य परलोकधीः। तमेवपश्यति चिरं न तत्राप्यस्तिसत्यता ॥ ४ ॥

यह हेय है, यह उपादेय है, इस प्रकारके असत निश्चय जिस ज्ञानीके नष्ट हो गये हैं, वे-ज्ञानी अत्यन्त दुर्लभहैं ॥१॥ जो महामतिवाले सन्त इन्द्रियरूप शत्रुओंके लिये शूरहैं, तथा जन्मात्मक ज्वरकी निवृत्तिके लिये शूरहैं सोई महाज्ञानी उपासनीय हैं ॥२॥ पाताल और सब भुवन तथा स्वर्गादि सबही जगह पाञ्च भूतही हैं, छठमा कुछ नहींहै, फिर धीर पुरुषोंकी बुद्धि कहां प्रेम कर सकतीहै? ॥ ३ ॥ मरने पर भी स्वयं परलोक-बुद्धि स्वप्न सदृश होती है, और उसीको बुद्धि चिरकाल तक देखती है, इससे उसमें सत्यता नहीं है।

१२--द्वादशवसन्त।

(मैं) आयउं मेहतर मिलन तोहि। ऋतु बसन्त पहिराउ मोहि ॥
लम्बी पुरिया पाई छीण। सूत पुराना खूंटा तीन ॥
शर लागै तेहि तिनिसै साठि। कसनी बहत्तर लागू गांठि ॥
खुर खुर खुर खुर चलै नारि ॥ बैठि जोलहदी आसन मारि ॥
ऊपर नचनी करै कलोर। करिगह में दुइ चलै गोर ॥
पाच पचीसो दशो द्वार। सखी पांच तहँ रची धमार ॥
रङ्ग विरङ्गी पहिरी चीर। हरिक चरण धरि गावैं कबीर ॥

इति श्रीसद्गुरु कबीर साहेब कृत बीजकाख्य ग्रन्थस्य
षष्ठं बसन्त प्रकरणं समाप्तम्

टीका—पूर्व बसन्तके अन्तमें कहा गयाहै कि गुरुवा लोग कहतेहैं कि, अमरलोकात्मक फलकी चाहना [इच्छा] करने वाले और देवादिको बुझनेवाले उक्त फलको भोगतेहैं इत्यादि। यहां जिज्ञासा हुई कि, किस प्रकार बूझनेके लिये कहते हैं? तब साहेब कहते हैं कि, वे लोग स्तुति करते हैं, तथा करनेके लिये कहतेहैं कि, हे मेहतर! नाम हेश्रेष्ठनर! हे अत्यन्त दयालु! वा हे आनन्दकी अत्यन्त वृष्टि कर्ता देव! मै तोहि [आप]से मिलनेके लिये इस मानव शरीरमें वा आपके मन्दिरमें या आपके शरणमें आया हूँ, मुझे बसन्त ऋतु पहिराइये, अर्थात् बसन्तके सदृश अमरचिर [अमर वस्त्र] तथा अमर शरीरादि पहिराइये। और प्राप्त कराइये। यहां मेह शब्द फारसीके मेहरवान् का एकदेशरूप है, वा श्रेष्ठ अर्थमें फारसीके मेह शब्दहै। अथवा सेचन वृद्धि अर्थमें जो मिह धातु है, उसका बना हुआ है। और तरका अतिशय अत्यन्त अर्थ है। जिज्ञासा हुई कि पूर्व कही रीतिसे देवताओं की, स्तुति आदिको जाननेवाले गुरुवा लोग कैसेहै? तब साहेब कहतेहैं कि, वे लोग जिसको अमर चीरादिक कहतेहैं, सो वस्तुतः तुच्छ वस्तुहै, क्योंकि यह जन्म मरणके प्रवाहरूप पुरिया [तानीरूप थान] लम्बी है यानी अनादि है। और इसकी 'पाई क्षीण है' अर्थात् जैसे किसी लम्बी पुरियामें उसकी शुद्धि के लिये किसी जोलाहासे पूर्ण पाई नहीं हो सकनेसे वह पाई क्षीण रह गई होवे, और पाईके क्षीण होनेसे शुद्धि भी क्षीण होवे अर्थात् कहो होवे कहीं नहीं होवे, वैसेही इस संसार प्रवाहमें शुद्धिके हेतु बिचारादि और शुद्धि क्षीण हैं, अर्थात् देवलोकमें भी ऐसी शुद्धि नहीं है कि, जिसमें नित्य-सुख और उसकी प्राप्तिके साधन अनायास ही प्राप्त हो जावें। अथवा संसाररूप पुरिया लम्बीहै, परन्तु पाइ किया हुआ (फैलाया हुआ) थानके सदृश क्षीणहै, यानी तुच्छ तथा नश्वर है। अथवा जिस बसन्त ऋतुको जीव पहिरना चाहते हैं सोई लम्बी पुरिया के सदृश पुर [ग्राम] है, और इसी ग्रामको पाइ [प्राप्त] करके ये जीव क्षीण तुच्छ अल्पज्ञ दुःखी हुये हैं। और इस पुरियाके कारणरूप सूत भी पुराणे हैं अर्थात् कर्म बासना पाञ्चभूतादि रूप कारण अनादिहैं। और तीन गुण रूपी तथा बात पित्त कफ रूपी तीन खूंटेहैं। और वर्तमान मानव शरीररूप पुरियामें तीन सौ साठ हड्डियोंके वा एक वर्षके तीन सौ साठ दिनोंके शर लगे हैं। और पूर्व कहे बहत्तर करोड़ादि नाड़ियोंकी जो गाँठि हैं, सोई कसनी लगी हैं, यानी सब को बाँधकर और तानकर रखनेवाली हैं। और तानीके अन्दर जैसे ढरकी द्वारा नारी खुर खुर चलती है तब पुरियाकी भरनी होनेसे पटकी तैयारी होती है। वैसे ही इस शरीरमें भी खुर खुर नारी चलती है यानी वायु चलती है, जिससे अन्नके रसादि बनते हैं। और वायु द्वारा सम्पूर्ण शरीरमें प्राप्त होनेहैं जिससे शरीर पुष्ट होता है। और 'जोलहदी' यानी बुद्धिरूपी जोलाहिनी जीवरूप जोलहा सहित, आसन मारकर हृदयमें बैठी हुई पटको बिनती तथा पुष्ट करती है। और जैसे कपडा बिनते समय नचनी [नाचनेवाली कल सामग्री] ऊपर कलोल करती है। [घूमती और शब्द करती है] तैसेही श्रोत्रादिरूप इन्द्रिय और मनरूप नचनी श्रोत्र नेत्रादिके गोलकों द्वारा ऊपर कलोल करती हैं [शब्द करतीहैं] तथा विषयोंपर आती जाती हैं। और जैसे करिगहमें जोलहा दोनों गोड़ चलाता है, तैसे चन्द सूर दोनों नाड़ी अपने २ समय पर शरीरमें चलतीहैं। और इस शरीररूप करिगह [घर]में पाञ्च तत्त्व पचीस प्रकृति दश द्वारेहैं। और

'तहाँ' यानी उस शरीरमें वा पाञ्च पचीस दश द्वारोंमें पाञ्च प्राण रूप वा पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय रूप पाञ्च सखियाँ धमार रचीहैं, यानी धमार नामक गानके सदृश अनहद शब्द वा उत्सव आनन्द क्रीड़ा विशेष रची हैं। और कबीर [कबीरा अज्ञानी जीव] देवताओंकी स्तुति आदिको जाननेवाले पुरुषोंने भी पूर्व कहे सूतादिसे बने हुये रङ्ग बिरङ्गके चीरोंको पहिरकर अर्थात् अनेकों देवादि शरीर विषयक बासनाओंके धारण करके, और हरिनामक देवके चरणको धरके, यानी उनके भक्त बन करके उक्त सखियोंके साथ धमार गाते और रचतेहैं। अथवा रङ्ग बिरङ्गि अर्थात् पाञ्च पचीसादि रङ्गोंसे युक्त शरीर रूप चीरको पहनकर, उसमें अभिमान प्रेम करके, और हरिके चरण धरके हरिके गुणोंको गाते हैं। भाव यह है कि अज्ञानियोंके देव स्तुति आदि करते कराते अनन्तों जन्म हो गये, परन्तु उससे मुक्ति न हुई न हो सकती है, किन्तु जन्मादिसे महा क्लेश ही होता है, इससे देव-स्तुति आदि मात्रको जानने कहनेवाले गुरुवा हैं, उनकी सङ्गति आदि नहीं करनी चाहिये, किन्तु यथार्थ वक्ता ज्ञानी गुरुके शरणमें प्राप्त होना चाहिये, जिससे कल्याण होवे। एकादश बसन्तमें कह कबिर के स्थानमें, कहहिं कबिर पाठ भेद पक्षमें दोनों बसन्तके संक्षिप्त अर्थ हैं कि, जो कोई परमार्थ बूझता है, उसको बारहों मास बसन्त आनन्द होताहै, तथा अखण्ड धार अग्नि बरसने पर भी उसके लिये अठारह भार बन हरियर रहते हैं, परन्तु उस बूझरूपी पानीको कोई धरता नहीं है, किन्तु पवनको धरता है, भला उस पवनको गहनेसे मलिन कैसे धो सकती है ? किन्तु नहीं धो सकती है। और परमार्थ वस्तुको बूझनेसे संसार तरुवर बिना ही ब्रह्माकाश फ़लताहै [प्रगट होता है] तथा भूताकाश आनन्दमय भासता है। जिस आनन्द स्वरूपमें शिव विरञ्चि बास लेतेहैं। और जिसमें भँवरसदृश लगे रहनेसे सनकादि संसारको भूले रहते हैं। और चौरासी लाख जीवको भी उसीमें जोवते देखते हैं। साहेब कहते हैं कि, हे जीवो ! उस परमार्थ रूपी सत्यवस्तुको जो गुरु तुझे लखाते हैं, उन गुरुके चरणसे भाव नहीं छूटना चाहिये। क्योंकि जो पुरुष उस सत्यपरमार्थ स्वरूप अमर लोक रूप फलमें यानी अविनाशी नित्यमुक्त वस्तुमें चाय [प्रेम] लावताहै, और गुरुचरणमें भावरखकर गुरुसे बूझता है [पूछता है] पूछकर जानता है, वही पुरुष उक्त फलको खाता है यानी मोक्षरूप फलको सोई पुरुष पाता है। और गुरुचरणमें भाव रहित नहीं पाता है॥ इसलिये हे जिज्ञासुओ ! गुरुशरणमें प्राप्त होकर गुरुचरणमें भाव पूर्वक गुरुसे बिनय करो कि, हे श्रेष्ठ ! हे दयालु गुरु देव ! मैं आपसे मिलने आया हूं, बारह मास रहनेवाला बसन्त ऋतु मुझे पहिराइये, [प्राप्त कराइये] अर्थात् मुझे परमार्थ वस्तुका उपदेश किजिये, मैं अनादिसे दुःखी हूं मुक्त किजिये, क्योंकि यह ससार शरीर रूप पुरिया अनादिहै, और तीन गुणरूप खूँटा पर स्थिरहै, और इसमें पाई क्षीण है तथा इसके कारण भी अनादि हैं। और तीन सौ साठ शर लगे हैं, तथा बहत्तरके कसनेवाली गांठि लगी है, नदी आदि रूप अनेकों नारी बाहर भीतर खुरचल रही हैं। और तारे इन्द्रियरूप नचनी ऊपर कलोल कर रही हैं, तथा सूर्य चन्द्रमा दोनों वा उत्तरायण दक्षिणायण दोनों गोर चल रहे हैं। और इसीके अन्दर पाञ्च पचीस दशद्वार दश दिशा हैं, उनमें रङ्ग बिरङ्गके चीर पहिरकर पाञ्च सखी धमार रची हैं। हे गुरु ! मुझे इनकी अनित्य धमारसे और उक्त अनादि संसारसे रहित

होनेके लिये सदा रहनेवाला ऋतु बसन्त पहिराइये । इस प्रकार गुरुसे विनय करना चाहिये साहेब कहते हैं कि, मैं कबीर भी हरि [गुरु] के चरण धर करके ही सत्य उपदेश रूपी बाणीको गाता हूं नाम उपदेश करता हूँ ॥

मायाकल्पितभूतभौतिकशतै र्भ्रान्तश्चिरंयोऽनया, दूरान्वेषणतत्परेण मनसा श्रान्तश्चमोमुह्यते । साराऽसारविवेकपारगतया शान्तश्शिवोयोभवेत् । सोयंसत्यसुखात्मकः परतमश्चात्मास्वयं राजते ॥ १ ॥

जो आत्मा मायासे कल्पित सैकड़ों भूत भौतिकसे और मायासे भ्रान्त होकर चिरकाल तक दूर २ में अन्वेषण विषे तत्पर मनसे श्रान्त होकर बारबार मोहको प्राप्त होती है, और सार असारके पूर्ण विवेकी होनेपर जो शान्त शिव स्वरूप होती है, वह यह सत्य सुख स्वरूप परतम आत्मा स्वयं प्रकाशता है ॥

श्री १०८ पूज्यपाद रमितादास पूज्यपाद हरिहर सुधी बिनेय साधुहनुमद्दास
बिरचिता बसन्तप्रकरणस्य शिशुबोधिनीटीका समाप्ता ।

रमयनीप्रकरण ।

पृष्ठसंख्या	श्लोकादिसंख्या	ग्रन्थादिनाम	पृ०		श्लो०	ग्रन्थादि
७	१	ऐतरेयोपनिषद्	,,		६	कठ (१।२।८)
,,	२	छान्दोग्य	२६		७	श्वेताश्वतर [४ । ६]
,,	३	तैत्तिरीय	,,		८	परासर
८	१	तैत्तिरीयब्रा०	,,		६	गरुड़पुराण
९	१ २	योगवासिष्ठ	३४		१	श्रुतिःस्मृतिर्वा
१०	,,	छन्द-काव्यग्र०	,,	फिर	१	कैवल्योपनिषद्
११	१	वेदान्त ग्र०	,,		२	स्मृतिः
१४	१	स्मृतिः	३५		३	कठ [१ । २ । १५]
१७	१-६	वै० मञ्जूषादि	,,		४	नरसिंह पुराण
१८	१	वाक्यपदीय	,,		५-६	मत्स्यपु०
१६	१	षट्दर्शनसमुच्चये	,,		७	केनोपनि०[२।१२]
२५	१	बृहदारण्यक (४।५।१४)	३८		१	श्वेताश्वतर [३ । १६)
,,	२	श्वेताश्वतर (६।६)	,,		२	श्वे० [६ । १४]
,,	३	श्वेता० (३ । १७)	,,		३	तैत्तिरीय
	४-५	सांख्यतत्त्वविवेचन	,,		४	कठ [२ । ४]
	१	कठ [१ । ३ । १२]	,,		५	श्वेता० [४ । २]
	२	श्रुतिः	,,		६	केन [१ । ३]
	३	मुण्डक (१।२।६)	,,		७	योगवासिष्ठ
	४	म० भारत	,,		८	बृहदारण्यक [३।८।८]
	५	कठ [१ । २ । ६]	४१		१	छान्दोग्य [७।२४।१]

पृष्ठ संख्या	श्लोकादि संख्या	ग्रन्थादि नाम
,,	१२	शिव पु०
२४९	१	कठो० [२।६।११]
,,	२	मुण्डको० [२।२।४]
२५०	३	अमृत नादोपनि०
,,	४	सौर पु०
,,	५-६	मैत्रेय्युपनि०
,,	७-८	नारदपरिव्राजकः
,,	१०	अत्रिस्मृति
२५२	१	योग वा०
,,	२—४	स्मृति
२५३	५	नीति
,,	६-१०	म०भारतादि
,,	११—१२	उद्धरस्मा०
२५७	१-३	योगवासिष्ठ
,,	४—६	महोपनिषद्
,,	७	आत्मपु०
,,	८	नैष्कर्म्यसिद्धि
२६०	१	बृह० [३।५।१६]
,,	२—३	योगतत्त्वोपनि०
,,	४—६	सु०वार्तिक
२६४	१—३	आत्मपु०
,,	४—५	योग वा०
,,	६	ब्रह्मसूत्र
२६८	१	छान्दोग्य [८।१२।१]
,,	२	ईशोपनि०
,,	३	भ० गीता
,,	४—६	योग वा०
,,	७	मनुः
,,	९	श्रुति
,,	१०	पद्मपु०
,,	११—१३	स्मृतिः
२७१	१	बृह. [४।५।१५]
,,	२	कठो० [२।३।११]
,,	३-६	योग वा.
२७३	१-५	विष्णुधर्म०
,,	६—७ शा०	अपरोक्षानु०
२७५	१	म० भारत
२७६	२	म० भारत
,,	३	ब्रह्मबिन्दूप-
,,	४	योगवा०
,,	५	श्वेताश्वतर
,,	६-८	वेदान्तग्र०
,,	९-१०	नैष्कर्म्यसिद्धि
२७९	१	भागवत
,,	२	विवेक चू०

पृष्ठ संख्या	श्लोकादि संख्या	ग्रन्थादि नाम
,,	३-५	ब्रह्मामृतम्
,,	६	विष्णु पु०
,,	७	उपनिषद्
२८२	१-९	योगवासिष्ठादि
२८५	१-२	कठो० (१।२)
,,	३-५	आत्म पु०
२८७	१-५	आत्म पु०
,,	६-७	योग वा०
२९१	१	श्वेताश्वतर
,,	२-७	अपरोक्षानु०
२९४	१-४	म० भारत
२९५	५	कठोपनि०
,,	६-७	योगवा०
,,	८-९	स्मृतिः
,,	११	अपरोक्षानु०
,,	१२	विष्णु पु०
२९९	१-४	योगवा०
,,	५-७	आत्मपुराणादि
,,	८-९	योगवा०

इति रमयणी प्रकरणके श्लोक सूची

शब्द प्रकरण

पृष्ठ संख्या	श्लोकादिसंख्या	ग्रन्थादिनाम
५	१-२	म० भारत
,,	३	योगवा०
,, फिर	१-२	कैवल्योपनि०
६	३-५	ब्राह्मपु०
,,	६-७	भविष्य पु०
८	१-४	भ० गीता
,,	५	मनुः
,,	१०	शृङ्गारशतक
,,	१२-१३	जाबालदर्शनोप०
१४	१	बृह० (४।४।२२)
,,	२	कैवल्योपनि०
,,	३	म० भारत
,,	४-५	भागवत
,,	६	भ० गीता
,,	७	गरुड पु०
१६	१-२	श्वेताश्वतर
,,	३-६	ब्राह्म पु० यो० वा०
,,	७	श्वेताश्वतर
१९	१-४	योगवासिष्ठ
,,	५	म० भारत
,,	६-७	योगवा०
२५	१	पञ्चदशी
,,	२-४	अवधूत गी०

पृष्ठ संख्या	श्लोकादि संख्या	ग्रन्थादि नाम
२६	५-७	योगतत्त्वोपनि०
२९	१-४	म० भारत
,,	६	ब्रह्मामृतम्
,,	७	कठ०
,,	८-११	योगवासिष्ठ
३२	१	भ० गीता
,,	२—५	वै० ग्रन्थ
,,	६	वेदान्त
,,	७—९	नैष्कर्म्यसिद्धि
३३	१०	कठश्रु०
३६	३	योगवासिष्ठ
,,	४	भ० गी०
,,	६	भ० गीता
३९	१-६	श्रुतिः
४२	१	मैत्रेय्युपनि०
,,	२-३	तेजोबिन्दूपनि०
,,	४	महोपनि०
४५	१—२	उपदेश साहस्री
,,	३	अद्वैत सिद्धिसि०
,,	४	सुरेश्वरवार्तिक
,,	५	संक्षेपशारीरक
४८	१-२	ब्रह्मामृतम्
,,	३—५	मैत्रेय्युपनिषद्
४९	६—१०	इतिहाससमुच्चय
,,	११	म० भारत
,,	१२	यो० वासिष्ठ
,,	१३	म० भारत
५२	१	अन्नपूर्णोप०
,,	३	मोक्षधर्म
,,	४	आत्मपु०
,,	५	ब्रह्मपु०
५५	१—२	श्वेताश्वतर ६
	३	कैवल्योप०
	५	जाबालदर्शन
,,	६	श्वेता० १
५९	१—२	वायुपु.
,,	३	अपरोक्षानु.
६१	३—४	योगवासिष्ठ
,,	५	शा० अपरोक्षानु०
,,	६—७	योगवासिष्ठ
६६	१	भा. गीता
,,	२-५	आत्म पु.
,,	६	श्वेता० [१।६]
,,	७—८	यो० वासिष्ठ
,,	९	उपदेशसाहस्री

पृष्ठ संख्या	श्लोकादि संख्या	ग्रन्थादि नाम
,,	१०—१४	महोपनिषद्
७०	१—५	यो० वासिष्ठ
७२	१—२	यो० वासिष्ठ
,,	३—४	भ० गीता
७५	१	मनुः
,,	२	यो० वासिष्ठ
,,	३	कठ श्रुति
,,	४	उपदेशसाहस्री
७८	१	वै० शतक
,,	३-५	म० भारत
८१	१	वै० शतक
८२	२-७	भारतस्मृत्यादौ
,,	८—११	ब्रह्म पु०
८६	४	आत्म पु०
९०	१	इतिहास स०
,,	२	भविष्यपु०
,,	३	मनुः
,,	४	व्यासः
,,	७	आत्मपु०
,,	८—९	भविष्य पु०
९३	१—३	श्वेताश्वतर
,,	४	जाबालदर्शन
,,	५	म०भारत
९७	१	यो० वासिष्ठ
,,	फिर १	गरुड़ पु०
,,	२—४	पुराणभारत
१०२	१-६	यो० वासिष्ठ
१०५	१	ब्रह्मपु०
१०७	१-३	यो० वासि०
११०	१-३	आत्मोपनि०
११५	८	यो० वासिष्ठ
११९	१	व्यासः
१२०	२-६	मनुः
१२२	१-३	यो० वासि०
,,	४	मुण्डक [३।१।८]
१२३	५-६	उपदेशसाहस्री
,,	७	यो० वासि०
१२७	१—२	श्रुतिः
,,	३	यो० वासिष्ठ
,,	४	श्रुतिः
,,	५	म० भारत
,,	६—७	मैत्रेय्यादि
१३१	१—२	पञ्चदशी
१३२	३	पञ्चदशी महोपनिषच्च
,,	४	यो० वासि०

पृष्ठ संख्या	श्लोकादि संख्या	ग्रन्थादि नाम
,,	५	विवेक चू०
१३६	१—२	श्रुतिः
,,	३	इतिहासस०
,,	४	यो० वासि०
१४२	१—८	यो० वासिष्ठ
,,	६	विवेकचू०
१४५	१	वृ० श्रुति०
,,	२	पञ्चदशी
,,	३	श्रुतिः
१४८	१	श्रुति
१५०	१—२	यो० वासि०
,,	३—४	सु० वार्तिक
१५२	१—२	म० भारत
,,	६	आत्मपु०
१५६	७	यो०वासि०
१५७	१	निरुक्त
१६२	१	कठ०
,,	२	यो०वासिष्ठ
,,	३	द्वा०पं०स्तोत्र
,,	४	सु० वार्तिक
,,	५	भ० गीता
,,	६	आत्मपु०
१६५	२	सु० वार्तिक
,,	४	मुण्ड० [३।२]
,,	५	कठ० [२।६।१]
१६९	१-२	कठ०
,,	३	मुण्ड० [२।१।१०]
,,	४	छा० [२।१।१०]
,,	५	यो० वासिष्ठ
,,	६	सु० वार्तिक
,,	७ ८	संक्षेपशा०
१७२	१	यो० वासिष्ठ
१७५	१-२	भ० गीता
,,	३	यो० वासिष्ठ
१७८	१	मुण्ड० [२।२।५]
,,	२	वृह० [४।४।२१]
,,	३	श्वेता० [६।९]
१८१	१	यो० वासिष्ठ
,,	२	भागवत महात्म्य
१८५	१—३	यो० वासिष्ठ
१८६	१-२	यो०वा०
,,	३	मतस्य पु०
,,	४	भ० गीता
१९२	१—४	भविष्यपु०

पृष्ठ	श्लोकादि	ग्रन्थादि
,,	५—६	ब्रह्मवैवर्तपु०
१६४	१—२	म० भारत
१६५	१—२	मनुः
१६८	१	स्मृति
१९९	अर्धश्लोक	यो० वासि०
,,	ड्ढ़	ब्रह्म पु०
२०१	१—२	योगवासि०
,,	३	म० भारत
,,	४	भविष्यपु०
२०४	द्यावाभूमीत्यादि	श्रुति
२०५	१	मनुः
,,	२—३	म० भारत
२०८	१—३	स्मृति
२१२	१	इतिहाससमु०
,,	२	श्रुति
,,	३	भ० गीता
२१४	१	आत्मपु०
,,	२-५	गरुड़ पु०
२१६	१	यो० वासि०
२१८	२	अपरोक्षानु०
,,	३—५	मत्स्यपु०
२२०	१—२	ब्रह्मवैवर्तपु०
२२१	३—७	आत्मपु०
,,	८—६	कूर्म पु०
२२३	१—२	भागवत
२२४	३	वृहस्पतिः
२२७	१	अध्यात्मप्रदीपिका
,,	३	विवेकचू०
२३०	१	नीतिः
,,	२—३	मनुः
२३१	१—३	ब्रह्मवैवर्त
,,	४	म० भारत
२३४	१	अपरोक्षानु०
,,	२—३	ब्रह्मवैवर्त
,,	४—५	सु० वार्तिक
,,	६	इतिहासस०
२३५	७—९	इतिहाससमुच्चय
२३७	२	भ० गीता
,,	३	ब्रह्मवैवर्त
२३८	५	अपरोक्षानु०
,,	६	आत्मपु०
,	७—१०	इतिहास समु०
,,	१३	पञ्चदशी

पृष्ठ संख्या	श्लोकादि संख्या	ग्रन्थादि नाम
३३०	१-२	यो० वासिष्ठ
"	३-५	माण्डूक्य०
३३४	—३	भ० गीता
३३६	१	मुण्डकोप०
३३७	—३	यो० वासिष्ठ
"	१	नैष्कर्म्यसिद्धि
३३९	१	यो० वासिष्ठ
"	२	श्वेताश्वतर
"	३	ब्रह्मविन्दूप०
३४०	१	यो० वासिष्ठ
"	२	अक्ष्युपनिषद्
"	३	अध्यात्मोपनि०
"	४	केन
३४२	१	मुण्डक
"	२	प्रश्न [६।६]
३४८	१	श्रुतिः
३४९	१	अत्रि संहितादि
"	२	ब्रह्मवैवर्तपु०
३५५	१-४	ब्रह्मवैवर्त पु०
"	५-६	गरुड़ पु०
३५८	१	गरुड़ादि
"	२	भ० शतक
"	३-४	अद्भुत रामायण
३६२	१	छा० [८।१।१]
"	२	ब्रह्म वैवर्त पु०
"	३	म० भारत
"	४	मु० वार्तिक
३६८	१	श्वेता० [६।१]
"	२-४	सु० वार्तिक
३७२	१	सु० वार्तिक
३७४	१-२	आत्म पु०
"	३	भागवत
३७७	१	यो० वासिष्ठ
३७९	१	मैत्रेय्युपनि०
"	२	भ० गीता
"	३	म० भारत
३८३	१-३	श्रीजाबालदर्शनोप०
३८५	१-४	यो० वासिष्ठ

पृष्ठ	श्लोकादि	ग्रन्थादि
३८८	१	भागवत
३९०	१	बृह० [२।५।१७]
"	२-५	ब्रह्मबिन्दूपनि० ५)

इति शब्द प्रकरण के श्लोक सूची

कहरा आदि।

पृष्ठ	श्लोकादि	ग्रन्थादि
६	१	सु० वार्तिक
११	१	गरुड़ पु०
"	२	आधुनिक
"	३	आत्म पु०
१९	१	मुण्डक
"	२-३	यो० वा०
२६	१	योग सू०
२७	२	कठ
"	३-६	भ० गीता
"	७	मनु
"	८-१०	भ० गीता
"	११-१४	गरुड़ पु०
३३	१	मनुः
"	४	सु० वार्तिक
४०	१	श्रुति
"	२	गरुड़ पु०
"	३	वै० शतक
४३	१	ब्रह्मवैवर्त
"	२	ब्रह्मामृतम्
"	३	ना० परिव्राजक
"	४	आत्म पु०
५२	१-२	वसिष्ठस्मृति
"	३-५	म० भारत
"	६-९	भविष्य
"	१०-११	म० भारत
५६	१-१०	मुक्तिकादि
६५	१-४	योग वा०
६६	१-२	यो० वा०
७०	३-४	यो० वा०
"	१	म० भारत
८१	१-२	यो० वा०
"	३	म० भा०
९८	१-४	यो० वा०

॥ इति शम् ॥

सूचना—

हिन्दी लिखनेके अनभ्यासादिवश हिन्दी अशुद्ध रह गई है, सज्जन लोग उसे सुधारकर पढ़ें। हिन्दी आदिके प्राचीन शैलीकी प्रौढ़तावश मूलका सुधारा भी हमसे पूर्ण न हो सका है। और प्रमाणरूप श्लोकोंका पूर्णपता भी मैं प्रथम आलस्यादिवश नहीं दिया था, छपनेपर बहुत सज्जनोंकी सम्मतीसे यह भी साधारण सूची दे दि गई है। शीघ्रतावश पूर्ण करनेका अवसर नहीं मिला, यदि हो सकेगा तो दूसरी बार छपनेपर श्लोकोंके साथ ही पूर्णपता भी दे दिया जायगा। लेखक—

॥ अथ सप्तमं चांचरप्रकरणम् ॥

* रामं संसेव्यमानं गुरुवरनिरतैः शिष्यवर्यैर्निकामं।
क्लेशघ्नं चित्स्वरूपं भ्रमनिकरहरं शोकमोहातिदूरम् ॥
मोहघ्नं ज्ञानगम्यं भवनिधितरणे पोतवर्यं जनानां।
मायेशंमाययाऽलं सुरनरमुनिभिर्ध्यायमानं च वन्दे ॥१॥

१ प्रथम चांचर।

जारहु जगका नेहरा मन बौराहो।
जामहँ सोक सँताप समुझु मन बौराहो ॥
बिना नेवका देवघरा मन बौराहो।
बिन कहगिल को इंट समुझु मन बौराहो ॥
कालबूत की हस्तिनी मन बौराहो।
चित्र रच्यो जगदीश समुझु मन बौराहो ॥
काम अन्ध गज बशिपरे मन बौराहो।
अंकुश सहिहो शीश समुझु मन बौराहो ॥
तन धन सो क्या गर्वसी मन बौराहो।
भस्म कृमि जाके साज समुझु मन बौराहो ॥
मरकट मूठी स्वाद की मन बौराहो।
लीन्हों भुजापसारि समुझु मन बौराहो ॥
छूटन की संशय परी मन बौराहो।
घरघर नाचे द्वार समुझु मन बौराहो ॥
ऊंचनीच जानै नहीं मन बौराहो।
घर घर खायहु डांग समुझु मन बौराहो ॥

* टिप्पण–गुरुवर में निरत श्रेष्ठ शिष्य से यथेष्ट सेव्यमान क्लेश नाशक, चितस्वरूप, भ्रम-समूह के नाशक, शोक मोह से अति दूर, मोह नाशक, ज्ञानगम्य, संसार समुद्र से तरण में मनुष्य के श्रेष्ठ नावरूप, मायी, माया लेप से रहित, देवता मनुष्य मुनियों से ध्यायमान रामकी बंदना करता हूं ॥

ज्यों सुगना नलिनी गह्यो मन बौराहो।
ऐसो भरम विचार समुझु मन बौराहो॥
पढ़े गुणे का कीजिये मन बौराहो।
अन्त बिलैया खाय समुझु मन बौराहो॥
शूने घरका पाहुना मन बौराहो।
ज्यों आवै त्यों जाय समुझु मन बौराहो॥
नहाने को तीर्थ घना मन बौराहो।
पूजन को बहुदेव समुझु मन बौराहो॥
बिन पानी नल बूड़िहो मन बौराहो।
(तुम) टेकहु रामजहाज समुझु मन बौराहो॥
कहहिं कबीर जग भर्मिया मन बौराहो।
(तुम) छाडहु हरिको सेव समुझु मन बौराहो॥

टीका--फिर भी कल्याण के हेतुविषयक जिज्ञासा होनेपर साहेब उपदेशदेते हैं कि 'हेमनबौरा, नाम हेविचारादि रहित मन के वशवर्ती बौरेमनुष्यो! बिवेकविचारादिका सम्पादन-करके 'जग का नेहरा को जारहु, नाम अनेको लोक देश वस्तु शरीर सुखदुःखमयसंसार विषयक प्रेम स्नेह को त्याग दो, इस त्यागादि सेही तेरा कल्याण होगा। यह संसार कैसा है कि 'जामहँ, नाम जिस संसार में नेह करने से अनेको शोक संताप होते हैं, नाम पुत्र इष्ट मित्रादि के वियोगादि-जन्य तथा रोगादि जन्य मानसादि अनेको दुःख जिस संसार में होते हैं, उसका नेह को त्याग दो। और हेमनबौरा! बिचारादि से आत्मादि वस्तु को समझो जिससे तेरा कल्याण होवे। अथवा जिस संसार में शोकादि होते हैं, उसको शोकादि के कारण रूप समझो जिससे नेह का अभाव होवे। और हेमनबौरा! यह संसार कैसा तुच्छक्षणभङ्गुरहै कि 'जैसे बिना नेव के देवघर होवे, नाम मन्दिर हो, और उस मन्दिर में भी कहगिल बिना नाम कादोमसाला बिना ही ईंटों को जोड़-दिया गया होवे, वैसा ही संसारको समझो, अर्थात् सर्वात्म स्वरूप देव का घररूप जो यह संसार है। और जो भूत भौतिक वस्तु ब्रह्माण्ड शरीर हृदयादि हैं, वे सब बिना सत्यकारण के हैं, इनके कारण रूप माया अनिर्वचनीय है। उस माया के कार्यशरीरादिनश्वर हैं, इससे बिना कहगिल के जोड़ी हुई ईंटों के सदृश हैं। भाव है कि जिसचनेन की सत्ता से ये सब सत्यमालूम पड़ते हैं। और जो सबके अधिष्ठान तथा प्रकाशक है वह [असङ्गोह्ययंपुरुष.] इस श्रुति के अनुसार वस्तुतो असङ्ग है, इससे उसमें अधिष्ठानत्वधारकत्वादि भी माया कल्पित ही हैं, संसार की वस्तुओं का भी परस्पर सङ्ग सत्यनित्य नहीं है हेमनबौरा! सो समझो। सामान्यरूप से संसार को दुःखादि-

रूप बताकर विशेषरूप से बतातेहैं, उसमें भी स्त्री को अत्यंतदुःखरूप और बिमोह का जनक होने से प्रथम स्त्रीसम्बंधी दुःखादि का ही वर्णन करते हैं कि, हेमनबौरा ! जैसे हाथी को बझाने वाला कालबूत की नाम कलवूत की मिथ्या नकली हस्तिनी बनाता है। और उसके चारो-तरफ गुमखाई बनाता है जिसमें गिरकर कामांध अविवेकी हाथी दुःखी होताहै, जन्मभर परवश होकर भवभीड़ सहताहै, शिरपर अंकुश सहताहै, वैसे ही मलमूत्रादिमय आपात-रमणीय संसार जन्ममरणादिरूपखाई युक्त स्त्री के शरीररूपचित्र को जगदीश नाम ब्रह्मा वा ईश्वर ने अपनी सत्ता से तेरे कर्मादि के अनुसार रचा है, तथा उक्तशरीराभिमानीजीव के कर्मादि के अनुसार रचा है, सो हेमनबौरा ! तुम समझो और उससे बचो। अथवा हेमनबौरा !बूतकी नाम नकल की हस्तिनी मानो हाथी के लिये काल नाम मृत्युरूपहोती है। वैसे ही तेरे लिये कालस्वरूप स्त्री रूप चित्र जगदीश रचाहै, सो समझो गुरु विचारादिसे जानो, और उससे बांचो। अथवा काल-बूत की हस्तिनी के सदृश चित्र तेरी ही सत्ता से रचा गया है वह जगत के ईश के तुल्य सबको वश में करनेवाला हो रहा है। यद्वा हेजगदीश स्वरूपजीवो ! तुमने कालबूत की हस्तिनी सदृश-चित्र रच्यो है नाम अज्ञान काम कर्मादि से बनायो है सो समझो। यदि नहीं समझोगे तो जैसे कामान्ध गज स्त्री विषयक आसक्ति से अन्य के वश में पड़ता है, और शिरपर तीक्ष्ण अंकुश सहता है, वैसे तुम भी कामांध विवेकादि रहित होकर संसार में प्राप्त होकर मृत्यु आदि के वश में प्राप्त होवोगे, और यमयातना आदि रूप अंकुश शिरपर सहोगे सो समझो। और हेमनबौरा ! तुम 'तन धन से, क्या गर्व करते हो अर्थात् मैं ब्राह्मण क्षत्री कुलीन स्थूल गौर बली सुन्दर धनी समर्थ ईश्वर भोगी सुखी हूँ इत्यादि 'क्या गर्वसी, नाम क्या मिथ्या तुच्छ अभिमान करते हो यह तेरा अभिमान अज्ञान जन्य अयुक्त है। क्योंकि 'जाके, नाम जिस तनके 'साज, नाम कारण समुदाय हाड़ मांस अन्नादि और, जिस धन के 'साज, शरीर पशु आदि 'भस्म, वा कृमिरूप होजानेवाले हैं, उनमें अभिमान करना युक्त नहीं होसकताहै सो हेमन-बौरा ! तुम समझो। और हेमनबौरा ! तुम समझतेहो कि मुझे ईश्वर वा कोई देवादि संसार में बांध रखे हैं, परंतु जैसे बान्दर स्वादुअन्न की मूठी बांधता है, और छोटामुखहोने से अन्न के पात्र से उसकी मूठी नहीं निकलती है, और स्वाद वश मूठी खोलकर भागता भी नहीं है। इससे निर्बन्धहोते भी स्वादुअन्नविषयक आसक्ति से सबंध सदृश होता है, उस अन्न को भुजा-पसारकर लेता है, फिर व्याधा कलंदर के वश में पड़ता है। वैसे तुम भी तनधनादि जन्यसुख की इच्छा से सांसारिक सम्पत्तिधनादिकों को भुजा पसार कर लेते हो, तथा कामकर्मादि से शरीरों को लेते हो। और मोहवश आसक्तिरूप मूठी को नहीं खोलते हो, जिससे निर्बन्ध मुक्त स्वरूप होते भी सबंध सदृश होतेहो। और मृत्यु आदि के वश में पड़ते हो। सो समझो कि अपने ही अज्ञान मोहादि वस्तुतो बन्धन के हेतु हैं, इसलिये अज्ञानादि को नष्ट करो। और हेमनबौरा ! जैसे बानर जब बन्धाया हुआ के सदृश होजाता है, जब उसको भ्रमहोजाता है कि मुझे कोई बांध दिया वा मैं बंधन में फँस गया तब उसको छूटने की संशय पड़जाती है, कि अब मैं छूटंगा

कि नहीं, इत्यादि। और छूटनेके लिये शारीरिक जोर करता है मूठी नहीं खोलताहै। और समझता है कि यदि मैं छूटजाऊँगा तो इस स्वादुअन्न को खाकर तृप्त और सुखी होऊँगा, परंतु मूठी खोले बिना निर्बन्ध सुखी नहीं होता है। किन्तु कलन्दर के वश में होकर घरघर के द्वारों पर नाचता है। वैसे ही तुझे भी छूटने की संशय परी है, परंतु तुझे कोई बांधा नहीं है कि जिस बंधन से छूटोगे, किन्तु विषयों का संग्रह, और तनधनादिके अभिमान से तुम आपही बंधाये हो। और आपही बद्ध सदृश होकर माया मृत्यु आदि के बश में परे हो। और उनके बश में होकर अनेको शरीर रूप घरों में और दशद्वारों पर नाचते हो। और नाचचूके हो। सो समझो। यद्वा हे-मनबौरा! यदि वह बन्दर मूठीखोलदेवे, और उस अन्न में आसक्त नहीं होवे तो निश्चयहै कि वह निर्बन्ध होजावे, परंतु मूठी को नहीं खोलने से कलन्दर के वश में होजानेपर उसको छूटने की संशय, शंका, चिन्ता पड़जाती है। छूटने का निश्चय नहीं रहता है। इससे वद्ध होकर घरों के द्वारों पर नाचता है। वैसे तुम यदि इस मानव शरीर में जग का नेह तनधनादि के गर्व को छोड़दो तो निश्चय है कि, तुम निर्बन्ध होजावो। और इस नेह गर्वको छोड़े बिना छूटने की संशय परी है। और घट २ में तथा अपवित्र योनिरूप दरवाजेपर नाचोगे सो समझो। और हेमन-बौरा! जैसे कलन्दर के वश में पराहुआ वह वन्दर ऊंच नीच कुछ भी नहीं जानता है, किन्तु सबके आगे नाचता है। औरघर २ के द्वारों पर 'डांग' नाम लाठी की मार खाताहै, वैसेही तुम भी नेहादि को त्यागकर विचारादि करे बिना ऊंच नीच कुछ भी नहीं जाने हो और न जानते हो। इससे घर-घर में यम आदि के दण्ड सहते हो और सहोगे। यद्वा तुम ऊंच होता हुआ नीच योनियों को नीच-दुःखद नहीं जानते हो, इससे घर घर में डांग खायो है और खाते हो सो समझो। और हेमनबौरा! जैसे 'सुगना, नाम शुक पक्षी नलिनी नामक लाल काष्ठको पकड़कर स्वयं नीचे लटका रहता है, परंतु उसे स्वयं पकड़कर भ्रम में पड़ारहता है, कि मुझे कोई पकड़ा है, इससे भ्रम से वँधाय कर व्याधा के वश मे पड़ता है। वैसे ही तुम सांसारिक विषयादि से भ्रमकरके बंधायमान हो, वहां उस बंधन से रहित होने के लिए 'ऐसो, नाम सुगना के सदृश ही अपने में भ्रम को विचारो और समझो। और उस भ्रम को त्यागो। और हे मन बौरा! यदि तुम बन्धन के हेतु भ्रमों को नहीं विचारते हो, वा नहीं जानते हो, तथा नहीं त्यागते हो, तो 'पढ़े गुणे, नाम अन्यविद्याओंको पढ़कर तथा अन्य विचारों को करके 'क्या कीजिये, नाम क्या कर सकते हो, अर्थात् संसारबंधन के हेतु भ्रम की निवृत्ति के लिये विचारादिकरे बिना अन्यपढ़ना विचारकरना व्यर्थ है, क्योंकि जैसे बंधन युक्तसुगना रामनामादिपढ़गुणाकर क्या करसकता है। अन्त में कबहींबिलाई उसे खा-लेती है। और जीवनभर परतन्त्र रहता है। स्वतंत्रता जन्य आनंद उसको नहीं मिलता है। वैसे ही भ्रम की निवृत्ति के हेतु विद्याविचारादि बिना अनेकशास्त्रादि को पढ़नेगुणानेपर भी अंत में वासना अविद्या मायारूप विलैया खालेती है, नाम संसारचक्र में डालकर पीड़ित करती है, सो सत शास्त्र गुरु से समझो। और भ्रम को नष्ट करके बासना आदि को नष्ट करो। और हे मन-बौरा! यदि तुम इस भ्रम जन्यबंधन की निवृत्ति के लिये विवेक विचारादि यत्न नहीं करते हो, तो

तेरा पढ़नागुणना कैसा है कि, जैसे शून्यघर के पाहुन अतिथी कुटुम्ब जिस प्रकार रास्तापकड़े आते हैं वैसे ही रास्तापकड़कर लौट जाते हैं। आने जाने से दुःख ही उन्हें फल मिलता है। और प्रयोजन की सिद्धि तथा सत्कार नहीं होता है, वैसे ही सत विचारादि रहित पुरुष के पासमें आकर विद्या भी निष्फल तथा सत्कार रहित ही चली जाती है। तथा विचार विवेकादि बिना इस संसारमें, और मानवशरीर में जीव सब आकर शूने घर के पाहुन शदृश जैसे आते हैं वैसेही चले जाते हैं। पढ़ गुणकर भी निष्फल जन्म बिताते हैं, सो विचारादि से समझो। और हे मनबौरा! भ्रमकी निवृत्ति तथा सतविचार विनाही तुझे नहाने के लिये 'घना, नाम अनेको तीर्थप्रतीत होते हैं। और पूजने के लिये बहुत देवप्रतीत होते हैं। और वस्तुत एकब्रह्मात्मा रामही तीर्थ तथा पूज्यदेव हैं सो समझो। और हेमनबौरानल! नाम मनुष्यो! भ्रमकी निवृत्ति तथा विवेक सतविचार बिना, बिनपानीकेही इस संसारसमुद्रमें फिर भी बूड़ोगे, अर्थात् तट सदृश इस शरीर में प्राप्त हुयेहो फिर अथाह समुद्र सदृश अन्ययोनियोंमें प्राप्त होवोगे। यदि विचारादिसे ब्रह्मात्मा रामकी प्राप्ति नहीं करोगे। इसलिये उक्त रामजहाजको 'टेको' नाम उसका अवलम्बलो। यद्वा तृप्ति का औ र अविद्यामलकी निवृत्ति का हेतुज्ञानरूप शुद्धपानी के विना अनेक तीर्थके स्नान अनेकदेव की पूजा आदि से तीर्थ देवादि के भ्रमरूप संसारमें ही बूड़ोगे। इसलिये एक राम जहाज को नाम उक्तरामके विवेक विज्ञान रूप जहाजकोटेको नाम प्राप्तकरो। और उस राम को ही विचारादि से समझो। तथा समझो कि रामकोही टेकनेसे मुक्तहोसकतेहो। और साहेब कहतेहैं कि हेमनबौरा मनुष्यो! संसारविषयक नेहसे तथा नहानेके लिये बहुत तीर्थ, और पूजनेके लिये बहुत देवसमझकर विचार बिमुख हानेहीसे यह जग भ्रम युक्त हो रहाहै नाम सब मनुष्य भ्रममें पड़ेहैं। और भ्रमयुक्त होकर संसारमें भ्रमणकररहे हैं। इसलिये तुम नेह गर्व, और तीर्थ देवादिके भ्रमोंको छाड़हु नाम त्यागदो। और सर्वात्म स्वरूप हरिको सेवो नाम हरिके विचारादिकरो, तथा सब दुःखोंको और उसकेहेतु भ्रमादिकोंको हरनेवाले सतगुरुको सेवो नाम उन की सेवा भक्ति करो। और उनका उपदेशसे आत्मारामको जानो जिससे तेरा कल्याण होवे॥ लिखाहैकि

(रायःकलत्रं पशवः सुतादयो गृहामही कुञ्जरकोशभूमयः। सर्वेऽर्थकामाः क्षणभंगुरायुषः कुर्वन्तिमर्त्यस्यकियत्प्रियंचलाः॥ १ ॥ को गेहेषु पुमान्सक्त मात्मा नमजितेन्द्रियः। स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम्॥२॥ अनर्थायार्थसम्पत्तिर्भोगौघोभवरोगदः। आपदः सम्पदःसर्वाःसर्वत्रानादरोजयः ॥ ३ ॥ सत्यत्वेनजगद्भानंसंसारस्यप्रवर्तकम्। असत्यत्वेनभांनतुसंसारस्यानिवर्तकम् ॥ ४ ॥ नरकग्राममार्गोऽयं नारीदेहः प्रकीर्तितः। सर्वथापरिवर्ज्योऽतो मोक्षमार्गयियासता ॥ ५ ॥ चित्तमन्तर्गतंदुष्टं तीर्थस्नानैर्नशुद्ध्यति ६ ॥

धनस्त्रीपशुपुत्रादि तथा गृह पृथिवी हाथीकोशस्थान ये सबही अर्थकाम चल हैं क्षणभंगुर-आयुवाले मनुष्यके कहांतक प्रियकर सकते हैं ॥१॥ गृहमें आसक्त दृढस्नेहपाशसे बद्ध अपने को कौन अजितेन्द्रिय पुरुष विमुक्त करने के लिये उत्साहकरसकता है ॥ २ ॥ अर्थसम्पत्ति अनर्थके लिये होतीहै भोगसमुदाय रोग देते हैं सबसम्पत्तियाँ आपत्ति हैं सबमें अनादर अनासक्तिही जय रूप है ॥३॥ सत्यरूपसे जगतका ज्ञान संसारका हेतुहै असत्यरूप से ज्ञानमोक्षका हेतुहै ॥ ४ ॥ नरक समुदायके मार्ग रूप यहस्त्रीका देह कहा गयाहै इसलिये मोक्ष मार्गमें जानेकी इच्छा वालोंसे यह सर्वथा वर्जनीयहै ॥ ५ ॥ अंतर्गतदुष्टचित्ततीर्थस्नानसे नहीं शुद्ध होताहै इत्यादि ॥ ६ ॥

२ द्वितीय चांचर।

खेलति माया मोहिनी मन बौराहो।
(जिन) जेरकियो संसार समुझु मन बौराहो ॥
रच्योरङ्गतिनि चूनरी मन बौराहो।
सुन्दरि पहिरे आय समुझु मन बौराहो ॥
शोभा अद्‌बुद्‌ रूप (वा) की मन बौराहो।
महिमा वरणि न जाय समुझु मन बौराहो ॥
चन्द्रवदनि मृगलोचनि (माया) मन बौराहो।
बुँदकादियो उघारि समुझु मन बौराहो ॥
यती सती सब मोहिया मन बौराहो।
गजगति वाकी चालि समुझु मन बौराहो ॥
नारद के मुख मांड़िके मन बौराहो।
लीन्ही बसन छिनाय समुझु मन बौराहो ॥
गर्व गहेली गर्वते मन बौराहो।
उलटि चली मुसुकाय समुझु मन बौराहो ॥
शिवशन ब्रह्मादौरिके मन बौराहो।
दोनों पकरिन जाय समुझु मन बौराहो ॥
फगुआ लीन्ह छिनाय के मन बौराहो।
वहुरि दियो छिटकाय समुझु मन बौराहो ॥
अनहद ध्वनि बाजा बजै मन बौराहो।
श्रवण सुनत भौ चाव समुझु मन बौराहो ॥

खेलनिहारा खेलिहैं मन बौराहो।
बहुरि न ऐसो दाव समुझु मन बौराहो॥
ज्ञान ढाल आगे दियो मन बौराहो।
टारे टरत न पाव समुझु मन बौराहो॥
खेलनिहारा खेलहीं मन बौराहो।
जैसी वाकी दाव समुझु मन बौराहो॥
सुरनर मुनि औ देवता मन बौराहो।
गोरख दत्ता व्यास समुझु मन बौराहो॥
सनक सनन्दन हारिया मन बौराहो।
और कि केतिक बात समुझु मन बौराहो॥
छिलकत थोंथे प्रेम के मन बौराहो।
धरि पिचिकारी गात समुझु मन बौराहो॥
कै लीयो वशि आपने मन बौराहो।
फिरिफिरि चितवत जात समुझु मन बौराहो॥
ज्ञानंगाड़लै रोपिया मन बौराहो।
त्रिगुण दियो है साथ समुझु मन बौराहो॥
शिव सन ब्रह्मा लेन कह्यो (है) मन बौराहो।
और कि केतिक बात समुझु मन बौराहो॥
एक ओर सुर नर मुनी (ठाढे) मन बौराहो।
एक अकेली आप समुझु मन बौराहो॥
दृष्टि परे (उन) काहुन छाड़यो मन बौराहो।
कै लियो एक धाप समुझु मन बौराहो॥
जेते थे तेते लियो मन बौराहो।
घूंघुट माहिं समोय समुझु मन बौराहो॥
कज्जल वाके रेखवा मन बौराहो।
अदग गया नहिं कोय समुझु मन बौराहो॥

इन्द्र कृष्ण द्वारे खड़े मन बौराहो।
लोचन ललचि नचाय समुझु मन बौराहो॥
कहहिं कबीर ते ऊबरे मन बौराहो।
जाहि न मोह समाय समुझु मन बौराहो॥

टीका—प्रथम चाँचारमें संसारको अनित्य तुच्छादि स्वरूप कहागयाहै। तथा संसारीको भ्रांत होनेसे संसारसमुद्रमें डूबनेवाला बताया गया है। वहाँ जिज्ञासाहुई कि, संसार अनित्यादि स्वरूप क्योंहै। और संसारी इसमें क्यों भ्रांत होके डूबते हैं, तब साहेब और भी उपदेश करते हैं कि, हेमनबौरा! 'मोहिनी, नाम मोहित करने के स्वभाववाली। और मूढ़पुरुषोंको संसारमें भ्रमानेवाली मायाही संसार तथा सांसारिक वस्तु रूप होकर खेलती है। और उस मायानेही सबसंसार को जेर किया है, नामपीड़ित जीर्ण किया है भ्रम मेंडालकर सबजीवोंको फजीहत किया-है। और जिसमाया ने संसारको जेरकिया है। वह मोहनीमाया ने ही स्त्रीरूप होकर चांचरनामक खेलविशेष खेलती है। यद्वा क्रीड़ाकरती है। अथवा जीवों को अपने वशमें करने के लिये दावपेच खेलती है, युद्धरूप क्रीड़ा करती है। हेमनबौरा! सो समझो। और उससे वचनेके लिये नेहमोहसेर-हित होवो। और हेमनबौरा! वह जेरकरनेवाली मायाने सत, रज,तम, रूपतीनरङ्गकी चूनरीरचीहै, नामत्रिगुणमय पदार्थों को उत्पन्न की है। और वह मायारूप सुन्दरीनेही संसार में आकर उस चूनरी को पहिरी है। और श्वेत रक्त काला इनतीन प्रधान रङ्गों की चूनरी नाम वस्त्रविशेष रचकर नाम उनरङ्गा से युक्त सुन्दर वस्त्रवनाकर। और आप सुन्दरीनाम अत्यंतमोहिनीरूप से आकर नाम संसार में प्रगट होकर, उस चूनरी को माया पहिरती है सोसमझो। और हेमनबौरा! उस मायाके शोभाकी। और अदबुद नाम आश्चर्यस्वरूप आश्चर्यजनक उसके रूपकी महिमा वर्णन नहींकी जातीहै। अथवा उसकी शोभा आश्चर्य रूपहै। जिस शोभा से बड़े २ देव ऋषि मुनि भी मोहित हो जाते हैं, उस शोभा की महिमा वर्णन नहीं की जातीहै, हेमनबौरा! तुम विचारादिसे समझो। और उसमें आसक्त नहीं होवो। और हेमनबौरा! स्त्रीरूपताकोप्राप्त वह माया चंद्रवदनी नाम चंद्रमाके सदृशमुखवाली। और मृगलोचनी नाम मृग सदृश चञ्चल नेत्र वाली होतीहै। सो लोगोंको मोहने के लिये ललाट की बुँदका नाम चंदनादि के विंदुको उघार देती है। और प्रथम नारदादि को मोहने के लिये बुँदका उघाराथा, सो समझो। और हेमनबौरा! यह माया बुंदका उघार कर, 'यती' नाम यतनशीलयोगी को वा यति नाम संन्यासी को, और 'सती' नाम सत्यवक्ता धर्मात्मा भक्तादिको। यद्वा पतिव्रता स्त्री को भी मोहित किया और मोहती है। अर्थात् पुरुषोंको स्त्री रूप से मोहित किया। और स्त्रियोंको भी सुंदर पुरुषादि रूपसे मोहित किया स्त्रियांभी तिलकादि शृङ्गार युक्त पुरुष को देखकर मोहित होती हैं। यह सब को मोहती है, सो समझो। और हेमनबौरा! उस स्त्री रूप माया की गजगति नाम हाथी के सदृश मन्द गम्भीर चाल भी सबको मोहने वाली होती है सो जानो। हेमनबौरा! वह चंद्रवदनी मृगलोचनी गजगामिनी मायानेही बुंदका

उघारके 'नारद के मुखको मांड्कर, नाम बानर का मुख रूपसे भूषित करके। यद्वाउनके मुखको मारकर अर्थात् छिपाकर उनके बसन छिनाय 'लीन्ही, नाम विष्णुद्वारा उनके मर्यादा परदा को नष्ट कराय दी। लज्जारहित कराके शभा में स्त्री की इच्छा से नाच नचवाई। यद्वा नारदके मुख को मारकर, अपना मुख को वस्त्रसे छिपायली। यद्वा वह माया अपनेही मुख अङ्गादि को विभूषित करके नारद के बसन छिनायली सोसमझो। और हेमनबौरा! लोगोंको गहने के लिये 'गर्वगहेली, नाम गर्व महत्त्व सुंदरता के अभिमान का धारण करनेवाली माया ने 'गर्वसे, नारदजी के तरफ से उलट कर नाम अभिमान से लौट कर मुसकाके चलदी। जिस मोहजनकभावसे नारदजी अत्यंत कामातुर और पीड़ित हुये। इसप्रकार माया जेर करती है सो समझो। और हेमनबौरा! चांचरखेल में स्त्रियां पुरुष को पकड़कर उससे फगुवा नाम दाननेगलेती हैं। और उसको आपस में छिटकालेती हैं नाम बाँट लेती हैं। वैसेही मायाने 'शिवसन, नाम शिवजी ऐसेयोगी को, और ब्रह्माजी ऐसनपण्डित को जाकर पकड़ी, नाम यतीसती को मोहने वाली, और नारद की उक्त दशा करनेवाली मायाने शिव ब्रह्मादोनों को जाकर पकड़ी अर्थात् पार्वती सरस्वती आदिरूपसे अपने बशमें करली सोजानो। और हेमनबौरा! उनलोगों से स्वतंत्रता विचार ज्ञानादि रूप फगुआ 'छिनाके, नाम बलसे लेली। और उसको फिर अपने अनुकूल 'छिटकादिया, नाम अनेक विभाग कर दिया सो समझो। अथवा हेमनबौरा! नारदजी की उक्त दशा करनेवाली मोहिनी, और सावित्री रूप माया कोही शिव ब्रह्मा दोनों जाकर पकड़िन, तब वह माया इनके योगानंद विद्यानंद को छीनली, और विषयानंद में फंसायली, फिर विषयानंद से भी उन्हे छिटकायदी नाम भिन्न करदी, अर्थात् शिव ब्रह्मादि भी स्त्रीमें आसक्त होने पर उससे तृप्त नहीं हुये, और फगुआ नाम बसंत सदृशयोगानंदज्ञानानंद से भी रहित होकर विषयानंद से भी वियुक्त होगये सो समझो। और हेमनबौरा! चांचर खेल में बाजा बजता है जिसे सुन कर खेलने में चाव होता है। वैसेही कान में जो अनहद ध्वनि सुनपड़ती है वही ध्वनि बाजाबजाता है, जिसे श्रवण से सुनने से योगियों को योग में चाव होता है, जिस चाव से माया के साथ चांचर खेलते हैं। और मायिक विभूति प्राप्त करते हैं। और माया को जीतने के लिये उससे युद्ध करते हैं। सो जानो। अथवा मन्द गति होने से स्त्री रूप माया के भूषणों का जो शब्द होता है, वही मानो अनहदध्वनीवालाबाजाबजता है, तथा उसकी वाणी भी मानो सुंदर युद्धकालके बाजाबजाता है, उसे श्रवण से सुनतेही विषयी को भोगके चाव होता है, किसी को इस माया का पराजय के लिये इस के साथ युद्ध का चाव होता है नाम इसके भोगादि सेही इसको जीतने की इच्छा होती है सो समझो। और साहेब कहते हैं कि हेमनबौरा! विवेकविचारशील कोई विरला खेलनिहारा ऐसा समझ कर खेलेगा वा खेलता है, नाम माया।को बशमें करने जीतने के लिये यत्न करता है कि, 'बहुरि, नाम फिर ऐसा दाव नहीं मिलेगा। अर्थात् मनुष्य जन्म को दुर्लभ जानकर निरंतर विवेकविचार से कोई विरले मुमुक्षु माया को जीतने के लिये ज्ञानवैराग्यरूपसाधनों से युद्ध करते हैं, सो जानो।

यद्वा हेमनबौरा! विरलेखेलनहार खेलेंगे। और विवेकवैराग्यादि से माया का पराजय करके विजयश्री मोक्ष को प्राप्त करेगें। और तुम्हारा भी फिर ऐसा दाव शीघ्र नहीं आवेगा इसलिये इसका पराजय करने के लिये समझो सावधान होवो। और 'हेमनबोरा!, पूर्वोक्तसमझवालोंने बिबेक विज्ञान रूप ढाल को आगेदियो नाम सदा ज्ञानदृष्टि सन्मुखरखते हैं। और वैराग्यभूमिपरस्थिर इनके पाव नाम मन बुद्धि कबही टारे से भी नहीं टरते हैं। यद्वा आत्मवस्तुरूप भूमि से इनकी बुद्धि टारने से भी नहीं टरती है, इससे आत्मज्ञान और सम्पूर्ण संसार में तुच्छता अनिर्वचनीयता आदिका ज्ञान रूप महाविशाल ढाल द्वारा स्त्री आदि की दृष्टि मोहादि रूप वाण तथा तरवारादिकों को रोककर उपरति परवैराग्यादिरूप तरवार से माया को नष्ट करके उक्त महात्मा मुक्त होजाते हैं। वैसेही तुम भी समझो और मुक्त होवो। और साहेब कहते हैं कि हेमनबौरा! खेलनिहारे तो बहुत हैं और खेलते भी हैं, परंतु अनवधानता मोहादि वश ऐसा युद्धरूप खेल खेलते हैं वा चांचर खेलते हैं कि जैसा उस माया का दावरहता है। अर्थात् माया को जीतने के लिये खेलते हैं। परंतु जिसप्रकार खेलने से माया को विजयश्री मिलती है उसी प्रकार से खेलते हैं। इससे पराजित होते हैं। और हेमनबौरा! जबतक माया का दाव के अनुकूल खेलते रहें तब तक स्वर्ग के सुर तथा नर मुनि, दिव्य-गुणवाले मनुष्यरूपदेवता आदि तथा 'गोरख, नाम योग से इंद्रियादि की रक्षा करने वाले योगी लोग वा गोरख नाथ और दत्ता नाम दत्तात्रेय व्यासदेवमहर्षि आदि भी माया से हार गये सो समझो। और हेमनबौरा! माया का दाव के अनुकूल युद्धकरनेपर सनकसनंदन भी उससे हारगये तो अन्यकी बातही क्या करना है, अथवा, खेलनिहारा खेलिहैं बहुरि न ऐसोदाव, ज्ञानढाल आगे दियो टारेटरत न पाव, सो समझो, इस उपदेश को सुनकर शंका हुई कि, कलियुग में ज्ञान वैराग्य होना तथा माया को जीतना असम्भव है, क्योंकि बलबुद्धि आदि का ह्रास होने से वर्त-मान काल में मनुष्य तुच्छस्वभाववाले होगये हैं, तब साहेब कहते हैं कि, हेमनबौरा! माया को जीतने वाले पुरुष धौरेय सदाही विरल होते हैं, और श्रेष्ठ पुरुष जबही उसमाया के पराजय के लिये यत्न करते हैं तबही उसे पराजित कर देते हैं, क्योंकि उसके पराजय के लिये शारीरिकबल और व्यावहारिक चतुराई और ऋद्धि सिद्धि आदिके हेतुरूपबुद्धि आदि की आव-श्यकता नहीं है, किंतु मानसिक विचारशक्ति और छलकपटादि रहित शुद्धभक्ति की आवश्यकता है, सो सत्सङ्ग सद्भक्तिआदि से सदा प्राप्त होती है, इससे अबही भी कोई विरल खेलनहार पुरुष माया के साथ युद्ध रूप चांचर खेलते हैं, और उसका कभी पराजय भी करते हैं जैसा उसका प्रबल दाव रहताहै उससे भी प्रबल दावसे खेलते हैं सो तुम भी समझो और हेमनबौरा! जब तक माया का दावसे प्रबल दाव नहीं किये वा नहीं करते हैं, और व्यावहारिक चतुराई चिकनाई में भूले रहे वा रहते हैं तब तक सुर नरादि सब हारे और हारते हैं, और सनकसनन्दन भी हारे फिर अन्यकी बातही क्या कहनी है, अर्थात् ये सब भी अनवधानतादि वश स्त्री रूप माया के बश में हुये कोई सिद्ध-पाकर अभिमानादि के बश हुये, और क्रोध के बश होकर सनकादि जय विजय को शापदिये,

जन्म मरण को प्राप्त हुये सो समझो, और माया से बांच ने के लिये अत्यन्त सावधान होवो, यह वर्णन अनिर्वचनीय माया की अद्भूत शक्ति देखानेका तात्पर्य से तथा अभ्युपगम वाद से जानना-चाहिये, और साहेब कहते हैं कि हेमनबौरा ! जैसे चांचर खेल में स्त्रियां पुरुष के ऊपर पिचकारी से रंग छिटती हैं वैसे स्त्री आदि रूप को धारण की हुई यह माया 'थोंथे प्रेमकी, नाम मिथ्या प्रेमकी 'फिचिकारी, नाम पिचकारी को धर करके रागादिरूप रंग सबके' गात्त, नाम शरीर पर तथा अंतः करण पर छिलकती है सो समझो। और हेमनबौरा ! इस प्रकार के झूठे प्रेमादिसे यह माया सबको अपने वशमें करली और करती है। अर्थात् सबको मोहित करके संसार चक्र में भ्रमाती है। और अबहीं भी फिर फिर कर मानो चितावती देखती जाती है, कि, कोई बांचातो नहीं है, अर्थात् किसी को विवेक वैराग्य के अंकुरतो नहीं हुये हैं, और यदि जान जाती है तो उसे नष्ट करनेके लिये उद्यत होती है सो समझो। और उससे विवेकादि की रक्षा करो। अथवा जिज्ञास हुई कि, सुरनरादि सबही उस माया से कैसे हारगये वा हारते हैं, तब साहेब कहते हैं कि, हेमनबौरा ! जैसे कोई महा-बली थोंथा भल्ला वा बाण से किसी को पीड़ित करके अपने वशमें करलेवे और उसके प्राणान्त भी नहीं करे, वैसे यह माया मोह जनक थोंथे प्रेमकी पिचकारी को धारण करके मोहन भाव को शरीर पर छिलकती है सो जानो। और थोंथे प्रेम भावों सेही सबको यह माया अपने वशमें करली है। और जब तक ये जीव अत्यन्त मोह में पड़े रहते हैं तब तक कुछ उपेक्षा कर देती है, परन्तु जब २ 'चितवत, नाम चेतनता वाले होते हैं, अर्थात् देव मनुष्य भावको प्राप्त करके ज्ञानवैराग्यादि के अधिकारी संसारतम से रहित होने योग्य जब होते हैं, तब फिर फिर उन चितवत पुरुषों के प्रति थोंथा प्रेमयुक्त होकर वह माया 'जाय, नाम जाती है। और उनके पास जाकर उन्हें महामोह में डाल देती है स जानो, क्योंकि इस मायाने विवेक ज्ञानादि को मोह अज्ञानादि रूप ' गाड़ ' नाम गहिरे में रोपदी है नाम अंधतम में गाड़दी है और गाड़ देती है नाम छिपायदेती है। और सत्व रज तमरूप तीन गुण त्रिविध भावादि सब जीवों के साथदीहै, अर्थात् आत्मसुधि विसराय-कर भोग के लिये त्रिगुणपदार्थ में फंसादी है सो समझो, चांचर खेल में भी स्त्रियां कुछ ऐसा व्यवहार करती हैं सो जानो। और हेमनबौरा ! पूर्वकही रीति सेही शिव ब्रह्मा ऐसे को भी माया अपने वश में लेने के लिये कह्यो नाम प्रतिज्ञाकी है, तो अन्य की बातही क्या है। भाव है कि स्त्री-आदिके संग अनवधानता दशा में शिवादि जैसे भी मुग्ध होकर संसार में भ्रमते हैं, इसलिये सदा सावधान रहना चाहिये, और उस मायाके सङ्गमें नहीं रहना चाहिये। और चांचर खेलमें एक तरफ स्त्री सब और एक तरफ पुरुष सब होते हैं और खेलते हैं, हेमनबौरा ! वैसेही 'एक ओर, नाम एक तरफ तो सुरनर मुनि सबहैं, अर्थात् ये सब माया को बश में करना और उसे भोगना चाहते हैं। और एकतरफ स्त्री रूपवाली वह माया आप अकेली है सो जानो, परंतु हेमनबौरा ! तौ भी दृष्टि परने पर वह बश में किये बिना किसी को नहीं छोड़ी, अर्थात् दृश्य शरीरादि के अभिमानी सबको बश में करली सो भी एक धापमेंही सबको करली, अर्थात् जैसे किसी भागा जाताहुया बालक को माता अपने धाप नाम पैरों के बीच में कर लेवे, तथा एकही डेग भागने पर पकड़ लेवे वैसा हाल सब

जीवों के मायाने की है, और करती है, सो जानो। और हेमनबौरा! प्रथम भी 'जेते' नाम जितने पुरुष थे 'तेते' नाम उन सबों को अपने घूंघुट में माया ने समोयली, अर्थात् कपड़े से मुख को छिपाकर ताकना रूप घूंघट से जैसे स्त्रियां पुरुषों को अपने में आसक्त मोहयुक्त करती है, वैसे माया आवरण शक्ति में सबको समायली, और स्त्री रूप से सबके मनको घूंघुट में समायली सो जानो। और हेमनबौरा! जैसे काजर वाली स्त्री का सङ्ग से काजर अवश्यही लग जाता है, वैसे ही माया के 'रेखवा, नाम आकरही 'कज्जल' नाम कारिख स्याही रूप है इससे जो कोई इसका संग किया सो कोई भी 'अदग' नाम दाग चिन्ह रहित नहीं गया, किंतु सब कोई कुछ न कुछ तामस व्यवहार वासना आदि रूप दाग से युक्त होकर गये, इसलिये इसके सङ्गादिका त्याग करो और समझो। और हेमनबौरा! इस माया के भोगादि से किसी को तृप्ति भी नहीं हुई, इसी से अपनी अपनी स्त्री रहते भी इन्द्र और कृष्ण भी अन्य की स्त्रियों के दरवाजे पर खड़े हुये, और उन स्त्रियों को लोचन नाम नेत्रों से देखकर ललचे नाम लोभ किये. और लोभ से उस माया के वश में हो कर अनोको नांच नाचे सो समझो। और हेमनबौरा! यह समझोकि सोई पुरुष तब इस माया का चांचर से तथा युद्ध से उवरता है, त्रिगुण फन्द से रहित होता है कि, जिस पुरुष के हृदय में जब मोह नहीं समाता है, अर्थात् जब जो पुरुष समूल मोह को नष्ट करके अदृश्य आत्मवस्तु में स्थिर होता है जहाँ माया की दृष्टि नहीं पहूँचती है, तब वह पुरुष मुक्त होजाता है। अथवा कृष्ण शब्द विष्णु का बोधक है, और सो विष्णु पैर के देवता है, और इन्द्र हाथ के देव हैं और इन दोनों का कथन अन्य इन्द्रियों के प्रेरक अधिदैव का भी उपलक्षण रूप है, इससे अर्थ हैकि हेमनबौरा! माया तो दाग लगाने वाली ही है, परंतु जिन देवताओं की लोग उपासना पूजा आदि करते हैं, सो इंद्र कृष्णादि देव भी दृढ वैराग्यादि रहित पुरुषों के कल्याण के लिये सहायता नहीं करते हैं, किंतु इन्द्रादि देव कर्म ज्ञानेन्द्रियों के द्वारपर खड़े हैं, और मायाकीही सहायता करते हैं, जिन विषयादिकों को दुःखद जानकर उन्हें देखना सुनना आदि जीवनहीं चाहता है, उन विषयों को भी नेत्रादि से प्रेरणा पूर्वक देखाकर तथा श्रवणादि कराकर और 'ललचि' नाम लालच कराकर 'नचाय' नाम इन जीवों को नचाते हैं, और स्वयं भी नांचते हैं सो समझो, और हेमनबौरा! माया देवता की शक्ति प्रेरणासे भी जिसको मोहनहीं समाता है वही उवरता है सो समझो। और मोह रहित होने के लिये विवक ज्ञान का अभ्यास इन्द्रियों का निरोध सत्सङ्गादि करो, और जगका नेह स्त्री आदिका सङ्ग को त्यागो जिससे मोह शोक संतापादि रहित नित्य मुक्त होवोगे, इत्यादि। रङ्गतिनि, के, रङ्गते, वा, रङ्गकी। सुंदरि के सुघरि। लीन्ही वसन छिनाय के लीन्हो बदन छिनाय। शिवसन के शिव अरू। खेलनिहारा के खेलनिहारी। बहुरि न ऐसो दाव।के जैसी वाकी दाव। ज्ञान ढाल आगे दियो के आगे ढाल अज्ञान की। जैसी वाकी दाव के बहुरिन ऐसी दाव। इत्यादि पाठ भेद हैं, उस पक्षमें केवल चांचर खेलनहारी रूप से माया का वर्णन है। कि जैसे चांचर में रङ्ग से स्त्री चूनरी रङ्गती है वैसे माया राग से रंगीरची है, और सो मायाही खेलने वाली है, जैसा दाव उसको मिलता है वैसेही खेलती है, चांचर खेल में स्त्रियां

कोई ढाल आगे रखती हैं, पीछे पैर रोपे रहती है हटतीनहीं हैं, वैसे यह माया अज्ञान की ढाल-रूप आगे दीहै।इस खेल से हटती नहीं है, और चांचर में पुरुष अपने हारजाना अच्छा मानते हैं, इससे सुरादि सब उससे हार गये, और जैसे चांचर में स्त्रियाँ हाथ में रंग लेकर छिटती हैं, वैसे रागरूप रङ्ग माया छिटती है। और चांचार में स्त्रियां पुरुष को रङ्गादि के गाड़ में गिराकर फूलकी माला से हाथ बान्धती हैं, वैसे माया भी त्रिगुण विषय के ज्ञानरूप गाड़में पुरुषों को गिराकर त्रिगुणही साथ में देती है। [त्रिगुण लियो है हाथ] पाठ है तब अर्थ है कि पुरुषों को वांधने के लिये त्रिगुण फांसी अपने हाथमें लीहै। और उस फांसी में शिव ब्रह्मा को वांधली तो अन्य की बात क्या है। शिवसनके शिव सङ्ग। और कि केतिक बात, के' औरो केतिक साथ, और लिये सब साथ: पाठ पक्षमें और सब कितनों को शिवके साथही वांधली इत्यादि अर्थ है॥ नारद के मुख मोड़ि के लीन्हों विष्णु छोड़ाय] ऐसा कहीं पाठ है उसका अर्थ है कि यती सती सब को मोहकर नारद को भी माया मोहकरके अपने वश में करना चाहती थी परन्तु विष्णु नारद के मुख मोड़कर नाम विगाड़कर वंचाय लिये। अर्थात् अहंकार रूप से वश में करके स्त्री रूप से वश में करना चाहती थी। परंतु विष्णु भगवान् दोनों से रहित कर दिये। और जव विष्णु नारद को वंचाय लिये तब गर्व गहेली वह माया उलट कर मुसकराती चली जिससे विष्णुकोही अपने में आसक्त करली इत्यादि॥ लिखा है कि [स्मितेन भावेन च लज्जया भियापराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः। वचोभिरीर्ष्या कलहेन लीलया समस्तभावैः खलुवधनं स्त्रियः॥१॥ स्मृता भवति पापाय दृष्टाचोन्मादकारिणी। स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम्॥ २॥ न तथास्यभवेत् क्लेशोबंधश्चान्यप्रसङ्गतः योषित्सङ्गाद्यथापुंसोयथा तत्संगीसंगतः॥ ३॥ ईषद्हास्य. हाथादि के भाव, घूंघुटादिके हेतुलज्जा, भय, पराङ्मुखअर्धदृष्टि से देखना, सुंदर वचन, ईर्षा करके कलहकरना, विलासकरना. आदि रूप सम्पूर्ण भाव नाम चेष्टाओं से स्त्री पुरुषों के लिये वन्धन रूपही होती है॥ १॥ और स्मरण विषय होने से जो स्त्री पापके हेतु होतीहै देखने पर उन्माद कारिणी होती है स्पर्श से मोह पैदा करती है सो दयिता नाम प्रिया कैसे होय-सकती है॥ २॥ इस पुरुषको वैसा वंधन वा क्लेश अन्य किसीके संग सेनहीं होता है जैसा कि स्त्री के संग से होता है तथा स्त्री के संगी कामी पुरुषों को संग से जैसा होता है॥ ३॥ विनीतमानमोहश्च बहुसंगविवर्जितः। तदात्मज्योतिषः साधोर्निर्वाणमधिगच्छति मानमोह और बहुत संगसे रहित जब पुरुष होताहै हेसाधो! तब उस आत्मज्योतिष नाम आत्मज्ञानी को निर्वाण नाम मोक्ष प्राप्त होता है॥ इतिशम्॥

श्री १०८ पूज्यपाद रमितादास पूज्यपाद हरिहर सुधी विनेय हनुमाद्दास कृता चांचर प्रकरणस्य शिशुबोधिनी टीका समाप्ता।

अथ अष्टमप्रकरणचौतीसी।

ओ ॐकार आदि जो जानै। लिखि के मेटे ताहि समानै॥
ओ ॐकार कहै सब कोई। जिन यह लखा स विरलेहोई॥ १॥

टीका—साहेब ने चांचर के अन्त में कहा है कि, जिसको मोहनहीं समाता है वही मायाजाल संसार से उवरता है, परंतु समूल मोहकी निवृत्ति पूर्णबोध बिना हो नहीं सकती। इससे शिष्य के हित के लिये साधनसहित ज्ञान का उपदेश इस ज्ञान चौतीसी प्रकरण से करते हैं। और प्रथमही पूर्ण बोधकी दुर्लभता का वर्णन करते हैं कि,(**ओंकार एवेदंसर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्॥ एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म**) ओंकारही इसवर्तमानसबपदार्थरूप है, और भूतभावीसबपदार्थरूप है। औरयही ओंकार अक्षरब्रह्मरूप है॥ इत्यादि श्रुतियों के अनुसार जो ओंकार को ही सब संसार के आदि नाम कारण रूप जानते हैं, सो पुरुष भी पूर्ण विचारादि बिना तथा ओंकारको दुर्ज्ञेय होने से, जिस लिपिगत मिथ्या ओंकार को लोग लिखकर मेंट देते हैं 'ताहि, नाम उसी को अन्तःकरण से मानते हैं। अर्थात् ओंकार को सब के आदि स्वरूप जो कहते हैं, वेभी सब शब्दों के कारण रूप और परापरब्रह्म के प्रतीकरूप वास्तविक शब्दब्रह्म को नहीं समझते हैं, न सब संसार के कारण-रूप ओंकार के वाच्यस्वरूप ईश्वर को समझते हैं, न ओंकार के लक्ष्यस्वरूप शुद्धसाक्षी स्वरूप चिदात्मा को समझते हैं, किन्तुस्याही आदि से जिसे लिखते मेटते हैं, उसीको प्रतीक रूप वा मुख्यओंकाररूप, अर्थात् ब्रह्म के वाचकरूप वा वस्तुतो ब्रह्मरूप समझते हैं। और उस कीही उपासना करते हैं, श्रुति में कहा गया परा शब्दरूप ओंकार को तथा वैखरी ओंकार के वाच्यादि को नहीं जानते हैं न उनकी उपासना करते हैं। इससे ओंकार दुर्ज्ञेय है। और इसीसे ओंकार को कहते सबकोईहैं परन्तु जिन्होंने लखा वा जो लखते हैं वे विरलेही हुये और होते हैं॥ अथवा जिनमें मोहनहीं समाता है उन विवेकी ज्ञानियों का वर्णन करते हैं कि, जो पुरुष सब संसार के आदिस्वरूप ओंकार को गुरु उपदेश विचारादिसे जान लेते हैं, सो पुरुष ,ताहि, नाम उस ओंकार कोही सत्य-मानते हैं, जो ओंकार संसार रूप मिथ्या चित्र को लिखकर नाम अनायासही इच्छा कल्पना से बना-कर मेट देता है, नाम अनायासही नष्ट करदेता है। और चित्र सदृश रचेहुयेपदार्थों को मिथ्या मानते हैं, इससे जगत को वा काजरस्वरूपमायास्त्री को देखकर भी मोह को नहीं प्राप्त होते है, न उनसे नेहकरते हैं, किंतु ओंकार मेंही नेहपूर्वक मनको लगाते हैं, ओंकार की ही पूजा तथा ध्यानादि करते हैं, परंतु साहेब कहते हैं कि ऐसा होना कठिन है,' इसीसे ओंकार शब्द को सब कोई नाम बहुत लोग कहते हैं, किंतु जिन लोगोंने इस ओंकार को प्रत्यक्ष लखा है नाम जाना है वा जो जानते हैं वे विरलेही हुये और होते हैं, अर्थात् सबको लिखकर मेटने वाला सबके आदी आत्मास्वरूप ओंकार को कोई विरलेही विचारशील श्रेष्ठपुरुष जानते हैं जो मोहादिरहित हो जाते हैं॥ अथवा अर्थ है कि 'ओ' नाम परोक्ष ओंकार को जो आदि जानते सो संसार चित्रको लिखकर

मेटता है उसको मानते हैं। अर्थात् माया मायी को ही सत्य सुखरूप होयादि समझते हैं। और उसी परोक्ष ओंकार को सब कहते हैं उपदेशादि करते हैं जिन्हो ने यह अपरोक्ष आत्मस्वरूप ओंकारको लखा वे विरले होते हैं इत्यादि ॥ श्रुति कहती है कि (**एतद्वैसत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतर मन्वेति ॥१॥ एतदालम्बनं श्रेष्ठ मेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ २॥**) हे सत्यकाम! ओंकारही पर अपर ब्रह्म के बोधक होने से पर और अपर ब्रह्म स्वरूप है. इससे विद्वान् लोग इसी ओंकार द्वारा पर वा अपर ब्रह्म कोप्राप्त करते हैं ॥१॥ यह ओंकार रूप आलम्बनही सब आलम्बनों से श्रेष्ठ है, और यह पर अपर उभयस्वरूप है, इसी आलम्बन को जानकर ब्रह्मस्वरूप लोकमें पुरुषपूज्य स्वरूप होकर उपास्य हो जाता है ॥ २ ॥

ओ ॐ कार के स्थान में, वोऊंकार. ॐकार। ईत्यादि पाठ भेद हैं ॥ मेटे के मेटि पाठ भेद है॥ ओ ॐ कार, इत्यादि प्रथम वचन उपक्रम रूप है, ज्ञानोपदेश कक्का. इत्यादि वचनों से ही दिया गया है, इससे इसप्रकरण को चौतीसा, ज्ञानचौती, आदि कहते हैं। और [हाहा करत जीव सब जाई। क्षेव परे कछु कहाँ समाई ॥ क्षेत्र परे काहु अन्त न पाया। कहहिं कविर अगुमन गोहराया।] इसी प्रकार अन्तिम वचन किसी २ पुस्तक में है। क्षक्षा. इत्यादि वचन नहीं है, तब स्पष्ट ही चौतीस वचन मात्र इस प्रकरण में हैं ॥ किसी २ पुस्तक में, ङङ्ङा, अञ्ञा, णण्णा के स्थान में भी नन्ना यही पाठ है। तब चौथे नन्ना से चतुर्थ नकार का भी बोध हो सकता है इत्यादि ॥

चौतीसी।

कक्का कमल किरण महँ पावै। शशिविकसित सम्पुटमहँ आवै ॥
तहाँ कुसभ रंग जो पावै। अगह गही के गगन रहावै ॥ २ ॥

टीका—[तस्यवाचकः प्रणवः] इत्यादि वचनों के अनुसार, यद्यपि विभु सर्वात्मस्वरूप ईश्वर ओंकार शब्दके वाच्यार्थ हैं, तथापि विभुसर्वात्मा को जो पुरुष विचारादि से नहीं जानसकता है, सो ओंकार द्वारा अपने स्वच्छ हृदय में उसे ध्यानादि से जानकर फिर विचारादि से सर्वात्मस्वरूप जान सकता है और जानता है, इसलिये ध्यान की प्रक्रिया से अहेय अनुपादेय अविषयस्वरूप आत्मा को अपने अंतः करण में जानने के लिये संक्षेपसे उपाय बताते हैं, वहाँ यद्यपि [वर्णात्कारः] इस वचन के अनुसार वर्ण से कार प्रत्यय होने से अकार ककारादि शब्द साधु होते हैं। तथापि हिन्दी में कहीं ककारादिकेस्थान में कक्का खख्खा आदि का भी प्रयोग करते हैं, जैसे इस देशमें लड़कों को पढ़ाते है कि, कक्का विरकने क, कानुन का इत्यादि, अर्थ है कि, विरकने नाम, आ, इ, ई, उ, आदि रूप मात्रा स्वरों से रहित उच्चारणार्थक अकार सहित कक्का नाम ककार को क इस प्रकार उच्चारण करना चाहिये, कानुन नाम दीर्घाकार सहित को का कहना चाहिये इत्यादि पञ्जाव में ककारादि के स्थान में प्रायः कक्का आदिका उच्चारण करते हैं, इससे

इस प्रकरण में कक्का आदिक आदिके वाचक हैं । और लक्षणा परम्परा सम्बंधसे क आदिके अर्थों के बोधक हैं, और कः प्रजापति रुद्दिष्टः कोऽर्कवाय्वनलेषुच । कश्चात्मनि मयूरे च कः प्रकाश उदाहृतः । कं शिरो जलमाख्यातं कं सुखंचप्रकीर्तितम् ॥ प्रजापति, सूर्य, वायु, अग्नि, आत्मा, मयूर, प्रकाश, के वाचक पुलिङ्ग क शब्द है, और शिर, जल, सुखके वाचक नपुंसक क शब्द है। और प्रकृत चौतोसीमें कक्का शब्द सुख प्रकाश स्वरूप आत्मा का बोधक है, इससे अर्थ है कि 'कका, नाम सुख प्रकाश स्वरूप आत्मा की ,किरण , रश्मिको, अर्थात् आभास वा प्रतिविम्ब रूप प्रकाशको जब ध्यानादि कालमें पुरुष हृदय कमलमें ,' पावे ' नाम जब ध्यानादि से हृदय कमलवृत्ति बुद्धिमें आत्मज्योति का प्रकाशको समझलेवे, और जब वह आत्म स्वरूप प्रकाश , शशी , नाम चंद्रमाके सदृश , विकशित , नाम प्रफुल्लित हृदय कमलके सम्पुटमेंही ' आवे ' नाम आजावे, अर्थात् विवेक पूर्वक ज्ञात होजावे, अभ्यासके बलसे चंद्रमा के सदृश विकसित हृदय कमलके सम्पुट नाम मध्यमेंही जब साक्षी स्वरूप आत्मतत्त्वका ज्ञान होजावे, और ' तहाँ ' नाम उस हृदय कमलमेंही ' जब ' जीव 'कुसुम्भ रङ्गपावे' नाम चित्तका निरोधसे जब कमलमें एकाग्रताके सूचक कुसुम्भके रङ्ग सदृश रङ्ग प्रतीत होने लगे । अथवा श्वेतस्फटिकको रक्तभान कराने वाला कुसुम्भके रङ्ग नाम स्वभाव वाली जो अपना रङ्गसे आत्माको रञ्जित करने वाली प्रकृति वा बुद्धि आदि पदार्थ हैं, उन कुसुम्भ रङ्गोंको जब पावे नाम उस हृदयमें जब इन्हें विवेक पूर्वक जान जावे, अनात्म समझलेवे। तब उस चित्तकी शान्ति दशामें अन्तःकरणमेंही शरीरके अन्दर विचार करके उस बुद्धि और बुद्धिवृत्तिछायारूप दृश्यको, तथा उन कुसुम्भरङ्गादिकों को त्याग कर, और ' अगह, नाम मन वचनादिके अविषय स्वप्रकाश अहेय अनुपादेय सर्वसाक्षी ओंकार स्वरूप आत्माको गहकर नाम जानकर वह योगी ,गगन, नाम हृदयाकाशमें ,रहावै, नाम स्थिरहोवै, यद्वा आत्मस्वरूपबुद्धि उपहित अगहवस्तुको प्रथम गहकर नाम जानकर फिर ,गगन, नाम विभुस्वरूप आत्मामें विचारादि से स्थिरहोवे, तब वह पुरुष ओंकारको वस्तुतोजानता है, इससे सिद्ध हुआ कि जो बुद्धिरूप उपाधि की दृष्टि से परिछिन्न सदृश है, वही उपाधि दृष्टि को त्यागने से वस्तुतोविभुस्वरूपहै, और सर्वात्मा चेतन स्वरूप है, तथाओंकार शब्दकालक्ष्य है, और वही मायारूप उपाधिवाला ओंम्शब्द का वाच्य है, ईससे जो उस चेतनात्माको जानता है सोई वस्तुतोओंकारको जानता है अन्य नहीं जानता है । बुद्धि वृत्तिसे आत्मगोचर अज्ञान का नाश होता है, परन्तु नेत्रादिसे तथा बुद्धि वा चिदा भाससे घटादि सदृश स्वयं प्रकाश आत्माका प्रकाश नहीं होता है, और कर्म ईन्द्रियसे ग्रहणभी उसका नहींहोता है, और नेत्रादिके आत्मा होने से उसको नेत्रादि ग्रहणभी नहीं करसकते हैं इससे अविषय अगहस्वरूप आत्मा है । तथा अपने से भिन्नही हेय वा उपादेय होता है, इससे अभिन्नआत्मा हेय उपादेय नहीं है ॥ सम्पुटमहँ आवे, के स्थानमें. सम्पुट नहिं आवे. पाठहोवेतो अर्थ है कि, ध्यानादिसे जब आत्मवस्तुस्वरूप सूर्यकी किरण नाम प्रकाशको अपने हृदय कमलमें पुरुष जान जावे ।और वह कमल शशीके सदृश विकसित रहे सम्पुट नाम संकोच उसमें नहीं आवे । अर्थात्

हृदय कमल जब प्रसन्न स्वच्छ होवे। यद्वाशशी नाम चन्द्र नामक सुषम्ना [से वाम भाग की नाड़ी जब प्रसन्न विकसित होवे। और तहँमांहीं कुसुम्भरङ्ग नाम आत्मवस्तु विषयक प्रेमराग रूप रङ्गको जब योगी प्राप्त करलेवे, तब अगह आत्माको जानकर हृदयाकाश वा चिदाकाशमें स्थिरहोजावे॥ अथवा प्रकृतमें, कक्का, घटक क शब्दके सुख प्रकाश आत्मादि अर्थ हैं। और कक्काशब्द के सुखोंके सुख प्रकाशों के प्रकाश आत्माओं के आत्मा प्रजापतियोंके प्रजापति सूर्यों के सूर्य इत्यादि अर्थ है जिसके सर्वात्मा भावार्थ है। तौभी पाठ भेदमे उक्त अर्थ सदृशही दोअर्थ हैं॥ अथवा हृदयादि कमलों के किरणों प्रकाशो में बुद्धि आदिमें जब आत्माको पावै, इत्यादि अर्थ है॥ लिखा है कि

मनोमयः प्राणशरीरोभारूपःसत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥१॥ न तत्रचक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमोयथैतदनुशिष्यादन्यदेवतद् विदितादथोऽविदितादधि॥२॥ अङ्गुष्ठमात्रःपुरुषोऽन्तरात्मा सदाजनानां हृदयेसन्निविष्टः। तंस्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण। तंविद्याच्छुक्रममृतम् ॥३॥ अङ्गुष्ठमात्रोरवितुल्यरूपःसंकल्पाऽहंकारसमन्वितोयः। बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेनचैव आराग्रमात्रोप्यपरोऽपिदृष्टः) ब्रह्मही अन्तःकरणमय प्राणप्रधान सूक्ष्मशरीरवाला प्रकाशरूप सत्यसंकल्पविभुसबकर्मादि वालाहै, तथा इस सब संसारमें व्यापक और वागादि इन्द्रिय रहित तथा आदर रहित भी वस्तुतो है ॥ १ ॥ उस ब्रह्म में वागादि इन्द्रियों की प्रवृत्तिनहीं होती है, इससे गुरु कहते हैं कि मैं भी उसको उपदेशादि बिना नहीं जानता हूँ। और घटादिके सदृशविशेषरूपसे भी नहीं जानताहूँ, जिसविशेषरूपसे कोई गुरु उसकी शीक्षा देशके सो विशेष उसमें नहीं हैं, क्योंकि वह विदित अविदित से अन्य स्वयं प्रकाशस्वरूप श्रोत्रादिके श्रोत्रादि रूपसेही जानने योग्य हैं ॥ २ ॥ हृदयोपाधिसे अङ्गुष्ठपरिमाणवाला परमात्मारूप पुरुष अन्तरात्मा है सो सदाप्राणीके हृदय में स्थिर रहता है उसको मुञ्जसे ईषीका सदृश अपने तीनों शरीरों से धैर्यसे पृथक् करना चाहिये और उसीको शुद्धब्रह्मस्वरूप जानना चाहिये ॥ ३ ॥ 'अवर' नाम जीवभी उपाधि से अङ्गुष्ठमात्र है स्वयं रवितुल्य स्वयं प्रकाश रूप है उपाधिसेही जो संकल्प अहंकार से भीयुक्त है, इससे बुद्धिके तथा आत्माके गुणसे युक्त सूक्ष्मभी जीव जान पड़ता है ॥ ४ ॥

चौतीसी।

खखा चाहै खोरि मनावै। खसमहिं छोड़ि दशहुँ दिशि धावै॥
खसमहिं छोड़ि क्षमा ह्वै रहई। ह्वै न क्षीण अक्षय पद लहई॥ ३॥

टीका—[**खमिन्द्रिये खमाकाशे खः स्वर्गेऽपि प्रकीर्तितः। सामान्येच तथा शून्ये**

खशब्दः परिकीर्तितः] इंद्रिय, आकाश, स्वर्ग, सामान्य, शून्य, अर्थके वाचक ख शब्द है, इससे साहेब कहते हैं कि जो पुरुष ' खख्खा ' नाम पूर्ववर्णित हृदयाकाशमें वा चिदाकाशमें स्थिर होना चाहै। और सोई पुरुष ' खोरि ' नाम अन्यके दोषोंको ' मनावै ' नाम अन्यकी बुराई चाहे । यद्वा जोराग द्वेषादि रूप दोष उस खख्खामें स्थिति उसकी प्राप्ति के विरोधीहै, उन्हें यदि वह पुरुष ' मनावै ' नाम उन दोषोंका आश्रयणकरे। यद्वाखोरि नाम राग द्वेषादि दोषयुक्त देवादिको जो ' मनावै ' नाम उनको सत्यपत्ति मानकर उन्हें अनुकूल करना चाहे। और ' खसम ' नाम आकाश तुल्य विभूचिदात्माको छोड़कर वा ' खसम ' नाम रक्षक अंतर्यामी तथा गुरुको छोड़कर दशो दिशाओंमें मिथ्या पत्तियोंके यहां जो ' धावै ' नाम दौराकरे उनकेही जोध्यानादि कियाकरे तो उस पुरुषको खख्खा चाहने पर भी उसमें स्थिति उसकी प्राप्ति नहीं होसकती है, किन्तु जब यह पुरुष मिथ्या अनेक खसमोंको छोड़कर क्षमाशील होकर रहता है, क्षमा शब्दको उपलक्षक होनेसे, भाव है कि जब असत्य पत्ति विषयक आसक्तिको त्यागकर रागद्वेषादि सब दोषोंसे रहित होकर, और शमदमादिसे युक्त होकर जब यह पुरुष रहता है, तब कबहो क्षीण नहीं होताहै नाम शोक संतापादि रूपग्लानीसे युक्त कबही नहीं होता है, और चिदाकाशरूप अक्षय पदको लहताहै नाम प्राप्त करता है ॥ अथवा साहेब उपदेश देते हैं कि, जो पुरुष खखाचिदाकाश हृदयाकाशमें स्थिर होना चाहे सो 'खोरि' नाम दोषको मनावे नाम दोष युक्त मनको मनावे अपना अनुकूल प्रसन्न करे, जैसे क्रोधादियुक्तमनुष्यको बिनयादिसे प्रसन्न कियाजाता है। औरउसे प्रसन्न करके, जिस अपने से भिन्न वस्तुरूप खसमएकदेशी पत्तिको जीव मानताहै, उस खसमको छोड़कर दशों दिशामें धावैं नाम अखण्ड ब्रह्माकारवृत्तिसे दशों दिशाओंमें शीघ्रही पहुँचजावे, यद्वा अपने हृदयमें ब्रह्मात्माका ज्ञानपूर्वक दशों दिशाओंमें उसीको धावे नाम उसीका ध्यान चिन्तन करे। और उक्तअनात्मपत्तिको छोड़कर तथा अखण्ड अपने स्वरूपको जानकर क्षमा आदि धारणासे युक्त होकर रहे, तब वह पुरुष कबहीक्षीण नही होता है, और अक्षय पद मोक्षको लाभ करताहै। अथवा खख्खा नाम इन्द्रियोंके इन्द्रिय आकाशों के आकाश स्वर्गोंके स्वर्गादि स्वरूप वस्तुको जोपुरुष प्राप्त करना चाहे, सो सद्गुरु ईश्वरकी भक्ति उपासनासे प्रथम खोरि नाम दोषोंको मनावे नाम अपराधोंको क्षमा करावे, अर्थात् अपराधों बुराइयोंको भक्ति उपदेश श्रवणादिसे त्यागे, और जोचिदाकाशरूप खसमको छोड़कर दशों दिशाओं में दौड़ताहै, उस अज्ञानी गुरुआ और देवता आदि रूपखसमको छोड़कर क्षमा आदि युक्तहोकर गुरु शरणमें जब पुरुष रहे तब वह क्षीण नहीं होताहै। और सबके आदि स्वरूप अक्षय वस्तु का लाभ करता है।

चौतीसी।

गग्गा गुरुके बचने माने। दूसर शब्द करे नहिं काने।
तहां विहङ्गम कबहुं न जाई। औगह गहिके गगन रहाई॥४॥

टीका—(**गो गणेशः समुद्दिष्टो गन्धर्वो गः प्रकीर्तितः। गं गीतं गाचगाथास्याद्गौश्च धेनुःसरस्वती**) गणेश, गन्धर्व,गीत, का वाचक ग शब्द है, और गा शब्द गाथाके गौशब्द धेनु और सरस्वती के वाचक है। साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! लोग किसी कर्मादिमें विघ्न की निवृत्ति के लिये गणेशादि देवताओं की पूजा आदि करते हैं। तथा उनकी स्तुति आदिरूप गीत गाते हैं। परन्तु जो पुरुष हृदयाकाश वा चिदाकाशमें स्थिर होना चाहे, सो गुरुके वचनकोही गग्गा नाम सब विघ्नको नष्ट करने वाला गणेशरूप और गीतरूप, माने, नाम उससद्गुरुके उपदेशही का सत्कार करे उसके अनुकूल आचरणविचारादिकरे। और दूसर शब्दों को कान नहीं करे नाम अनात्म प्रपञ्च विषयक शब्दों को भाव पूर्वक नहीं सुने न तुम सुनो, ऐसा करने पर 'तहां' नामउस पुरुष के हृदयाकाश में वा स्वरूप में दुष्ट बासना काम क्रोध राग द्वेषादिरूपविघ्न करने वाले 'विहङ्गम' नाम पक्षी कबहुँनहीं जाते हैं। अर्थात् गुरु मुखी के चित्तमें क्षोभ के हेतु राग द्वेषादि नहीं उत्पन्न होते हैं। इससे वह पुरुष निर्विघ्नविवेक विराग विचारादि से 'औगह' नाम अनवगाह चञ्चलमलिनमनसे जाननेके अयोग्य अत्यन्त गम्भीर वस्तुको गुरु उपदेशसे गहकर नाम जानकर, वहपुरुष 'गगन' नाम सब उपद्रवोंसे रहित हृदयाकाशमें तथा चिदाकाशमें नित्यप्रकाशसुखरूपसे स्थिर रहताहै। अथवा देवादिरूप खसमों को छाड़कर रहे इस पूर्ववर्णित उपदेशको सुनकर शंका हुई कि, यदि देवता रूप खसम को जीवत्यागेंगे तो देवता लोग स्थिति तथा कल्याणमें विघ्न करेंगे, इसलिये विघ्नेशगणेशकातो किसी प्रकार त्यागही नहीं कियाजासकता। तब साहेब कहते हैं कि ,गग्गा, नाम गणेश रूप गुरु हैं, इससे उनके वचनहि मानेनाम मानो औरदूसरे शब्दों को कान नहीं करो, ऐसे करने पर ,तहां, नाम उसपुरुषके प्रति 'बिहङ्गम'नाम पक्षी सदृश आकाश में गमन करने वाले विघ्न करता देव लोग कबहीं भी नहीं जाते हैं इससे वह गुरुभक्त निर्विघ्न औगह वस्तुको गहकर चिदाकाशमें रहता है॥ यद्वा गग्गा नाम गणेशकी गाथा स्तुति रूप गुरुके उपदेश रूप वचनहीको मानो इत्यादि अर्थ है॥ यद्वा गग्गा नाम गणेशोंके गणेश गन्धर्वोंके गन्धर्व रूप जो गुरु उनके वचन को गीतोंके गीतमानो इत्यादि अर्थ है॥ लिखाहै कि **दुर्लभो विषयत्यागोदुर्लभंतत्त्वदर्शनम्। दुर्लभा सहजा वस्था सद्गुरोः करुणांविना॥ १॥ एकमेवाद्वितीयं सद्गुरो र्वाक्येन निश्चितम्। एतदेकान्त मित्युक्तं न मठो न वनान्तरम्॥ २॥** विषयोंका त्याग तत्त्वज्ञान सहजावस्था सद्गुरुकी करुणादया बिना दुर्लभ है॥ १॥ औरजोएक अद्वितीय वस्तु गुरु वाक्यसे जानी जातीहै सोई एकान्त है मठ वा वनान्तर एकान्त नहीं है॥ २॥

चौतीसी।

घग्घा घटफूटे घट होई। घटहीं में घटराखु समोई॥

जोघटघटे घटै फिरि आवै। घटहीमें फिरि घटहिं समावै ॥ ५ ॥

टीका—[घोघेटऽपिसमाख्यातः किंकिणि र्वा प्रकीर्तितः।हनुमते घा समाख्याता घाघण्टाऽथ समाख्याता घोघनश्च प्रकीर्तितः । घोघण्टाहननेऽधर्मे] घड़ा, किंकिणी, मेघ, घण्टा, घण्टाको बजाना, अधर्म, का वाचक घ शब्द है, हनुमान्, घण्टा अर्थ में घा शब्दहै, साहेब कहतेहैं कि हेसज्जनो! जोपुरुष गुरुके वचनोंको नहीं मानताहै किन्तु शरीरादिमें आसक्त रहताहै, उसको संसार दुःखके हेतु अधर्म होताहै, जिन अधर्म रूप पापोंसे उसके वर्तमान शरीररूप घट फूटने पर भी फिर बारम्बार घटहोते हैं, इस लिये तुम इसशरीर रूप घटको, घटहिं में समोई राखो,अर्थात् दृश्य शरीकोदृश्यभूतादि स्वरूपसमझो। अथवा स्थूल सूक्ष्म शरीकोकारण शरीर रूप अज्ञानमें लीनकर राखो,अज्ञानके कार्य होनेसे अज्ञान स्वरूप मिथ्या समझो।और गुरुका वचनके अनुसार इससे भिन्न अपनेको जानो उसीमें चित्तको लगावो, क्योंकि जोपुरुष ऐसा नहीं करके ' घट ' नाम शरीमेंही घटनेहैं, नाम केवल शरीरमें आसक्त होनेसे शरीर केही लिये चेष्टा व्यापार करनेहैं, सोफिर भी घटहीमें आतेहैं नाम फिर जन्म लेतेहैं, उसके बाद भी घटहीमें आतेहैं, उसके बाद फिरभी घटहीमें समातेहैं,इस प्रकार बारम्बार जन्म लेतेहैं,इसलिये तुम घटको घटमें समाकर रखदो।और आत्म विचारादि परायण होवो जिससे चौरासी लाख योनियोंमें नहीं भ्रमण करना पड़े। अथवा जोशरीररूप घटमें आसक्त होताहै सो फिर घटहीमें आताहै, गर्भवासजन्य दुःख भोगताहै। क्योंकि घटहीमें नाम माताके शरीर रूप घटके अंदर जो शरीर रूप घट उसमें जीव समाताहै। यद्वा घट विषयक चेष्टा करने वाला फिर अधर्मादिसे घटमें आताहै। और घटमें घटही रूप होकर समाताहै। अर्थात् स्थूल सूक्ष्म शरीरमें अभेद रूप तादात्म्य का अभिमान करके इसमें समाताहै, जिससे शरीरके तापादिसे सदा तापादियुक्त होताहै। इस लिये हेसज्जनो! शरीर तथा अधर्म विषयक आसक्ति तथा प्रवृत्तिको गुरु वचनको मानकर त्यागो जिससे तेरा कल्यान होवे इत्यादि। अथवा घघ्घा नाम घड़के सदृश वा मेघके सदृश यह शरीररूप घटफूटता है और उसीके सदृश होताहै। यद्वा इस बातकी शास्त्ररूप घण्टा बाज रहाहै कि, दूसर शब्दको कान करने आदिसे घट फूटने पर फिर घट होताहै। और वह घट संसार रूप घटमें समाकर जीव को राखताहै वा वह शरीर रूप घट जीवको घटहीमें समाय रखताहै नाम शरीर अपनेहीमें बांध रखताहै, गुरुविमुखको चिदाकाशमें नहीं स्थिर होने देताहै। और ' जो ' नाम यदि यह शरीररूप ' घट घटे ' नाम घटताहै नाम विवेक विचारादिसे न्यून तुच्छ होताहै, तब यह शरीर रूप घट घटहीमें आजाताहै। असंग आत्मामें नहीं समाताहै उसके साथ इसके सम्बन्धादि वास्तविकनहीं रह जातेहैं किन्तु स्थूल सुक्ष्ममें लीन होताहै और सूक्ष्म कारणमें लीन होताहै कारण ज्ञानमें समाजाताहै नाम अत्यंत निवृत्त हो जातेहैं ॥ अथवा घघ्घा नाम अधर्मों पापों के भी पाप रूप घटोंके घट रूप यह शरीररूपघट जब फूटताहै, तब फिर वैसाही पाप स्वरूप दुःखद घट होताहै इत्यादि अर्थहै॥ लिखाहै कि [योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः। स्थाणु-

मन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ १ ॥ तदेवसक्तः सहकर्मणेतिलिंगंमनो यत्रनिषक्तमस्य ॥ २ ॥ छायाऽहंकारयोरैक्यं तप्तायः पिण्डवन्मतम्। तदहंकारता-दात्म्या देहश्चेतनतामियात् ॥ ३ ॥ अहंकारस्य तादात्म्यंचिच्छायादेहसाक्षिभिः । सहजं कर्मजंभ्रान्तिजन्यं च त्रिविधंक्रमात् ॥ ४ ॥] कर्मोपासना आदिके अनुसार कोई देही शरीर धारण करनेके लिये योनियेंमें प्रवेश करतेहैं अन्य कोई स्थावर भावको प्राप्त होतेहैं ॥ १ ॥ इस अज्ञानी मनुष्यके लिंग शरीर सम्बन्धी मन जहाँ निश्चय पूर्बक आसक्त रहता है उसमें आसक्त जीव मरने पर कर्म सहित उसी वस्तुको प्राप्त करताहै ॥ २ ॥ चिदाभास और अहंकारको तप्तायः पिण्डके सदृश एकता रहतीहै, और उस अहंकार को देहके साथ तादात्म्य होनेसे देहमें चेतनता होतीहै ॥ ३ ॥ और अहंकार को चेतन की छाया, देह, साक्षी, इन तीनोंके साथ तादात्म्य रहताहै, सो, सहज, कर्मज, भ्रान्तिजन्य, इस भेदसे तीन प्रकारके तादात्म्य होतेहैं ॥ ४ ॥ घट फूटे के स्थानमें घट विनशे भी पाठहै ॥ [घट, चेष्टायाम्] इस धात्वर्थके अनुसार घटैके चेष्टा करना अर्थ किया गयाहै ॥

चौतीसी ।

ङङ्ङा निरखत निशि दिन जाई । निरखत नयन रहा रतनाई ॥
निमिष एक जो निरखै पावै । ताहि निमिष में नयन छिपावै ॥ ६॥

टीका—बहिर्मुख विषयी पुरुषों के जन्ममरण के प्रवाह का पूर्वचौतीसीसे वर्णन करके, अब विषयीपुरुष और विषयोंके स्वभावों का वर्णन करते हैं, तहां [ङकारो भैरवःख्यातो ङो ध्वनावपि कीर्तितः । ङकारःस्मरणे प्रोक्तो ङकारो विषयस्पृहा ॥ ताड़नेङश्चविषये स्पृहायां चैव भैरवे] भैरव, ध्वनि, स्मरण, विषय की इच्छा, ताड़न, विषय, इच्छा अर्थ का वाचक ङ शब्द है साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो ! गुरुके वचनको मानने बिना तथा अन्य शब्दों को कान करनेसेही 'ङङा' नाम भयानक विषयों को ही अज्ञानादिवश सुखदादि बुद्धि से निरखतेहुये नाम देख तेमें तेरे सब दिन रात वीते जारहे हैं यद्वाविषय की स्पृहाको निरखतेमें नाम उसीका वशमें निशदिन जारहे हैं और उन भयानक विषयादिकों को निरखते में ही तेरा नयन मानो 'रतनाई' नाम रत्न सदृश होरहाहै अर्थात् जैसे रत्नमें निमेष नहीं होनेते वह निरन्तर किसीवस्तुको प्रका-शता है वैसेही तेरे इन्द्रियों बुद्धि ये सभी निरन्तर मानो विषयादिकोंही प्रकाशतीहैं, उन विषयादि कों की वासना तेरी बुद्धिमें सदा बनीरहती है। यद्वा उन्हें देखते २ तेरा नेत्र रत्नाई नाम लाल होरहा है । और उनविषयों में ऐसा सामर्थ्य है कि, यदि कोई अदृढ विवेक बिचार वाला मनुष्य उन्हें 'एक निमेष'

मात्रभी निरखने पावे तो वे स्त्री आदि रूप भयानक विषय 'ताहि निमिषमें' नाम उसी निरखन कालमें उस पुरुषकेविवेक विचार रूप दृष्टि रूप नयन को छिपाते हैं, नामनष्टकरदेते हैं वा अच्छादित करदेते हैं। और ऐसे विषयादिकोंकोही निरखते विचारते तेरे दिनरात सब जारहे हैं, तो कहो, तुझे विवेकादि कैसे प्राप्तहोसकते हैं, और आत्म वस्तुमें स्थिति वा कल्याणतेरेकैसे होसकते हैं सो समझो, और कल्याणके लिये यत्न करो॥ अथवा साहेब उपदेशदेतेहैं कि हे मनुष्यो! फिर जन्मादिसे रहितहोनेके लिये वैराग्यादिकासम्पादनकरो और वैराग्यादिके लिये इससंसार तथा संसारादिकविषयादिकोंको'डङा नाम महाभयानक 'निरखत' नाम देखो भयों के भय स्वरूप को जानो, महात्माओं के स्मरण को देखो यमादिसे होनेवालीयातना ताड़ना आदिकों को देखो दिन रात वीते जाते हैं। इन बातों को विचारादिसे शीघ्र 'निरखत' नाम देखो तेरा 'नयन' इस मनुष्य जन्म में रत्न सदृह होरहा है अर्थात् तुझे इन बातोंकी जानने के लिये बुद्धि आदि प्राप्त हैं इससे निरखो। और हे मनुष्यो! जो कोई पूर्वकही रीतिसे इन विषयादिकों को भयानक स्वरूप एकनिमेषभी देखने पाजावे तो उसीनिमेषमें वह ज्ञान उसके वाहर का नयन को छिपादेवे नाम वाहर के विषयोंमें सुखबुद्धिको उसी क्षणमें नष्ट कर देता है, इसलिये पूर्वकही रीतिसे जानो॥ यद्वा उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो! भयानकसे भी भयानक शरीरादिको निरखतेही तेरेनिशिदिन जारहेहैं अब इस निरखनको छोड़ो। और जो रतन के सदृश सबके नयन रूप साक्षी है उसे 'निरखत' नाम देखो वा महात्माओं के जो रत्न सदृश विवेक विज्ञान रूप नयन है उन्हें उनके उपदेशादिसे समझो जो नयन ऐसे हैं कि यदि पुरुष उन्हें एक निमिषभी देखने पावेतो उसी निमिषमें सब अन्य नयन प्रकाशोंको छिपा देते हैं उन्हें जानो यद्वा एक निमेष निरखने पर उस निरखनज्ञान रूप वृत्तिकोभी पुरुष उसीमें लीनकरदेवे, तबउसकी उक्त चिदाकाशमें स्थिति होती है, इससे हेसतपुरुषो! तुमऐसेही करो भयानक शरीरादिका निरखना त्यागो॥ लिखाहैकि [न जातुकामः कामानामुपभोगेनशाम्यति॥ १॥ सम्यक्तत्त्वावबोधेनदुर्बोधेक्षयमागते। गलिते वासना वेशेविशोकंप्राप्यतेपदम्२]कामियोंका काम उपभोगसेकबही नहीं शान्त होताहै॥ १॥ किन्तु सम्यक्तत्त्वज्ञानसे मिथ्याज्ञानादिरूप दुर्बोधको नष्ट होनेपर तथा वासनाओं के आवेशको नष्ट होनेपर मनुष्य विशोक पदको प्राप्त करता है॥

चौतीसी।

चचा चित्र रच्यो बहुभारी। चित्रछाडु (ते) चेतु चित्रकारी॥
जिन यह चित्र विचित्र उखेला। चित्रछांड़ि तें चेतु चितेला॥७॥

टीका—(चश्चन्द्रमाः समाख्यातो भास्करेतस्करेमतः चोदुर्जने निर्मले चन्द्रमा, सूर्य, चोर, दुर्जन, निर्मल, अर्थका वाचक चशब्द है। और अव्ययसंज्ञक चशब्द पुनःफिर

अर्थ को कहता है। साहेब उपदेश करते हैं कि, हे मनुष्यो ! जो यह संसार रूप तथा शरीररूप चित्र रचागया है, सो ,बहुभारी, नाम बड़ाभारी ,चञ्चा, नाम चोर तथा दुर्जनस्वरूप है, इसमें आसक्त पुरुष के सद्विवेक विचार शमादि सम्पत्तिमोक्ष सुखको नष्ट करने वाला है। इसलिये ,हेचित्रकारी ! नाम इसचित्रको अपनी माया इच्छा कर्मादि द्वारा बनाने वाला, हेजीव! तुम इसचित्र को छाड़ दो, नाम इस विषयक आसक्ति आदिको त्यागदो। और 'चेतो' नाम अपने स्वरूपको सम्हारो यद्वा हे मनुष्यो ! ये चित्र सबभारी चोर रचेगये हैं, इससे इनचित्रोंको छाड़दो, और चित्रकारीको चेतो नाम समझो, हे चितेला! नाम चितेरा चित्रकारी जीव 'जिन' मनबुद्धि भूतादिकों ने इसशरीर रूप चित्रको 'उखेला' नाम बनाया है, चित्रको छाड़कर तुम उन्हें चेतो नाम चित्रके कर्ताको जानो, और चित्रके कारण रूप मन आदिकोभी समझो' और चित्रको त्यागदो जिससे तेरा कल्याण होवे॥ यद्वा चञ्चा नाम आत्माके चोर स्वरूप मन आदि बहुत भारी चित्र रचे हैं, जिन चित्रों को देखते में तेरेदिनादि जाते हैं, अब तुम उनचित्रों को देखना छोड़ कर चित्रकारी मन आदिको चेतो देखो, और उन्हें वशमें करने के लिये ,जिन, मन आदिकोंने ,यह, नाम इस विचित्रचित्रको 'उखेला' नाम बनायाहै उनमन आदिकों कोही तुम चितेला होकर, और चित्रों को छोड़कर 'चेतो' नाम मनआदिको समझो, और उन्हें वशमें करो जिससे तेरा कल्याण होवे॥ यद्वा चञ्चा नाम निर्मल ब्रह्मात्माने अपनी माया से भारी चित्ररचा है। और तुमभी शरीर रूप चित्रको छोड़कर चेतो तुमभी उसीचित्रकारीनिर्मल वस्तुस्वरूपहौ। जिनविचित्रचित्रों को मायासे वह 'उखेला' नाम क्रीड़ा सदृश बनाया है। उनचित्रोंको छोड़कर 'चितेरा' स्वरूप तुम अपने को चेतो यद्वा 'हेचितेला ! नामचेतनेकी इच्छावाला वा चेतन स्वरूप हे जीव! तुम अबभी चेतो॥ अथवा चञ्चा नाम देदीप्यामान चन्द्र सूर्य रूप वह भारी चित्रको जिसने रचा है। उसीचित्रकर्ता को तुम चेतो, और सबचित्रों को छोड़दो। जिज्ञासा हुईकि वह कैसा है और कहां है, तब साहेब कहते हैं कि, जिन यह मनआदि से भी अचिन्तनीय प्रत्यक्ष वस्तु रूप प्रसिद्ध विचित्र चित्रोंमें 'उ' नाम वह चित्रकारी अन्तर्यामी रूपसे 'खेला' नाम खेल रहा है, सोई सबके ,चितेरा, तथा चेतने वाला चेतनस्वरूप है जड़ प्रकृति आदिस्वरूप वह नहीं है इसलिये चित्रों को छाड़कर तुम उसी को चेतो जानो जिससे कल्याण होवे॥ यद्वा चञ्चा नाम चोरों से भी चोर यह चित्र रचा गया है वा चोरों के चोर मन इस चित्रको रचा है, वा निर्मलों के निर्मल ब्रह्मात्मा इस बहुभारी चित्रको रचा है इत्यादि अर्थ है॥ उखेलाके स्थानमें होखेला पाठ है उस पाठ भेदका अर्थ है कि जिन नाम जिस चित्र कारने इसचित्रमें विचित्र जीव रूपता को धारण करके विचित्र होकर खेल रहा है उसचितेला चित्रकारकोही तुम चित्रको छोड़कर चेतो इत्यादि लिखा है कि (चरन्ति चतुरश्चौरा विषया विषमारयः) चतुरचोर और कठिन शत्रु रूपविषय विचरते हैं॥

चौंतीसी।

छछ्छा आहिं छत्रपत्ति पासा। छकि क्यों न रहसि मेटि सब आशा॥

मैं तोही छिणछिण समुझाया। खसम छोड़ि कस आपु बंधाया॥ ८॥

टीका—चित्रकारी तथा चितेला जिसको कहा गयाहै सो उत्तम मध्यम कनिष्ठ चित्रको रचता है, इससे जिज्ञासुको शंका हुई कि चित्रकार विषम दृष्टि वाला राग द्वेषादियुक्त होनेसे अशुद्धहै। उसको जानने आदिसे कैवल्य नहीं होसकताहै। और लोकमें चित्रसे चित्रकार भिन्ना रहताहै। वैसेही उक्त चित्रकार भी शरीरादिसे तटस्थही सिद्ध होताहै इत्यादि। तब साहेब कहतेहैं कि [छछा] इत्यादि। भावहै कि तेरा स्वरूप भूत वह चित्रकारी सबदोषोंसे रहित निर्मलहै क्योंकि वह अयस्कान्त मणिके सदृश सत्तादि मात्रसे कारण है। और माया गत आभास भी सामान्यकारण रूपही है। कार्योंमें विचित्रता, जीवोंके अदृष्ट वासना आदिके अधीन होती है। और वह चित्रकारही सब के आत्मा है, इससे चित्रोंके भी आत्मा है तटस्थ नहीं है। और तटस्थ नहीं होते भी नट सदृश अनेको मिथ्या चित्र बनाता है, और [**निर्मलं छं समाख्यातं तरले छः प्रकीर्तितः। छेदके छः समाख्यातोविशुद्धिः शब्दकोविदैः**] निर्मल, तरल, छेदनकर्ता, अर्थके वाचक छशब्दहै। इससे अर्थहै कि हे जिज्ञासुओ! 'छछ्छा' नाम निर्मल और 'छत्र पत्ति' नाम सार्वभौम राजाके सदृश अपर तंत्र सबको सत्ताप्रद आनंद स्वरूप तुम, इस चित्रके अत्यंत 'पासमें' आहिं नामहौ, अर्थात् इस चित्र के आत्मा होनेसे चित्रके अंदर आनंद रूपसे तुमही विद्यमानहौ। और आत्म स्वरूप अंतर्यामी ईश्वर रूप निर्मल क्षेत्रपत्ति भी इस चित्रको रचने आदि वाला होनेसे तेरे अत्यंत पासमेंही है। तौ भी तुम सब आशाको मेटिकर छक क्यों नहीं रहते हौ। अर्थात् उस आत्मानन्दको प्राप्तकरके आशा रहित तृप्त क्यों नहीं होतेहौ। आशाओंको मेटकर तृप्त होजावो। और हेमनुष्यो! 'मैं' नाम सदुपदेशक गुरुने तुझे 'क्षण २' नाम बारम्बार समुझाया हूँ अर्थात् ज्ञानी महात्मा तुझे सदा समझातेही आते हैं तौ भी तुम उस गुरु रूप खसमको छोड़कर 'कस' नाम क्यों आपु बन्धाये हौ और बंधाते हौ अथवा सर्वात्म स्वरूप 'खसम' रक्षक पत्तिको छोड़कर क्यों आपु बन्धाये हौ। अर्थात् गुरुके उपदेशोंको नहीं मानकर और ब्रह्मात्मा स्वरूप पत्तिको पासमें जानने बिना क्यों आप बन्धनमें पडते हौ अबही भी उसे जानो। भावहै कि निर्मल पत्तिको पासमें रहते भी तृप्तिके अभाव और बन्धनके क्या कारणहै सोजानो अज्ञनही वह कारण है कि जिससे नित्यानन्द स्वरूपको छोड़कर तुम बन्धन में पड़े हौ कोई दूसरा तुझे बन्धनमें नहीं डालाहै इसलिये गुरु उपदेशसे आत्म ज्ञानकी प्राप्ति करके निर्बन्धमें होजावो। तथा नित्यानन्द स्वरूप हो जावोक्यों दुख भोगते हौ॥ अथवा उपदेश करतेहैं कि छछ्छा नाम निर्मलोंके निर्मल और छत्रपत्ति नाम चित्ररूप क्षेत्रको अपनी सत्ता मायादिसे रचने पालने वाला स्वरूप क्षेत्र पत्ति क्षेत्रज्ञ स्वरूप तुम पास में हौ। वा वह क्षेत्रज्ञ तेरे पासमें नाम हृदयमें है। यद्यानिर्मल क्षेत्र पत्ति परमात्माके पासमें ही तुम हृदयमें हौ तौ भी तुम अज्ञान मूलक आशा से अतृप्त दुःखी हुये हौ तहाँ उस अपना स्वरूप आनन्दात्मा क्षेत्रज्ञको जानकर सब आशाओं को मेटकरके 'छकि' नाम तृप्त होके क्यों नहीं रहते हौ। मैं तुझे बारम्बार समझाया हूँ तौ भी 'खसम' नाम

आकाश तुल्य अपना स्वरूपको जाने बिना तुम कैसे आपही बन्धाये हो यह भारी भूल किये हो इस भूलको त्यागो ॥ छकि क्यों न रहसि के छकि कै रहसि पाठ भेदहै। अर्थ स्पष्ट है। **आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीतिपूरुषः। किमिच्छन्कस्य कामाय शरीर मनुसंज्वरेत् ॥ १ ॥ सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँशुद्धमपापविद्धम् ॥ २॥** यह परमात्मा नामक पुरुष मैं हूँ इस प्रकार यदि पुरुष अपने को जान जावे तो वह किस बस्तु वा फल की इच्छा करता-हुआ, और किस फलके लिये शरीरका तापसे अनुतप्त होसकता है किन्तु शरीर दुःखसे भी नहीं दुःखी होता है ॥१॥ सो परमात्मा दीप्तिमान् तीन शरीरसे रहित शुद्ध पापादि रहित है ॥२॥

चौतोमी।

जज्जा ईनन जियनहिं जारो। यौवन जारि युक्ति तन पारो॥

जो कछु जानि जानि पर जरै। घटहिं ज्योति उजियारी करै॥६॥

टीका—**जकारो गायने प्रोक्तोजेमने जः प्रकीर्तितः। जेताजश्चप्रकाथितः शूरिभिःशब्द शासने** * गायक, भोजन, विजयकर्ता, जशब्द केअर्थहै। हृदयमें वर्तमान निर्मल वस्तुको जाने विना वन्धनका पूर्व वर्णन करके अब साहेब उपदेश करतेहैं कि, हेजज्जा! नाम इस दुःख मय संसार बंधन को जीतने की इच्छा वाले वा सांसारिक विषयों को जेमने वाले हेमनुष्यो! 'ईतन' नाम इस शरीर रूप वंधन को 'जियतेही में' जारदो, अर्थात् शरीरादि रूप संसार बंधनसे मनुष्य जन्म पाकर जियतेही रहित होजावो, दूसरे जन्मादि की आशा नहीं करो कि, अन्य शरीरों में बंधन रहित हो लूंगा इत्यादि, और इस जन्ममें भी वृद्धावस्था की आशा नहीं करो, किंतु 'यौवन, नाम युवा अवस्थामेँ ही युक्ति से तन आदिको जारकर, नाम इन्हें विवेकादि से मिथ्या समझकर, इनविषयक आसक्ति को त्यागकर, और युवावस्था के मदकामदिकों को जारकर, 'तन पारो, नाम मुञ्जेषीका न्यायसे विवेक करके तन नाम शरीर से पार नाम परे भिन्न होजावो। यद्वा यौवन मदादि को जारकर तनको भी पारो नाम बशमेँ अपने अधीन करो। क्योंकि जो पुरुष 'पर' नाम अपने स्वरूपसे भिन्न इस शरीरादिको 'कछु'—नाम तुच्छ, जान जान कर 'जरै' नाम उन्हें युक्ति से जराता है, सो पुरुष अपने 'घट' नाम शरीरहीमें पूर्व चौतीसीमें वर्णित छत्रपत्ति खसम रूप ज्योति, की 'उजियारी' नाम आत्म स्वरूपसे प्रकाश करता है इसलिये तुम अपनेसे भिन्न शरीरादि को जरावो जिससे कल्याण होवे। वृद्धावस्था जन्मांतर की आशा भूलकर भी नहीं करो, क्योंकि वह दशा ज्ञानादिके लिये विचारादि करने योग्य नहीं है। जन्मांतर की पत्ता नहीं कि, किस योनि वा अवस्थामें जन्म होगा। इसलिये युवावस्थामेँ हीं तनको जारो। यद्वा जो विवेकी पुरुष

शरीरादि को अपने स्वरूपसे 'पर' नाम भिन्न तथा ' कछु ' नाम तुच्छ जान जान कर जरता है, नाम उन रूपोंसे स्वयं भी जर जाता है, अर्थात् शरीरी ब्राह्मणादि पनके अभिमानों को त्यागता है। यद्वा स्वयं शरीरादिसे पर होकर जानि जानि हुई कछु रूपसे जरता है, सो पुरुष वर्तमान शरीरमें ही कर्म कर्कटको नष्ट करने वाली ज्ञानाग्नि की ज्योति की तथा आत्म ज्योति की उजियारी करता है, और मोहादि रूप अँधकारों को नष्टकर देता है, सब अभिमानों से रहित हो जाता है, इसलिये तुम भी ऐसाही करो॥ [वेगिते जः समाख्यातो जघने जः प्रकीर्तितः] वेगयुक्त और जंघा के वाचक भी जशब्द है, तब अर्थ है कि हेमनुष्यो! 'जज्जा' नाम वेगसे जाने बाला क्षण भंगुर वा तेरी हीन गतिके लिये जंघा रूप जो ये स्थूल सूक्ष्म शरीर हैं, इन्हें जियतेही ज्ञानाग्निसे भस्म करदो, और ' यौवन ' नाम युवावस्थ के मदको जारकर युक्तिसे तनसे सर्वथा पार होजावो, जब तुम यौवन को जारकर शरीरसे पार होवोगे,तब जो कुछ जानि जानि हुई अन्य शरीर सम्बंधी वस्तु हैं, सो सब आपहिं ' पर ' नाम परात्मा स्वरूप तेरे परमेश्वर रूपमें जावेगी नाम शरीरसे पार तुझको ऐसा अनुभव होगा कि, जिस अनुभवाग्नि में सब अनात्म वस्तु बर उठेगी, और घटहीमें परमात्म वस्तु की प्राप्तिके लिये अत्यंत उजियारी कर देगी इस लिये तुम प्रथम शरीरहीसे पार होवो॥ यद्वा हे ' जज्जा !' नाम अनेको शब्दोंके गायक हे जीव ! इस शरीरको जियतेही जारो केवल गानेसे कुछ नहीं होगा इत्यादि अर्थ है॥ यद्वा वेगितसेभी वेगित जेबन का भी जेमन जेताओंको भी जेता इस शरीर यौवन मद मन आदिकोंको जियतेही जारो दग्ध बोज भावको प्राप्त करदो इत्यादि अर्थ है॥

(देहंमनोमात्रामिमंगृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः। एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥ १ ॥ देहाभिमाने गलिते ज्ञानेनपरमात्मनि। यत्र यत्र मनो याति तत्रतत्र समाधयः ॥२॥ वैराग्याभ्यासवशतस्तथा तत्त्वावबोधनात्। संसारस्तीर्यतेतेनतेष्वेवाभ्यासमाहर ॥ ३ ॥ अविवेकान्ध मनुष्य मनसे कल्पित इस देहको ममअहं बुद्धिसे ग्रहण करके यह मैंहूँ यह अन्यहै ऐसा भ्रमसे युक्त होकर पारावार अंत रहित संसार तममें भ्रमण करता है॥ १ ॥ और ज्ञानसे देहाभिमान को परमात्मा में लीन होने पर जहां जहां मन जाता है तहां तहां समाधिही रहती है॥ २ ॥ वैराग्य के और अभ्यासका वशसे तथा तत्त्वज्ञानसे संसार तरा जाताहै इससे इन विषयक हो अभ्यास की प्राप्ति करो॥ ३ ॥

चौतीसी।

झझझा अरुझ सरुझ कित जाना। हींढत ढूंढ़त जात पराना॥
कोटि सुमेरु ढूंढ़ि फिरि आवै। जो गढ गढा गढहिं सो पावै॥ १० ॥

टीका—(रवो झकारः कथितो नष्टे झश्चोच्यतेबुधैः। झकारश्च तथा वायौनेयथ्येस-मुदाहृतः) र व, नष्ट, वायु, और नेयथ्य नाम अलंकार कृतशोभा रङ्गभूमि और वेष भेदका झ शब्द वाचक है, पूर्वोक्त अर्थको दृढ़ करने के लिये साहेब उपदेश करते हैं कि, हेमनुष्यो ! अनेकी ' झझझा ' नाम रवों में अर्थात् शब्दोंमें तथा नेयथ्य रूप संसार वेषादिमें ' कित ' नाम क्यों अरुझे हो, अर्थात् अनेको देश लोक वस्तु सुखादिकों को सत्यादि बताने वाले शब्दोंमें, और मिथ्या संसारमें क्यों फँसेहो, पूर्वकहे आत्मवस्तुको जानो, और सरुझो, इन फन्दोंसे रहित होवो, अथवा जो तुम शब्दादिमें अरुझेहो सो समझो इसीसे मोक्ष होगा, और जो अनेको लोकादिमें मोक्षकेलिये जाना चाहते हो सो समझो कि ,कित, नाम कहां जाना है। अर्थात् अज्ञान की निवृत्ति होने पर तुझे कहीं आना जाना नहीं है सो जानो, यद्वा हे मनुष्यो! अवहीं तुम झझ्झा में अरुझे हो तो सरुझने के लिये ,कित, नाम कहां जावोगे, अर्थात् इस जन्ममें यदि अरुझे रहोगे तो कहीं भी तुझे सरुझने के लिये नहीं जाना होगा, किन्तु अत्यन्त अरुझनेही के लिये जानाहोगा, यद्वा यदि इस जन्ममें झझ्झामें अरुझेहो तो सरुझ ने के लिये कौनस्थान तुमने जाना है नाम समझा है, अन्यकोईभी सरुझने के लिये ऐसा स्थान है नहीं, इसलिये यदि इस मनुष्य जन्ममें झझा का अरुझसे रहित होकर आत्मवस्तुकोनहीं जानोगे तो शब्दादिकों को ,ढ़ोढ़तेढूंढ़ते, नाम इन्हेंही भोगते हुये में और इनमें सुखादिखोजने में तेराप्राण जायगा, और सब मनुष्य के पराना नाम प्राण ज्ञान बिना ढोढते ढूँढतेही जाते हैं, यद्वा जो कोई झझ्झा विषयक अरुझ को इस जन्ममें नहीं सरुझता है, हृदय वृत्ति खसम को नहीं चीन्हता है, सो अज्ञान वश पासमें के सत्य सुख रूप वस्तुको छोड़कर सुखादिकोही प्राप्त करने के लिये शब्दा-दिको ढोढ़ता हुआ और सुखादिको ढूंढ़ता हुआ, ,पराना, नाम दूरसे दूर अनेको योनि देशादि में भागा जाता है, परन्तु कहो उसको सत्यपरमात्मवस्तु वा।सुख नहीं प्राप्त होता है, चाहे वह पुरुष करोड़ों सुमेरु ब्रह्माण्डमें से भी ढूंढ़कर फिर आवे तो उसको कहीं नहीं घटादि सदृश सत्य वस्तु सुखादि मिलसकते हैं, परन्तु सो पुरुष यदि विवेक विचारादि करे तो जो सत्यानन्दरूप आत्मा अपनी सत्ता आदि से इस शरीर रूप गढ़को गढ़ा है नाम रचा है उसको सो ढूंढ़ने वाला पुरुष इस शरीर रूप गढ़ही में पा सकता है। यद्वा जो जीव करोड़ों सुमेरु पर खोजता है सो फिर जब इस मनुष्यलोकमें मानव शरीरमें आता है, तब जिस शरीरादि रूप गढ़को रचनेवाला को वह जीव खोजते रहता है सो वस्तु उसको शरीर रूप गढ़ही में विवेक विज्ञानसे प्राप्त होजाता है, इसलिये हे मनुष्यो ! अपने शरीरमेंही सत्यानन्द रूप वस्तुको विवेक विचारादिसे प्राप्त करो जिससे घटमे उजियारी होवे ॥ अथवा हे मनुष्यो ! [झझ्झा, नाम रवोंसे रव नाम अत्यन्त वाचारम्भण] मात्र, और नष्टों से भी नष्ट क्षणभङ्गुर शरीरमें कित अरुझेहो, सरुझ कर कहां जाना होगा सो समझो इस बातको जानने बिना तुम,[ढोढते ढूंढते]पराना नाम भागे जाते हो, यद्वा झझारूप इसशरीर में अरुझ सरुझकर, नाम लटपट अत्यन्त आसक्त होकर तुझेकित जाना होगा सो जानो, अर्थात् आगे बहुत कष्ट में प्राप्त होना होगा, और संसारचक्रमें भ्रमना होगा, और वर्तमान में भी ढोढते आदि

में ही तेरा प्राण जा रहा है। और चाहे कोटि सुमेरु से ढूंढ़कर भी तुम फिर आवोगे तो सत्य वस्तुको शरीर में ही विवेकादि से पावोगे इसलिये लटपट छोड़कर विवेकादि करो॥ लिखाहै कि शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्। अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यस्तत्त्वज्ञात्तत्त्वमात्मनः ॥१॥ जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहोपि स केवलः ॥२॥ वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरतिः फलम्। स्वानुभवाद्भवेच्छान्तिरेषैवोपरतेः फलम् ॥३॥ शब्द समुदाय महान् जङ्गल और चित्तके भ्रमण का कारण है इसलिये प्रयत्न पूर्वक तत्त्वज्ञसे आत्मतत्त्वको जानना चाहिये॥ १॥ ज्ञानसे जिसको जीवते मोक्षप्राप्त है उसीको मरणेपरभी है अन्य को नहीं॥ २॥ वैराग्य का बोधफल है बोधका उपरत्तिफल है आत्मानुभवका शांतिफल है और सोई उपरत्तिका भी फल है॥ ३॥ (वरणधार वारिधि अगमको गमकरै अपार। जन तुलसी सतसङ्गबल पयोबिशद विचार॥ कहत अवर समुझत अवर, गहत तजत कछु और। कहत सुनत समुझत नहिं, तुलसी अति मति बौर॥ सोइ सेमर सोइ सुवा, सेवत पाइ वसन्त। तुलसी महिमा मोहकी, विदित बखानत सन्त॥ वस्तु रह्यो प्राचीदिशा खोजन चले प्रतीचि। चल्यो जात ज्यों ज्यों बढ़ो परे अधिक त्यों बीच॥

चौंतीसी।

अञ्जा निग्रहसे करु नेहू। करु निरुआर छाड़ु संदेहू॥
नहिं देखै नहिं भाजै केहू। जानहु परम सयानप येहू॥
नहिं देखे नहिं आपु भजाऊ। जहां नहीं तहँ तन मन लाऊ॥
जहां नहीं तहँ सब कछु जानी। जहां नहीं तहँ लै पहिचानी॥११॥

टीका—(अकारो गायने प्रोक्तो अकारो झर्झरध्वनौ॥ अकारःशयने प्रोक्तः) गायक, झर्झर शब्द, शयन, अर्थका वाचक अशब्द है। साहेब उपदेशकरते हैं कि, हे अञ्जा! नाम हे शब्दों विषयों को गाने वाले मनुष्यो, यद्वा संसार में मोहनिन्दसे सोने वाले मनुष्यो, तुम सब निग्रहसे नेह करो, अर्थात् मोहनिन्द को त्याग कर शब्दादिमे नेहरूप अरुझका त्याग पूर्वक उनशब्दादिकों से मन इन्द्रियों का निग्रह नाम निरोध से प्रेम करो, अत्यन्त सावधानी से मन आदि

को शब्दादिसे रोको, और शब्द अर्थमें फँसे हुये इन्द्रिय मनको रोक कर निरुआर करो, नाम सत्सङ्गविचारादिसे सत्य असत्य आत्म अनात्म बन्ध मोक्षादिका विवेक अपने हृदय गुफामें बैठकर करो, और विवेक करके संदेह स्वरूप मिथ्या विनाशी अनिश्चित शब्द अर्थको त्यागदो, और विवेक सेही संदेह रूप मिथ्या ज्ञानको भी छाडु नाम छोड़दो, अर्थात् अनिश्चित शब्दअर्थमें सत्यबुद्धि तथा आसक्ति को छोड़दो, और संशय ज्ञानको विवेकजन्यनिश्चयात्मकयथार्थज्ञानसे नष्ट करदो, उसे नष्ट करने के लिये आत्म तत्त्वका निश्चय ज्ञान की प्राप्ति करो, और हे मनुष्यो ! जो कोई मन इन्द्रियों का निरोध कर लेने से संसारिक विषयों को नहीं देखता है नाम इनमें सत्यसुखदादि बुद्धि नहीं करता है न आसक्त होता है। और जो आत्म वस्तु तथा उसके विचारादिको त्याग कर, केहू, नाम किसी देश लोक वस्तु आदिमें नही भाजताहै नाम नहीं भागता दौड़ता है, अर्थात् किसी देशादि की इच्छा जो नहीं करता है, उस पुरुषमें संसार बन्धसे रहित होनेके लिये, येहू, नाम यही, परम' नाम उत्कृष्ट, सयानप, नाम ज्ञानीपन चतुराई जानो, और इस सयानप की प्राप्ति करो। और हे जिज्ञासुओ ! मुमुक्षुओ ! तुम भी उस चतुराईको जानकर इन्द्रियों का निरोधसे अनात्म वस्तुओं को, नहींदेखै, नाम उन्हें सत्यादि रूप नहीं जानो उनमें आसक्त नहीं हो वो, और, आपु, नाम अपने स्वरूपसे, नहिंभजाऊ, नाम अन्य देश काल वस्तुआदिमें भागोभी नहीं किन्तु अपनेही विवेक विचार चिन्तनादि करो, और जहां नाम जिस वस्तुमें तुम कबहीं नहीं स्थिर हुये हो न अन्य कोई अविवेकी जहां स्थिर होते हैं, तहँ, नाम उसी वस्तुमें विवेकादि से तुम, तनमनलाऊ, नाम तनमनको लगावो, अर्थात् शरीर से गुरुभक्ति आदिकरो और मनसे विवेक विचारादि करो। अथवा जिस आत्मवस्तु में यह संसार वस्तुतो लेशमात्रभी नहीं है तहाँ तुम तनमनको लगावो, और हे सज्जनो ! जहाँ संसारी जीव नहीं जाते हैं तथा जिसमें वस्तुतः संसार नहीं है, तहां नाम उसीमें अज्ञानादिसे सब कुछ जानकर नाम अज्ञान माया से संसार भेद रहित वस्तुमेंहीं सब संसार भेद भासते हैं इस बातको सद्गुरु के उपदेश से जानकर जहां सत्य संसार नहीं है तहां मिथ्या संसारको पहचानलो और उसके आश्रय अधिष्ठान रूप सत्य वस्तुको शुद्ध पहचानलो जिससे तेरा कल्याण होवे॥ अथवा हे अन्त्रा ! नाम अन्यको गाने वालोंको गाने वाले हे मनुष्यो ! उस केवल गान से तथा विषयादिसे मनका निग्रह से सत्य वस्तु सत्यविचारादिमें नेहकरो, और सब संदेहोंको छोड़ो सत्यधर्म सत्य वस्तु का निरुआर नाम विवेक करो और, केहू, नाम किसी भी विषयादिकों को न देखो न उसमें मनसे दुवाराभाजो नाम भागो, और ईसीको परम चतुराई जानो, और जो महात्मा न इसविषयादि को देखते हैं न आप अपने स्वरूप से भाजते हैं इससे जिस महात्मा के यहां संसार नहीं है तहाँ तुम तन मन लगावो, और जिस महात्मा में संसार नहीं है तहां सब कल्याण के हेतु रूप वस्तुओं को जान कर तहंमाहीं कल्याण कारक वस्तु को पहचान लो जिससे तेरा कल्याण होवे ॥ लिखा है कि (**यथा सम्भवया वृत्त्या लोकशास्त्राविरुद्धया । सतोषसन्तुष्टमनो भोगगन्धंपरित्यजेत् ॥ १ ॥ यथांप्राप्तार्थे**

सन्तुष्टो यो गर्हितमुपेक्षते । साधुसङ्गमसच्छास्त्रपरःशीघ्रंसमुच्यते ॥२॥ यत्राभिलाषस्तन्नूनंसंत्यज्यस्थीयते यदि । प्राप्तएवाङ्गतन्मोक्षःकिमेतावति दुष्करम् ॥३॥) लोकशास्त्रसे अविरुद्ध यथा सम्भववृत्तिसे संतोषसे संतुष्ट मनवाला होकर भोगवासनाको त्यागना चाहिये ॥ १ ॥ साधुसंगसतशास्त्र परायण जो पुरुष यथा प्राप्तार्थसे संतुष्ट होकर निन्दित वृत्ति आचार वस्तु आदि को त्यागना है सो शीघ्रही मुक्त होता है ॥ २ ॥ हेअङ्ग प्रिय राम! जिस वस्तुकी अभिलाषा होती है उसको त्यागकर यदि अभिलाषारहित स्थिर हुआ जावे तो जानना चाहिये कि मोक्षप्राप्तही होगया और इसमें दुष्करभी क्या है ॥ ३ ॥

चौंतीसो।

टट्टा बिकट बाट मन माहीं । खोलि कपाट महल ते जाहीं ॥
रहि लटपटी जुटा तन माहीं । होहिं अटल ते कतहुं न जाहीं ॥१२ ॥

टीका—(टो धरित्र्यांच करके टो ध्वनौ च प्रकीर्तितः ॥ गायने च टः) पृथिवी, और करक नाम वर्षोपल, दाडिम, कमण्डलु तथा अनारका और ध्वनिका टशब्दबाचक है। तथा गायनका वाचक है ॥ मन आदिका निरोध के लिये उपदेश देकर, अवनिरोध बिना मन की दुष्ट गतिका वर्णन करते हैं कि, हेमनुष्यो! टट्टा नाम पृथिवीमें तथा शब्दमें अर्थात् शब्द प्रतिपादित परोक्ष वस्तुमें वा ध्वनि में जीवको प्राप्तकराने के लिये तथा स्वयं प्राप्त होनेके लिये मनमें बड़ाभारी, 'बिकट' दुःखद, बाट, नाम रास्ता है, अर्थात् अपूर्व शक्तिहै। जिससे नेत्रादिरूप 'कपाटको खोलकर' वह मन हृदयरूप, महलते पृथिवी आदिमें 'जाही' नाम जाता है, अर्थात् आत्म वस्तुको नहीं विचारकर उक्तबाटके द्वारा बाहर चलाजाता है, और जीवको अनात्मसंसारमें प्राप्त कराता है, तथा उसके और शरीरके अभिमान कराता है, जिस अभिमान से मन सहित जीव 'तनमांही' नाम शरीरमें ही, 'लटपटी' नाम लटपटाकर। अर्थात् शरीरमें अपना अभेद भ्रमकरके उस शरीर में जुटा हुआ रहता है नाम आसक्त रहता है, और उसमें जुटा हुआ 'रहि' नाम रहकर 'ते' नाम वे मन सहित जीव शरीर तथा संसार विषयादिमेंही 'अटल' नाम स्थिर होजाते हैं, उससे भिन्न सतसङ्ग आत्म विचारादिमें 'कतहुँनहीं जाते हैं' अर्थात् मनके वशमें परा हुआ जीव किसीभी कल्याणमार्ग में वा आत्मवस्तुमें नहीं प्राप्त होने पाता है, किन्तु जब तक मनको वशमें नहीं करता है तब तक संसारी दुःखी बनारहता है ॥ अथवा, 'टट्ट' नाम पृथिवी आदि माहिं मनके विकट बाट है, जिसबाटमें कपाट खोलकर महलसे मनजाता है, और उसीमें लटपट होकर उसमें जूटकर संसारमेंही अटल होकर रहता है, और संसारसे भिन्न किसी अवस्थामें नहीं जाता है ॥ अथवा ध्वनि आदिरूप शब्दको मनमें पहुँचनेके लिये विकट बाट है जिस बाटके कपाटको खोलकर 'ते' नाम वे शब्द महल

में जाते हैं, नाम शरीरके अन्दर पहुँचते हैं, और बासनारूपसे सूक्ष्मशरीरमें लटपट होकर अटल होजाते हैं, जिससे जीव कल्याणमार्गादिमें कहूँ नहीं जाने पाते हैं ॥ महलते के स्थानमें महलमें, और तनमाहीं के स्थानमें तेहि माहीं पाठ भेद है ॥ तब अर्थहैकि, पृथिवी शब्दादिरूप जो विषयहैं उनको मनमें जानेके लिये नेत्रादिरूप विकटबाट हैं जिन्हें रोकना कठिन है। इससे उन रास्तायोंके कपाटको खोलकर शब्दादि महलमें जाते हैं। और 'तेहिमाहिं' नाम महलमें ही वासनारूपसे लटपट होकर जीवके साथ जूटकर रहने हैं। और ऐसा मनमें लटपट होकर जीवके साथ जूटते हैं कि। अज्ञानियोंसे अटल होजाते हैं इससे वे वासनायें कतहुँ नहीं जाती हैं नाम ज्ञान बिना अत्यंत निवृत्त नहीं होती हैं ॥ ट शब्द गायनार्थक यदि प्रकृतमें होवे तो शब्दादिकों को गानेवाले मनके निग्रह नहीं करने वाले पुरुषके मनमें विकटबाट रहता है इत्यादि अर्थ है॥ अथवा टट्टा नाम पृथिवी के पृथिवी ध्वनिके ध्वनि गायनके गायनरूप सब वस्तुकी कल्पना करनेवाला वासनाओं को धारण करने वाला जोमन उसमें विकटबाट है, जिसका निरोध मनके निरोधादि बिना नहीं होसकता इत्यादि, जो पुरुष मनके गुप्त रास्ताओंके कपाट को खोलकर हृदय महलमें जाता है, और उस महलमें लटपट करके नाम मनको पछार करके उस मनमें जूटा रहता है नाम सदा उसको वशमें रखता है, तथा आत्मनिष्ठ होजाता है, सो पुरुष जन्मादि रहित अटल नाम अचल हो जाता है, और कतहुँ नहीं जाता है, अक्रिय मुक्तात्म स्वरूप होजाताहै ॥ यद्वा पृथिवीके पृथिवी स्वरूप मनमें विकट बाट भी है, जिस बाटके कपाटको खोलकर'ने' नाम मनको निरोध करने वाले हृदय महलमें जाते हैं, और शरीरके भीतरही लटपट होकर आत्म वस्तुमें जूटे रहते हैं जिससे ते नाम वे लोग अटल होते हैं इत्यादि अर्थ है ॥ लिखा है कि यथायथा निषेवन्ते बिषयान् विषयात्मकाः। तथातथा कुशलता तेषांतेषूपजायते] विषयी पुरुष ज्यों २ विषयों का सेवनकरते हैं त्यों।२ उन्हें विषयोपभोगमें कुशलता होती जाती है॥ १ ॥

चौतीसी ।

ठठ्ठा ठौर दूर ठग नीरे। नितके निठुर कीन्ह मन धीरे ॥
जे ठग ठगु सब लोग सयाना। सो ठग चीन्हि ठौर पहिचाना ॥१३॥

टीका—ठकारो जनतायां स्याट्ठो ध्वनौच शठेऽपिच। ठो महेशः समाख्यातष्ठस्वशून्येप्रकीर्तितः ॥ बृहद्ध्वनौ च ठःप्रोक्तस्तथा चन्द्रस्य मण्डले) जनसमुदाय, ध्वनि, शठ, महेश, शून्य, वृहद्धनि, चन्द्रमण्डल, अर्थका वाचक ठ शब्द है। और भी साहेब उपदेश करते हैं कि, हे मनुष्यो ! विकट बाट युक्त अवशी भूत मन वाला [ठठ्ठा नाम] जन समुदाय के लिये वा शठ पुरुष के लिये कल्याण के ठौर दूर रहता है, अर्थात् शब्दादि विषय में आसक्त सवासन पुरुष से विवेक विज्ञानादि और आत्म वस्तु दूर पर जाते हैं। और सतधर्म सुविचार शान्ति सुखादि को हरने वाले काम क्रोध लोभादि तथा उनसे युक्त मन गुरुआ आदिरूप ठग नीरे नाम नियरे, अर्थात्

पासहीं में रहते हैं, और उन ठगों में जो कामादि हैं सो 'धीरे' नाम बड़े २ धीर पुरुषों में भी 'मनको' 'नितके' नाम सदाके लिये 'निठुर' नाम दया हीन कर दिये हैं और करते हैं, अथवा रे मनुष्यो! वे कामादिकहीं सदा मनधी, नाम मन बुद्धि दोनोंको निठुर, उन शठजन समुदायों में किये हैं, नाम सदा उनके मन बुद्धिको दयादि रहित हिंसा आदि परायण कियेहैं, अथवा धीरे नाम सहजे२ विषयहिंसा आदिमें मनको प्रवृत्त कराकर मनको निठुर कियेहैं, अथवा रे मनुष्यो! अनिरुद्ध पृथिवी आदि में विचरता हुआ मन रूप पास में रहने वाला ठगने धीको निठुर किया है, और पूर्व कहे जो कामादि तथा मन गुरुआ आदि मन बुद्धिको निठुर करके सब जीवोंको ठगते हैं, हेमनुष्यो उन्हे त्यागो मनको वश में करो जिससे तेरा कल्याण होवे, क्योंकि ये कामादि ठगोंने सब 'सयाना' नाम सब लौकिक चतुराई आदि सहितों को भी ठगेहैं और ठगने हैं 'सो ठग' नाम उन कामादि ठगों को और उनके कारण अज्ञान वासना आदिकोंको जिन्होंने चीन्हा वे लोग उन्हें ठग चीन्हकर ज्ञान विवेकादि रूप और सत्यात्म वस्तु रूप अपना ठौर पहिचान लिया, और अज्ञानादि रहित होकर वे लोग मुक्त हो गये, इसलिये तुम सब भी ठगोंको चीन्हकर ठौर पहिचानो जिससे तुम्हाराकल्याण होवे॥ अथवा हे मनुष्यो! ठठ्ठा नाम संसार दुःखसे शून्य जहां संसारादि कुछ नहींहैं ऐसा महेश रूप ठौर दूरहैं, और मन रूप ठग पासमें है, जो मन धोरे नाम सहजेहीं जीवोंको सदाके लिये निठुर किया है, और जो मन रूप ठग सब सयानों को भी ठगता है, सो ठग नाम उस ठगको चीन्हकर उस दूर परा हुआ ठौर को पहिचान करो॥ अथवा ठठ्ठा नाम महेशों का महेश शून्य रूप आकाशो से शून्य ब्रह्मात्मा रूप ठौर दूर रहै मन रूप ठग नियराहै इत्यादि अर्थ है॥ लिखा है कि (सन्नप्यसद्यो जगति यो देहस्थोऽपिदूरगः।) जो संसार में होते भी असत् के सदृश है और देहमें होते भी दूर के सदृश है॥

चौंतीसो।

डड्डा डर उपजे डर होई। डरहीं में डर राखु समोई॥
जो डर डरै डरै फिरि आवै। डरहीं में फिरि डरहिं समावै॥ १४॥

टीका—[डकारःशङ्करेत्रासे ध्वनौ भीमेनिरूच्यते] शिव, डर, ध्वनि, भयानक, अर्थका वाचक ड शब्द है॥ और साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! जिनको ठौर दूर होता है, और ठगनियरा होता है, उन मनुष्यों कोही गर्भादि में तथा इसलोकादिमें मरने आदि कालों में 'डड्डा' नाम भयानक वस्तु जन्तु यम यमदूतदेवभूतपिशाचादि दिखपड़ते हैं और उन भयानक वस्तु आदिकों से उन पुरुषोंको डर उपजाता है, सोभी एकवार नहीं किन्तु एक डर उपजनेके बाद दूसरा डर होता है। उसके बाद तीसरा होता है इत्यादि, अथवा डड्डा नाम संसार रूप त्रास तथा ध्वनिसे अर्थात् भयके हेतु होने से त्रास रूप संसार और शब्द से जिसको डर उपजता है उसीको डरस्वरूपस्थूल शरीर होता है। इसलियेहे सज्जनो! यावत् डरको अविद्या संसार रूप डरमें ही समोई,

नाम लीन करके रखदो, अर्थात् सब डर और डरके हेतुओं को अविद्या माया आदि मात्र मिथ्या जानो उन डरों को अपने स्वरूपमें वा सत्य नहीं समझो, और सब भय से रहित ब्रह्मात्मा में अभय होकर स्थिर होवो, क्योंकि जो पुरुष डरसे नाम डरके हेतु तथा डरों से मनके वशमें होकर डरता है, और डरसे वदहोसहोकर आत्म वस्तुमें स्थिर नहीं होने पाता है, सो पुरुष वारम्बार डरहीमें फिर २ कर आता है; अर्थात् जो लोकचिन्ता लोकमर्यादा आदिमे आसक्त रहता है सो वारम्बार संसारमें गर्भादिमें प्राप्त होता है। और इस संसार स्वरूप डर हमें फिर इस को अन्य मनुष्यादि से भयरूप डर समाता है, नाम प्राप्तहोताहै अथवा डररूप संसार में यह जीव डरही रूपहोकर समाता है नाम डर स्वरूप स्थूल सूक्ष्म में अभिमान करके संसार में प्राप्त होता है, और शरीरमें अभिमान करनेसे मरणका भयभी इसमें समाताहै, इसलिये हे मनुष्यो! डरको डरमें समोई के राखदो और निर्भय वस्तुमें स्थिर होवो जिससे तेरा कल्याण होवे॥ अथवा हे मनुष्यो! ठौर की प्राप्ति से रहित मन के वशवर्ती अज्ञानी जीवों के लिये 'डड्डा, नाम त्रासरूप संहारकर्ता शंकररूप ईश्वर स्वरूप डड्डासे, यह डर रूप संसार उपजताहै, जिससे अज्ञानी को डरहोताहै, परन्तु अब तुम संसार रूप डरको ईश्वर रूप डरमें समोय कर रखदो, क्योंकि जो पुरुष इस संसारको ईश्वरमें लीन नहीं करनेसे भूत भौतिक देव मनुष्यादि रूप डर, नाम संसार से डरता है, सो फिर डरही में आता है, और राग द्वेषादि युक्तहोने से दूसरों के लिये डरही स्वरूप होकर फिर इस संसार रूप डरही में समाता है नाम प्रवेश करता है, इसलिये तुम ईश्वरमें सबको लीन करके निर्भय स्वरूप होजावो॥ उपजे के स्थानमें कीन्हे पाठ भेद है, तब अर्थ है कि, हे मनुष्यो! डड्डा नाम ध्वनि स्वरूप वाचारम्भण मात्र रूप डर तुम प्रथम किया है, जिससे तुझे डर होता है, अब इस डरको डरही में रखदो, अथवा जो अब तुझे डर होता है सोई डर तुमको डरहीमें समायकर रखता है, क्योंकि जो कल्पित डरों से डरता है सो फिर डरहीमें आता है इत्यादि॥ अथवा डड्डा नाम त्रासों के त्रास भयानकों के भयानक शंकरों के शंकर रूप वस्तु से यह संसार रूप डर ठौर जानने बिना उपजा है, अथवा उस डड्डा ने इस संसार डरको मायासे कीन्हे नाम कियाहै इत्यादि अर्थ हैं॥ यहां असङ्ग दशामें सर्वथा भय त्याग का उपदेश में तात्पर्य है, और प्रथम भूमिके आदि काल में भय रहनाहीं ठीक है, जैसे विवेक विचार सत्सङ्गादि से सत्य धर्म मार्ग में प्रवृत्ति होती है वैसे भय से भी होती है। अवस्था विशेष में भय विशेष अत्यन्त उपयोगी है।सो लोकानुभव सिद्ध है, और लिखा भी है*मनोऽनुद्वेगकारीणि मृदुकर्माणि सेवते। पापाद् विभेति सततं नच भोगमपेक्षते * प्रथम भूमिका वाला पुरुष सदा मनमें अनुद्वेग कारक मृदु कर्मका सेवन करता है, और पापसे सदा डरता है भोग नहीं चाहता है (डर पारस डर परमगुरु डर सारन केसार। डरतरहे सो ऊवरे गाफिल खाया मार) और सर्वथा मन जिसके वश में हो गया होवे उन पूर्णविवेकी असङ्ग पुरुषों को सर्वथा भय नहीं रहता है, लिखा है कि [अभयं सत्त्वसंशुद्धिः

इत्यादि॥ (नाहंकर्ता न भोक्ता च न वाध्यो नच वाधकः। इत्यसञ्जनमर्थेषु सामान्यासङ्गनामकम्॥ नाहंकर्तेश्वरःकर्ता कर्म वा प्राक्कृतं मम। कृत्वादूरतरे नूनमिति शब्दार्थभावनम्॥यन्मौनमासनं शान्तंतच्छ्रेष्ठासङ्ग उच्यते) अभय अन्तःकरणा की शुद्धि आदि दैवी सम्पत्ति के चीन्ह हैं सो गीता में प्रसिद्ध हैं॥ और न मैं कर्ता हूँ न भोक्ता हूँ न वाध्य हुं न बाधक हूँ ऐसा निश्चय से जो अर्थ में नहीं आसक्त होना है उसको सामान्य असङ्ग होना कहते हैं॥ और मैं कर्ता नहीं हू किन्तु ईश्वर कर्ता है वा मेरे पूर्व जन्म के कर्म कर्ता हैं। इस प्रकार के शब्दार्थ भावनाको भी त्यागकर जो मौन स्थिति है उस शान्त स्थिति को श्रेष्ठअसंग कहते हैं, यह योगवासिष्ठ में स्पष्ट है॥ और लिखा है,कि* भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः॥ सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्चसमाहितः। सर्वंह्यात्मनिसंपश्यन्नाधर्मेकुरुतेमनः॥ शोकस्थानं सहस्राणि भयस्थानं शतानिच दिवसेदिवसेमूढमाविशन्ति न पण्डितम्) इस परमेश्वर के भयसेही वायु सबको पवित्र करता है सूर्य उगता है॥ सब ही सत असत वस्तु को समाहित होकर आत्मा में देखना चाहिये, क्योंकि सबको आत्मा में देखता हुआ पुरुष पाप में मनको नहीं लगाता है॥ इसीसे मूढ को तो हजारों शोक के स्थान और सैकड़ों भय के स्थान प्रति दिन प्राप्त होते हैं और पण्डित को एक भी नहीं प्राप्त होते हैं॥

चौंतीसी।

ढढ्ढा ढूंढ़त हो कत आना। हींढत ढूंढ़त जात पराना॥
कोटि सुमेरु ढूंढ़ि फिरि आवै। जो गढ़ गढा गढ़हिं सो पावै॥ १५॥

टीका—[ढकारःकीर्तिता ढक्का निर्गुणे निर्धने मतः] वाजा विशेष, निर्गुण वस्तु, धनहीन का वाचक ढ शब्द है, साहेव कहते हैं कि, हेमनुष्यो! पूर्व वर्णित यावत् डर से रहित होने के लिये 'आना, नाम अपने स्वरूप से भिन्न 'ढढ्ढा' नाम निर्गुण परमात्मा को 'कत' नाम क्यों वा कहां ढूंढ़ते हो। अन्य निर्गुण को लोक ग्रन्थादि में हींढते ढूंढते तुम सत्य निर्गुण ब्रह्म से 'पराना' नाम दूर भागे जाते हो, यद्वा उसे हींढ़ते ढूंढते तेरा प्राण व्यर्थही जाता है, इसलिये अन्य को त्यागकर गुण त्रयके साक्षी रूप अपने स्वरूपकोही विचारादि से शरीर के अन्दर जानो प्राप्त करो, शरीर ही में निर्गुण ब्रह्मात्मा को प्राप्त कर सकते हो अन्यत्र नहीं पा सकते हो, क्योंकि जो कोई इस शरीर रूप गढ़को सत्तामात्र से गढ़ने वाला तथा रक्षा आदि करने वाला परमात्मा रूप ओंकारको कोटि सुमेरु परसे भी खोजकर फिर आवे, तो उसको उन सुमेरुओं पर वह निर्गुण वस्तु नहीं मिल सकता है, किन्तु फिर भी सो पुरुष उस गढ़ के गढ़वैया को गढ़हीं में पाता है इसलिये तुम भी उस निर्गुण आत्मा को ही जानो अन्य को अन्यत्र खोजना त्यागो, जिससे भय की

सर्वथा निवृत्ति हो जावे, यद्वा जो अन्य को ढूंढता है सो कोटि सुमेरुओं पर ढूंढकर भी फिर संसार में आता है। शरीर रूप गढ को गढता है, और पाता है। यद्वा तुम हींढ़ते ढूंढ़ते भागे फिरते हौ, परंतु जब कोटि सुमेरु पर से भी ढूंढ़कर फिर आवोगे, तौ भी जो तुमने अपने गढ़ को गढ़ा है अविद्यादि से सिद्ध किया है, सो तुम अपने निर्गुण रूप को गढही में पावोगे, इसलिये शरीर ही में उसे समझो जिससे कल्याण होवे, जिसमें डर को समाकर रखने को कहा गया है उस ईश्वर को भी अपने शरीर में ही जानो यह भावहै॥ जो गढ़ गढ़ा गढ़हिं सो पावै, के, जेहि ढूंढा सो कतहुँ न पावै, यह पाठ भेद है, तब अर्थ है कि, जिसको तुम अपने से भिन्न मानकर खोजते हौ उसको चाहे कोटि सुमेरु पर भी खोजकर फिर आवोगे तौ भी तुम जिस निर्गुण को ढूंढ़ते हौ उसको बाहर कतहुँ नहीं पा सकते हौ, और जिन्होंने ढूंढ़ा वे लोग भी न बाहर पाये न पाते हैं। क्योंकि तेरे स्वरूप से भिन्न एक देशी वा सर्व देशी कोई वस्तु निर्गुण है नहीं किन्तु दृश्य होने से घट वा स्वप्न के पदार्थ सदृश हैं, इसलिये दूसरे निर्गुण का खोजको अवश्य त्यागो जिससे भयादि की निवृत्ति होवे॥ अथवा हे 'ढढ्ढा!' नाम निर्गुणों के निर्गुण स्वरूपजीवो! आन वस्तुओं को क्यों खोजते हौ, जिन्हें हींढते आदि में ही तेरा प्राण जाता है इत्यादि, यद्वा ध्वनियों के ध्वनि रूप अनात्म वस्तुको क्यों खोजते हो इत्यादि अर्थ है॥

चौतीसी

णण्णा दुई बसाये गांऊ। रेणणा टूटे तोरि नाऊं।
मूये एक जाय तजि घना। मुये इत्यादि कहौं कत गना॥१६॥

टीका—[णकारः सूकरे ज्ञाने निश्चये निर्णयेऽपिच] सूकर, ज्ञान, निश्चय, निर्णय, अर्थका वाचक 'ण, शब्द है। साहेब कहते हैं कि 'णण्णा, नाम ज्ञान स्वरूप जीवोंने निर्गुणवस्तु को ढूंढ़ने के लिये 'दुईगांऊं, नाम स्वर्ग मर्त्यलोक रूप दोनों ग्राम बसाये हैं, और अपने नाम सुखादि के लिये अनेकों वस्तुओं का संग्रह किये हैं तथा करते हैं, तहां साहेब उपदेश करते हैं कि 'रेणणा,! नाम रे ज्ञान स्वरूप जीवो! 'टूटेतेरिनाऊं' जिस अन्य वस्तुकी प्राप्तिसे तुम नाम यश का सम्पादन करते हौ, उस वस्तु के नाश से तेरा नाम भी टूट जावेगा नाम नष्ट हो जावेगा, जो तुम दोनों ग्रामों में अभिमान करते हौ सो तेरे अभिमान भी बारम्बार टूटते हैं, क्योंकि 'मूये' नाम मरने पर तुम 'एक, नाम अकेलही 'घना' नाम बहुत वस्तुओं को 'तजि' नाम त्याग कर 'जाय' नाम जातेहौ, और तुम जो 'मुये इत्यादि' नाम मरे जन्मे आदि हौ, सो 'कित, नाम कहांतक गिनकर मैं कहौं अर्थात् अपने नामादिके लिये जिस अनात्म वस्तुको तुम निर्गुण सुखद सत्यादि मान कर भी स्वर्ग मर्त्य लोकमें प्राप्त करते हौ, मरने पीछे उसे भी त्यागकर जातेहौ, और अन्य वस्तुकोभी त्याग कर जातेहौ, तब तेरे नाम अभिमानादि सब नष्ट हो जाते हैं उसकी वासनाके बलसे फिर जन्मलेकर

अभिमानादि करतेहो इसलिये दुईगाम वसाना जन्मादि दुःखके हेतुहै इसको त्यागो और अन्यकोढूंढना त्यागो जिससे कल्याण होवे ॥ टूटे के स्थान मे ढूँढ़े पाठ भेद है तब अर्थहैकि रे अज्ञानी जीव ! तुमने णण्णा नाम अपनेही निश्चय संकल्पसे दुई गाम वसायेहो। और उन गामों में निर्गुण सुखद ज्ञान स्वरूप वस्तुको ढूँढतेहो, परन्तु, रेण्णा नाम ज्ञान स्वरूप रे जीव ! वह निर्गुण आदि तुम्हारेही नाम हैं, अर्थात् तेरी चित्ति शक्ति निर्गुणही है, और उसी एक अविनाशी बस्तुको तजकर नाम उसकेविना उससे अन्य 'घना' नाम अनन्तो बस्तु मूये नाम नष्ट हुये और 'जाय' नाम उत्पन्न होतेहैं, अथवाउसी एकको तजकर घना नाम वहुत मनुष्य मूये और उसे जानने विना मरकर फिर जाय नाम उत्पन्न हुये, अथवा प्रलयादि कालमें घना नाम अनन्तो वस्तु मूये पीछे अपने अनन्त रूपको त्याग कर एकवस्तु में जाकर प्राप्त होते हैं, और जो मूये आदि अनन्त वस्तु हैं उन्हें गिनकर कहाँतक मैं कहसकता हूँ, इसलिये हे मनुष्यो ! सबके आश्रय एक आत्मा कोही जानो अन्यको ढूंढ़ना त्यागदो ॥ दुई के दूरि। घना के धना। पाठभेद भी किसी ग्रन्थमें हैं। अर्थ है कि णण्णा, नाम निश्चय करके जीव सब स्वर्गादि दूर देशमें गाम वसाये हैं। तहां साहेब कहते हैं कि रे णणा, नाम रे निर्णय ज्ञान स्वरूप जीव, दूर गाम वसाने से तेरी निर्णय काविषय सत्य व्यक्ति के नाम टूटजाते हैं, नाम सत्य स्वरूपकी प्राप्ति के नाम चर्चाभी नहीं रहजाता है, किन्तु मूये पीछे एक शरीरको तजकर घना नाम अनेको शरीरों में प्राप्त होतेहो॥ धना पाठ पक्षमें धनको त्याग कर उस दूर देशमें ढूंढ़ते२ प्राप्त होते हो इत्यादि अर्थ है ॥ अथवा हे णण्णा नाम ज्ञानों के ज्ञान निश्चयों के निश्चय निर्णयों के निर्णय स्वरूप जीवो! तुमहीं दुई वा दूरि गाम भी वसायेहो, और रेणणा जब तेरी नाऊँ नाम संज्ञा अभिमिति आदि सब टूट जाते हैं, तब मूये पीछे घना रूपको त्यागकर तुम एक में जायकर मिलते विदेह मुक्त होते हो। और मूयं आदि कितने मुक्त हुये वा हैं सो कहां तक गिने जा सकते हैं॥ इत्यादि अर्थ हैं ॥

चौंतीसी।

तत्ता अति त्रियो नहीं जाई। तन त्रिभुवन में राखु छपाई।

जो तन त्रिभुवन माहं छपावै। तत्त्वहिं मिलै तत्त्व सो पावै॥ १७॥

[तकारः कीर्तितश्चौरे क्रोड़पुच्छे प्रकीर्तितः॥ तकारो ब्रह्मणि प्रोक्तस्तकारो जीव उच्यते] चोर, शूकरके पुछ, ब्रह्म, तथा जीव रूप अर्थके वाचक त शब्द है। साहेब उपदेश देते हैं कि हे दूरि वा दुई गाम वसाने वाले जीवो ! अति तत्ता, नाम विवेक विचारादिके तथा मोक्ष शान्ति सुखके अत्यन्त चोर, 'त्रियो' नाम तिय स्त्री के वशमें नहीं जाकर, अथवा विवेकादि के चोर रूप जो 'त्रियो' नाम त्रिगुण पदार्थ, अथवा तीन शरीर, अथवा स्त्री पुत्र धन, अथवा लोकवासना देहवासना शास्त्रवासना, अथवा तीन लोक इनके वशमें नहीं जा कर इनकी इच्छा

इन विषयक आसक्ति नहीं 'करके, सुखस्वरूप चिदात्मारूप अपने तनको नाम स्वरूपको तीन भुवन नाम तिनलोकमें इन चोरों से छीपा कर राखो अर्थात् चाहे तुम तीनों लोक में जहां जावो सर्वत्र ये चोर मिलते हैं, इसलिये सर्वत्र अपने स्वरूपको विवेक से भिन्न करके ज्ञानसे तथा वैराग्यसे सुरक्षित रखो, वा स्थूल सूक्ष्म शरीर रूप तनको तीनों भुवनमें छपाकर रखो स्त्री वा त्रिगुण वस्तु की वासना आदि के वशमें नहीं होने दो, अथवा अत्यन्त चोर रूप स्त्री आदि के वशमें नहीं आकर, अपने तीनों तन नाम शरीरोंको, माया भूत भौतिक वस्तु रूप जो त्रिभुवन हैं, उनमें छीपाकर रखदो; अर्थात् त्रिभुघन रूप त्रिभुवन के कारण मायादि रूप अपने शरीरों को समझो, और उनहीं मेंलय चिन्तन करो इन शरीरो को अपना स्वरूप नहीं समझो, और हे मनुष्यो! समझो कि जो कोई पुरुष पूर्वकही रीति से तनको त्रिभुवन में छीपाता है, वह पुरुषतत्त्ववस्तु से मिलता है, और उस तत्त्व से मिलकर नाम उसे जानकर अपरोक्ष आत्म स्वरूप से फिर उस तत्त्वको वह पाता है नाम अपरोक्ष अनुभव करता है, अर्थात् परोक्षज्ञान पूर्वक अपरोक्ष ज्ञान से युक्त होता है, इसलिये तुमभी तनको त्रिभुवन में छपाकर तत्त्व से मिलो इत्यादि ॥ अथवा साहेब कहते हैं कि 'तत्ता' नाम पूर्वकहे हुई गाम को वसाने वाले जो जीव सो अतित्रियो, नाम तीन गुण तीन शरीर तीन अवस्था तीन लोकादि को अति क्रमण करने वाला, उससे पर तुर्यस्वरूप जो चेतनात्मा उसमें नहीं जाते हैं, वह स्वरूप उन को समझमें नहीं आता है, इससे वे लोग तीन भुवन में हीं अपने तनको छीपाकर राखते हैं, अर्थात् पांच भूत मय त्रिभुवनमें मृत्यु से वांचने के लिये अनेको उपाय से अपने शरीर का छीपाने हैं, आपत्तियों से इस की रक्षा आदि करते हैं इसी में आसक्त रहते हैं, परन्तु कितनाहुँ छीपाने पर शरीर मृत्यु से वांचता नहीं है। मृत्यु अवश्यही प्राप्त होती है, तब जो पुरुष तनको त्रिभुवनमें छपाते हैं सो फिर पांच भौतिक शरीर रूप तत्त्वमेही मिलते हैं और पाँच तत्त्वरूपही गृह वित्तादि पाते हैं, मुक्त नहीं होते हैं ॥ अथवा जो जीव अति त्रियो नाम तीन गुणादि से पर जो तत्ता, नाम ब्रह्म उसमें नहीं जाते हैं, किन्तु त्रिभुवनमें तन छीपाकर रखते हैं इत्यादि अर्थहै ॥ अथवा हे दूरि गाम वसाने वाले मनुष्यो! वे गाम तथा सब विषय 'तत्ता' नाम चोरों के चोर हैं, और सो अविवेकी से त्रियो नाम तरे भी नहीं जाते हैं इस लिये उनसे तुम अपने तनको त्रिभुवन में छपाये रखो इत्यादि अर्थ हैं ॥

चौतीसी।

थथ्था अथाह थाहि नहिं जाई। ईथिर ऊथिर नाहिं रहाई ॥
थोरे थोरे थिर हो भाई। बिन थम्भे जस मन्दिर थँ भाई ॥ १८ ॥

टीका—(शिलोच्चये थकारः स्यात्थकारो नयरक्षणे ॥ थश्छेदने] पत्थर के समुदाय, नीतिकी रक्षा, और छेदन अर्थ के वाचक थ शब्द है। फिर भी साहेब उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो!

[माटिक कोट पषाणक ताला [इस रमयणी में वर्णित रीति से ' थथ्था ' नाम अन्तःकरण मन रूप शिलोच्चय पर्वत अथाह है, नाम दुरवगम दुःख से वश में करने योग्य है, इसी से सब मनुष्यों से यह नहीं थाहा जाता है, क्योंकि यह मन पर्वत सदृश होते भी, 'ई थिर नाहिं रहाई, नाम इस लोक शरीरादि में नहीं स्थिर रहता है, और ' ऊथिर नाहिं रहाई ' नाम परलोक परशरीरादि में भी नहीं स्थिर रहता है, इससे अत्यन्त चञ्चल है, इसी से अथाह दुरवगाह है, अथवा जड़ बिषय में फंसा हुआ पत्थर रूप मन अथाह है, नाम अगम्य हो रहा है, परंतु जिन लोक परलोक के विषयों में फँसकर यह मन अगम्य हो रहा है, सो लोक परलोक स्थिर नहीं रहते हैं न लोक परलोक के विषय ही स्थिर रहते हैं, किन्तु सब क्षण भङ्गुर हैं, इससे दुःख रूप हैं इसलिये हे भाई! नाम हे मित्रो! हे मनुष्यो! 'थोरे २' नाम धिरे२ स्थिर होवो नाम लोक परलोक से हटाकर ज्ञान वैराग्य का अभ्यास से चञ्चल मनको अविनाशी आत्म वस्तु में शनैः शनैः स्थिर करो, जैसे स्तम्भ विनाहीं धीरे २ मन्दर को स्थिर किया जाता है॥ अथवा 'थथ्था नाम कल्याण कारक नीति की रक्षा करनी सदा न्यायमार्ग का अवलम्बन करना अत्यन्त अथाह है धैर्यादिरहित पुरुषों से अगम्य है, अर्थात् आत्म स्वाराज्य के हेतु आत्मविचार विवेक वैराग्य शमदमादि युक्त मार्ग में शीघ्र प्राप्त होकर स्थिर रहना कठिन है, इससे हे भाई ! ये लोकादि और परलोकादि नहीं स्थिर रहते हैं. इस प्रकार विचारादि पूर्वक थोरे २ स्थिर होवो नाम उस नीति में प्रवेश करो, और उसी में स्थिर होवो, अर्थात् प्रत्यक्ष परोक्ष स्वरूप अनात्म वस्तु को मिथ्या जानकर उस न्यायमार्ग में स्थिरहोवो, जिससे उक्त स्वाराज्य की प्राप्ति होवे, और उस न्यायमार्ग में प्रत्यक्ष परोक्ष वस्तु का अवलम्बन बिना कैसे स्थिर होवो कि, जैसे देवमन्दर के मध्य में स्तम्भादि नहीं देते हैं, तौ भी विनास्तम्भ के ही उसे खिलानपर थंभाते हैं नाम स्थिर करते हैं, वैसे उन साधनों से केवल स्वरूप में स्थिर होजावो जिससे तेरा कल्याण होवे॥ अथवा हे मनुष्यो! आत्मतत्त्व स्वरूप ' थथ्था ' नाम शिलोच्चयों का भो शिलोच्चय स्वरूप अचल वस्तु अथाह है उसका किसी देशकालादि से परिच्छेद नहीं होता है, इसीसे मन बुद्धि इन्द्रियादि से भी वह वस्तुतः थाहानहीं जाता है नाम सर्वथा विषय नहीं किया जाता है. और ' ई ' नाम यह अपरोक्ष आत्म वस्तुही स्थिर है नाम अविनाशी अक्रिय अपरिणामी स्वरूप है, और ' ऊ ' नाम आत्म भिन्न वस्तु कोई भी, स्थिर नाहीं रहाई, नाम स्थिर नहीं रहते हैं. इसलिये हे मनुष्यो! धीरे २ उस स्थिर वस्तु में ही स्थिर होवो, क्योंकि उसके बिना अन्यत्र स्थिर होने की आशा कैसी असम्भव है कि, जैसे बिना स्तम्भदिवाल आदि के ही मन्दर नाम गृहथंभजावे ऐसी आशा की जावे। अर्थात् जैसे बिना स्तम्भादि के गृह की स्थिति नहीं होती वैसेही सत्यात्मा की प्राप्ति बिना जीवों की स्थिरता नहीं होती है वारम्बार जन्मादि होते हैं इसलिये साधनों का अनुष्ठान करके धीरे २ आत्म वस्तु में अवश्य स्थिर होवे॥ लिखा है कि [**असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ १ ॥ येषुयेषुप्रदेशेषुमनोमज्जति**

थालवत् ॥ तेभ्यस्तेभ्यःसमाहृत्यनाद्धिनत्त्वेनियोजयेत् ॥ २॥] हे महावाहो ! अर्जुन इस में संशय नहीं कि मन दुर्निग्रह और चञ्चल है तौ भी हे कौन्तेय ! वह मन अभ्यास और वैराग्य से निगृहीत हो जाता है ॥ १ ॥ इसलिये बालक सदृश मन जिस २ विषय में आसक्त होवे वहां से हटाकर आत्म तत्त्व में उसको लगाना चाहिये ॥ २ ॥

चौतीसी।

ददृदा देखहु विनशनहारा । जस देखहु तस करहु विचारा ॥
दशहुं द्वार तारी लावै । तब दयाल के दर्शन पावै ॥ १९ ॥

टीका—[दकारोऽभ्रे कलत्रे च छेदे दाने च दातरि ॥ दो धारणे शोभने मतः] मेघ, स्त्री, छेदन, दाता, धारण, सोभन अर्थ के वाचक द शब्द है । और भी मनका निरोधादि के लिये साहेब उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! लोक परलोक को तथा तहां के विषय सुखादिकों को 'ददृदा ' नाम मेघ के सदृश ' बिनशनहारा ' नाम शीघ्र नश्वर तथा दृष्ट नष्ट स्वभाव वाला 'देखहु' नाम प्रत्यक्ष देखो वा जानो, और नेत्र शास्त्रादि से [जस देखहु] नाम जैसा देखो जानो ' तस करहु विचारा, भूत भावी परोक्षादि सभी अनात्म वस्तुओं को वैसाही विचारो, और विचार कर भूत भावी व्यवहितादि को भी विनशनहार मिथ्या जानो, और इन्हें विनशनहार जानकर इनसे इन्द्रियों का तथा मनका निरोध करो इन विषयक आसक्ति आदिको त्यागो तब तुम आत्म तत्त्व में स्थिर होवोगे और तबही तुझे आत्म तत्त्व की प्राप्ति होवेगी, राग द्वेषादि रहित साक्षी स्वरूप से स्थिति होवेगी, क्योंकि जो कोई जब दशो द्वार में तारी लाता है नाम सब इन्द्रियों को कुमार्ग से तथा विषयों से निरोध करता है. और कुमार्गादि से इन्हें रोककर सब द्वारोंपर आतम वस्तुकाही चिन्तन समाधि करता है, उसीके प्रकाशादिको सर्वत्र देखता है, तब वह पुरुष ' ' दयाल का ' नाम राग द्वेषादि रहित होते भी सबके प्रकाशक साक्षी स्वरूप ब्रह्मात्माका दर्शन पाता है, अर्थात् दशो द्वार में तारी लगानेहो से ब्रह्मात्माका अपरोक्ष अनुभव होता है. इसलिये हे मनुष्यो ! तुम भी संसार से तरने का हेतु रूप तारी को दशो द्वारों में लगावो, अथवा जैसे किवाँरा वन्द करके ताली लगाई जाती है. वैसे तुम भी इन द्वारों का निरोध रूप ताली लगावो, जिससे कामादि रूप चोर अन्दर नहीं घूसने पावे. और तुम आत्म वस्तु में स्थिर हो जावो इत्यादि ॥ अथवा हे मनुष्यो ! ददृदा ! नाम स्त्री और दानादि कर्म जन्य फलादि. और सब शोभन वस्तु आदि रूप इस लोकके पदार्थों को विनशनहार देखो, और जैसा इस लोकके पदार्थों को देखो वैसाही पार लौकिक परोक्ष वस्तु स्त्री आदिको भी विचारो और जानो, और उनसे भी मनका निरोधकरो जिससे परात्म तत्त्वकी प्राप्ति होवे, जो कोई दशो द्वारों में जब तारी लाता है तबही दयाल परमात्मा का दर्शन भी पाता है, इसलिये दशो द्वारोंमें तारी लगाकर तुम भी मनका निरोधकरो, जिससे दयाल का दर्शन होवे इत्यादि ॥

अथवा हे मनुष्यो ! ददा नाम शोभनों से शोभन वस्तु को बिनशनहार देखो, यद्वा मेघों के मेघ स्वप्नादि सदृश विनशनहार देखो इत्यादि अर्थ है ॥ अथवा 'हे बिनशनहारा' नाम बिनाशी शरीर में अभिमानी मनुष्यो! तुम धारणों के धारण शोभनों के शोभन दाताओं के दाता स्वरूप ब्रह्मात्मको मनके निरोधादि पूर्वक अपने हृदयादि में देखो. तथा वृष्टि करने वाले मेघोंके मेघ रूप और मोहित करने वाली स्त्रियोंकी भी स्त्री रूप मोहन कर्ता वा उसके आत्मा रूप देखो, छेदन रूप मृत्यु आदिके भी छेदनादि रूप देखो और जस देखो तस विचार करो फिर दशो द्वारों में तारी लावो. क्योंकि जो पूर्वरीति से जब दशो द्वार में तारी लाता है सो तब दयालके दर्शन पाता है इत्यादि अर्थ है लिखा है कि [श्वभावामर्त्यस्ययदन्त कैतत्सर्वेन्द्रियाणांजरयन्तितेजः१अनित्यंसर्वमेवेदं तापत्रितयदूषितम्। असारंनिन्दितं हेयमितिनिश्चित्य शाम्यति॥२॥ स्वप्नेन्द्रजालवत् पश्यदिनानि त्रीणि पञ्च वा। मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादिसम्पदः ॥३॥ गतसारेऽत्रसंसारेसुखभ्रान्तिः शरीरिणाम्।लालापानमिवाङ्गुष्ठेबालानांस्तन्याविभ्रमः॥४॥ हे अन्तक स्त्री पुत्रादि सबही भाव पदार्थ श्वः नाम कल्ह रहेगें कि नहीं ऐसे सन्देह के विषय हैं। और मनुष्यकी सब इन्द्रियों के तेज को नष्ट कर देते हैं स्त्री वीर्य रूप तेजको नष्ट करती है और अन्यविषय भी शोक मोहादि से बुद्धि आदि के पारमार्थिक बलको नष्ट करते हैं ॥ १ ॥ यह सब वस्तु अनित्य और तापत्रय से दूषित हैं तथा असार निन्दित हेय हैं ऐसा निश्चय करके पुरुषशान्त उपरत होता है ॥२॥ मित्र क्षेत्र धन गृह स्त्री दाय आदि रूप सम्पत्तियों को तीन वा पांच दिन स्थायी और स्वप्न तथा इन्द्र जालके सदृश देखो ॥ ३ ॥ सार रहित इस संसारमें शरीरीको सुख भ्रान्ति इस प्रकार है जैसे बालकोंको अपने लार पीने पर अङ्गूठेमें दूधकी भ्रान्ति होती है ॥ ४ ॥

चौंतीसी।

धधा अर्द्धमांह अंधियारी। अर्द्ध ऊर्द्ध लेहु विचारी।
अर्द्ध छाड़ि ऊर्द्ध मन लावै। आपा मेटि के प्रेम बढ़ावै ॥
धोथे वै नन्ना महं जाई । राम के गदह होय खर खाई॥२०॥

टीका—[धं धने सधने धःस्या द्धिधातरि मनावपि ॥ नेतानश्चसमाख्यातस्तरणौ नः प्रकीर्तितः। नकारः सौगते बुद्धौ स्तुतौ वृक्षेप्रकीर्तितः। न शब्दः स्वागते बन्धौ चन्द्रे सूर्येचकीर्तितः] धन, धनी, ब्रह्मा, मनु, इन अर्थों के वाचक ध शब्द है। नेता, नौका, बुद्ध, बुद्धि, स्तुति, वृक्ष, स्वागत, बन्धु, चन्द्र, सूर्य, अर्थके वाचक, न, शब्द है ॥ धनआदि के गर्वोंको त्यागने के लिये साहेब उपदेश करते हैं कि, हे मनुष्यो ! 'धधा' नाम इसलोकमें जो धन वा धनीपन के गर्व अभिमानादि होते हैं सो 'अर्धमाहँ' नाम इस मध्यलोकमें 'अँधियारी, नाम अन्धकार रूप हैं, अर्थात् ये गर्वादि विवेक विचार रूप दृष्टि के प्रतिबन्धक हैं। इसलिये तुम अर्द्ध ऊर्द्ध

विचारलो, नाम समझो कि इसलोक के धनादि वा स्वर्गके धनादि कैसे हैं, यद्वा जै से अर्द्ध नाम अधोगत लोक के धनादि अँधियारी रूपहैं वैसेही ऊर्द्धके भी हैं इस बातको विचारलो नाम समझलो, इससे हे मनुष्यो ! अर्द्ध लोक को और इस लोकके धनादिकों को 'छाड़ि' नाम छोड़कर जो पुरुष ऊर्द्ध नाम स्वर्ग वैकुण्ठादिमें मन लगातेहैं, तथा जो पुरुष इसलोक के गृह धन वन्धु आदि विषयक 'आपा' नाम ममता को मेट कर ऊर्द्ध के स्वतु देवादि विषयक प्रेम स्नेह वढ़ाते हैं सो पुरुष विवेक दृष्टि से स्वयं चौथे नाम तर्य आत्मा चेतन स्वरूप होने भी स्नेहादि युक्त मनके वशमें हो कर वै नन्ना महँ' नाम उस परोक्ष नेताके वशमें निश्चय करक जोई नाम प्राप्त होकर अथवा सूर्य वा चन्द्रलोक में जानकर अथवा स्वर्ग के 'नन्ना' नाम वन्धुओं में जाकर और जैसे धोवीके गदहा धोवी के वशमें रहकर स्वयं चरकर 'खर' नाम तृणखाता है अर्थात् तृण चराई करके अपनापेट भरताहै, और धोवी के भार ढोता है, वैसेही स्वर्गादि में वहां के विषयादि में मन लगाने वाला मनुष्यभी मरने पर राम के, अर्थात् ईश्वर के वा उन लोकों के नेता देवता आदिकों के ,गदहा, केसदृश उन अधिष्ठाता आदिकों के अधीन होकर अपने कर्मों के फल रूप तृणों को, अर्थात् तुच्छ विषय आदि कों को भोगता है, इसलिये हे मनुष्यो ! ऊर्ध्व लोकों में भी मनलगाना वहां के वासियों में भेदादि दृष्टि से प्रेम बढ़ाना त्यागो नहीं तो पराधीन होकर वहांभी तुच्छ सुख और दुःख भोगना होगा फिर महा अनर्थ की प्राप्ति होगी ॥ अथवा जो पुरुष अर्द्ध छोड़कर ऊर्ध्वमें मन लगाता है, और अन्य आपाको मेटकर भी भेदभाव से प्रेम वढ़ाता है, सो पुरुष अपने चौथे स्वरूप में कल्पित जो 'वैनन्ना' नाम वे नेता यमादि हैं उनके वशमें जाता है, और उस कल्पित राम के गदहा होकर ,खर, नाम तृण खाता है,वा उसराम के ,खरखाई, नाम खरखाँह भक्त होता है ॥ अथवा सब संसार से परवस्तु का उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! 'धधा' नाम विधाता ब्रह्मा भी सर्वात्म स्वरूप दयाल परमेश्वर से अर्द्ध मेंही हैं, वहां भी अँधियारी है, अर्थात् ब्रह्मलोक तक अविद्या केही कार्य हैं, इसलिये अर्द्ध ऊर्ध्व वस्तुको विचारलो, अथवा अर्द्ध वस्तुमेंहीं विवेक पूर्वक विचार कर ऊर्ध्वही वस्तुको लो नाम आत्म स्वरूप जानो, यद्वा अर्द्धमें ऊर्ध्व को और ऊर्ध्वमें अर्द्धको जानो; और अन्धकार मय अर्द्ध को त्याग कर ऊर्ध्व मेंहीं मन लगावो, क्योंकि जो कोई अर्द्धको छोड़कर ऊर्ध्व स्वरूप ब्रह्मात्मा में मन लगाता है, और सव आपाको मेटकर उसी विषयक प्रेम बढ़ाता है [वै] नाम निश्चय वह पुरुष चौथे स्वरूप [नन्ना] नाम नेता में जाता है नाम प्राप्त होता है, और जो अज्ञान दशामें देवता आदि रूप रामके गदह सदृश रहता है ऊर्ध्व में मन लगाने आदि से ,खरखाई, नाम खरखाँहीं अग्र गामी मुख्य प्रधान पुरुष होजाता है, यद्वा ऊर्ध्व में मन नहीं लगाने से ईश्वर देवादि के गदह होकर तृण चरता है, इसलिये प्रकाश स्वरूप ऊर्ध्व दयाल वस्तु में मनादि लगावो जिससे कल्याण होजावे ॥ अथवा हे मनुष्यो !,धधधा, नाम धनियों के धनी विधाताओं के विधाता भी जो ब्रह्मात्मा से अधा नीचे वस्तु हैं, सो अँधियारी स्वरूप और अंधियारी में स्थिर हैं, इसलिये तुम अर्द्ध ऊर्ध्व को विचार कर सव से ऊर्ध्व वस्तु को लो धारण करो इत्यादि, जो कोई अधो वस्तुको छोड़कर ऊर्ध्व वस्तु में मन लगाता है, आपाको मेटकर उसमें प्रेम वढ़ाता है, सो पुरुष तुर्य आत्मा स्वरूप 'नन्ना में'

नाम नेताओं के नेता बन्धुओं के बन्धु सूर्यों के सूर्यादि में प्राप्त हो जाता है, और ऊर्ध्व में मनको नहीं लगाने वाले राम के गदह हो कर खरखाते हैं ॥ यद्वा; हे धधधा नाम धनियोंके धनी आदि रूप मनुष्यो ! अधोलोकरूप मनुष्य लोक में तो अँधियारी प्रत्यक्षही है, परन्तु अधो लोक केही हाल ऊर्ध्व लोक स्वर्गादिमें भी विचारलो, जो अर्द्ध छोड़कर ऊर्ध्व में मन लगाते हैं, इस लोकके आपाको मेटकर उस लोक में प्रेम बढ़ाते हैं वे लोग चौथे जन लोकादिमें जाकर और नेताओं के नेता ब्रह्मा विष्णु आदिके वशमें होकर तुच्छ भोग भोगते हैं इत्यादि अर्थ हैं ॥ लिखा है कि—

[न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः ॥१॥ दिन मेकं शशीपूर्णःक्षीणस्तु बहुवासरान् । सुखा-द्दुःखं सुराणामप्यधिकं का कथा नृणाम्॥२॥अनात्माप्रिय इत्येवं यो मुह्यति स पामरः। विनाशित्व मुदाहृत्य मूढं तं बोधये द्बुधः ॥३॥] वित्तादि रूप भोग्य पदार्थ से कोई भी मनुष्य तृप्त करने के शक्य नहीं है ॥ १ ॥ चन्द्रमा एक दिन पूर्ण रहते हैँ और बहुत दिन क्षीण रहते हैं, इसी प्रकार देवताओं को भी सुखसे अधिक दुःखही होता है तो मनुष्यों की कथा हीं क्या है ॥ २ ॥ अनात्मा प्रिय है ऐसा जो मोह करता है सो पामर है विनाशित्व बताकर उस मूढको पण्डित समझावें ॥ ३ ॥

चौंतीसी ।

नन्ना निरखत निशिदिन जाई । निरखत नयन रहा रतनाई।
निमिष एक जो निरखे पावै। ताहि निमिष में नयन छपावै ॥२१॥

टीका—बन्धुविषयक आसक्ति को त्यागने के लिये उसमें दोष दर्शाते हैं कि हे मनुष्यो ! तुझे नन्ना, नाम बन्धुओंकोही निरखते में रातदिन चले जा रहे हैँ, इससे आत्म विचारादि कभी भी नहीं करने पाते हो, और बन्धुओं को निरखने में तेरा नयन रत्न सदृश होरहा है । और वे बन्धु ऐसे हैं कि जो कोई उन्हें एक निमेष मात्र भी देखने पाता है, तो उसके विवेकादि रूप नेत्रको उसी क्षण में छीपा देते हैं इसलिये इनके निरखन को त्यागो ॥ अथवा उपदेश देते हैं कि संसार रूप सागर से तरने के लिये 'नन्ना' नाम नौका को देखो व्यर्थही दिन रात चले जा रहे हैँ, और उस ब्रह्मात्मस्वरूप नौका को देखो कि जिसे निरखतेही तेरे विवेकादि रूप नेत्र रत्न सदृश वा लाल होय रहें । और यदि तुम उसको एक निमिषभी निरखने पावोगे तो उसी निमिष में बाहरके नेत्र को वह छीपा देगा इत्यादि अथवा नेताओं के नेता तरणियों के तरणी चन्द्रों के चन्द्र सूर्यों के सूर्य स्वरूप गुरु और ब्रह्मात्माको जानो जिससे अर्द्ध के अँधियारी मिटजावे इत्यादि अर्थ हैं ॥ विशेष, ङङा, के सदृश जानने योग्य है॥ और अन्य बीजक में यह वचन नहीं है ॥

चौंतीसी ।

पप्पा पाप करै सब कोई । पाप करे कछु धर्म न होई ॥
पप्पा कहै सुनहु रे भाई । हमरे सेवे कछु न पाई ॥ २२ ॥

टीका—[पः कुवेरः समाख्यातः पश्चिमे च प्रकीर्तितः। पवने पः समाख्यातः पः स्यात्पाने च पातरि] कुवेर, पश्चिम, वायु, पिवना, पीने वाला, अर्थ के वाचक प शब्द हैं। साहेब कहते हैं कि 'सब कोई' दुःखद विषय रस के 'पप्पा' नाम पान रूप पाप करते हैं। और विषयों के पान उनमें आसक्ति रूप पाप करने पर कुछ भी श्रेष्ठ धर्म नही होता है नाम कोई भी कल्याण के साधन विषय रस को पान करने वाले लोगों से नही होता है, क्योंकि वह पप्पा मानो प्रत्यक्षही कहता है कि 'रे भाई! सुनो कि 'हमरे सेवे' नाम विषय रस का 'सेवन' पान करने से कोई भी पुरुष कुछ भी नही पाता है; अर्थात् विषय रस का पान से किसी को सदाके लिये अत्यन्त तृप्ति नहीं देखी जाती है, तथा उसमें अत्यन्त आसक्त पुरुषों में शान्ति विवेक विचारादि कुछ भी नही देखे जाते हैं, सोई मनोपप्पा कहता है कि हमारे सेवने से मनुष्य कुछ भी नही पाता है इसलिये हेमनुष्यो! विषयासक्ति को त्यागकर सतधर्म विचारादि परायण होजाओ जिससे तेरा कल्याण होजावे॥ अथवा पप्पा नाम विषय रसको आसक्ति पूर्वक पान करने वाले सब कोई अवश्यही पाप करते हैं नाम अविवेक स्वार्थादिवश परापकारादि करते है, और परापकारादि करने से सुखके हेतुरूप वा कल्याणके हेतु रूप धर्म नाम पुण्य रूप अदृष्ट विशेष उन्हें कुछ नहीं होता है, इससे वे लोग तिर्यग्योनिआदि रूप सुखरहित महा कष्ट दशा में प्राप्त होते हैं और हुये हैं, और तिर्यग्योनि आदि में प्राप्त पप्पा नाम विषयासक्त पापी पुरुष मानो कह रहे हैं, अन्य मनुष्यों को उपदेश कर रहे हैं, कि तुम सब भी विषयासक्त होकर मानो हमारीही सेवा कर रहे हो, मेरे साथ मेरे शरण में प्राप्त होना चाहते हो, परन्तु हमारी सेवा से मनुष्य कुछ भी सुख नही पाते हैं, भाव यहहै कि जो पुरुष विषयासक्तहोकर विचारादि नही करता है, सो मानो अवही से कूकर सूकर योनि के प्राणियों की सेवा कर रहा है। परन्तु उस पुरुष को उन योनि में प्राप्त जीवों के कष्टादि देखकर उनसे उपदेश लेना चाहिये, उनकी दशा देखकर भी धर्म विचारादि परायण होना चाहिये॥ अथवा पप्पा कहता है कि मेरे सेवने से कोई भी कुछ नही पाता है, यह केवल काल्पनिक वर्णन है ऐसाही आगे भी जानना चाहिये॥ अथवा पप्पा नाम कुवेरों के कुवेर परमात्मा परब्रह्म स्वरूप होते भी सब कोई विवेकादि विना पाप करते हैं नाम वन्धुओं के लिये तथा तुच्छ द्रव्यादि के लिये अन्याय चोरी वेइमानी आदि करते हैं, जिस पापको करने से अन्यायादि से उपार्जित द्रव्यादि के दानादि करने पर उन पुरुषों को कुछ भी धर्म नही होता है, और पप्पा नाम कुवेरों के कुवेर वायुओं के वायु पश्चिमो के पश्चिम स्वरूप जो परमात्मा है सो भी कहता है कि रे भाई पाप करने वालो! पाप से निवृत्त होने विना हमारे सेवने से मेरे नामादि लेने से भी कोई भी कुछ नही पाता है, इससे साहेब कहते हैं कि प्रथम सवहिंसा अन्यायादि रूप पापों से रहित होकर आत्म तत्त्वको जानना चाहिये॥ लिखा हैकि [न कदाचन संसारे सावधानमनामना। स्वप्नेऽपि कश्चिद्देशे वा दोषजालैः खिलीकृतः॥१॥ नाऽत्यक्त्वा सुखमाप्नोति नाऽत्यक्त्वा विन्दते परम्। नात्यक्त्वा चाभयः शेते त्यक्त्वा सर्वं सुखी भव॥ २॥ इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च। अहिंसया च भूतानाममृत-

त्वायकल्पते॥ ३ ॥] दोषसमुदायसे युक्त शुभसंस्कार हीन पुरुष इस संसार में वा स्वप्नमें वा किसी देश में भी थोरा भी सावधानता युक्त मन वाला नहीं होता है ॥१॥ विषय कुकर्मादि को त्यागे विना न सुख पाता है न परतत्त्व को प्राप्त करता है न अभय होकर सोता है । इससे विषयासक्ति अन्याय पापादि सबको त्यागकर सुखी होजावो ॥ २ ॥ इन्द्रियों का निरोध राग द्वेषका नाश सब प्राणीकी अहिंसा से मुक्त होने के लिये पुरुष समर्थ होता है इसलिये इन्द्रिय निरोधादि करके मुक्त होजावो ॥ ३ ॥

चौंतीसी।

फफ्फा फल लागा बड़ि दूरी। चाखै सत गुरु देइ न तूरी ॥
फफ्फा कहै सुनहु रे भाई। फलविहीन कहुं थिर न रहाई ॥२३॥

टीका—(कफ वारे फकारःस्यात्तथाऽऽह्वानेप्रकीर्तितः। फूत्कारेऽपिच फः प्रोक्तस्तथा निष्फलभाषणे ॥ अथवा ॥ झंझावाते फकारः स्यात्फःफलेऽपिप्रकीर्तितः फकारेऽपि च फः प्रोक्तस्तथानिष्फलभाषणे) कफ और वार नाम समुदाय वा दिन और पुकारना, फूंकना, निष्फल बोलना, वर्षायुक्तवायु, फल, फ अक्षर अर्थके वाचक फशब्द है। साहेब कहते हैं कि 'फफ्फा' नाम निष्फल मिथ्यादि भाषण तथा मिथ्या भाषण करने वालोंसे, और रामकृष्ण खुदाअल्ला आदि नामोंसे रामादिको केवल पुकारना और उन पुकारने वालोंसे, सतधर्म मोक्षरूप-फल बहुत दूरमें लागते हैं। इससे उन्हें सतधर्मादि की प्राप्ति नहीं होती है, और सद्गुरु नाम ज्ञानी विरक्त परोपकारी महात्मा उन फलोंको स्वयं चाखते हैं, सतधर्म वैराग्यादि से जीवन्मुक्ति सुखका अनुभव करते हैं। परन्तु तो भी पूर्वकहे निष्फल भाषणादि करनेवाले मनुष्योंके प्रति उन फलोंको तोड़कर नहीं देते हैं, अर्थात् उन पुरुषोंके प्रति आत्मवस्तुका उपदेश नहीं देते हैं। अपने बुद्धि आदिमें प्राप्त फलोंको उनके बुद्धि आदिमें प्राप्त नहीं कराते हैं, क्योंकि वे लोग अधिकारी नहीं हैं, यद्वा मिथ्यानिष्फलादि भाषण करने वालों को वह फल तोरकर नाम बलात्कारसे सद्गुरु दे नहीं सकते, क्योंकि गुरु उपदेश देते हैं, सतधर्म सतमार्ग बताते हैं, उन उपदेशादिकों को विचारादिसे समझना अनुष्ठान करना उस मार्गमें चलना आदि शिष्यके अधीन है। इससे उपदेश देनेपर भी उक्त आग्रही पुरुषोंको समझमें नहीं आनेसे गुरु कुछ नहीं कर सकते हैं, फिर वे पुरुष संसार चक्रमें प्राप्त होकर चौरासी लाख योनि आदिमें भ्रमते हैं, इसलिये साहेब कहते हैं कि हेमनुष्यो! 'फफ्फा' नाम निष्फल भाषणादि मानो तुमसे कहरहे हैं कि रेभाई, सुनहु कि सतगुरुसे प्राप्त करने योग्य फलसे 'विहीन' नाम रहित पुरुष कहुँ भी स्थिर नहीं रहता है, और तुमभी फलबिना कहीं स्थिर नहीं रहोगे, सो निष्फल भाषणादिके फलोंको भोगतेहुये पशुआदि योनियोंमें प्राप्त-जीवोंकी दशाओंको देखकर समझो, और निष्फल भाषणादिकों को त्यागो ॥ अथवा पूर्ववर्णितपाप

करनेवालों से 'फफ्फा' नाम फलोंके फलस्वरूप जो फल नाम मोक्ष सो बहुत दूर लगता है, और उस फलको सतगुरु चाखते हैं। परन्तु न तोड़कर देते हैं, न देही सकते हैं। और उस मोक्षफलस्वरूप ब्रह्मात्मा कहता है कि इस स्वरूप विना कोई कहीं स्थिर नहीं रहेगा न रहता है, अर्थात् ज्ञानी महात्मा कहते हैं कि ज्ञान तथा मुक्ति विना स्थिति नहीं मिलती है ॥ फलविहीन कहुँ थिर न रहाई, के, स्वर्ग पतालकि खवरि न पाई, यह पाठभेद है, तव अर्थ है कि मिथ्या भाषणादि रूप पाप करनेवाला पुरुष स्वर्ग पातालके खबर भी नहीं पाता है, इसीसे मिथ्या भाषण करता है, और स्वर्गादि के खवरपा भी नहीं सकता है, क्योंकि उसके अन्तःकरण अत्यन्त मलीन हुये रहते हैं इत्यादि ॥ लिखा है कि (यथादेहोपयुक्तंहि करोत्यारोग्यमौषधम् । तथेन्द्रियजयेऽभ्यस्ते विवेकः फलितो भवेत् ॥१॥ विवेकोस्तिवचस्येव चित्रेऽग्निरिव भास्वरः । यस्यनेनापास्त्यिक्तादुःखायैवाविवेकिना ॥२॥ आशाविवश्यविरसे चित्तेसंतोषवर्जिते । म्लानेवक्त्रमिवादर्शे न ज्ञानंप्रतिबिम्बति ॥ ३ ॥ आचक्ष्वशृणु वा तात नाना शास्त्राण्यनेकशः । तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ॥ ४ ॥ हरोयद्युपदेष्टा ते हरिः कमलजोऽपिवा । तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ॥ ५ ॥ जैसे देहसे सेवन करनेपर औषधि आरोग्य करता है, वैसेही इन्द्रियोंका जयनिरोधके अभ्यास करनेपर विवेकसफल होता है ॥ १ ॥ चत्रके भास्वर अग्निके सदृश जिसके वचनमें ही कहनेके लिये विवेकरहता है उस पुरुषसे दुःखके निमित्तरूप अविवेकीपन नहीं नष्ट किया जा सकता है ॥ २ ॥ आशाकी विवशतासे विरस नाम प्रसन्नता आनन्दरहित तथा सन्तोषरहित चित्तमें ज्ञानका प्रतिविम्ब नहीं पड़ता है जैसे मलिन दर्पणमें मुखके प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता है ॥ ३ ॥ हेतात ! चाहे तुम नाना शास्त्रोंका अनेको वार व्याख्यान करो वा उन्हें सुनो तौभी सव अनात्मवस्तु आदिको भूल विना तुझे स्वस्थता की प्राप्ति नहीं होसकती है ॥ ४ ॥ और शिवजी वा विष्णुभगवान् वा ब्रह्माजी तुझे उपदेश देवे तौ भी स्वयं सबको भूलने आदि विना तेरा कल्याण कभी नहीं होसकता है ॥ ५ ॥ योगवासिष्ठ अष्टावक्र, के यह उपदेश है।

चौतीसी।

बब्बा बर बर करे सब कोई । बर बर किये काज नहिं होई ॥
बब्बा बात कहै अरथाई । फल का मर्म न जानै भाई ॥ २४ ॥

टीका—[बकारो वरुणः प्रोक्तः कलशे बः फलेऽपिच । वक्षस्थले च बः प्रोक्तो गदायां समुदाहृतः] वरुण, कलश, फल, वक्षस्थल, गदा अर्थ के वाचक ब शब्द है। और भी साहेब कहते हैं कि ,बब्बा, नाम अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, रूप फल सम्बन्धी बातों को सब कोई बर२ किया

करते हैं नाम उसकी चर्चा बहुत लोग करते हैं, परन्तु बरबराने से जीवों के काज, नाम प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है, अर्थात् फलों के भेद की उनमें न्यूनता अधिकता आदिकी बात बहुतलोग करते हैं, परन्तु आसक्ति का त्याग सतधर्म विचार वैराग्य दया क्षमा अहिंसा आदिके पालन अनुष्ठानादि नहीं करते हैं, इसलिये श्रेष्ठ अदृष्ट रूप धर्म स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है, और बब्बा, नाम पूर्वकहे फलों की ग्रन्थादि सम्बन्धी बातों को बहुत लोग 'अर्थाई' नाम अर्थ युक्त करके कहते हैं, परन्तु वस्तुतो फलके मर्म को नहीं जानते हैं, अर्थधर्मादि के बास्तविक साधनों को उनके वास्तविक स्वरूप भेदादिको मोक्षकी अपेक्षा अन्य फलों में अफलता अनर्थरूपतातुच्छता आदिको नहीं जानते हैं। और ज्ञान के हेतु रूप अर्थ धर्म कोही वस्तुतो अर्थ धर्म रूप वे लोग नहीं जानते हैं, और मोक्ष रूप दुर्ज्ञेय आत्म वस्तु के और उसका ज्ञान के समीचीन साधनों के मर्म नहीं जानते हैं न जानने के लिये यत्नहीं करते हैं, और यह नहीं समझते हैं कि मोक्ष के लिये मुझे क्या करना चाहिये और मैं क्या कर रहाहूँ मोक्ष क्या है मैं क्या हूँ ॐकार क्या है इत्यादि, और इन बातों को जाने बिना जो बरबर करते हैं उन्हें भी फलकी प्राप्ति नहीं होती है न सतगुरु प्राप्त कराते हैं इत्यादि॥ अथवा बब्बा नाम फलों के फल की बातों को सब कोई बर २ करते हैं। परन्तु उस बात मात्र से मोक्ष नहीं होता है, क्योंकि मोक्ष ज्ञानसे होता है। और ये लोग बब्बा की बातही अर्थाय कर कहते हैं, औरउस सत्य फल के मर्म को हृदय से समझतेही नहीं हैं न समझने के लिये यत्नहिं करने हैं, इसलिये इनसे वह फल दूर है॥ लिखा है कि

[सत्येन देवाः पितरो मानवोरगरक्षसाः। प्रियन्तेसत्यतःसर्वे लोकाश्चसचराचराः ॥ १ ॥ सत्यमाहुःपरंधर्मं सत्यमाहुःपरंपदम्। सत्यमाऽहुःपरंब्रह्म तस्मात्सत्यंसदा वदेत् ॥ २ ॥ स्वर्गमोक्षंतथाचायु रिहलोकेसुखंयशः। ब्रह्मचर्येणसम्पन्नः पुमानाप्नोत्यसंशयम् ॥ ३ ॥ निरोगः कान्तिसम्पन्नः सर्वदुःखविवर्जितः। ब्रह्मचारी भवेल्लोके पाप्मनाचविवर्जितः ॥ ४ ॥ अत्राहारार्थं कर्मकुर्यादनिन्द्यं कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम्। प्राणाः संधार्यास्तत्त्वंजिज्ञासनार्थंतत्त्वंजिज्ञास्यंयेनभूयोनदुःखम् ॥ न्यायागतधनःशान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः। स्वधर्मपालकोनित्यं ब्रह्मभूयायकल्पते ॥६॥ संप्राप्यपरमंज्ञानं नैष्कर्म्यंतत्प्रसादतः ॥ एकाकीनिर्ममःशान्तो ब्रह्मभूयायकल्पते॥ ७ ॥]

सत्यही से देवादि सब चराचर प्रसन्नसुखी होते हैं, और सब लोक प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ सत्यही को परधर्म परपद परब्रह्म कहते हैं; इसलिये सदा सत्यही बोलना चाहिये ॥ २ ॥ और ब्रह्मचर्य युक्त मनुष्यही स्वर्ग मोक्ष आयु तथा इस लोक के सुख यश को प्राप्त करता है, और निरोग काँति युक्त सब दुःख और पाप से रहित इस लोक में भी रहता है, इसमें कोई संशय नहीं है, इसलिये इन्द्रिय दमनादि रूप ब्रह्मचर्य व्रतको धारणकरके परमात्मा रूप ब्रह्म में विचरना चाहिये ॥४॥ इस लोक में आहार के लिये अनिन्दित शुभ कर्म करना चाहिये, और प्राण धारण के लिये आहार करना चाहिये,

और तत्त्व जिज्ञासा विचार के लिये प्राण का धारण करना चाहिये, और ऐसी तत्त्व जिज्ञासा करनी चाहिये कि जिससे फिर दुःख नहीं होजावे ॥ ५ ॥ न्यायोपार्जितधन वाला और ब्रह्मविद्या में तत्पर अपने सतधर्मों के सदा पालक मनुष्य ब्रह्म रूप होने के लिये समर्थ होता है ॥ ६ ॥ उत्कृष्ट ज्ञान और उसके प्रताप से नैष्कर्म्यको प्राप्त करके मनुष्य ब्रह्म स्वरूप मुक्त होने के लिये समर्थ होता है ॥ ७ ॥ शिवआत्म, पुराण योगवासिष्ठ कुर्मके उक्त वचन हैं ॥

चौतीसी।

भभ्भा भरम रहा भरि पूरी। भभरे ते है नियरे दूरी।
भभ्भा कहै सुनहुरे भाई। भभरे आवै भभरे जाई ॥ ६५ ॥

टीका—[नक्षत्रेभंबुधाः प्राहुर्भयने भः प्रकीर्तितः । दीप्तिर्भा स्यात्] नक्षत्र, गृह अर्थ के वाचक भ शब्द है, दीप्ति को भा कहते हैं। और भी साहेब कहते हैं, कि पूर्वोक्त फलों के मर्म को जाने विना 'भभ्भा' नाम संसार रूप भवन में भ्रम भरपूर होरहा है। तथा लौकिक घर और शरीर रूप घर विषयक भ्रम लोक में भरपूर हो रहा है नाम इन में ममता तथा आत्म बुद्धि रूप मिथ्या ज्ञान सबको होरहा है, जिससे लोग इनमें आसक्त हैं वास्तविक फलके मर्म जानने भी नहीं पाते हैं, और 'भभरे ते, नाम भ्रम युक्त हो जानेसे सब पुरुषों के आत्म स्वरूप होने से 'नियरे' नाम अत्यन्त समीप वर्ती जो मोक्ष तथा तत्त्व वस्तु सो दूरी है नाम भ्रम अज्ञान से अत्यन्त दूर सदृश हो रहा है, और ये संसारादि रूप भभ्भा नाम गृह और इन में आसक्त पुरुष कह रहे हैं, अर्थात् समझा रहे हैं कि 'भभरे, नाम भ्रम युक्त होनेही से पुरुष आता है नाम जन्मादि वाला होता है, और भभर ने सेही जाता है नाम मरणादि को प्राप्त होता है, अर्थात् भ्रम से आसक्ति जन्य राग द्वेष मोहादिमेंही जन्म मरणादि होते हैं, सो संसार गृह शरीरादि विषयक विचारादिसे ही जानने योग्य हैं ॥ अथवा भ नाम शरीरादि विषयक, और भा नाम दीप्ति प्रकाश स्वरूप आत्म वस्तु विषयक भ्रम संसार में भरपूर होरहा है इत्यादि अर्थ है ॥ अथवा 'भभ्भा' नाम नक्षत्रों के नक्षत्र प्रकाश स्वरूप आत्म वस्तु विषयक, और गृहों के गृह शरीरादि विषयक भ्रम भरपूर होरहा है इत्यादि अर्थ है ॥ (नक्षत्रं भं तथाऽऽकाशंभ्रमणे भः प्रकीर्तितः] ऐसा कोश के पाठ पक्ष में अर्थ है कि 'भभ्भा' नाम आकाश में वा आकाश सदृश आत्मा में भ्रम भरपूर होरहा है, अथवा हे भभ्भा ! नाम चिदाकाशस्वरूप हे जीवो ! तुम में भ्रम भरपूर होरहा है, और 'भ' नाम आकाश में वा आत्म स्वरूप आकाशमें भ्रमके 'भरेते' नाम पूर्ण होनेसेही ज्ञानी की दृष्टि से 'नियरे' के वस्तु भ्रम युक्त पुरुषोंकी दृष्टि से दूर है, और 'भभ्भा' नाम चिदाकाशस्वरूप जो ज्ञानी हैं सो कहते हैं कि रे भाई ! सुनो 'भ' नाम आकाशमें वा चिदाकाशमें भरे हुये जीव उस चिदाकाशसे अपने को भ्रम से भिन्न मानकर आते हैं, और जाते हैं, इसलिये तुम इस भ्रमको नष्ट करके जन्मादि रहित निश्चल स्वरूप होजावो अध्यात्मदीपिका में लिखा है कि [आत्माज्ञानादहोप्रीति विषयेभ्रमगोचरे। शुक्तेरज्ञान-

तोलोभो यथारजतविभ्रमे ॥ १ ॥ श्रुत्वाऽपिशुद्धचैतन्यमात्मानमतिसुन्दरम्। उपस्थे ऽत्यन्तसंसक्तोमालिन्यमधिगच्छति ॥२॥] श्रुति है कि (दूरात् सुदूरे यदि हन्तिके चपश्यत्स्विहैवानिहितंगुहम्याम् ॥ ३ ॥] आत्मा के अज्ञान से भ्रम के गोचर विषय में प्रीति होती है जैसे रजत भ्रममें शुक्ति का अज्ञान से लोभ होता है ॥ १ ॥ अत्यन्त सुन्दर शुद्ध चैतन्य आत्माको सुन कर भी उपस्थमें आसक्त पुरुष मलिनताको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ असमाहित चित्त वाले अज्ञानियों के लिये वह ब्रह्म दूर से भी दूर है, और वह समीप में भी है क्योंकि ज्ञानियों के अत्यन्त समीप में ही बुद्धि रूप गुहा में वह स्थिर है ॥ ३ ॥

चौंतीसी

मम्मा सेवे मर्म न पावे। हमरे सेवे मूल गमावे।
मम्मा कहै सुनहु रे भाई। मूलछोड़ि कस डारहिं जाई ॥ २६ ॥

टीका—[मःशिवश्चन्द्रमा वेधा मा लक्ष्मीश्च प्रकीर्तिता । मा च मातरि माने च बन्धने मःप्रकीर्तितः] शिव चन्द्रमा ब्रह्मा बन्धन अर्थका वाचक म शब्द है, और लक्ष्मी माता मान अर्थ का वाचक मा शब्द है। और भी साहेब कहते हैं कि पूर्वोक्त फलके मर्मका ज्ञान तथा भ्रमक निवृत्ति आत्मानात्मा के विवेक विचार विराग सत्सङ्गादि से होते हैं और मम्मा नाम शिव चन्द्र ब्रह्मादिकों के सेवने से पुरुष मर्म नहीं पाता है, अर्थात् शिवचन्द्रादिलोकादि की कामना से उन्हों की भक्ति उपासना से फलों के भेदादि को पुरुष नहीं समझता है, और समझे विना भ्रम रहित भी नहीं होता है, अथवा मम्मा नाम 'म' रूप अर्थात् बन्धन रूप जो 'मा' अर्थात् लक्ष्मी उसको सेवनेमे पुरुष उक्त फलके मर्म को नहीं पाता है, किन्तु पूर्वोक्त मम्मा ओं को 'हमरे' नाम ममता बुद्धिआदि पूर्वक सेवने से पुरुष मूल सुख सतविचारादिको भी गमाता है। अथवा हमरे स्वरूप गुरुको सेवने से मनुष्य मूल गमाताहै नाम जन्मादि के मूलकारण रूप अज्ञान को नष्ट कर देता है, इसीसे शिवादिरूप मम्मा भी कहते हैं कि हे भाइ! सुनो, तुम मूलको छोड़कर डारके पास क्यों जाते हो, अर्थात्जैसे कोई वृक्षकी जड़ को त्याग कर डारकी प्राप्ति उसके ऊपर जलसे सींचनादि करताहोवे, वैसे तुम सर्वोत्तम स्वरूप ब्रह्मात्माको छोड़कर आत्मभिन्न को शिवादि क्यों समझते हो, उनके शरणमें क्यों प्राप्त होतेहो, आत्मस्वरूपशिवादि को जानो, और बन्धन रूप लक्ष्मीको त्यागो जिससे तुम्हारा कल्याण होजावे ॥ अथवा 'मम्मा' नाम बन्धनों के बन्धन जो पूर्वोक्त गृहादि के भ्रम हैं उन्हें ममता पूर्वक सेवनेसे पुरुष फलके मर्म को नहीं पाता है, किन्तु हमारे गृहादि हैं ऐसी बुद्धिसे उन्हें सेवनेसे मूलसुखको गमाता है इत्यादि ॥ अथवा हेमम्मा! नाम हेशिवो! के शिव चन्द्रोंके चन्द्र ब्रह्माओंके ब्रह्मा स्वरूपजीवो! तुम किसी अन्यवस्तुको सेवनेसे भ्रमनिवृत्तिके हेतुरूपमर्मको नहीं पाते हो न पाही सकते हो, किन्तु हमरे नाम हमारे स्वरूपभूत

ब्रह्मात्माके सेवनेसे ही संसारके मूल अज्ञानको गमावोगे, और मर्म जानोगे, और रेभाई! शिवादिके शिवादि स्वरूप मम्मा नाम ज्ञानी वा तेरा अन्तरात्मा कह रहा है कि, तुम मूल छोड़कर डारमें क्यों जाते हो सो तुम सुनो॥ अथवा अन्य शिवादिको सेवनेसे तुम मर्म नहीं पाते हो इसलिये ज्ञानी मम्मा नाम शिवादिकों के शिवादि भी कहते हैं, कि रेभाई! मेरा उपदेश सुनो और मूल छोड़कर डारमें क्यों जाते हो उसे त्यागो, इत्यादि॥ आत्मपुराण में लिखा है कि (**पञ्चाग्निवित्तथाऽन्योऽपिगृहस्थान्यत्रयाश्रमी। स्वाश्रमोचितमत्यन्तं पुण्यंकर्मविधायहि। अन्धंतमोविशन्त्येते पुत्रदारादिमोहदम् ॥१॥ ब्रह्मेन्द्रादीनसुरास्तद्व न्नानोपासनयाहिये। आराधयन्तिकर्मिभ्य स्तेऽधिकांसंसृतिंययुः ॥ २॥ देवताविदययागत्वापरमैश्वर्यमत्रते। कर्मिभ्योऽभ्यधिकासक्ता दारादिषुभवन्तिहि ॥३॥**) पञ्चाग्निउपासक गृहस्थ तथा अन्यभी तीन आश्रमी अपने २ आश्रमोचित अत्यन्त पुण्यकर्म करकेभी विचारादि विना कामादि वश मोहादिके हेतुरूप पुत्रदारादिरूप अन्धतम में प्रवेश करते हैं॥१॥ वैसेही जो लोग ब्रह्मा इन्द्रादिरूप देवताओं की नाना उपासनासे उनकी आराधना करते हैं, सो अज्ञानी उनकर्मियों से भी अधिक जन्म मरणादि संसार को प्राप्त होते हैं॥ २॥ क्योंकि देवता की उपासना रूप विद्यासे इसलोकमें परम ऐश्वर्य्य प्राप्त करके दारा पुत्रधनादि में वे लोग कर्मियों से भी अधिक आसक्त होते हैं और आसक्ति ही दुःखके मूल है अज्ञानात्मक आसक्ति जितनीहि अधिक होती है उतनेहिं अधिक दुःख होते हैं ॥३॥ ममके सेवे मर्म न पाई। हमरे सेवे मूलगमाई॥ मायामोह रहा भरि पूरी। माया मोहहिलखहु विसूरी॥ यह पाठ भेद है। विसूरी के कठिन शूली अर्थ है॥

चौंतीसी।

यय्या जगत रहा भरि पूरी। जगतहुं ते है यया दूरी॥
यय्या कहै सुनहु रे भाई। हमरे सेवे जयजय पाई॥ २७॥

टीका—[**यशो यः कथितः प्राज्ञैर्यो वायुरिति शब्दितः। याने यातरि य स्त्यागे कथितः शब्दवेदिभिः**] यश, वायु, गमन, गमनकर्त्ता, त्याग अर्थके वाचक य शब्द है। साहेब कहते हैं कि 'यय्या' नाम त्याग तथा त्यागपूर्वकगमन जगतमें भरपूर होरहा है, अर्थात् जो पुरुष स्त्री पुत्र धनादिको अपने मनसे नहीं त्यागता है, उसको भी प्रारब्ध कर्मकेक्षयसे मरनेपर शरीरादि सब पदार्थको अवश्यही त्यागना पड़ता है, इससे जगतमें त्याग भरपूर है। और वैराग्यपूर्वक जानबूझकर जो मनसे त्यागकिया जाता है, सो 'यया' सम्पूर्ण जगतसे दूरभी है, अर्थात् सबको वह त्यागप्राप्त होने योग्य नहीं है। और सोई सब अनात्ममिथ्या वस्तुओंका वास्तविक त्यागमर्मज्ञानके हेतु है, और सोई वास्तविक 'यया' नाम त्याग और उस त्यागसे युक्त महात्मा कहतेहैं कि 'रेभाई!' सुनो हमरे सेवनेसेही फलके वास्तविक मर्मको जानकर मनुष्य सर्वत्र जयजय पाता है, अर्थात्

वास्तविक त्यागसेही कामादिरूप भीतरके शत्रुओंको और वाहरके शत्रुओंको भी पुरुष सहजसेही वशमें करलेता है, वस्तुत उसके कोई शत्रुही नहीं रह जाता है सब अपने हीं होजाते हैं ॥ अथवा, 'यय्या' नाम सर्वत्र प्राप्तरहने वाला ब्रह्मात्मा। अथवासमष्टिवायुरूप प्राणोपाधिवाला हिरण्यगर्भ जगतमें भरपूर हैं। इसीसे सो ययाजगतहुँसे अत्यन्त दूर तक हैं नामविभु हैं। और सोई यया कहते हैं कि हमारी सेवासेही सर्वात्मभावरूप वा हिरण्यगर्भ लोककी प्राप्तिरूप जय२ को मनुष्य प्राप्त करता है, इसलिये मुमुक्षु तथा सुखार्थीको चाहिये कि बन्धनरूप पदार्थोंको त्यागकर सर्वात्म स्वरूप ईश्वरकी तथा गुरुकी भक्ति ब्रह्मात्माके विचारादि करें, यदि ब्रह्मलोक की दृढ़वासना इच्छा होवे-तो हिरण्यगर्भकी उपासना करें, अथवा ब्रह्मलोक के साधनरूप दहरादि की उपासना करें, और तुच्छ उपासना कर्म विषयादिमें नहीं आसक्तहोवें, वस्तुतः सर्वात्मस्वरूप वस्तुकेही जिस किसी प्रकारसे भी विवेक विचार विज्ञान का सम्पादन सर्वका त्यागपूर्वक करें जिससे कल्याण होवे॥ अथवा 'यय्या' नाम यज्ञोंके यज्ञरूप वायुओंके वायुरूप गमन कर्ताओंसे भी गन्तारूप चिदात्मा जगतमें भरपूर है और जगत में भरपूर होते भी जगतहुँसे दूर है नाम उत्पत्तिविनाशादिरूप सब जगतके धर्मसे रहित तथा असङ्ग अविक्रियशुद्धस्वरूप है। सो यया कहता है कि रेभाई! सुनो हमरे सेवेसे मनुष्य जय२ पाताहै। इसलिये विचारादिसे मेरी सेवा करो इत्यादि॥ लिखा है कि [गतागतंकामकामालभन्ते॥१॥ बाह्येनिरुद्धेमनसः प्रसन्नता मनःप्रसादेपरमात्मदर्शनम्। तस्मिन् सुदृष्टेभव-वन्धनाशो वहिर्निरोधः पदवीविमुक्तेः॥२॥ सतिसक्तोनरोयाति सद्भावंह्येकनि-ष्ठया। कीटकोभ्रमरंध्यायन् भ्रमरत्वायकल्पते] विषयादिको चाहनेवाले यहांके गृहादि को त्यागकर अन्यत्रजाते हैं। वहांके त्यागकर यहां आते हैं॥१॥ और विरागसे वाहरके इन्द्रियोंको रोकनेपर मन प्रसन्न होता है मनको प्रसन्न होनेसे परमात्माका ज्ञान होता है परमात्माके दृढ़ज्ञान होनेपर संसार बंधनका नाश होता है इसलिये वाहरके इन्द्रियोंका निरोधपूर्वक त्याग विमुक्तिके मार्ग है॥२॥ सबइन्द्रियोंका निरोधपूर्वक सत्यात्मामें सक्त नाम समाहित चित्तवाला पुरुष एक-निष्ठासे सद्भावको प्राप्त होता है अर्थात् जन्मादि रहित होजाता है गमनागमनसे रहित ब्रह्मरूपसे स्थिर होता है जैसे भ्रमरको ध्यान करता हुआ कीट भ्रमर स्वरूप होजाता है॥३॥

चौंतीसी।

रारा रारि रहा अरुझाई। राम कहत दुखदारिद जाई॥
रारा कहै सुनहु रे भाई। सतगुरु पूछि के सेवहु जाई॥२८॥

टीका—[रश्चरामेऽनिलेवन्हौ भूमावपिधनेऽपिच। इन्द्रियेन्धनरोगेच रुर्भवे चप्रकीर्तितः] राम, वायु, अग्नि, पृथिवी, धन, इन्द्रिय, जलावन, रोगअर्थका वाचक रशब्द है। और संसार के वाचक रुशब्द है। साहेब कहते हैं कि यद्यपि सर्वात्मस्वरूप ब्रह्मात्माकी भक्ति

गुरु भक्ति विराग विज्ञानादिसे जीवोंको कल्याण होता है तथापि संसारके सब मनुष्य 'रारा' नाम रामविषयक रारि में नाम झगरायोंमें अरुझाये हैं, और रारि मनुष्योंमें अरुझाय रही है नामलगी है, कोई किसी को राम अर्थात् ईश्वरकहते हैं, और कोई अन्य किसी को कहते हैं और परस्पर रागद्वेष करते हैं अथवा रारा नाम इन्द्रिय सम्बन्धी वा धनविषयक रारि जगमें अरुझाय रही है. अर्थात् इन्द्रियोंका निरोध विना सब इन्द्रियँ परस्पर विरुद्ध विषयोंमें आसक्त हो रही हैं और धनकी इच्छासे द्वेषादिमें मनुष्य फंसे हैं, और राराकी रारिमें अरुझाय कर कहते हैं कि विवेक विचार वैराग्यादि बिनाही राम कहनेसेही सब दुःखदारिद्रता चली जाती हैं। अर्थात् राम कृष्ण खुदा आदिके नाम मात्र से सब पाप नष्ट होजाते हैं। इससे दरिद्रता आदि और उनसे जन्य कोई भी दुःख नहीं रह जाते हैं इत्यादि, और वस्तुतो जो रारा नाम राम स्वरूप ज्ञानी महात्मा हैं सो कहते हैं कि 'रे भाई' सुनो नाम विवेक विरागादि पूर्वक श्रवण करो, और सद्गुरुसे पूछकर नाम श्रवण करके उपदेशलेकर एकान्त देशादिमें जाकर उस सर्वात्मा स्वरूप राम को 'सेवहु' नाम उस रामके विचार चिन्तनादि करो तव ज्ञानयुक्त सतधारणा से तेरे दुःख दारिद्र नष्ट होवेंगेअन्य प्रकारसे नहीं हो सकते हैं ॥ अथवा साहेब कहते हैं कि हे 'रारा' नाम हे आत्मा रामस्वरूपजीवो! अपने स्वरूपादिका अज्ञान से रागद्वेषादिरूप और जन्ममरणादिरूप रारि तुम में अरुझाय रही हैं नाम भ्रमसे भास रही हैं, इसलिये अपने को सद्गुरुसे रामस्वरूप समझो, और कहो, जिससे रामरूप अपने को ज्ञान पूर्वक कहते ही में सब 'तेरे दुःख दारिद जाई' नाम नष्ट होजावेंगे । और 'रारा' नाम रामस्वरूप ज्ञानी महात्मा लोग इसीलिये कहते हैं कि 'रे भाई' सुनो कि सद्गुरुके चरणमें जाकर, और उनसे पूछकर राम को जानो, और रामहीं की सेवा करो नाम अपने स्वरूपभूत रामके चिन्तनादि रूप भक्ति करो, जिससे अज्ञानकी निवृत्ति पूर्वक उक्त झगरायोंकी निवृत्ति होजावे ॥ अथवा हे मनुष्यो! 'रारा' नाम रोगोंके रोगरूप अज्ञान मोह ममतादिसे 'रारि' जगतमें तथा तुममें अरुझाई है नाम लिपट रही है, जो जन्मादि रूप सब दुःख और दरिद्रताके हेतु है, इसलिये आज्ञानादि रूप रोगोंके कारण रूप रोगों को निवृत्त करके अपनेको रामकहो तथा दूसरेको भी रामरूपकहो उपदेश करो, जिससे दुःख दारिद्रको निवृत्ति होजावे, क्योंकि रोगोंके रोगरूप वस्तु कहते हैं नाम समझाते हैं कि रे भाई! सुनो सद्गुरुके यहां जाकर उनसे पूछकर आत्मारामको सेवो जिससे सव दुःखके कारणोंसे रहित हो जावोगे ॥ अथवा हे मनुष्यो! 'रारा' नाम रामोंके राम वायु आदिके भी वायु आदि धनोंके धन में अज्ञान जन्य रारि अरुझाय रही है इत्यादि अर्थ हैं ॥ लिखा है कि [द्वैताद्वैतसमुद्भूतैर्वाक्यसंदर्भविभ्रमैः । क्रीडन्त्यबुद्धाः शिशवो बोधवृद्धाहसन्तितान् ॥१॥ अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम् । चिन्तयात्मानमानन्दरूपंयन्मुक्तिकारणम् ॥ २ ॥ स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयंशिवः । स्वयंविश्वमिदंसर्वं स्वस्मादन्यन्नकिञ्चन ३] द्वैत अद्वैतादिमत भेदसे सिद्धवाक्योंके समुदाय रूप विभ्रम से अज्ञानी बालक लोग क्रीड़ा करते हैं परन्तु पूर्वज्ञानी लोग उन्हें हँसते हैं ॥ १ ॥ दुःखके कारण

पापरूप अनात्म चिन्तनको त्यागकर आनन्द स्वरूप आत्माका चिन्तन करो जो चिन्तन मुक्तिके कारण है ॥ २ ॥ अपना आत्माही स्वयं, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, शिवरूप, और सम्पूर्ण संसाररूप है आत्मासे अन्यकोई वस्तु सत्य नहीं है, इससे सबमें सत्तास्वरूप आत्माही है ॥ ३ ॥ वासिष्ठ, चूडामणिके उक्त वचन है ॥

चौंतीसी।

लल्ला तुतरे बात जनाई। तुतरे तुतरे परिचय पाई ॥
अपने तुतर और को कहई। एके खेत दोऊ निर्वहई ॥ २९ ॥

टीका—[लोदीप्तौदयां लश्चभूमौ भयेचाह्लदनेऽपिच। लोवातेलवणेचस्याल्लोदानेचप्रकीर्तितः ॥ लःश्लेषेचाशये चैव प्रलयेसाधनेऽपिलः। मानसेवरुणेचैव लकारः सान्त्वनेऽपिच ॥ ल इन्द्रः लोविधानरिईरितः। ला लक्ष्मीः प्रकीर्तिता] दीप्ति, स्वर्ग भूमि, भय, आनन्द, वायु, लवण, दान, श्लेष, आशय, प्रलय, साधन, मानस, वरुण, सान्त्वन, इन्द्र, ब्रह्मा, अर्थका वाचक ल शब्द है और लाशब्द लक्ष्मीके वाचक है। और भी रारके हेतुको साहेब बताते हैं कि 'तुतर' नाम अस्पष्ट भाषण करने वाले गुरुआलोगोंने 'लल्ला' नाम स्वर्ग भूमि आदिकी, तथा ज्ञानादिके साधनोंकी प्रकाश आनन्द स्वरूप आत्मा की 'तुतर' बात जनाईहै अर्थात् जैसे बोली लगने वाला अस्पष्ट अन्य के अन्य कहता है, वैसेही अविवेकी गुरुआलोगभी स्वर्ग भूमि आदिको मोक्ष के साधनों को प्रकाश आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्माको स्पष्ट नहीं बताते हैं, अन्यको अन्य कहते हैं, अथवा 'तुतरे' नाम अविवेकी गुरुओं ने वस्तु विनाही केवल 'लल्ला' नाम स्वर्गादि की बात जनाई है, और उन 'तुतरे' नाम अन्यके अन्य कहने वाले अविवेकी गुरुओं सेही अन्य 'तुतरे' पुरुषों ने किसी दृश्य वस्तु का परिचय पाये हैं और पाते हैं अर्थात् वे गुरु आ यथार्थ उपदेश देनेके लिये असमर्थ होते भी अन्य अविवेकियों के प्रति उपदेश देते हैं, और उनके शिष्य लोग भी असत दृश्य वस्तु व्यवहारादिकोही सत्य समझलेते हैं, और गुरु आ लोग 'आप तुतर' नाम अविवेकी अन्य को अन्य कहने वाले होते भी अन्य पुरुषों को कहते हैं, नाम अन्य के प्रति असत उपदेश देतेही हैं, इससे एकही, किसी शरीर विषय लोकादि रूप 'खेत' नाम क्षेत्र दृश्य वस्तु में गुरुआलोग, और उनके शिष्य लोग, ये दोनों 'निर्वहई' नाम निर्वाह करते हैं, अर्थात् सर्व साक्षीस्वस्वरूप क्षेत्रज्ञको जानने विना किसी क्षेत्र में आसक्त होकर उसमें आत्म परमात्म आत्मीयादि बुद्धि करके दोनों कर्मादि के फलों को भोगते हैं मर्म नहीं जानते हैं, इससे रारि अरुझाय रहा है ॥ अथवा सद्विचार सद्गुरु विना 'लल्ला' नाम अपना मानस और वेदशास्त्रादि रूप ज्ञान के साधन तथा दानादि रूप शुभकर्मभी 'तुतरे बात को जानते हैं' नाम मानस वेदशास्त्रादि अस्पष्ट बोधकराते हैं इससे केवल उनसे 'तुतरे-तुतरे' नाम अत्यन्त अस्पष्टही परिचय पाया जाता है, और स्पष्ट बोधरहित गर्व युक्त मनुष्य आप 'तुतर' नाम अविवेकी होता हुआ भी 'औरको' नाम अन्यकोही 'तुतर, नाम अज्ञानी आदि कहताहै, और

विचारवान की दृष्टि से 'दोनों' नाम जिसको अज्ञानी कहकर शिष्य बनाता है सो और आप दोनोंही एकही क्षेत्र मे 'निर्वहते हैं' नाम निरन्तर गमन करते हैं वा एकही क्षेत्रको प्राप्त करते हैं ॥ अथवा हे 'लल्ला' नाम हे प्रकाशों के प्रकाश आनन्दों के आनन्द स्वरूप जीवो ! सद्गुरुसे पूछो, क्योंकि वेद शास्त्रादि में भी तुतरे बात जनाई गई है, और उस तुतरे मात्र से जीन्होंने परिचय पाई है उन्होंने तुतरेही परिचय पाई है इत्यादि अर्थ हैं लिखा है कि (**वर्गत्रयोपदेशोहि शास्त्रादिष्वस्तिराघव । ब्रह्मप्राप्तिस्त्ववाच्यत्वान्नास्तितच्छास्त्रनेष्वपि ॥ १ ॥ केवलंसर्ववाक्यार्थैर्ध्वन्यमानाऽवगम्यते । कालश्रीःप्रसवेनैवस्वयंस्वानुभवेनसा ॥ २ ॥**] हे रामजी ! अर्थ, धर्म, काम, का शास्त्रादिमें स्पष्ट उपदेश है और ब्रह्मप्राप्तिको अवाच्य होनेसे उस शासन में भी नहीं है, किन्तु केवल सब वाक्यार्थों से ध्वनित वह ब्रह्म प्राप्ति विचारादि जन्य अपना अनुभव से समझी जाती है जैसे कार्योत्पत्ति से कालश्रीजानी जाती है ॥ २ ॥

चौंतीसी।

वव्वा वर वर करे सब कोई। वर वर किये काज नहिं होई॥
वव्वा कहै सुनहु रे भाई। स्वर्ग पताल की खबरि न पाई॥ ३०॥

टीका—[**सात्त्वति वरुणेवाते वकारःसमुदाहृतः ॥ हकाराद्व्योमसंज्ञश्चयकाराद्वायुरुच्यते । रकाराद्वह्निस्तोयंतु वकारादितिसैव वाक्**] सात् नाम परमेश्वर जिसके उपास्य हैं सो भक्त रूप सात्त्वत् वरुण, वायु, अर्थके वाचक व शब्द है ॥ और ह, य, व, र, शब्द परमात्मा के भी वाचक हैं वहां हकार के वाच्य परमेश्वर से व्योम संज्ञक भूतकी उत्पत्ति होती है, यकार वाच्य से वायुकी, रकार वाच्य से अग्नि की, वकार वाच्य से जलकी उत्पत्ति होती है, और वह वकारही वाक् भी है नाम वाक् इन्द्रिय के भी वाचक है। इससे अर्थ है कि 'वव्वा' नाम सात्त्वत् अर्थात् भेदवादी ईश्वरके भक्त लोगभी भिन्न २ ईश्वर मानकर सब कोई वर २ करते हैं नाम अपने कल्पित माने हुये ईश्वरों को जुदा २ श्रेष्ठ कहते हैं। अथवा अपने अपने सेव्य को सबके वर नाम पत्ति सबसे श्रेष्ठादि कहते हैं, वहां साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो ! भक्तो ! विवेक विचार आत्मविज्ञान दृढ विरागादि विना वरवर करने मात्र से मोक्षरूप कार्यकी सिद्धि नहीं होती है, और 'वव्वा' नाम सच्चा भक्त अर्थात् विवेक विराग विचारादि पूर्वक सर्वात्म स्वरूप ईश्वर गुरुको भजने वाले भक्त कहते हैं कि 'रे भाई ! सुनो तुम सब कोई वर २ किया करते हो परन्तु तुम लोगोंने स्वर्ग पतालकी खबरि नहीं पाई है, अर्थात् जिसको तुम वर २ करते हो वह स्वर्ग में है कि पाताल में है ! वा अन्यत्र कहिं है इस बात के सच्चा पत्ता तुझे नही मालूम हुआ है। इसीसे ज्यादा वरवर करते हो अपने में भी श्रेष्ठता का अभिमान करते हो, इसलिये उसे समझो केवल वर २ नहीं करो भाव यह है कि वह ईश्वर कहाँ है कौन है कैसा है इत्यादि भेदों

को यथार्थ रूपसे जाने बिना ईश्वर २ आदि कहने मात्र से, वास्तविक भक्ति वा मुक्ति नहीं होती है इसलिये जानना चाहिये ॥ अथवा 'वव्वा' नाम वाक् मात्रसे वरवर सबकोई करते हैं परन्तु वर२ करने से प्रयोजन की सिद्धि मोक्ष फल की प्राप्ति नहीं होती है, इसलिये गुरुके उपदेश रूप 'वव्वा' नाम वाक् अर्थात् शब्द कहता है कि रे भाई! तुम सबने स्वर्ग पतालकीखर नहीं पाई है अर्थात् वहांके दुःखोंको नहीं समझा है, इसीसे उन लोकों में रहने वालों को ईश्वरसुखरूपादि समझतेहो वहां जाना चाहते हो इत्यादि, सद्गुरुसे उन्हें भीमिथ्यादुःख रूपजानकर उन्हेंत्यागो, और नित्यानन्दस्वरूप चिदात्मारूप ईश्वरको भजो जिससे सब रारों की निवृत्ति होजावे इत्यादि ॥ अथवा 'वव्वा' नाम भक्तोंसे भक्तवनकर सब कोईवरवर करतेहैं, अथवा ईश्वरोंके ईश्वरको सबकोईवर२ करते नामकहते हैं इत्यादि अर्थ हैं ॥ और वव्वा वह वह कहे सब कोई। वह वह कियेकाजनहिं होई ॥] इस पाठके अर्थ है कि 'वह वव्व' नाम ईश्वर है वह है इस प्रकार सब कोई करते हैं, अथवा वाक्इन्द्रियसे वह २ करते हैं, परन्तु उस वह वह करनेसे कार्य नहीं होता है। इसलिये 'वव्वा' नाम सच्चा भक्त कहते हैं कि रे भाई! गुरुसे श्रवणादि करो तुम स्वर्गपतालादि के कुछखबर नहीं पाई है इससे तेरा वह २ करना व्यर्थ है ॥ लिखाहै कि [**अविज्ञातेपरेतत्त्वेशास्त्राधीतिस्तुनिष्फला। विज्ञातेऽपिपरेतत्त्वेशास्त्राधीतिस्तुनिष्फला ॥१॥ न गच्छति विनापाने व्याधिरौषधशब्दतः। विनाऽपरोक्षाऽनुभवंब्रह्मशब्दैर्नमुच्यते ॥२॥**]जिस शास्त्रका अध्ययनसे परतत्त्वका विज्ञान नहीं होजावे उस शास्त्रका अध्ययननिष्फल है और तत्त्व ज्ञान होनेपर भी शास्त्रका अध्ययन करना निष्फल है ॥ १ ॥ औषधिका पान बिना उसके नामसे रोग नहीं जाता है वैसेही अपरोक्षज्ञान बिना ब्रह्मादिशब्दसे जीवमुक्त नहीं होता है ॥

चौतीसी।

शश्शा सर देखै नहिं कोई। सर शीतलता एकै होई ॥
शश्शा कहै सुनहु रे भाई। शून्य समान चला जग जाई ॥ ३१ ॥

टीका—[**शंसुखं शङ्करः श्रेयः शश्चसीम्निनिगद्यते । शयनेशः समाख्यातो हिंसायांशोनिगद्यते ॥ वदन्तिशंबुधाः शेषे शः शान्तश्चनिगद्यते**] सुख, शंकर, मोक्ष, सीमा, शयन, हिंसा, शेष, शान्त, अर्थके वाचक शशब्द है। साहेब उपदेश करते हैं कि बरवरतो सब कोई करते हैं, परन्तु 'शश्शा' नाम सुखका अथवा श्रेयःका, 'सर' नाम तालावको 'कोई नहीं देखते हैं' नाम नहीं जानते हैं, और सोई जानना चाहिये अथवा संसार सागरके सीमारूप शेष नाम अविनाशीवस्तु रूप सरको कोई नहीं देखते हैं, वह अदृश्य सर्वात्मस्वरूप स्वयं प्रकाश है, इससे अन्यवस्तुओंके सदृश उसेकोई भी देखनहीं सकते हैं, इसलिये सबकोई अन्यवस्तुओं कोही देखकर वरवर करते हैं सुखसागर को नहीं देखते हैं ब्रह्मात्माका सुख श्रेयः का सररूप सुनकर जिज्ञासा हुई कि ब्रह्मात्मा और सुखश्रेयः पदार्थ भिन्न हैं, वा एक हैं, तब साहेब कहते हैं कि जैसेसर

और उसके शीतलता गुण एकही है, अर्थात् जल समुदाय से उसके गुण शीतलता आदि भिन्न वस्तुनहीं हैं, केवल व्यवहार मात्रके लिये भिन्न हैं, वस्तुतोजल स्वरूप हैं तैसेही सररूप ब्रह्मात्मा; और शीतलतारूप सुख श्रेय आदि सब एक अभिन्न स्वरूप हैं, केवल विकल्पसे व्यवहारके लिये भिन्न कहेजाते हैं, और वह 'शश्शा' नाम सुख श्रेयः सीमारूप ब्रह्मात्मा कहता है कि हे भाई! सुनो यह 'जग' नाम सब संसारी जीव ब्रह्मात्माको जानने बिना शून्यके तुल्य होकर नाम जड़ सदृश होकर चले जारहे हैं। अथवा उक्तज्ञान बिना सुख शून्य संसारमें जग चला जाताहै अथवा 'शश्शा' नाम सुखस्वरूप ज्ञानी कहते हैं कि हे भाई! सुनो नाम गुरुसे श्रवणादि करो, क्योंकि श्रवणादि बिना शून्य समान जगमें जीवचलाजाता है. नामस्थावरादि जड़ योनियोंमें जीवप्राप्त होता है। अथवा इस मनुष्य जन्मको व्यर्थही वीताकरचलाजाता है. इसलिये आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्माको इसी जन्ममें जानो॥ अथवा 'शश्शा' नाम सुखोंके सुख शंकरोंके शंकर श्रेयोंके श्रेयशान्तोंसे शान्त रूप सरको कोई देखता नहीं है. जो सर शीतलता दोनों एकस्वरूप हैं. अथवा जिस सरकी शीतलता एक अद्वितीय अतिशयादि रहित है। हे भाई! उस शश्शाको जो कोई महात्मा कहते होवेंतो तुम उनसे सुनो वह शश्शा जन्मादि संसार सब दुःखोंसे शून्य है नाम रहित है. और 'समान' नाम एक रस अखण्ड उत्पत्ति नाशादिसे रहित है और सब जग चला जारहा है नाम सदा नष्ट होता है. इससे दुःखरूप है इसेत्यागो केवल वरवर नहीं करो॥ लिखा है कि—[**कं ब्रह्म, खं ब्रह्म, कं खं ब्रह्म। रसोवैसः। इत्यादि**] ब्रह्म कं नाम सुखरूप है. और खं नाम आकाश सदृश विभु है. इससे सुखसे अभिन्न विभुरूप ब्रह्म है॥ और 'रस' नाम आनन्द स्वरूपहीवह ब्रह्म है॥

चौतीसी।

षष्षा षरषर करे सब कोई। षर षर किये काज नहिं होई॥
षष्षा कहै सुनहु रे भाई। राम नाम ले जाहु पराई॥ ३२॥

टीका—[**षः कीर्तितोबुधैःश्रेष्ठेषरगम्भीरलोचने। उपसर्गे परोक्षे चपकारः परिकीर्तितः**] श्रेष्ठ, गम्भीरदृष्टि, उपसर्ग, परोक्ष, अर्थका वाचकपशब्द है। फिरभी साहेब कहते हैं कि सब कोई पूर्वकहे सुखश्रेय रूप 'षष्षा' नाम श्रेष्ठ वस्तुको 'षरषर' करते हैं नाम 'खर२' अर्थात् सत्य२ कहते हैं. परन्तु 'षर षर किये नाम कहने मात्रसे मोक्षरूप' 'काज' नाम प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। इसलिये 'षष्षा' नाम श्रेष्ठ महात्मा कहते हैं कि 'रेभाई' मेरी बातसुनो. और जिसवस्तुके 'राम'नाम है उस सर्वात्म स्वरूपवस्तुको 'लेकर' नाम आत्मरूपसे प्राप्त करके इस संसारसे पराय जावो नाम शीघ्र इससे जुदा होजावो। इस विषयक आसक्तिको त्यागदो॥ अथवा सबकोई. नाम सब जाति, वेषधारी. मतवादी. मनुष्य अपने २ को 'षष्षा' नाम श्रेष्ठ तथा 'षरषर' नाम सत्यवक्ता कहते हैं तथा अपने समझादिको खरा २ कहते हैं परन्तु षर २ कहनेसे काज नहीं होसकता है, इससे रे भाई! जो वस्तुतः 'षष्षा' नाम श्रेष्ठ हैं. वे जो कहते हैं सो सुनो!

और रामनाम लेकर इस संसारसे भाग जावो, अथवा परउत्कृष्टस्वरूप होजावो ॥ अथवा अपरोक्षअनुभवविना 'पप्पा' नाम परोक्ष कल्पितादि वस्तुको सबकोई' पर२ करते हैं परन्तु उससे कार्यकी सिद्धि नहीं होती है. इसलिये श्रेष्ठ महात्मा कहते हैं कि. रेभाई ! सुनो. अपरोक्षसर्वात्म स्वरूप रामनामको जानकर उस परोक्षवस्तुसे परे होजावो अथवा श्रेष्ठों के श्रेष्ठरूप सबकोई अनेकों वस्तुओं को पर२ करते हैं, जिस पर२ करनेसे काज नही होता है। इसलिये श्रेष्ठों से श्रेष्ठ कहते हैं कि रेभाइ ! सुनो एक रामनाम लेकर अनेकोंसे परहोजावो जिससे तेरा कल्याणहोजावे ॥

चौंतीसी।

सस्सा सरा रचो वरियाई। शर बेधे सब लोग तवाई ॥
सस्सा के घर सुन गुन होई। इतनी वात न जानै कोई ॥ ३३ ॥

टीका—[सः कोपे वरणे सः स्या त्तथा शूलिनिकीर्तितः। साच लक्ष्मीर्बुधैः प्रोक्ता गौरी सा च स ईश्वरः ॥ सः परोक्षे समाख्यातः) क्रोध, स्वीकार, शूलधारी, ईश्वर, परोक्ष, अर्थके वाचक स शब्द है, और लक्ष्मी, गौरी, अर्थके वाचक सा शब्द है। साहेव कहते हैं कि हे मनुष्यो ! 'सस्सा' नाम क्रोध रूप, और विषयों का स्वीकार रूप, 'वरियाई' नाम वहुत जवरदस्त 'सरा' नाम चिता 'रचो' नाम रचा गया है, और उस क्रोध, तथा वरण रूप कामात्मक, 'सस्सा के घर रूप हृदय में क्रोधादि के जनक, वात आदिकोंके 'सुनगुन होतेही' नाम कुछ भी जान पड़तेही वह क्रोध, वा कामरूप सस्सा सवही अज्ञानी, संसारासक्त पुरुषोंको अनेको शोक मोह दुःखादि रूप, शरों से वेधन करके 'तवा देता है' नाम संतप्तकर देता है, तथा चञ्चल करदेता है परन्तु राम नाम लेकर पराने विना जीव सब दुर्दशा सहते सहाते हैं और इतनी वातभी कोई नहीं जानते हैं नाम काम क्रोधजन्य दुःख को भी नहीं समझते हैं, उलटा उससे सुख मानते हैं ॥ अथवा हे मनुष्यो ! जो पुरुष राम नाम लेकर नहीं पराते हैं, उन्हें कर्मानुसार भोगदेने के लिये 'सस्सा' नाम ईश्वरने 'वरियाई' मानों वलत्कार से यह संसाररूप सरा रचा है, अर्थात् पाप करके भी जीव सब दुःख भोगना नहींचाहते हैं, तौभी उन्हें दुःख भोगाने के लिये सृष्टि की गई है, और त्रिविध ताप, रूप वाणों से वेधित करके सब लोगों को तपा रहा है, अर्थात् अपनी सत्ता, और माया सक्ति से सृष्टि करके सबको यथा योग्य कर्म फलदे रहा है, क्योंकि जीव जो कुछ करते कहते हैं जो कुछ जीवों से होता है, सो सब उस 'सस्सा' नाम ईश्वर के घर रूप हृदय में सुन पड़ता है, वह सब जानता है, सबके प्रकाशक साक्षी आत्म स्वरूप है, इससे वह जितनी बात को जानता है, इतनी वातको अन्य कोई नहीं जानता है, अथवा ईश्वर सबके पाप पुण्य को जानता है 'इतनीबात' नाम इस वातको कोई नहीं जानता है, इससे सब कोई पाप करता है, राम नाम लेकर पराता नहीं है ॥ अथवा 'सस्सा' नाम परोक्ष कल्पित वस्तु रूप 'सरा' गुरु आओं ने वरियाई से रचा है, और अनेको शब्द राग छंदादि रूप 'शरों' से वेधन करके लोगों को तवाया है, परन्तु उसका भी 'सस्सा

नाम ईश्वरके घरमें सुनाई होती है, 'गुन' नाम विचार होता है, अन्य किसीको असत वस्तु कुमार्ग में फंसाने के फल गुरु आओं को भी भोगना पड़ता है, परन्तु इस बात को कोई अविवेकी नहीं जानते हैं। अथवा 'स' नाम क्रोध, और 'सा' नाम लक्ष्मी रूप 'सरा' वरीआई से रचागया है' नाम अन्याय के फल भोगाने के लिये वनाया गया है। सो दोनों शर बेध कर सब जीवों को तपाते हैं, और सब जीवों के घरमें उस सस्साकेहीं सुनना गुणना होता है, और उसको सरा तथा शर रूप जानकर कोई भागते नहीं हैं। अथवा हे 'सस्सा' नाम ईश्वरोंके ईश्वर रूप जीवो! तुम सबने आप वरियाई से यह संसार रूप सरा रचाहै, जो सरा कामादि रूपशरों से वेधे हुये तुम सब लोगोंको तपा रहा है, और हे'सस्सा!' तेरे घरमें अन्य अनेको सुन गुन होतेहैं, परन्तु इतनी बात सब कोई नहीं जानते-हो कि अविवेक मूलक वरियाई से रचाहुआ संसारको नष्ट कर डालूं इत्यादि अर्थ हैं लिखा है कि

[योऽयंहिंस्रं सापराधं शपेत्कोपेन धार्मिकः। विनाशः सापराधस्य धर्मोनष्टश्चधार्मिणः ॥ १ ॥ दुःखमूलंहिसंसारः स यस्यास्ति स दुःखितः। तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरःक्वचित् ॥ २ ॥ प्रभवं सर्वदुःखाना मालयं सकलापदाम्। आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत्त्वणात् ॥ ३ ॥ ईश्वराधीनतो जन्तुः स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा। निजकर्मा-नुसारेण पुनरायाति यातिच॥४॥] जो यह धार्मिक पुरुष किसी हिंसक अपराधी के प्रति क्रोधकर-के शाप देता है, वहां उस शाप से अपराधी का नाश होता है, और क्रोध से धार्मिक के धर्मभीनष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ स्त्री, पुत्र, धनादि रूप संसारही दुःख के मूल रूप है वह संसार जिसको है वह दुःखी है, और जो उसका अन्तः करण से त्याग किया है वही सुखी है अन्य कोई कहीं सुखी नहीं है ॥ २ ॥ इसलिये सब दुःखों के कारण, सब आपत्तियों के घर और सब पापों के अधिकरण रूप संसार को शीघ्रही त्यागना चाहिये ॥ ३ ॥ ईश्वर के अधीन होकर प्राणी स्वर्ग वा श्वभ्रमें अपने कर्मों के अनुसार बारम्बार आता जाता है ४ ॥

चौतीसी।

हाहा करत जीव सब जाइ। हर्ष शोक सब माहिं समाई॥
हँकरि हँकरि सब बड़बड़ गयऊ। हाहा मर्म न काहू पयऊ ॥ ३४ ॥

टीका—(हःकोपे वारणे हश्च तथा शूली प्रकीर्तितः) क्रोध, निषेध, शूली, अर्थ के वाचक ह शब्द है। और भी साहेब कहते हैं कि हेमनुष्यो! राम नाम को लेकर संसार से भागने बिना सब जीव 'हाहा' नाम क्रोध करते हुये पूर्वकहे संसार रूप सरामेंही जारहे हैं, और क्रोधादि से क्षणिक हर्ष, और महान् शोक भी सब जीवों में समाये हैं, अर्थात् द्वन्द्वों से सब।

व्याप्त हैं, और इन द्वन्द्वों के बश में होकर वड़े२ ऋषि मुनि देवता लोग भी 'हँकर २' के नाम रो २ कर तथा व्याकुल पीड़ित हो होकर गये मरण को प्राप्त हुये, और संसारही में प्राप्त हुये, परन्तु काहूने 'इस हाहा के मर्म नहीं पाया' नाम कोई बिरलेही इसके मर्म जाने कि यह क्रोध कैसे होता है, इसके कारण कौन है, कैसे इसकी निवृत्ति होती है इत्यादि, बहुत लोग नहीं जाने, अर्थात् काम तृष्णा ममता अभिमानादि इसके कारण हैं, वैराग्य विवेकादि से इनकी निवृत्ति होती है इत्यादि भेद को जानने आदि बिना क्रोध करके बड़े २ दुःखी हुये कोई सुखी नहीं हुये। अथवा हेमनुष्यो! सतशास्त्र ज्ञानी महात्मा जिन मार्ग व्यवहारादिकों का 'हाहा' नाम निषेध करते हैं, उनहीं मार्गादिकों में जीव सब जाते हैं, इससे सब में हर्ष शोकादि द्वन्द्व समाये हैं, और उन द्वन्द्वों से सब बड़े २ भी हँकर२, के गये, और उस 'हाहा' नाम निषेध के मर्म गुरुआदि से नहीं प्राप्त कर लिये जिससे कल्याण होता, इसलिये तुम उसे समझो। अथवा 'हाहा' नाम क्रोधों के क्रोध अथवा परहितों को अत्यन्त निषेध रूप पर अपकारों से अपकार करते हुये क्रोधी जीव सब नरकादि में जाते हैं, इससे वर्तमान हर्ष उन सब में फिर शोक रूप होकर समाता है, और इस हाहा के मर्म जिन काहूने नहीं पाये, वे बड़े २ सब भी हँकर २ के गये, और जाते हैं, इसलिये हे मनुष्यो! इसे जानो, और नष्ट करो जिससे तेरा कल्याण होवे। आत्म पुराणमें लिखा है कि [जयान्तिमुनयः केचित्पञ्चवाणं कथञ्चन। तदीयं तनयं क्रोधं शक्ता जेतुं न तेऽपिहि ॥१॥ अश्ववारं यथा दुष्टो बाजी गर्ते निपातयेत्। एवं क्रोधोऽपि नरके नरमाशुनिपातयेत् ॥ २ ॥ कोई मुनि कामदेवको किसी प्रकार जीत लेते हैं परन्तु उसके पुत्र क्रोध को जीतने के लिये वे भी समर्थ नहीं होते हैं ॥ १ ॥ जैसे दुष्ट घोड़ा अश्ववारको गड़हे में गिराता है वैसे क्रोध भी मनुष्य को शीघ्र नरक में पातकरता है ॥ २ ॥

चौंतीसी।

क्षक्षा क्षण में सब मिटि जाई। क्षेव परे कहु कहां समाई ॥
क्षेव परे काहु अन्त न पाया। कहहिं कबिर अगुमन गुहराया ॥ ३५ ॥

इति श्री सद्गुरु कबीर साहेब कृत बीजकाख्यग्रन्थस्य अष्टमं चौंतीसीप्रकरणं समाप्तम्।

टीका—[क्षः क्षेत्रे वक्षसि प्रोक्तो बुधैः क्षः शब्दशासने] क्षेत्र, वक्षस्थल, शब्द का उपदेश के वाचक क्षशब्द है, तथा [क्षो नृसिंहे हरौ तद्वत्क्षेत्रपालकयोरपि] नृसिंह, हरि, क्षेत्र, पालनकर्ता, अर्थ के वाचक भी क्षशब्द है। क्रोधादि को त्यागने के लिये साहेब उपदेश करते हैं कि हेमनुष्यो! यह 'क्षक्षा' नाम शरीररूप क्षेत्र 'सब क्षण मात्र में मिट जाते हैं' नाम नष्ट

हो जाते हैं, इससे इस क्षण भंगुर अपना शरीर के लिये वा इसके उपकारकों के लिये क्रोधादि नहीं करो, और विचार कर कहो समझो कि 'क्षेव परने पर' नाम मृत्यु होनेपर जीव कहा समाता है, क्योंकि विचारादि बिनाकाहुने क्षेव परनेका 'अन्त' नाम समाप्ति, अथवा मर्म नहीं पाया न पाहीं सकता है, साहेब कहते हैं कि यह बात 'अगुमन' नाम अग्रगामी पूर्व के महात्मा लोग 'गोहराये गये हैं' नाम स्पष्ट पुकारकर कह गये हैं, इसलिये विचारादिसे क्षेत्र के भेद को जानकर क्रोधादि को त्यागो। अथवा हाहा के मर्म क्यों नहीं कोई पाया ऐसी जिज्ञासा होने पर साहेब कहते हैं कि 'क्षक्षा' नाम मानवशरीर रूप क्षेत्र सब क्षण में मिट जाते हैं, और क्षेव परने पर कहो कि अज्ञजीव कहाँ समाता है, अर्थात् सो कोई कह नही सकता है ऐसे चौरासीलक्ष योनिआदि में जीव प्राप्त होता है, इससे जो इस जन्म में हाहा आदि के मर्म नहीं पाया सो कोई मरनेपर भी अन्त नहीं पाया सो अगुआ लोग गोहराय गये हैं। अथवा हेमनुष्यो! आत्मा रूप क्षेत्रज्ञ से भिन्न सब 'क्षक्षा' नाम क्षेत्र नष्ट हो जाते हैं, तहां मृत्यु रूप वा ज्ञान रूप तरवार के धार परने पर सब क्षेत्र कहाँ समाते हैं, सो कहो, अर्थात् सब ब्रह्मात्मा में लीन हो जाते हैं सो जानो, और ब्रह्मात्मा में लीनहोने ही से क्षेव परने पर मन बुद्धिआदि रूप क्षेत्रों केभी किसी ने अन्त नहीं पाया न पाता है क्योंकि ये सब अनन्त स्वरूप हो जाते हैं सो अगुआ लोग गोहराये हैं। अथवा 'हे क्षक्षा' नाम निसिंहों के नृसिंह हरियों के हरि पालकों के पालक स्वरूप वाले मनुष्यो! क्षण मात्र में सब संसार मिट जाता है इत्यादि अर्थ है॥ क्षक्षा क्षण परलय मिटिजाई। क्षेव परे तव को समुझाई॥ इस पाठ के स्पष्ट ही अर्थ है॥ इति शम्॥

* ओंकारवाच्यं शशिसूर्यनेत्रं साक्षिस्वरूपं परमद्वितीयम्।
अग्राह्यं सत्यं गुरुवाक्यलभ्यं चाकाशतुल्यं कमहंनुवन्दे॥ १॥

श्री १०८ पूज्यपाद रमितादास पूज्यपाद हरिहर सुधी विनेय हनुमदासकृता चौंतीसीप्रकरणस्य शिशु बोधिनी टीका समाप्ता।

* टिप्पणी—जो ओंकार के वाच्य शशि सूर्य नेत्र वाला है, और वस्तुतः साक्षीस्वरूप पर अद्वितीय अग्राह्य सत्य गुरुवाक्यसे लभ्य आकाश तुल्य है। उस सुख स्वरूप की मैं वन्दना करता हूं॥

अथ बेलि प्रकरण नवम ९।

१ प्रथम बेलि।

हंसा सरवर शरिर में हो रमैयाराम।
जगत चोर घर मूसल हो रमैयाराम॥
जे जागल से भागल हो रमैयाराम।
सुतल से गेल विगोय हो रमैयाराम॥
आजु बसेड़ा नियरे हो रमैयाराम।
काल्हु बसेड़वा [बड़ि] दूरि हो रमैयाराम।
परेहु बिराणे देश (वा) हो रमैयाराम॥
नयन मरेहुगे दूरि हो रमैयाराम।
त्रास मथन दधि कीयो हो रमैयाराम॥
भवन मथेउ भरपूर हो रमैयाराम॥
फिरि [के] हंसा पाहुन भयल हो रमैयाराम।
वेधिन्ह पद निरवान हो रमैयाराम॥
तुम हंसा मन मानिक हो रमैयाराम।
हटलो न मानहु मोर हो रमैयाराम॥
जस रे किय तस पायहु हो रमैयाराम।
हमर दोष जनि देहु हो रमैयाराम॥
अगम काटि गम कियेहु हो रमैयाराम।
सहज कियेहु व्यापार हो रमैयाराम॥
राम नाम धन बणिज किय हो रमैयाराम।
लादेहु वस्तु अमोल हो रमैयाराम॥
पांच लदनु [आँ] लादि चले हो रमैयाराम।
नव बहियाँ दश गोणी हो रमैयाराम॥
पांच लदनुआँ हारे हो रमैयाराम।

खांखर डारिन्ह फोरि हो रमैयाराम ॥
शिर धुनि हंसा उड़ि चले हो रमैयाराम।
सरवर मीत जोहार हो रमैयाराम ॥
आगि जो लागि सरवर [में] हो रमैयाराम।
सरवर जरि भेल धूरि हो रमैयाराम ॥
कहहिं कबिर सुनु सन्तो हो रमैयाराम।
परखि लेहु खरा खोंट हो रमैयाराम ॥

टीका—पूर्वप्रकरणमें साधन रूप शाखा पत्रादि सहित ज्ञान वृक्षका, तथा ओंकार रूप महावृक्षका निरूपण करके ज्ञान वृक्षसे तिरस्कार करने योग्य, और ॐकार वृक्षके आश्रित रहने वाली माया, संसार रूप बेलिका निरूपण रूप, और उससे रहित होने के लिये उपदेश रूप छोटा बेलि-प्रकरण की रचना साहेबने की है। 'वहां जैसे' मानसरोवरमें रहने वाला हंस पक्षी व्याधा को आने-पर, यदि आसक्ति को त्यागकर भागता है तो सुखी रहता है, उसमें आसक्त रहने से पीड़ित होता है। वैसेही माया मोह काम क्रोधादि रूप शत्रु चोरोंसे युक्त इस संसार तथा शरीर रूप मानसरोवर में आसक्त मनुष्य पीड़ित होता है, इससे इसको हंस कहा है, और क्षीर नीर के नाईं सत्यासत्यादि के बिबेक करनेके सामर्थ्य युक्त होने से भी हंस कहा गया है। और आत्म विषयक ज्ञान द्वारा अबि-द्याआदि रूप बन्धन के कारणों के तथा बन्धनों के नाशक होने से पर ब्रह्मात्मा शुद्ध चेतनको, तथा बुद्धि आदि उपाधि वाला गमन कर्ता जीवको भी हंस कहते हैं। लिखा है कि [नवद्वारे पुरे देहीहंसोलेलायतेबहिः] नवद्वार वाला शरीर रूप पुरमें 'देही' नाम बुद्धि रूप उपाधि द्वारा देहवाला होकर 'हंस' नाम गमन स्वभाव वाला आत्मा 'बहिः' नाम बाहर के बिषयों में जाता है, और वास्तविक स्वरूप स्वभाव से गमनागमन से रहित है। हिंसा, और गमन, अर्थके वाचक 'हन्' धातु से हंस-शब्द बना है, इसलिये गमनादि अर्थका योगसे सूर्यादि को भी हंस कहते हैं, परन्तु प्रकृत में तात्पर्य-भेदसे, अनेक योनि आदि में गमन करने वाला सोपाधिक जीवके, तथा स्वबिषयक ज्ञानसे अज्ञानादि-निमित्तक दुःखों को नष्टकरनेवाला ब्रह्मात्मा के बोधक हंस पद है। और रमैयाराम पद भी अज्ञा-नादिसे से सब योनिआदिमें रमने वाला सूक्ष्म संघातविशिष्ट जीवके, तथा अविकारी रूपसे सबमें रमनेवाला प्रकाशस्वरूप शुद्धचेतनके, तात्पर्यभेद से बोधक है, इससे अर्थ है कि 'हे शरीर-रूप सरोवर में रमैयाराम' नाम अज्ञानादि बश रमण करनेवाले जीवो! तुम इस शरीर रूप सरोवर में हंस परात्मास्वरूपहो, अथवा हे शरीररूप सरोवर के हंस! नाम जीवो! तुम रमैया विभुचेत-नात्मा रामस्वरूपहो, और हे रमैयाराम! 'जगत' नाम इस सब संसारी जीवों के 'घर' नाम शरीर में माया मोहादि निद्रायुक्त जीवों के विचारविवेकादिरूप सम्पत्तियों को, कामादिरूप 'चोर

मूसल' नाम मूस लिये, और मूस रहेहैं अथवा जगत में सब प्राणी के घररूप शरीर को मृत्युरूप चोर बारम्बार 'मूसता है' नाम नष्ट करता है, और जीवों को पीड़ित करता है, हे रमैयाराम ! इस संसार में, तथा इस मानव शरीर में विवेक वैराग्य सत्सङ्गादि से जे पुरुष 'जागल' नाम माया मोह रहित हुये वा होने हैं 'से' पुरुष राम नाम को लेकर इस संसार, और शरीररूप सरोवर से 'भागल' नाम इन विषयक आसक्ती जन्म मरणादि सबसे सदा रहित होगये, और होजाते हैं। इससे मानो संसार से परायजाते हैं, और हे रमैयाराम ! जे इसमें सोये रहगये वे 'सूतल' पुरुष विचारादि को, तथा अमूल्य मानुषजन्म, शान्ति, मोक्षसुखको विगोयकर मृत्यु के वशमें प्राप्त हुये, परवश होकर शरीर रूप सरोवर को त्यागे और महाकष्ट दशा में प्राप्त हुये, तथा होते हैं। इसलिये तुम जागो, और संसारकष्ट से रहित होने के लिये राम नाम लेकर संसार से भागो। और हे रमैयाराम ! 'आजु' नाम इस जन्म में तेरा 'बसेरा' नाम बास मोक्षसुख, आत्माराम के 'नियरे' नाम पासमें है, यदि विवेक विचारादि करो तो शीघ्रहीं आत्माराम को प्राप्त करके मुक्त होसक्तेहो। और हे रमैयाराम ! इसके बाद काल्ह देवतिर्यगादि योनियों में प्राप्त होने-पर मोक्ष आत्माराम से तेरी 'बसेड़वा' नाम कुत्सित बासस्थिति बड़ी दूरहोजावेगी अर्थात् तिर्यगादि योनियों में अत्यन्त तमोगुण से व्याप्त रहने से तथा देव योनियों में अत्यन्त रजो गुण भोगासक्ति से व्याप्त रहने से तेरा कल्याण होना कठिन, और दूरहो जावेगा, इसलिये शीघ्र यत्न करो। और हे रमैयाराम ! अपने देशके सदृश यह मानवशरीर है, जिसमें सब साध्य साधन सुख दुःख आत्मानात्म शुचिअशुचि नित्य अनित्य हित अहित बन्ध मोक्षादि के ज्ञान हो सकते हैं, और ज्ञान के साधन गुरु शास्त्रादि भी मिलते हैं, तथा प्राप्त करने योग्य साध्य साधन थोरे परिश्रम से प्राप्त भी किये जा सकते हैं। ऐसे अपने देश सदृश इस शरीर को त्याग कर तुम विवेक विचारादि विना 'विराणे देशमें परेहु' नाम अनेकों बार पर चूक हो, और यदि अबकी भी जाग कर नहीं भागोगे तो फिर भी परोगे, जिन विराणे देश सदृश पशुआदि योनियों में पूर्वकहे साध्य साधनादि के ज्ञानादि नहीं हो सकेंगे अपना कुछ भी सामर्थ्य नहीं रहेगा। अथवा मोक्षादि सम्पादन करने में स्वतन्त्र के सदृश इस लोक, तथा शरीर को त्याग कर मृत्यु रूप यम के देश में परे हो, और परोगे, और हे रमैयाराम ! उस विराणे देशमें भी विवेक विचारादि रूप 'नयन' नाम नेत्र से अत्यन्त दूर रहकर फिर बारम्बार मरोगे। अथवा हे रमैयाराम ! तुम 'विराणे देशमें परेहो' नाम आत्मलोक से अन्यलोक वस्तु में मन लगायेहो, इससे हे रमैयाराम ! तुम नयन से 'दूर' नाम रहित अविवेकान्ध होकर मरोगे, और हे रमैयाराम ! जागने बिना नयन से दूर होकर मरने से, तथा विराने देशमें प्राप्त होने से दधि के सदृश 'त्रास' नाम भयने तेरा मथन किया है, और करता है, अर्थात् अनेको भय से तेरा मन विवेक विज्ञानादि बिना पीड़ित रहता है, और हे रमैयाराम ! भयसे पीड़ित जो तेरा मन उस मन से युक्त तुमशरीर रूप भवनको भी 'भरपूर' नाम अत्यन्त मथेहो और मथतेहो। अथवा पशु पक्षीआदि योनियों में प्राप्त जीवों को त्रास दधि सदृश मथन करता

है, और त्रासही जीवों को मथन करके शरीर को भी अत्यन्त मथन करता है, और हे रमैयाराम ! हंसा ! जो कोई तेरा शरीर जब भयादिसे तथा रोग जरा अवस्था आदि से अत्यन्त मथा गया वा मथा जाता है, तब हे हंसा ! उस शरीर सरोवर से पाहुन हुयेहो, और फिर होतेहो नाम आगन्तुक अतिथीके सदृश शीघ्रही उसे छोड़कर चल देते हो, परन्तु हे रमैयाराम ! तुम स्वस्थयुवाअवस्थामें इस शरीर सम्बन्धी मोह आसक्ति आदि को त्यागकर निर्वाणपद मोक्षकी प्राप्ति नहीं कियो न करते हो. किन्तु त्रासादि से मथित होते हो, और शरीरों को अत्यन्त मथित होने पर उसे त्याग २ कर अन्य २ शरीरों का धारण करते हो, इससे हे हंसा ! तुम सब दुर्लभ मानव तन पाकर भी निर्वाणपदको 'बेधिन्ह' नाम वेधन किये हो, नाम शरीर में आसक्ति से विषयभोगादि से तुमसब अपने २ मोक्षोंको अपनेही नष्ट खराव कियेहो अभी भी उसकी प्राप्ति करो, और हे रमैयाराम ! हंसा ! तेरी यह दुर्दशा क्यों होरही है, मनुष्य जन्ममें समीप उपस्थित मोक्षका अनादर क्यों किये हो, और करते हो कि तुम अपने मनमानिकहो, अर्थात् विवेक विचारादि रहित मन के अनुसार कार्य करते हो, इससे तुम 'मोर हटलो' नाम हटावल नहीं मानते हो, अर्थात् विवेक वैराग्यादिसम्बन्धी गुरुके उपदेशों का धारण नहीं करतेहो, और गुरु दुःखद संसार से हटाकर आनन्दस्वरूप आत्माराममें स्थिर करते हैं, परन्तु तुमस्थिर नहीं होतेहो इसीसे तुझेसब दुर्दशा आदि भी होते हैं, और हे रमैयाराम ! तुम सब जैसा किये हो वैसा पायेहो, और हे हंसा ! तौभी गुरु के उपदेशों को नहीं मानकर जैसा करते हो वैसा पावोगे इसलिये हे रमैयाराम ! 'हमर दोष जनि देहु' अर्थात् कष्ट आनेपर गुरुमहात्मा ईश्वरादि के अपराध नहीं बतावो अज्ञानआसक्ति वासना युक्त तेरेही मन के सब अपराध हैं, और कुमार्गमें जाताहुआ अन्ध पुरुष को देखकर सुमार्ग नहीं बताने से द्रष्टा दोषी होता है वताने पर आग्रहादि बश यदि वह अन्ध कूपमें गिरे तो अन्धही दोषी होता है, इसी प्रकार गुरु के उपदेशों को नहीं मानने से यह भी तेराही दोष है, और हे मानवशरीर में प्राप्त रमैयाराम हंसा ! तुम सबने अगम जंगल के वा समुद्रके सदृश चौरासीलाख योनियों को और वहां के दुःख अन्धतम अज्ञानादिकों को काटकर 'गमकियेहो' नाम सर्वत्रभ्रमण करके सबदुःख अज्ञानादिकोंको भोगकर संसार के किनारे पर आयेहो । परन्तु जैसे कोई बालक कठिन जङ्गल से पार होकर नादानता से फिर उसी में घूसजावे तथा समुद्र से पार होकर किनारे में डूबजावे हे रमैयाराम ! वैसाही तेरा हाल है क्योंकि विवेक विचार सतधर्मादि नहीं करते हो, और 'सहज व्यापार कियेहु' नाम किये हो, और करतेहो, अर्थात् जो आहार निद्रा मैथुन राग द्वेषादि पशु पक्षी आदि में भी स्वभाव सेही सिद्ध है सोई तुम भी करतेहो इससे तेरा मानवजन्म निष्फल जाता है, और हे रमैयाराम ! तुम विवेकादि बिनाही किसीसे राम नामादि सुनकर केवल राम के अर्थात् ईश्वर के वा दशरथापत्यादिके नामस्वरूप धनकाही वणिज कियेहो वा करतेहो, अथवा रामके नाम, और धन दोनों के व्यापार कियेहो अथवा राम नाम से भी धनकेही लिये वणिज किये हो, अर्थात् धनादि की वासना सेही रामादि नामों को रटतेहो, और हे रमैया-

राम ! जिस मानवशरीर में तुम सब सहज व्यापार, तथा राम नाम धनका वणिज कियेहो उसीपर तुम 'अमोल' नाम अमूल्य मोक्षसुख रूप वस्तु को भी लादेहो, अर्थात् शरीरादिमें आसक्त रहने से स्त्री पुत्र धनादि जन्य शारीरिक सुखकोही अमूल्य मोक्षसुख सदृश जानकर इस शरीर-पर अभिमान से लादे हो, और लादतेहो, और हेरमैयाराम ! तुम ' पांचलदनु ' नाम पांचभौतिक शरीररूप लदनाबैलपर अनेकों कर्मादि तथा उसके फलसुखों को लादकर संसार में सुखादि की वृद्धि आदिके लिये चलेहो। और हेरमैयाराम ! इस व्यापार में तेरे साथ में चतुष्टय अन्तःकरण पांचप्राणरूप ' नव वहियां है ' नाम शरीर को बहने चलाने वाले साथी हैं, इनकेही साथ से तुम भी इस व्यापार में लगे हो, और दशइन्द्रिय गोणी हैं, अर्थात् बैल के पृष्ठपर गोण नाम बोरा रहता है जिसमें बोझा लादा जाता है उसके सदृश शरीर में दशइन्द्रिय हैं, जिनके आश्रित सब व्यापार सुखादि शरीर में होते हैं, उनके द्वारा तुम सुख दुःख भोगते हो, अथवा व्यापारी को मापने के लिये पात्र विशेषरूपगोण रहता है उस के सदृश इन्द्रिय हैं क्योंकि तुम इनके द्वारा विषय विषयजन्य सुखकी प्राप्ति करते हो, परन्तु हेरमैयाराम ! जब ' पांचलदनुआँ ' नाम यह पाँच-भौतिक शरीर हारे हैं वा हारते हैं नाम रोग जराआदि बश जब शरीर असमर्थ होते हैं वा जब असमर्थ हुये हैं, तब हेरमैयाराम ! जिन सुखआदिकोंको तुम अमूल्य समझते हो उन्हें वे पांचलदनुआँ ' खांखर ' नाम असार तुच्छ खँखरी धानादिके सदृश फोरडारिन्ह, और फोरडारते हैं, अर्थात् रोगादि अवस्थामें उस तुच्छ सुखको भी यहशरीरही नष्टकरदेता है अथवा लदनु-आं सदृश जब शरीर सम्बन्धी पांचभूत हारते हैं तब खांखर नामक पात्रविशेषके सदृश शरीरको ' फोर डारते हैं ' नाम नष्ट कर देते हैं मनुष्य जन्म योंही वीतजाताहै, हेरमैयाराम हँसा ! इस प्रकार शारीरिक सुख तथा शरीर को नष्ट होनेके समय शिरधुनकर अनेको बार इस मानवशरीर रूप सरोवर से भी उड़ चले हो, और उड़चलोगे, परन्तु हेरमैयाराम ! इस शरीरमें आसक्त रहने से इसे मित्र मानते हो इससे मरते समय भी इस सरोवर मीतको 'जोहार' नाम प्रमाण करके फिर इससे मिलने की वासना सहित ही चलते हो अथवा अन्य सरोवर रूप मीतको 'जोहार' नाम जोह अर्थात् खोजमें चलते हो, और चलोगे, और हेरमैयाराम ! जिस सरोवरसे तुम उड़चलेहो, उस सरोवरमें अग्निलगी, इससे हेरमैयाराम ! वह सरोवर जरकर धूरहुआ वा किसी प्रकार नष्ट हो गया, इसी प्रकार इस शरीरसे उड़ने पर भी यह सरोवर नष्ट होगा, परन्तु विवेक विज्ञान बिना यदि इसमें आसक्त रहोगे तो फिर बुराहाल होगा, साहेब कहते हैं कि हेरमैयाराम ! सन्तो नाम सज्जनो ! सतगुरु के उपदेशों को सुनो उनके हटाना मानो, और हेरमैयाराम ! उनके उपदेशोंको सुनकर निरन्तर श्रद्धा भक्ति पूर्वक विचार सत्सङ्गादि से 'खरा' नाम सत्यसुखस्वरूप चिदात्माको, और 'खोट' नाम अनित्य दुःखरूप शरीरादि को 'परखलो' नाम इन के विवेक-पूर्वक आत्माराम का अपरोक्ष अनुभवकरलो, और अनुभव करके समूल-संसार की आसक्ति से रहित होजावो आत्मनिष्ठ अहिंसा सत्य शमदमदयादि परायणहोकर केवल

राम नामादि के उच्चारणादि से भी मोक्षकी आशा छोड़ो तब तेरा कल्याण होगा। जगत के जागत, मूसल के मूसे सुनलसंगेल के सूतलगेल, परेहु के परिहो, मरेहुगेदूरि के मरेहुगेदूरि मनमानिक के मणिमाणिक। दोष जनि देहु के दोषका देहु। व्यापारके विश्वास इत्यादि पाठ भेदहैं अर्थ भेदहै कि हे रमैयाराम! शरीररूप सरोवर में मोहनिन्द से सोनेवाला हंसा! 'जागत' नाम जागो मोहनिन्द को त्यागो, कामादि रूप चोर तेरे घरमें मूसते हैं, तेरे विवेक ज्ञानादि को हरते हैं, तुझे अन्धतम में गिराते हैं, होसकरो। 'जोकोई जागल सो भागल' इन चोरों से पृथक् होगया। स्थिरपद की प्राप्तिके नियरे में आज तेरा बास है, जागने से उस पद की प्राप्ति करसकते हो इत्यादि। और विराने देश में प्राप्त होने से नयनों से 'दूरि' नाम लोर ढारकर मरोगे। त्रास को दधि के नाई मथन कियेहो, जागने विना बारम्बार उसके बसमें हुयेहो। और 'हे भरपूर!' नाम विभुस्वरूप रमैयाराम! विवेकादि बिना 'भवन' नाम शरीरों को भी मथने हो। अर्थात् भयरूप वस्तु, और शरीरको मथकर इस दुखरूपमें ही तुम सुखादि प्राप्त करना चाहते हो। अथवा हे 'त्रास मथन!' नाम सबभयोंको ज्ञानमात्र से नष्ट करनेवाला आत्माराम स्वरूप जीवो! तुम अपना मथन विचारादि नहीं कियेहो, न करतेहो, किन्तु विकाररूप संसारदधि का मथन कियेहो, और करतेहो, उससे सुख चाहतेहो, परन्तु उस विकाररूप 'भव' नाम संसार को भी भरपूर नहीं मथेहो। अर्थात् विवेक विचारादि रूप मथनसाधनों से यदि संसार को भी पूर्णमथो तो उससे भी आत्माराम की प्राप्ति होसकती है। परन्तु सो नहीं करतेहो, इससे 'फिर' तुम संसार में 'पाहुन' नाम अतिथी रूप पथिक हुयेहो। और निर्वाणपद को वेधन कियेहो। अथवा हे रमैयाराम! जिन पुरुषोंने जागकर त्रासको दधिके सदृश विवेक विचारादि से मथन किया, उसे तोड़कर नष्ट करदिया, और शरीरको भी मथन किया, हंसरूप वे लोग संसार में फिर 'पाहुन होगये' नाम आगन्तुक सदृश सबके मान्य, तथा प्रारब्ध क्षय पर्यन्तहीं यहां के बासीरहे, फिर वे लोग निर्वाणपदरूप ब्रह्मात्मा में 'वेधगये' नाम लीन होगये। और हे हंसा! तुम सब भी मणिमाणिक की नाई स्वयं प्रकाशस्वरूप हो। परन्तु मलमुत्रमय शरीर में अभिमानकरके मलिन हुयेहो, मनके वशमें परेहो, और मेराहटाना भी नहीं मानते हो, इससे मुक्त नहीं होतेहो। और पीड़ित होकर ईश्वर गुरुआदि के दोष देतेहो, परन्तु तुम जैसा कियेहो वैसा पायेहो, हमारा क्या दोष देते हो। तुमने 'अगम' नाम मनआदि के अविषय सत्यात्मवस्तु को 'काटकर' नाम उसका निषेध करके अज्ञानादि से गम्य वस्तु शरीरादि को कियेहो, और उन गम्य सहज वस्तुओं का व्यापार तथा विश्वास किये हो, इससे तेराहीं दोष है। अब भी 'रामनाम' अर्थात् आत्माराम रूप धनके 'वणिज' नाम व्यापार किये जावो, और अब उस अमूल्यवस्तु कोहीं 'लादेहु' नाम लादना अर्थात् मन बुद्धिआदि में उसी को समझना, और स्थिर करना। पांच लदनु पर भी उसी को लादकर इन्हें चलने देना, और इसी लदनी में नवबहियां, और दशगोणकरो, तब तेरा कल्याण होगा। नहीं तो जब पांच चलदनु लौकिक व्यापार में हारेंगे, तब व्यर्थहीं शरीर को फोर डारेंगे इत्यादि॥ लिखा है कि [उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत॥ न चेदिहा वेदीन्महती

विनष्टिः] उठो जागो श्रेष्ठ गुरुओं के शरणमें प्राप्त होकर आत्म वस्तु को जानो। यदि इस जन्म में नहीं समझोगे तो तेरी महती विनष्टि होगी नाम विनाश होगा इत्यादि॥

२ द्वितिय बेलि।

भल सुमिरण जहँड़ायहु हो रमैयाराम।
धोखा कियो विश्वास हो रमैयाराम॥
ई तो है बन सीकत हो रमैयाराम।
सीरा कियो विश्वास हो रमैयाराम॥
ई [तो] है वेद भागवत हो रमैयाराम।
गुरु मोहि दीहल थापि हो रमैयाराम॥
गोबर कोट उठायहु हो रमैयाराम।
परि हरि फेंकहु खेते हो रमैयाराम॥
बुधि बल जहां न पहुँचे हो रमैयाराम।
तहवा खोज कस होय हो रमैयाराम॥
सो सुनि मन धीरज भयल हो रमैयाराम।
मन बढ़ि रहल लजाये हो रमैयाराम॥
फिरि पाछे जनि हेरहु हो रमैयाराम।
कालभूत सब आहीं हो रमैयाराम॥
कहहिं कबीर सुनु सन्तो हो रमैयाराम।
मति ढीगहु फैलाये हो रमैयाराम॥
इति श्रीसद्गुरु कबीरसाहेब विरचित बीजकाह्वग्रन्थस्य
नवमं बेलिप्रकरणं समाप्तम्॥

टीका—पूर्व बेलि के अन्त में कहागयाहै कि खराखोंटको परखकर खोंटका त्याग पूर्वक सत्यात्म-विचारादि परायण होवो इत्यादि। अब इस बेलि में उस पारख के बिना विपरीत प्रवृत्तिआदि का वर्णन करतेहैं, तथा फिरभी उपदेशदेतेहैं कि हे रमैयाराम! तुम सब विवेक पारख बिना 'भल सुमिरण' नाम भला श्रेष्ठ आत्मविचार चिन्तन ध्यानादि को 'जहड़ाये हो' नाम त्याग दियेहो, तथा 'भला' नाम श्रेष्ठ कल्याण कारक जिस आत्मवस्तु का स्मरणहै उसको 'जहड़ायेहो' नाम विवेकादि पूर्वक संसार

रहित आत्मवस्तु को नहीं समझते हो। अपने आत्मा को संसारी रूपहीं समझते हो। तथा भला शुभ-कल्याण कारक जिन महात्माओं के 'स्मरण' नाम चिन्तन है, उन परोपकारी महात्माओं को जहड़ाये हो, तथा 'जहड़ाते हो' नाम अनादरादि करते हो । और हे रमैयाराम ! 'धोखा' नाम मिथ्यास्मरण मिथ्यावस्तु मिथ्यासुख असत पुरुषों में विश्वास किये हो । अर्थात् मिथ्या वस्तुओं के बोधक होने से वस्तुतो वेदभागवत से भिन्न किसी ग्रन्थादि सम्बन्धी वाक्यों को उसग्रन्थके विचारादिकों को वेद सत्यविचारादि रूप मान लिये हो । और सर्वात्म स्वरूप भगवान्‌से भिन्नको भगवान् माने हो, असत उपदेष्टा को गुरु मान लियेहो। परन्तु हे रमैयाराम! विवेक विना तुम जिस असतवस्तु में विश्वास किये हो 'ई तो' नाम यह अनात्मपदार्थ तो इस संसाररूप वन के 'सिकत' नाम सिकता-वालूके सदृश निरस आनन्द रहित दुःख रूप है, तथापि हे रमैयाराम ! तुम इसमें 'सीरा' नाम सबसे श्रेष्ठपन का विवेक विना विश्वास किये हो । अथवा 'सीरा' नाम हलुआ महानभोग के सदृश सरसपन का विश्वास किये हो । और हे रमैयाराम ! विवेक पारख विनाही किसी अनात्म मिथ्याअर्थ को ही सत्य सुखदायी बतानेवाला ग्रन्थ को वा किसी स्तुति रूप अर्थ वादात्मक वाक्यमात्र को कहते हो कि 'ई तो वेद भागवत है' नाम उसी में विश्वास करलेते हो कि यही परमार्थतत्त्व सतधर्म के उपदेश रूप वेद है, तथा यही 'भगवत्' नाम ईश्वर को बताने वाला भागवत है । और हे रमैया-राम ! पारख विना समझते हो कि 'मोहि' नाम मेरे लिये गुरु भी यही थाप दिये हैं, अर्थात् पारख विना वस्तुतो वेद भागवत से भिन्न कोहीं वेद भागवत सतशास्त्र मानकर समझते हो कि मेरे कल्याणादि के लिये गुरु यह उपदेश स्थिर कर गये हैं, इससे यह मुझे ज्ञान के लिये प्रमाण है । अथवा साहेब कहते हैं कि हे रमैयाराम ! इस विपरीत ज्ञानादि को पारख से जानना तथा सत्य अनुभव उपदेश ही वेद भागवत वस्तुतो हैं, इसलिये उसीमें मुझे भी गुरुने स्थिरकर दिया है इत्यादि। परन्तु हे रमैयाराम ! तुम धोखे में विश्वास करके गोबर के कोट उठाये हो। अर्थात् जैसे कोई राजा गोबर के किला बना कर सत्रुको जीतना चाहे, वैसे तुम गोबर सदृश मिथ्या माया के विकारों के कोटउठाये हो । उनहीं को पारख विना आत्मा परमात्मा अपना रक्षक समझते हो। परन्तु इनसे काम क्रोधादि रूप तथा मृत्यु रूप शत्रुओं को जीत नहीं सकते हो । इसलिये हे रमैया-राम ! इन्हें 'परिहरि के' नाम इन विषयक आत्मादि बुद्धि त्यागकर इन्हें गोबर के सदृश 'खेते' नाम क्षेत्रमे 'फेंकहु' नाम फेंक दो, अर्थात् इन सब एकदेशी मायिक वस्तुओं को क्षेत्र रूप जानो । और पारख करके मुञ्जेषिका न्याय से सत्य अविनाशी वस्तुको पृथक् समझो। अथवा हे रमैयाराम ! तुम गोबर के कोट सदृश इस पांचभौतिक शरीर को 'उठाये हो' नाम इसमें आत्म-बुद्धि करके अनेको अभिमान धारण किये हो, उन अभिमानों को 'परिहरि' नाम त्यागकर इस शरीर को क्षेत्र रूप संसार में फेंकदो क्षेत्र रूप जानो । और हे रमैयाराम ! मन बुद्धि सहित मन बुद्धि इन्द्रिय के विषयरूप सब पदार्थों को क्षेत्र में फेंककर, स्वयं विचारो, तथा गुरु से पूछो कि 'जहां' नाम जिस सत्यात्माराम वस्तु में बुद्धिबल नहीं पहुँचते हैं, नाम जिसको घटादि सदृश नहीं प्रकाश ते हैं । 'तहवां' नाम उस आत्मवस्तु में खोज कैसे होता है, और हे रमैयाराम !

तहवाँ कैसे खोज होता है इसबात को गुरु से पूछने से, और उस उपदेश के धारणादि से ही तुझे धीरज होगा। क्योंकि हे रमैयाराम! पूर्व के जिज्ञासु मुमुक्षुओं को 'सो' गुरु के उपदेश सुनकरके ही 'धीरज भयल' नाम धैर्यहुआ है। और हे रमैयाराम! गुरु के उपदेश सुनकरके ही 'मनबढ़ि' नाम अभिमानी लोग 'लजायरहे' नाम अभिमान त्यागकर नम्र होगये। इसलिये हे रमैयाराम! गुरु के उपदेशों को सुनकर फिर 'पीछे' नाम संसार के तरफ 'नहो हेरो' नाम नही देखो। क्योंकि हे रमैयाराम! ये सब अनात्म पदार्थ 'कालभूत आही' नाम मृत्यु स्वरूप हैं, अर्थात् बारम्बार मृत्यु को प्राप्त कराने वाले हैं। साहेब कहते हैं कि हे रमैयाराम! सन्तो! इसलिये गुरु से सुनो' नाम श्रवण करो। और हे रमैयाराम! 'मति' नाम बुद्धि को 'ढीगहि' नाम पास मेंही फैलाये रहो, अर्थात् शुद्ध बृहद्बुद्धि से आत्मवस्तु को ही समझो, अनात्मवस्तुका चिन्तन नही करो, तब तुझे पूर्ण पारख की प्राप्ति होगी, तथा तेरा कल्याण होगा। अथवा हे रमैयाराम! गोबर रूप कोटको क्षेत्र में फेंकदो, और उसे फेंककर भी बाहर के ज्ञानकर्म इन्द्रियसे उस आत्मवस्तु को 'नहीं खोजो' नाम घटादि सदृश प्राप्त करना नही चाहो, क्योंकि जहां मन सहित बुद्धिके भी बल नही पहुँचताहै, तहां किस प्रकार से खोज हो सकता है। अर्थात् बुद्धि के भी आत्मा होने से वह बुद्धि मन का विषयरूप नही है, इसलिये मन बुद्धि के भी साक्षी रूप सेही सत्यात्मा जानने योग्य है। बुद्धि की प्रकाशकत्व शक्ति जिसमें नही पहुँचती है, उसको ज्ञान कर्मेन्द्रिय से कभी नही खोजना चाहिये, किन्तु विचार विवेक सत्सङ्गादि द्वारा उसे आत्मस्वरूप से प्राप्त करना चाहिये, वह इसी प्रकार प्राप्त होता है। इसलिये अन्यत्र खोजना त्यागकर विचारादि से आत्माराम को जानो। और हे रमैयाराम! 'सोसुनि' नाम जिसमें खोज नही होता है न हो सकता है,उस आत्माराम कोही सुनकर तथा प्राप्त करके सतपुरुषों को धीरता हुई है, और होती है। अविषय स्वरूप खोज रहित आत्मवस्तु की प्राप्तिसे ही सब क्षोभ चञ्चलता की निवृत्ति पूर्वक अचलस्थिति संताप मुक्तिहोती है, और उस आत्मवस्तु को सुनकेही सतपुरुषोंके 'मन बढ़ि' नाम मनकी वृद्धि उसके अनेको संकल्प विकल्परूप बाढ़मानो लजाय रहा है, अत्यन्त संकुचित हो गया है,तथा अन्तमें नष्ट होगया। अथवा अनेको रूपसे बढ़ करभी उसी आत्मवस्तुको सुनकर' नाम निरतिशय विभुस्वरूप जानकर महात्माओं के मन मानो लज्जित होकर शान्त हो रहा है, अपनी वृद्धि आदिको त्याग दियाहै। इसलिये हेरमैयाराम! तुमभी उस आत्मवस्तु कोही गुरुसे श्रवण करो उसवस्तुके उपदेशको सुनो, और फिर 'पाछे नहीं हेरो' नाम अन्यवस्तु लोकादिमें सुखसत्यवस्तु को नही खोजो, तथा आत्माराम को ज्ञानकर्मइन्द्रियसे कहीं नही खोजो उलट कर संसारको नही देखो, क्योंकि 'आत्मारामसे पाछे' नाम भिन्न कार्य कारण सबवस्तु कालस्वरूप हैं। इसलिये हे रमैयाराम! सज्जनो! बुद्धि को पासमें ही फैलाय कर अर्थात् आत्मविचारादिपरायण करके सद्गुरुके उपदेशों को सुनो, जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि। इतो है वनसीकत के वनसीकसी। सीराके सोरे। ईहै वेद भागवत के ईतो है वेदशास्त्र। फंकहुके जैवहु। रहलके परल। काल भूत के कालबूत्त। मति ढीगहु के मन बुधिढिग। इत्यादि पाठ भेद हैं। अर्थभेद है कि जिस धोकेमें तुम विश्वास किये हो सोतो 'किसी' नाम तानीहुई वा हिंसा करने वाली 'बनसी' नाम

मछली पकड़ने का कांटी 'सदृश है' नाम वड़िशरूप है। परन्तु रे रमैयाराम ! तुम 'सो' नाम उस वस्तु में हीं 'विश्वास किये हो' नाम दुःखद धोखावस्तुमें हीं सुखदादि बुद्धि मछलीके सदृश किये हो, जिससे पीड़ित होते हो और होवोगे। और उस वनसी सदृश वस्तुको सुखदादि बताने वाले ग्रन्थादिकोही कहते हो कि यह वेद शास्त्र है, गुरु मुझे थाप दिये हैं। अथवा मायिक धोखावस्तु-आदि हिंसक बनसी रूप हैं ऐसा समझना ऐसा उपदेश ही वस्तुतो वेदशास्त्रमें हैं। और यही मुझेभी गुरु 'थाप दिये हैं' नाम निश्चय करा दिये हैं। परन्तु हे गुरुविमुख ! रमैयाराम ! तुम मायिक वस्तुआदि रूप गोबरके कोट कामादिशत्रुको जीतने के लिये उठाये हो, उक्त ज्ञानकी प्राप्ति नहीं किये हो। इसलिये इस मानवतन रूप युद्धक्षेत्र को त्याग कर 'जावोगे' नाम शत्रुओंसे हारकर जावोगे। और हारकर ऐसे योनि दुःखमय स्थानादि में प्राप्त होवोगे, कि जहां इस समय बुद्धिके बलनहीं पहुंचता है। फिर तहां 'खोज' नाम जिज्ञासा पारखादि कैसे हो सकते हैं। इसलिये सो सुनकर मनमें धीरज धरो, क्योंकि धैर्य रहित मनवलिपुरुष पशुआदि योनियोंमें प्राप्त होकर लज्जित हो रहे हैं। अर्थात लज्जित सदृश स्पष्ट आपरणादिसे रहित हो रहे हैं। इसलिये तुम धीरज धरके आत्मविचारादिमें प्रवृत्त होवो, और फिरकर पीछे नहीं देखो। क्योंकि अनात्म सब वस्तु कालके 'बृत्त' नाम आकर प्रतिमास्वरूप हैं, इनसे इन्हें देखने खोजने से काल का वशमें परोगे इत्यादि।

* कामादिव्याप्तचित्तं परसुखविमुखं मुह्यमानं भवाब्धौ ।
त्रस्यन्तं वा व्रजन्तं जनिमृतिवशगं नाथमानं शरण्यम् ॥
कारुण्या द्बोधयन्तं जहिहितु सकलं जागृहि त्वं रटन्तम् ।
वन्देऽहं तं शरण्यं बहुविमलदृशा तारयन्तं दयालुम् ॥ १ ॥

श्री १०८ पूज्यपाद रमितादास हरिहर सुधि विनेय हनुमद्दास कृता बेलिप्रकरणस्य शिशुबोधिनी टीका समाप्ता ॥

* टिप्पण। कामादिसे व्याप्त चित्तवाला, परसुखसे विमुख, संसार समुद्र में मोहित, डरता हुआ, कुटिल गतियुक्त, जन्मादिके बशवर्ती, किसी शरण्यकी स्तुति करता हुआ मनुष्यको करुणासे जगाते हुये, सबको त्यागो मोह निन्द से रहित होवो इस प्रकार कहते हुये अत्यन्त विमल दृष्टिसे मनुष्य को तारते हुये दयालु शरण्य सद्गुरुकी बन्दना करता हूँ ॥

अथ बिरहुली प्रकरण दशम १०।

१ बिरहुली।

आदि अन्त नहिं होते बिरहुली। नहिं जर पल्लव पेड़ बिहुरली॥
निशि वासर नहिं होते बिरहुली। पवन पानि नहिं मूल बिरहुली॥
ब्रह्मादिक सनकादिक बिरहुली। कथिगये योग अपार बिरहुली॥
मासअषाढ़े शीतल बिरहुली। बोइन सातो बीज बिरहुली॥
निति कोड़हिं निति सींचहिं बिरहुली। निति नव पल्लव पेड़ बिरहुली॥
छिछिल बिरहुली छिछिल बिरहुली। छिछिल रहल तिहुं लोक बिरहुली॥
फुलवा एक भल फुलल बिरहुली। फूलि रहल संसार बिरहुली॥
सो [फुल] वन्दहिं भक्तजना बिरहुली। वान्दि के राउर वांह बिरहुली॥
सो [फुल] लोढ़हिं सन्तजना बिरहुली। डंसिगेल बैनल सांप बिरहुली॥
विषहर मन्त्र न मानै बिरहुली। गारुड़ बोल अपार बिरहुली॥
विषकि क्यारि तुम बोयहु बिरहुली। लोढ़त का पछताहु बिरहुली॥
जन्म जन्म यम अन्तर बिरहुली। फल एक कनयल डार बिरहुली॥
कहहिं कबीर सचु पाव बिरहुली। जो फल चाखहु मोर बिरहुली॥

इति श्री सद्गुरु कबीर साहेब कृत बीजकाख्यग्रन्थस्य दशमं बिरहुली-प्रकरणं समाप्तम्॥

टीका। अशुद्ध मन बुद्धि से अगम्य तथा अविषय स्वरूपआत्मा को गुरुसे पूछकर जानना चाहिये इत्यादि, उपदेश बेलि प्रकरणमें दिया गया है। परन्तु उस आत्मतत्त्वके स्वरूपको कहने बिना तथा सामान्य रूपसे समझने बिना पूछना विचारना आदि नहीं हो सकते हैं। इसलिये संक्षेप से आत्मवस्तु के स्वरूपका वर्णन इस बिरहुली प्रकरणमें करते हैं। और उस आत्मतत्त्वकी प्राप्ति के लिये किन्होंने उपाय कहा है। और उपाय बतावेपर भी सब मनुष्य उन उपायोंका अनुष्ठान क्यों नहीं करते हैं, इत्यादि अर्थों कोभी संक्षेपसे कहते हैं, तहां सर्वात्मस्वरूप का अनुभव जिस को नहीं हुआ है, इसलिये ब्रह्मात्मासे जो अपना 'बिरह' नाम वियोग मानता है, और अपने से अत्यन्त भिन्न आदि अन्त रहित ईश्वर को वा ब्रह्मको जो मानता है। और उस ईश्वर वा ब्रह्मसे जो सृष्टिकालमें अपनी उत्पत्ति मानता है, और तबसे ही वियोग मानता है, तथा उस पत्तिरूप ईश ब्रह्मकी प्राप्ति बिना जो अपना नाश मानता होवे, उस पुरुषको बिरहुली कहते हैं। तथा जो कोई 'बिरह काहुल' नाम उद्गार हल्ला करता है उसेभी बिरहुली कहते हैं।

उन बिरहुलियों के प्रति साहेब कहते हैं कि हे बिरहुली ! तुम्हारे 'आदि अन्त' नाम उत्पत्ति नाश नहीं होते हैं, तुम सब उत्पत्तिआदि के भी साक्षी स्वरूप नित्य अविकारी चेतनात्माहो, और उत्पत्ति नाशका अभाव सेही तुम अपने में, अस्ति, बृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, रूप विकारों का भी अभाव समझो, क्योंकि जिसके जन्म तथा नाश होते हैं उसी के अन्य विकार भी होते हैं। और हे बिरहुली ! जो आत्मा आदि अन्तरहित होने से मानवशरीर में करचरणादि अवयव रहित है, सोई आत्मा वृक्षों में भी है। इससे वृक्षों में भी निरवयव आत्माके 'जर पल्लव पेंड़' रूप अवयव नहीं है। अर्थात् वृक्षों के आत्मा होनेपर भी आत्मा वस्तुतो जड़ पत्र पेंड़ शाखा आदिअवयव वाला नहीं है। सब अवयवों के आत्मा होतेभी आत्मा अखण्ड और एकहीं है। और हे बिरहुली ! तेरे में 'निशिवासर' नाम दिन रात भी नहीं होतेहैं, अर्थात् तेरे स्वरूप में दिन रात करके कुछभी भेद नहीं होता है, किन्तु सदा एक रस स्वयं प्रकाश आत्मा रहता है। तेरे आत्मा स्वरूप प्रकाश में सूर्यादिकृत प्रकाशकी अपेक्षा नहीं है, उलटा आत्मप्रकाश सेही सूर्यादि भी प्रकाशित होते हैं। और तेरे स्वरूप में दिन रात से सिद्ध होने वाले पक्ष मास ऋतु वर्ष युगादि कृत तथा भूत भविष्य वर्तमानता कृत भेदभी नहीं हैं, क्योंकि ये सब भेद कार्यरूप वस्तु में ही होते हैं। और हे बिरहुली ! तेरे आत्मा में पवन पानी मूल भी नहीं हैं, अर्थात् पवन से क्षोभ चञ्चलता पानी से गिलापन त्रिगुण मूलप्रकृति से विकार राजस तामसादिपन तुममें नहीं होते हैं। अथवा तेरा आत्मा प्राणात्मक पवनरूप तथा वीर्यादि स्वरूप पानी रूप तथा किसीके 'मूल' नाम कारण रूप नहीं है, किन्तु कार्य कारण से भिन्न केवल साक्षी स्वरूप है। अथवा पवन पानी आदि भूतभौतिक स्वरूप आत्मा नहीं है, किन्तु माया अविद्या रूप उपाधि द्वारा सब भूत भौतिकोंके मूलकारणहै। और हे बिरहुली ! उस आत्मतत्त्व को प्राप्तिके लिये ब्रह्मादिक और सनकादिक अपार योग कह गये हैं। अर्थात् प्रवृत्ति मार्गवाले ब्रह्माजी आदिक निष्काम कर्मयोग निष्काम भक्तियोगजपयोगादि कहगये हैं। और निवृत्तिमार्गवाले सनकादिक शुकादि ध्यानयोग ज्ञानयोगादि कहगये हैं। जिन योगों के साधन सामग्री अपार हैं। अथवा ब्रह्मादिक सनकादिक सबही उक्त विरहकी निवृत्तिके लिये देश कालादि परिछेद से रहित अपार वस्तु विषयक योगका 'कथन कर गये हैं' नाम उसी का एकाग्र चित्तसे चिन्तन के लिये उपदेश कर गये हैं। अथवा उस आत्मवस्तु से वियोग बुद्धि को त्यागकर आत्मस्वरूप से 'योग' नाम सम्बन्धको ब्रह्माआदि 'अपार' नाम नित्य मोक्षस्वरूप कह गये हैं। और हे बिरहुली ! 'चारयुग चौमास' इस वर्णन के अनुसार कृतयुगादि आषाढादि चारमास रूप हैं। उनमें आषाढ़, तुल्य सत्ययुग रूप 'शीतल' नाम शान्ति सत्त्वगुणयुक्त मासमें हीं ब्रह्मादिक तथा सनकादि 'सातो बीज बोइन' नाम जीवोंका कल्याण के बीज रूप ज्ञान के सात भूमिकाओं को उपदेश दिये, और हे बिरहुली ! उन बीजोंके लिये क्षेत्र रूप जिज्ञासु आदि मनुष्यों के हृदय वृत्ति बुद्धि है उसखेतको प्रवृत्तिनिवृत्तिमार्गबाले सतपुरुष ज्ञानीमहात्मालोग अबही भी 'नित्यकोड़ते हैं' नाम अशुभवृत्तिकर्मादिकोंका त्यागके लिये उपदेश करतेहैं, और स्वयं अशुभकर्मादिकोंको त्यागतेहैं।

त्याग कराने के लिये दोषोंका उद्घाटन करते हैं, और सत वृत्ति शमदमादिका उपदेशसे आत्मवस्तु विवेक विराग विचारादिके उपदेशादिसे उक्त क्षेत्रको सदा 'सींचते हैं' नाम पटाते हैं, कि जिससे हृदय तथा बुद्धिमें उक्त ज्ञानके भूमिकाओं के बीज सब वृक्षरूप हो कर अपनी छायासे जीवोंके सबतापों को नष्ट कर देवें, और हे विरहुली! उक्तरीतिसे सदा कोड़ने सींचने से उत्तम संस्कारवाले पुरुषोंके हृदयमें 'निनही' नाम सदाही विवेक वैराग्य के तथा उक्त भूमिकाओं के 'नव' नाम नवीन २ 'पल्लव' नाम विस्तार वा पत्र होते हैं तथ पेंड़ होते हैं, अर्थात् उस पुरुषके हृदय क्षेत्रमें नव पल्लव युक्त सुन्दर वृक्षके शदस साधन फलसहित ज्ञानकी भूमिका सब सिद्ध होती हैं, और हे विरहुली! वे ज्ञानके भूमिकायें तथा मोक्ष, देवता वा ऋषि कोही प्राप्त होते हैं, यह नियम भी नहीं है, किन्तु वे इस लोकमें भी 'छिछिल रहे हैं'। नाम सतपुरुष महात्माओं के हृदयोंमें फैल रहे हैं, और हे विरहुली! अन्यलोकों में भी फैल रहेहैं। इससे हे विरहुली! ये सब 'तिहुँ' नाम तीनों लोक में 'फैले हैं' नाम तीनों लोकमें सत पुरुष अधिकारियों के हृदय में साधन सहित भूमिका रूप वृक्ष छिछिल रहे हैं। जिज्ञासा हुई कि यदि ज्ञानभूमि रूप वृक्ष तीनों लोकमें फैले हैं तो सब मनुष्यादि ज्ञानी तथा मुक्त क्यों नहीं होते हैं, तब साहेब कहते हैं कि हे बिरहुली! संसार रूप एक वृक्ष में भली भांती से फूल 'फुलाया है' नाम विकसित हुआ है। अर्थात् स्त्री पुत्र धनादि रूप फूल सदृश इस संसार वृक्ष में विकसित हुये हैं। और हे बिरहुली! सो भी फूल संसार के एकदेश में नहीं है, किन्तु 'संसारही फूल रहा है' नाम सब जगह उक्त फूल लगे हैं। और हे बिरहुली! सो नाम उनहीं फूलोंको सकाम विरह युक्त भक्त जन भी 'वन्दते हैं' नाम उनही फूलों के लिये भक्ति करते हैं। और स्वर्गादि में उक्त फूलों को भोगना चाहते हैं, और हे बिरहुली! सो भी फूल कैसे चाहते हैं कि 'राउर' नाम तटस्थ ईश्वर के 'बाह' नाम सामर्थ्य रूप भुजाकी वन्दना करके उन फूलोंकी वन्दना करते हैं, और 'सो' नाम उसी संसार वृक्षके फूलोंको राउरके बांहकी बन्दना करके अनेको योग जपादि साधनों द्वारा सन्त जन भी लोढ़ते है। अर्थात् विरक्त साधुके वेषधारी भी स्वर्ग वैकुण्ठ साकेतादिमें प्राप्त होना और वहाँ विषयोंको भोगना ही प्रायः चाहते हैं, तथा वर्तमान कालमें भी सिद्धि आदिसे मायिकविभूतियों को प्राप्त करते हैं। जहां भक्त सन्तोंकी यह दशा है तहां अन्यकी तो कथा ही क्याहे। औरहेबिरहुली! उक्त फूलोंको लोढ़नेमें ही सब विवेक बिचार रहित मनुष्योंको तथा देवादिकोंको तीव्र कामादिरूप अत्यन्त विषधर 'बैतल' नाम बहिरा बावरा सांपोंने डंस लिया है। जिससे अत्यन्त मोहममतादि रूपविषसे सब व्याप्त हैं, इसलिये जैसे विषधर सांपके डंसनेपर कोई बदहोस हो जाता है, किसीकी बात वा गारुड़मन्त्रको भी नहीं सुनता है न मानता है, जिससे मृत्युको प्राप्त होता है वैसे ही हेबिरहुली! उक्त फूलोंको लोढ़ने वालोंको कामादिरूप सर्प काटे हैं जिससे ये लोग मोहममतारूप विष को हरने वाला उपदेश रूप गारुड़ मन्त्रको नहीं मानते हैं, तथा वह अत्यन्त कठिन विष भी विषहर मन्त्र को 'नहीं मानता है' नाम मन्त्र से नहीं नष्ट होता है। और हेबिरहुली! 'गारुड़' नाम उक्त विषको नष्ट करने वाले गुरु महात्मा रूप मन्त्र वेत्ता दया वश 'अपार बोलते हैं' नाम

अनेको प्रकार से उपदेश देतेहैं, तौ भी ये लोग नहीं सुनते हैं, इसलिये सब नहीं मुक्त होते हैं। अथवा गारुड़ रूप गुरु इन्हें 'अपार बोलते हैं' नाम नित्य विभु सुख रूपता का उपदेश करते हैं सो वे नहीं सुनते हैं, इससे ये लोग बद्ध हैं। और हेविरहुली ! तुम भी उक्त फूलको बन्दने लोढ़ने से, तथा उक्त बेतल सांपका दंशन से बद्ध दुःखी हो, और दुःख होनेपर पश्चात्ताप करतेहो, परन्तु पश्चात्ताप मात्र करनेसे क्या हो सकता है, क्योंकि तुमने काम मोहादिरूप विषकी ही क्यारी विषय रूप क्षेत्रमें बोये हो, और बोते हो, तो मरण शोक संतापादिरूप दुःखद फूलोंको लोढ़ते समय अब क्या पश्चात्ताप करते हो, यदि आगामी दुःखसे रहित होना चाहो तो अब भी विषकी क्यारीको बोना छोड़ दो। अथवा विषयोंमें सुखकी प्राप्तिके लिये,तुम सकाम कर्मादिरूप बीज बोये हो, और उनहीसे नित्य सुख चाहते हो, परन्तु जब उनसे नित्य सुख नहीं मिलता है, किन्तु उलटा महान् दुःख होता है, तब पश्चात्ताप करते हो, सो क्या करते हो, उस कर्म फलको लोढ़ो नाम विचारपूर्वक भोगो जिससे फिर ऐसा दुःख नहीं होवे। और हे बिरहुली ! सांसारिक विषयादि रूप जो संसारकनयल विषरूप वृक्षके डार नाम शाखायें हैं। अथवा अनेको लोकादि रूप जो संसार रूप कनयल के डार हैं। उन डारों के जन्म जन्म में यमके अन्तरमें जाना प्राप्त होनाही एक फल है, अर्थात् बारम्बार जन्म लेना और जन्म लेकर मरना यमयातना आदि रूप कष्टों को सहना परवश सदा दुःख भोगनाही सब विषय तथा लोकों के फल हैं। इसलिये हे मनुष्यो ! 'संसार रूप वृक्ष और उसके डारों को फलोंको अन्तः करणसे त्याग करो, जब उन्हें त्याग कर 'मोर' नाम मेरा दियाहुआ विवेक विज्ञान शान्ति मोक्ष रूप फलों को 'चाखोगे' नाम अनुभव करोगे तबही 'सचु' नाम सत्यसुख परमानन्दको पावोगे, और उस सत्यसुख को प्राप्त करनेही से तुझे फिर कभी पश्चात्तापादि नहीं करना पड़ेगा। अर्थात् सद्गुरु का उपदेश से उक्त ज्ञान भूमिकाओं को प्राप्त करने से जन्मादि से तथा सब दुःख द्वन्द्व से रहित होजावोगे, इसलिये मरणादि के हेतु रूप उक्त फूलों को लोढ़ना त्याग कर गुरु कृत उपदेशोंका श्रवणादि करो जिससे तेरा कल्याण होवे। अथवा विषयादि विषधर सम्बन्धी वासना कामादि रूप विषोंको गुरुझारते हैं, कि हे विरहुली ! आत्मवस्तुमें आदि अन्त जर पल्लव पेंड़ादि नहीं हैं, तौभी उसमें माया अविद्या से अपार संसार का 'योग' नाम सम्बन्ध है, यह ब्रह्मादिक सनकादिक कथन कर गये हैं। और शीतल आषाढ के सदृश सृष्टि कालमें वा सतयुगमें 'साती' नाम सप्तधातुमय शरीर के बीज तथा सप्तस्वरमय शब्दों के बीज भी ब्रह्मादिक सनकादिक बोइनहै। तथा बुद्धि अहंकार पञ्चतन मात्रा रूपसात बीजभी सब भूत भौतिक कार्यों के लिये बोये गये हैं। और इन बीजों के आश्रय रूप जो अविद्यादि रूप क्षेत्र हैं, उन्हें अभी भी लोग सकाम कर्मादि से सदा कोड़ने सींचते हैं, जिससे अनेको पुत्रपौत्रादि रूप तथा शब्द अर्थादि रूप नवीन २ पल्लव पेंड़ सदा होते हैं। और सो भी पल्लव पेंड़ इस लोकमें तथा अन्यलोकों में छिछिल रहे हैं, इससे तीनों लोकमें फैले हैं। अथवा ये नवीन भी पेंड़ पल्लव अत्यन्त 'छिछिल' नाम छीलने काटनेवाले दुःखद हैं, इसलिये इनसे तीनो लोक छीला रहा है। परन्तु हे विरहुली ! इस कार्यरूप पेंड़में विषयजन्य सुखरूप अज्ञानियों की दृष्टि से 'भला' नाम सुन्दर शुभ फूल एक फूला है, सो मानों

जन्मादि संसार रूपही फूल है, और उसीको भक्त जन वन्दना करते हैं, और राउरके बांहको वन्दिके सन्त जन उसी को 'लोढ़ते हैं' नाम प्राप्त करते हैं, जिसे प्राप्त करते समय उन्हें मोहादि रूप दोष के जनक कामादि रूप 'वैतल सांप' दंश लिये हैं, और वे सर्प विषहरमन्त्र को नहीं मानते हैं, इसलिये मोहादि से पीड़ित जीव पश्चात्ताप करते हैं। तहां गुरु कहते हैं कि संसार रूप विषकी क्यारीमें तुम शरीरादि सुखादि के लिये बीज वोये होतो अब लोढ़ते समय पश्चात्ताप क्या करते हो, इस बीजके जन्म २ में यमके अन्दर प्राप्त होना ही फल है, जैसे कनयल में विषरूपही एक फल लगता है, वैसे इस विषकी क्यारी में बीज बोनेसे मृत्युआदि रूपही फल लगते हैं, इसलिये अबभी यदि तुम मेरा फल चाखो तो सुखी होसकते हो इत्यादि अर्थ हैं। लिखा है कि [**न जायते म्रियते वा विपश्चित् ॥१॥ न तत्रसूर्योभाति न चन्द्रतारकम् ॥ २ ॥ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएवच ॥ ३ ॥ हिरण्यगर्भो योगस्यवक्ता नान्यःपुरातनः ॥ ४ ॥ तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारः ॥ ५ ॥**] नित्य ज्ञानरूप आत्मा जन्मता मरता नहीं है ॥ १ ॥ और उसमें सूर्यचन्द्रतारागण नहीं भासते हैं ॥२॥ वह आत्मा छेदन दाह क्लेदन शोषण के योग्य नहीं है ॥ ३ ॥ ब्रह्मा ही योग के प्राचीन वक्ता हैं अन्यनहीं ॥ ४ ॥ पाप दोषादि रहित उस नारद के प्रति भगवान् सनत्कुमारने अविद्यातम से पारकी वस्तु बताई थी ॥ ५ ॥ इत्यादि ॥ विशेषसूचना ॥ सो 'फुल' वन्दहिं भक्तजना बिरहुली। वन्दिके राउर वांह बिरहुली सो 'फुल' लोढ़हिं सन्त जना बिरहुली। डंसि गेल बैतल सांप बिरहुली। इसके स्थान में पाठभेद है। कि सो 'फुल' लोढ़हिं सन्त जना बिरहुली। वन्दि के राउर जाहिं 'य' बिरहुली। सो 'फुल' वन्दहिं भक्तजना बिरहुली। डंसि गेल बैतल सांप बिरहुली। और लोक प्रसिद्धि है कि उजरा कनयल का फल से सर्प के विष उतर जाता है। यदि उक्त पाठ भेद और प्रसिद्धि मानी जायतो तीसरा अर्थ है, तथाहि माया अविद्यादि रूप बेलि में रहने वाला विषयादि रूप सर्पसम्बन्धी वासना काम लोभादि विषसे व्याकुल विरह व्यथा युक्त जीवके विषको गुरु रूप गारुड़ी उपदेश रूपगारुड़ मन्त्रसे झारते हैं, कि हे बिरहुली! तुम्हारे आदि अन्त प्रभृति नहीं होते हैं इत्यादि। ब्रह्मादिक सनकादिक इसी सुमरण विचारादि को अपार योग कह गये हैं। और प्रकृति युक्त तुम्हारेस्वरूप मेंही, महत्तत्त्वादि सातो को, संसार के बीजरूप से, शीतल आषाढ़मास के सदृश सृष्टिके आदि कालमें ईश्वर काम कर्मादिकोंने बोया है। और प्रकृति आदिरूप क्षेत्रों को जीव सदा कोड़ते सींचते हैं, जिससे नवविध संसार वृक्षके पेंड़ पत्ते आदि सदा होते हैं। और उनका तीनों लोकमें अत्यन्त विस्तार होता है। विस्तार युक्त इस संसार वृक्षमें मोक्षके उपाय रूप निष्काम-शुभ कर्म विचारादिकही एक भला फूल है। अथवा निर्वासन मन भला फूल है। उसको 'सन्तजन' नाम जिज्ञासुजन 'लोढ़ते' प्राप्त करते हैं। और 'राउर' नाम सद्गुरु सत्यात्माके वन्दना स्मरणादि करके संसारसे रहित मुक्त होजाते हैं। और सकाम भक्त लोग केवल कर्मादि कीही बन्दना करते हैं,

जिससे मन विषयादि रूप बैतल सांप दंश लिये हैं, और सो विषहर मन्त्रको भी नहीं मानते हैं । चाहे गारुड़ी गुरु अपार भी बोले परन्तु पछताते हैं, और सुनते नहीं हैं । साहेब कहते हैं कि संसार में विषय विषकी क्यारी बोये हो तो उसे लोढ़ो पश्चाताप क्या करते हो, उससेतो जन्म २ में यमके अन्तरमें पड़नाही होता है । परन्तु हे बिरहुली ! अब भी उपाय करोतो बांचसकते हो, वहां उपाय यह है कि सांसारिक मधुरता से रहित मेरे उपदेश रूप कनयल के डारमें विवेकादि रूप एक फल है, यदि उसे चाखो तो उक्त विषादि को नष्ट होजाने से तुम आनन्द पावोगे इत्यादि इति शम् ॥

*आद्यन्तादिविहीनमेकमजरं शान्तं शिवं शाश्वतं, वेधोविष्णुमहेशशेषसनकैर्जेगीयमानंमुहुः । कामासक्तविचारयोगविमुखैर्लभ्यं च नो सर्वथा, वन्देब्रह्म सुखं च मोक्षमतुलंगम्यंहृदासत्पथा ॥ १ ॥

* टिप्पण—आदि अन्तादिरहित, एक, अजर, शांत, कल्याण स्वरूप, शाश्वत, ब्रह्मादिसे बारम्बार कथित, कामासक्त और योग विचाररहित से सर्वथा अलभ्य, सुखमोक्ष स्वरूप, सतमार्गमें प्रवृत्त मनसे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मात्मा की वन्दना करता हूँ ॥

* इति सटीकं बिरहुली प्रकरणं समाप्तम् *

अथ साखीप्रकरण एकादश ॥११॥

दोहा १ साखी।

जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौ जगा, तूं कहँ चला वियोग ॥ १ ॥

टीका—श्रीसद्गुरु कबीर साहेब ने इस साखी प्रकरण में विवेक विराग शम दम उपरिति आदिका तथा श्रवणादि का स्पष्ट प्रति पादन किया है तथा साक्षी स्वरूप आत्मवस्तु का उपदेश दिया है, तथा पूर्वकहे सम्पूर्ण सार अर्थका इस प्रकरण से प्रकाश किया है, इससे इस प्रकरण का साखी नाम है, क्योंकि यह प्रकरण साक्षी स्वरूप आत्मा का तथा अन्य अर्थ का साक्षीके सदृश प्रकाशक है। साक्षी शब्दके ही स्थानमें हिन्दीमें साखी लिखा जाता है। वहां प्रथम साखीमें विवेक विराग का उपदेश पूर्वक साक्षी स्वरूप आत्मवस्तुका उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! 'जहिया' नाम जिस समय तुम सब जन्मसे 'मुक्ता हता' नाम जन्मसे रहित रहो, अर्थात् जब तेरा यह जन्म नहीं हुआ था। और किसी के रज वीर्यसे भी तेरा सम्बन्ध जब नहीं हुआ था 'तहिया' नाम उस महाप्रलय कालमें तथा एक शरीर को त्याग कर दूसरा इस वर्तमान शरीर का ग्रहणसे प्रथम कालमें तुम्हारे 'कोय न हता' नाम कोई भी नहीं था। अर्थात् वर्तमान कालमें जो तुम्हारे पिता माता भाई बहन गृह क्षेत्र मित्र जाति बन्धु धन पशु हिरण्य स्त्री पुत्र पौत्र देशादि हैं, वे प्रथम कोई भी तुम्हारे नहीं थे, किन्तु वर्तमान शरीरका धारणसे ही वर्तमान शरीर के सम्बन्धी सब तेरे सम्बन्धी भ्रमसे भासते हैं। इस वर्तमान शरीर को नष्ट होने पर वर्तमान सम्बन्धी न तुम्हारे संबन्धी रहेंगे, न शरीर के सम्बन्धी रहेंगे, इससे स्वप्नके शरीर सम्बन्धी सदृश मिथ्या ही तुम्हारे सम्बन्धी सब भासते हैं, सो समझो, क्योंकि अन्नमयादि पांचो कोशों की अपेक्षा वा पांच भूतों की अपेक्षा 'छठी' नाम छठमी षष्ठी 'जगा' नाम चित्ति स्वरूप साक्षी वस्तु है सोई तुम्हारा स्वरूप है, इसलिये सोई जगा स्वरूप तुम सब हो, तौ भी उस नित्य चेतन स्वरूप आत्माको 'विगोय कर' नाम भुलाकर उसके विचार अनुभवादि को त्याग कर, इस शरीर और शरीर के सम्बन्धियों में कहाँ चले हो। अर्थात् इनमें मैं मेरी आदि बुद्धि करके कहां दुःख मय संसार सागर में वहे चले जाते हो। इन बुद्धियों को त्याग कर संसार दुःखसे मुक्त होवो। यद्यपि जन्मसे पूर्वकाल में भी मन बुद्धि आदि सूक्ष्म समाज रहते हैं, केवल साक्षी स्वरूप आत्माही नहीं रहता है, तथापि प्रकृतमें स्थूल संघात और सम्बन्धियोंसे विवेक और वैराग्य का उपदेश में तात्पर्य है। और स्थूलसे भिन्न साक्षी स्वरूप का तथा पञ्चकोश से परवस्तुका उपदेश में तात्पर्य है। और जन्मसे प्रथम प्रलयादि कालमें यद्यपि सूक्ष्म समाज रहते हैं, तथापि वासना रूपसे रहनेसे विशेष व्यवहार के हेतु तथा पृथक गिनने योग्य नहीं रहतेहैं, किन्तु अविद्यात्मक कारण शरीरमें लीन होकर वासना रूपसे रहते हैं। और सो अविद्या अकथ अनिर्वचनीया

है,इससे मानों केवल साक्षी स्वरूप ही रहता है यह भाव है। और मनुष्ययदि वासनाओं के समुहरूप वा वासनाओंके आश्रयरूप भावभूत अविद्याको वैराग्य उपरतियुक्त विद्यासे नष्ट करदेताहै, तो उसकोइसशरीर के वाद फिर जन्ममरण रूप प्रवाहमें नहीं वहना होता है, इसलिये विवेकादि पूर्वकविद्या से वासना सहित अविद्या को नष्ट करो जिससे तेरा कल्याण होवे, यह उपदेश इस साखीसे साहेब ने दिया है [जहिया जन्म मुक्ते होते, तहिया होते न कोय । छठी तुम्हारी हौं जगा, तैं कहा चला विगोय] इस पाठके गीत. छन्द है, और अर्थ है कि हे मनुष्यो ! जब कोई जन्मसे अत्यन्त मुक्तहोते हैं, उसकाल में उनको 'कुछ नहीं होते हैं' नाम शरीरसम्बन्धी आदि कोई नहीं रहते हैं, किन्तु छठी जगास्वरूप रह जाता है । तुम समझो कि सोई जगास्वरूप 'हौं' नाम मैं भी हूँ, । और उसे विगोयकर कहां चले हो, वही तुम्हारी भी चित्ति स्वरूप है। अथवा तेरी छठी जगा नाम चित्तिस्वरूप 'हौं' नाम मैंही हूँ । तुम मुझ गुरुस्वरूप को छोड़कर कहाँ चला है इत्यादि। अथवा जब यह जीव वर्तमान जन्मसे मुक्ते 'होते' नाम मुक्तथा, तब कुछ नहीं था, किन्तु हे मनुष्यो ! पांचकोशकी अपेक्षा छठी तुम्हारी चैतन्य व्यक्ति थी, उसीमें अविद्या वासनासे 'हौं' नाम अहंकार 'जगा' नाम अहंकारादि उत्पन्न हुये, जिससे शरीरादि सब हुये हैं, अब अपना स्वरूपको विगोयकर अहंकारके कार्यों में तुम सब कहां चले हो, अर्थात् इनमें कहां सुख आदि खोजते हो, समूल अहंकारको ही नष्ट करो जिससे स्वरूपभूत आनन्द की प्राप्ति होवे। इत्यादि अर्थ हैं । जन्मके स्थानमें जनपाठ होवे तौ भी उक्तही अर्थ है। जब यह जीवजन्मादि संसारसे अत्यन्त मुक्तथा, इत्यादि अर्थ नहीं होसकते, क्योंकि जीवके जन्मादि वन्ध प्रवाहरूपसे अनादि हैं । तथा विकारशील अज्ञान भी अनादि है । इससे पूर्वकालमें कोई जीव अत्यन्त मुक्त नहीं था और यदि अत्यन्त मुक्तको भी वन्धन होवे तो अब भी जो मुक्तहोंगे सो फिर बद्ध होंगे ऐसा मानना होगा, तब (अबकि वार जो करै चुकाव । कहहिं कबिर ताकि पूरि दाव) इत्यादि जो साहेबका कथन है, उससे विरोध होगा । तथा अनेको प्रामाणिक श्रुतिस्मृति महात्माओं के अनुभवों से विरोध होगा। इसलिये पूर्वोक्त ही साखीका भाव है। लिखा है कि [आत्मा वा इदमेकएवाग्रआसीन्नान्यत्किञ्चनमिषत्॥१॥ मनोदृश्यमिदंद्वैतंयत्किञ्चित्सचराचरम् । मनसोह्यमनीभावे द्वैतंनैवोपलभ्यते ॥२॥ नजन्मनः प्राक्पितरौ नापत्यं मृत्यनन्तरम् ।न स्त्री स्वीयाविवाहात्प्राक्तस्मात्तन्ममता वृथा ॥ ३ ॥ विक्रीतेगृहभूषादौनष्टेदुःखं न जायते । अविक्रीते तुजायेतममता तत्रकारणम् ॥४॥ आगन्तुचेदिहाज्ञानमनिर्मोक्षःप्रसज्यते । पुरेवानागतोभूयोनैष्यतीत्यत्रका प्रमा ॥५॥] सृष्टिसे पहिले आत्माही था क्रियायुक्त कोई पदार्थ नहीं थे ॥ १ ॥ जो कुछ यह चराचरप्राणी सहित जगहै, वे मनके दृश्य हैं, मनको निवृत्त होनेपर द्वैतकी उपलब्धि नहीं होती है ॥ २ ॥ जन्मसे पहिले मातापिता,नहीं रहते हैं, मरणके बाद पुत्रादि नहीं रहते हैं;

विवाहसे पहिले अपनी स्त्री नहीं रहती है। इससे इनमें ममता व्यर्थ है ॥ ३ ॥ विकेहुये गृहभूषणादि को नष्ट होनेपर भी मनुष्यको दुःख नहीं होता है। और विकने विना दुःख होता है। इससे ममता ही दुःखके कारण हैं ॥ ४ ॥ यदि आत्मवस्तु विषयक अज्ञान 'आगन्तुक' नाम कार्य होवें तो अनि-र्मोक्ष की प्राप्ति होती है, क्योंकि प्रथमके सदृश फिर आगामी अज्ञानादि रूप संसार नहीं आवेंगे इसमें क्या प्रमाण है ॥ ५ ॥

२ साखी छं: दो०।

जाय छठीली आपनी, बात न पूछे कोय।
जिन यह भार लदाइया, निर्वाहेगा सोय ॥२॥

टीका—उक्त आत्मवस्तुमें स्थितिके लिये साहेब उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! जो कोई 'आपनी' नाम अपनी 'छठीली' नाम पञ्चकोशसे पर षष्ठीचित्ति स्वरूपमें 'जायकर' नाम प्राप्त होकर उसका अपरोक्ष अनुभव पूर्वक उसमें स्थिर होकर, और 'कोय' नाम कोई बात किसीसे नहीं पूछता है, अर्थात् आत्मवस्तुसे भिन्न अर्थके बोधक बातों की चर्चा नहीं करता है। तथा आत्मासे भिन्नदेवादिको बातमात्रसे भी नहीं पूछता है। किसीकी आशा आदि नहीं करता है। न किसीसे कुछ चाहता है। और शरीर निर्वाहके लिये भी किसीको बात 'नहीं पूछता है' नाम उसके लिये चिन्ता नहीं करता है। तथा पचकर नहीं मरता है। उस पुरुषको 'सोय' नाम सोई 'निर्वाहिगा' नाम शरीरकी स्थिति रक्षा सुख कल्याणके लिये सोई सब योग क्षेम यत्नादि करेंगे, और करते हैं, कि 'जिन' प्रारब्धकर्म ईश्वरादिकों ने 'यह' शरीररूप 'भार लदाइया' नाम प्राप्त कराये हैं। इसलिये तुम सब भी छठीली स्वरूप में स्थिर होकर कोई बात नहीं पूछो, उसे त्यागकर व्यर्थही अन्यत्र नहीं भटको। पूछेके स्थानमें पूछो पाठ होवे तो अर्थ है कि हे मुमुक्षुओ! उक्त अपनी छठीली स्वरूपमें जाकर शरीरादिरूप पांच कोशोंको कोई बात नहीं पूछो, इनसे उदासीन होजावो। जिज्ञासा-हुई कि उदासीन होने पर शरीर यात्रा कैसे होसकती है? तब साहेब कहते हैं कि जिन प्रारब्धादि-कोंने यह भार लादे हैं, सोई निर्बाहेंगे यह निश्चय करो। लिखा है कि [तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वातुबाह्यतः। तत्त्वीभूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ॥ १ ॥ वृत्त्यर्थंनातिचेष्टेत सा हिधात्रैवानिर्मिता। गर्भादुत्पत्तितेजन्तोर्मातुः प्रस्रवतःस्तनौ॥२॥] आध्यात्मिकतत्त्व, और वाह्यतत्त्वको विवेकसे देखकर तत्त्वस्वरूपताको प्राप्त, और तत्त्वमें ही आराम वाला पुरुष कभी तत्त्वसे च्युतसंसारी नहीं होता है ॥ १ ॥ जीविकाके लिये भी अत्यन्त चेष्टा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उसका निर्माण प्रथमही 'विधाता' नाम ईश्वरने कर्मानुसार कर चूका है। उसकी परिमित्त चेष्टा से ही प्राप्ति होजाती है। और प्रत्यक्ष है कि गर्भसे जन्तुको बाहर होते ही उसका आहारके लिये माताके स्तनस्रवने लगते हैं, उसमें से दूध टपकने लगता है ॥ २ ॥

इसाखी छं० मुक्तामणि।

शब्द शब्द बहु अन्तरे, सारशब्द मत लीजे।
कहहिं कबीर नहिं दरशे, धृक जीवन सो जीजै॥ ३॥

टीका—और भी साहेब उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो! शब्द शब्दमें बहुत 'अन्तरे' नाम अन्तर भेद है, अर्थात् लौकिक वैदिक व्यावहारिक पारमार्थिक सत्य मिथ्या विधि निषेध अर्थवाद भूतार्थवादादि भेदसे, तथा सम्प्रदाय शास्त्र आप्त अनाप्त वक्तादिकोंके भेदसे, तथा कर्मोपासना ज्ञान सिद्धि सम्पत्ति आदि विषय भेदसे, और श्रोता अधिकारी देश कालादि भेदसे शब्द बहुत भेद युक्त हैं, इसलिये हे मनुष्यो! विवेक बिना किसी शब्दको सत्यादि नहीं मानलो, और विवेक करे विना किसी शब्दके अनुसार अनुष्ठानादि भी नहीं करने लगो, नहीं तो महान् कष्टदशा की प्राप्ति होनेकी भी सम्भावना है, किन्तु प्रथम शब्दों को भी विचारो कि कौन शब्द कैसे पुरुषसे किस उद्देश्यकी सिद्धि के लिये कहे गये हैं, इस शब्दका अधिकारी कौन है इत्यादि, इस प्रकार विचार कर 'सार' नाम सत्यार्थ बोधक सर्वथा कल्याण कारक शब्दका विवेक करो। फिर उस सार शब्दके जो 'मत' नाम अर्थ सिद्धान्त है, उसे 'लीजै' नाम लो धारण अनुष्ठानादि करो। अर्थात् उस शब्द वा ग्रंथ को कहने वाले महात्मा महापुरुषके 'मत' नाम समझ सिद्धान्तके अनुसार समझो। और सतधारणा युक्त होवो। क्योंकि 'नहिं दरशे' नाम जिस पुरुषको सार शब्दके मत नहीं दरशाहै वा 'नहीं दरता है' नाम सार शब्दका विवेक पूर्वक पूर्वकहे छठी स्वरूप सार वस्तुका यथार्थ ज्ञान जिसको नहीं हुआ है 'न हो रहा है' नाम उसके लिये जो यत्न भी नहीं कर रहा है, 'सो' पुरुष जो 'जीजै' नाम जीवता है सो उसके जीवन 'धृक है' नाम व्यर्थ है। अथवा उसके जीवन को धिक्कार है। और जो उस जीवन से जीवित है, उस पुरुष को भी धिक्कार है। इसलिये साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! तुम सब अवश्यही सार शब्द सार वस्तुका दर्शन करो, व्यर्थ धिक्कारयोग्य आयु को और अपने को भी नहीं करो। मतके स्थान में मति पाठ होवे तो सार शब्दकी बुद्धि ज्ञानको प्राप्त करो, मथि पाठ होवे तो विवेक विचारादि से शब्दों को मथकर सार शब्दको प्राप्त करो, उसके अर्थादि को समझो इत्यादि अर्थ हैं। लिखा है कि [**नानुध्याया द्बहूञ्छब्दान् वाचोविग्लापनं हि तत् ॥ १ ॥ उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति पौरुषं द्विविधंमतम्। तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम् ॥ २ ॥ एकं यदिभवेच्छास्त्रं ज्ञानं निःसंशयं भवेत्। बहुत्वादिहशास्त्राणां तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम्॥ ३॥]**
बहुत शब्दोंका चिन्तन नहीं करना चाहिये, किन्तु सार शब्द काही चिन्तन करना चाहिये। क्योंकि बहुत शब्दोंके चिन्तनादि केवल वाग् इन्द्रियके ग्लानि कारक हैं ॥ १ ॥ शास्त्रसे भिन्न और सत-शास्त्र विहित दो प्रकारके पुरुषार्थ हैं, उनमें अन्य पुरुषार्थ अनर्थके हेतु हैं, और सतशास्त्रमें विहित पुरुषार्थ मोक्षके लिये हैं ॥ २ ॥ शास्त्रभी यदि एक सतशास्त्र ही होता, तो सब सतपुरुषों

को संशय रहित ज्ञान हो जाता, परन्तु संसारमें शास्त्रभी बहुत हैं, इससे पूर्णबिवेक विचारादि बिना तत्त्वज्ञान होना दुर्लभ है ॥ ३ ॥

४ साखी छं० दोहा।

शब्द हमारा आदिका, पल पल करहु याद।
अन्त फलैगी माहली, ऊपर के सब वाद ॥ ४ ॥

टीका—फिर भी मुमुक्षुओं के प्रति साहेब उपदेश करते हैं कि हे सज्जनो! जो मैंने पांचभूत पांचकोशादि से भिन्न सबके अन्तःरात्मारूप वस्तुका उपदेश दिया है, सो 'हमारा शब्द आदिका है' नाम मन माया रूप अपनी शक्तिसे जो सबके 'आदि' नाम कारण है। तथा जो सबके प्रकाशक है, और अधिष्ठान है, उस वस्तुके बोधक हमारा शब्द है। और उसीके बोधक सब ज्ञानी महात्माओं के सार शब्द हैं। उक्त आदिका शब्दको 'पल २ याद करहु' नाम सदा उसके श्रवण मननादि करो, अर्थ सहित उस सारस्वरूप आदिका शब्दको विचारादि करके उसीके अर्थमें मनको स्थिर करो, और उसआदि वस्तुसे भिन्नजो व्यक्तअव्यक्त कार्यकारण रूप वस्तुहैं, उनमें नहीं मन लगावो, उनका मैंमेरी रूपसे स्मरणनहीं करो, क्योंकि अन्यवस्तुओंका स्मरण चिन्तनसे 'अन्तमें भी माहलीफलेगी' अर्थात् 'माहली' नामक फल होता है, माहरी माहुरी महकार भी जिसको कहते हैं, जो ऊपर देखनेमें लाल, और सुन्दर रहता है। और भीतर उसके काला, और तिक्त रहता है। तथा वह फल दुःखद होता है। वैसेही अनात्म वस्तुका, तथा उनके बोधक शब्दोंका स्मरण चिन्तन करने से जो फल प्राप्त होता है, सो विवेकदृष्टि विना ऊपरसे देखने में सुन्दर सुखदभासता है, परन्तु उस फलके भीतर दुःखरूपता विनाशता अवश्य रहती है। और हे सज्जनो! उस आदिस्वरूप सबके अन्तरात्मा वस्तुसे ऊपरके कोशभूत भौतिक सब वस्तु 'वादस्वरूप भी हैं' नाम वाचारम्भण शब्द मात्र हैं। अथवा 'वाद' नाम वादि अर्थात् व्यर्थ हैं। इसलिये आदि शब्दको ही पल २ याद करो। अथवा बाहरके वस्तुओं का स्मरण जन्य फलका अन्तरूप, तथा तुम्हारा बारम्बार अन्तरूप 'फल' अन्यवस्तुओंकी स्मृतिरूप माहली' वृक्षमें लगेगा। और जैसे मधुर रसको चाहने वालोंको माहलीके फल लगनेसे उसकी प्राप्तिसे भी मधुर रसकी प्राप्ति नहीं होती है। और उसकी ऊपरके शोभा व्यर्थ हो जाती है, वैसेही सबके अन्तरात्मा से ऊपर के वस्तुकी स्मृतिसे, तथा इस लोकके अपेक्षा ऊपर स्वर्गादि की समृति से, जो तुझे फलकी प्राप्ति होगी, उससे तुझे तृप्ति नहीं होगी, तथा तुझे वस्तुतः सुख नहीं होगा। अथवा बाहर वस्तुकी स्मृति 'अन्तमें' नाम फल कालमें वा मरणकालमें भी माहली फलेगी, जिस फलके अन्दर दुःख विनाशिताआदि रूप कटुआपन बने रहेंगे, और अज्ञानियों की दृष्टिसे जो ऊपरके सुन्दरता हैं, वे सब व्यर्थही रह जावेंगे, इसलिये आत्म वस्तु का स्मरण करो, और अन्य वस्तुओं के स्मरणका त्याग करो। लिखा है कि [आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया। दद्यान्नावसरं कांचित्कामादीनां मनागपि ॥ १ ॥ सर्व-

मुत्पादि भङ्गुरम् ॥२॥ यदल्पं तन्मर्त्यम् ॥३॥ नाल्पे सुखं विद्यते ॥ ४ ॥] सोनेतक मरने तक मुमुक्षु पुरुष वेदान्त निर्णीत सार वस्तुकी चिन्तासे समय बीतावें, और कामादिको थोरा भी अवसर कभी नहीं देवे ॥ १ ॥ उत्पन्न होने वाले सब विनाश शील हैं ॥ २ ॥ अल्प नाम एकदेशी वस्तु मरण शील हैं ॥ ३ ॥ इससे अल्प वस्तुमें वस्तुतः सुख नहीं है ॥ ४ ॥

५ साखी दोहा ।

शब्द हमारा आदिका, शब्दहिं पैठा जीव ।
फूल रहनकी टोकरी, घोरे खाया घीव ॥ ५ ॥

टीका—शब्दोंका बिवेक से सारकी प्राप्ति मुक्ति होती है, और विवेक बिना असार शब्द में ऊपर के वस्तु में आसक्त रहने से दुःख होता है । इस उपदेशको सुनकर जिज्ञासा हुई कि शब्दों के विवेक विना शब्दोंके अनुकूल अनुष्ठानादि से किस प्रकार दुःख रूप संसार की प्राप्ति तथा मोक्षकी अप्राप्ति होती है तब साहेब कहते हैं कि छठीली स्वरूप का बोधक 'हमारा' नाम गुरुका शब्द आदि का है । और जीवभी विवेक विना अनेको शब्दों में 'पैठा है' नाम अनेको प्रकार के शब्दोंको यथार्थ मानकर सकामकर्म उपासना लौकिक व्यवहार दम्भ पाखण्डादि में प्रवृत्त है, और अनेको वाचारम्भणमात्रात्मक वस्तुओं की कामना कर रहा है, इससे उनमें भी पैठा है, और विवेक बिना शब्दमें पैठा हुआ जीव फूलों को रहने के लिये जो टोकरी उसके सदृश होरहा है, अर्थात् जैसे फूल रहने की टोकरी में फूलोंके गन्ध पैठ जाता है, वैसे विवेक रहित शब्दों में पैठा हुआ जीव के अन्तः करण में विषयादि की वासनायें स्थिर हो रही हैं । अथवा फूल रहने की टोकरी सदृश जो विषय कर्मादि के बोधक शब्द हैं, उन शब्दों में जीव पैठा है, इसलिये जैसे अत्यन्त मथन करने से 'घोर' नाम छांछ से पृथक् हुआ घीव को वह घोर फिर'खाजाता है'.नाम फिर अपने में मिलालेता है । तथा घोरके साथ मिला रहनेसे घीव सरजाता है,इससे मानो घोर उसे खाजाता है नष्ट कर देता है । और घोर से अत्यन्त पृथक् करके अग्नि से शुद्ध करनेपर चिरकाल तक 'नहीं सरता है' नाम घृत नष्ट नहीं होता है । वैसेही जो पुरुष शब्द का विवेक पूर्वक आत्मतत्त्वका विवेक करके अपने को ज्ञानाग्नि से आप शुद्ध करलेता है, सो कभी नष्ट नहीं होता है । नित्य मुक्त स्वरूप होजाता है, और शब्दों में पैठकर उसके बासना युक्त जीव विषयशब्दादि के मन्थन भोग उपभोगादिमें परकर विषय शब्दादिमेंमिल जाता है, जिससे विषयशब्दादि उस जीवको खालेते हैं, बारम्बार जन्मादि युक्त करते हैं । उसके लिये मानों सारशब्द मोक्षादिको भी असारशब्द विषयादि नष्ट करदेते हैं । इसलिये अवश्यही मनुष्य को सारशब्द का विवेकपूर्वक छठीली आत्मवस्तु में पहुँचना पैठना चाहिये, और अन्यशब्दार्थ में पैठना त्यागदेना चाहिये ॥

६ साखी दोहा।

शब्द हमार तुं शब्दका, सुनि मति जाहु सराख।
जो चाहहु निज तत्त्वको, शब्दहिं लेहु पराख॥ ६॥

टीका—आत्मतत्त्व का बोध के लिये साहेब उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो! 'सारशब्द हमारा है' नाम गुरु का है, और 'तुं उस सारशब्द का हो' नाम उसके अधिकारी हो, इसलिये उस सारशब्द को सुनो, और उस सारशब्द को सुनकर 'मति जाहु सराख' नाम असारशब्दादि में नहीं जावो, किन्तु उस सारशब्द कोही हृदय में राखो। अथवा सारशब्द को सुनकर उससे 'सराखनहीं जावो' नाम सरको नहीं, अर्थात् हटो वा भागो नहीं। अथवा सारशब्द को सुनकर 'सराख' नाम रक्षक सहित अर्थात् जिसका दूसरा रक्षक होवे, ऐसे कार्य रूप पराधीन अनित्य वस्तुमें नहीं जावो, और 'जो' नाम यदि तुम 'निज' नाम अपने स्वरूपभूत तत्त्वको चाहतेहो, अर्थात् आत्मतत्त्व का अनुभव से यदि कल्याण चाहतेहो तो सार शब्दको 'पराखलो' नाम विवेक पूर्वक समझलो। अथवा सतगुरु से पारख करवालो, और सारशब्द मे निज तत्त्वको परखलो तबतेरा कल्याण होगा, नाशरहित होजावोगे। अथवा हे मनुष्यो! सारशब्द तो कहाहुआ हमारा है, और विवेक बिना तुम असार शब्द के बशमें हुये हो, अब भी सार शब्द को सुनकर 'स' नाम उस सारशब्द को 'राखो' धारण विचारादि करो। और यदि तुम अपना 'तत्त्व' नाम नाशरहित स्वरूप को प्राप्त करना चाहते हो तो सार शब्द केही विचारादि से अपना स्वरूपको परखलो। अथवा यदि निजतत्वको चाहतेहो, तो भूत भौतिक यावत् विकारको, 'शब्दहिं' नाम शब्दस्वरूप वाचारम्भणमात्र ही सारशब्दादि से परखलो, तब नाशरहित निजतत्व स्वरूप होजावोगे। अथवा हे मनुष्यो! ज्ञानीलोग समझते हैं कि शब्द हमारा है मैं शब्द का नहीं, अर्थात् शब्दादि सब संसार मेरे आश्रित हैं, मैं शब्द के आश्रित अधीन नहीं हूँ। और तुम विवेकादि बिना शब्दका हुयेहो, इत्यादि अर्थ है। सराखके, सरक, सरक्ख। पराख के परख, परक्ख, पाठ भेद हैं॥

७ साखी दोहा।

शब्द हमारा आदिका, अति बल दिखा न कोय।
आगे पीछे जो करे, सो बल हीना होय॥ ७॥

टीका—तत्त्वज्ञान के अधिकारी की दुर्लभता का वर्णन करते हैं कि पूर्ववर्णित 'हमारा शब्द आदि' चेतन वस्तुका बोधक है, परन्तु उसको समझने धारण करने वाला 'अतिबल' नाम अत्यन्त बल युक्त 'कोय' नाम किसी अविवेकी विचारादि हीन पुरुषों को नहींदेखा न देखता हूँ। अर्थात् विवेकादि रहित पुरुष आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिये असमर्थ होते हैं, कोई विरला विवेकादि युक्तही आदि सारवस्तु की प्राप्ति के लिये समर्थ होते हैं। और बिवेकादि युक्त पुरुष कामादि रूप शत्रुओं को तथा मन इन्द्रिय

अनादि सब वासना तथा अविद्यादि को भी जीतते और नष्ट करते हैं, इससे वे अतिबल हैं। और जो पुरुष विवेक बिना आगे पीछे करते हैं, सो पुरुष बल हीना होते हैं, और हैं भी। भाव यह है कि जो पुरुष सबके प्रत्यगात्मा साक्षी चेतन रूप आदि वस्तु से भी 'आगे' नाम परे कारण की कल्पना करते हैं वा उससे अन्य पर वस्तु को सत्य वा श्रेष्ठ समझते हैं, तथा क्षणिक बुद्धि को आत्मा मानकर उसके भी पूर्व बुद्धि को कारण कहते हैं, और वर्त्तमान् बुद्धि को नष्ट होनेपर उससे पश्चात् अन्य बुद्धि रूप आत्मा की जो उत्पत्ति मानते हैं, तथा ईश्वर से जो पीछे आत्मा की उत्पत्ति मानते हैं, तथा जो चेतनात्मा से आगे शून्य वस्तुको तत्त्व रूप मानते हैं, तथा जो चेतन में कल्पित माया प्रकृति महत्तत्त्वादि को वा किसी कार्यको सत्यमानकर उन पीछे के वस्तुओं में मन लगाते हैं, वे बलहीन हैं, इससे कामादि मन इन्द्रियादि को नहीं जीत सकते हैं। और विवेकादि रूप बलसे हीन होनेसे संशय रूप आगे पीछे करते रहते हैं, सत्य आत्मवस्तु की प्राप्ति नहीं कर सकते हैं, इसलिये विवेकादि की अवश्य प्राप्ति करनी चाहिये। अथवा अर्थ है कि मेरा शब्द आदि का है, परन्तु इसको प्राप्त करने वाला अतिबली कोई नहीं दिख पड़ता है, क्योंकि जो कोई लोक लाजादि-मय संदेह में पड़कर आगा पीछा करता है, सो बलहीना होता है। और सब मनुष्य प्रायःआगा पीछामें 'संशयात्मकमें' पड़े रहते हैं। अथवा मेरा शब्द आदिकाहै इस शब्दसे अन्यकोई शब्दादि अतिबली नहीं दिख पड़ते हैं, क्योंकि जो प्रत्यक्षादि वा जो शब्द 'आगे पीछे करते हैं' नाम सन्दिग्ध बोध कराते हैं, तथा जहां तहां जीवों को भटकाते हैं, सो बलहीनहों होते हैं, इत्यादि अर्थ हैं। लिखा है कि [**यस्मात्परंनापरमस्तिकिञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्तिकश्चित्। वृक्षइवस्तब्धोदिवितिष्ठत्येकस्तेनेदंपूर्णंपुरुषेणसर्वम् ॥ १ ॥ नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो नचप्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्। एतैरुपायैर्यततेयस्तुविद्वांस्तस्यैषआत्माविश-तेब्रह्मधाम ॥ २ ॥ आदिःस संयोगानिमित्तहेतु ॥ ३ ॥**] जिससे उत्कृष्ट अन्यवस्तु नहीं हैं न जिससे अणुतर वा महान् हैं, सो एक आत्मारूप पुरुष द्योतन स्वभाववाला अपनी महिमा में स्थिर है, उसीसे यह सब जगत व्याप्त हैं ॥ १ ॥ बलरहित से यह आत्मा नहीं लभ्य है, न प्रमाद रूप विषयासक्ति से न अलिङ्गतपसे ही लभ्य है, किन्तु कामादिको पराजित करने वाला बल और अप्र-मादादि रूप उपायों से जो यत्न करता है, उसके आत्मा ब्रह्मस्वरूप धाममें 'प्रवेश करता है' नाम उसके मन आदि ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं ॥ २ ॥ वह परात्मा सबके आदिरूप कारणशून्य है संयोग के निमित्तों के भी 'हेतुहै' नाम सबके प्रकाशक है अधिष्ठान है इत्यादि ॥ ३ ॥

८ साखी दोहा।

शब्द बिना श्रुति आँधरी, कहहु कहाँ को जाय।
द्वार न पावै शब्द का, फिरि फिरि भटका खाय ॥ ८॥

टीका-सारशब्द का उपदेश के प्रयोजन बताते हैं, तहां श्रुतिशब्द, श्रोत्रइन्द्रिय, श्रोत्रजन्य-वृत्ति, वेद, तथा वार्त्ता अर्थका बाचक होता है। इससे अर्थ है कि हे मनुष्यो! 'शब्दबिना' नाम सार शब्दको सुने बिना 'श्रुति' नाम श्रोत्रजन्य अन्तःकरण की वृत्ति आँधरी रहती है, भाव यह है कि सत उपदेश बिना मनकी वृत्ति आँधरी के समान रहती है, तो 'कहहु' कि ऐसीवृत्ति 'कहां को जाय' नाम ऐसी वृत्ति किस श्रेष्ठमार्ग वा सद्वस्तु में जा सकती है सो कहो, अर्थात् किसी भी श्रेष्ठमार्ग सद्वस्तु में जाकर स्थिर नहीं हो सकती है, किन्तु असत दुःखद मार्ग वस्तु में ही स्वभावसे प्राप्त होती है, और असार शब्दजाल तथा वस्तु से निकलने की द्वारको नहीं पाती है। अथवा सारशब्द बिना शब्द की द्वार नहीं पाती है, अर्थात् सारशब्द से ही प्राप्त करने योग्य आत्मवस्तु की प्राप्ति की द्वार नहीं पाती है, इससे संसार रूप दुःख में ही बारम्बार फिर फिर कर भटका खाती है, अर्थात् आँधरी वृत्तियुक्त मन वाला जीव बारम्बार संसार में भटका खाता है, सब योनियों में भ्रमता है, जन्मता मरता है, गहन जंगलादि में भूला हुआ मनुष्य के सदृश पीड़ित होता है, इसलिये अवश्य सारशब्द के श्रवणादि करना चाहिये। अथवा गुरुद्वारा सारशब्द को जाने बिना 'श्रुति' नाम वेद-वाक्य तथा लौकिक वार्ता सब 'आंधरी' के समान हैं। अर्थात् जैसे आँधरी स्त्री किसी पुरुष को सतमार्ग सतवस्तु नहीं बता सकती है, वैसे ज्ञानी गुरुके शब्द बिना अपना मन से पढ़ी हुई श्रुति वा जानी हुई लोक वार्ता वा कोई ग्रन्थ भी आँधरी के समान होने से अविवेकी को सतमार्ग सत-वस्तु नहीं बता सकती है, किन्तु ज्ञानीगुरु से पढ़ी जानी हुई श्रुति बता सकती है। इसलिये गुरु शब्द का श्रवण से जो रहित हैं सो कहो कि कहां जासकते हैं? अर्थात् किसी सार वस्तु को नहीं जान सकते हैं, क्यों कि वेदादि रूप शब्द का द्वार को वे लोग नहीं पाते हैं, ।इससे फिर २ कर संसार में ही भटका खाते हैं। वस्तुतस्तु आदि शब्द बिना कल्याण की शंका होने पर कहते हैं कि 'श्रुतिरूप' नाम वेद रूप पूर्व वर्णित आदि वस्तु के बोधक सारशब्द बिना दुनियाँ आंधरी हुई है, इससे सतमार्ग में कहां जा सकती है, और श्रुतिरूपशब्द बिना शब्द का द्वार भी नहीं पाती है, और फिर २ कर भटका खाती है। इसलिये श्रुति को विवेक पूर्बक प्राप्त करनी चाहिये। लिखा है कि [शास्त्रसज्जनसम्पर्कैः प्रज्ञांपूर्वंविवर्द्धयेत् । सेकसंरक्षणारम्भैः फलप्राप्तौलता-मिव ॥ १ ॥ शास्त्रसत्सङ्गमाभ्यासात्सविवेकोजितेन्द्रियः । अत्यन्ताभावमेतस्य दृश्यस्याप्यवगच्छति ॥२॥ अयंप्रकृत्याविषयै.र्वशीकृतःपरस्परं श्रीधनलोलुपोजनः। यथार्थसंदर्शनतःसुखीभवेन्मुमुक्षुशास्त्रार्थविचारणादितः ॥३॥] जैसे सेंचन पशु आदि से रक्षा किया से फल प्राप्ति के लिये लता को बढ़ाई जाती है, वैसे सास्त्र सज्जन का संग से प्रथम बुद्धिको बढ़ानी चाहिये ॥ १ ॥ शास्त्र सत्सङ्ग का अभ्यास से विवेकयुक्त जितेन्द्रिय पुरुष इस दृश्य संसार के अत्यन्ताभाव को समझता है ॥ २ ॥ अज्ञान स्वभाव से यह जन विषयों के वश में हुआ है, तथा परस्पर के श्रीधन के लोभी है सो मुमुक्षु शास्त्र का विचारादि जन्य यथार्थज्ञान से सुखी होता है ॥ ३ ॥

६ साखी दोहा ।

शब्दे मारा गिर परा, शब्दे छोड़ा राज ।
जिन यह शब्द विवेकिया, तिन को समरा काज ॥६॥

टीका—प्रथम कहा गया है कि सारशब्द बिना जीवन व्यर्थ है, और सारशब्द बिना अन्तःकरण की वृत्ति अन्धी रहती है इत्यादि । और अन्तःकरणका चलस्वभाव होने से नहीं सूझनेपर भी कुमार्ग विषयक वृत्ति अनादि वासनासे प्रायः हुई करती है, जिसके अधीन जीव सब बारम्बार भटका खाते हैं, इस उपदेशको सुनकर जिज्ञासा हुई कि सारशब्द में क्या सामर्थ्य है ? कि जिसके अधीन जीवन सफल होता है, और जिसके बिना वृत्तिआदि आँधरी रहती हैं, तब साहेब शब्दों के अनेको विध विचित्र सामर्थ्यों का वर्णन करते हुये, सारशब्दके सामर्थ्य में परम उत्कृष्ट रूपता का वर्णन करते हैं कि हे सज्जनो ! कोई शब्द ऐसा होता है कि उस 'शब्दे' नाम शब्दसे ही मारने पर मनुष्य 'गिरपरा और गिर जाता है' नाम उच्चमार्ग अवस्थासे भ्रष्ट होकर नीचमार्ग अवस्थामें प्राप्त होता है, और क्रोध शोकादिके विवश होजाता है । अथवा मारणमन्त्ररूप शब्दसे श्येनयागादि द्वारा मारनेसे जीव विशेष गिरपरा और'गिरजाता है' नाम मरणपाता है, और किसी शब्द का ही उपदेशसे कितने राजाओंने विरक्त होकर राज्य छोड़दिया, और छोड़देते हैं । इसी प्रकार शब्दसे ही योग जप तप राज्यकार्य कर्मउपासना आदिमें भी मनुष्य प्रवृत्त हुये, और होते हैं। इससे अनन्तो हीन मध्यमोत्तम गति को देने वाले सामर्थ्य शब्दों में हैं, सो लोकमें भी प्रसिद्ध हैं । इन शब्दों में से 'यह' नाम इस सारशब्दका जिन पुरुषोंने विवेक किया वा करते हैं, उनको काज 'सँवरगया' नाम मनुष्य जन्म होना सफल हुआ मोक्षरूप पुरुषार्थकी प्राप्ति हुई, और होती है। अर्थात् सारशब्द का विवेक पूर्वक,साक्षी स्वरूप ब्रह्मात्माकी प्राप्ति करने वाले मुक्त हुये, और होते हैं । और उनसे अन्य पुरुष भटकते ही फिरते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि सब संसार बन्धनको नष्ट करने वाला सारशब्द है । और उस शब्दका सामर्थ्य निःसीम है । लिखा है कि [**वाक सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि । परस्य नाममर्मसु ते पतान्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु ॥ १ ॥ अभ्यासात्साधुशास्त्राणां करणात्पुण्यकर्मणाम् । जन्तोर्यथावदेवेयं वस्तुदृष्टिः प्रसीदति ॥ २ ॥ अनन्दा नाम ते लोकाअन्धेनतमसावृत्ताः । ताँस्तेप्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वाँसोऽ बुधोजनाः ॥ ३ ॥**] जो गालीआदि रूप बाण मुखसे निकलते हैं, उनसे आहत्त मनुष्य रातदिन शोचते हैं, क्योंकि ये बाण मर्मस्थानमें ही लगते हैं, इससे पण्डितपुरुष अन्यके ऊपर इनका प्रयोग नहीं करें, ॥ १ ॥ साधु शास्त्रका अभ्यास, पुण्यकर्मका अनुष्ठान से, जन्तु को यह वस्तुका यथार्थ शुद्ध ज्ञान होता है ॥ २ ॥ जो लोक अन्धतमसे व्याप्त हैं, इसीसे सो आनन्द रहित हैं । अविद्वान् आत्मबोध रहित लोग मरने पर उन लोकों में ही प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

१० साखी दोहा ।

जौं जिव जानहु आपना, करहु जीव को सार ।
जियरा ऐसा पाहुना, मिलै न दूजी वार ॥ १० ॥

टीका—जिससे सारशब्द का विवेक पूर्वक आत्मतत्त्वका विवेकसे कार्य सवँरता है। इससे मनुष्योंके प्रति साहेब उपदेश देते हैं कि हेजीवो ! यदि तुम अपना कार्य सवँरना 'जानहु' नाम चाहते हो, अथवा हेमनुष्यो ! 'जौं' नाम यदि अपना कार्य सवँरना 'जिवजानहु' नाम जियसे अर्थात् अन्तःकरणसे चाहते हो कि मेरा कार्य सवँर जावे जन्म सफल होजावे, तो अपना 'जीवको' नाम स्वरूपको सार करो, अर्थात् पूर्वकहे छठीली स्वरूप अपनेको विवेकादिसे समझो, और शरीरादि विषयक आत्मबुद्धि आसक्ति आदिको त्यागदो, और सो भी इसी जन्ममें शीघ्रही करो, क्योंकि यह 'जियरा' नाम मानव शरीर 'ऐसा पाहुना है' नाम अतिथि है कि इसके बाद दूसरी जन्ममेंही सबको नहीं मिलता है, वा शीघ्र दूजीवार नहीं मिलता है, किन्तु शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार चौरासीलाख योनियोंमें अनन्तो बार भटकनेके बाद कबहिं मानव शरीर मिलता है । तहां भी सज्जन गुरुके सङ्गादि मोक्षकी इच्छा आदि दुर्लभ होते है । इसलिये इसी जन्ममें जीवको सार करलो, जिससे फिर नहीं भटकना होवे । अथवा हेजीवो ! 'जौं' नाम यदि शरीरादि विशिष्ट चेतन द्रष्टा जीवको अपना स्वरूप तुम जानते हो, तो जाना हुआ अपना जीवरूप कोही विवेकसे 'सार करो' नाम शरीर मन बुद्धि आदि दृश्यको त्यागकर अदृश्य आत्मस्वरूप अपने को समझो, और हे 'जियरा' नाम हेजीवो ! यह अपना सारस्वरूप ऐसा पाहुन है कि 'दूजीवार' नाम दूसरे पशु आदि शरीरमें नहीं मिलता है, इसलिये इसी जन्ममें प्राप्त करो । अथवा हेजीवो ! यदि अपने दुःखादि जानते हो, और उनसे रहित मुक्त होना चाहते हो, तो अपना जीवात्माको 'सारकरो' नाम जो सतधर्म सत्सङ्ग विचारादि जीवके लिये सार हैं, उनके हीं अनुष्ठानादि करो, क्योंकि हे जियरा ! अपूर्व पाहुनके सदृश ऐसा शरीर मौका दूजीवार नहीं मिलेंगे । अथवा विवेक शुद्धिके श्रेष्ठ साधन का उपदेश देते हैं कि हे जीवो ! जो तुम 'अपना सार भलाहित जानहु' नाम जो अपने लिये हित समझो सोई सार अन्यजीव मनुष्यको भी करो, अर्थात् जैसे तेरा कोई भला करता है, हितकी बातें प्रेमसे कहता है, पिपासे रहने पर पानी पिला देता है, भूखे रहने पर अन्न देता है, जाड़ेसे पीड़ित दशामें वस्त्र देता है, अच्छी बात मधुर शब्दसे बता देता है, तब तुम उस पुरुषको उसके व्यवहारोंको सार भला अपने लिये जानते हो, यदि कोई न्यायशील पक्षपात रहित होकर अन्यायसे अपहृत तेरे धनादि दिला देता है, तुमसे झूठ नहीं बोलता है, तेरे धन स्त्री आदिका हरण नहीं करता है, तो तुझे बहुत अच्छा जान पड़ता है, तहां जो तुम अपने लिये सार अच्छा जानो सोई दूसरे जीवके लिये करो, क्योंकि जैसे सत्कारादि करने योग्य पाहुन इस जन्ममें मिले हैं, ऐसे पाहुन दूजीवार नहीं मिलेंगे न सत्कार करनेके लिये ऐसी बुद्धि आदि सामग्री मिलेगी । जौंके जो पाठ भेद है ।

११ साखी दोहा ।

जौं जानहु जग जीवना, जौं जानहु तौं जीव ।
पानप चाहहु आपना, पनियाँ मागिन पीव ॥ ११ ॥

टीका–और भी साहेब उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो ! 'जौं' नाम यदि तुम इस जगमें जीवना 'जानहु' नाम जीवना चाहते हो, और समझते हो, 'तौं' नाम तो 'जौं' नाम जो जीव है, उसे 'जानहु' अर्थात् तुम अपना छठी स्वरूप को समझो, उसी रूपसे तुम सदा जीवित रहोगे, इसलिये उसे जानकर उसी रूप से स्थिर होवो, और शरीरादिके अभिमानी होकर जो तुम जीवना चाहते हो सो कभी हो नहीं सकता है, शरीरादि क्षण भङ्गुरहैं। इसलिये अवश्य जीवके साक्षी स्वरूप को जानो यदि जीवना चाहते हो। और अपना 'पानप' नाम पानो शाला 'चाहहु' दूसरे से 'पनियां मांगकर नहीं पीवो' अर्थात् आप आनन्द स्वरूप से स्थिर होने के लिये यत्न करो जिस आनन्द से अन्य पदार्थ भी आनन्दित होते हैं, और तुच्छ पानी के सदृश जो विषय तथा विषय सम्बन्धी आनन्द हैं, उन्हें कर्मादि द्वारा किसीसे 'मांगकर' नाम प्राप्त करके नहीं पीवो उनके भोग इच्छा आदि नहीं करो, उन विषय सुखाभासों के लिये कर्मादि भी नहीं करो, और जो कर्मादि विद्या के विरोधी हैं, उनके उपदेश रूप पानी भी किसी से मांगकर नहीं धारण करो' सुनो तौभी उस असार शब्द रूप उपदेश का शीघ्र त्याग करो। अथवा मुमुक्षु जिज्ञासुओं के प्रति आशीर्वाद सहित उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो ! यदि तुम जगतमें नित्य मुक्त रूप से जीवना जानते हो, अथवा जैसा जगमें प्राणी को जीवना तुच्छ है, और दुःख से व्याप्त है, सो यदि जानते हो, और यह निश्चय करके यदि समझते हो, कि मनुष्य जन्मको सफल करना चाहिये, और इस शरीरसे जगमें जीवन बहुत तुच्छ है, इससे मुक्ति रूप जीवन होना चाहिये, उसके लिये यत्न करना चाहिये, तो 'जीव' नाम चिरकाल तक कल्याण के लिये यत्न करता हुआ तथा जीवन मुक्त रूप से जीवित रहो, यह तेरा जीवन शोभन है। और यदि तुम अपना 'पानप' नाम कल्याण भलाई वा पानिप इज्जत मर्यादा चाहो तो कल्याण परायण होवो, और 'पीव' नाम ईश्वर रूप पत्ति से भी विषयादि रूप पानी मांगकर नहीं लो, प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त संही सन्तुष्ट रहो। अथवा किसी गुरुआसे असत उपदेश रूप पानी मांग कर उस उपदिष्ट अनात्म वस्तुको 'न पीव' नाम पत्ति नहीं मानो, किसी दृश्य विषय की अभिलाषा तुझे नहीं होवे। अथवा जो पूर्वकही रीतिसे जीवको सार नहीं करते हैं, किन्तु केवल जीवनकेही उपाय जानते हैं, तथा करते हैं,। उनके प्रति साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो ! यदि तुम केवल जगमें जीवनाही जानतेहो, और पूर्वकहे आत्मतत्त्वको नहीं जानतेहो, तो जो तुम जीवन मात्र जानते हो सो तुम इसीसे 'जीव हो' नाम अल्पज्ञ अल्पशक्ति परवश हो, और तेरा दूसरा पत्ति है जिसके अधीन होकर दुःखी हुये हो, इसलिये मैं कहता हूँ कि यदि तुम अपना 'पानप' नाम कल्याण इज्जत चाहते हो, तो जीवन की आशा छोड़कर विषयरूप

पनियां असार शब्दरूप पनियां मांगकर नहीं पीवो। अथवा सद्गुरुसे आत्मवस्तु का उपदेशरूप पनियां माँगकर तृप्त होवो, और असत पत्तिरूप पीव किसीसे नहीं मांगो। पानाप चाहहु के स्थानमें पानी पचावहु पाठ भेद है, उसका अर्थ है कि प्रारब्ध कर्मवासनादि रूप जो पानी पीचूकेहो उसी पानी को ज्ञान भोगादि से पचावो नष्ट करो, और अन्य पानी मांगकर नहीं पीवो। अथवा जैसे पिआ हुआ विकृत पानी को पचाने के लिये औषधि युक्त पानी लोग पीते हैं, वैसेही सद्गुरु के उपदेश रूप पानी मांगकर 'पीवोन' अर्थात् अवश्य पीवो जिससे सब विकार नष्ट होजावे। अथवा पानीके सदृश बहने बाला अन्तःकरण को निष्कामकर्मादि से पचावो शुद्ध करो, और जिज्ञासा कालमें भी कुत्सित कर्मादि रूप कर्मफल रूप पानी नहीं पिवो, उसका उपदेश भी किसी से नहीं मांगो, और चित्त की शुद्धि होनेपर ज्ञानसे पूर्वकाल में भी, निष्कामकर्म को भी त्याग कर श्रवणादि परायण होजावो, ज्ञान होने पर लीला रूप कर्म से अतिरिक्त कर्म स्वयंछूट जावेंगे सर्वथा निर्बन्ध होजावोगे, इसलिये अपना पानी आप पचावो इत्यादि अर्थ हैं। वस्तुतस्तु पानिप चाहहु पाठ प्रतित होताहै, पानिपके लज्जाइज्जत अर्थहै लिखाहैकि(**आराधयात्मनात्मानमात्मनात्मानमर्चय। आत्मनाऽऽत्मानमालोक्यसंतिष्ठस्वात्मनात्मनि ॥ १ ॥ ज्ञानवानेव सुखवान् ज्ञानवानेव जीवति। ज्ञानवानेव बलवांस्तस्माज्ज्ञानमयोभव ॥ २ ॥ नैव ज्ञानेन सदृशंपवित्रमिहविद्यते ॥३॥यावद्विषयभोगाशाजीवाख्यातावदात्मनः। अविवेकेन सम्पन्ना साप्याशाहि न वस्तुतः ॥४॥ विवेकवशतो याता क्षयमाशा यदातदा। आत्माजीवत्व मुत्सृज्यब्रह्मतामेत्यनामयः ॥ ५ ॥**] अपना आत्माकी आराधना पूजा आपकरो, और आप अपने को जानकर आप अपने में सम्यक्स्थिर होवो ॥ १ ॥ क्यों कि आत्मज्ञानी ही सुखी हैं, जीवते हैं, बली हैं, इसलिये अवश्य ज्ञानमय होवो ॥२॥ ज्ञानके सदृश पवित्र भी संसार में कोई वस्तु नहीं है ॥ ३ ॥ जब तक विषय भोगकी आशा रहती है तब तक आत्मा के जीव नाम रहता है और अविवेक से सिद्ध वह आशा भी आत्मामें वस्तुतो नहीं है ॥ ४ ॥ जब विवेक से वह आशा नष्ट होजाती है तब अनामय आत्मा भी जीव भावको त्याग कर ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

१२ साखी दोहा।

पानी प्यावत क्या फिरो, घर घर सायर वारि।
तृषावन्त जन होहिं गें, पिवहिं गें झँख मारि ॥ १२ ॥

टीका–जो जिस उपदेश के अधिकारी नहीं है, तथा जिज्ञासा श्रद्धा भक्तिआदि रहित है, उसके प्रति उपदेश देनेंबालों के प्रतिसाहेब कहते हैं कि हेसज्जनो! 'घर २ में सायरवारि' नाम संसार समुद्र के जलभरे हैं, अर्थात् सब मनुष्यों के हृदय गत बुद्धिमें विषय बासना कामादि

रूप जलभरे हैं, असत उपदेश उस विषयादि रूप जलों के समुद्र रूप सबके हृदय होरहे हैं, फिर उन्हें पानी क्या पीलाते 'फिरते हो' नाम उनके प्रति उपदेश क्या देते फिरते हो, उनके प्रति आत्मतत्त्व का उपदेश व्यर्थ होजाता है, हे सज्जनो! जो अधिकारी पुरुष आत्मतत्त्व के उपदेशरूप जल की तृषावन्त होवेंगे सो आपहिं न्यायपूर्वक प्रश्नकरके, और संसार दुःखसे उद्विग्न होने से 'झँख मारि कर' नाम मान तथा काम क्रोधादिको त्यागकर सतगुरु के उपदेशरूप अमृत पिवेंगे, इसलिये विवेक वैराग्यादि युक्त अधिकारी के प्रति छठीली वस्तुके बोधक सारसब्द का उपदेश देना चाहिये, जब वह नम्रता श्रद्धा भक्तिसे पूछे तो अवश्य बताना चाहिये, अन्यथा पूछने पर भी अधिकार प्राप्ति के हेतु कर्म भक्तिभावादि का उपदेश देना चाहिये। जिसके अनुष्ठान से उसके अन्तः करण शुद्ध होवे, और वह अभिमानादि रहित नम्रता विवेक विरागादि युक्त होजावे। और अनधिकारी के प्रति हठ से आत्मतत्त्व का उपदेश देने से अज्ञान कुकर्म की ही वृद्धि होती है, इसलिये उसे वह उपदेश नहीं देना चाहिये। अथवा साहेब कहते हैं कि छठीली स्वरूप निर्मलवारि सब ही घटोंमें व्यापक है, मैं सबको वह पानी क्या पीलाते 'फिरौं' नाम फिरूं जो जिज्ञासा रूप तृषावाले होंगे सो आपहीं झंख मार कर गुरु से पूछेंगे, और पीवेंगे। अथवा जो पुरुष उक्त आत्मतत्त्व को जाने बिना विषय तज्जन्यसुखों के ही लिये उपदेश देते फिरते हैं, उनके प्रति साहेब कहते हैं कि तुच्छपानी क्या पीलाते फिरते हो, उस वारिके तो प्रथमसे ही घर २ में समुद्र है, जिसको तृषा होगी, सो आप झंखमार कर पिवेगा। अथवा तुम तुच्छपानी क्या पीलाते फिरते हो, घर २ में क्षीरसागर सदृश पूर्ण वृद्धि ह्रास पक्षपात रहित आत्मानन्दरूप नित्यतृप्तिके कारणरूप वारि वर्तमान है, जिसको इच्छा होगी सो आप ही झंखमारकर उस आत्मानन्दका पान गुरुसे बूझकर करेगा। अथवा शिष्यसे कहते हैं कि जो तुच्छ लोग तुच्छ उपदेशरूप पानी प्याते हैं, उनके शरणमें वा उनसे उपदिष्ट मार्गोंमें क्या भटकते फिरते हो, जो पानी वे लोग पिलाते हैं सो तो घर २ में समुद्रके वारि सदृश भरी हीं है, जो उसकी तृषावाले होंगे, सो आप झंखमारकर पिवेंगे तुम आत्मतत्त्वके जिज्ञासु मुमुक्षु होकर क्यों भटकते हो। इत्यादि लिखा है कि [**आदौ शमदमप्रायै र्गुणैः शिष्यं विशोधयेत्। पश्चात्सर्वमिदंब्रह्म शुद्धस्त्वमितिबोधयेत्**] प्रथम शमदमादि युक्तगुणोंसे शिष्यको शुद्ध करना चाहिये फिर पाछे यह सब ब्रह्म है तुम शुद्ध स्वरूप हो इस प्रकार बोध कराना चाहिये।

१३ साखी दोहा।

हंसा मोति विकानियां, कञ्चन थार भराय।
जो जस मर्म न जानये, सो तस काह कराय॥

टीका—अनधिकारीके प्रति उपदेश देना निष्फल होता है, इसी अर्थको दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं कि जैसे दुग्धजलको मिले रहनेपर हंस उसमेंसे दूधहीको पृथक करके खालेता है,

तथा कंकड़ पत्थरमें मिलाहुआ भी मोतीको चूनकर खाता है, तहां सुवर्णकी थालीमें भरकर यदि हंसको मोती दियाजाय तो बहुत आनन्दसे खासकता है, और जिस बकआदिके वह भक्ष्य नहीं है, तथा जो मनुष्य उसके मर्मगुण स्वभावादि को नहीं जानता है, उसको यदि कंचनके थारमें भरकर मोती दियाजावे, तो 'सो तस' नाम वह हंसके भक्ष्य श्रेष्ठगुणवाला मोतीको क्याकर सकता है, अर्थात् उससे वह किसी प्रयोजनकी सिद्धि नहीं करसकता है, वैसे ही 'हंसा' नाम विवेकादियुक्त अधिकारियोंके लिये श्रेष्ठग्रंथ महात्माओंके अन्तःकरणादिरूप कञ्चनथारमें भरकर सत्सङ्गादिरूप हाटमें मधुरवाणीसे तौलकर, आत्मतत्त्वके ज्ञान आत्मानन्दादि रूप शुद्धमोती 'बिकानियां' नाम बिकाय रहाहैं, परन्तु उस मोती के जैसा मर्म है, उसको जो अविवेकी वैसा नहीं जानता है। अर्थात् ज्ञानमें जो समूलसंसार रूप दुःखको नष्ट करने का स्वभाव है। और आत्मामें जो नित्य अविनाशी आनन्दरूपता है, उसको 'जो नहीं जानता है' नाम अत्यन्तअनभिज्ञ बहिर्मुख जो पुरुष है, सो पुरुष 'तस' नाम तैसे उस पूर्वकहे ज्ञान आत्मवस्तुको 'क्याकर सकता है' नाम कैसे प्राप्तिकरसकता है, अर्थात् नहीं प्राप्ति करसकता है, इसलिये विवेकरहित हिंसक बकस्वभाववाले लम्पाटादि पुरुषोंकेप्रति आत्मतत्त्व का उपदेश नहीं करना चाहिये। किन्तु हिंसादिरहित सत्यवक्ता श्रद्धालु दयालु शमदमादि युक्त अलम्पटमुमुक्षु के प्रति पूर्वकही आत्मवस्तु का उपदेश देना चाहिये। हिंसादि युक्त के प्रति अहिंसा दया सत्यभाषण शम दमादि काही उपदेश प्रथम करना चाहिये। अथवा जिज्ञासुओं के प्रति कहते हैं कि 'हेहंसा!' मोती सदृश अमलज्ञानादि ज्ञानीगुरु के शुद्धवाणी बुद्धिरूप कञ्चन के थार में भरकर बिकाय रहे हैं, इसलिये उनकी सेवासे, उनके प्रति आत्मार्पणसे उन मोतियों की प्राप्ति करो, और जो गुरुआ लोग पानी पियाने हैं, आत्मवस्तु का जैसा मर्म है, उसे वैसा नहीं जानते हैं, किन्तु विपरीतहीं जानते हैं, सो उसमर्म के अनुसार उपदेशादि रूप तेरा उपकार क्या करेंगे, और कैसे करेंगे, किन्तु नहीं करेंगे। इसलिये उनके साथ उनसे बताये मार्गों में भटकना त्यागो। अथवा हे हंसा! तेरे अन्तःकरणरूप कञ्चनथारमेंहीं भराहुआ छठीली स्वरूप मोती 'बिकानियां है' नाम सब कानि अर्थात् मर्यादा संकोच लज्जा दोषसे रहित है, तौभी उस के मर्म नहीं जानने से तुम दीनदुःखी हो, जो कोई जैसी छठीलीवस्तु है वैसा मर्म 'नहीं' पाया है' नाम नहीं समझा है, सो वैसा आनन्द रूप होते भी क्या करसकता है। लिखा है कि

[सर्वं ब्रह्मेति यो ब्रूया दप्रबुद्धस्य दुर्मतेः। स करोति सुहृद्वृत्त्या स्थाणोर्दुःखनिवेदनम्]

जो कोई विवेकादि रहित दुर्मति के प्रति सब ब्रह्म है, इस प्रकार कहता है, सो मानो सुहृद स्वभाव से ठूंठके प्रति दुःख का निवेदन करता है। जो जाको मर्म न जानै, ताको काह करायै। यह पाठ भेद है अर्थ उक्तही है ॥

१४ साखी दोहा।

हंसा तूं सुबरण बरण, कहा वर्ण को तोहि।
तरुवर पाय पहेलिहो, तबहिं सराहो तोहि ॥ १४ ॥

टीका–अनधिकारी के प्रति उपदेश का निषेध करके फिर अधिकारी के प्रति साहेब उपदेश देते हैं कि 'हेहंसा!' नाम हे विवेकीजिज्ञासुओ! 'तुम सुवरण बरण हो' नाम कञ्चन सदृश दीप्तम्न-रूप, और उपाधिका योगसे अनेकवर्ण भासनेवाला हो। अर्थात् जैसे सुवर्ण अपने स्वरूपसे स्थिर रहते भी, उपाधि का योगसे कटक केयूर कुण्डलादि रूप प्रतीत होता है, वैसेंही तुम अनेकविध अन्तःकरणादि रूप उपाधि का योगसे अनेक रूप भासते हो, वस्तुतः छठीली साक्षी स्वरूपही हो, उस तेरे वर्णको मैंने 'तोहि' नाम तुमसे 'प्रथम कहाहूँ' नाम उसी तेरे स्वरूप स्वभाव को मैंने छठीली जगास्वरूप तुझे प्रथम बताया हूँ, परन्तु जब इस मानवशरीररूप वा संसाररूप 'तरुवर' नाम वृक्षवर को पाकर 'पहेलिहो' नाम इस संसाररूप शरीर को कहानीरूप खेलविशेषरूप जब समझोगे, इसमें आसक्त नहीं होवेगे, तब मैं तुझे सराहूँगा, अन्यथा जगास्वरूप होतेभी मैं तुझे नहीं सराहता हूँ, तेरी बड़ाई नहीं करता हूँ। अथवा जब ' पहेलिहो ' नाम विचारसे उस आत्म-वस्तु के 'पहे' नाम पासमें प्राप्तहोकर 'लिहो' नाम आत्मस्वरूपसे प्रत्यक्ष जब करोगे, तबहीं तुझे सराहूँगा, तेरी प्रशंसा करूँगा। अथवा हे हंसा! तुम 'सुवरण वर्ण' नाम सबसे श्रेष्ठ सुन्दर सत् चित् आनन्दरूपबाला हो उस वर्ण को मैं 'तोहि' नाम तुमसे पूर्वहीं कहा हूँ, परन्तु अपनी छाया में सबको विश्राम देनेवाला, श्रेष्ठतरुवर रूप, उस आत्माको 'पाकर' नाम प्राप्तकरके जब 'पहे-लिहो' नाम पौढ़िहो, अर्थात् सुखपूर्वक आनन्दस्वरूप में जब शयन करोगे, वा वृद्धिको 'प्राप्त करोगे' नाम सर्वसाक्षी ब्रह्मरूपसे जब स्थिर होवोगे, तब तुझे सराहूँगा। अथवा हे हंसा! तुम ब्राह्मणादि 'वर्ण' नाम जातिसे भी अत्यन्तसुन्दर वर्ण हो, और सबसे वरणीय अर्थात् स्वीकार करने योग्य हो, उस तोहिको मैं 'कहा' नाम कहांतक 'बरणको' नाम वर्णन करूँ, तुम सर्वश्रेष्ठ चेतनस्वरूप हो, परन्तु संसाररूप समुद्रमें शरीर इन्द्रिय विषयादि रूप तरुवर पाकरभी, जब इस संसाररूप समुद्रसे 'पहेलिहो' नाम हेलकर और पौंड़कर जब पार हो जावोगे तबहीं मैं तुझे सराहूँगा। भव यहहै कि किसी नदी को मनुष्य पौंड़कर बाहुबलसे पारहोना चाहता होवे, वा नौका से पारहोना चाहता होवे, तहां यदि नदीका वेगसे उखडकर बहताहुआ बृहद्वृक्ष वीचमें मिलजावे तो प्रायः पौंड़ने में कुशलपुरुष भी फँसकर डूब जाता है, नौका भी उसमें फँसकर डूब जाती है, वैसे संसार-रूप वृहद्नदी में शरीर स्त्रीआदि उखड़े हुये वृक्षों के समान हैं, मन्दविवेक वैराग्य वाले संन्या-सादि वेषधारण करके, पढ़गुण करभी, इन वृक्षोंमें फंसकर संसार में डूबते हैं। अत्यन्त युक्ति-वाले दूरदृष्टिपुरुष जैसे उक्त वृक्षको दूर से त्यागकर नदी से पार होते हैं। हे हंसा! वैसेंही सद्युक्ति दूरदृष्टिता से जब तुम आसक्ति रहित होकर संसार से पार हेलजावोगे तब मैं तेरी स्तुति बड़ाई करूँगा। अथवा कंचनथार कौन है? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं कि हे हंसा! तुँहीं सुवर्णरूपहो, जिसमें ब्रह्मानन्दादि मोती विकते हैं इत्यादि। कहा वरणकोतोहि के क्या बरणों मैं तोहि, यह पाठ भेद है अर्थस्पष्ट है। लिखा है कि [**अग्निर्यथै-को भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति-**

रूपो बहिश्च ॥ १ ॥ एको वशी सवभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ २ ॥ विषयाख्यग्रहो येनसुवरक्तयसिनाहतः । स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूहवर्जितः ॥ ३ ॥]
जैसे एकही अग्नि काष्ठसमुदाय मे पैठी है, और नानाविध काष्ठमें नानारूप होजाती है, और तेजरूपसे काष्ठोंसे विलक्षणही रहती है, वैसेही सब प्राणीके अन्तरात्मा एक हैं, नानाविध शरीरमें नानारूप हुआ है, और स्वरूपसे शरीरसे बाहर शुद्ध स्वरूप है ॥ १ ॥ सबको वशमें रखने वाला सब प्राणीके अन्तरात्मा एक है, जो अपना एकरूपको बुद्धि रूप उपाधिसे बहुधा करलेता है, उस बुद्धिस्थ आत्मा को जो धीरलोग अपरोक्ष अनुभव करते हैं, उनहीं को नित्य आत्मानन्द प्राप्त होता है, अन्यको नहीं होता है ॥ २ ॥ जिस पुरुषने उत्कृष्टविरक्ति रूप तरवारसे विषय और उसकी आशारूप ग्रहोंको नष्ट किया है सोई संसार रूप समुद्र के पार जाता है ॥ ३ ॥

१५ साखी दोहा।

हंसा तूं तो सबल था, हलुकी अपनी चाल।
रङ्ग कुरङ्ग रङ्गिया, किया और लगवार ॥ १५ ॥

टीका, और भी जिज्ञासुओं के प्रति कहते हैं कि हे 'हंसा!' इस स्थूलशरीरके धारणसे पूर्वकालमें 'तूं सवलथा' अर्थात् इस जन्मसे प्रथम, और पूर्वशरीर त्यागके वाद सूक्ष्म समाज सहित तुम बहुत बलीथा, क्षणमात्रमें करोड़ो कोश जासकता था तथा वहां के वस्तुओं को जान सकताथा, परन्तु गुरु सत शास्त्रादिका अभावसे तुझे उस समय तत्त्वज्ञान नहीं हुआ न किसी को हो सकता है, और बलीहोते भी तुम अपनी हलुकी चालसे नाम कामकर्म की वासनासे कर्मवासना के अनुसार कुरङ्ग रङ्गमें 'रङ्ग गया है' नाम मलमूत्रमय कुत्सित शरीरमें प्रवेश तथा अभिमान किया है, जिससे कारण सूक्ष्मशरीररूप 'लगवार' नाम सम्बन्धी तो तुझे प्रथमसे ही थे, एक और नवीन लगवार तुमने 'कर लिया है' नाम अभिमानादिसे स्थूलशरीर को अपना सम्बन्धी बना लिया है, जिससे अत्यन्त अबल होगया है, विवेक विरागादिसे इन तीनोंमें आसक्ती आदिको त्यागकर मोहादि रहित अत्यन्त 'सबल होवो' नाम प्रथमसे भी बली बनो तब संसाररूप सागरसे पार होवोगे। अथवा स्वभाव सिद्धनिर्बल मुझसे क्या हो सकता है, ऐसी शंका होनेपर कहते हैं कि हे हंसा! इस जन्ममे भी जबतक तुम अनेको असत शब्दरूपजालमें, और अनेको विषयोंमें नहीं फँसाथा, तबतक तुम सबलथा, तेरा अन्तःकरणस्वच्छ और उत्कटराग द्वेषादि रहितथा, परन्तु अपनी हलुकी चालसे अब तुम 'सुरङ्ग होतेभी' नाम चेतनस्वरूप होते भी कुरङ्ग और मिथ्याविषय व्यवहारादिमें फंसगये हैं, और अपना छठीलीस्वरूप सत्यपतिको त्याग-

कर, उसकी प्राप्ति अनुभव नहीं करके, तुमने 'और' नाम उससे अन्य 'लगवार' नाम असतपति सिद्धकिया है, जो असतपति तुझे मुक्तिरूप आनन्द कभी नहीं देसकता है, प्रत्युत जन्म मरणके हेतुरूप होकर दुःखही देता है, इसलिये हे हंसा! अनात्मविषयादि में प्रवृत्तिके हेतुरूप, तथा उक्त प्रवृत्तिरूप हलुकी चालों को, तथा अन्य असतपतियों को त्यागकर सत्यात्मपरायण होवो, जिससे तुझे परमानन्द की प्राप्ति होजावे और अबलता पराधीनता अत्यन्त नष्ट हो जावें। कहीं पाठ है कि [हंसा तेहैसबलता] इत्यादि, तब अर्थ है कि हे हंसा! तुझे अब भी 'सबलता है' नाम सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप होनेसे तुम अभी भी अत्यन्तबली हो, परन्तु 'अपनी चाल' नाम स्वभाव रूप जो अविद्यात्मक माया है, सोई 'हलुकी' नाम तुच्छ अनिर्वचनीय अनवस्थिर रूप वाली है, उसीसे तुम कुरङ्ग सदृश सूक्ष्म स्थूलरूप रङ्गमें रङ्गे हो वा धर्माधर्मरूप रङ्ग, और कुरङ्गमें रङ्गेहो सनेहो, अर्थात् सनेहुयेके सदृश भासते हो, और असङ्ग होतेभी अन्य 'लगवार' नाम सङ्गी पतिकल्पना से सिद्ध किये हो, भाव यह है कि सात्त्विक होनेसे अन्तःकरण प्रकाशशील है, और चेतनात्मा भी प्रकाशस्वरूप है, परन्तु अविद्या वासनावश रजोगुण तमोगुण के प्रधान होनेपर काम क्रोधादि युक्त अन्तःकरणरूप बुद्धि रजोगुण तमोगुण से अभिभूत होकर मलिन होजाती है, इससे आत्मतत्त्व को यथार्थ प्रकाश करने के लिये उसके यथार्थ प्रकाश को अभिव्यक्त करने के लिये असमर्थसी हुई रहती है, फिर शुभकर्मोपासनादि से उसे शुद्धहोनेपर आत्मतत्त्व के विचारादि से ज्ञान होता है, जो विचारादि के अनुष्ठान किसी हेतुवश नहीं करते हैं, उनकी बुद्धि फिर मलिन होजाती है, मन्दविवेक वैराग्य भी विषयसङ्गादि से नष्ट हो जाते हैं, इसलिये हे हंसा! अपने बलकी रक्षाके लिये सङ्गादिकों को त्यागकर दृढविवेकादि का सम्पादन करके मुक्त होवो। लिखा है कि **अविद्यासंश्रयादात्मा बलीयानपिदुर्बलः। अविद्याराजयक्ष्माऽस्य कार्श्यमेति तया यतः॥१॥ मोह एव महामृत्यु मुमुक्षो र्वपुरादिषु। मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपदमर्हति॥२॥ इच्छोदयोयथा दुःखमिच्छा शान्ति र्यथासुखम्। तथा न नरके नापि ब्रह्मलोकेऽनुभूयते॥३॥** बलीयान् भी आत्मा अविद्या से दुर्बल है, अविद्या इसको राजयक्ष्मारोगरूप है उसीसे कृशता एकदेशित्वादि रूपता को प्राप्त होता है॥१॥ मोह महामृत्यु है, उसको जिसने अत्यन्त जीत लिया है वही मुक्तिपद के योग्य है॥२॥ इच्छाहोना जैसा दुःख है वैसा दुःख नरक में भी नहीं है, क्योंकि इच्छामूलकही नरक में भी दुःख होता है, और इच्छा की निवृत्ति होनी जैसा सुख है वैसा सुख ब्रह्मलोक में भी नहीं अनुभूत होता है, क्योंकि इच्छा के अभाव मूलकही वहां भी सुख मिलता है॥३॥

१६ साखी दोहा।

हंसा सरवर तजि चले, देही परि गौ शून।
कहहिं कबीर पुकारिके, तेई दर तेइ थून॥ १६॥

टीका—जैसे कुरङ्ग रङ्ग में रङ्गकर जीव वर्तमानशरीर को धारण किया है, वैसेही आगे भी शरीर को धारण करता है, अबल तथा परवश होता है, यह उपदेश साहेब करते हैं कि हे हंसा! नाम हे विवेकीपुरुषो! यह 'देही' नाम देहाभिमानी जीव जब शरीररूप सरोवर को त्यागकर चलता है वा चला जाता है। तब 'परिगौशून' नाम शरीररूप सरोवर शून्य पर जाता है, परन्तु शरीर के अभीमान और विषयादि की वासनाओं को वर्तमान रहने से 'तेईदर' नाम उस वासनाहीं के 'दरमें' नाम विषयादिरूप स्थान में तथा शरीर में 'तेइ' नाम उस देही को वे वासना कामकर्म अविद्यादि 'थूनते हैं' नाम स्तम्भ के सदृश गाड़ देते हैं, अर्थात् वासना आदि के अनुसार ही वह जीव किसी योनि में या गर्भादि में वास करता है। सो साहेब पुकारके कहते हैं कि हे हंसा! तुम वासनाआदि को नष्ट करनेके लिये यत्न करो, जिससे किसी योनि में या गर्भादिमें नहीं बास करना होवे। अथवा देहाभिमानी देही 'हंसा' नाम जीव जब देह को त्यागकर चला वा चलता है, तब जाने आने आदि की शक्ति बढ़ भी जाती है, परन्तु 'शून' नाम शून्य परगया और परजाता है, अर्थात् संसार के दुःखादिकों को समझने के लिये, आत्मतत्त्व को जानने के लिये, वासनादिकों को नष्ट करने के लिये, असमर्थ होजाता है॥ जड़तुल्य विवेकशक्ति से रहित होजाता है, इसीसे साहेब पुकार के कहते हैं कि हे मनुष्यो! 'तेईदर' नाम उसी दुःखमय सरोवरमें, और 'तेइथून' नाम उसी शरीर हृदयादिरूप स्तम्भखूटा में वासनाआदि रूप रज्जु से जीव बांधा जाता है। अर्थात् अविवेकी पुरुष जैसे प्रथम वासनादि से पाञ्चभौतिक शरीर में बद्ध रहता है वैसे ही फिर उसी संसार में कामादि ग्रन्थियों से शरीर विषयादि में बन्ध जाता है, शून्य परजाने से उसको प्रथम के दुःखादिका ज्ञान नहीं रहता है, जिससे उसका परिहार करे। इसलिये जीवित स्वस्थदशामेंहीं आगामी बन्धका परिहार के लिये सद्गुरुके उपदेश के अनुसार अवश्य यत्न करना चाहिये। देही परिगौ, के स्थान में, देहसरीगौ, पाठ होवे तो अर्थ है कि, जब यह हंसा सरोवर को तजकर चलता है, तब वर्तमानदेह तो शून्य पर जाता है, परन्तु 'तेईदर' नाम उसी ठिकाने वह जीव तृणजलौका न्यायसे वासनाद्वारा 'तेइथून' में बन्धाजाता है नाम बासना द्वारा अन्यशरीररूप बन्धन को उसी स्थान में पकड़ लेता है इत्यादि। अथवा विवेकी ज्ञानी के लिये अन्त्येष्टि कर्मके अभावका उपदेश देते हैं कि 'हंसा' नाम विवेकज्ञान युक्तपुरुष जब शरीर को त्यागकर चले, तब उनके देह शून्य हो गया, और हो जाता है। अर्थात् अज्ञानी के सदृश उनको शरीरबिषयक वासना भी नहीं रह जाती है। इससे उनके शरीररूप तौनथून तेईदर नाम उसी स्थान में रहगया, उन्हें उससे कुछ मतलब नहीं, चाहे उसे कुछकरो वा नहीं करो। अथवा 'तेईदर' नाम स्थान में 'तेइ' नाम उनके शरीर को 'थूनदो' नाम गाड़ दो अन्य संस्कारों से कुछ मतलब नहीं है इत्यादि। लिखा है कि

[अथोखल्वाहुः काममयएवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते ॥ १ ॥ अथारूपज्ञोभवति। एकीभवति नपश्यतीत्याहुः ॥ २ ॥ तद्यथातृणजलायुका तृणस्यान्तंगत्वाऽन्यमाक्रम-

माक्रम्यात्मानमुपसंहरत्येवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याऽविद्यांगमयित्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसंहरति ॥ ३ ॥) विद्वान् लोग कहते हैं कि यह पुरुष काममय है, इसलिये सो आत्मा जिस काम से युक्त रहता है वैसाही संकल्प निश्चय करता है, जैसा संकल्प निश्चय से युक्त होता है वैसाही कर्म करता है, जैसा कर्म करता है वैसाही फल पाता है ॥ १ ॥ मरने के समय यह जीव रूपादि के ज्ञानसे रहित हो जाता है, क्योंकि उस समय चक्षुआदि सब लिङ्ग शरीर में लीन होकर एक होजाते हैं ॥ २ ॥ फिर जैसे तृणजलौका तृणके अन्त में जाकर अन्य आश्रयरूप तृण को पकड़ता है, और अपने आत्मा को उसी तृणपर लाता है, प्रथम अवयव के स्थान में हीं पिछलाधड़ को लाता है, वैसेही यह जीव पूर्वशरीर को स्वप्नकालके नाई निघात करके गिराकर, और अचेतन करके, अन्यशरीर को वासना से पकड़कर फिर उसीमें अभिमान कर लेता है, और पहले को त्याग देता है इत्यादि ॥ ३ ॥

१७ साखी दोहा ।

हंसा के घट भीतरे, बसे सरोवर खोंट ।
एको ठौर न लागिया, रहास ओटे ओट ॥ १७ ॥

टीका—बोधकेलिये उक्त अर्थकोही स्पष्ट बतातेहुये कामादि के भी मूलरूप अविद्याको बताते हैं कि 'हंसा' नाम जीवों के घटके 'भीतर' नाम शरीरके अन्दर कामकर्म कुत्सितवासना असतभावादि रूप खोंटवस्तुओं के 'सरोवर' नाम तालावरूप कुबुद्धि वसती है, तथा मन वसता है । अथवा कुबुद्धि दुष्टमनरूप खोटों के सरोवर भारी तालावरूप हृदयकमल शरीरके अन्दर बसता है, इसीसे यह हंसा 'एकोठौरमें' नाम किसी शुभमार्गमें वा स्थानमें नहीं लगा है, सत्सङ्ग परोपकार दया अहिंसा विवेक विरागादि युक्त नहीं हुआ है न होताही है । अथवा 'खोंटे' नाम असत मायिक मिथ्यावस्तुओं के वासनाओं का सरोवर इसके अन्तःकरण में बसाहै, इससे यह हंसा 'एको' नाम एक सत्यात्मवस्तुरूप जन्मादिरहित अचल ठौरमें नहीं लगा है, न लगता ही है, किन्तु 'स' नाम वह खोंटयुक्त हंसा 'ओटे ओट में रहा और रहता है' नाम अविद्याकृत आवरणरूप परदा मेंहीं जीव रहता है । सत चित आनन्द स्वरूप आत्माको नहीं प्राप्तकरता है, विवेक विचारादि से उन खोटोंको त्यागेविना दुःखसंसार के मूलकारण अविद्यासे रहित तथा सुखी नहीं होता है । इसलिये हे मनुष्यो ! खोटों का अवश्य त्याग, तथा नाशकरो यदि अनन्त सुख चाहते हो । अथवा हंसा के घटके भीतर खोंट के सरोवर बसता है, जिससे एकोठौर में 'नहीं लगा' नाम स्वर्ग लौकिक सुख मोक्ष कुछभी इसको नहीं प्राप्तहुआ, जिज्ञासाहुई कि यदि शरीरके अन्दर खोंट है तो शरीरछूटने पर वह खोंट कहां रहगया जिससे हंसाको ठौर नहीं मिला ? तब साहेब कहते हैं कि सो खोंट कारण सूक्ष्म शरीररूप 'ओटमें' नाम कोशमें परदा में ओटरूपही होकर रहगया, और रहजाता है, जिससे जीव ठौर नहीं लगता है । रहासओटे

ओट के भयासो ओटहिं पाठ पक्षमें, जिज्ञासाहुई कि खोंट के सरोवर कैसे हुआ? तब कहागया है कि अज्ञानके ओटहिं ओट में वह सरोवर हुआहै। इत्यादि लिखा है कि [**तत्त्वज्ञानंमनो नाशो वासनाक्षयएवच । मिथः कारणतां गत्वा दुःसाध्यानि स्थितान्यतः ॥१॥ वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामुने । समकालं चिराभ्यस्ता भवन्तिफलदा मुने ॥२॥ ज्ञानात्सर्वपदार्थाना मसत्त्वंसमुदेत्यलम् । ततोऽङ्ग वासनानाशाद्वियोगः प्राणचेतसोः ॥३॥**] तत्त्वज्ञान मनका नाश, वासनाके क्षय, ये तीनों परस्पर कारण हैं किसी एक के बिना अन्य नहीं होते हैं, इसलिये अत्यन्त दुःख से साध्य हैं ॥ १ ॥ हे महामुने ! वासनाक्षय विज्ञान मनोनाशका एककाल मेंहीं चिरकालतक अभ्यास करनेसे तीनों परस्पर की सहायता से सिद्धहोकर मोक्षफल के हेतु होते हैं ॥ २ ॥ तत्त्वज्ञान से सवपदार्थ में असत्ता मिथ्यापन सिद्ध होता है, तब वासनाका नाश होता है, फिर प्राण, और चित्तको वियुक्त होजाने से जीव मुक्त होजाता है ॥ ३ ॥

१८ साखी दोहा।

हंस बक देखि एक रङ्ग, चरहिं हरियरे ताल।

हंस क्षीरते जानिये, बकउ धरेंगे काल ॥ १८ ॥

टीका प्रथम कहागया है कि अज्ञानसे वासनाआदि खोंट बनेरहते हैं, और ज्ञान से खोंट सहित अज्ञान की निवृत्तिसे जीवको कल्याण होता है, और ज्ञान की प्राप्ति सद्गुरु के सारशब्द से होतीहै, तहां जिज्ञासा हुई कि गुरुको पहचान कैसे किया जावे ? तव साहेब कहतेहैं कि जैसे हंस बक एकही हरियर ताल में चरते हैं, और एकही रङ्ग श्वेत दिख पड़ते हैं, तहां 'क्षीरते' नाम क्षीर नीर का विवेक से हंस जाना जाता है, और कालरूप होकर मछली को पकड़ने से ' बकउ ' नाम वकुला जाना जाता है, वैसेही सारासार का विवेक से हिंसा कुकर्मादि का त्याग शान्ति दान्तिआदि से, हंस रूप ज्ञानीविवेकी जाने जाते हैं, और अविवेकादि से 'बकउ' नाम बकवृत्ति दुष्ट जाने जाते हैं, और उन दुष्टों कोही 'काल' नाम मृत्यु 'धरहिगें' नाम धरेंगे, अर्थात् वेही बारम्बार काल के वशमें होते हैं। ज्ञानीमहात्मा मुक्त होजाते हैं। उन हंसस्वरूप विवेकी महात्माओं को संसाररूप सरमें इसप्रकार युक्ति से पहचानकर प्रश्नादि से उन्हें जानकर ज्ञानकी प्राप्ति करनी चाहिये। अथवा संसाररूप हरियरतालमें विवेकी अविवेकी ज्ञानी अज्ञानी सब 'चरते' नाम विचरते हैं। तहां शरीरादिरूप जलसे छठीली स्वरूपक्षीर का विवेक करके धारण से अनुभव से, वा विवेक के वाद अनुभव के लिये विचार जिज्ञासाआदि से हंसजानना चाहिये, और जिज्ञासु को अनुभवयुक्त हंसरूप ज्ञानी के शरण में प्राप्तहोना चाहिये, और ज्ञानी, को उक्त विवेकी जिज्ञासु के प्रति उपदेश देना चाहिये, और बक सदृश जो मनुष्य हैं, सो

काल के सदृश विषयादि कोही बलात्कार से धरेंगे, परप्राणी को पीड़ित करेंगे, वा जो वस्तु उनके कालरूप है, उसीको धरेंगे सत्यात्मवस्तु के उपदेशको नही धारण करेंगे, इससे उनके प्रति नहीं उपदेश देनाचाहिये। वस्तुत उपदेश देते हैं कि मानव शरीररूप हरियरताल में ज्ञानी रूप हंस, और अज्ञानी रूप बक दोनों एकरङ्ग दिख पड़ते हैं, और भोजनादिभी दोनों करते हैं, परन्तु पूर्व बर्णित सब खोटोंको त्यागकर और सदृश शुद्ध आत्मवस्तु का सतमार्ग का अनुभव अनुसरणादिसे जीवको हंस जानना चाहिये। और सांई ठौर लगते हैं। और खोटयुक्त 'बकोंको' नाम कामकर्म वासनाआदि युक्त मनुष्यों को काल धरेंगे ऐसा जानना चाहिये। और जानकर खोटोंको त्यागना चाहिये जिससे कल्याण होवे। अथवा बकवृत्ति पुरुष काल सदृश मत्स्य बकरे आदिको धरेंगे, और धरते हैं, उनके सङ्गादि भी नहीं करना चाहिये। इत्यादि लिखा है कि [**हंसः श्वेतो बकः श्वेतः को भेदो बकहंसयोः। क्षीरनीरसमासक्तौ हंसो हंसो बको बकः ॥१॥ अन्यथैवहि सौहार्द भवेत्स्वच्छान्तरात्मनः। प्रवर्ततेऽन्यथा वाणी शाठ्योपहतचेतसः ॥ २ ॥**] हंस बक दोनों श्वेतही होते हैं इनमें भेद क्या है? भेद यह है कि क्षीर नीर मिलने पर हंस हंसही रहता है बक बकही रहता है ॥ १ ॥ स्वच्छान्तःकरण वालोंकी सुहृदता औरचाल की होती है, शठपुरुषों की वाणी अन्य प्रकार से प्रवृत्त होती है, जिससे दोनों पहचाने जाते हैं ॥ २ ॥

१६ साखी दोहा।

काहे हरिणी दूबरी, इहे हरियरे ताल।
लक्ष अहेरी एक मृग, केतिक टारै भाल ॥ १६ ॥

टीका। प्रथम ज्ञानी गुरुका लक्षण कहा गया है, तहां अनेकों उक्त लक्षण वाले ज्ञानी लोगों की बातोंको सुनकर भी जिज्ञासुके चित्तमें क्षोभ संशयादिरूप निर्बलता नहीं होती है, किन्तु एक सारशब्दका उपदेश मिलने से दृढ़ज्ञान होजाता है, परन्तु पहचान बिना यदि किसी एक अज्ञानी अविवेकी को ज्ञानीआदि मानकर उसके असत उपदेशको श्रद्धापूर्वक जिज्ञासुआदि सुनते हैं, तो भय क्षोभ संशयग्रस्त होजाते हैं, यदि बहुत अज्ञानियोंके परस्पर विरुद्ध असत उपदेश सुना जावेतो संशय मिथ्याज्ञानादि रूप निर्बलता में कहनाही क्या है, इस आशयसे साहेब कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ! तेरी बुद्धिरूप हरिणी 'इहे' नाम इस मानव शरीररूप हरियरतालके किनारे भी काहे दूबरी है? नाम शान्ति सुख कल्याणादिकी प्राप्ति कराने के लिये कृश निर्बल क्यों होरही है, यह विचारो, और यह निश्चय समझो, कि असत उपदेशक गुरुआरूप अहेरी लक्षों हैं, सब अपना २

अनुयायी शिष्य बनाना चाहते हैं, और कल्याणार्थी जीवरूप मृग एक है, सो उन अज्ञानी गुरुओं के असत उपदेशरूप कितने भाले बरछाओंको 'टारे, नाम विवेकसे कितनेको असत पहचाने, किसीसे अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ होकर दो चारवाणों से वेधित होही जाता है, इसीसे बुद्धि दूबरी है। कोई विरली बुद्धि प्रबल विवेकरूप कवचका बलसे तथा सतभाग्यसे नहीं वेधित होती है, जो ज्ञानियोंके ही शरणमें जीवात्माको प्राप्त कराती है, तुम भी ऐसी बुद्धिका सम्पादन सद्धर्म निरन्तर विचारादिसे करो इत्यादि भाव यह है कि किसी तालाब के निकारे हरिणीके भक्ष्यरूप बहुत हरित तृण होवे, उसको पीनेके लिये तालाबमें स्वच्छपानी होवे, तौभी हरिणी दुबरी रहती होवे। तहां दुबरीरहने में व्याधाओं के उपद्रव कारण रहता है। वह उपद्रपसे चरने पीने नहीं पाती है। और कस्तुरीके लोभी व्याधाओंसे उसके पतिपुत्रको मारजानेसे शोकसंतप्त भी वह रहती है, इससे दुबरी रहती है। इत्यादि वैसेही अज्ञानी गुरुओं का उपदेशरूप उपद्रवसे बुद्धि भययुक्त रहती है। व्यवहारोंमें फंसीरहती है, जिससे विवेक विचारादि करने नहीं पाती है। और असत उपदेशादिसे काम क्रोध लोभादि भी इसे संतप्तकरतेहैं, इसके पतिरूप जीवात्मा दीन और पराधीन रहता है, उसके शोकभी बुद्धिको पीड़ित करताहै, इससे बुद्धि दूबरी रहती है, हे मनुष्यो! उन उपद्रवादिकोंको नष्ट करके बुद्धिको बलवती करो। अथवा (मन के लक्षद्वार) इस वक्ष्यमाण कथनके अनुसार अर्थ है, कि हे मनुष्यों! इस मानव शरीररूप हरियरतालको होतेभी यह जीवरूप हरिणी दूबरी काहेहै? नाम खोंटोंको त्यागनेमें विवेक करनेमें असमर्थ होकर बकसदृश क्यों हुई है? यह जानो। इसमें कारण यह है कि मनके दौररूप काम संकल्प विकल्प लोक लाज अनन्तों वासनाआदिरूप लाखों अहेरी हैं। और संसारसे पारहोने आदि की इच्छावाला जीव रूप 'मृग' नाम हरिणी एक है, वह कितना भालको टारे, अर्थात् कहांतक मानसवृत्तियों को रोके, और नहीं रोकनेसे जीवरूप हरिणी दूबरी है। यदि किसी प्रकार मनको वशमें करलेवे तो सर्वथा बलवति हो सकती है, इत्यादि अथवा बुद्धिरूप हरिणी दूबरी क्यों हुई? कि जिससे खोंट रूप बकवृत्तिआदि से जीव की रक्षा नहीं करनी है, ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि खोंटरूप अहेरी लाखों हैं, जीवरूप मृग एक है, फिर वह बुद्धि कितने भालाओं को टारे इससे कहीं बलवती बुद्धि रहतेभी खोंट घूसआते हैं, इसलिये अत्यन्त सावधान रहनाचाहिये।

[लिखा है कि [हीयतेहिमतिस्तात हीनैः सह समागमात्। समैश्चसमतामेति-विशिष्टैश्चविशिष्टताम् ॥१॥ यदाऽसत्सङ्गरहितोभविष्यसिभविष्यसि। यदाऽसज्जनगोष्ठीषु पतिष्यासि पतिष्यसि॥२॥] हे तात! हीनपुरुषोंके संगसे बुद्धि नष्ट होती है, समपुरुषोंके सङ्गसे सम रहती है, और श्रेष्ठ पुरुषोंके सङ्गसे श्रेष्ठ होजाती है ॥ १ ॥ जब तुम असतपुरुषों के सङ्गसे रहित होवेगे तब रहोगे, जब असतपुरुषोंकी गोष्ठी में प्राप्त होवेगे तब सुख मोक्षधर्मादि से पतित होजावोगे ॥ २ ॥

२० साखी दोहा ।

लोभे जान गमाइया, पापे खाया पून ।

आधी सो आधी कहै, तापर मेरा खून ॥ २० ॥

टीका—प्रथम कहागया है कि अनेकों असत उपदेशरूप भालाओं को बुद्धि नहीं टारसकी तथा जीव नहीं टारसके इत्यादि । उसीका स्पष्ट वर्णन करते हैं कि असत उपदेशकों ने लोक विषयादिकों को नित्य सुखमायादि वर्णन कियाहै परन्तु उनलोक विषयादिकों के अनित्य दुःखमय रागद्वेषादियुक्त वास्तविक रूप नहीं दर्शाया है । और सुखस्वरूप साक्षीका उपदेश नहीं कियाहै । तथा मनभी लोक विषयादिकों में सत्य सुखरूपता आदिकों की कल्पना संकल्पादिसे सिद्धि किया है । तहाँ उक्त उपदेश और मनकी कल्पनाओं में विश्वाससे जीव सब उनकी इच्छाकिये और करते हैं । और जीवोंने उनलोक विषयादिकों के लोभसे ही 'जानगमाये' नाम अपूर्व मानवशरीर जीवनको बीताये नष्टकिये और करतेहैं । और लोभवश विवेक विराग विचारादिको सम्पादन नहीं करते हैं । और अन्तःकरण की शुद्धिके लिये निष्कामशुभकर्म, भक्ति न किये न करते हैं । इससे इन जीवोंके पुण्यकोभी पापने खालिया और खाता है । अर्थात् जो पवित्र याग दानादि ये लोग करते हैं, उनकोभी काम लोभादिरूप पाप तथा उनसे जन्य व्यभिचारादिरूप पाप नष्टतुल्य कर देतेहैं । और यदि काम लोभ बिना जीव सब कर्म करते तो नित्यसुख शुद्धस्वरूप आत्माको प्राप्तकरके नित्य पवित्र पुण्यस्वरूप हो जाते । वहाँ काम तथा लोभसे अनित्य सुख को प्राप्तकरने परभी कामादिरूप मलसे युक्तही रहगये । इससे मानों पापस्वरूप कामादिक पुण्यको तथा पवित्रस्वरूप आत्माको खाय लिये । और खा लेते हैं । इसलिये साहेब कहते हैं कि आधीसाखीरूप जो ॐकार है, उससेभी आधी जो व्यञ्जनमात्र मकार है, उससे पर जो अमात्र चेतनात्मा है, उसमें मेरा-पनका खूनकरो । अर्थात् सबही वस्तु लोक विषयादिके कामलोभादिकों को त्यागकर ओंकारके लक्ष्यस्वरूप आत्मामें सब मैं मेरी भावको लीन करो । अथवा आधीके आधी जो मकार है उसीपर मेरा खून है, नाम उसीके लक्ष्यस्वरूप चेतनात्माके लिये मेरा प्राणान्ततक सब यत्न है । मैं अपने रागलोभादि युक्त बाह्यरूपता को नष्टकरके उसीमें स्थिरहूँ, इसलिये हे मनुष्यो ! तुमभी इसी प्रकार स्थिर होवो । लोभवश व्यर्थ जान नहीं गमावो । अथवा आधी साखीस्वरूप जो दो वा तीन मात्राबाला ओंकार है, उससे भी आधी एक वा डेढ़ मात्रापर भी लोभादि की निवृत्ति के लिये मेरा खून है, अर्थात् उसकाभी मैं सर्वथा निषेध करता हूँ, क्योंकि वहभी असत्यलोभ को बढ़ाने बाला है । उसे भी त्यागकर चतुर्थ अमात्रमें चित्तकी स्थिति करनी चाहिये सोई कल्याणकारक है । भाव यह है कि आगेकी साखीमें, शिरकटी आधी साखी पदसे ओंकार को कहा जाता है, क्योंकि ॐ इस प्रकार प्रायः ॐकार लिखा जाता है, उसके शिर अन्यअक्षरों के सदृश नहीं बाँधा जाता है । और (गौस्त्री) इस छन्दो मञ्जरी के अनुसार दो गुरुअक्षरके चरणबाला स्त्री नामक छन्द होता है, और (ग्श्रीः) इसके अनुसार एकगुरुवर्णके पादबाला श्री नामक छन्द होता है, इससे

स्त्रीछन्दरूप साखीके नाम वाक्यरूप प्रमाणके चार गुरुअक्षर को आधी साखी कही जासकती है। और श्रीछन्दके चार गुरुअक्षर होते हैं, इससे दोअक्षर आधी साखीरूप होते हैं एक गुरुअक्षर आधीसेभी आधी होता है। और चरणको ही साखी का अङ्गरूप होनेसे साखीरूप माननेपर स्त्री छन्दमें एक गुरुवर्ण आधीसाखी होता है। एकमात्रा आधीसे भी आधी होती है। श्री छन्दमें आधीमात्रा आधी सो आधी होती है। उस आशयसे प्रकृतमें आधीसे आधी कहा गया है। उदाहरण है कि (ओं, नः,) (स्वं, स्यात्) धर्मो लोके एको बन्धुः) मुझे प्रणवरूप धन होवे। लोक में धर्म एकबन्धु है। अथवा वाक्यरूप प्रमाण दोपदसे कमरहते नहीं होता है, और दोपद रहनेपर होजाता है। जैसे 'ओमस्ति' ओंकरहै। तहां आधीसाखी ओंकारहै, और उसके कुछ अंशको त्यागनेपर आधीसो आधी एक वा दो मात्रा भी होसकते हैं। साहेब कहते हैं कि उसपरभी मेरा खूनहै, अर्थात् जो जो आधीसो आधी हैं, उनके वाच्यअर्थमें भी जितने मायिक लोभके विषयवस्तु हैं, उनकी निवृत्ति के लिये विषयसे भिन्न आत्मवस्तु में स्थितिपूर्वक मेरे प्राणोंका अर्पण है। लौकिक विषयों की प्राप्ति के लिये आधीसाखीरूप ओंकार की उपासना उपनिषद् में लिखी हुई है कि [स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव सम्वेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोक मुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान मनुभवति ॥१॥ अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकं स सोमलोके विभूति मनुभूय पुनरावर्तते ॥ २ ॥] ओंकार में अकार उकार मकार ये तीन मात्रायें हैं, उन्हें नहीं जानकर जो कोई एकमात्रा अकार का और उसद्वारा अवयवरूप अकारके अर्थका ध्यानकरता है, सो ध्याता ध्यानसे ध्येयका साक्षात्कार करके मरने के बाद शीघ्रही पृथ्वीपर प्राप्त होता है। वहां ऋग्वेद के अभिमानीदेवता उसे मानव शरीर की प्राप्ति कराते हैं। और वह उपासक मानवशरीर को प्राप्तकरके तथा तप ब्रह्मचर्य श्रद्धा से युक्तहोकर महिमाको अनुभव करता है नाम महत्त्व को प्राप्त करता है ॥ १ ॥ जो पुरुष द्विमात्र विशिष्ट ओंकार को ध्यान करता है। अथवा द्वितीयमात्रारूप उकार रूप से ध्यानकरता है, सो मनमें लीन होजाता है। अर्थात् मनपद के वाच्यस्वप्नस्वरूप उकारमें लीन होजाता है। और अन्तरिक्षलोक में प्राप्त होता है। तहां यजुर्वेद के अभिमानीदेवता सोमलोक सम्बन्धीशरीर में प्राप्त कराते हैं, फिर वह मनुष्य वहांके विभूतियों को भोग करके मानवलोक में आता है [यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुष मभिध्यायीत। स तेजसि सूर्ये सम्पन्नो यथा पादोदरस्त्वचाविनिमुच्यते। एवं ह स वै पाप्मना विनिमुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते] जो पुरुष ओम् इस तीन मात्रायुक्त ॐकाररूप अक्षरद्वारा इस ओंकाररूप वाचक सहित परपुरुष को ध्यान करता है, अर्थात् ओंकाररूपसे सूर्यगत

पुरुषके ध्यान करता है; सो तेजस्वरूप सूर्य में प्राप्त होता है। और सर्प जैसे जीर्णत्वक् से मुक्त होता है, वैसे वह पुरुष पापअशुद्धि से मुक्त होता है, फिर वह सामवेद के अभिमानी देवता द्वारा ब्रह्मलोक में जाता है। फिरजीव धनस्वरूप अन्यजीवों से परहिरण्यगर्भ से भी पर सर्वात्मस्वरूप पुरुष को वह पुरुष देखता है। प्रकृत में आधी से आधी की उपासना प्रथम दोनों वाक्यों से विदित हैं। सो लोक द्वयके हेतु हैं, उसका निषेध में साहेब का तात्पर्य है। कि मोक्षार्थी दृश्य लोकार्थक उपासना नहीं करे इत्यादि लिखा है कि [लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रजायते । लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ॥ १ ॥ लोभः प्रतिष्ठा पापस्य प्रसूतिर्लोभ एव च । अत्र ते संशयो माभूल्लोभः पापस्य कारणम् ॥ २ ॥ नचस्ति धर्मसम्बन्धो लोभाक्रान्तस्य देहिनः । स एवं धर्म विध्वंसी लोभः परम दारुणः ॥ ३ ॥ यत्पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नूनं नैकस्य पर्याप्तमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ ४ ॥ लोभ सेही क्रोध काम मोह नाश सब होते हैं और लोभ पापका कारण है ॥ १ ॥ लोभही पाप की प्रतिष्ठा तथा प्रसूति है इसमें तुझे संशय नहीं होना चाहिये। क्योंकि लोभ पापका कारण है ॥ २ ॥ लोभसे आक्रान्त प्राणीको धर्मसे सम्बन्ध नहीं होता है, क्योंकि परम दारुण वह लोभही धर्म को नष्ट करने वाला है ॥ ३ ॥ पृथ्वी में जितने धान, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्री हैं सो सब पदार्थ लोभयुक्त एकके लियेभी पर्याप्त नाम पूर्ण नहीं हैं ऐसा जानकर शम की प्राप्ति करनी चाहिये ॥ ४ ॥

२१ साखी दोहा ।

आधी साखी शिर कटी, जो निरुवारी जाय ।
क्या पण्डित की पोथिया, राति दिवस मिलि गाय ॥ २१ ॥

टीका—चौंतीसी में वर्णित रीति से ओंकार के अर्थस्वरूप आत्मवस्तु का यथार्थ अनुभव से सब कर्तव्य के अभाव का वर्णन करते हैं कि शिरकटी जो आधी साखीरूप ॐकार है उसका यदि अर्थसहित निरुआर किया जावे, अर्थात् विवेक विचार पूर्वक यदि उसका प्रत्यक्ष निश्चयकर लिया जावे, तो जिन पण्डितों के पोथियों को लोग रातदिन मिलमिलकर गाते और पढ़ते हैं, उन पोथियों से फिर क्यालेना है, और उन पोथियों में उससे अतिरिक्त सारही क्या है ? किन्तु कुछ भी नहीं है, भाव यह है, कि ओंकार के उपासना विचार ज्ञानादि के बाद सामादि के गान स्तुति आदि तथा अन्य ग्रन्थों के पठन पाठनादि निष्फल और तुच्छ होजाते हैं । जैसे सब नदियाँ समुद्र के अन्तरगत होजाती हैं वैसेही सब गानादि ओंकार के अन्तरगत हो जाते हैं, इसलिये ओंकार का निर्णय अवश्य करना चाहिये । और लोभको सर्वथा त्यागकरना

चाहिये यह तात्पर्य है। किसी सतशास्त्र को अध्ययन गानका निषेध में तात्पर्य नहीं है। कटी, के स्थान में, खड़ी, खंडी, कटै। पाठ भेद हैं उस का भी उक्तही भावार्थ है, खड़ी के सबके शिरपरें खड़ारहने वाला ईश्वर वा खड़ा शिरबाला ओंकार भी अर्थ है॥ लिखा है कि [**ओमिति ब्रह्म॥ १॥ ओंकार एवेदं सर्वम्॥ २॥ एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म॥३॥ यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः। आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ ४॥ अकारो नयते विश्वमुकारश्चापितैजसम्। मकारश्च पुनः प्राज्ञां नामात्रे विद्यते गतिः॥ ५॥ युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्। प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥ ६॥ प्रणवोह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः अपूर्वोऽनन्तरोऽबाह्योऽनपरः प्रणवोऽव्ययः॥ ७॥ अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्यो-पशमः शिवः। ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरोजनः॥८॥**] ओम् यह ब्रह्म है १ ओंकार ही इन सबों का आत्मा है॥ २॥ जो पुरुष आत्मही में रतिबाला आत्माही से तृप्त आत्मा ही में सन्तुष्ट रहता है उसको कुछ कर्तव्य नहीं है॥ ३॥ अकारप्रधान ओंकाराद्वारा आत्मवस्तु की चिन्तन से वह अकार विश्व से अभिन्न वैश्वानरमें पुरुष को प्राप्त करता है अर्थात् वह पुरुष वैश्वानर हो जाता है, उकार प्रधान चिन्तन से तैजसपुरुष हिरण्यगर्भ होता है, मकारप्रधानोपासना चिन्तन से मकार उसको अव्याकृत में प्राप्त कराता है, और अमात्र में कहीं गति नहीं होतीहै जीव मुक्त हो जाता है॥ ४॥ अमात्र तुरीयस्वरूप प्रणव में सदा चित्त को लगाना चाहिये। प्रणवही निर्भय ब्रह्म है इससे प्रणव में नित्ययुक्त को कहीं भय नहीं होता है॥ ५॥ प्रणवही पर अपर ब्रह्म है 'अपूर्व' नाम कारण रहित है अनन्तर है उसके अन्दर में व्यवधायक अन्य नहीं हैं उससे बाहर भी कुछ नहीं है, इससे अबाह्य है, उससे पर अन्यकार्य नहीं है, इससे अपर है, और सबके आत्मा अव्यय प्रणव है॥ ६॥ वह प्रणवरूप अमात्रआत्मा परिच्छेद मापसे रहित होनेसे अनन्तमात्र है द्वैतरहित कल्याण रूप है, जिसने उसको जाना है सो मुनि है अन्य नहीं है चाहे शास्त्र वेत्ता भी होवे॥ श्रुति गीता गौड़पाद कारिका रूप ये वचन हैं॥

२२ साखी दोहा॥

पांचतत्त्व का पूतला, युक्ति रची मैं कीव।
मैं तोहि पूछौं पण्डिता, शब्द बड़ा की जीव॥ २२॥

टीका-जो पुरुष आत्मस्वरूप ओंकारको जानेविना वाचारम्भणमात्र स्वरूप शरीरादि विकारों के तथा शब्दजाल का अध्यन के अभिमान चिन्तनादि करते हैं, उनके प्रति साहेब कहते हैं कि हे पण्डितो! यह शरीर पाँचतत्त्व के पूतलास्वरूप है, और तुम सब 'अनेकों युक्तियाँ रच

कर' नाम अनेकों शास्त्रीय युक्तियों को बनाकर भी उसी पूतला में 'मैं जीव' नाम आत्मबुद्धि अभिमान किये हो। और ओंकाररूप आत्माको नहीं जानते हो, इसलिये मैं तुमसे पूछता हूँ कि 'शब्दरूप' नाम वाचारम्भणरूप वा शब्दादिके संघातरूप शरीर बड़ा है ? कि ओंकाररूप जीव बड़ा है ? अर्थात् जीवही बड़ा है उसे जानों। शरीर शब्दमय विद्यादि के अभिमानों को त्यागो। अथवा 'हे पण्डितो !' नाम जिज्ञासुओ ! तुम ॐकाररूपहो, परन्तु अज्ञानादिसे बुद्धिआदिके साथ 'युक्ति रचकर' नाम सम्बन्ध रचकर पांचतत्त्व की पूतलारूप शरीर में मैं बुद्धि करलिये हो, और उसी के अनुकूल शब्दादि में फँसे रहतेहो, अतः तुमसे पूछताहूं कि 'शब्द बड़ा है' नाम शब्दादि तुम्हे अधिक सुखदेनेवाले हैं वा जीव बड़ा है ? अर्थात् ओंकारका निर्णय से ज्ञातजीव के स्वरूपही बड़ा है। उसीको जानो जिससे तेरा कल्याण हो। अथवा अभेददृष्टि से साहेब कहते हैं कि पाँचतत्त्व की पूतलायों को युक्ति रचकर मैंनेहीं किया है तो हे परोक्षतत्त्ववादी पण्डितो ! मैं तुमसे पूछताहूँ कि इसका रचनेवाला मैं जीव बड़ाहूँ कि कल्पित शब्दमात्र बड़ा है ? अर्थात् मेराही स्वरूप सबसे बड़ा है। अथवा चौंतीसी में वर्णित रीतिसे जो लिखकर मेटने योग्य को वा केवल ध्वनिरूप कोही बड़ा मानते हैं, और विचार विवेक बिना उसी में आसक्त रहते हैं, उन पण्डित मानियों के प्रति कहते हैं कि पांचतत्त्व के पूतला मेंही वायुआदि के योग रचकर ओंकारादि अनेकों लेख ध्वनिरूप शब्दोंको मैंने किया है, तथा करता हूँ तो हे पण्डितो ! मैं तुमसे पूंछता हूँ कि ओंकारादि शब्दबड़ा हैं कि मैं उसे रचनेवाला जीव बड़ा हूँ ? इस बातको विचारकर तत्त्ववस्तु को समझो, शब्दमात्रविषयक आसक्तिआदि का त्यागकरो। अथवा हे पण्डितो ! मैं तुमसे पूंछता हूँ कि पांचतत्त्व की पूतला को युक्ति से रचकर और उसमे मैं बुद्धि करनेवाला जीव बड़ा है कि उसे बन्धनरहित करनेवाला सारशब्द बड़ा है ? नाम सारशब्द से प्राप्तकरने योग्य शुद्धात्मा बड़ा है ? इस बातको विचारो जानो इत्यादि अर्थ है॥

२३ साखी छं० सरसी।

पांच तत्त्व लै या तन कीन्हा, सो तन कालै कीन्ह।
कर्महिं के वश जीव कहतहैं, कर्महिं कहँ जिव दीन्ह ॥ २३ ॥

टीका—पूर्वकहे शब्द और जीवके स्वरूप के विवेकबिना अनर्थविषयक जीवों की प्रवृत्ति का वर्णन करते हैं कि अज्ञान कामकर्म लोभ वासनाआदि के वशवर्ती जीवों ने, पांचतत्त्व को 'लेकर' नाम अदृष्टादि द्वारा ग्रहण करके, यह दुःखमय परन्तु मोक्ष के अपूर्व श्रेणीरूप मानवतन 'किया है' नाम इसकी रचना तथा प्राप्ति किया है, परन्तु अज्ञान मोहादि वश उस तनको लेकर प्राप्तकरके भी जीवों ने क्या किया और क्या करते हैं कि चेतन शुद्धात्मास्वरूप होतेभी जिस कामकर्मके वश होने से इन्हें जीव कहतेहैं, नाम अल्पज्ञ तुच्छ पराधीन प्राणी जिन कर्मों से इन्हें कहते

हैं, उन कर्मों कोही जीवों ने इस शरीर को फिर भी देदिया, अर्थात् विवेक विचारादि नहीं करके इस शरीरसे कामकर्मादिकही करने लगे और करतेहैं। इससे मानों कर्मों के प्रति इस शरीर को अर्पण करदिया ओंकार का निर्णय के प्रति नहीं अर्पण किया, इससे लोभही में जान गँवाये और गँवाते हैं। अथवा ईश्वर अदृष्टादिकों ने पांचतत्व को लेकर यह शरीररूप पूतला किया है, और सो तनरूप पूतलाको लेकर क्या किया है कि जो पुरुष कामकर्मादि वश अपने को अल्पज्ञ पराधीन जीव कहते हैं, साक्षीरूप अपने को नहीं जानते हैं, उन 'कर्महिं कहँ' नाम कर्मियों को दिया और देताहै इत्यादि। लिखा है कि [**प्राक्तनं गुणसम्भारं ममेतिबहुमन्यते । यत्तुचित्तमतत्त्वज्ञं दुखितं जीव उच्यते ॥ १ ॥ आत्माह्याकाशवज्जीवै घटाकाशैरिवोदितः । घटादिवच्चसंघातै जीतावेतन्निदर्शनम् ॥ २ ॥** चिदाभासयुक्त जो तत्त्वज्ञान रहित दुखीचित्त, पूर्व जन्मार्जितगुण समुदाय को मेरा और बहुत मानता है, उसी को संसारी जीव कहते हैं ॥ १ ॥ और आत्मा आकाश के सदृश विभु है सो घटाकाश सदृश जीवसाक्षी से और घटादि सदृश संघात से अभिव्यक्तहोता है, इसका दृष्टान्त जाति में है, अर्थात् जाति जैसे व्यक्तियों से अभिव्यक्त होती है वैसेही आत्मा भी जीव और उसके उपाधि से प्रगट होता है ॥ २ ॥

२४ साखी दोहा ।

पांच तत्त्व का पूतला, मानुष धरिया नाम ।
एक कला के बीछुरे, बिकल होत सब ठाम ॥ २४ ॥

टीका—जिस आत्मतत्त्वका विवेक बिना स्थूल शरीराभिमानी जीव, पूर्वकर्मके अधीन होते भी फिर शरीरको कामकर्मादिमें अर्पण करते हैं, उस आत्मतत्त्वका विवेक के लिये इस शरीर को अनित्य तुच्छ पांचभौतिक बताते हैं कि हे मनुष्यों! जिस शरीर में अभिमान करके तुम अपने को मनुष्य मानते हो, और अनेकों सकामकर्म मनुष्यका कर्तव्यादि समझकर करते हो, वह शरीर पांचतत्त्वका पूतला है, उसी पूतलेका 'मानुप' नाम मनुष्य नाम धरा गया है, तेरा मनुष्य यह नाम वस्तुतो नहीं है तुम पांचतत्त्वका पूतलारूप नहीं हो, तुम नित्य अविकारी साक्षीस्वरूप हो, और यह शरीर 'एककलाके बीछुरे' नाम एककलाका वियोगसे ही 'सबठाम' नाम सभी अङ्ग उपाङ्ग में विकल होजाते हैं और नष्ट होजाते हैं। अर्थात् [**स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् । मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपोमन्त्राः कर्मलोका लोकेषुचनाम**] इस श्रुतिमेंकहे, प्राण श्रद्धा, 'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन अन्न, सामर्थ्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, नाम, इन षोडशकलाओं में से एक कलाभी यदि शरीरसे पृथक् होजाता है, तो शरीर विकल होजाता है, तहां प्राण भूतादिका वियोगसे तो मरण प्रत्यक्षही सिद्ध है, परन्तु

श्रद्धा तप मन्त्र शुभकर्मादि का भोगादिसे वियोग होनेपरभी शुभस्थानादिसे वियोगादि रूप विकलता सबस्थानों में होती है। अथवा पांचतत्त्वोंमें से ही एक कलाका वियोग होनेपर सब 'ठाम' नाम स्वर्गादि सबदेशमें यहशरीर विकल होजाता है, इससे नित्यस्वरूप तुम इससे भिन्न हो, इसलिये लोभादिको त्यागो। अथवा पांचतत्त्वके पूतलाको लोगोंने मनुष्य नाम धरा है, और उसको कामकर्मादिमें अर्पण किया है, और शरीर तथा कर्महीमें आसक्त रहते हैं, परन्तु चन्द्रमा के स्थिर कलाके सदृश एक अद्वितीय साक्षीस्वरूप छठीली कलाको 'बीछुरे रहने से' नाम विवेक विचारादि पूर्वक उसकी प्राप्ति नहीं करनेसे, जीव सब सभी ठाममें विकल दुःखी होते हैं। अज्ञानी जीव पशुके सदृश सर्वत्र परवश रहते हैं, इसलिये उस छठीलीकी प्राप्ति अवश्य करनी चाहिये। और लोभादिको त्यागना चाहिये। लिखा है कि [**देहाभिमानपाशेन चिरंबद्धोसिपुत्रकः। बोधोहंज्ञानखड्गेन तं निकृत्य सुखीभव ॥१॥ साकारमनृतंविद्धि निराकारं तु निश्चलम्। एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसम्भवः**] हेपुत्र ! देहाभिमानरूप पाशसे चिरकालसे तुम बँधे हो अब मैं ज्ञानस्वरूप हूँ इस ज्ञानरूप तरवारसे उस बन्धनका छेदन करके सुखी होवो ॥ १ ॥ आकारसहित देहादिको मिथ्याजानो, और निराकरको निश्चल जानो इसी तत्त्वउपदेशसे फिर संसार नहीं होता है ॥ २ ॥

२५ साखी दोहा।

पांच तत्त्व के भीतरे, गुप्त वस्तु अस्थान।
विरले मरम पाई हैं, गुरु के शब्द प्रमान ॥ २५ ॥

टीका—शरीरसे विविक्त आत्मतत्त्वका उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! इस पांचतत्त्वरूप शरीरके भीतर हृदयकमलमें अविद्यासे 'गुप्त' नाम आच्छादित चेतनवस्तुका 'स्थान है' नाम स्थिति है। अथवा शरीरके भीतर उस गुप्तवस्तुको रहनेके लिये हृदयरूप गुप्तस्थान है। अर्थात् शुद्धबुद्धिसे विचार चिन्तनादि करनेपर वह आत्मा हृदयकमलमें ही प्रगट होता है, इससे वह हृदय आत्माके स्थानतुल्य है। उस हृदयमें रहनेवाला गुप्तवस्तुके मर्म कोई विरले ही पुरुष गुरुके सारशब्दरूप प्रमाणसे पाते हैं। भाव यह है कि यद्यपि गुप्तवस्तु अपनेस्वरूप और अत्यन्त समीप है, तथापि लोभादि रहित शुद्धबुद्धि बिना उसका ज्ञान नहीं होता है, और विक्षेपादि दोषरहित शुद्धबुद्धि भी होवे तौ भी नेत्रादिसे नहीं देखने योग्य होनेसे गुरुके शब्दरूप प्रमाणसे ही जाना जाता है। और शुद्धबुद्धि सद्गुरुका दर्शन सत्सङ्ग अनुग्रहादि सामग्री की प्राप्ति बड़ाभारी उत्कृष्टप्रारब्ध दैवका बलसे होती हैं, इससे विरलेही आत्मवस्तुके मर्मको पाते हैं। अथवा जो वस्तुनो 'अस्थान है' नाम किसी एकस्थानमें नहीं रहने बाल है, किन्तु विभुहै सो वस्तु समष्टि

व्यष्टि पांचतत्त्वके भीतर में गुप्तहै, गुरुका शब्दरूप प्रमाणसे उसके मर्मको विरले पाते हैं। अस्थान के असथान पाठ होवे तो यह अर्थ भी है कि पांचतत्त्वके भीतर गुप्तवस्तुके स्वमहिमारूप वा हृदयरूप 'अस' नाम ऐसा विचित्र 'थान' नाम स्थान है कि जहां गुरुशब्दके बिना दृष्टिको जाना कठिन है, इससे कोई विरलेही गुरुका शब्दप्रमाणसे अन्तर्मुखवृत्ति करके उसके भेदको पाते हैं, इसलिये हे सज्जनो ! तुम भी ऐसेही भेदकी प्राप्ति करके निर्बन्ध सुखी होजावो। लिखा है कि—

[स वा एषआत्माहृदि ॥ १ ॥ यःपृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोयं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरोयमयत्येष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः-इत्यादि॥२॥

वह आत्मा निश्चयकरके हृदय में अपरोक्षहै ॥ १ ॥ जो पृथिवीमें पृथिवीके अन्दर वर्तमान है जिसको पृथिवी देवता भी नहीं जानते हैं जिसके लिये पृथिवी शरीर सदृश है और जो पृथिवीका 'नियमन' नाम नियमसे प्रवृत्ति कराता है सोई तेरा आत्मा और अमृत है, इसी प्रकार जो जलादिका नियमन करता है सो आत्मा है ॥ २ ॥

२६ साखी दोहा।

अशून्य तख्त अडि आसन, पिण्ड झरोखे नूर।
जाके दिलमं हौं बसे, सेना लिये हजूर ॥ २६ ॥

टीका—गुरुका उपदेशसे जानने योग्य अविषयस्वरूप आत्माका उपदेशदेते हैं कि हेमनुष्यो ! 'अशून्य' नाम शून्यरूप आकाशसे भी पर, और भिन्न, अपनी महिमारूप 'तखत' नाम राजसिंहासनपर आत्मा आसन अड़ायकर स्थिर है। भाव यह है कि अन्यपदार्थ आकाशमें रहते हैं। और आत्मा आकाशका भी आश्रय होनेसे अपनेस्वरूपभूत महिमामें है। अथवा 'अशून्य' नाम प्रकाशमय हृदयकमल और बुद्धिमें आसन लगाकर स्थिरहै। और 'जाके'नाम जिसआत्माके'नूर'नाम प्रकाश'पिण्ड के झरोखे पर फैला है' नाम शरीररूप गृहके नेत्रादिरूप खिरकियों पर जिसका प्रकाश फैला है। जो नेत्रादि जन्यवृत्तियोंका भी प्रकाश करता है। और जो राजाके सदृश अन्तःकरण, इन्द्रिय और प्राणरूप 'सेना को लिये हजूर है' नाम जिसकी सत्ताप्रकाशसे ये सब अपना व्यापार करते हैं। सोई आत्मास्वरूप तुम 'दिल में' नाम हृदय में, 'हजूर' नाम प्रत्यक्ष राजाके सदृश बसे हो, इसलिये मनआदि सबके प्रकाशक साक्षीस्वरूप उनसे भिन्न अपने को जानो यही उसके मर्म जानने का मुख्य उपाय है। अथवा वह आत्मा 'अशून्य है' नाम सत्य है, असत्य माया मायिक वस्तुओं से भिन्न है। और शरीररूप नगरमें हृदयरूप तख्तपर आसन अड़ायकर पिण्डके झरोखों द्वारा 'नूर' नाम प्रकाश कररहा है। 'जाके' नाम जिस शरीरके अन्दर दिलमें तुम जीव बसे हो, उसी दिल में वह गुप्त आत्मा भी अपनी सेनाओंको लेकर 'हजूर' नाम प्रत्यक्ष ही है, क्योंकि वह

तेरा स्वरूप है, इसलिये उसे जानो और शरीराभिमान को त्यागो । अथवा उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो ! आनन्दादि से पूर्ण होनेसे अशून्य आत्मब्रह्मरूप 'अडि' नाम अडिग अचल तख्तपर आसन लगावो, उसी में स्थिर होजावो जिस अचलवस्तु के नूरपिण्ड के झरोखों पर विद्यमान है । और जिसके गृहरूप दिलमें तुम भी वसे हो, सो सेनाओं को लियाहुआ हजूर है । लिखा है कि [प्रति बोधं विदितं मतममृतत्त्वं हि विन्दते] जो प्रतिबोध में 'विदित है' नाम सब बुद्धि वृत्ति के साक्षीरूप से ज्ञात है सो इसी प्रकार 'मत' नाम ज्ञात होता है, और उसके ज्ञान से मुक्ति होती है ।

२७ साखी दोहा ।

रङ्गहिंते रँग ऊपजे, सब रँग देखी एक ।
कौन रङ्ग है जीव का ? ताकर करहु विवेक ॥ २७ ॥

टीका—और भी विवेक पूर्वक आत्मज्ञान के लिये उपदेश देते हैं । तहां ('त्रपु पिच्चटम् रङ्गवङ्गं') इस कोश के अनुसार यद्यपि रङ्गशब्द रङ्गा के वाचक है, तथापि भाषामें आकाररूप रागादि अर्थ में भी रङ्ग शब्द का प्रयोग किया जाता है । इससे अर्थ है कि हे मनुष्यो ! रङ्ग से ही रङ्ग उत्पन्न होते हैं, नाम एकवस्तु के राग चित्तमें रहनेसे फिर अनेकों वस्तुके राग होते हैं । जैसे देवभाव वा मनुष्यभाव को सुखरूप मानकर उसमें राग करनेसे अनेकों विषयादि में अवश्य राग होते हैं, इसलिये सबरङ्ग को नाम सब विषय आकारादिकों एक देखकर नाम मायिक मिथ्या दुःखस्वरूप जानकर, जीवका कौन रङ्ग है उसका विवेक करो, नाम उसके स्वरूपको जानो जिससे तेरा कल्याण होवे । अथवा जैसे एकरङ्ग नाम रूपसे कालभेदादि से अनेकों रङ्ग उपजते हैं । किसी पदार्थ के सम्बन्ध से एकरङ्ग भी अनेकों रङ्ग होजाते हैं । वैसेही अविवेक अज्ञानरूप एकरङ्ग से भी अनेकों शरीरादि रूप अनेकों रङ्ग उपजते हैं, इसलिये सब रङ्गों को एक अविद्यामायारूप जानकर जीवका कौन स्वरूप है उसका विवेक करो । अथवा मनुष्यसे मनुष्यरूप रङ्ग पशुसे पशुरूप रङ्ग पक्षी से पक्षीरूप रङ्ग उपजते हैं, परन्तु इन सब उपजने वाले रङ्गों को एकरङ्ग देखकर नाम पांचतत्त्व के पूतलारूप जानकर, ऊपजने से रहित अजन्मा जीव का कौन रङ्ग है उसका विवेक करो । अथवा जहां एक मूलकारणरूप रङ्गसे अनेकों रङ्ग उपजते हैं तहाँ ऊपजने वाले सब रङ्गों को एक मूलकारणरूप रङ्गरूप ही देखा जाता है, वैसेही जिस एक जीवरूप रङ्ग से अज्ञानादि द्वारा ये अनेकों संसाररूप रङ्ग ऊपजे हैं, उस जीवका कौन रङ्ग है ताकर विवेक करो ॥ लिखा है कि [पश्यभूतविकारांस्तान् भूतमात्रान् यथार्थतः । तत्क्षणाद्बन्धनिर्मुक्तः स्वरूपस्थो भविष्यसि ॥] भूतों के विकाररूप उस शरीरादि को भूत मात्रही यथार्थरूप से देखो इस प्रकार देखतेही वन्ध से रहित और अपने रूप मे स्थिर होजावोगे ।

२८ साखी दोहा ।

जाग्रत रूपी जीव है, शब्द सोहगा श्वेत ।
जलद बुन्द जल कूकुही, कहहिं कबिर ई द्वेत ॥ २८ ॥

टीका-विवेकसे सिद्ध आत्मा और जगतके भेदको दर्शाते हैं कि जिसके पिण्ड के झरोखे पर नूर है सो 'जीव' नाम जीव के स्वरूप जाग्रत रूपी है, नाम सदा जागाहुआ अलुप्त स्वयं प्रकाशरूप है, इससे सुषुप्ति तथा स्वप्नको और मन प्राणादिको भी सदा प्रकाशता है । और 'शब्द बड़ा की जीव' इस वचन में वर्णित विषय शरीररूप 'शब्द' तथा सब नाम रूपात्मक 'शब्द' नाम विकार 'सोहागा' नाम सोहागा के सदृश श्वेत हैं, अर्थात् जैसे सोहागा देखने में श्वेत होता है, परन्तु अपने सम्बन्ध से धातुआदि को गला देता है, वैसेही विषय शरीरादि देखने में अच्छे भासने हैं, परन्तु अपने में आसक्त पुरुषों को गलाते हैं, दुःखी पीड़ित करते हैं। और साहेब कहते हैं कि वस्तुतः 'ई' नाम यह द्वैत संसार कैसा है कि जैसे 'जलद' नाम मेघ के बुन्द को जलमें गिरने से उस जलमें 'कूकुही' होजाती है नाम बुलबुला होजाता है. और उसकी जलसेभिन्न सत्ता नहीं रहती है, किन्तु जलमात्रही सत्य रहता है, तौभी क्षणमात्र भिन्न सदृशभासता है । वैसेही यह द्वैत चेतनात्मा में माया से भासता है, इसलिये सत्यस्वरूप चेतनात्माको जानो और द्वैत को मिथ्या समझो । अथवा नित्य जाग्रत रूपी जीव है, परन्तु 'सो' जीव गुरुका शब्दसेही 'हगा' नाम उस प्रसिद्ध रूपमें गमन करता है, अर्थात् उस रूप अपनेको उपदेशसेही समझता है । और यह द्वैत कैसे भिन्न है कि जैसे जलद, और बुन्द, तथा जल, और कूकुरी, परस्पर भिन्न हैं, और वस्तुतः सब जलही स्वरूप हैं, वैसेही जगत आत्मामात्र है वा माया मात्र है। सो जानो । (कहहिं कबिर कोई देख) चतुर्थ पाद के इस पाठ पक्षमें अर्थ है कि जाग्रतस्वरूप जीव को और शब्दको सोहागा सदृश श्वेत तथा जलद बुन्द जल कूकुरी सदृश कोई, विरलेही देखते हैं । सो देखो जानो इत्यादि। लिखा है कि [**त्वमेकश्चेतनः शुद्धोजडंविश्वमसत्तथा। अविद्यापि न किञ्चित्सा का बुभुत्सातथापिते ॥१॥ नाहंदेहो न मेदेहो बोधोऽहमितिनिश्चयी। कैवल्यमिवसम्प्राप्तोनस्मरत्यकृतंकृतम् ॥ २ ॥**] तुम एक शुद्ध चेतन हो, विश्व जड़ तथा असत है, अविद्या भी सत कोई पदार्थ नहीं है, तौभी तुझे क्या बुभुक्षा नाम भोग की इच्छा होती है ॥ १ ॥ न मैं देह हूँ न मेरा देह है किन्तु मैं बोध स्वरूपहूँ ऐसा निश्चय वाला विदेह मुक्तके सदृश कृत अकृत का स्मरण नहीं करता है ॥ २ ॥

२९ साखी दोहा।

हृदया भीतर आरसी, मुख भी दिखा न जाय।
मुखतो तब हीं देखिये, दिलकी दुबिधा जाय॥ २९॥

टीका-जीवके स्वरूप का वर्णन करके साहेब कहते हैं कि जैसे किसी के आगे में 'आरसी' नाम दर्पण धरा होवे, परन्तु वह दर्पण मलिन वा चञ्चल होवे। अथवा उस पुरुष के चित्तही चञ्चल वा निद्राआदिसे आक्रान्त होवे, तो वह पुरुष अपने मुखको नहीं देख सकता है। वैसेही सब पुरुषों के हृदयके भीतर बुद्धिरूप आरसी विद्यमान है, परन्तु वह आरसी अज्ञान संशय भेद दृष्टिरूप दुविधा से राग द्वेष मोह पापादि मलयुक्त है। और लोकविषयादि की इच्छा उन विषयक प्रवृत्तिआदि से चञ्चल है, इससे जीवको मुखके सदृश मुख्यस्वरूप आत्मा भी नहीं दिखा जाता है, अर्थात् अत्यन्त समीपमें वर्तमान आत्मा का अनुभवज्ञान जीवको नहीं होता है, साहेब कहते हैं कि हेमनुष्यो! मुख सदृश आत्मा तो 'तबहीं' नाम तबही अपरोक्षभासेगा, जब तुम्हारे दिलकी सब दुविधा चली 'जायेगी' नष्ट होजावेगी, अर्थात् सम्पूर्ण संसारमें मायिकत्वका और आत्मामें सत्य एकरूपत्वका निश्चय गुरुवाक्यसे मननादिसे प्रथम होनेपर, सत्चित आनन्दस्वरूप आत्माका अपरोक्षअनुभव तुझे होगा, इसलिये दुबिधाका निवारण करो, जिससे ज्ञानकी प्राप्ति और कल्याण होवे। अर्थात् सब चञ्चलता संशय को त्यागकर आत्मनिष्ठ होजावो जिससे कल्याण होवे संसारके हेतुरूप लोभादि नहीं करो। लिखा है कि [**तथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबुद्धिमान्। आजीवमपिजिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति**] शास्त्रादिके उन२ प्रक्रियाओं द्वारा उपदेश देनेसे शुद्धबुद्धि वाला दुविधा रहित कृतार्थ और मुक्त होजाता है। और अन्यपुरुष जीवनभर जिज्ञासु होकर भी आत्मा में मोह को पाता है॥

३० साखी दोहा।

कबीर का घर शिखर पर, जहाँ सलहली गैल।
पाँव न टिके पपील का, खलको लादै बैल॥ ३०॥

टीका—दुबिधा विशेषका साहेब वर्णन करते हैं कि 'कबीरका' नाम जीवों का वा कबियोंका 'घर शिखरपर है' नाम सुमेरुके शिखर रूप कैलास स्वर्गादिमें जीवोंने तथा कबियोंने अपना घर का नाम स्थिति के लिये स्थानका निश्चय किया है। 'जहां' नाम जिस कैलास स्वर्गादिमें भी जाने

के लिये'सलहली'नाम संकीर्ण अत्यन्त रूक्ष वा चिकनी फिसल जानेवाला'गैल'नाम मार्गहै। अर्थात् उसकी प्राप्तिकोभी अनन्त कठिनाईसे होना लोग बतातेहैं। स्वर्गादिके हेतुरूप कर्मोंमें अल्पभी अपराध होनेसे विपर्यय भूलहोनेसे पाप और अधःपात होता है,इससे उसके मार्ग पिच्छल(फिसलनेके)सदृशहै। तथा संकीर्णहै। इसीसे जहां'पपील'नाम चींटीका पाँव भी नहीं टिकता है। तहां सब खलक बैल लादता है। अर्थात् जिस स्वर्ग की प्राप्ति बहुत कठिनकर्मों से सूक्ष्मबुद्धि से साधनों का विचार अनुष्ठान से तथा इसलोक के विषयादि की वासनाओं को त्यागने से लिखी हुई है। उस स्वर्ग में जड़ मन बुद्धिरूप बैलपर पापादि के बोझ लादकर संसार जाना चाहता है। और उसी की दुविधा में पड़ा रहता है। और स्वर्ग की इच्छा से शुभकर्म करनेवाले भी संशयादि रूप दुविधा से युक्त ही रहते हैं। जितना परिश्रम स्वर्गादि के लिये करते हैं, उतना वा उससे न्यून भी यदि दुबिधा की निवृत्ति के लिये विवेक विचारादि में परिश्रम करते तो ज्ञानी नित्यमुक्त होजाते, सो लोभादिवश नहीं करते हैं। हे सज्जनो! तुम दुविधा की निवृत्ति ही के लिये यत्नकरो लोभादि को त्यागो। अथवा कबीर का घर संसाररूप पर्वत के शिखर जो शत्यलोक उससे भी परे आत्मवस्तु में है, जहां के मार्ग संकीर्ण और चिकने हैं, इससे जहां चींटी के पांव भी नहीं टिकता है। तहां सब संसार सुषुप्ति काल में बैल लादकर जाता है नाम कर्म बासनाआदि सहित उसमें प्राप्त होता है। यदि जीव दुबिधा को त्याग देवे तो सदा वे अपने वास्तविक घर में स्थिर होसकते हैं। पिपिलिका के सदृश केवल सूक्ष्मतर्क की प्रवृत्ति उसमें नहीं होती है, इसलिये गुरु के उपदेश से उसकी प्राप्ति होती है। अथवा 'जहां' जीवों की 'सलेहली' प्यारी स्त्री माया 'गैल' नाम अप्सराआदि होने के लिये गई वहां ही स्वर्गरूप शिखरपर 'कबीर' नाम जीवों का घर कल्पना से सिद्ध हुआ, और जिन कल्पित लोकों में चींटी का पांव भी नहीं टिक सकता है, तहां के लिये सब खलक बैल लादता है नाम यहाँ के स्त्रीआदिको उनलोकों में प्राप्त करना चाहता है। और उसी की दुविधा में ज्ञान गमाता है। कहहिं कबीर, इस प्रकार के ही पद से केवल कबीर साहेब का बोध इसग्रन्थ में होता है कबीर पद का जीव और कवि अर्थ में भी संकेत है, इससे उक्त अर्थ किये गये हैं। सलहली के सिलि हली पाठ भेद है उसका शिलामय पत्थरयुक्त अर्थ भी होसकता है। कबीर पद से कबीर साहेब का ग्रहण होवे तो भाव यह है कि साहेब कहते हैं कि मेराघर संसाररूप पर्वत के शिखर से भी परे है, जहां बड़े तर्करूप चींटियों के पाँव नहीं टिक सकते हैं, क्योंकि उस पद के सलहली गैल हैं, फिर वहाँ लोभ दुविधा युक्त 'को' नाम कौन ऐसा 'खल है' कि जो बैल लाद सकता है। अर्थात् वासनाआदि युक्त जड़मन वाला कोई भी मेरे घर में नहीं आसकता है किन्तु सन्तजन आते हैं॥

३१ साखी दोहा।

बिन देखे वा देशकी, बात कहै सो कूर।
आपुहिं खारी खात हैं, वेंचत फिरै कपूर॥ ३१॥

टीका—साहेब कहते हैं कि जो लोभादि युक्त तथा दुबिधा युक्त पुरुष स्वर्गादिको विचारादि से 'देखे बिना' नाम उनके यथार्थ ज्ञान बिना उस देशकी बातों को अन्यपुरुषों से कहते हैं, अर्थात् वहां के विषय सुखादि का वर्णन करते हैं, और उन्हें नित्यादिबताते हैं 'सोकूरहैं' नाम अज्ञानी तथा कपटी कठोर हैं, और क्रूरहोनेहीसे राग द्वेष दुःखयुक्त लोक परलोक के विषयादि रूप खारी आप खाय रहे हैं नाम भोग रहे हैं, और चाह रहे हैं । और अन्यपुरुषोंके लिये कपूर बेंचते फिरते हैं नाम अन्यपुरुषोंके प्रति राग द्वेष दुःखादि युक्त बिषयादिकों को सत्यसुखादि रूप बतायरहे हैं, अर्थात् जिस स्वर्गादि में इन्द्रादि को भी राग द्वेषादि जन्य महादुःख का वर्णन है, उस स्वर्गको तथा अन्य बिषयलोकादि को ज्ञानादि रहित ही मनुष्य सुख रूप कहते हैं, इसलिये उस स्वर्गादि की दुविधा को त्यागकर आत्मबिचारादि करना चाहिये, जिससे ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो । अथवा संसार पर्वत के शिखर से भी पर जो आत्मास्वरूप देश है वह घर है। उस देशको देखे बिना नाम आत्माके अपरोक्षअनुभव बिना जो पुरुष अन्य के प्रति उपदेशकी मिथ्या बात कहते हैं सो क्रूरहैं क्योंकि आप तो उस आत्मवस्तुरूप देशके जाने बिना विषयरूप खारी खाते हैं, और अन्यके लिये असतकपूर बेंचते फिरते हैं नाम किसी अनात्म असत्य दुःखरूप वस्तुकोही आत्मा सत्यादि बताते फिरते हैं, इससे क्रूर हैं । उनकी क्रूरता से जिज्ञासु भी अनर्थ के भागी होते हैं, इसलिये उनके संगादि लोभादि वश नहीं करना चाहिये । लिखा है कि [यथोपलब्धंयद्वाक्यं हिंसाकल्कविवर्जितम् । सर्वधर्मविदःप्राज्ञा स्तत्सत्यंप्रतिजानते ॥ १ ॥ जीवन्मृतःपुमान्ज्ञेयो योऽनृतंवक्तिमोहतः । अत्रनिन्दन्तिमनुजा मृतश्च नरकंव्रजेत् ॥ २ ॥ अनन्यचित्तता ब्रह्मनिष्ठाऽसौकर्मठेकथम् । कर्मत्यागीततो ब्रह्मनिष्ठामर्हतिनेतरः ॥ ३ ॥] हिंसाऔरदम्भ से रहित जो ज्ञान के अनुसारही बात कही जाती है सब धर्म को जानने वाले विद्वान् लोग उसीको सत्य कहते हैं ॥ १ ॥ जोपुरुष मोहसे झूठबोलता है उसको यहां मनुष्य हँसते हैं और वह मरनेपर भी नरक में जाता है ॥ २ ॥ अनन्यचित्त होना ब्रह्म निष्ठाकही जाती है सो कर्मठ में कैसेहोसकती है किन्तु कामकर्मादिका त्यागी ब्रह्मनिष्ठाके योग्यहोता है ।

३२ साखी दोहा

जिहि मारग सनकादि गै, ब्रह्मा विष्णु महेश ।

सो मारग सब थाकिया, काहि कहों उपदेश ॥ ३२ ॥

टीका-जिज्ञासा हुई कि यदि क्रूर के वश में पड़कर जीव अनर्थको प्राप्त होतेहैं, तो ज्ञानी महात्मा लोग उपदेश देकर क्रूरों की क्रूरता को क्यों नहीं नष्टकर देते हैं। तथा उपदेश से जीवों

को मुक्त क्यों नहीं करते हैं। तब साहेब कहते हैं कि 'जिहि मारग' नाम जिस सतविचार योग ज्ञान मार्ग से 'सनकादि गये' नाम संसार से पर मुक्त स्वरूप हुये। तथा जिस सतधर्म विचारादि मार्ग से ब्रह्मा विष्णु महेश गये। सो मार्ग सतशास्त्र में तथा लोक में भी प्रसिद्ध है। अथवा सोई मार्ग सत्य है, परन्तु लोभ आग्रहादि वश सब जीव अन्य असतमार्गमेंही थकगये हैं। अज्ञान लोभ असत उपदेशोंसे इन जीवोंकी बुद्धि कुण्ठित होगईहै, इससे सतमार्गमें चलनहीं सकते हैं। मैंकिस के प्रति सतउपदेशकहूं वा कोई महात्मा किसके प्रति उपदेश कहें। अथवा जो लोग सनकादि ब्रह्मादिकी भी स्वर्ग वैकुण्ठादि के लिये कामकर्मादि में प्रवृत्ति और वहां गति मानते कहते हैं, उनके कथनों का अभ्युपगमवादसे साहेब कहते हैं कि जिस सुमेरु पहाड़ के शिखरपर प्राप्ति के हेतुरूप काम कर्मोपासना मार्ग से, सनकादि ब्रह्मा विष्णु महेश सब गये, स्वर्ग वैकुण्ठ कैलासादि रूप शिखरपर प्राप्त हुये। 'सोमारग' नाम उसी मार्ग में सब मनुष्य थके और थकते हैं, लोभ आग्रहादिवश उसामें आयु बीताते हैं, सत्य उपदेश सुनना नहीं चाहतेहैं तो मैं किसको उपदेशकरूं। अथवा जो कोई जीव 'जिसमार्ग से' नाम जिस कामकर्मोपासना से, पूर्वकाल में सनकादि ब्रह्मादिको 'गै' नाम प्राप्त हुये। अर्थात् जिस कर्मादि से सनकादि ब्रह्मादिरूपता को प्राप्त हुये या उनके लोकादि में प्राप्त हुये। उस मार्ग के वर्णन को सुनकर सब जीव सोई मार्ग में थके और थकते हैं। मैं किससे उपदेश करूं अर्थात् सकामकर्मों में अनेकों विघ्न होनेसे और उन मार्गों को कष्टसाध्य होनेसे जीवों को उन लोकादिकों की प्राप्ति भी नहीं होती है, और विचारादि बिना ज्ञान भी नहीं होता है, इससे व्यर्थही थकते हैं। परन्तु मैं उपदेश किससे करूँ लोभ आग्रहादि वश सतउपदेश सुनतेही नहीं हैं। थाकियाके थापिया पाठ भेद है, तब अर्थ है कि जिस मार्ग से सनकादि गये सोई मार्ग है। उसी को सब किसी ने 'थापा है' नाम निश्चय किया है, परन्तु जानकर भी जब उस मार्गपर नहीं चलते हैं तो मैं उपदेश किसको करूँ। अथवा सनकादि जिस मार्ग से स्वर्गादि में गये। उसी मार्ग का निश्चय सब किसी ने किया है, कोई जिज्ञासु है नहीं मैं उपदेश किससे कहूँ इत्यादि।

३३ साखी दोहा।

परबत ऊपर हर बहै, घोड़ा चढ़ि बस गाम।
बिन फुल भवँरा रस चहै, कहु बिरवा के नाम॥ ३३॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि लोभ दुविधा के वश वर्ती जो मनुष्य हैं, उनके संकल्प विकल्प रूप हर सुमेरु पर्वत के ऊपर बहता है। अथवा उस पर्वत के ऊपर प्राप्तिरूप फल के लिये वहां की सुख के लिये अनेकों कर्मरूप हर इसलोक में बहते हैं। जैसे अन्नके लिये खेत में हर बहता है। और वहां पहुँचने के लिये मनुष्य लोकरूप जो 'गाम' नाम ग्राम समुदाय है सो मनरूप घोड़ा

पर चढकर बसता है, और उस स्वर्गमें 'बिना फूल केही' नाम त्रिपय बिनाही भँवरा सदृश विषय में आसक्त यह मनुष्य 'रस' नाम आनन्द नित्यसुख चाहता है, अर्थात् सत्यसुखद विषयादि उस स्वर्गमें नहीं है तो भी सत्यसुखद विषयों की कल्पना करके उस स्वर्ग में सत्यसुख की प्राप्ति जीव चाहते हैं। जिज्ञासा हुई कि स्वर्ग के विषयादिरूप फूल और उसके रस सत्य क्यों नहीं हैं ? तब साहेब कहते हैं कि प्रथम सत्य 'बिरवा' नाम वृक्ष के नाम कहो तो फूलफल के लिये पूंछना। भाव यह है कि जब संसार बृक्षही मिथ्या, मायिक और दुःखरूप है, तो उसके शाखारूप स्वर्ग और उसके विषयादिरूप फूल और उससे जन्य सुखरूप रस औरफल किस प्रकार सत्य नित्यादि होसकते हैं, इससे बिना फूलकेही विषयी जीवरूप भँवरा रसचाहते हैं, उसीकी दुबिधा लोभमें पड़े हैं, उपदेश किससे कहा जावे। अथवा उपदेश देते हैं कि जैसे पाषाणमय पर्वतपर हरवहना, एकघोड़ेपर गाम बसना, बिना फूलके भवँरा को रसकी इच्छाहोनी असम्भव है, वैसाही असम्भवस्वरूप संसार बिरवा के नाम कहो और जानो, और इसके लोभ दुविधाको त्यागदो। अथवा जाग्रत काल में विषयरूप भूमिको खोदनेवाले इन्द्रिय और मनरूप हल जिसपर्वतसदृस अचलवस्तुके ऊपर चलते हैं, नाम जिसके सत्ताप्रकाश के अधीन विषयादि में प्रवृत्त होते हैं, और स्वप्नकालमें मनरूप घोड़ापर चढ़कर 'गाम' नाम सबप्राणी जिसमे बसते हैं, और सुषुप्तिकाकमें मनरूप वा जीव रूप भँवरा विषवादिरूप फूलोंके बिनाही जिसमें रस चाहता है, नाम विषयादि बिना जिसके आनन्द का अनुभव के लिये प्राणी सुषुप्ति चाहते हैं, हे मनुष्यो ! उसीबृक्षके नाम कहो, उसे जानकर दुबिधा लोभादि को त्यागो, जिससे नित्य आनन्दस्वरूप होजावोगे। अथवा जिनविवेकियों के बुद्धि वृत्तिरूप हल संसाररूप पर्वत से ऊपर चेतनवस्तुमें बहता है, और संसाररूप गाम जिन की दृष्टि से घोड़ारूप मनपर चढ़ के बसता है नाम मनहीं मात्र और मनहीं में जिनकी दृष्टि से संसार है, इससे कार्यविषयादिरूप फूलके बिनाहीं जो विवेकीरूप भवँरा आनन्दरस चाहते हैं, उनके लिये संसार बिरवाके नाम मात्र कहो परन्तु वस्तुतः उनके लिये संसार कुछवस्तु नहीं है। अथवा पर बाला नाम अनात्म पतिआदि बाला 'गाम' नाम जीव समुदाय है। उसीके ऊपर कर्मादिरूप हर बहते हैं। और मन इन्द्रियादि रूप घोड़ा उस पर चढ़ के बसते हैं। और विषयादिरूप फूलोंके बिना ब्रह्मानन्द को चाहने बालों के लिये संसार बिरवा के नाम भी कहां है सो कहो।

३४ साखी छन्द श्याम उल्लास।

चन्दन बास निवारहू, तुझ कारण बन काटिया।

जियता जीव न मारहू, मूये सबै निपातिया॥ ३४॥

टीका—साहेब उपदेश देते हैं कि 'हे चन्दन' नाम चन्दन सदृश शीतल सुखस्वरूप ' परन्तु वैसाही वासना युक्त हे जीवो ! जैसे चन्दन में वासना रूप गन्ध रहने से, उसको बिषधरसर्प लिपटे

रहते हैं, वैसेही लोक परलोक के विषयादिकों की 'वास' नाम वासना रहनेहीं से तुझे राग द्वेषादि विषय जन्म मरणादिरूप विषधर सर्प लिपटे हैं, इसलिये वासनारूप 'वासको निवारहूँ, नाम उपायसे नष्टकरो। और 'तुझकारण' नाम इन विषयों की वासनाओं का त्याग कराकर तुझेही सुखी करने के लिये मैंने तथा महात्माओं ने 'बनकाटिया' नाम स्वर्गादि सहित संसार जङ्गल को 'काटा है' नाम तुच्छ मायिक मिथ्या संसार के स्वरूपको बताया है। सत्यताआदि का निषेधकिया है। और हे चन्दनरूप जीवो! तुम यदि 'जियता' नाम जीवित दशामें उन वासनाओं को 'नमारहु' नाम नहीं मारते हो, तो 'मूये' नाम इस मानव शरीर को त्यागनेपर 'सबे' नाम वे सब वासनायें तुझे 'निपातिया' नाम तेरा निपात 'नाश' करेंगे, अर्थात् उन वासनाओं से तुझे बारम्बार जन्मादि होवेंगे, इसलिये शीघ्रही इनका नाशकरो। अथवा हे मनुष्यो! राग द्वेषादिरूप सर्पों से युक्त विषयादिरूप चन्दन की वासनाओं का निवारण करो। तेरेही कल्याण के लिये स्वर्गादिरूप चन्दन के बनरूप संसार की भी मैंने काटाहूं। और जियता हुआ किसी भी 'जीव' नाम प्राणी को नहीं मारहु नाम उसकी हिंसा नहीं करो, क्योंकि यदि तुम किसीको मारोगे तो वह प्राणी मूयेनाम मरने पर तेरा 'सबेनियातिया' नाम तेरा सब प्रकार से नाश करेंगे। और जिन जिन प्राणियों को तुम मारते हो सो सब तुम से बदला लेवेंगे। अथवा जियतेही में अपने जीवात्माको विषयरूप कर्दमके दलदलमें तथा बासना जालमें फंसाकर नहीं मारो। और समझो कि जिन विषयादिकों में मैं फंसा हूं सो सब मूये पीछे अवश्य नष्ट होवेंगे, मेरे साथ कोई भी नहीं चलेंगे। अथवा जो पुरुष बासनाको त्यागे बिना मरते हैं, सो सबै नाम सबहीं मूये पीछे भी नाशको प्राप्त होते हैं, नरकादि में महाकष्ट भोगते हैं। अथवा हे चन्दन तुल्य जिज्ञासुओ! तुम बासना का निवारण करो। तेरे जन्मादि के कारण रूप अज्ञान को मैंने ज्ञान के उपदेश से काटाहूं। इसलिये उस उपदेश से जितेहीरहते भावी 'जीवन' नाम जन्मादि को 'मारहु' नाम जन्मादि रहित होनेके लिये यत्न करो, क्योंकि जो कोई जियतेहीं में भावी जन्म की निवृत्ति के लिये यत्न नहीं किये, सो सब मरनेपर जन्मादि संकट में निपात किये गये इत्यादि॥ लिखा है कि **इच्छामात्रंविदुश्चित्तं तच्छान्तिर्मोक्षउच्यते। एतावन्त्येव शास्त्राणि तपांसिनियमा यमाः॥१॥इच्छो पशमनंकर्तुं यदि कृत्स्नंनशक्यते। स्वल्पमप्यनुगन्तव्यंमार्गस्थो नावसीदति॥२॥** इच्छामात्रकोहीं चित्त कहते हैं। उस इच्छा की शान्ति को मोक्ष कहते हैं। इतनाहीं सब शास्त्र कहते हैं, और इच्छा की निवृत्ति ही तप नियम और यम सब है॥१॥ यदि पुरुष सब इच्छा की निवृत्ति नहीं कर सके तो थोड़ा २ भी इच्छा को त्यागे क्योंकि शुभमार्ग में स्थिर पुरुष दुःखी नहीं होता है॥२॥

३५ साखी दोहा

चन्दन सर्प लपेटिया, चन्दन काह्न कराय।
रोम रोम विष भीजिया, अमरित कहाँ समाय॥३५॥

टीका । जीव सब विषयादि की वासनाओं से युक्त होकर विषयादि का संग्रह करते हैं। और उनमें आसक्त रहते हैं। और तौभी मोक्ष चाहते हैं, सो असम्भव है यह उपदेश साहेब देते हैं कि यदि चन्दन के सब अङ्गों में सर्प लिपटे होवें, तो वह चन्दन क्याकर सकता है ? नाम अन्य प्राणी के उपकारादि कैसे कर सकता है ? और उसके रोम २ में सर्पके विषको भींज जानेपर उसमें अन्य अमृतार्थी वा अमृत कहाँ समाय सकता है किन्तु कहीं नहीं समाय सकता है, वैसे ही हे जीवो ! अविद्या, कामकर्म,राग,द्वेषऔरविषयबासना आदिरूप सर्प तुझेभी लिपट लिये हैं, और जब तक ये सब तुझे लिपेटे रहेंगे, तबतक हे चन्दन तुल्य जीव ! तुम 'काहकराय' नाम क्या करसकते हो ? अर्थात् तब तक जन्म मरणादिरूप संसार से मुक्त नहीं होसकते हो, क्योंकि शरीरादि में मेरी बुद्धिरूप, बासन रूप, तथा स्त्री पुत्रधनादिरूप, विष जब तेरे रोम रोम में भींजे हैं, नाम बाहर भीतर जब येही सब घेरे हैं, तो कहो कि मोक्षरूप अमृत कहाँ समासकता है, अर्थात् मोक्ष इस दशामें कभी नहीं प्राप्त होसकता है, इससे यदि मोक्ष चाहो तो विषयादि की बासनाओं को विषयादि सहित त्यागो । अथवा जैसे चन्दन स्वभाव से ही शीतल और सुगन्ध होता है, वैसेही आत्माको चिदानन्दस्वरूप सुनकर शंका हुई कि यदि मेरा आत्मा सुखरूप और चेतन है तो जड़-विषय वा उनके वासनाआदि क्या करसकते हैं ? आत्मस्वरूप आनन्द से सबही आनन्दस्वरूप हो जावेंगे, तब साहब कहते हैं कि यदि चन्दन में ही सर्प लिपटाहो तो उससर्पको चन्दन क्या करसकता है ? अर्थात् उसके विष का निवारण चन्दन नहीं करसकता है, उस सर्प के रोम २ में विष व्यापे रहता है वा जिस किसी के रोम २ में विष भींजगयाहोवे तो उसमें चन्दनादि के अमृत स्वभावरूप गुण कहां समा सकता है । वैसे स्वभाव सेहो जो मायिकविषय, तथा उनके वासनादि दुःखस्वरूप और प्राणियों के जन्मादिरूप दुःख के हेतु हैं सो आनन्दस्वरूप आत्मा में लिपटे हैं । अर्थात् आत्माही में कल्पित हैं । तथा आत्मा हीकी सत्तासे वर्तमान हैं । परन्तु आसक्त पुरुषों के लिये आत्मा इनका क्या करसकता है ? विषस्वरूप विषयादि में अमृत कहां प्राप्त हो सकता है ? इससे विषयादि की वासनाओं को त्यागो । अथवा विषयरूप चन्दन को बिनाशिता अनित्यता मायिकता कारणपरतन्त्रता आदिरूप सर्प लिपटे हैं, तो ऐसे विषयादि रूप चन्दसे हे मनुष्यो ! तेरा क्या करसकते हैं ? नामकौन उपकार करसकते हैं ? और विषय,लोक,शरीरादि,सभी वस्तुओं के रोम २ में मृत्युरूप विष भी व्यापक है, तथा अविद्या,कामकर्म राग और द्वेषादिरूप विष भी भींजे हैं नाम कारणरूप से पैठे हैं, तो इनमें ज्ञानानन्दरूप अमृत कहां समाय सकता है, अर्थात् इनसे स्वयं प्रकाश नित्य आनन्दकी प्राप्ति नहीं होसकती है, इससे इनकी वासनाओं को त्यागो । सुरेश्वर वार्तिकादि में लिखा है कि [अविद्याहेतवः कामाः काममूलाः प्रवृत्तयः । धर्माधर्मौचतन्मूलौ देहोऽनर्थाश्रयस्ततः ॥ १ ॥ अतोऽविद्यानिरोधेस्यान्निरोधोविदुषः सदा । निशेषकर्महेतूनां विकाराणांतदैवतु ॥ २ ॥ यावत्कर्माणिदीयन्तेयावत्संसार-

वासना । यावदिन्द्रियचापल्यं तावत्तत्त्वकथाकुतः ॥३॥ यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदेवहि । यावत्प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत्संकल्पकल्पना ॥ ४ ॥ यावन्नोमनसःस्थैर्यं न यावच्छास्त्रचिन्तनम् । यावन्नगुरुकारुण्यं तावत्तत्त्वकथाकुतः ॥ ५ ॥ अहंकर्तृगतं पाप मज्ञात्वाऽऽरोप्यतोचिति । तेनग्लानिर्मुखेभाति जन्माग्निरकेभवेत् ॥६॥ ज्ञानेन कर्मणस्तस्य बीजभावोविनश्यति । जन्मप्ररोहोनैवास्तीत्येवंनिश्चित्यतृप्यति ॥७॥]

अविद्यासे और कामकार्मसे प्रवृत्ति प्रवृत्तिसे धर्माधर्म उससे अनर्थके आश्रय देह होते हैं॥ १ ॥ अविद्याकी निवृत्तिसे उसी कालमें सब कर्मके हेतुरूप कामादि विकारों की निवृत्ति विद्वानोंको होजाती है ॥ २ ॥ परन्तु जबतक कर्म फल देनेके लिये उन्मुख रहते हैं, संसार की वासना बनी रहती है, और इन्द्रियां चञ्चल रहती हैं तबतक तत्त्वज्ञान की कथा कैसी है ?॥ ३ ॥ जबतक देहाभिमान होवे किसी वस्तु में ममता होवे प्रयत्नका वेग रजोगुण होवे संकल्प कल्पना होवे तबतक तत्त्वकी बात भी कहां से हो सकती है ? ॥ ४ ॥ जबतक मनमें स्थिरता नहीं होवे सतशास्त्र उपदेशका चिन्तन नहीं होवे गुरुकी करुणा नहीं होवे तबतक तत्त्वज्ञान कभी नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥ और जाने बिना अज्ञानी पुरुष अहंकारगत पापका चेतन में आरोप करता है उससे उसके मुख में ग्लानि भासती है । और उस अज्ञानी विपरीत ज्ञानीको नरकमें जन्म भी होता है ॥ ६ ॥ ज्ञानसे उस कर्म के बीजभाव नष्ट होजाता है इससे जन्माङ्कुर भी नहीं होता है इस प्रकार निश्चय करके मनुष्य तृप्त होजाता है ॥ ७ ॥

३६ साखी दोहा ।

पानिहुं ते अति पातला, धूमहुं ते अति छीन ।
पवनहुं ते ऊताहुला, दोस्त कबीरा कीन ॥

टीका--विषय में आसक्ति उसकी वासनाआदि सभी विकार दुःख, विचारादि रहित मन का विश्वास करने से होते हैं। और सांई जीव करते हैं । क्योंकि जो मन पानीसे भी अत्यन्त 'पातला' नाम सूक्ष्म है । इससे जिसकी शुभ अशुभ विषय विषयक प्रवृत्ति का विवेक ज्ञान कष्ट-साध्य है, और पानी के ही सदृश प्रायः जिसको नीच मार्गमें जाने का स्वभाव है । जो मन धूमसे भी अत्यन्त 'छीनहै' नाम विरलस्वभाव वाला है । अर्थात् जिस मनकी एक वृत्ति स्थिर नहीं रहती है । किन्तु अग्निसे धूमके सदृश जिस मनकी वृत्ति सदा उत्पन्न नष्ट होती रहती है । जो मन पवन से भी 'ऊताहुल' नाम अत्यन्त अधिक बेगवाला चञ्चल है जिससे क्षणमें स्वर्गपाताल में भी भ्रमण कर आता है । साहेब कहते हैं कि ऐसे दुर्ज्ञेयगति स्वभाववाला चञ्चल मनको 'कबीरा' नाम जीवों

में 'दोस्त किया है' नाम विश्वासके पात्र समझा है, इसीसे इन्हें सब आपत्तियां सहनी पड़ती हैं। क्षेपक साखी। (पुष्प वासते पातला, सूक्ष्म जाके अङ्ग। कबिरा तासो मिलिरहा, कबहुं न छाड़ सङ्ग॥ १॥) जिस मनके पुष्पका गन्धसे भी पातला अत्यन्त सूक्ष्म 'अङ्ग' नाम स्वरूप है, अथवा पुष्पवाससे भी पातला नाम अधिक फैलने वाला सूक्ष्म जिसके वृत्तिरूप अवयव है, जीव सब उसीसे मिल रहे हैं, विवेक विचारादि विना उसके सङ्ग कबही नहीं छोड़ते हैं, इससे विषयादि में फँसकर जन्मादि कष्ट सहते हैं॥

३७ साखी दोहा।

ज्यों मुदाद समशीलकी, सब इक रूप समाहिं।
कहहिं कबीर सावज गति, तबकी देखि भुँकाहिं॥ ३७॥

टीका--और भी मनके स्वभाव का साहेब वर्णन करते हैं कि 'मुदाद' नामक कोई हरा पत्थर होता है। जैसे विश्वरूप और चिन्तामणि पत्थर सुने जाते हैं। जिनका स्वामी शंकराचार्यजी ने भी भाष्य में उल्लेख किया है। उस मुदादका स्वभाव होता है कि सब वस्तुके प्रतिविम्ब उसमें मोरके प्रतिविम्ब सदृश दिखपड़ते हैं, उसके सामने यदि कुत्ता जाता है, तो उसमें मोर सदृश प्रतिबिम्बको देखकर, और पक्षीरूप सावजकी गति जानकर भूंकता है। साहेब कहते हैं कि 'ज्यों' नाम जैसा मुदाद होता है, उसीके 'सम' नाम तुल्य शीलकी नाम स्वभाववाला मनहै, इसीसे सबवस्तु इक नाम एकरूपसे इस मनमें 'समाहिं' नाम समाते हैं। अर्थात् विवेक विचारादि रहित मनमें सुखद दुःखदादि सबही संसारके वस्तु एक सुखद वासनारूपसे समाती है। और समाई है। और आत्मा भी उसमें छायारूपसे समाता है। तहां साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! जब दुःखद वस्तु भी सुखद वासनारूपसे मनमें समाई हैं, तब तुम उन वासनारूप सावजों की गतिको देखकर क्या भूंकते हो? नाम विचारादि रहित अनेकों बातयत्न क्या करतेहो? अभ्यास वैराग्यसे उन वासनाओं को नष्टकरो भोगादिसे वे नहीं नष्ट हो सकती हैं॥ (ज्यों मुदाद समसान शिल, सबे रूप समसान। कहहिं कबिर सावजगती, तबकी देखि भुँकान) यह पाठभेद है, तब अर्थ है कि जैसे मुदाद नामक 'समसान' नाम एक स्वभाव वाला 'शिल' नाम पत्थर होता है, जिसमें सबरूप 'समसान' नाम तुल्य स्वभाववाले भासते हैं, तो कुत्ता अपनी छायारूप कल्पित सावजकी गतिको देखकर क्या भूंकता है? अर्थात् व्यर्थहि भूंकता है। वैसेही सबपदार्थ मनसे कल्पित होकर मनमें समाये हैं, और इन्द्रियों द्वारा बाहरकी वस्तु वासनारूपसे समायी हैं, तो उन्हें देखकर और सत्य मानकर मनुष्य व्यर्थ ही भूंकते हैं। अर्थात् तुल्यरूपसे सब वस्तुओं को मनमें स्थिति है, और विवेक रहित मनुष्य विवेक बिना वासनाओंके अनुसार फलकी प्राप्तिके लिये स्तुति पाठ अध्ययन अध्यापनादि करते हैं, तथा

राम खुदाआदि नामों को रटते हैं सो मानो आप अपने से दुःखको पैदा करते हैं, मनको दोस्त करके अनर्थके भागी होते हैं। इत्यादि॥

३८ साखी दोहा।

देखहु शील मुदादकी, प्रीति करै बल जोर।
तीनि लोक की सूरती, तामें दीशै मोर॥ ३८॥

टीका—साहेब उपदेश देते हैं कि हे सज्जन मनुष्यो! 'मुदाद की शीलको' नाम गति, शक्ति और स्वभाव को देखोकि वह सब पदार्थोंसे 'बलजोर' नाम सामर्थ्यसे जबरदस्ति प्रीति करता है। अथवा 'मुदादशील' नाम मुदाद पत्थरकी प्रीतिको देखो, जो प्रीति 'बल' नाम शक्तिका जोरसे करता है। और जिस शील वा प्रीतिसे तीनों लोककी 'सूरति' नाम आकृति उसमें 'मोर' पक्षीके ही सदृश दीखती है। और ऐसाही स्वभाव मनका भी जानो। वह मन भी सब योनि, विषय, पाप, पुण्य, अर्थ और अनर्थादिके साथ बलात्कारसे प्रेम करता है, इसीसे तीनों लोकोंके पदार्थ शरीर विषय आदिके सुरति उसमनमें 'मोर' नाम मेरा अपनारूपसे भासती है। अर्थात् सभी पदार्थों को मन अपना और सत्य सुखदादि जानता है और जनाता है, इससे वही मन सूकर कीटादि शरीरकी वासनाओं से युक्त होकर मलमूत्रादिको भी अपना भक्ष्यादि जानता है। और उन शरीरोंको भी अपना स्वरूप जानता है। और मानवादि शरीरोंकी वासना से मानव शरीरादिमें प्राप्त होकर उनहींमें मैं मेरी बुद्धि करता है। और विवेक विचार विज्ञान रहित एक एक मनुष्यादिके मनमें चौरासी २ लक्ष योनिआदि की वासनायें और चौदहो भुवनके वस्तुओं की वासनासंस्कार वर्तमान हैं, मरनेके समय जिस कर्मसे जौन वासना प्रगट होती है, उसी योनि आदिमें जीव प्राप्त होता है। और जिस कर्मका भोगके लिये जिन योनिआदिकों में जीव प्राप्त होता है, उन योनिआदिकों के अनुकूल उस कर्मसे तथा उद्बुद्ध वासनासे अन्यकर्म तथा वासना छिपे रहते हैं, परन्तु सभी अपने २ समयपर प्रगट होते हैं, इससे संसारभरके वासना मनमें रहती हैं सो विचारादिसे देखो, और विवेकादि रहित मनसे दोस्ती त्यागो मनमें जो मुदादके स्वभाव हैं उसे नष्ट करने के लिये यत्न करो जिससे तेरा कल्याण होजावे। योगवासिष्ठ में लिखा है कि [यथायथाऽसौयतते मनोदेहोहिदेहिनाम्। तथातथाऽसौभवति स्वनिश्चयफलैकभाक्] प्राणियोंके यह मनरूप देह जैसा २ यतन करता है वैसा २ हो जाता है यह अपना निश्चयके ही अनुसार फलको भजता है इत्यादि॥

३९ साखी दोहा।

गही टेक नहीं छोड़ई, चोंच जीभ जरि जाय।
ऐसा तप्त अङ्गार है, ताहि चकोर चबाय॥ ३९॥

टीका--शंकाहुई कि तीनों लोककी वासना मनमें रहती है, परन्तु सर्वत्र सब योनियों में जन्म लेकर सबविषयोंको भोगलेनेसे सब वासनायें आपही नष्ट होजावेंगी, फिर जीवभी मुक्तहोजावेगा, इस लिये विवेक विज्ञानादिको कोई जरूरत नहींहै। तथा मनकी दोस्तीसे कोई हानि नहींहै। तब साहेबकहते हैंकि विवेक विज्ञानादि बिना अनन्तों बार भोगने आदि से भी यह मन गही हुई वासनारूप टेक को नहीं छोड़ता है' चाहे उस वासनादि से इस मन को कितनाहुँ कष्ट होवे, परन्तु किसी भी वासनादि को नहीं त्यागता है। जैसे चकोर पक्षी टेक को नहीं छोड़ता है, इसीसे चाहे उसके चोंच जीभ भी जर जावें तो भी वह चकोर 'ऐसा' नाम लोक प्रसिद्ध जो अत्यन्त तप्तअङ्गार है नाम काष्ठ में दीप्तअग्नि है 'ताहि' नाम उसको भी चबाय लेता है। चोंचादि को जलनेपर भी उसे खाना नहीं छोड़ता है। इसी प्रकार मन भी कष्ट होनेपर विषयभोग तथा वासना को ज्ञानादि बिना नहीं छोड़ता है। इसलिये मनसे दोस्ती त्यागकर ज्ञानकी प्राप्ति करनी चाहिये। अथवा साहेब कहते हैं कि जो पुरुष मनके स्वभाव को मुर्दाद सदृश देखकर इससे दोस्ती वासनादि को त्यागने के लिये टेक गहता है, और उस विराग अभ्यासादि रूप गही टेक को नहीं छोड़ता है, वह पुरुष आपत्तिआदि आनेपर भी कठिनवासनाओं को भी नष्टकर देता है। जैसे चोंच और जीभ जरनेपर भी तप्तअङ्गार को चकोर चबाता है। योग वासिष्ठ में लिखा है कि [**जन्मान्तरशताभ्यस्ता मिथ्यासंसारवासना सा चिराभ्यासयोगेन बिना न क्षीयते क्वचित् ॥१॥ सम्यगालोचनात्सत्या द्वासना प्रविलीयते। वासनाविलये चेतः शममायाति दीपवत् ॥ २ ॥ मनसोऽभ्युदयोनाशो मनोनाशो महोदयः। ज्ञ मनोनाशमभ्येति मनोऽज्ञस्यहि शृङ्खला**), अनन्त जन्म के अभ्यास से सिद्ध संसार की मिथ्या वासना चिरकालतक अभ्यासयोग के बिना कभी भी नहीं नष्ट होती है ॥१॥ और सत्य और सम्यक्ज्ञान से वासना नष्ट होती है वासना को नष्ट होनेपर तेल रहित दीपसदृश चित्त स्वयं शान्त हो जाता है ॥ २॥ मनके अभ्युदय ही जीव के नाश तुल्य है मनका नाश जीव का महान् उदय है ज्ञानी का मन नष्ट होता है अज्ञानी के मन बेड़ी सदृश बना रहता है ॥ ३ ॥

४० साखी छं० गीता।

चकोर भरोसे चन्द्र के, निगले तप्त अंगार।
कहहिं कबीर डाहै नहीं, ऐसी बस्तु अपार ॥ ४० ॥

टीका। शंकाहुई कि यदि वासनाआदि से मन पीड़ित रहता है, और विषयवासनादि के टेक को नहीं छोड़ता है, तो विषयवासना आदि से पीड़ितहोते २ कभी स्वयं नष्ट होजावेगा, फिर मनके अधीन होने वाले वासनादि भी स्वयं नष्ट होजावगे जीव मुक्त होजावेगा, इससे विवेक

विज्ञानादि की कोई आवश्यकता नहीं है । तब साहेब कहते हैं कि जैसे चकोर पक्षी चन्द्रके भरोसे नाम चन्द्रमा के ध्यान के बल से तप्तअंगार को निगलता है। इससे शीतचन्द्रका ध्यान के बलसे वह अंगार उसको 'नहीं डाहता है' नाम उसके स्वरूप को नहीं नष्ट करता है, क्योंकि ऐसी ही संसार में वस्तुओं की 'लगार' नाम विचित्र लग्न संगति लगावट हैं, जैसे चन्द्रकान्तपत्थर को साथ रखने से अग्नि काष्ठ को भी नहीं जलाती है, वैसी ही चन्द्रमा के ध्यान से चकोर को भी अत्यन्त नष्ट नहीं करती है, अनवधानता में उसके चोंच और जीभ के जारती भी है तो भी वह उससे मरता नहीं है । इसीप्रकार मनभी अपने अभिमानी चन्द्रदेवता के भरोसे उसकी सहायता प्रेरणा-आदि से अङ्गार सदृश पीड़ित करनेवाले विषयादिकों को निगलता है, उनके वासनाआदिकों को धारण करता है, परन्तु चन्द्र से रक्षित रहने से नष्ट नहीं होता है । न विषयादि उसको नष्ट ही कर सकते हैं। किन्तु जैसे निगलाहुआ अङ्गार चकोर की पुष्टिके लिये होताहै, वैसे ही विषयादि के वासनाआदि भी मनकी पुष्टिके लिये होतेहैं, क्योंकि मनको विषयादिरूप वस्तुओं के साथ ऐसी सम्बन्ध है कि जिससे अत्यन्त पीड़ित भी होता है, परन्तु नष्ट नहीं होता है, उलटा पुष्ट होता है । इसलिये विवेक विराग तत्त्वज्ञान के अभ्यासादि से वासनाओं की निवृत्ति करनी चाहिये । अथवा जो अज्ञानियों को नष्ट करने वाले हैं, सोई विषयादि विवेकी तथा ज्ञानी विराग युक्त पुरुषों से शरीर निर्वाहादि के लिये भोगे जाते हैं, तो वस्तुत उन महापुरुषों को कुछभी हानि नहीं करते हैं । क्योंकि जैसे चन्द्रमा के भरोसे चकोर जब तप्तअङ्गार को चबाता है, तब वह अङ्गार उसके चोंच और मुख को भी नहीं डाहता है, उसको चन्द्र के साथ ऐसी ही लगारहै वैसे ही जो विवेकी ज्ञानी विरागादियुक्त महात्मा आनन्दस्वरूप आत्माके वा विज्ञानादिरूप चन्द्र के भरोसे शरीर निर्वाह के लिये विषयादिरूप अङ्गार के भक्षण करतेहैं उनका मन नहीं पीड़ित होता है। और वे विषयादि उन महात्माओं को कुछ भी क्षति नहीं कर सकतेहैं । इसलिये विवेकादि का सम्पादन अवश्य ही करना चाहिये ।

४१।४२ साखी दोहा

गाम ऊँचो पहाड़ पर, औ मोटे की बांह ।
ऐसा ठाकुर सेविये, उबरिय जाकी छांह ॥ ४१ ॥
झिलि मिलि झगरा झूलते, बाकी छूटि न काहु ।
गोरख अँटके कालपुर, कौन कहावै साहु ॥ ४२ ॥

टीका-सामान्यरूप से मन और वासनाओं का वर्णन करके, अबविशेष वासनाओं का फिर वर्णन करते हैं कि हे मनुष्यो ! तेरा मन संकल्प विकल्प करता है कि सबसे ऊँचे पहाड़ सुमेरु पर स्वर्ग में रहने वाले, और ऐसा 'मोटे' नाम समर्थ इन्द्रोपेन्द्रादि रूप 'ठाकुर' नाम स्वामी की 'बांह'

को नाम भुजारूप सामर्थ्य को 'सेविये' कि जिस सेवनसे 'जाकी' नाम जिस ठाकुर की वा जिस भुजाकी छांह में 'उबरिये' नाम दुःख से रहित होकर उस ठाकुरकी कृपासे स्वर्गके आनन्दप्रद विषयादिकों को भोगों को प्राप्त करें इत्यादि। परन्तु ऐसी वासना से भी तेरा उबार नहीं होसकता है उलटा बन्धन होता है। जिज्ञासाहुई की स्वर्ग श्रेष्ठ और धर्मात्माओं से प्राप्त करने योग्य है, उसकी इच्छा वासना कैसे बन्धन के हेतु हैं। तब साहेब कहते हैं कि 'झिलि मिलि' नाम दीप की शिखा के सदृश जो मन उसकी वासनारूप 'झगरा' में नाम किसी लोक विषयादि की वासना में 'झूलते हुये' नाम लगेहुये, उन वासनाओं के अनुकूल प्रवृत्तिआदि करतेहुये 'काहु' नाम किसी जीवों की 'बाकी' नहीं छूटी, न छूटहीं सकती है। अर्थात् वासनायुक्त किसी मनुष्य के प्रारब्ध से शेष संचित शुभ अशुभ कर्म नहीं छूटते हैं तथा आगामी भी नहीं छूटते हैं, केवलप्रारब्धमात्र का भोग से क्षयहोता है। इससे स्वर्गकी वासनारूप मन की झगरा में झूलने वालेभी बन्धन के भागी होते हैं। अथवा झिलिमिलि झगरा में झूलतेहुयें मनुष्यों के 'काहु' नाम कोई एकभी 'बाकी' नाम संचित कर्म से छूटी नहीं मिलती है, किन्तु सभी संसार में भोगने पड़ते हैं। इससे स्वर्ग के बादभी संचित पाप भोगने पड़ते हैं। इसीसे 'गोरख' नाम गो नामवाले बाह्यइन्द्रियों की रक्षा विषयसे निरोध करनेवाले भी मन की वासना के अधीन 'कालपुर' नाम मृत्यु के पुररूप संसारही में 'अंटके' और अंटकते हैं, अर्थात् विवेक विज्ञान से जबतक समूलवासना को नहीं नष्ट किये, तबतक इन्द्रियों की रक्षामात्र करनेवाले योगीभी वासना के अधीन जन्मादिको प्राप्तहुये, और होते हैं। अथवा गोरख नामवाला योगीविशेष भी संकल्प वासना केही अधीन कालपुररूप शरीर में चिरकाल तक अंटके रहे। अर्थात् सिद्धि आदि की वासना से दशमदरवाजेमें छिपकर और काल की वञ्चना करके शरीर में अंटके रहे। साहेब कहतेहैं कि जहां योगियों का यह हालहै कि वासनाके अधीनजन्मादिको प्राप्त होते हैं वा वर्तमान शरीर में अँटके रहते हैं, और शरीरमें आसक्त होकर प्राणकी रक्षामें तत्पर रहते हैं, तहां वासना के अधिन में रहनेवाला मनके झगरायों में झूलनेवाला अन्य 'कौन साहु कहावे' अर्थात् मिथ्या संसारकी वासना रहतेहुये कोई भी सत्यवस्तु को प्राप्त करने योग्य सच्चा साधु नहीं कहाता है न कहासकता है, और सच्चासाधु हुये बिना बन्धन अवश्यही प्राप्त होताहै। अथवा दशम दरवाजा शिररूप ऊंचे पहाड़पर ग्राम सिद्ध करके, और किसी 'मोटे कीबांह' नाम सामर्थ्य का आश्रयण करके, मोटे को उपास्यमानकर, ऐसा उस ठाकुरको सेवना चाहिये कि जिसकी छाया में उबार होजावे। इस प्रकार निश्चयकरके दशमदरवाजे के झिलिमिलि ज्योति की 'झगरा में' नाम उसके ध्यानादि में झुलते रहने से भी वासनासहित किसी अविवेकी की कोई 'बाकी नहीं छूटी' जन्मादिरहित वे लोग नहीं हुये। और उसी झिलमिल की झगरा में झूलते रहने से गोरख भी कालपुरमें अँटकेरहे नाम शरीर में अँटकेरहे प्राणकी चोरी किये। और करते हैं। तो उससे अन्य कौन साहु कहावे वा कहाय सकता है। भाव यह है कि जबतक चिरजीवित्वकी भी इच्छा रहती है मरण सेभी भय रहता है तबतक पुरुष पूरासाधु नहीं होता है। अथवा वासना की निवृत्तिकेलिये

साहेब उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! ऊंचा पहाड़ सुमेरु से भी परे नाम भिन्न वा उससे भी परे जो सूक्ष्म वस्तुरूपग्रामहै, नाम वस्तुतो नित्यस्थिति के लिये जो स्थानरूप है, उसी ब्रह्मरूप गाम में वसो। और उसमें वसने के लिये तथा उसकी प्राप्ति के लिये मोटेकी बाँह के आश्रित होजावो, अर्थात् संसाररूप सागर से पार करके उस गाम में प्राप्तकराने में समर्थगुरु के शरणमें प्राप्त होजावो, और उनके उपदेश को मानो उनका सेवन करो क्योंकि ऐसा ब्रह्मात्मारूप गुरुस्वरूप ठाकुर को सेवन करना चाहिये, कि जिनके अपरोक्ष अनुभवरूप और सतउपदेश रूप छांह में 'उबरिये' नाम मोक्षकी प्राप्ति करसकें। और अन्य संसार के हेतु ठाकुरों की सेवा को त्यागना चाहिये, क्योंकि उक्त ठाकुर की सेवारहित अन्यठाकुर को सेवनेवाले सब मनुष्य 'झिलिमिलि' नाम चञ्चल मनकी झगरारूप संसारमें शरीरादिरूप भ्रमरूपहिंडोले में झूलतेहैं और भ्रममें झूलनेवाले काहु पुरुष की बाकी नहीं छूटी है। अथवा झूलने वालों में से काहु पुरुषने संसारबन्धन विना बाकी नहीं रहे छूटी नहीं पाये। और हे मनुष्यो! गोरख नाम इन्द्रियों के पोषण में परायण वासनायुक्त विषयी सबमनुष्य कालपुरमें अंटके। विषयी वा वासनायुक्त कौनपुरुष साहु कहाय सकता है अर्थात् कोईभी नहीं कहाय सकता है। इसलिये ऐसा ठाकुर का सेवकरो जिससे तेरा ऊबार होजावे झगरों में झूलना त्यागो।

४३ साखी दोहा।

गोरख रसिया योगके, मुये न जारै देह।

मांस गली मांटी मिला, कोरो मांजरि देह॥ ४३॥

टीका। गोरख कैसे कालपुरमें अँटके ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि बाह्येन्द्रिय मात्र की रक्षा करनेवाले योगी सब वा हठी गोरख'पंथी' योगी 'योग के रसिया' नाम रसिक हुये और होते हैं। अर्थात् सिद्धि, प्रतिष्ठा, और चिरजीवित्वादि की बासनावाले हुये, तथा होते हैं, इससे चिरकालतक न मुये, न देह को जारे नाम जीर्ण नहीं होने दिये। अथवा अग्नि से भस्म नहीं किये, किन्तु शरीर की स्थिति के ही लिये सदा यत्न करते रहे और करते हैं। तौभी मांस गलकर मांटी में मिल ही गया। और देह में हड्डियों के 'कोरो' नाम कंकाल की मांजरि रहगई, नाम केवल हड्डियों के समुदाय रह गये। और रहते हैं। सोभी फिर नष्ट होजाते हैं, इससे शरीर की स्थिति के लिये कियाहुआ प्रयत्न भी व्यर्थहुआ और होता है। अथवा जो गोरख नाम योगी योगके रसिया हुये सो मुये नाम योगजन्य तुच्छ आनन्दादिरूप रस के आस्वाद लेनेवाले योगी सब मुये, परन्तु ज्ञानाग्निके विना देह को नहीं जारे, देहकी वासना को नहीं नष्ट किये। इससे वर्तमानदेह के मांस गलकर मांटी में मिलगया शरीर नष्ट होगया, परन्तु 'कोरो' नाम कोरा (नवीन) दूसरे देहों के 'माँजरि' नाम मोजर ,पुष्परूप वासना कामकर्मादि रह गये, और रहजाते हैं, जिससे संसार में जन्मादि लेकर अँटकना पड़ता है। यद्यपि हठयोग के साधन रोगादि की निवृत्ति द्वारा सुख कल्याण में

उपयोगी हैं, और चित्तवृत्तियों के निरोधादिरूप योग ज्ञानद्वारा मोक्षमें उपयोगी हैं, जिनको साहेब ने भी स्वीकार निरूपण किया है, तथापि ज्ञानमें अनुपयोगी केवलचिरजीवित्व तथा सिद्धि आदिके हेतु जो योग हैं जो बासनाकी निवृत्तिके हेतु नहीं हैं किन्तु वृद्धिके हेतु हैं, सो मुमुक्षुके लिये हेय हैं। तथा ज्ञानरहित किसीभी योगसे कल्याण नहीं होसकता है, न बासना की अत्यन्तनिवृत्ति होसकती है। यह साहेब का प्रकृतमें तात्पर्य है इससे, कोई दोष नहीं है। मांजरि के मांजी पाठ भेद है अर्थ भेद है कि योगके रसिया होनेसे गोरख नहीं मुये न देहको जारे, किन्तु मांसको गलकर मांटीमें मिलजानेपर 'कोरो' नाम नवीनयोगसे 'मांजी' नाम शुद्धकिया हुआ देहको धारणकिये और करते हैं। अथवा झिलमिल झगरामें झुलनेवाले गोरख कालपुरमें अँटके, परन्तु जो गोरख ज्ञानयोगके रसियाहुये सो शरीराभिमान से रहित होनेसे न कभी मुये न देहजारे, किन्तु प्रारब्धक्षयसे जब उनके माँस गलकर माँटीरूप हुआ शरीर नष्ट होगया, तो 'कोरो' नाम सदा नवीन एकरस रहने वाला 'माँजी हुई' शुद्ध चितिस्वरूपही उनके सूक्ष्मदेह होगया और होजाता है। लिखाहै कि [**अमेध्यपूर्णं कृमिजालसंकुलमतीव दुर्गन्धमशौचमध्रुवम्। कलेवरं मूत्रपुरीषभाजनं रमन्ति मूढा न रमन्तिपण्डिताः**] अमेध्यसे पूर्ण कृमिसमुदायसे व्याप्त, अत्यन्तदुर्गन्ध अशौच अनवस्थिर मलमूत्रके पात्ररूप शरीरमें मूढ़लोग रमन करते हैं ज्ञानीलोग इसमें नहीं रमण करते हैं॥

४४ साखी छं० दोहा।

वनते भागा विहड़े परा, करहा अपनी बान।
वेदन करहा कासो कहै, को करहा को जान॥ ४४॥

टीका—जो पुरुष स्त्री पुत्र गृहादिको त्यागकर भी अनेको वेषआदिके मान मर्यादामें फंसते हैं, तथा सिद्धि में और देवादि की प्राप्ति भूतप्रेतादिको वशीकरण चिरजीवित्वादि के लिये साधनादिमें जो फंसते हैं, उनकी दुर्दशाओं का साहेब वर्णन करते हैं कि जैसे कोई 'करहा' नाम करीहाँथी सिंह का भयसे 'वनते भागा' नाम अपने साथियों को त्यागकर वनसे चलदिया, परन्तु अपनी 'बान' नाम अपना कामीपनरूप स्वभावसे वह करहा विहड़गाड़ में परा, अर्थात् हस्तिनी के चित्र को देखकर कामवश व्याधा के बनाये हुये गड़हे में जब वह करहा पड़ा, तब अपना 'वेदन' नाम वेदना पीड़ा कासो कहे, और उस दशायुक्त करहाको जाननाभी कौन है, किन्तु आपही उस कष्ट को जानता है। तैसे जो पुरुष स्त्रीआदिको त्यागकर मानों संसाररूप जङ्गलसे मृत्युरूप सिंहका भयसे वा दुःखका भयसे भागते हैं, परन्तु लोक वेषादि की मर्य्यादा सिद्धिआदि में फंसे हैं, सो पुरुष अपनी हीं कामनारूप स्वभाव से अज्ञान अविवेकयुक्त अनात्म पदार्थरूप विहड़गाड़में परे हैं। और इन्हें फंसने के लिये यह गाड़ माया वनाई है, कुछ गुरुआ लोग भी कल्पित

गाड़सिद्ध किये हैं। और इस गाड़में परनेपर जो जीवोंको कष्ट होता है सो 'कासो' नाम किससे जीव कहें, और इन्हें कष्टयुक्त कौन अज्ञानी जानसकता है, संसाररूप गाड़में पड़ेहुये अनात्मगाड़में दुःखभोगतेहुये को भी देखकर अज्ञानी लोग उसे सुखी समझते हैं। अथवा अनात्मगाड़में परनेसे राग द्वेष मृत्यु गर्भादिवास के समय जो जीवको दुःखहोताहै, उसे किससे क्याकहे, अपने भूलसे प्राप्तदुःखों को लज्जितके सदृश भोगता है। और वह दुःख बचनसे भी परहोताहै जिसको कहभी नहीं सकता है, किन्तु कामी जीव अन्तःकरणसे कठिनदुःखोंका अनुभव करता है। और उस कामी के दुःखके छोड़ानेके उपायोंको भी कौन जानता है? यदि वह काम बासनादिको नहीं त्यागता है। अर्थात् कोई नहीं जानता है, इसलिये स्वयं कामादिको त्यागकर सुखीहोना चाहिये। अथवा अनेकों योनिरूप बनसे किसी प्रकार भागकर यह जीव, इस दुर्लभ मानवतनको प्राप्त किया है, परन्तु यहाँभी अपनी अविद्यारूप बानसे स्त्रीआदिकी कामना करके सांसारिक व्यवहारविषयादि रूप विहड़गाडमें पराहै, जिससे फिर संसारजङ्गल में इसको प्राप्तहोना होगा। और इसमें परा हुआ जीवको जो फिर आगे वेदना होगी सो किससे कहेगा, और कौन इसको जानसकेगा, इसलिये मनुष्योंको गाड़ और भावीवेदनासे रहित होने के लिये अभीसे यत्नकरना चाहिये।

४५ साखी दोहा।

बहुत दिवस ते हींड़िया, शून्य समाधि लगाय।
करहा परिया गाडमें, दूरिपरा पछताय॥ ४५॥

टीका-फिरभी उन कामियों की दशाका साहेब वर्णन करतेहैं कि जैसे करहा खाईमें परजानेपर एकान्त में पड़ाहुआ बहुतदिनोंतक उससे निकलने के लिये उपायों को हींड़ता है, नाम खोजताहै। और जब बहुत खोजनेपर भी उपाय नहीं मिलता है तब साथियों से दूर पड़ाहुआ पश्चात्ताप करता है परवश होकर दुःख भोगता है। तैसेही अनात्मवस्तुमें आसक्त कामीपुरुष सबासन होनेसे, स्त्री पुत्रादि को त्यागकर भी अनात्मव्यवहारादि गाड़में पड़ते हैं। और शून्यदेशमें चित्तको एकाग्र करके दुःखसे रहित होनेके लिये चिन्ता, ध्यान, समाधि भी करते हैं, बहुतदिनों तक उपायों को हींड़ते हैं, परन्तु विषयबासना कामकर्मादिको सर्वथा त्याग नहीं करते हैं, इससे सुखस्वरूप आत्मा आत्मानुभवादि से दूरपरे हुये, वे लोग पश्चात्ताप करते हैं, और वे लोग फिर परवश होकर महाकष्ट भोगते हैं। इसलिये हे सज्जनो! कामादिको तथा स्त्री, पुत्र, लोकादिमें आसक्तिको सर्वथा त्यागकर आत्मविचारादि परायण होजावो जिससे तेरा कल्याण होवे। लिखा है कि [**आश्रमैर्नचवेदैश्च यज्ञैःसांख्यैर्व्रतैस्तथा। उग्रैस्तपोभिर्विविधैर्दानैर्नानाविधैरपि। न लभन्ते तमात्मानं लभन्तेज्ञानिनःस्वयम्**] ज्ञानरहित काम बासना युक्त मनुष्य आश्रम, वेद,

यज्ञ, साख्य, व्रत, उग्र विविधतप और नानाविध दान से भी उक्त आत्मास्वरूप साक्षीकोनहींप्राप्त करते हैं। और कामकर्मादि रहित ज्ञानी लोग आश्रमादि बिना भी स्वयं उस आत्मानन्दकी प्राप्ति करते हैं॥

४६ साखी दोहा।

कबीर भरम न भाजिया, बहुबिधि धरिया भेख।
साईं कै परिचावना, अन्तर रहिगौ रेख॥ ४६॥

टीका-औरभी साहेब कहते हैं कि स्त्री पुत्रादि को त्यागकर, मानव शरीरधारी जीवोंने बहुत प्रकार के वेषों का धारण किये और करते हैं, परन्तु तौभी लोक चिरजीवित्व सिद्धि आदिकी वासनाओं को त्यागेबिना, तथा आत्मा के विवेक विचारादि बिना, इन जीवों के 'भ्रम' नाम मिथ्या-ज्ञान नहीं भाजिया, अर्थात् अनात्मवस्तु आदिमें आत्मबुद्धि आदि नहीं नष्टहुये। और इन मनुष्यों को जो कोई उपदेशक परिचय करानेवाले मिले, सोभी 'साईं' नाम स्वामी करके परिचय कराये और कराते हैं कि ब्रह्म वा ईश्वर तेरा स्वामी है, तुझसें अत्यन्तभिन्न है। अमुक देशमें रहता है वा सर्वत्र रहता है इत्यादि, परन्तु उस साईं करके परिचय कराने से मनुष्यों के 'अन्तरमें' नाम हृदय में अज्ञान वासना कामकर्मादिके 'रेख' नाम आकार वा चिन्ह, रेखा लकीर रहगई। अथवा जीव को परतत्त्व मोक्षसे 'अन्तर' नाम भेदरूप दुःखद लकीर उस परिचयवञ्चित से रहगई, जिससे मूल-बासना की निवृत्ति नहीं हुई न होती है। इसलिये हे मनुष्यो! स्थूल, अशुभ, बाह्यवासना आदिको त्यागकर निर्बासन ज्ञानीगुरु के शरण में प्राप्त होकर ऐसे परिचय की प्राप्ति करो जिससे समूलबासना आदि की निवृत्ति से तेरा कल्याण होवे॥ (साईंके परिचय बिना) ऐसा तृतीयपादके पाठ भेद है, तब अर्थ है कि लोगोंने वेषका धारण बहुतविधिसे किया, तौभी भ्रम नहीं भागा। और भ्रम नहीं भागनेसे सर्वात्मस्वरूप साईंसे परिचय भी नहीं हुआ। और परिचय बिना जीव और सांईके अन्तर में रेखरहगई नाम भेदकी रेखा लकीर रहगई। अथवा साहेब कहते हैं कि जिनके भ्रम नहीं भागा है, वेही लोग बहुतप्रकारके वा कल्पित बहुविधिसे वेषोंको धारण किये हैं, या वेषोंके अभिमानी हुये हैं। और अपनेसे भिन्न साईंरूपसे जगततत्त्वको परिचय करानेसे वा जगततत्त्वका परिचय बिना जीवोंके अन्तरमें रेख रहगई है॥ लिखा है कि [सर्वमेवाहमेवेति तत्त्वज्ञोनावसीदति । नगृह्णातिपदार्थेषु विभागानर्थभावनाम्॥ १॥ अपिबालाग्रमात्रेण विदुषःप्रत्यगात्मनः। भिन्नंब्रह्मे-तिसम्मोहा दात्मैवास्यभयंभवेत्॥ २॥ एतस्मिन्नुदरमन्तरंकुरुते । अथतस्यभयं भवति॥ ३॥ सर्वभावपदातीतं सर्वभावात्मकंचवा। यःपश्यति सदात्मानं स स-माहित उच्यते॥ ४॥] सर्वात्मस्वरूप मैं ही हूँ इसप्रकार तत्त्वको जाननेवाला दुःखी नहीं

होता है, क्योंकि वह पदार्थोंमें विभागरूप अनर्थकी भावना को नहींग्रहण करता है ॥ १ ॥ विद्वान् को प्रत्यगात्मासे बालाग्रमात्रभी ब्रह्मभिन्न है ऐसा सम्मोह होवे तो उसभेदविषयक मोहवाला विद्वान्के भी आत्माही उसके लिये भयस्वरूप होजाता है ॥ २ ॥ क्योंकि इस आत्मवस्तु में जो अल्प भी भेद देखता है उसको फिर भय होताही है ॥ ३ ॥ और जो पुरुष सबमायिक मिथ्याभाव पदार्थसे पर या सब भावके आत्मास्वरूप अपने आत्माको सदा अपरोक्ष जानता है सोई पुरुष सब भयसे रहित समाहित कहा जाता है ॥ ४ ॥ योग वासिष्ठादि ॥

४७ साखी दोहा।

बिनु डांड़े जग डांड़िया, सोरठ परिया डांड़।
बाट निहारे लोभिया, गुड़ते मीठी खांड़ ॥ ४७ ॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि भ्रम नहीं भागनेसे, तथा अन्तरमें रेख रह जानेसे यह जग बिना किसीके दण्डदियेही 'दण्डिया' नाम दण्डभोगा और भोगता है । अर्थात् सांईंके परिचय करानेसे अविद्या की निवृत्ति नहीं होती है, इससे भिन्नपतिसे जीव मिलना चाहते हैं उससे काम सुख चाहते हैं, और मिलने आदिके लिये कठिनतप कामकर्मादि करते हैं, तथा लौकिक व्यवहार रागद्वेष शोक मोहादिके वशमें होते हैं, इससे बिनादण्डदिये अपराधीके सदृश दण्डित होते हैं। अज्ञानादिवश महादुःख भोगते हैं। और सो भी दो चार नहीं दण्डित होते हैं किन्तु सबजग दण्डित होता है, इससे संसारभरमें, 'डांड़' नाम दण्डका 'सोरठ' नाम सोर हल्ला 'परिया' नाम परा है। यह दण्ड सब स्थानमें लोकमें सब योनिमें फैला है। और अज्ञानादिवश विषयभोगादिसे दण्डभोगते रहनेपर भी 'लोभिया' नाम अज्ञानादिसे लोभयुक्त जीव सब विषयादि की ही 'बाट' नाम मार्गको निहारते हैं। अर्थात् जिन वस्तुआदिकोंसे दण्डभोगना पड़ता है उनकी ही आशा प्रतीक्षा अज्ञानीलोग करते हैं कि अब यह वस्तु मिले यह मिल चुकी अब इससे भी अधिक मिलेगी अधिक मिलना चाहिये इत्यादि। और समझते हैं कि अन्यवस्तुओंसे गुड़ मीठ होता है इसलिये सो मुझे मिलना चाहिये। उसे मिलनेपर चाहते हैं कि गुड़से खांड़ मीठी होती है, इसलिये सो भी मुझे मिलनी चाहिये, उसेभी मिलनेपर मिसरी कन्दादि चाहते हैं, स्त्री, पुत्र, राज्यऔरप्रभुत्वादि आगे आगे लोभ अविद्यादिवश चाहते ही जातेहैं, कभी भी अज्ञानियों की इच्छा शान्त नहीं होती है। और इच्छाहीसे बिनु दण्डदिये ही दण्ड भोगते हैं। अथवा बाँसके लाठीरूप दण्ड बिनाही अन्तर में रेख रहनेसे मनुष्यादि दण्डे जाते हैं, और सो दण्ड 'सोरठ' नाम निःसन्धीके सदृश परता है। जैसे निःसन्धि दण्डसे निरन्तर चोट लगती है, वैसे निरन्तर दुःख जीव सब भोगते हैं इत्यादि। अथवा अज्ञानवश वाक् काय मनके संयमरूप दण्ड बिना, नाम इन दण्डों को आश्रयण करने बिना, जग दण्डा जाता है। और 'सोरठ' नामक रागिनी विशेषके सदृश जो जीवों की रागिनी विपर्यय बुद्धि है,

सोई दण्डसदृश परती है, इससे लोभी लोग दुःखके ही रास्ते को देखते हैं, और सब आनन्द के कारण आत्मानन्द को गुड़सदृश मानकर उससे भी आनन्दस्वरूप खांड़के सदृश कार्यको मानते हैं, और उसके लिये गाड़में परते हैं और दुखी होते हैं, इससे अज्ञानको नष्ट करके वाकादिके संयमरूप दण्डका आश्रय करना चाहिये। रागको त्यागना चाहिये इत्यादि। बाट निहारेके, बांटनिहारे पाठभेदहै, और गुड़ते, के, गुरुते है, तब अर्थ है कि यह जग बिना दण्डके ही दण्डमें परा, परन्तु तहाँभी 'सोरठ' नाम उद्दण्डरागी अज्ञानी ही दंडमें परे इससे 'बांटनिहारे' नाम असत् उपदेश देनेवाले गुरुआ लोग जहां लोभीहुये तहां उस लोभीगुरुसे शिष्यही मीठीखांडके सदृश होता है, और गुरु गुड़ही रह जाते हैं। अर्थात् यदि लोभ कामादि रहित जिज्ञासु होता है तो ज्ञानीगुरुको प्राप्त करलेता है विचारादिसे मुक्त होजाता है, और लोभी अज्ञानीगुरु संसारी बने रहते हैं। लिखा हैं कि

[न कर्तृत्वं न कर्माणिलोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तुप्रवर्तते॥१॥
नादत्तेकस्यचित्पापं नचैवसुकृतंविभुः। अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेनमुह्यन्तिजन्तवः॥२॥
यावद्धेतुफलावेश स्तावद्धेतुफलोद्भवः। क्षीणेहेतुफलावेशे नास्तिहेतुफलोद्भवः॥ ३ ॥
यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः। क्षीणेहेतुफलावेशेसंसारं न प्रपद्यते ॥४॥
संवृत्त्याजायतेसर्वंशाश्वतंनास्तितेनवै। सद्भावेन ह्यजंसर्वं मुच्छेदस्तेननास्तिवै॥५॥
वागदण्डोहन्तिविज्ञानं मनोदण्डः परांगतिम्। कर्मदण्डस्तुलोकां स्त्रीन्हन्यादपरि
रक्षितः ॥ ६ ॥ प्रभु कर्तृत्व, कर्म, कर्मफलके साथ संयोग, नहीं रचता है, किन्तु अविद्यात्मक प्रकृति चेतनकी सत्तासे प्रवृत्त होती है ॥ १ ॥ वह विभु किसीका पाप पुण्य भी नहीं लेता है किन्तु अज्ञानसे ज्ञानको आवृत्त रहनेसे प्राणी मोहित होते हैं ॥ २ ॥ जबतक हेतुफलका चित्तमें आवेश रहता है उनकी बासना रहती है तबतक हेतु अदृष्टादि और फलउत्पन्न होते हैं हेतुफलके आवेश को नष्ट होनेपर हेतु फलकी उत्पत्ति भी नहीं होती है ॥ ३ ॥ जबतक हेतुफलके आवेश रहता है तबतक संसार भी विस्तार युक्तरहता है हेतुफलावेश को नष्ट होनेपर जीव संसारमें नहीं प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ संवृत्ति नाम अज्ञानसे ही सब उत्पन्न होते हैं, इससे कुछ भी शाश्वत रहनेवाले नहीं हैं, और सत्तारूपसे सब अजब्रह्मस्वरूप है इससे वस्तुतः किसीका उच्छेद भी नहीं होता है ॥ ५ ॥ वागदण्ड की रक्षा नहीं करने से वह विज्ञानको नष्ट करता है अरक्षित मनोदण्ड परगति को नष्ट करता है अरक्षित कर्मदण्ड नाम कायदण्ड तीनों लोक का हनन करता है ॥ ६ ॥

४८ साखी दोहा ।

मलया गिरि के वास में, वृक्ष रहा सब गोय ।
कहबेको चन्दन भया, मलयागिरि न होय ॥ ४८ ॥

टीका--साहेब ने दयावश उक्त दण्डसे रहित होनेके लिये उपदेश दिया है कि हे मनुष्यो ! जैसे 'मलयागिरिके वासमे' नाम सुगन्धमें पासके सबवृक्ष गोयरहते हैं, नाम अपना गन्धको छिपाय रहते हैं, मलयागिरि सदृश सुगन्ध ही प्रतीत होते हैं और कहनेके लिये चन्दन भी होजाते हैं परन्तु मलयागिर नहीं होते हैं, क्योंकि उनवृक्षोंके गन्धसे अन्यवृक्ष सुगन्ध नहीं होते हैं। वैसेही आनन्दस्वरूप सत्यचिदात्मा है उसीकी छायासम्बन्धसे अनात्मामें भी आनन्द भासता है, इससे दुःखरूप भी अनात्मवस्तु अपने स्वरूप को छिपाय रहते हैं। यद्यपि आत्मा आनन्दस्वरूप है तद्यपि अनात्मरूपसे कोई चेतन वा आनन्दस्वरूप तेरा स्वामी नहीं है इत्यादि ॥

४६ साखी दोहा ।

मलयागिरि के वास में, बेध्यो ढाँक पलास ।
बेना कबहुँ न बेधिया, युग युग रहते पास ॥ ४६ ॥

टीका--मलयागिरिके वाससे वृक्षोंमें सुगन्धके सदृश चिदात्मानन्दसे ही देवता मनुष्यादि में भी चेतनता आनन्द सुनकर, जिज्ञासाहुई कि यदि चिदानन्दआत्माका सम्बन्धसे ही त्रिगुण किसी पदार्थ देवता मनुष्यादि में चेतनता आनन्द भासते हैं, तो पृथ्वी आदि घटपटादि भी भूत भौतिक पदार्थों में आत्माके सम्बन्धसे चेतनता तथा आनन्द भासना चाहिये सो क्यों नहीं भासते हैं। तब साहेब कहते हैं कि जैसे अन्तरमें सारसहित ढाकपलासादि तुच्छवृक्ष भी मलयागिरिके सुगन्धमय होजाते हैं,नाम उसके गन्धको ग्रहण करलेते हैं, परन्तु अन्तर साररहित बेना नाम बाँस चाहे अनेकों युग लमयागिरिके पासमें रहे तो उसमें मलयागिरिके वास नहीं वेधता है, वह कभी भी सुगन्धनहींहोताहै। वैसेही देवादिके त्रिगुणशरीरको जड़होतेभी अन्तरसारमनबुद्धिआदि सहीतहैं इससे उस स्वच्छ सारभूत अन्तःकरण में चिदानन्दकी छायासे देवताआदि आनन्दरूप तथा चेतन भासते हैं। और मनबुद्धिरूप अन्तःकरणसे हीन भूत भौतिक पदार्थ हैं, इससे इनमें प्रगट चेतनता आनन्द नहीं भासते हैं इनमें चिदानन्द की छाया नहीं पड़ती है, इससे जड़रूप भासते हैं। और वह अन्तःकरणरूप सारभी जब जितना अधिक स्वच्छ रहता है, तब उतनाही अधिकचेतनता तथा आनन्द भासते हैं, यद्यपि जड़पृथ्वी आदिमेंभी सब मनुष्यको चिदानन्द कीही सतरूपता प्रगट भासती है, इससे चिदानन्द रूपताभी भासनी चाहिये, तथापि जैसे उष्ण, प्रकाश, दाहक, स्वभाव वाली अग्निको जलसे सम्बन्ध होनेपर अग्निके उष्णता मात्रही जलमें भासती है। प्रकाशकता का ष्ठादि की दाहकता नहीं भासती हैं। और तैजस लोहपिण्डादि के सम्बन्ध से सब स्वभाव लोहादि में भासते हैं। तैसेही स्वच्छअन्तःकरणमें सत चित आनन्दरूपता का भान होता है। और अन्तःकरण का सम्मन्ध से शरीरमें भानहोता है। और घटपटादिमें केवलसत्तामात्रकाही प्रगट भान होता है, क्योंकि वे स्वच्छ नहींहैं, इससे विभुचिदानन्दकेही आनन्दादि देवादि में भासते हैं, इस तत्त्वार्थमेंकोईदोषनहींहै

लिखा है कि-(**आभासहीनयाबुद्ध्याज्ञातत्त्वंनैवजन्यते । तादृग्बुद्धेर्विशेषःको मृदादेः स्याद्विकारिणः॥ अन्नजन्यंमनोदेहात्स्वच्छंयद्वत्तथैव तौ। मायिकावपिसर्वस्मादन्यस्मात्स्वच्छतांगतौ**) आभसरहित बुद्धिसे घटादि में ज्ञातता नहीं उत्पन्न होतीहै क्योंकि आभासहीन तैसी बुद्धि को विकारी घटादिसे विशेष क्या होसकता है ? अन्नसे जन्यदेहकी अपेक्षा जैसे अन्नजन्य भी मन स्वच्छ है तैसेही अन्यसब मायिकसे मायिकभी जीव ईश्वर स्वच्छता को प्राप्त हुएहैं । पञ्चदशी ॥

५० साखी दोहा ।

चलते चलते पगु थका, नगर रहा नौ कोश ।

बीचहिं में डेरा परा, कहहु कौन का दोष ॥ ५० ॥

टीका—अनात्मदेवादि में वास्तविक आनन्दरूपता का निषेध तथा उपपादन करके, अविवेकी कामकर्मोपासना करनेवाले बिना दण्डदियेही दण्डभोगनेवाले जीवोंकीहीं दशाओंका फिरसे साहेब वर्णन करते हैं कि 'चलते २' नाम दुःखमय संसारजङ्गल से पारहोने के लिये यत्न करते २ भ्रमयुक्त मनुष्यों के मन बुद्धि रूप 'पगुथक गये' तौभी जिस आनन्दस्वरूप नगरमें पहुँचनाचाहिये था सो नौकोश से परे रहगया, इससे 'बीचहिं में डेरापरा' तहां कहोकि किसका दोष है, अर्थात् किसी अन्यका दोष नहीं है, किन्तु इन मनुष्यों केही अविवेकादिरूप दोष हैं। भाव यह है कि जैसे लोकमें मनुष्यके लिये दिनभरमें गन्तव्यमार्ग दशकोश मानागया है । तैसेही एकस्थूलशरीर, पांचप्राण, चतुष्टय अन्तःकरण, ये दशकोश मनुष्यके आयुमें गन्तव्य हैं, नाम इनसे पर आत्मतत्त्व जानने योग्य है। परन्तु कामकर्मोपासना करनेवाले लोग स्थूलशरीररूप एककोशसे भिन्न कथञ्चित समझते हैं, तौभी शोक, मोह, भूख, प्यास, धर्मवाला अन्तःकरण प्राणसे भिन्न आत्मतत्त्व को नहीं समझते हैं, इससे इनमेंहीं आत्मबुद्धि करलेते हैं, और इन नवकोशोंसे पर आत्मा है, तहां ये लोग नहीं पहुँचते हैं, इसलिये अचल सुखस्वरूप नगरकी प्राप्ति इन्हें नहीं होती है, और नवकोश मेंहीं आत्मबुद्धिसे डेराभी नवकोश के बीचमेंहीं पड़ती है। अथवा आत्मस्वरूप नगरको नवकोश के आगे रहने से काम क्रोधादि रूप सिंह व्याघ्रादिसे व्याप्त संसारजङ्गल केही बीचमें मनुष्योंका डेरापरा और परता है, जन्मादि कष्ट सहना पड़ता है, तहां किसी अन्यके दोष नहीं है। यद्यपि इन्द्रिय और आनन्दमय कोशभी पूर्वकहे दशकोश से भिन्न हैं, और वेदान्त में सबको मिलाकर पांचकोश ही लिखा है तद्यपि प्रकृतमें आशय है कि कर्मइन्द्रियों के हलन चलनादि व्यापार प्राणके अधीन होते हैं, इससे ये प्राणरूप हैं। और ज्ञानेन्द्रियों के व्यापार अन्तःकरण के अधीन होते हैं, इससे अन्तःकरणसे अभिन्न हैं। और अज्ञानमय आनन्दमयकोशका ज्ञानसे साक्षात् नाश होता है, अर्थात् अज्ञानको नष्ट करताहुआही ज्ञान उत्पन्न होता है, इससे अज्ञानके कार्य उक्त दशकोशकोही ज्ञानसे जीवको पार होमा होता है। अथवा भाव यह है कि अज्ञान और इन्द्रियों में श्रेष्ठ किसी आस्तिक

को वा सकामकर्मोपासना करनेवाले को आत्मबुद्धि नहीं होती है, किन्तु शोकादि के आश्रय अन्तः करणादिमेंहीं होती है। और अत्यन्तनीचनास्तिक की यहां चर्चा नहीं है इत्यादि। और वेदान्तमें आच्छादककोशकी विवक्षासे पांचकोश कहेगये हैं उनकी सूचना प्रथम द्वितीय साखीमें की गई है। प्रकृतमें गन्तव्यमार्ग की सदृशता से उनकेही अन्दर कुछ भेददृष्टिसे दशकोश कहेगये हैं। यानी भाव यह है कि मनुष्यों को आत्मतत्त्वकी प्राप्ति ज्ञानबिना होनहीं सकती, कर्मउपासना से उर्ध्व-गति चाहते हैं सोभी दशमद्वारा से यदि उर्ध्वगति होती तो ठीक था, परन्तु चलते २ इनके पगुभी थकगया तौभी नवदरवाजों से प्राप्तहोनेयोग्य नगरही जीवों को प्राप्त हुआ, और उन नगरों केही बीचमें डेरापरा इत्यादि अथवा पूर्णविवेकादि बिना कर्मोपासनादि करते २ मनुष्यों के बुद्धि बल शरीरकी शक्ति थकगये, परन्तु वेदान्त में वर्णित नवविध संसारही नगर रहा और उसीमें मरनेपरभी डेरापरा इत्यादि, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, भोक्ता, भोग्य, भोग, कर्ता, करण, क्रिया, ये नव विध संसार हैं, वा पांचमहाभूत १ पांचज्ञानेन्द्रिय, २ पांचकर्मेन्द्रिय ३ पांचप्राण ४ अन्तःकर चतुष्टय ५ स्थूलशरीर ६ त्रिविधकर्म ७ तीनअवस्था ८ अज्ञान ९, ये नवविध संसार हैं। अथवा आठवीं और चालीसवीं आदि साखियों के भाव ये हैं कि साँईं करके परिचय कराने से साँईंरूप ब्रह्मात्मा की 'वास' नाम वासनामें भक्तजीवरूप वृक्ष सब अपने को गोयरहे, कहने के लिये चन्दन सदृश श्रेष्ठादि हुये, परन्तु ब्रह्मात्मास्वरूप मलयागिरि न हुये न होतेहैं। और ढाकपलासकेसदृश ही-नजाति भी उस वासनामें बेध गये, परमात्माकी भक्तिपरायण होगये, जिनका संस्कार कुछ अच्छा रहा वा है। परन्तु अत्यन्तशठ आत्मपरायणादि तो कहां होसकते हैं। सांईं के परिचय करानेवालों के पास वा सद्गुरु आदिके पासभी यदि वे सदा रहें तौभी उनमें साँईं की वासना भक्ति की वासना नहीं बेधती है, जैसे बाँसमें गन्ध नहीं विधता (ती) है। और जो साँईं के वासनामें अपनेको गोयेहैं, उनकोभी विवेकविज्ञान विना चलते २ नाम भक्ति करते २ पगुथका सर्वसामर्थ्य रहित हुये, परन्तु नवधा भक्तिरूप वा नवधा तुष्टिरूप नवकोशही उनके लिये नगर रहा, उसीके बीचमें डेरापरा जिससे बारम्बार वासना के अधीन जन्मलेना होता है, सो उनभक्तों कोही भेदभावना वासना रूप दोष हैं इत्यादि॥ लिखा है कि [**अज्ञानहानमात्रत्वान्मुक्तेःकर्म नकारणम्**] अज्ञान की निवृत्तिमात्रसे मुक्तिहोनेके कारण वस्तुतो मुक्ति के कर्म नहीं कारण हैं॥

५१ साखी दोहा।

झालि परे दिन अस्तये, अन्तर परिगौ सांझ।
बहुत रसिक के लागते, वेश्या रहिगौ बांझ॥ ५१॥

टीका—नगर नौकोश रहने से बीचमें डेरापरने से जो दशा जीवों की होती है उसका वर्णन करते हैं कि जैसे जङ्गल के बीचमेंही किसीको 'झालि' नाम झोली परजावे सूर्यास्त होने से

अन्धेरा होजावे, तब चोर व्याघ्रादिके भयसे वह पुरुष अत्यन्तदुःखी होता है। वैसेही उक्तजीवोंको संसार में वा उक्त कोशोंमेंही रहतेहुये झोलीपरनेपर नाम वृद्धअवस्था आनेपर, अथवा नेत्रमें अन्धकार छाजानेपर, और दिन नाम दिनकर सदृश बाहर के इन्द्रियों के अस्तहोनेपर, अर्थात् जैसे दिनकरके अस्तहोनेपर वस्तुओं को नहीं प्रकाशते हैं, वैसेही नेत्रादिसे विषयों को प्रकाशना बन्दहोनेपर, नेत्रादि मेंसे सूर्यादिके अंशो को निकलकर सूर्यादिमें मिलजानेपर, अथवा प्राणों को अस्तहोनेपर, इन जीवों के 'अन्तर' नाम अन्तःकरणमें भी साँझपड़गया, और पड़जाता है। तमो गुणादि घेरलेते हैं। बाहर के पदार्थ भूलने लगजाते हैं। तब उस अत्यन्तवृद्ध वा मरणकाल में जीवों को अत्यन्तभय और दुःख होता है। और जैसे 'बहुत रसिक' नाम जारपुरुष के साथ लागसे 'वेश्या बांझ रह गई' तथा रहजाती है नाम अन्तमें रक्षा करनेवाला पुत्र की प्राप्ति नहीं करती है। वैसेही मनुष्य सब एक सर्वात्मस्वरूप वास्तविकपतिको त्यागकर, उसके विवेक विचारादि से विमुखहोकर, गुरुआ, देवता, विषय, अन्तःकरण प्राणादिरूप बहुतरसिक से 'लाग किये' नाम इनकोहीं सत्यपति सुखद आत्माआदि मानने लगे, इससे सदा सुखस्वरूप करदेने वाले विवेक विरागरूप पुत्र से तथा ज्ञान मोक्षरूप पुत्र से रहितही रह गये और रह जाते हैं,जिससे अन्त में अत्यन्तकष्ट भोगते हैं। इसलिये अनेकों से लागको त्यागकर नवकोशसे पर आत्मवस्तु की प्राप्ति करनी चाहिये॥ योग वासिष्ठ में लिखा है कि। [**बाल्येगते कल्पितकेलिलोले मनोमृगेदारदरीषुजीर्णे। शरीरके जर्जरतांप्रयाते विदूयते केवलमेवलोकः॥ १॥ जरातुषाराभिहतांशरीरसरोजिनीं दूरतरे विमुच्य। क्षणादुगतेजीवितचञ्चरीके जनस्य संसारसरोऽवशुष्कम्॥ २॥ दैन्यदोषमयी दीर्घावर्द्धते वार्द्धकेस्पृहा। सर्वापदामेकसखी हृदिदाहप्रदायिनी॥ ३॥ अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः। प्रसक्ताःकामभोगेषुपतन्तिनरकेऽशुचौ॥४॥**] कल्पितकेलि से चंचल बाल्यावस्थाको बीतने पर, मनरूप मृगको स्त्रीरूप गुहामें जीर्णहोनेपर, शरीर को जर्जर होनेपर व्यर्थ आयु विताकर अन्तमें लोक केवल संत होता है॥१॥ जराअवस्थारूप तुषार से अभिहत शरीररूप सरोजिनी को दूरत्यागकर जीवनरूप भ्रमर को क्षणमात्र में चलदेनेपर मनुष्य को संसाररूप सर नाम सब लोक व्यवहारादिरूप तालाब शुष्क होजाते हैं॥२॥ और वृद्धदशा में भी दीनतादोषमयी दीर्घस्पृहा बढ़ती है जो सब आपत्तियों की एकसखी है और हृदय में दाहदेनेवाली है॥३॥ गीता में कहे हैं कि अनेकचित्तहोने से विभ्रान्त मोहजाल से समावृत्त कामभोग में प्रसक्तपुरुष अशुचिनरक में गिरते हैं इत्यादि॥४॥

५२ साखी दोहा।

मन कहै चलयें चलये, चित्त कहै कषजाव।

छौ मासेके हींड़ते, आध कोशपर गाव ॥ ५२ ॥

टीका—आत्मज्ञानरहित बीच में डेरादेनेवाले स्वर्गादिकी वासनायुक्त मनुष्यों की दशा का और भी वर्णन करते हैं कि अज्ञानी मनुष्यों का मन बराबर कहता है कि, ये मनुष्यो ! चलो २ इस व्यापार के लिये चलो स्वर्ग में चलो फलाने तीर्थदेशादि में चलो इत्यादि। और चित्त कहता है कि कब जावोगे, अर्थात् मन सदा संकल्प विकल्प किया करता है, और चित्त चिन्ता किया करता है कि स्वर्गादि में कब प्राप्तहोऊंगा इत्यादि, और उस विवेकरहित मन तथा चित्त के वश-वर्ती जीव भी जाने के लिये मार्ग हींड़ता [ढूंढ़ता] है, तथा अचल सुखमय ग्राम खोजता है परन्तु विवेकादि विना छौमांस के हींड़ते 'ढूंढ़ते' भी आधकोश से परे ही ग्राम को जाना रह जाता है, प्रकृत में शिशुत्व, बाल्य, यौवन, कौमार, तारुण्य, वार्द्धक्य, रूप छौअवस्था का, अथवा बाह्यमूर्ति आदि दृश्यानुविद्ध, बाह्यओंकारादि शब्दानुविद्ध, बाह्यनिर्विकल्पक, अन्तरज्योति आदि दृश्यानुविद्ध, अन्तरनादादि शब्दानुविद्ध, अन्तर निर्विकल्पक रूप छौसमाधिका। अथवा लोक प्रसिद्ध छौमहीने का, या छौशास्त्रका छौमास शब्द से ग्रहण होता है। और आधकोश शब्द से ओंकारसम्बन्धी आधीमात्र मकारका बोधहोता है, और भाव है कि ओंकार में, अ, उ, म्, ये ढाई मात्रा हैं। तहाँ अकार के विराट् विश्व अर्थ हैं, उकार के हिरण्यगर्भ तैजस अर्थ हैं, मकार के ईश्वर प्राज्ञ अर्थ है, और मनुष्य प्रायः स्थूल सूक्ष्म समष्टि व्यष्टिमें ही सत्य आनन्दरूपता आदि की बुद्धि तथा आत्मबुद्धि करते हैं, और अर्धमात्ररूप म्कारके अर्थकोभी नहींजानते हैं न प्राप्तिही कर सकते हैं, और वस्तुतो जानने योग्य चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मात्मा है, इसलिये जिस स्थूल सूक्ष्ममें स्थिर होकर छौअवस्था आदि में आनन्दस्वरूप वस्तु को खोजते हैं, वहां से अर्ध मात्रा मकारके वाच्यसेभी परे प्राप्तकरने योग्य आनन्दस्वरूप ग्राम है। इससे हे मनुष्यो ! स्थूल सूक्ष्म कारणरूप तीनों समष्टि व्यष्टि से पर सत्यब्रह्मवस्तु की प्राप्तिकरो बीचकी डेरा तथा स्वर्गादि की वासना आदिकोंको त्यागो जिससे तेरा कल्याण होवे॥ मुख्यतात्पर्य यह है कि [**नाभिष्वजेत् परं वाचा कर्मणा मनसाऽपि वा। उपेक्षकोयताहारो लब्धालब्धे समो भवेत् ॥ १ ॥ यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमपवादयेत्। समस्तयोश्चाप्युभयो र्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥ २ ॥ नप्रहृष्येतलाभेषु नालाभेषुचचिन्तयेत्। समःसर्वेषु भूतेषु सधर्मामातरिश्वनः ॥ ३ ॥ एवंस्वस्थात्मनः साधोः सर्वत्रसमदर्शिनः। षण्माषान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥४॥**] वचन कर्म मनसे अन्यका अभिष्वंग सम्बन्ध नहीं करे सब में उपेक्षा रखे मिताहार करे लब्ध अलब्ध में सम होवे जो कोई अपनी स्तुति निन्दा करे उसमें तुल्य रहे उसके शुभाशुभ का ध्यान नहीं करे लाभ में हर्ष अलाभ में चिन्ता नहीं करे वायु के सदृश सबभूतों में समभाव रखे॥ ३॥ इसप्रकार सर्वत्र समदर्शी स्वस्थात्मा साधुपुरुष यदि छौमास नित्ययुक्तरहे तो शब्दब्रह्म ओंकार उसके प्रति अपने अर्थ को अपरोक्ष करता है नाम

उसको ओंकार के अर्थका सर्वथा अपरोक्षअनुभव होजाता है ॥ इसमहाभारत के अनुसार छौमासमें ओंकारार्थ का अनुभव होना उचित है। परन्तु आश्चर्य है कि जीव सम्यक्युक्त नहीं होते हैं, इससे कितने छौमासे के हींड़नेपरभी आधकोशरूप अज्ञान से परेही नाम आच्छादितही ग्राम रहजाता है । इसलिये सम्यक्युक्त होकर आत्मविचारादि करना चाहिये । क्योंकि मन चले २ कहता है और चित्त कहता है कि कब जाँय और जीव ग्राम भी खोजते हैं इसीसे छौमास हींड़नेपर भी आधकोश से परे ग्राम है ॥ लिखा है कि [सूच्या सूत्रं यथावस्त्रे समानयति सूचकः । तद्वत्संसारसूत्रंहि तृष्णासूच्योपनीयते] सिनेवाला जैसे सूई से वस्त्रमें सूत्र की प्राप्ति कराता है। वैसेही संसाररूप सूत्र तृष्णारूप सूई से प्राप्त कराया जाता है ॥

५३ साखी दोहा ।

गृह तजि भये उदासिया, वनखण्ड तपको जाय ।
चोला थाके मारिया, बरइनि चुनि चुनि खाय ॥ ५३ ॥

टीका—जिनको प्राप्तकरने योग्यग्राम आधकोशसे परे है उनका वर्णन करते हैं कि जो लोग स्थूल, सूक्ष्म, समष्टि, व्यष्टि में आत्मादि बुद्धिकियेहैं, जिन्हें भिन्नसांईं करके परिचय करायागया है, वेलोग गृहतजकर ' उदासिया हुये ' नामहीन उदासी हुये, अर्थात् संसारको मायिक मिथ्याजानेबिना सभी समष्टिव्यष्टियों से नहीं उदासीन हुये, किन्तु वर्तमान स्त्री पुत्र गृहादिसे उदासीन हुये, इससे स्वर्ग बैकुण्ठ साकेतादिके विषयों की इच्छासे इन्द्र, कुबेर, विष्णुपदादि की प्राप्तिके लिये वनखण्डमें तपकरने को जातेहैं। और गये। और उसबनमें तपकरते २ जब 'चोला' नाम शरीररूप कुरता 'थाक गया' नाम तपकरने के लिये भी असमर्थ अत्यन्तवृद्ध होगया, तब मायारूप बरइनी इन्हें 'मारिया' नाम मारदी, और चुनचुन कर खायली। अर्थात् जिसशरीरको रखना चाहतेथे उसे नष्ट करदी और उनपुरुषों को भी अपने में लीनकरली, ज्ञानबिना ब्रह्मात्मामें वे लोगनहीं प्राप्तहुये न होतेहैं। और जैसे पान बेचनेवाली बरइनी अत्यन्तपके बिगड़ते हुये पानोंको खालेती है। तैसेही इनअज्ञानी तपस्वियों को माया अपनेमें लीनकरली सोई मानों पकेपानों के सदृश इन्हें खायली और खायलेती है। प्रथम भी कहेहैंकि (चतुरचिक्कनियहिंचुनि २ मारे) इत्यादि, भावयह हैकि संसार ही बरैहै नाम पानके खेतहै, उसमें चेतनकी सत्तासे माया मानों अनेकों शरीररूपपान पैदाकरती है। और उसे मारकर खायलेती है। और उसमें आसक्तरहनेवाले वा मायाआदि केही उपासकों को केवलवैराग्ययुक्त अज्ञानियों को भी मानों खालेती है। अपनेमें लीनकरलेती है इत्यादि । बरइनि के बेरइ, पाठभेदहै, अर्थहैकि तप कर्ता बैरचुनरकर खानेलगे तपसे शरीरथाका तो वह तपही इन्हें मारकर खागया बिचारादिबिना संसारमेंही प्राप्तकिया। (गृहीतजिभयेउदासी) इसपाठका अर्थहैकि गृहस्थाश्रमके कर्मधर्मको त्यागकर उदासीहुये इत्यादि । योग वासिष्ठादिके वचनहैंकि [आशक्तिमाहुःकर्तृत्व मकर्तुरपितद्भ-

वेत्। मौर्ख्येस्थितेहिमनसि तस्मान्मौर्ख्यंपरित्यजेत्॥ १ ॥ योन निर्वासनोनूनं सर्वधर्मपरोऽपिसः। सर्वज्ञोऽप्यभितोबद्धः पञ्जरस्थोयथाखगः ॥ २ ॥ वनेऽपिदोषाः प्रभवन्ति रागिणांगृहेपिपश्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः। अकुत्सिते कर्माणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहंतपोवनम्॥ ३ ॥ आशक्तिको कर्तृत्व कहते हैं सो मनमें मूर्खता रहनेपर अकर्ताको भी होता है, इससे मूर्खताका परित्याग करना चाहिये॥ १ ॥ जो वासनारहित नहीं है सो चाहेसब धर्मपरायणहो सबशास्त्रादिको जानताहो तो भी अभितोबद्ध है। जैसे पढ़ाहुआ पक्षी पिंजरामें रहता है॥ २ ॥ रागियों को बनमें भी दोषहोते हैं और गृहमें भी पांचों इन्द्रियका निग्रहरूप तपहोता है जो अकुत्सितशुभकर्म में प्रवृत्तहोता है उसरागरहितपुरुषके लिये गृहभी तपोवनही है॥ ३ ॥

५४ साखी दोहा।

राम नाम जिन चीन्हिया, झीने पिंजर तासु।
नयन न आवै निन्दरी, अङ्ग न चढ़िया मांसु॥ ५४॥

टीका—साँईं करके परिचय कराने वालों से, उर्ध्वबाहुरहना जलशयनकरना, पञ्चाग्नितापना, अधोमुखझूलना, आदिरूप, कठिन तामसतप, उससाँईं से मिलने के लिये जो करते हैं, और विवेकविचारादि नहीं करतेहैं, उनके अज्ञानवश वर्तमान कष्टोंका साहेब वर्णन करते हैं कि जिन मनुष्यों ने रामनामको चीन्हा है कि हमारेस्वरूप से अत्यन्तभिन्न साकेत वैकुण्ठादिमें रामरहते हैं, नाम परमेश्वर रहते हैं, सो इन तपोंसे मिलते हैं. इससे उक्ततपों का अनुष्ठान जङ्गलादि में जायकर वे लोग करतेहैं। 'तासु' नाम उनपुरुषों के शरीररूप पिंजरा 'झीने' नाम कृशहोजातेहैं और चिन्तासे नेत्रों में 'निन्दरी' नाम निद्रा नहीं आती है, और अङ्गो में माँस भी नहीं चढ़ताहै, क्योंकि तत्वज्ञान बिना मानसदुःखसे व्याप्तही रहते हैं, और शारीरिकदुःखसे भी पीडित होते हैं, इससे कृशबने रहते हैं। शरीरको पिंजरकहने का भाव यह है कि जैसे तोता आदि पिंजरा में बन्धा रहता है, तैसे ये लोग तपकरनेपर भी अभिमानसे सूक्ष्म. लोहपिंजरसदृश शरीरमें बन्धेरहते हैं, इससे सर्वात्मस्वरूप रामको जानकर सबअभिमान कामादिको त्यागनेसेही जीव निर्बन्धसुखी होता है सोई मनुष्यको करना चाहिये। अथवा अज्ञानी तपस्वी माया के वशमें पड़ते हैं, यह कहकर ज्ञानियोंकी मुक्तिका वर्णनकरते हैं कि जिन महात्माओंने राम नामवाली वस्तुको आत्मास्वरूपसे चीन्हा है, अपरोक्षअनुभव किया है, उनके शरीररूप पिंजर झीनेहोजाते हैं, अर्थात् शरीरविषयक अभिमान आसक्ति अत्यन्तनष्टहोजाते हैं, इससे उन के तीनों शरीरअत्यन्तनाशके लिये उन्मुखहोजाते हैं। और बुद्धिरूप नेत्रमें मोहादिरूप निद्रानहीं आती है। तथा उनके आत्मस्वरूप अङ्गपर मांसनहीं चढ़ता है। अर्थात् वे लोग चेतनस्वरूप अपना

समझते हैं। मांसादिमय शरीररूप था इसके सङ्गवाला अपनेको नहीं समझते हैं इत्यादि॥ लिखा है कि [अस्यदेवाधिदेवस्य परस्यपरमात्मनः । ज्ञानादेवपरा सिद्धि नैत्वनुष्ठानदुःखतः ॥ १ ॥ रागद्वेषतमः क्रोध मद मात्सर्यवर्जनम् । बिनारामतपोदानं क्लेश एव न वास्तवम् ॥ २ ॥ स्वपौरुषप्रयत्नेन विवेकेन विकाशिना । स देवो ज्ञायते राम न तपःस्नानकर्मभिः] देवोंका अधिदेव सबसे पर इसपरमात्माका ज्ञानसेही परासिद्धि होती है, अनुष्ठानजन्य दुःखसे नहींहोती है ॥ १ ॥ हेराम ! रागद्वेषादिको त्यागेविना तपदानभी क्लेशरूपही हैं वास्तविक नहीं हैं॥ २ ॥ पुरुषार्थरूप,प्रयत्नसे प्रकाशशील विवेकसे वह सर्वात्मस्वरूप देवजाना जाता है तप स्नान कर्मसे नहीं जाना जाता है। [देह सुखाय पिञ्जर किये, धरे रैन दिन ध्यान । तुलसी मिटै न वासना, बिना विचारे ज्ञान] ॥

५५ साखी दोहा।

जो जन भींगे राम रस, विकसित कबहुं न रूख।
अनुभव भाव न दरशये, ते नल दुःख न सुख ॥ ५५ ॥

टीका। फिरभी उन अज्ञानी तपस्वियोंका वर्णन करते हैं कि जो पुरुष अपनास्वरूपसे भिन्न रामरूपरसमें भींजे हैं वा भिन्नरामके रसमें नाम उपदेश आनन्द चिन्तनादिमें भींजे हैं, सो पुरुष पतिके विरहसे युक्त स्त्रीके सदृश कबहुँ 'विकसितनहीं होते हैं' विरह, व्यथा, चिन्तासे व्याप्त रहनेसे वस्तुतः कभी पूर्णआनन्द युक्त नहीं होते हैं, इससे प्रसन्न स्वच्छहृदय उनके नहीं रहता है, किन्तु वे लोग रूख रहते हैं नाम दुःखी कुम्हिलाया हुआ कमलके सदृश खिन्नहृदयवाले बनेरहते हैं, क्योंकि सत्यानन्दकी प्राप्तिके हेतुरूप आत्मानुभवके 'भाव' नाम सत्ता उनमें नहीं दर्शता है, आत्मानुभवके कोईचीन्ह नहीं दिखता है , और अनुभवका अभावसेही 'तेनल' नाम उनमनुष्योंको दुःखकीही प्राप्ति होती है, और 'न सुख' अर्थात् सुखकी प्राप्ति नहीं होती है, इसीसे कबही विकसित नहीं रहते हैं। अथवा ज्ञानीकाही वर्णन करते हैंकि जो जन सर्वात्मस्वरूप रामरूपरसमें नाम आनन्दमें भींगे हैं, उसीरूपसे स्थिर हैं सो सदा विकसित रहते हैं। और कभी क्रोधादिके वश रूख नहीं होते हैं। अथवा विषयादिकी प्राप्ति वा बियोगसे न विकसित होते हैं न रूख होते हैं, किन्तु संयोगादिसे हर्षशोकादिको नहींप्राप्तहोकर एकरस स्थिर रहने हैं । और उनपुरुषोंमें सत्यअसत्यादिके विवेकरूप तथा आत्मज्ञानरूप अनुभवका सदाभाव रहता है, इससे अनात्मवस्तु उन्हें नहीं दरशये नाम सत्य नहीं दिखती हैं, या अनुभवसे कोईभाव नाम अनात्मपदार्थ उन्हेंसत्य नहीं दिखाता है, इससे उन्हें कभी दुःख नहीं होता है, किन्तु केवल सुखस्वरूप वे लोग रहने हैं। या

अनुभवका भावसे उनमनुष्योंको कभी दुःख नहीं दर्शता है। और न विषय जन्य सुखही दर्शता है। वैषयिक सुखदुःख दोनोंसे वे लोग असङ्ग रहते हैं, क्योंकि सांसारिक सुखदुःखका सङ्ग अज्ञानजन्यभ्रमसे होता है और ज्ञानी भ्रमरहित होते हैं। लिखा है कि [**द्वितीयाद्वैभयंभवति ॥ १ ॥ दृश्यंनास्तीतिबोधेन मनसो दृश्यमर्जनम्। सम्पन्नं चेत्तदुत्पन्ना परानिर्वाणानिर्वृत्तिः ॥ २ ॥ आपतत्सु यथाकालं सुखदुःखेष्वनारतः। न हृष्यतिग्लायति यः स जीवन्मुक्तउच्यते ॥ ३ ॥ हर्षाऽऽमर्षभयक्रोधकामकार्पण्यदृष्टिभिः। न परामृश्यतेयोऽन्तः सजीवन्मुक्त उच्यते ॥ ४ ॥**] द्वितीयभावसे अवश्यभय होता है ॥ १ ॥ और सत्यदृश्य नहीं है इसबोधसे मनसम्बन्धी दृश्यका मार्जन निवारण जब होजाता है तब परमुक्ति होजाती है ॥ २ ॥ यथाकाल सुखदुःखको प्राप्त होनेपरभी जो पुरुष हर्ष वा ग्लानिको नहीं प्राप्तहोते हैं सोईपुरुष जीवन्मुक्तकहे जाते हैं ॥ ३ हर्ष, आमर्ष, भय, क्रोध, काम, कृपणताकी दृष्टिसे जो भीतरमें नहींपरामृष्ट होता है नाम इनदृष्टियोंसे जो असङ्ग रहता है उसही जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ४ ॥

५६ साखी दोहा।

जेहि राहे पण्डित गये, वोही गया वहीर।
ऊँची घाटी रामकी, तिहि चढ़ि रहा कबीर ॥ ५६ ॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि अनुभवकी प्राप्तिबिना तथा साँई करके परिचय करने कराने से शास्त्रवेत्ता पण्डित लोग जिस अनुभवरहित कामलोभादि युक्त कर्मादि मार्गसे गये, और जातेहैं। लोकादि में आसक्त होतेहैं। अनेकोवेष वनाते हैं इत्यादि'वोही' रास्ते से सब 'वहीर' भी गये,अर्थात् श्रवणसक्तिरहित बहिरे पुरुष वा पशुपाल अहीर भी उसीमार्ग से गये और जायरहे हैं, इससे ये सब कबीर लोग स्वर्गवैकुण्ठादिको रामको ऊँचीघाटी मानकर अपने २ चित्तसे 'तिहिं' नाम उसी ऊँचीघाटीपर चढ़कर स्थिरहुये और होते हैं। अथवा कबीर साहेब कहते हैं कि ये लोग साकेत वैकुण्ठादिरूप ऊँचीघाटीमें संकल्पसे चढ़कर स्थिरहुए हैं। ऊंचीघाटी कहनेका भाव यह है कि वह भी संसारतालाब के ही उच्चीघाटी है, इसलिये संसारसे बाहर नहीं है विवेकवारिके समीप है, परन्तु स्वयं विवेकवारिरहित है इत्यादि। और जहां पण्डित ही ऊंचीघाटीपर चढ़ रहे हैं तहां उनके शिष्योंकी दशा क्या कहनी है। अथवा आश्चर्य है कि जिस पतनके स्थानरूप भयानक स्थानमें मूर्ख जाता है वहां ही अन्तमें गिरनेके लिये पण्डित भी जाते हैं इत्यादि तात्पर्य हैं। अथवा साहेब कहते हैं कि जिस हीन दुःखमय संसार मार्गसे अविवेकी पण्डित गये, उसी मार्गसे सतउपदेशका श्रवणसे रहित बहिरा गया नाम उन पण्डितोंके शिष्य भी उसी मार्गसे गया जिसको साँई करके पण्डितलोग परिचय कराये थे। परन्तु साहेब कहते हैं कि मैं उनके सङ्ग मार्गको त्यागकर रामकी जो ऊँचीघाटी है उसीपर चढ़कर स्थिरहोरहा हूँ, अर्थात् आत्मारामकी

प्राप्तिके साधनरूप जो विवेक, विराग, विज्ञान, शमदमादि हैं, सोई रामकी ऊँचीघाटी हैं उनपर चढ़कर मैं स्थिरहूँ, जहां संसारसमुद्रके जलका गम नहीं है वहाँ कभी नहीं पहुँच सकता है। हे मनुष्यो ! सबमहात्मा इसीमार्गमें प्राप्त होते हैं और सबदुःखसे रहित होजाते हैं, इसलिये तुम भी इसमार्गमें प्राप्त होकर सुखी होवो।

५७ साखी दोहा।

ये कबीर तैं उतरि रहु, सम्मल परो न साथ।
सम्मल घटै पगु थकये, जीव बिराने हाथ ॥ ५७ ॥

टीका। स्वर्गादिरूप ऊँचीघाटीमें मन लगायेहुये, और वहाँ अक्षयसुखादि चाहनेवाले जीवोंके प्रति साहेब उपदेश देते हैं कि 'ये कबीर' नाम हेजीवो! 'तैं उतरिरहु' नाम तुम उस ऊँचीघाटीसे उतरकर स्थिर होवो, अर्थात् आत्मविचारादिमें स्थिर होवो, और स्वर्गादिके इच्छा आदि को सर्वथा त्यागदो, तुम अक्षयसुख चाहते हो, परन्तु अक्षयसुखकी प्राप्तिके लिये विवेक विरागादिरूप सतधर्मरूप अक्षयसम्मल नाम वाटखर्च तुझेसाथमें नहीं परा है नाम नहीं प्राप्तहुआ है। कामकर्म उपासनारूप जो सम्मल हैं सो नश्वर हैं, इससे हे जीवो! इनसम्मलोंके घटनेपर, और कामकर्मोपासना आदिके सामर्थ्य अधिकारादिरूप पगुको थकनेपर तुम 'विराने हाथ' नाम परवश दुःखी होवोगे, इसलिये ऊँचीघाटसे मान बड़ाई अहंकारादिसे उतरकर अक्षयसम्मल का सम्पादन करो अर्थात् विचारादिसे ज्ञानकी प्राप्तिकरके मुक्तहोवो, जिससे कभी परवश नहींहोनाहोवे। अथवा ऊँचीघाटीसे उतररहो 'परो' नाम उत्कृष्ट ज्ञानरूप वा आत्मरूप सम्मल जो अक्षयसुखकी-प्राप्ति का हेतुहै वा सुखरूप है, सो तुझे नहींप्राप्तहुआहै, यानी यह सम्मलतो साथहीहै नाम अपनारूपहीहै 'पर' नाम भिन्न किसीदेशादिमें नहींहै, इससे भिन्न सम्मलघटतेहैं, और सामर्थ्यादिरूप पगुभी थकते हैं, तब सञ्चितअशुभकर्म बश जीव परबश होजाते हैं, इसलिये परात्मारूप सम्मलकी प्राप्तिकरो। अथवा उपदेश देते हैं कि हे जीवो! जिस संसारमार्ग में तुम जारहेहो उससे उतरकर ऊँचा ज्ञान और मोक्षमार्गमें रहो, उस संसारमार्गमें तुम अनादि कालसेहो, परन्तु अभी तक तुझे सुखद सम्मल अर्थात् सत्य अक्षयसुखकी सामग्री नहीं प्राप्तहुई है। हे मनुष्यो! यदि ऐसा नहीं करोगे तो मानवशरीर के हेतु कर्मों के घटनेपर नाम इसवाटखर्च के नष्टहोनेपर, और विचार सतकर्मके सामर्थ्यरूप पगुके थकनेपर विराने के हाथमें परोगे, इससे अवश्य आत्मविचारादिकरो। यानी ऊँचीसे ऊँची निर्विकल्पकसमाधि आदिमें सदा स्थिरहोने के लिये उन्मुख अपनामनसे कहते हैं कि ये कबीर! तूँ परोपकारके लिये थोराउतरिरहु इनजीवों को परसम्मल साथमें नहीं है, इन्हें सम्मलप्राप्तकरावो नहींतो तुच्छसम्मल घटने आदि पर सज्जनजिज्ञासु भी परबश होवेंगे इत्यादि, गुरुमात्र विषयक तात्पर्य है॥ लिखा है कि [अज्ञोजन्तुरनीशोऽयमा-

त्मनःसुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितोगच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा] अज्ञानीजीव अपनेसुख-दुःखमें असमर्थ हैं, कर्मानुसार ईश्वर की प्रेरणासे स्वर्ग वा श्वभ्रमें प्राप्त होते हैं॥

५८ साखी दोहा।

काटे आम न मौलसी, फाटे जुटे न कान।
गोरख पारस परस बिनु, काहेको नुकसान ॥ ५८ ॥

टीका—पूर्वकही रीतिसे लोक परलोक स्वर्गादि के सबपदार्थादिविषयक वैराग्यविचारादि का और आत्मवस्तु का उपदेश करके इसको नहीं माननेवाले, इन्द्रियपरायण, या इन्द्रियों के रक्षक सामान्यजीवों के प्रति साहेब कहते हैं कि हे गोरख! नाम भोगसे इन्द्रियों को सन्तुष्टकरनेवाले! अथवा अपनी सत्तासे उनकी प्रवृत्ति आदिको सिद्ध करनेवाले हे जीवो! जिस आमवस्तु व्यवहारादिको महात्मालोग काटते हैं नाम निषेधकरते हैं उनमें नहीं मौलतेहो उन्हें तुम नहींत्यागते हो किन्तु उन साधारणवस्तुव्यवहारादिकों में तुम आसक्तहोतेहो। और जैसे फटाहुआ कान नहीं जुटता है तैसे तेरा कान जिस सतज्ञानमार्गसे फटा है उसमें नहीं जुटता है। अर्थात् सतउपदेश नहींसुनतेहो सुनकरभी उसका धारण नहीं करतेहो,इससे आत्मवस्तुरूप 'पारससे तुझे परस'न म सम्बन्ध स्पर्श नहीं होता है जिससे तेरा बहुत नुकसान होता है। तहाँ उसके 'परस बिनु काहेको' नाम किसप्रयोजन के लिये 'नुकसान सहतेहो, अर्थात् व्यर्थही मोहवश मोक्षकी अप्राप्तिरूप हानि सहरहेहो, जिस लौकिक पारलौकि विषयसुखके लिये संसारसे नहींमौलतेहो, जिससे कान फटेहैं उसमें नहीं जुटतेहो, सो सब लोकपरलोक विषयसुखादि मिथ्या माया संकल्पमात्र हैं, इससे निष्प्रयोजनही परमतत्त्व से विमुखहुयेहो, अब भी इसविमुखता को त्यागो। अथवा किसी लोकादिविशेषकी इच्छा से रामादिको भजनेवालों के प्रति उपदेशदेकर अत्यन्त तामसहिंसादि युक्त कनफटों के प्रति कहते हैं कि हे गोरख! नाम गोरखमताऽनुयायियो! कानकाटने से संसार के अनात्मवस्तुओं से मौल नहींसकतेहो नाम छूटनहीं सकतेहो, और जिस सतवस्तु से तेरा कानफटा है उसमें जुटता भी नहीं है नाम उसके श्रवणादिमें नहीं प्रवृत्त होता है, तो आत्मज्ञानविचारादिरूप पारस से परसबिना व्यर्थही कानकटाकर 'नुकसान' सहतेहो। वस्तुतो अर्थ यह है कि हे गोरख नाम जीवो! वा गोरखमतानुयायियो! जैसे काटाहुआ आम का वृक्ष नहीं मौलता है नाम नहीं फुलाता है, उसमें मौर।नाम मोजर नहीं लगता है तैसेही फटाहुआ कान सतमार्गमें नहीं जुटसकता है, तो क्यों व्यर्थही नुकसान सहतेहो। अथवा जैसे काटाहुआ आमनहीं मौरताहै, तैसे तुम कल्याणरूप फलके लिये नहीं मौरतेहो शुभविचारादि पुष्पयुक्त नहींहोतेहो, और जैसे फटाहुआ कान नहीं जुटता है तैसे सतविचार सतवस्तु में नहीं जुटतेहो, और पारस परसेबिना व्यर्थ क्यों नुकसान होतेहो।

५९ साखी दोहा ।

पारस रूपी जीवहै, लोह रूप संसार ।

पारस ते पारस भया, परस भया टकसार ॥ ५९ ॥

टीका—जिज्ञसाहुई कि जिस पारसका परसबिना नुकसान होताहै सो पारस क्या है? तब साहेब कहते हैं कि जाग्रतस्वरूप छठीं साक्षीरूपी जीवही पारसरूप हैं । और पूर्ववर्णित नवविध संसार लोहरूप है । या बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरादिरूप संसार लोहरूप हैं । और जैसे पारसपत्थर के सम्बन्धसे लोहा सुवर्ण होजाता है, तैसेही सच्चिदानन्दसाक्षीकी छायाआदिसे सबसंसार सत्यादि भासते हैं, इसीसे लोहरूप हैं । और उस जीवस्वरूपी पारस का 'परससे' नाम उसका विवेक पूर्वक साक्षात्कारसे विवेकी जीव पारसही होगया नाम उपाधी आदि रहित साक्षीचेतनरूप होगया और होजाता है । इससे वह 'परस' नाम साक्षात् अनुभवही टकसार हुआ नाम टकसालघरसदृश हुआ और है । अर्थात् जहांरुपयाआदि बनायेजाते हैं उसस्थान को टकसाल कहते हैं, वहाँ सांचेभी रहते हैं जिसमें द्रव्यदेनेसेरुपये आदिबनते हैं । प्रकृतमें संसारी जीवरूपद्रव्यको साक्षीरूप सेस्थिर करनेवाले टकसालादि सांचा आदि रूप विज्ञानविवेकरूप परसही हैं । इनसेहीजीवमुक्त होते हैं । अथवा ज्ञानीमहात्मा रूप ब्रह्मात्मस्वरूप,पारसरूपजीव हैं । और संसार नाम अज्ञानी संसारी जीव लोहरूप हैं । तहां यद्यपि लोक में पारस अपनेसंसर्ग से लोहेको सुवर्णही बनाता है पारस नही बनाता है तथापि महात्मागण ऐसे अलौकिक पारस हैं कि जिनके परस से अज्ञानी जीव भी ज्ञानी, मुक्तरूप पारस होगये, और होजाते हैं । क्योंकि उन ज्ञानियों के सङ्ग उपदेशादिरूप जो परस है सो टकसाररूप संसार में हुआ है इससे महात्मा अपने सदृश नित्य मुक्त जीवको करदेते हैं । इसलिये हेमनुष्यो ! उनके सङ्गकरो उपदेश सुनो और संसार से नाता सम्बन्धतोरो जिससे तेरा कल्याण होवे । पूर्वसाखी में तथा इससाखी में, परस, के, परख, पाठ भेद है, उसका विवेक ज्ञान अर्थ है ॥ लिखा है कि (**शुद्धचैतन्यरूपोयं पुरुषःपुरुषार्थतः । प्रकृत्यन्तरमज्ञात्वा मोहात्संसारमास्थितः ॥ १ ॥ ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलंपरमार्थतः । तदेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥ २ ॥**) यह पुरुष शुद्ध चेतन रूप है परन्तु पुरुषार्थ करके प्रकृति से भेद नहीं जानने से मोह से संसार में प्राप्त है ॥ १ ॥ परमार्थसे ज्ञानस्वरूप अत्यन्तनिर्मल है सोई भ्रान्ति ज्ञानसे अर्थरूपसे स्थिर है ॥ २ ॥

६० साखी दोहा ।

प्रेम पाट का चोलना, पहिरि कबीरा नांच ।

पानप दीन्हों ताहिको, तन मन बोले सांच ॥ ६० ॥

टीका। और भी साहेब कहते हैं कि यद्यपि जीवका स्वरूपही पारसरूप है वा ज्ञानी महात्मा पारसरूप हैं तथापि 'कबीरा' नाम अज्ञानी जीवसब अपनास्वरूप तथा गुरुसे भिन्नही को पारसरूप कल्पनाकरके और उन अनात्मवस्तुओं मेंही प्रेम करते हैं और उस प्रेमरूप पाट के चोलना को अपने अन्तः करणरूप शरीरमें पहिनकर नाँचते हैं, नाम उस अनात्मविषयक प्रेमके चोलना से युक्तहोकर अनेकों योनि शरीर देशदशादि में भ्रमण करते हैं। या अनात्मवस्तुविषयक प्रेम पट्से प्राप्तहुआ शरीररूप चोलना पहिरकर जीव इससंसार में नाँचते हैं, परन्तु ज्ञानी महात्मा लोग 'ताहि को' नाम उसी को 'पानप' दिये हैं नाम अपना आनन्द से दूसरे को आनन्दित करने की योग्यता वा इज्जत बड़ाई ज्ञानादि उसीको दिये हैं और देते हैं, कि जो पुरुष अनात्म-विषयक प्रेमको त्यागकर तन और मनसे सांचहीं बोलता है। अर्थात् सत्यवस्तुको जानने के लिये जो शरीर से गुरु सेवा श्रेष्ठव्यवहार आचारका अनुष्ठान करता है, और मनसे सत्यवस्तुका चिन्तन करता है, बचन से उसी सत्यात्मा का प्रश्न बार्ता करता है, व्यवहार में भी जो सर्वथा सत्य, हित, मधुर, भाषण करता है, उसीको महात्मा पानप देते हैं। सोई पुरुष पानप योग्य है इत्यादि। अथवा उपदेश देते हैं कि 'हेकबीरा!' सत्यात्मरूप वा ज्ञानी गुरुरूप उक्तपारसविष-यक प्रेमरूप पटका चोला पहिरकर नाँचो नाम लोक लज्जा आदिको त्यागकर सत्सङ्ग, सतमार्ग, सतबिचार, में बिचरो, क्योंकि उसीको महात्मालोग 'पानप' नाम गुरुपदादि दिये हैं, जो सर्वथा सांच बोलता है। और लोक लज्जा आदिका त्यागपूर्वक अभय होकर सत्य मार्ग में विचरता है। और अन्यको भी सत्यमार्ग प्राप्त कराता है। लिखा है कि (**कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायतेतत्रतत्र ॥ १ ॥ आस्थामात्रमनन्तानां दुःखानामालयं विदुः। अनास्थामात्रमभितः सुखानामालयंविदुः ॥ २ ॥ देहसत्तामनादृत्य यथा-भूतार्थदर्शनात्। लज्जांभयंविषादेर्ष्ये सुखंदुःखंजयेत्समम् ॥ ३ ॥**)

जो पुरुष विषयों के गुणादिका चिन्तन करताहुआ उनकाम्य विषयों की कामना करता है सो पुरुष काम से उस उस योनिमें जन्म लेता है ॥ १ ॥ केवल आसक्तिही अनन्तदुःखों का कारण है। और अनास्थामात्र सर्वत्र सुखके आश्रय है इसप्रकार महातम लोग कहते हैं और जानते हैं ॥ २ ॥ यथार्थज्ञान से देहकी सत्ता का अनादर करके लज्जा, भय, विषाद, ईर्ष्या, सुख, दुःख की सम भाव से जीतना चाहिये ॥ ३ ॥

६१ साखी दोहा।

दर्पण केरी गुफामें, श्वनहा पैठा धाय।
देखी प्रतिमा आपनी, भूंकि भूंकि मरिजाय ॥ ६१ ॥

टीका। और भी साहब कहते हैं कि जैसे दर्पणके गुफामें 'श्वनहा' नाम कुत्ता दौरकर

पैठजाता है। और उसदर्पणमें 'अपनी प्रतिमा' नाम प्रतिबिम्बको देखकर उसकी प्राप्त्यर्थ भखादिके लिये भूंक भूंक कर मरजाता है दुःखी होता है, तैसे मनुष्यादिभी दर्पणकी गुफा सदृश संसार और शरीरमें अज्ञानादिवश कामकर्मादि करके दौरकर पैठे हैं। और जो विषयादिमें आनन्द भासते हैं सो सब अपने प्रतिबिम्ब हैं। तथा जो भिन्न राम देवादि भासते हैं सो भी उपाधि विशेषमें अपनेही प्रतिबिम्ब हैं, तौभी उन आनन्दादिकों को अपने स्वरूपसे अत्यन्त भिन्नमानकर उनकी प्राप्ति आदिके लिये जीवसब भूंक भूंककर मरजाते हैं, फिर जन्ममरणको प्राप्त होते हैं। इसलिये हे सज्जनो! उनसभोंको अपना प्रतिबिम्बरूप जानकर अनात्मविषयके प्रेमको त्यागो। लिखा है कि [**अनादिसम्बन्धवत्या क्षेत्रज्ञोऽयमविद्यया। युक्तःपश्यतिभेदेन ब्रह्म तत्त्वात्मनिस्थितम्॥ १॥ पश्यत्यात्मानमन्यच्च यावद्वैपरमात्मनः। तावत्संभ्राम्यते जन्तु र्मोहितोनिजकर्मणा ॥२॥**] यह जीवरूप क्षेत्रज्ञ अनादि सम्बन्धवाली मायासे युक्तहोकर ब्रह्मको भिन्न देखता है और सो ब्रह्म आत्माहीमें स्थिर है॥ १॥ जबतक अपनेको परमात्मासे अन्य देखता है तबतक प्राणी अपना कर्मसे मोहितहोकर संसारमें भ्रमता है॥ २॥

६२ साखी छन्द हरिपद।

ज्यों दर्पण प्रतिबिम्ब देखिये, आप दुनों महँसोय।
या तत्त्वहीं से वा तत्त्वहै, पुनि याही है सोय॥ ६२॥

टीका। और साहब कहते हैं कि जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है। तहां 'सोय' नाम वह शरीरी आप एकहोते भी दोनों स्थानमें दीख पड़ता है। अर्थात् दर्पणमें और उससे भिन्न देशमें एकही मनुष्यादिभासते हैं। भाव यहहै कि अन्तःकरणकी वृत्तिसहित नेत्रकी ज्योतिरूप रश्मि दर्पणादि स्वच्छ द्रव्यपर जाती है, और वहां जाकर उसद्रव्यसे प्रतिहत होकर उससे लौटती है, और ग्रीवादिमें स्थिरमुखआदिकोही देखतीहै दर्पणादिमें नहीं देखती है, परन्तु उपाधिकी समीपतारूप दोषसे उपाधिमें प्रतीति होती है। और वस्तुतो मुखादिरूपबिम्बसे प्रतिबिम्बभिन्न भी नहीं रहते हैं, किन्तु एकही मुखादिमें दर्पणादिरूप उपाधिसे बिम्बत्व प्रतिबिम्बत्वरूप दोधर्म भासते हैं सो औपाधिक होनेसे दोनों मिथ्या हैं, क्योंकि उपाधिके साथ सम्बन्धका अभावकालमें मुखादिमात्रही भासताहै। तैसेही 'या तत्त्वहीसे' नाम सर्वात्मस्वरूप अपरोक्षसाक्षी चेतनसेही 'वा तत्त्व है' नाम विषय रूप उपाधिमें आनन्द है। तथा चिदानन्द आत्मसे अनात्मदेव रामादिके अन्तःकरणादिमें चेतनता और आनन्द है। अर्थात् सर्वात्मस्वरूप आत्मारामसेही अनेकोंदेवरामविषयादिमें भी आनन्द भासते हैं। और जैसे दर्पणादिका अभावसे मुखादिके प्रतिबिम्बोंका अभाव होजाता है, तैसेही विषयअन्तःकरणादिरूप उपाधियोंके अभावसे अन्य आनन्दादिका अभाव होजाता है, इससे ये सब मिथ्या हैं। इसीसे या तत्त्वसे जो वा तत्त्व हुये हैं सो सब पुनि याही स्वरूप हैं और होते हैं।

अर्थात् ज्ञानकालमें सब आत्मस्वरूपही भासते हैं। और उपाधिकी विलयदशामें सब उपाधिगत आनन्द आत्मवस्तु मात्रही रह जाते हैं। और विषयादिकी इच्छा आदिसे चित्तमें क्षोभहोनेपर आनन्दस्वरूपभी आत्मा क्षोभयुक्तदर्पण सदृश उसचितमें आनन्दरूपसे नहीं प्रतिबिम्बित होता है, इससे आत्मामें दुःखादि भासते हैं। और विषयादि के लाभादिसे चित्तकाक्षोभ नष्ट होजाता है, तब आत्मानन्दही अभिव्यक्त होता है। परन्तु विवेक बिना भ्रमसे विषयमें आनन्द भासता है। और आत्मवस्तुमें उपाधियोगसे देवत्वादि भी भासते हैं, इससे आत्मानन्दसे भिन्नआनन्दादि सब दर्पणके प्रतिबिम्ब सदृश हैं। और उपाधि सबभी आत्मामें कल्पितमायासे कल्पित हैं, इससे उपाधिरूप वा तत्त्वभी ज्ञानदशामें फिर आत्मस्वरूपही होजाते हैं। उनकी पृथक सत्ता नहीं रह जातीहै॥ लिखा है कि [**रसः सारोऽमृतंब्रह्म आनन्दोह्लादउच्यते। निःसारंतेन सारेण सारवल्लक्ष्यतेजगत्॥ १॥ एकस्तु सूर्योबहुधा जलाधारेषुदृश्यते। अभातिपरमात्माच सर्वोपाधिषुसंस्थितः॥ २॥** रस सार अमृत ब्रह्म आनन्द ह्लाद सत्यात्माको कहते हैं। साररहित संसारभी उसीसार से सारसदृश दीखता है॥ १॥ जैसे एकही सूर्य जलाधारमें (जल धार में) बहुत दीखता है, तैसेही सबउपाधिमें स्थिर यह परमात्मा भासता है॥ २॥

६३ साखी दोहा।

जो बन सायर मूझते, रसिया लाल कराहिं।
अब कबीर पाँजी परी, पन्थी आवहिं जाहिं॥ ६३॥

टीका। सब अनात्मपदार्थ कल्पित हैं। और अनात्मवस्तुमें आनन्दादि आत्मानन्दसे ही भासते हैं, तो भी विवेकादि रहित जो विषयी उनमें आसक्त होते हैं उन्हें भिन्न सत्यादि मानते हैं। उनके दशाओंका वर्णन करते हैं कि आत्मवस्तुकी प्राप्तिके मार्गको भुलानेवाला जो संसार रूप जङ्गल है नाम जीवोंको भूलाने के स्थानरूप जौनसंसारबन है, और इससंसार बनमें वर्तमान अज्ञानियोंको डूबानेवाले जो स्त्री पुत्र धनादिरूप दुर्गम 'सायर' नाम समुद्र हैं, सो बन तथा सायर 'मूझते' नाम मेरेस्वरूपसेही हुयेहैं। अर्थात् ये सब आत्मवस्तुके सत्ताप्रकाशसहित जीवोंके कर्मसहित माया से हुये हैं और दुःखद हैं, तौभी अज्ञानी 'रसिया' लोग नाम रसिक विषयी जीव सब उनहीं दुःखदमायिक वस्तुओंको 'लालकराहिं' नाम प्रिय करते हैं। अथवा लाल नामक रत्नके सदृश श्रेष्ठ अपना सुखकल्याणके लिये प्राप्त करनेयोग्य समझते हैं, और अनेको साधनोंसे इन बनसायरोंकीही प्राप्ति करते हैं, तहाँ साहेब कहते हैं कि इन जीवोंको इन्हें लालकरने २ 'अबपाँजी' नाम आदतपड़ीहुई है, अर्थात् यही सबजीवोंकी परिपाटी होगईहै वास्तविक लालका कोई खोजनहीं करता है। इसीसे अब नाम अभी भी जीव सब उन विषयरसादिकों की इच्छासे संसारजङ्गलके 'पन्थी' नाम पथिक होकर बारबार आते जाते हैं। और अपने कल्याणके लिये आत्मविचारादि नहीं करते हैं॥

६४ साखी दोहा।

दुहरा तो नूतन भया, पदहिं न चीन्है कोय।
जो यह पदहिं विवेकिया, छत्रधनी है सोय॥ ६४॥

टीका। साहेब कहते हैं कि जैसे कोई नवीन 'दुहरा' नाम दोहा की रचना करे जिसके दो चार अर्थ भासते होवें, कविके तात्पर्य के विषय एकही अर्थ होवे, तहां उस कविके पदको कोई विरलही समझता है। जो समझता है सो श्रेष्ठ बुद्धिमान् समझा जाता है। दोहाछन्द का प्रकरण से और वक्ष्यमाण अर्थकेलिये दुहरा कहागया है। दृष्टान्तका भावहै कि कोईछन्द वा वाक्य गूढ़रीतिसे कहेजातेहैं तो उनके पदार्थवाक्यार्थ को कोई शीघ्रनहींबूझता है। तैसेही जीवों के कारणशरीर तो अनादि हैं, परन्तु पाँजीपरनेसे अनादि कर्मवासना के अधीन स्थूल सूक्ष्मशरीररूप 'दुहरा' नाम दोनों भाग 'नूतन' नाम नवीन हुये हैं और होते हैं। परन्तु इनके 'पद' नाम आश्रय को वा कारणको कोई नहीं चीन्हता है, इसीसे जो बनमायर अपनेही से हुये हैं उन्हें लाल मानकर सब आते जाते हैं। और परवश रहते हैं। या जो नूतनदोहरा हुये हैं उन्हें पदमात्रही नाम वाचारम्भणमात्रही कोई नहीं चीन्हते हैं, इसीसे इन विषयक आसक्तिआदि से पन्थीजीव आते जाते हैं। परन्तु जो कोई पुरुष इसआत्मारूप पदका और शरीर का विवेक किया है, नाम अविद्या माया से सबका कारण तथा अधिष्ठानरूप आत्माको और मिथ्याशरीर को जो विवेकपूर्वक जानता है, सोई पुरुष छत्रधनी है, नाम स्वतंत्र राजा सुखी है। क्षत्रधारी राजा के सदृश सबसे श्रेष्ठ है और मान्य है। यद्यपि सूक्ष्मशरीर सृष्टिके आदिकालमें उत्पन्न होकर महाप्रलयतक रहता है और प्रलयकाल में भी कारणरूपसे रहता है स्थूलशरीर के साथ उत्पन्न नष्ट नहीं होता है तथापि स्थूलशरीरभेद से उसका भी संकोच विकाश होनेसे सूक्ष्मकीभी उत्पत्ति कहीगई है। और शरीर छूटने के समय मूर्छाआदि से अभिभूत होजाता है। तमोगुण से छिपजाता है। फिर स्थूलशरीर के सम्बन्ध से अभिव्यक्त होता है। मरनकाल में इन्द्रियों की देवता भी सहायता करनावन्द कर देती हैं और फिर सहायता करने लगजाती हैं। इससे भी दुहरा की उत्पत्ति कहीगई है। अथवा लालकरने से पांजीपरने से 'नूतन दुहरा' नाम दूसराशरीर जीवों को हुआ और होता है। एक मानवशरीर त्याग से कल्याण नहीं होता है, किन्तु शरीर का प्रवाह बना रहता है, परन्तु वह नूतनदुहरा उसीको हुआहै वा होताहै कि जो कोई गुरुके उपदेशरूप वा आत्मवस्तुरूप पदको नहीं चीन्हता है न चीन्हा है। और जो कोई यह आत्मस्वरूप अपरोक्षपदका विवेक करलिया है सो छत्रधनी है, उसको फिर परवश हो कर जन्मना नहीं होता है, इससे वह मुक्त है॥ लिखा है कि [भयहेतुर्द्वयंयस्मा त्तचाविद्यासमुद्भवम्। प्लुष्टायांविद्ययातस्यां न कुतश्चनभीर्भवेत्॥ १॥ विद्वानेवपरं ब्रह्म आत्मनात्मानमव्ययम्। नबिभेत्येकलोऽद्वन्द्वो भयहेतोरसम्भवात्॥ २॥] जिस भयका

हेतु द्वैत है और जो अविद्याजन्य है सो इसविद्या से अविद्या का दग्ध होनेपर किसी से भय नहीं होता है ॥ १ ॥ विद्वान्‌गणही परब्रह्म हैं। सो अपनेआत्माको आप अद्वयरूप जानते हैं, इससे अकेले द्वन्द्वरहित विद्वान् किसीसे नहीं डरते हैं, क्योंकि भयकेहेतु का अभाव है ॥

६५ साखी दोहा।

कबीर जात पुकारिया, चढि चन्दन की डार।

बाट लगाये नालगै, पुनि का लेत हमार ॥ ६५ ॥

टीका। आत्मवस्तु और जन्मादि विषयक उपदेश करके साहेब कहते हैं कि 'हे कबीर!' नाम हे जीवो! मैं चन्दनकी डारपर चढ़कर, नाम चन्दनसदृश पवित्र शीतल आनन्दस्वरूप आत्मवस्तुकी डारपर स्थिर होकर तुम्हारी 'जात' नाम जाति उत्पत्ति वा संसार में यात्रा पुकारकर कहदी है कि इसप्रकार तेरा जन्म बारम्बार होता है और होवेगा। और उसजन्म से रहितहोने के लिये भी मैं रास्ता वताया हूं। और कुमार्ग का त्यागपूर्वक उससुमार्ग में चलने के लिये भी मैंने पुकारकर कहाहै, तौभी उसबाट में लगाने से यदि कोई नहीं लगेगा वा नहीं लगता है तो फिर हमारा क्यालेता है वा क्यालेगा? वह मेरी कुछभी हानि नहीं करेगा, किन्तु अपनीही हानि करेगा और करता है। भाव यह है कि दूरके मनुष्यों को भी सुनाने के लिये वक्ता किसी उच्चस्थान में स्थिर होकर वक्तव्य उपदेश करता है, तैसे साहेब कहते हैं कि (चन्दन वास निबारहू) इसबचन में वर्णित सबसे उच्च जीवके आत्मस्वरूप डारपर वा उसके विचार विज्ञानरूप निर्मलउच्चडारपर चढ़कर मैं जीवोंके कल्याणके लिये पुकारकर जाति का वर्णन किया है। जो पुरुष इसदशा में भी नहींचेतेगा सो फिर पशुआदि योनियों में प्राप्त होकर मेरा क्या लेगा? अथवा साहेब कहते हैं कि 'कबीर' नामबाला मैं जीवों को जाति जन्म पुकार कर कहा है, तहां जो 'ना' अर्थात् जो पुरुष सतमार्ग में लगाने से सतमार्गमें लगगये, सो फिर 'हमार' नाम मेरी ऐसी बुद्धि से 'कालेत' नाम क्यालेसकते हैं? किन्तु कुछ भी नहीं लेसकते हैं। वे लोग सब संसारको मिथ्या मायिक जानकर ममताआदिका भीतर से अत्यन्तत्याग करते हैं। अथवा साहेब कहते हैं कि मैं इससंसारसे 'जात' नाम यात्रा करता हुआ, अर्थात् ममताआदिको अत्यन्तत्यागकर नित्य मुक्त आत्मस्वरूपमें स्थिर होताहुआ सतमार्गपर चढ़कर जीवोंके कल्याण के लिये सदुपदेश पुकारकर कहदिया है, यदि जीव बाटलगाये से भी नहीं लगते हैं तो फिर हमारे लिये क्या हैं? मैंतो संसार से पृथक् स्थिर हूं। भाव यह है कि ज्ञानी लोग अन्तिमशरीर में दया करके उपदेश कर देते हैं, कोई माने वा नहीं माने उसका क्षोभभी ज्ञानी को नहीं होता है। यद्यपि ज्ञानके बाद भी अधिकारी पुरुष का जन्म शास्त्रमें कहा गया है तथापि सो जन्माभास होता है अज्ञानियों कोही वस्तुतो जन्म होते हैं। और जिस ज्ञानीको कोप होता

है उससे श्रेष्ठ वह है कि जिसको जन्मनहीं होता है। इसी आशय से जिनके ज्ञान जन्म दोनों का वर्णन है, उन्हें उसवर्णन की दृष्टि से कहिं २ कबीरसाहेब ने संसारी रूप से वर्णन किया है। किसी का कथन है कि अधिकारी आचार्यों को उपदेश देनेकालमें परोक्षही ज्ञान रहता है फिर अपरोक्ष-ज्ञान होजाता है। साहेब का भाव यह है कि उपदेशकाल में भी गुरुको अपरोक्षज्ञान रहता है, इससे प्रारब्धक्षयपर्यन्त जीवन्मुक्त रहते हैं उपदेशरूप परोपकार उस जीवन्मुक्तिमें वा विदेह-मुक्तिमें बाधक नहीं होता है, किन्तु सो भी आत्मचिन्तनरूपही होता है इत्यादि॥

६६ साखी दोहा।

सबहीं ते सांचा भला, जो दिल सांचा होय।
सांच बिना सुख नाहिंहै, कोटि करै जो कोय॥ ६६॥

टीका। जिज्ञासाहुई कि संसारजङ्गलसे पारहोनेके लिये श्रेष्ठमार्ग कौन है? तब साहेब कहते हैं कि 'सबहींते' नाम सब साधनों से सब मार्गों से 'सांचा' नाम सत्यभाषणरूप साधनमार्ग भला है। तथा सबहींसे नाम सब किसीसे सब प्रकारसे साँचही व्यवहारादि करना भला है 'जो' नाम यदि दिल साँचाहो नाम छलादिसे रहित होवे, ऐसा न होवे कि जैसे 'अश्वत्थामा' नामक हाथी मारागयाथा और युधिष्ठिरजी द्रोणाचार्य से कहेथे कि 'अश्वत्थामा' मारा गया जिससे द्रोणाचार्य अपने पुत्रका मरण समझे थे और सोई समझाने के लिये वह कहेथे इत्यादि। और साहेब कहते हैं कि दिलकी सच्चाई पूर्वक 'साँच बिना' मनुष्यों को कभी भी सुख नहीं होसकता है, चाहे 'कोई' पुरुष अन्यकरोड़ों उपाय करें, परन्तु वस्तुतः सुखी नहीं होसकते हैं। अथवा कहते हैं कि सत्यानृतमय संसारमें 'सबहींते' नाम सब वस्तुओं से 'सांचा' नाम सत्यात्माका विवेकादि भला है नाम संसार से पारकरनेके लिये श्रेष्ठमार्ग है, परन्तु यदि वह सांचा दिलमें भी हो। अर्थात् उसके विवेकादि यदि दिल से होवें कथनमात्रही नहीं होवे तब वह सबहीसे भिन्न सांचाभला है। अथवा जो सांचवस्तु दिलमें ही 'हो' नाम है सो सांचा सबसे भला है, श्रेष्ठसुख स्वरूप है। और उससांच की प्राप्ति बिना नाम विवेक विज्ञानादि बिना सुख नाहीं है नाम किसी को भी उसके बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है, चाहे कोई करोड़ों कर्म उपासनादि करे परन्तु उनसे कल्याण नहीं होसकता है। इससे अहिंसा सत्यभाषणादि तथा सत्सङ्ग विचारादि करके सत्य-ब्रह्मात्मा की प्राप्ति करनी चाहिये। लिखा है कि [**यथोपलब्धंयद्वाक्यं हिंसाकल्कविवर्जितम्। सर्वधर्मविदःप्राज्ञा स्तत्सत्यंप्रनिजानते॥१॥नास्तिसत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकंपरम्। नहिसत्यात्परंज्ञानं तस्मात्सत्यंसमाचरेत्॥२॥ सत्येनधार्यतेपृथ्वी सत्येनतपतेरविः। सत्येनवातिवायुश्च सर्वंसत्येप्रतिष्ठितम्॥३॥ अश्वमेधसंहस्रंचसत्यंच**

तुलया धृतम् अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेवविशिष्यते॥४॥सत्यमेवेश्वरोलोके सत्येधर्मः सदाश्रितः। सत्यमूलानिसर्वाणि सत्यान्नास्तिपरंपदम्॥५॥सत्यंभूतहितंप्रोक्तं नाऽयथार्थाभिभाषणम्। भूतानामहितंसत्य मसत्यंफलतोभवेत् ॥६॥] हिंसादम्भसे रहित और ज्ञानके अनुसार जो वाक्य उसे सबधर्मको जाननेवाले विद्वान् सत्यकहते हैं॥ १ ॥ सत्यसे पर धर्मनहीं है और झूठसे परे पापनहीं है, और सत्यसे परे ज्ञानभी नहीं है, इसलिये सदा सत्याचरण करना चाहिये॥२॥ सत्यही से पृथिवी स्थिर है, सूर्य तपताहै, वायु चलताहै, इत्यादि इससे सब सत्यमेंही स्थिरहैं ॥ ३॥ हजारअश्वमेध और सत्यके तोलनेपर हजारअश्वमेधसे सत्यही अधिक होताहै ॥४॥ लोकमें सत्यही ईश्वरहै सत्यकेही आश्रय सदा धर्मरहताहै सत्य मूलकही सबहै सत्यसे भिन्न कोईपद नहींहै ॥५॥ सत्यही भूतोंके हित कहागयाहै झूठनहीं हितकहागया है, इससे भूतोंके अहितरूप सत्यभी फलदृष्टिसे असत्यही होना है॥ ये शिव पुराणादिके वचन हैं॥

६७ साखी दोहा।

सांचा सौदा कीजिये, अपने दिलमें जानि।

सांचे हीरा पाइये, झूठे मूलौ हानि॥ ६७॥

टीका—जिस सांचके बिना सुखकी प्राप्ति नहीं होती है, उस सांचकी प्राप्ति करनेके लिये उपदेशदेतेहैं कि हेमनुष्यो! अपने दिलमें जानकर नाम समझकर सांचही 'सौदा' नाम व्यवहार जिस पदार्थ को अपने दिलमें जैसी समझो, वैसीही वाणी बोलो, जिसपदार्थको नहींसमझो उसकी बात नहींकरो, इसप्रकार सांचा सौदा करके सत्यधर्म अन्तःकरणकी शुद्धि गुरुप्रसन्नता आदिरूप 'हीरा' उस सांचे सौदा सेहीं 'पाइये' नाम प्राप्त होगा जो हीरा अमूल्य है। और मोक्षमार्गके प्रापक तथा प्रकाशक है। और नित्यप्रकाशस्वरूप आनन्दात्मारूप हीराकी प्राप्तिकरो, जिससे कल्याण होवे। और झूठासौदा नहींकरो, क्योंकि झूठासौदा नाम व्यवहारादिसे मूलकीभी हानिहोगी अर्थात् सब आनन्दके मूल आत्मवस्तुका ज्ञान नहींहोगा। अथवा विचारादिके हेतु मनुष्यत्वकी और बूझ विचारादि कीभी हानि होगी तो फिर पश्चात्ताप करोगे, इसलिये झूठासौदा नहींकरो। या सत्यात्मारूप वस्तुको गुरुउपदेशादिसे अपने दिलमेंही जानकर, उससाँचा नाम अविनाशी आत्माहीं रूप सौदाकी प्राप्तिकरो वा उसीके विचारादि करो, दूरदेशादिमें कोईसौदा प्राप्त करनेयोग्य वस्तु नहींसमझो। और सांचासौदा करनेहीं से मोक्षरूप हीरा पावोगे, झूठ मायिक वस्तुकी प्राप्तिसे मूल्यसुखकी हानि होगी। अथवा हे सज्जनो! संसारमें 'सबहीसेभला' नाम सबके हित सत्यवक्ता ज्ञानीगुरुहैं, यदि जिज्ञासुके दिलभी साँच होतो सोगुरु कल्याण करते हैं। और साँचागुरुके बिना सुख नहींहोना है, चाहे कोई कोटि उपाय करे, इसलिये अपने दिल में विचारादिसे सांचागुरुको जानकर उस सांचागुरुसे विवेक विज्ञानादिरूप सौदाकरो उससांचे

गुरुसेही हीरा पावोगे, और झूठे गुरुओंसे मूलकीभी हानि होवेगी अर्थात् ज्ञानीगुरुसे आत्मवस्तुका ज्ञानहोगा । और अज्ञानी गुरुओंसे ज्ञानके साधन विवेक, विरागादि भी नष्ट होजावेंगे, इसलिये सच्चा गुरुके शरणमें प्राप्तहोजावो ये दोनों साखीके अर्थ हैं । लिखा है कि [**शत्रोरपिगुणावाच्या दोषावाच्यागुरोरपि । सर्वदासर्वयत्नेन सत्यमेवममाश्रयेत् ॥ १ ॥ सत्येनलभ्यस्तपसाह्येषआत्मा सम्यगज्ञानेनब्रह्मचर्येणनित्यम् ॥२॥ सत्यमेवविजयते नानृतम् ॥३॥ समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतंवदति**] शत्रुके भी गुण कहना चाहिये झूठदोष नहीं कहना चाहिये । बड़ेपुरुषोंमें दोष होवेतो उस गुरुकोभी दोषी कहना चाहिये ।और सदा सब यत्नसे सत्यका आश्रयण करना चाहिये ॥ १ ॥ सदा सत्य तप सम्यकज्ञान और ब्रह्मचर्ययुक्त रहनेसे इसआत्माका लाभ होता है ॥ २ ॥ सत्यवक्ताही जीतताहै झूठानहीं जीतता है ॥ ३ ॥ जो झूठबोलताहै सो मूलसहित नष्टहोताहै ॥ ४ ॥ स्मृतिश्रुतिके ये वचन हैं ॥

६८ साखी दोहा ।

सुकृत बचन मानै नहीं, आपु न करै बिचार ।
कहहिं कबीर पुकारिके, स्वप्ने गया संसार ॥६८॥

टीका—सत्यभाषणादि के लिये उपदेश करके फिरभी साहेब कहतेहैं कि यह 'संसार' नाम संसारी जीव सब 'सुकृत' नाम पुण्यस्वरूप सत्यउपदेशादिरूप बचनको नहीं मानतेहैं, और आपसे भी सत्यासत्य और आत्मानात्मादिके विचार नहीं करतेहैं मैं पुकारकर कहताहूं कि इसीसे सब संसारी स्वप्नमें नष्ट गयेहैं और जाते हैं । अर्थात् स्वप्न सदृश मिथ्यालोक विषयादिमेंही विचारादि बिना सब मनुष्य प्राप्त होते हैं । इसलिये हेसज्जनो ! गुरुउपदेशसे और बिचारसे सत्यभाषण सत्यवस्तु परायण होजावो संसार स्वप्नका त्यागकरो। अथवा 'सुकृत' नाम पवित्र सबदुःखादिसे रहित आत्मवस्तु विषयक उपदेशरूप बचन को संसार नहीं मानता है, और 'आपु' नाम अपने स्वरूपका विचारभी नहीं करता हैं, इससे यह संसार स्वप्नसदृश मिथ्यावस्तुमें ही 'गया' है नाम प्राप्त हुआ है, और होता है । अथवा स्वप्नरूप संसारमें जीव गया है । अर्थात् सोया हुआ संसाररूप स्वप्न देखरहा है । अज्ञान मोहरूप निद्रासे युक्तहो रहा है । इससे विचारादि नहीं करता है । इसीसे संसारको जगानेके लिये साहेब पुकारके सदुपदेश कहते हैं कि अभीभी जागो सावधान होकर विचारादि करो जिससे संसार स्वप्नकी निवृत्ति होवे इत्यादि ॥ लिखा है कि [**नासत्यवादिनःसख्यं न पुण्यं न यशोभुवि । दृश्यते नापिकल्याणं कालकूटमिवाश्नतः ॥१॥ सत्यधर्मच्युतात्पुंसः क्रुद्धादाशीविषादिव ।नास्तिकःचाप्युद्विजते जनः किंपुनरास्तिकः ॥ २ ॥ अमृतंचैवमृत्युश्च द्वयंदेहेप्रतिष्ठितम् । मृषाहि साध्यते**

मृत्युः सत्येन साध्यतेऽमृतम् ॥३॥] असत्यवादियोंमें मित्रता, पुण्य, पृथिवी, और परयश नहीं देखेजाते हैं न उसका कल्याणही होता है। जैसे कालकूटविष खानेवालाका कल्याण नहीं होता है ॥ १ ॥ सत्यधर्मसे पतित पुरुषसे नास्तिकभी उद्विग्नहोता है। जैसे क्रोधित सर्पसे उद्विग्न होता है। आस्तिकको उद्वेग होता है इसमेंतो कहनाही क्या है ॥ २ ॥ अमृत और मृत्युदोनों अपनेहीं देहमें हैं तहाँ मिथ्याभाषणसे मृत्युकी प्राप्ति होती है। और सत्यभाषणादिसे अमृत नाम मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

६९ साखी दोहा।

आगि जो लागि समुद्रमें, धुँआँ न परगट होय।
सो जानै जो जरिमुवा, जाकी लाई होय ॥ ६९ ॥

टीका संसारमें स्वप्न तुल्यता सुनकर जिज्ञासाहुई कि संसार स्वप्नतुल्य है इसबातका ज्ञानअनुभव किसको होता है? तब साहेब कहते हैं कि जैसे पानीमें लगीहुई अग्नि, और इन्धनमें लगीहुई अग्निसे धूमकी अनुत्पत्ति यद्यपि लोकमें अप्रसिद्ध है तथापि जो बड़वानलअग्नि समुद्र में लगी है सो पानीमें लगी है। और उससे धुँआँभी प्रगट नहीं होता है। उस अग्निको सोई साक्षत् जाना जो उसमें जड़मुवा। और जिसकी लाईहुई है नाम समुद्रमें प्राप्त कराई हुई है। वैसेंही संसार समुद्रमें जो ज्ञानाग्नि लगी है नाम ज्ञानीमहात्माओंने जिस ज्ञानाग्निको संसारसमुद्रमें लगाई है, उस अग्निका धूम किसी अज्ञानीको प्रगट नहीं होता है। अर्थात् अज्ञानीको उस ज्ञानाग्निके चिन्हभी कुछ नहीं प्रतीत होते हैं, जिनसे ज्ञानाग्निका अनुमानभी वह करसके, किन्तु इस ज्ञानाग्निको वही पुरुष जानता है, जो इस ज्ञानाग्निसे जरके मरगया है। अर्थात् ज्ञानाग्निसे जिसके सब अभिमान मोह, और ममता आदि नष्ट हो गये हैं। तथा शरीरादि सहित आकाशादिमें जिसको मायिकत्व बुद्धि होगई है। और जिन्होंकी यह ज्ञानाग्नि लाई है नाम शिष्योंके प्रति प्राप्त कराई हैं, वे लोग इस ज्ञानाग्निको संसारमें लगीहुई देखते हैं। भाव यह है कि ज्ञानीगुरुओं तथा जिसमें उनके उपदेश लगा है सो शिष्य ये दोनों संसारमें लगीहुई ज्ञानाग्निको तथा संसारमें स्वप्नतुल्यता और ब्रह्मानन्दरूप सत्यसुखादिही जानते हैं। और वस्तुतो मिथ्या होनेभी उनकीही दृष्टिसे संसार मिथ्या है, और स्वप्नतुल्य है, अन्यके लिये नहीं इससे दुःखमय अपनासंसारको नष्ट करने आदिके लिये ज्ञानाग्निकी प्राप्ति करनी चाहिये। अथवा गुरुके उपदेशको नहीं मानने से तथा विचार बिना पतिके बिरहादिरूप अग्नि संसारसमुद्रमें संसारी जीवोंमें लगी है, सो अग्नि ऐसी है कि जिसका धुँआँ प्रगट नहीं होता है। और वह अग्नि भीतरे २ जलाती है, इस अग्निको सोई पुरुष जानता है, जो अज्ञान शोक मोहाग्निसे जरिमुवा नाम किसी हीनदशाको प्राप्त हुआ। अथवा सो पुरुष जानताहै कि जिसे यह अग्नि लाईहो नाम जिसकी बुद्धिको जराकर कोयला सदृश करदी गई हो जिससे स्वप्न सदृश पदार्थोंमें फँसकर दुःखी शोकातुरादि होवे।

७० साखी छं० श्याम उल्लास ।

लाई लावन हारकी, जा की लाई पर जरै।

वलिहारी लावन हार, [की], छप्पर बाँचै घर जरै ॥७०॥

टीका—पूर्वसाखीमें (जाकीलाई होय) इस कथनसे सिद्ध होता है कि ज्ञानाग्नि मध्यकला में किसीसे कल्पित हुई है, इसलिये साहेब उसके तात्पर्यको कहतेहुये अर्थात् ज्ञानमार्ग को अनादि बतातेहुये गुरुका धन्यबाद करते हैं कि यह ज्ञानाग्नि प्रथमसे भी लाई हुई नाम गुरुशिष्य परम्परा से प्राप्त हुई है, [ि]सी से कल्पित नहीं है। अब जो कोई गुरु लाते हैं सो लाई हुई को लाते हैं। जिनकी लाई अग्निसे 'पर' नाम अनात्मवस्तु सब जरतेहैं, सो लाईकी लावनहारहैं, और उस लावनहार गुरुकी बलिहारीहै कि जिनकी लाई हुई अग्निमें अपनी छायामें सबको रखनेवाला छप्पर सदृश आनन्दरूप विभुचिदात्मामात्र बँचा रहताहै। और माटीके दिवालरूप घरके सदृश तीनों शरीर जर जातेहैं नाम नष्ट मिथ्या होजातेहैं। यद्यपि साहेबने प्रथम कहा है, कि ब्रह्मादिको अपनेही बिचारसे ज्ञान हुआ, तथा अन्यत्र भी किसी २ को साक्षात् किसीके उपदेश बिना ज्ञानका वर्णन है तथापि तात्पर्य यह है कि किसीको गुरुसे श्रवणादि करनेपर किसी प्रतिबन्धकसे ज्ञान नहीं होताहै तो उसीको अन्यजन्ममें प्रतिबन्धक नष्ट होनेपर पूर्वजन्मके संस्कारादि सहित विचारादिसे ज्ञान होता है, इससे वस्तुत उपदेश बिना किसीको भी यथार्थज्ञान नहीं होता है इत्यादि। अथवा कहतेहैं कि जिस पुरुषमें विरहादिरूप अग्नि प्रथमसेही लाईहै, उसमें बिरहादि अग्निको ही जो लेआने वालेहैं उन गुरुआरूप लावनहारोंकी बलिहारीहै, अर्थात् उनके अविवेक आश्चर्यरूपहैं कि जिनकी लाई अग्निसे पर पुरुष जरताहै। और जिसका विरहहै सोई जरने योग्य मिथ्यावस्तु बचती है, अर्थात् सत्य भासतीहै। और आधाररूप घर जीवात्मा जरता है इत्यादि। [**नमोऽस्तुगुरवेतस्मै इष्टदेवस्वरूपिणे। यस्यवाक्यामृतंहन्ति विषं संसारसंज्ञितम् ॥१॥ अनेकजन्मसम्प्राप्तकर्मबन्धविदाहिने। आत्मज्ञानप्रदानेन तस्मैश्रीगुरवेनमः ॥ २ ॥ यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्त्वेप्रवर्तते । तद्दृष्टिगोचराःसर्वे मुच्यन्तेसर्वकिल्बिषैः ॥ ३ ॥**] जिस गुरुका वाक्यामृत संसारनामक विषको नष्ट करताहै उस इष्टदेवरूप गुरुके प्रति नमस्कार है ॥ १ ॥ अनेक जन्मसे प्राप्त कर्मबन्धनको आत्मज्ञानके प्रदानसे दग्ध करनेवाले गुरुके प्रति नमस्कारहै ॥ २ ॥ जिनकी अनुभव युक्त बुद्धि तत्त्ववस्तुमें स्थिर रहतीहै उनकी दृष्टिके गोचर भी सब मनुष्य सब पापसे मुक्त होजातेहैं ॥ ३ ॥

७१ साखी दोहा ।

आगि जो लागि समुद्र में, जरे सकादो झारि।

पूर्ब पछिमके पण्डिता, मुथे बिचारि बिचारि ॥ ७१ ॥

टीका—साहेब कहतेहैं कि 'जो' ज्ञानाग्नि संसार 'समुद्रमें लगी' है, उससे 'झारि' नाम यावत् 'सकादो' नाम वह मायिक मलरूप अनात्म कर्दई जरतेहैं, ज्ञानाग्निसे अनात्म कर्दम बाधित होजातेहैं, और शुद्ध आत्मारूप जल कभी नहीं जलताहै, इसीसे 'पूर्बके' नाम अतीत कालके, और 'पछिमके' नाम वर्तमान भावी कालके 'पण्डिता' नाम ज्ञानी महात्मा जिज्ञासु सब बिचार बिचार कर मरेहैं मरतेहैं और मरेंगे नाम निरन्तरविचारादिसे ज्ञानाग्निकी प्राप्ति करके अनात्ममलको नष्ट किये जिससे फिर जन्मादिसे रहित होगये इत्यादि। इससे अवश्य ज्ञानाग्निके लिये यत्न करना चाहिये। अथवा जो ज्ञानाग्नि संसारसमुद्र में लगीहै, उससे 'सकादो' नाम मूलकारणरूप अज्ञानरूपकादो सहित संसार जलताहै,इसीसे 'पूर्ब पछिमके पण्डित' सब फिर मरण रहित मरणको बिचार २ कर प्राप्तहुये। अथवा जो बिरहाग्नि संसारमें लगी है उससे पतालबासी तथा पामररूप कादो सहित विषयी आदि अज्ञानी जरते हैं। और पूर्बपछिमके विवेकी पण्डित बिचार २ कर मुये तथा मरते हैं, इसलिये उस बिरहाग्निसे रहित हुये और होतेहैं। [**तद्योयोदेवानांप्रत्यबुध्यतस्स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम्**] देवताओं में जो जो देव ब्रह्मात्माको समझे सो ब्रह्मरूप हुये तथा जो जो ऋषि वा मनुष्य समझे सो भी ब्रह्मस्वरूप हुये॥

७२ साखी दोहा।

आगि जो लागि समुद्रमें, टुटि टुटि खँसये झोल।
रोवै कबिरा डम्फिया, हीरा जरै अमोल॥ ७२ ॥

टीका। बिचारशील पुरुष ज्ञानाग्निकी प्राप्ति करके अविद्या कामकर्मादिको नष्टकर देते हैं, और जीवनमुक्तरूपसे संसारमें विचरते है। वहाँ उनके विचरण विचारादिको देख सुनकर, अज्ञानी अभिमानी दम्भी, योगी आदि सब मनुष्योंको विचार विना मोहवश दुःख होता है। सो साहेब कहते हैं कि पूर्वकहीज्ञानाग्नि जो संसारमें लगी है, उसके बेगसे ज्ञानियोंके कामकर्म, अज्ञान, लोभ, मोह, अभिमानादिरूप 'झाल' उनके शरीररूप गृहसे टूट टूट कर गिरते हैं, ज्ञानाग्निसे सब नष्ट होते हैं, तब उन ज्ञानियों में सम्बन्धीत्वादिके अभिमानयुक्त उनके पिता पुत्रादिरूप 'डम्फिया' दम्भिया 'कबिरा' नाम जीव सब रोते हैं कि मेरा अमूल्यहीरा जलरहा है। कि जो यह सब अभिमानादिसे रहित होता है। अथवा इस ज्ञानीके अमूल्यहीरा सदृश स्वर्गादि जलते हैं इत्यादि। अथवा जो बिरहादिरूप अग्नि संसारमें लगी है, उसी अग्निमें तुच्छ जीवरूप झोल टूट २ कर गिरते हैं, नाम दौड़ २ कर पड़ते हैं। और 'डम्फिया' नाम डफबाजा विशेषके सदृश बाजा बजानेवाले अनेकोंबादादि करनेवाले 'कबिरा' नाम जीवसब बिरहादिरूप अग्निसे स्वयं जलते

हुये भी धन सम्पत्ति शरीरादिके लिये भी रोतेहैं कि मेरे अमूल्यहीरा सब जलेजाते हैं इत्यादि ॥ लिखा है कि [**ग्रहोनतत्रनोत्सर्ग श्चिन्तायत्रनविद्यते । आत्मसंस्थंतदाऽज्ञान मजाति समतांगतम् ॥ १ ॥ अस्पर्शयोगोवै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः । योगिनोबिभ्यति ह्यस्माद्भयेभयदर्शिनः ॥ २ ॥**] जिस कालमें ग्रहण त्याग चिन्ता ये सब नहीं होते हैं तब आत्मामें स्थिर अज्ञान अजाति तुल्यता नाम असत तुल्यताको प्राप्त होजाता है ॥ १ ॥ निर्विकल्प-योगरूप अस्पर्शनामक योग अन्ययोगियोंसे दुर्दर्श है, इससे अभयमें भय देखनेवाले योगी लोग इससे डरते हैं ॥

७३ साखी दोहा ।

बुन्द जो परा समुद्रमें, सो जानै सब कोय ।
समुद्र समाना बुन्दमें, बूझै बिरला कोय ॥ ७३ ॥

टीका—पूर्वमें कहा गयाहै कि ज्ञानाग्नि तथा विरहाग्निसे संसारसमुद्र जल रहाहै, तहाँ जिज्ञासाहुई कि किसी एक मनुष्यको ज्ञान होनेसे संसार कैसे जलताहै ? समुद्रके एक बुन्दको नष्ट होनेसे समुद्रको नष्ट होनेके सदृश किसीका ज्ञानसे संसारको जलना असम्भव प्रतीत होताहै, तथा तत्तत्जीवोंको बिरहाग्निसे जलनेपरभी संसार कैसे जलताहै ? और जो वस्तु जलती है उसका भी सार रह जाता है तैसे संसारका सार क्याहै ? इत्यादि, तब साहेब कहतेहैं कि समुद्रमें जो मेघसे बुन्द परताहै, सो सब कोई जानतेहैं, परन्तु समुद्र बुन्दमें समायाहै सो बिरला कोई बूझतेहैं । भाव यह है कि जलकेही समुदायरूप समुद्रहै, इससे बुन्द उसके उपादानकारणहै समुद्र कार्यहै, और उपादान अधिष्ठान-रूप कारणमें उसकी सत्तासे ही कार्य स्थिर रहताहै, ऐसा विचारशील यह जानता है, कि समुद्र बुन्दमें समायाहै, तैसेही जीवके स्वरूपभूत उपहित साक्षी चेतन व्यष्टिजगतके अधिष्ठान हैं, निरु-पाधि विभुचेतन सम्पूर्ण जगतके अधिष्ठानहैं । प्रत्येक जीवके अविद्या काम कर्मादिभी संसारके कारणहैं । तहां संसारी जीवरूप बुन्द संसारसमुद्र में परा है, सो सब कोई जानतेहैं । परन्तु संसारी जीवरूप बुन्दमें ही संसाररूप कार्य समायाहै, सो कोई बिरलाही समझता है । और संसारी जीव संसारके कारणहैं, इससे इसके संसारित्वका अभावकाल में कारणके अभावसे व्यष्टिसंसारका अभाव होजाताहै यह निश्चितही है, और ज्ञानीकी दृष्टिसे संसार मायामात्र मिथ्या सिद्ध होजाताहै, तहां ज्ञानाग्निसे अविद्यारूप मायाके ज्वलित होनेपर उसके कार्यरूप संसार सत्यरूपसे रह नहीं सकताहै, इससे संसार भी दग्ध होजाताहै । साररूप ब्रह्मात्माही रह जाता है, परन्तु उसको कोई देखता नहीहै । जैसे समुद्रमें जल परताहै सो सब कोई देखताहै । और उसको वाष्परूपसे आकाशमें जाता हुआ कोई नहीं देखताहै । और समुद्रादिके ही जल आकाशमें जाकर मेघरूप होताहै बुन्द बनताहै । इससे समुद्रहीं बुन्दमें समाया है सो भी कोई बिरलाही पुरुष बूझताहै । सब कोई नहीं समझताहै ।

तैसेही संसारके सार ब्रह्मरूपहै, सो कोई बिरलही समझताहै । और ब्रह्मरूप जीव आदिको संसारमें रहतेहुये सब कोई देखतेहैं इत्यादि । इसीप्रकार बिरहादि अग्निसे बुन्दरूप प्रत्येकजीवोंके जलने से संसारको जलाहुआ समझना चाहिये । अथवा ब्रह्मरूप समुद्रमें जो बुन्द परा, नाम शुक बाम देवादि जो मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूप हुये, सो सब कोई जानतेहैं नाम उन मुक्तोंका सब कोई वर्णन करतेहैं, परन्तु समुद्र जो बुन्दमें ही समायाहै सो कोई बिरलेही समझतेहैं, इससे सब भिन्न जानकर खोजने फिरतेहैं और । विरहादिरूप अग्निसे जलतेहैं इत्यादि ॥

७४ साखी दोहा ।

जहर ज़िमी दै रोपिया, अमिं सींचै सौवार ।
कबिर खलक नाहीं तजै, जामें जौन बिचार ॥ ७४ ॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि यदि ज्ञानाग्निसे जन्म मरणादिरूप संसार नष्ट होजातेहैं तो सब मनुष्य ज्ञानकी प्राप्ति करके मुक्त क्यों नहीं होजातेहैं ? महात्मालोग तो ज्ञानोपदेश सदा करतेही आते हैं, तब साहेब कहतेहैं कि 'जहर' के बीजको अच्छी 'ज़िमी' नाम पृथ्वीमें मसाला खादमें देकर रोपाजावे, और उसके जमने तथा बढ़ने के लिये 'सैकड़ों' वार अमृत 'सींचै' नाम कोई पटावे कि इससे इसविषके फल मीठा होवे, तौ भी वह बीज अपने स्वभावको नहीं छोड़ता है,इससे उसमें विषहीरूप फल लगताहै । तैसेही सत्सङ्ग उपदेशादिकी प्राप्ति होनेपरभी, जिन मनुष्यों में पूर्वजन्मके कर्मादिके अनुसार जिन दृढ़ वासनाओं से जन्य, जौन शुभ अशुभ विचार समझहै, उस विचारको यह 'खलक' नाम जनसमुदाय नहीं तजताहै, क्योंकि उपदेशादिसे भी अदृढ़ वासना आदिकी ही निवृत्ति होती है, दृढ़ कामकर्म उद्बुद्ध वासना आदिकी निवृत्ति भोगसे वा जन्मान्तरादिसे तथा दशान्तरमें पुरुषार्थसे होतीहै, जब कुछ वासना आदि अन्यहेतुओंसे नष्ट होतेहैं, शिथिल होतेहैं, तब उपदेशजन्य ज्ञानसे समूल नष्ट होजाते हैं, अन्यथा नहीं नष्ट होतेहैं न संसारनष्ट होताहै । अथवा साहेब कहतेहैं कि 'हेजहर!' नाम जहरसदृश दुष्टमनुष्यो ! मैंने सद्विचारादिरूप जिमीमें देकर ज्ञानविरवा रोपदियाहै, और वैराग्यादिके उपदेशरूप अमृतको सैकड़ों बार सींचताहू तौ भी 'हेखलक' ! तुम लोगोमें जितने असत् बिचारादिहैं, उन्हे यदि नहीं त्यागतेहो तो तेरा दुर्भाग्यहै ॥

७५ साखी दोहा ।

दव की डाढ़ी लाकरी, ऊभी करै पुकार ।
अब जो परे लुहार घर, डाहै दूजी बार ॥ ७५ ॥

टीका—फिरभी संसारी जीवोंकी दशाका वर्णन करतेहैं, कि जैसे 'दबकी' नाम दावलानरूप

अग्निसे 'डाढ़ी' हुई लकरी कोयलारूप होकर मानो पुकारकरती है, कि यदि अभी भी 'लोहारके घर' जाऊँगी तो वह दूसरी वारभी 'डाहेगा' अर्थात् जैसे कोयला फिरभी लोहारादिके घर जलता है। तैसेही संसाररूप जङ्गलके शोक मोहादि रूप तथा अज्ञानजन्य बिरहरूप दावाग्निसे दग्धहुये कोयला सदृश जो ससारी जीवरूप लकरी हैं, सो वारम्बार अनेकों देवादिको पुकार करतेहैं, कि अभीतो हम जलतेही हैं अभीभी जब मृत्यु यमराजके घरमें परूँगा, तो वह दूसरी बार डाहेगा, हेदेव! हे परमेश्वर! उस यमयातना आदिसे हमारी रक्षा कीजिये इत्यादि। और बिवेक विज्ञानादिकी प्राप्ति नहींकरते हैं जिससे सब भयकी निवृत्ति होजावे॥ अथवा दवकी डाही लकरी मानों पुकारके उपदेश देती है कि हेमनुष्यो! फिरभी लोहार सदृश मृत्युआदिके वशमें परोगे तो वह दूसरी बारभी तुझे डाहेगा, इससे भावीदुःखसे रहित होनेके लियेभी यत्नकरो। भाव यहहै कि अन्यसाधनोंसे कोयलासदृश दग्ध चित्तवासनादिकों को अत्यन्तदग्ध करनेके लिये ज्ञानीगुरुका पुकारकरो, जैसे दवकी डाढ़ी लकरी मानों पुकारकरती है, नहींतो वासनामात्रसे फिरभी तुझे जन्मादिदुःख भोगने पड़ेंगे इत्यादि॥

७६ साखी दोहा।

बिरह कि ओदी लाकरी, सपुचै औ धुँधुआय।
दुखते तबहीं बांचिहौ, जब सकलो जरिजाय॥ ७६॥

टीका। फिरभी संसारियोंकी दशाका वर्णन करते हैं, जैसे सूर्य अग्नि आदिरूप तेजके 'बिरहसे' नाम वियोगसे 'ओदी लकरी' वा पेड़को तुरन्त कटनेसे हीरकी वह लकरी 'सपुचती है' नाम अग्नि लगनेपर जलत्यागती है, और 'धुँधुआती है' नाम धूम करती है धीरे २ जलती भी है। और मानो समझती है कि दुःखसेभी बांचूगी कि जब मेरे सब अवयव जल जावेंगे। तैसेही जो पुरुष ब्रह्मात्मा तथा गुरुका वियोगसे नाम इनकी प्राप्ति बिना बासना युक्त हैं, तथा गुरुआदिके उपदेशादि बिना जो अपना पतिसे अपना वियोग समझते हैं, कि मेरापति अन्यलोकादिमें है मैं अन्यत्र हूँ इससे उसको प्राप्ति आदिकी इच्छा युक्तजो हैं, सो पुरुष किसी कष्टादिको प्राप्त होने पर तथा कामादि वश कष्टसाध्य कर्म तपआदि में स्वयं प्रवृत्त होनेपर, 'सपुचते हैं' नाम नेत्रसे लोरका त्याग करते हैं, और अनेकों स्तुतिआदि रूप धूम करते हैं, और समझते हैं कि इन कष्टों को भोगकर जब सब जर जावेंगे नाम शरीर छूट जावेगा तब अपने पतिको प्राप्त करके दुःखसे छूटजाऊंगा इत्यादि। परन्तु ज्ञान विराग बिना फिर सोई जन्मादि कष्ट होते हैं, सो आगे की साखी में कहेंगे। अथवा साहेब कहते हैं कि हे अज्ञान कामकर्म वासनायुक्त मनुष्यो! तुम कभी बिरह की ओदी लकरीके सदृश 'सपुचतेहो' नाम संकुचाते हो शोकादि करते हो, और कभी 'धुँधुआते हो' नाम उत्साहादि करते हो, अर्थात् समय भेदसे संकोच विकाश दुःख सुखादि द्वन्द्वोंसे युक्त होते हो, परन्तु इससे तेरा कल्याण दुःख की अत्यन्त निवृत्ति नहीं हो सकती है,

किन्तु तुम दुःखसे तभीही बँचोगे कि जब विवेक विज्ञानादिसे सब अनात्मवस्तु जल जावेंगे, और अविद्या कामकर्म वासना अभिमान रागद्वेषादि सब नष्ट हो जावेंगे, इससे इन्हें नष्ट करने के लिये यत्न करो द्वन्द्वोंसे रहित होजावो जिससे तेरा कल्याण होवे। लिखा है कि (**देहदण्डन मात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम्।, वल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः॥ नाश्रमः कारणं मुक्ते दर्शनादि न कारणम्। तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेवहि कारणम्**) देहको दण्ड देनेसे अविवेकियों को क्या मुक्ति होगी? बिलको मारने से ही कहीं साँप मरा है? अर्थात् नहीं। मुक्तिके आश्रम दर्शन कर्म ये सब कारण नहीं हैं किन्तु अनुभवरूप ज्ञानही कारण है॥

७७ साखी दोहा।

बिरह बाण जिहि लागिया, औषध लगै न ताहि।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिवै, उठै कराहि कराहि॥ ७७॥

टीका साहेब कहते हैं कि जिस पुरुषको पतिसे वियोगरूप बिरहका उपदेशरूप गुरुओं के बाण लगे हैं, तथा अज्ञान दृढ़वासना आदिसे जो आपही बिरह मानलिये हैं। उस पुरुषको संसाररूप रोगको नष्ट करनेवाला यथार्थ उपदेशरूप औषध नहीं लगता है, इसीसे महात्मा लोग सदा उपदेश करते हैं, तो भी वह पुरुष 'सुसुक २ कर' नाम रोदन कर २ के बारम्बार मरमर के जीता है, नाम दृढ़वासना कामकर्मादि के अनुसार जन्म लेता है। और जन्म होनेके बाद कष्ट होनेपर 'कराहि २' करके उठता है नाम अनेकों कामकर्मादि करने के ही लिये अज्ञान से उद्यत होता है वा चिल्ला उठता है। और गुरुके उपदेशको नहीं मानता है न सुखी होता है। अथवा जिसको विशेष रहस्यरूप हृदय में तीव्र कामादि रूप बाण लगे हैं, उसको कोई औषध नहीं लगता है, इससे सुसुक २ कर मरता और जीता है इत्यादि।

७८ साखी दोहा।

दुहरा कत कहहिं कबीर, प्रति दिन समय जुदेख।
मूये गये न ऊबरे, बहुरि न ऐहौ पेख॥ ७८॥

टीका—साहेब कहते हैं कि बिरहरूप बाण लगने से औषध लगे बिना जो प्रतिदिन और सब समयमें दुहरा दीख पड़ते हैं उन्हें 'कत' नाम कहाँतक मैं कहूं, अर्थात् ज्ञान बिना स्थूल सूक्ष्म के अनन्तों संघात होते हैं, जिन्हें कोई गिन नहीं सकता है। और ज्ञान बिना बिरही लोगभी मरकर तप आदिके बलसे अनेकों लोकादि में गये। तथा जाते हैं। परन्तु वे लोग भी कहीं जानेसे नहीं

उबरे न उबरते हैं, किन्तु उन्हें भी सदा दोहरा होता है और वे लोग भी दोहराओं को धारण करके फिर दुःख भोगते हैं, और जलते हैं। इसलिये हे मनुष्यो! इसी समय ज्ञानकी प्राप्ति करो कि जिस साधनसे तुम दोहरेमें 'बहुरि' नाम फिर 'नहीं ऐहो' नाम नहीं आवोगे, और उस साधनको तथा आत्मवस्तु को 'पेखो' नाम सकझो। या समझो कि इसमानव शरीरमें फिर नहीं आवोगे, दूसरा न मालूम कब होगा, इसलिये इसअमूल्य समयको जानकर फिर जिससे सुसुकना मरना जीवना नहीं होवे सो शीघ्रकरो। अथवा विरहाग्निसे पीड़ित बासनायुक्त मनुष्योंके प्रति कहते हैं कि मैं दोहा कितना कहूं तुम सब 'प्रतिदिन' सब समय यही बात देखो कि जो कोई विरही बासनायुक्त मनुष्य मुये और किसी लोकादिमें गये सो नहीं उबरे। और तुमभी उन्हें ऊबराहुआ कहीं देखकर फिर खबर जनाने नहीं आवोगे, किन्तु वासनाआदिसे युक्तहोने से संसारमें ही प्राप्त होवोगे, इससे जीवित ही दशामें उबरनेके लिये। यत्नकरो ॥ लिखा है कि [**यस्मान्मोक्षसुखादन्यस्सुखंक्वापि न विद्यते। तस्मान्मुमुक्षुणाभाव्यं नैवभोगेच्छुनाक्वचित् ॥१॥ यावन्नाश्रयतेदुःखं यावन्नायान्तिचापदः। यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥२॥**] जिसलिये मोक्षसुख से अन्य वस्तुतः सुख कहीं भी नहीं है, इसलिये मुमुक्षुओंको कहींभी भोगकी इच्छा नहीं करनी चाहिये ॥१॥ और जबतक शरीरमें कोई कठिन दुःख नहीं हुआ होवे, जबतक आपत्तियां नहीं प्राप्तहुई होवें, इन्द्रियोंमें विकलता नहीं हुई होवे, तबतक शीघ्र अपने कल्याणके लिये पूर्णअभ्यास करना चाहिये ॥२॥

७६ साखी दोहा।

साँचा शब्द कबीरका, हृदया देखु विचारि।
चित्त दै समुझै नहिं मोहि, कहत भेल युग चारि ॥ ७६ ॥

टीका—साहेब उपदेश करते हैं कि हे विरहियो! 'कबीर का' नाम मेरा अर्थात् गुरुका जो सांचाशब्द नाम सारशब्द है, उसे बिचार कर अपने हृदयमें ही प्राप्त करने योग्य चिदानन्द आत्माको देखो। और लोकान्तरादि की आशाओं को त्यागदो। और जिसलिये तुम हृदयेमें रहने वाले आत्माको चित्त देकर एकाग्रचित्तसे नहीं समझते हो, इसीसे 'मोहि कहत' न म मुझे स्वर्ग चाहिये मुझे सुख चाहिये इत्यादि कहते २ तुझे चारयुग होगये, नाम अनन्तो चतुर्युगी और कल्प मोहिं २ कहते समझनेमें तेरे बीतगये। इससे अभी भी आत्मवस्तु को जानकर सब द्वन्द्वोंसे रहित होजावो। अथवा साहेब कहते हैं कि विरही लोग दुःखी होते हैं और मरनेसे भी ऊबार उनको नहीं होता है इत्यादि मेरा शब्द सांचा है, उसशब्दको अपने हृदयमें विचारकर समझो तब तुझे सत्यअनुभव होगा, क्योंकि जो पुरुष चित्त देकर नहीं समझता है गुरुके उपदेशको

एकाग्रचित्तसे नहीं बिचारता है, उसके प्रति 'मोहि' नाम मुझरूप गुरुको कहते चारयुग हो गये, परन्तु उसको यथार्थज्ञान नहीं हुआ, न चित्त देकर बिचारे बिना हो ही सकता है। इसलिये चित्त देकर गुरु का उपदेशको बिचारो समझो इत्यादि॥ (चित्तहुं दै समुझै नहीं) इस पाठका अर्थ है कि हृदयवर्ती आत्मामें चित्त देकर उसे नहीं समझते हो इससे अनेक असतशब्द को कहते तेरे चारयुग होगये इत्यादि॥ लिखा है कि [अनेकानिचशास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः। तस्मात्सारंविजानीया त्क्षीरं हंसइवाम्भसि] शास्त्र अनेक हैं आयु थोड़ी है, विघ्न करोड़ों हैं इससे सार जानना चाहिये जैसे जलमें से हंस क्षीर ले लेता है॥

८० साखी दोहा।

जोतैं सांचा बाणिया, सांची हाट लगाव।
अन्दर झारू देइके, बाहर कुरा बहाव॥ ८०॥

टीका—और भी साहेब उपदेश करतेहैं कि हे मनुष्यो! 'जो' तुम 'सांचा' नाम सत्यवस्तुको प्राप्तकरनेवाला सत्यभाषण सत्यब्यवहार करनेवाला 'बाणिया' नाम ब्यापारी हो व होना चाहते हो, तो असत्य अनात्मवस्तुको त्यागकर सांची हाट लगावो। अर्थात् अनात्म विषयक आसक्ति, मिथ्या भाषणादि रूप झूँठी हाटके व्यवहारोंको, और संसार लोकादिरूप झूठीहाटों को त्यागकर सत्यात्मा सत्यबिचार सत्यभाषणादि की हाट लगावो। आत्मचिन्तन सत्सङ्गादि रूप व्यवहार करो। और मनको अन्तर्मुख करके मोह वासनाआदि रूप मलको विवेक वैराग्य रूप झाड़ूसे झारो। और झारे हुए कुड़ा करकटोंको 'बाहर बहाय दो' नाम अन्तःकरणसे निकाल दो। अर्थात् मोहादिके विषयोंको अनात्म मिथ्या दुःखद जानकर उन्हें नष्टकरो, तब तुझे सत्यवस्तु सत्यसुखादि की प्राप्ति होगी अन्यथा नहीं हो सकती है। अथवा हे मनुष्यो! जो मेरा सांचाशब्द है, उस साँचाके यदि तुम बाणिया हुआ चाहते हो, नाम उसके व्यापारी, उसकी इच्छावाला यदि तुम हो तो 'सांचीहाट लगावो' नाम सब व्यवहार सांचा करो। और धर्माधर्मादिके विवेक विचारादि रूप झाड़ू अन्दर में देकर छल प्रपञ्च काम क्रोध लोभ रागद्वेषादि रूप कूड़ा करकटोंको दूर बाहर फेंकदो, और फिर किसी बुराभावादिको अन्दर नहीं घुसने दो तब तेरा कल्याण होगा। और सांचशब्दकी प्राप्ति होगी। लिखा है कि [स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यां श्चक्षुश्चैवान्तरेभ्रुवोः। प्राणापानौसमौ कृत्वा नाशाभ्यन्तरचारिणौ॥ यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः। विगतेच्छाभयक्रोधो यःसदामुक्तएवसः] जो बाहरके स्पर्श नाम विषय अन्तःकरण में वासना आदि रूप से पैठे हैं, उन्हें बाहर करके नाम उनके चिन्तनादि त्याग करके नेत्रको भौंहोंके अन्दर करके नाक

में चलनेवाले प्राण अपानको सम करके इन्द्रिय मन बुद्धिको संयत रखनेवाला इच्छा भय क्रोध रहित मोक्षपरायण जो मुनि हैं सो सदाही मुक्त हैं ॥

८१ साखी दोहा ।

कोठी तो यह काठ की, ढिग ढिग दीन्हों आगि ।
पण्डित जरि झोली भये, साँकट उबरे भागि ॥ ८१ ॥

टीका—बिरह कामादिरूप अग्नियुक्त वासनासहित मनुष्योंके कल्याणका तथा सांचा शब्दके लाभके असम्भवको साहेब वर्णन करते हैं कि हे मनुष्यो ! यह संसार तथा शरीर काठ की कोठीके सदृश है, और इसमें बिरहकामादि रूप अग्नि पास पास में जिन्हों ने दी है, वे पण्डित नाम शास्त्रज्ञ लोगभी जल कर झोली (राख) होगये और होते हैं । अर्थात् जो पण्डित भी किसी असत पतिको जुदा मानकर उसकी प्राप्ति चाहते हैं, और आत्मस्वरूप पतिको नहीं जानते हैं, तथा विषयों की कामना आदि में व्याप्त रहते हैं वा रहैं, सोभी कठिन अनर्थको प्राप्तहुये । और होते हैं अत्यन्त तुच्छ बनते हैं । उसी अवस्थामें यदि 'साँकठ' नाम मूर्ख उबर जावे तो उसके भारीभाग्य जानना चाहिये । अर्थात् वह मूर्ख भी नहीं उबर सकता है । अथवा यह संसार और शरीर काठकी कोठी है, और इसमें विषय, स्त्री, पुत्र और धनादिरूप तथा काम, क्रोध, इन्द्रिय, और मनादिरूप अग्नि सब समीप समीपमें दी गई हैं, उन अग्नियोंसे युक्तसंसार वा शरीरमें जो शास्त्रज्ञ पण्डित भी आसक्त हुये, इसमें मोह ममता राग द्वेषादि किये, सो पण्डित भी जरकर झोली होगये नाम नष्ट होगये । और जो कोई साँकठ भी इसमें आसक्त नहीं हुआ सो गुरुसे उपदेश सुनकरके इससे भागकर उबरगया और उबरता है । अर्थात् जो मूर्ख भी किसी शुभ-संस्कारके बलसे इस संसार शरीरादिको दुःखमय जान लेता है, और इससे चित्तको हटाकर आत्मविचार सत्सङ्ग श्रवणादि परायण होजाता है सो मुक्त होजाता है । इसलिये इस अग्नियुक्त कोठीसे अवश्य ही भागना चाहिये, और बहिमुर्खताको त्यागना चाहिये, और चित्तको अन्तर्मुख करके नित्यतृप्त सुखी होना चाहिये इत्यादि । लिखा है कि [**वाक्यछन्दोनिबन्धेन काव्यालङ्कारशोभिताः । चिन्तया दुःखिता मूढा स्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियाः**] वाक्यछन्द निबन्धके अनुसार रचित काव्य अलंकारादिसे शोभित भी मूढ़पुरुष चिन्तासे दुःखित तथा व्याकुलेन्द्रिय युक्त होकर संसारमें स्थिर होते हैं ।

८२ साखी दोहा ।

आवन केरा सेहरा, बुन्द परा असमान ।
सब दुनियाँ वैष्णव भया, गुरु नहिं लागा कान ॥ ८२ ॥

टीका—बिरह कामादि युक्त मनुष्यों की दशाका और भी वर्णन करते हैं, कि जैसे श्रावणमासके बुन्दको असमानसे गिरनेसे 'सेहरा' नामक तृणविशेष वा जन्तुविशेष अत्यन्त उत्पन्न होते हैं, परन्तु स्थिर तथा सुखी नहीं रहते हैं, किन्तु उत्पन्न नष्ट होते रहते हैं, तैसेही सब 'दुनियाँ' नाम सब संसारी अज्ञानी मनुष्य विष्णुको असमानमें मानकर और गुरुआरूप बुन्द 'श्रावण के' वचनरूप बुन्दको कानमें पड़नेपर वैष्णव हुये हैं, नाम असमानमें रहनेवाला विष्णु की प्राप्ति के लिये अनेकों वेष बनाये हैं, परन्तु जबतक इनके कानमें कोई गुरु नहीं लगा है नाम गुरुके उपदेश नहीं लगा है, तबतक श्रावणके 'सेहरा' सदृश उत्पन्न नष्ट होते हैं, विरहकामादि युक्त मनुष्य कभी मुक्त नहीं होते हैं, इसलिये अवश्य गुरुउपदेश की प्राप्ति करनी चाहिये। वैष्णवपद उपलक्षण है अनात्म उपासक जन्मादिको प्राप्त होते हैं, यह तात्पर्य है। अथवा शंका हुई कि सब मनुष्य प्रायः किसी न किसीको गुरु मानकर उपदेश लेते हैं, इससे कोई सांकठ नहीं हैं और सब गुरुउपदेश से कूरा बहाते हैं इससे किसीको भी नहीं जलना चाहिये, तब साहेब कहते हैं कि ये सब श्रावणके सेहरासदृश हैं इनके कानोंमें असमानका बुन्द पड़ा है, इसीसे सब दुनियाँ वैष्णव हुआ है, परन्तु इस दुनियाँके कानमें वस्तुतो गुरुका उपदेश नहीं लगा है, इससे न कूरा बहाया है न जलनेसे वँचताही है इत्यादि॥ लिखा है कि [**जटाभाराजिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः। भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि**] जटाके भार मृगचर्मसे युक्त मायावीरूप दाम्भिकवेषधारी लोग लोकमें ज्ञानीके सदृश भ्रमण करते हैं और अन्य मनुष्यों को भी भरमाते हैं।

८३ साखी दोहा।

ढिग बूड़ा उछिला नहीं, इहे अँदेशा मोहि।
सलिल मोहके धारमें, कस निंद आई तोहि॥ ८३॥

टीका—साहेब कहते हैं कि यद्यपि संसारके सभी प्राणी संसारात्मक सागरके मध्य में डूबे हैं और डूब रहे हैं, परन्तु संसाररूप सागरसे पारहोने के लिये साधनका अभाव होने से कुछकर नहीं सकते हैं, इससे उनके डूबने से कुछ आश्चर्य भी नहीं होता है तथापि यह मनुष्य कुछबोधादि की भी प्राप्ति करके मानो संसाररूप सागरके किनारे पर आकर मोक्षके 'ढिग' नाम पासमें पहुँचकर पण्डितादि कहाकर भी मोह अनवधानता उत्कट रागादिसे संसारमें बूड़ा है, विषयादिमें आसक्त हुआ है, और सोभी फिर 'उछिला नहीं' नाम उन विषयादिसे उतराया नहीं। अर्थात् मोहादिका त्यागपूर्वक आसक्ति रहित नही हुआ 'इहे' नाम इसीबात की मुझे 'अन्देशा है' नाम संदेह तथा आश्चर्य है, अर्थात् महात्मालोग इसे आश्चर्यरूप जानते हैं। हे मनुष्यो! अनेकविषय लोकादिरूप संसारसागरके सलिलरूप मोह की धारामें तुझे कैसे

नींद आई है, इसे समझो और त्यागो, इसअमूल्य समयको नष्टकरके संसारमें गोता नहीं खावो, यह तेरे लिये योग्य नहीं है। अथवा कहते हैं कि हे मनुष्यो ! जो पुरुष 'इहे अन्देशा से' नाम अभमान के बुन्द सदृश अन्देशासे 'मोहि' नाम मोहयुक्त होकर ढिगमें ही बुड़ा सो फिर नहीं उतराया, और 'तोहि' नाम तुझे भी उसी मायिकवस्तुरूप सलिलविषयक मोहके धारमें कैसे नींद आई है। अर्थात् जिस अनात्मविषयक उपदेशरूप अन्देशासे नाम सन्देशासे वा उससे जायमान सन्देहसे मोहित भ्रान्त होकर मनुष्य संसारमें डूब रहे हैं, उस अनात्मवस्तुका विश्वास कैसे किये हो, अविचारादि मूलक विश्वासको त्यागदो जिससे तेरा कल्याण होवे । लिखा है कि [**चतुर्विधशरीराणि धृत्वाभुक्त्वा सहस्रशः। सुकृतान्मानवो भूत्वा ज्ञानीचेन्मोक्षमाप्नुयात् ॥ चतुरशीति लक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम् । न मानुषं विनान्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते ॥**] जरायुजादि चार प्रकारके शरीरोंका धारण करके और अनन्त कष्ट भोगकर पुण्यसे जीव मनुष्य होता है, तहां यदि ज्ञानी होता है तो मोक्ष पाता है। प्राणियोंके चौरासीलाख शरीरों में मानुष शरीर बिना कहीं भी तत्त्वज्ञान नहीं होता है।

८४ साखी दोहा।

साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिं जाय।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव कहां ठहराय ॥ ८४ ॥

टीका—जो पुरुष अनात्मवस्तु की प्राप्ति आदि चाहते हैं उनके लिये उपदेशादिका वर्णन करके बहुत पुरुष सर्वात्मस्वरूप साक्षीको कहने मात्रके लिये मानते हैं, तौभी उनके चित्त मोह काम क्रोधादिके वशमें होकर विषयों में आसक्त रहता है। इससे कहते हैं कि बहुत लोग साखी नाम साक्षीस्वरूप आत्माको कहते हैं उसका कथन करते हैं। अपनेको साक्षीस्वरूप बताते भी हैं परन्तु दृढ़वैराग्य अभ्यासपूर्वक उसे गहते नहीं है, अर्थात् विवेकादि श्रवणादि से उसका साक्षात्कार नहीं करतेहैं, इसीसे उनसे निर्मोह असङ्ग होकर चाल नहीं चली जाती है। अर्थात् राग द्वेषादिसे रहित होकर साक्षी सदृश उदासीन प्रकाशरूप से स्थिर नहीं हुआ जाता है, इससे संसाररूप मोहसलिल की नदी बह रही है, उसमें उन पुरुषोंके पाँव कहां ठहर सकते हैं, अर्थात् नहीं ठहर सकते हैं, इससे मोहसे पूर्ण वे पुरुष भी अनेकयोनि आदिमें प्राप्त होते हैं, अनुभव विना उनकी बुद्धिमें भी शान्ति नहीं आती है, न कहीं विश्राम पाते हैं । इसलिये साक्षीस्वरूप आत्मा का अपरोक्षअनुभव पूर्वक असङ्ग उदासीन रूपता की प्राप्ति करनी चाहिये, जिससे कल्याण होवे। अथवा कहते हैं कि अर्थको प्रकाशने वाले वेदादिरूप प्रमाणात्मक साक्षीको तथा कबीर साहेब आदि महात्माओं के वचनरूप साखीको लोग कहते हैं, पाठादि करते हैं, किसीको समझाने

के लिये प्रमाण देते हैं, परन्तु लोग स्वयं उनके कहे मार्ग सदुपदेशको गहते नहीं हैं, और किसी प्रकार गहनेपर भी सदा श्रेष्ठचाल इनसे नहीं चली जाती है, तो फिर अनात्मवस्तु रूप सलिल विषयक मोहकी जो नदी बहती है, उसमें इन लोगों के पाँव कहाँठहर सकते हैं इत्यादि।

८५ साखी दोहा।

कहता तो बहुते मिला, गहता मिला न कोय।
सो कहता बहि जान दे, जो न गहन्ता होय॥ ८५॥

टीका—मुमुक्षुओं के प्रति उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! साक्षीरूप आत्मवस्तु को तथा सद्धर्म मोक्षादि की बातोंको कहनेवाले मनुष्य संसारमें बहुत मिले हैं और मिलते हैं, परन्तु सतधर्म सतवस्तुको गहनेवाला न कोई मिला न मिलताही है। अर्थात् गहनेवाले कोई विरले मिलते हैं, तहां उनके बल कहने वालोंको संसाररूप सागरमें ही 'बहजानेदो' नाम वे लोग संसाररूप सागरमें बहने डूबने वाले हैं ऐसा जानो। जो अभी भी गहन्ता नाम गहने वाले नहीं होरहे हैं, और उन्हें बहने वाला जानकर उनका सङ्गादि नहीं करो, और उनके लिये चिन्ता आदि भी नहीं करो, क्योंकि जो जानकर भी अपने कल्याणके लिये उपाय नहींकरते हैं उनके लिये तुम करही क्या सकते हो इत्यादि। अथवा सतधर्म विवेकादि बहुत साधनादिको कहने वाला पुरुषतो मिला, परन्तु उसमें से 'कोय' नाम कोई एकभी 'गहता' नाम दृढ़ता पूर्वक गहने वाला पुरुष नहीं मिला तहां साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! यदि तुम गहन्ता नहीं होते हो तो सो कहतापनको भी बहजाने दो नाम त्याग दो, इससे तेरा कल्याण नहीं होगा। अर्थात् जितना कहो उतना करो झूठी बड़ाई आदि नहीं करो और केवल अन्यकोहीं नहीं सुनावो इत्यादि। लिखाहै कि [**प्रत्यहंप्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः किंनुमेपशुभिस्तुल्यं किंनुमत्पुरुषैरिति**] मनुष्यको सदा अपने चरित्रों को देखना चाहिये कि कौन मेरा कर्म पशुके तुल्य है, और कौन सत्पुरुषोंके तुल्य है, और देख कर पशुतुल्य अविवेकादि जन्य कर्मोंको त्यागदेना चाहिये इत्यादि। क्योंकि [**संसारमोहनाशाय शब्दबोधोनहिक्षमः। न निवर्त्ततितिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया॥ गुरुप्रज्ञाप्रसादेनमूर्खो वा यदि पण्डितः। यस्तुसम्बुद्धयते तत्त्वं विरक्तो भवसागरात्॥ रागद्वेषविनिर्मुक्तःसर्वभूतहितेरतः। दृढबोधश्चधीरश्च संगच्छेत् परमंपदम्॥**] संसाररूप मोहका नाश होनेके लिये शब्दका बोध नहीं समर्थ है, जैसे दीपकी वार्तासे कभी अन्धकार नहीं निवृत्त होता है तैसेही शब्दबोधसे मोह नहीं निवृत्त होता है। जो मूर्ख वा पण्डित पुरुष गुरु और प्रज्ञाके प्रसादसे तत्त्वको जानता है, और संसारसे विरक्त होकर रागद्वेषसे रहित तथा सब प्राणीके हितमें रत दृढ़बोधयुक्त धीर रहता है, सोई पुरुष परमपद को पाताहै, इत्यादि॥

८६ साखी दोहा ।

एक एक निरुवारिये, जो निरुवारी जाय ।
द्वितीय मुंह का बोलना, घना तमाचा खाय ॥ ८६ ॥

टीका—और भी उपदेश देतेहैं कि हे सज्जनो ! केवल कहना तथा बहुत कहना त्यागकर, तथा केवल कथन करने वालोंके सङ्गको त्यागकर, एक एक वस्तुका निरुवार करो नाम गुरु सत्सङ्ग विचारादिसे आत्मानात्म वस्तुको विवेक पूर्वक निर्णय अपरोक्षानुभव करो । और यतमान व्यतिरेकादि वैराग्यका अभ्याससे एक २ इन्द्रियोंका निरुवार करो नाम विषयोंसे निरोध करो। और वासना हृदयके कामरूप बन्धनादिको भी एक २ निरुवार करो । और इन सबमेंसे जोई तुमसे निरुवारी जाय, उसी व्यक्तिका निरुवार प्रथम करो। जो वासना निवृत्त होसकती है तो उसेही निवृत्त करते रहो तो सब वासनाआदि निवृत्त होजाँयँगे । जिस इन्द्रियका निरोध कर सकते हो प्रथम उसकाही निरोध करो। और उन इन्द्रियों में भी प्रथम वाकेन्द्रियका निरोधकरो जो करसनेहो सोई करो । और सत्यही बोलो, क्योंकि 'द्वितीय' नाम सत्यसे दूसरी बात 'बोलना'नाम बोलने वाला पुरुष 'घनातमाचा खाता है, अर्थात् लोक परलोकमें सर्वत्र दुःख सहता है। और निन्दा सहता है । अथवा कहते हैं कि 'जो' नाम यदि तुमसे निरुवारी जाय नाम विवेक करना बनसके तो 'एक २' नाम सबमें एकही साक्षीस्वरूप आत्मका निरुवार नाम विवेकपूर्वक अनुभव करो, क्योंकि मुखसे द्वितीयवस्तुको बोलने वालाभी पुरुष अनेको चपेटा खाता है नाम जन्ममरण के प्रबाहमें वह पुरुष पड़ता है कि जो द्वैतसंसारको सत्यकहता है । और उसीका कथन चिन्तनादि करता है इत्यादि । द्वितीय मुंहके दोय मुंह पाठ भेद है उसका अर्थ है कि जो केवल कहने वाले सत्य झूठ दोनों बोलते हैं कर्तव्याकर्तव्य दोनोंको कर्तव्य बताते हैं, कभी अपने को साक्षीरूप कभी साक्ष्यरूप कहते हैं, सो घना तमाचा खाते हैं । अर्थात् निर्णय धारण बिना संशययुक्त मनुष्य कहते अन्य करते अन्य हैं, इससे कष्ट भोगते हैं इत्यादि ॥ लिखा है कि ॥ [**संकल्पप्रभवान् कामां स्त्यक्त्वासर्वानशेषतः । मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्यसमन्ततः ॥१॥ शनैः शनैरुपरमेद् बुद्धयाधृतिगृहीतया। आत्मसंस्थंमनःकृत्वा नकिञ्चिदपिचिन्तयेत् ॥२॥**] संकल्पजन्य सब कामोंको त्यागकर इन्द्रिय समुदायको मनसेही सर्वत्र रोककर, और धृतिसे गृहीतबुद्धिसे धीरे २ उपराम होना चाहिये, और आत्मामें मनको स्थिर करके अन्य किसी वस्तु का चिन्तनादि नहीं करना चाहिये ।

८७ साखी दोहा ।

प्राणी ते जिह्वा डिगा, क्षण क्षण बोल कुबोल ।
मनघाले भरमत फिरे, कालहिं देत हिंडोल ॥ ८७ ॥

टीका। सामर्थ्यके अनुसार एक २ इन्द्रियोंके निरुआर बिना, तथा विशेष करके मन और जिह्वा याने वाक्का निरुआर किये बिना, अर्थात् इनके स्वरूप और स्वभावको जानकर इन्हें बश में किये बिना, जो जीवोंकी दशा होती है, उसका वर्णन करते हैं कि हे प्राणियो! 'ते' नाम तेरी जिह्वा 'डिगा' नाम डिगी है, अपनी अवस्थासे च्युत हुई है, तेरे बशमें नहीं है, इसीसे तुम क्षणक्षण में कुबोल बोलते हो। अर्थात् अप्रिय गाली आदि और असत्य, चुगली, निष्प्रयोजन बात बोलते हो। और मनभी तुझे 'घालता है' नाम पीड़ित करता है नीचमार्गमें गिराता है, इससे तुम रते फिरते हो। अथवा बश में किये बिना मन तुझे घालता है नाम नष्ट करता है, और भरमाते फिरता है, इससे तुम कालको 'हिंडोल' देते हो वा वह मनहीं कालको हिंडोल देता है नाम तुम मृत्युके बशमें बारम्बार जाते हो और मन लेजाता है। अब भी कालको हिंडोला देना त्यागो मन और वाक्को वशमें करो जिससे सब दुर्दशा छूट जावें। अथवा हे प्राणियो! मनके ही घालनेसे तेरी जिह्वा डिगी हुई है, इससे भ्रमती फिरती है, और क्षण क्षण में कुबोल बोलती है जिस कुबोलीसे काल को हिंडोल देती है, वा कालही तुझे हिंडोल देता है नाम अनेकों योनि स्वर्ग नरकादि में भरमाता है, इसलिये एक आत्माका निरुवार करके उसीमें मनको स्थिर कर दो, जिससे सब उपद्रव नष्ट हो जावें' इत्यादि। अथवा हे प्राणी! तुम क्षण क्षण में 'बोल कुबोल' नाम सत्य झूठ युक्त जिह्वासे ही संसारमें गिरा है, और मनको भी पीड़ित करता है, और काल तुझे हिंडोल देता है। इत्यादि

८८ साखी दोहा।

जाके जिह्वा बन्ध नहीं, हृदया नाहीं सांच।
ताके सङ्ग न लागिये, घालै वटिया मांझ॥ ८८॥

टीका—हे सज्जनो! जिन पुरुषोंके जिह्वामें बन्धन नहीं है, नाम सत्य प्रिय हित परिमित बात जो नहीं बोलते हैं। और जिनके हृदयमें सांच नहीं है, अर्थात् छल कपटादि रहित जिनके मन नहीं है। अथवा जिनके हृदममें सत्यात्मवस्तु का अनुभव नहीं है, उन पुरुषोंके सङ्गमें नहीं लगो, यदि भूलकर भी उनके सङ्गमें लगोगे तो वे लोग संसारके मध्यरास्तेमें तुझे घालेंगे नाम नष्ट करेंगे। अथवा जो कोई उनके सङ्गमें लगता है, उसे वे लोग डांकू चोरके सदृश मध्यबाटमें प्राप्त कराकर नष्टकरते हैं। इसलिये सावधानीसे उनका सङ्ग नहीं करो, हुआहोवे तो शीघ्र त्यागो इत्यादि। मांझ के कांच पाठ होवे तो अर्थ है कि असतमार्गमें प्राप्त कराकरके झूठापुरुष घालता है इत्यादि। योग वासिष्ठादिमें लिखाहै कि [अज्ञानान्मत्सरान्मोहा दविचारिभिरंकता। अवहेलित-शास्त्रार्थैः कर्तव्यानात्महंतृभिः॥ १॥ दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोपिसन्। मणिनाभूषितः सर्पः किमसौनभयंकरः॥ २॥ दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वास-

कारणम् । मधुतिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हलाहलं विषम् ॥ ३ ॥ त्यज दुर्जनसंसर्गं भजसाधुसमागमम् । कुरुपुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥ ४ ॥] अज्ञान मत्सर मोहसे भी शास्त्रार्थको उलंघन करनेवाले आत्मघाती विचार रहित मनुष्यों के साथ एकता नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥ दुर्जन यदि विद्यासे विभूषित भी होवे तो उसका त्याग करना चाहिये क्या मणिसे भूषित भी सर्प भयंकर नहीं होता है ॥ २ ॥ यदि दुर्जन प्रियवादी होवे तो वह भी विश्वासका कारण नहीं होता है, क्योंकि प्रियवचन रूप मधु उसकी जिह्वाके अग्र भागमें रहता है और हृदयमें हलाहलविष रहताहै ॥३॥ इसलिये दुर्जनके सङ्गको अवश्य त्यागो और साधुओंका सङ्गकरो । सदा पुण्यकरो संसारको सदा अनित्य समझो । इत्यादि

८९ साखी दोहा ।

जिह्वा तो बन्धन देइ, बहु बोलना निवार ।

सारथी सो सङ्ग करी, गुरुमुख शब्द विचार ॥ ८९ ॥

टीका—और भी साहेब उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो ! तुम दूसरे झूठे छली आदिके सङ्गको त्यागकर, स्वयं भी अपनी जिह्वामें सत्यभावना सत्यसंकल्पादिसे बन्धन दो, नियम करलो कि मैं सत्य, मृदु, हित ही बोलूंगा, और जिह्वामें बन्धन देकर ' बहुत बोलना निवारण करो' नाम असत्य तथा अपरिमित बोलना त्यागो, विना प्रयोजन किसीसे कोई बात नहीं बोलो, समझो कि अधिक बोलनेमें अहित और असत्य भी बोला ही जाता है । और हे सज्जनो ! अधिक बोलीका त्याग वा जिह्वामें बन्धन बुद्धिरूप सारथीके साथ सङ्ग किये बिना नहीं होसकतेहैं । इसलिये शरीररूप रथको खींचने वाले इन्द्रियरूप घोड़ोंके लगामरूप मन जिसके अधीन रहता है, उस बुद्धिरूप सारथी से सङ्ग करो । अर्थात् विचारादि शील बुद्धिके साथ मनको जोड़ो या मनको सुमार्गमें ले जानेवाले सतपुरुष रूप सारथीसे सङ्गकरो और सारथीसे सङ्ग करके गुरुके मुखसे मिला हुआ जो उपदेशरूप शब्द है उसको विचारो समझो और समझकर साक्षीरूपसे स्थिर होजावो जिससे तेरा कल्याण होवे । सारथी के पारखी पाठ भेद है उसका ज्ञानी अर्थ है । श्रुतिस्मृति कहती हैं कि [यस्यवाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा । सवै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतंफलम् ॥ १ ॥ नारुंतुदः स्यादार्तोऽपि नपरद्रोहकर्मधीः । ययाऽस्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥ २ ॥] जिस पुरुषके वाक् और मन शुद्धरहते हैं, सदा सम्यक् रक्षित रहते हैं, सो पुरुष वेदान्तमें कहे सब फलोंको प्राप्त करता है ॥ १ ॥ पीड़ित होनेपर भी दूसरेके मर्मोंको भेदन करने वाले वचन नहीं बोलना चाहिये और परका द्रोह अपकार के लिये

कर्म वा बुद्धि नहीं करना चाहिये। और इस मनुष्यके जिस बचनसे किसीको उद्वेगहो उस लोक विरोधी बातको नहीं बोलना चाहिये ॥ २ ॥

९० साखी दोहा।

हिलगी भाल शरीर में, तीर रहो है टूटि।
चुम्बक बिना न नीकलै, कोटि पाहन गौ छूटि ॥ ९० ॥

टीका—बहुत बोलनेका निवारण बुद्धिका सङ्ग करके भी गुरुमुख शब्दका बिचार करने के लिये उपदेश दिया गया है, उसे सुनकर जिज्ञासा हुई कि बिवेकशील बुद्धिके साथ सङ्गहोने पर गुरुमुख शब्दके विचारकी क्या आवश्यकता है विवेकशील बुद्धि युक्त मनुष्य स्वयं बिचारादि करके तथा तर्कादिसे तत्त्वका निश्चय करके अनात्मवस्तुका त्याग पूर्वक मुक्त होसकता है, तब साहेब कहतेहैं कि जैसे किसीके शरीरमें 'भाल' नाम तीरके नोक अग्रभाग 'हिलगी' नाम हेलगया होवे, और तीर टूटकर बाहरही रहगया होवे या तीरको हेलनेपर उसके भाल शरीरमें ही टूटकर रहगया होवे तहाँ उस भालको निकालनेके लिये चुम्बकसे भिन्न चाहे करोड़ों पत्थर लगाये जावे तो चुम्बक बिना वह भाल नहीं निकलताहै। वे सब पाहन छूटजातेहैं, उसे पकड़कर खींचते नहींहैं। और चुम्बक नहीं छूटता है। अथवा कोटि पाहनसे भी वह भाल शरीरही में छूटजाता है और चुम्बकसे नहींछूटता है। तैसेही अनेकों वासना अज्ञान कामादिरूप तथा असदुपदेशादि रूप भाल शरीरके अन्दर हृदयमें टूट २ कर रहगये हैं, और विषयादिरूप तीर बाहर हैं, तहाँ वे वासनाआदि गुरुके उपदेशरूप चुम्बक बिना तथा उनके वचनोंके विचार बिना नहीं निकलते हैं, चाहे अपनी बुद्धिसे तर्कादि करोड़ों किये जावें। इससे अवश्यही गुरुमुख शब्दका विचार करना चाहिये, जिसे सब संशय विपर्यय का नाश से कल्याण होवे। और अज्ञान तिमीर शीघ्रही नष्ट होजावे इत्यादि। क्षेपक ॥ [लोहहिं चूम्बक प्रीति है, लोहहिं लेत उठाय। ऐसो शब्द कबीर के, पल महँ लेत छुड़ाय ॥ २ ॥] लोहाको चुम्बकके साथ प्रीति है, इसीसे उस लोहाको चुम्बक उठाय लेता है। और जिसको भाल गड़ा रहता है, उसको दुःखसे रहित सुखी कर देता है। ऐसे ही कबीरके नाम गुरुके शब्द हैं, इससे अधिकारी विचारशील मनुष्यको संसारबन्धनसे पलमात्र में ही छुड़ा लेते हैं। सभी वासनादिकों को नष्ट कर देता है अन्तःकरणसे निकाल देता है ॥ (आचार्यवानपुरुषोवेद) आचार्य वाला ही पुरुष आत्मतत्त्वको जानता है।

९१ साखी दोहा।

आगे सीढ़ी सांकरी, पीछे सकना चूर।
परदा तरकी सुन्दरी, रही धका दै दूर ॥ ९१ ॥

टीका–और भी गुरुमुख शब्द विचारनेका प्रयोजन बताते हैं कि गुरुमुख शब्दके विचारे बिना मनुष्य स्वर्गादि की बातोंको सुनकर स्वर्गसे सत्यलोक तककी इच्छा करते हैं, और उन लोकादिकों की प्राप्तिके लिये कर्मादि करते हैं। जिन कामकर्मादिकों में अनेकों विघ्नके भय रहते हैं, और अन्तमें स्वर्गादिसे पातालादिके भय रहते हैं, इससे कष्टसाध्य होनेपरभी भय क्षय युक्त होने से, तथा भोगविशेष युक्त होनेसे ज्ञानके बाधक होनेसे, इस लोकके अपेक्षा 'आगे' जो स्वर्गादि लोक हैं, उन आगेके लोकों की 'सीढ़ी साँकरी है' नाम संकीर्ण है, इससे दुःखद है। और इस लोक की अपेक्षा 'पीछे' नाम नीचे पाताल नरकादिमें और पशु आदि योनियोंमें जीव सब 'सकना चूर' नाम अत्यन्त पीड़ित होते है। अर्थात् जैसे किसी पदार्थका कण कण चूर्ण किया जावे, तैसे सब अवयवोंमें क्षण २ में पीड़ा सहते हैं। और मानस ताप सहतेहैं। और इस मानव शरीर तथा लोकमें सर्वत्र की अपेक्षा सुगमसे कल्याणके मार्ग प्राप्त होते है। परन्तु यहां भी शरीररूप 'परदा तरके सुन्दरी' रूप अविद्याने तथा अविद्याजन्य अनात्म अशुचि दुःख अनित्य वस्तु विषयक आत्म शुचि सुख नित्य बुद्धिरूप सुन्दरीने इन जीवोंको 'धक्का देकर' नाम सद्गुरुका उपदेश विचार किये बिना दैवयोगसे प्राप्त सतमार्गसे भी गिराकर वह अविद्या और विपर्ययबुद्धि इन जीवों को सतमार्ग सतवस्तु से दूर लेकर रही और रहती है। सतमार्ग सतवस्तुके पास भी वह अविद्या गुरुका उपदेश बिना नही रहने देती है। इससे मानव शरीरमें वर्तमान जीव आत्मविचारादि नहीं करते हैं दूर कल्पित स्वर्गादि की चिन्ता करते हैं तथा हीनमार्गोंमें प्रवृत्त होते है। अथवा आगे मोक्ष मार्ग की सीढ़ी साँकरी है, जहाँ गुरुसे बताई युक्ति बिना मनुष्य पहुँच नहीं सकते हैं। और पीछे संसारमें रहनेपर सकनाचूर होते हैं। और गुरुसे बताई हुई युक्तिरूप सीढ़ी ऐसी है, कि उस पर नहीं पहुँचनेतक अविद्या रूप सुन्दरी वा लोकप्रसिद्ध परदातरकी सुन्दरी धक्का देती है, और अन्यत्र धक्का देकर भी उस सीढ़ीमें प्राप्त जीवोंसे दूरही रही और रहती है, गुरुमुख शब्दको विचारते रहने वालोंके पास नही जाती है। उस विचारसे प्रथमही धक्का देती है। धकादे दूर के, धकासे दूर, पाठभेद है, अर्थ भेद है, कि मोक्षमार्ग अत्यन्त सूक्ष्म है। इससे अविद्या ज्ञानादिकी धक्कासे दूरही रहती है, क्योंकि वह परदातर की सुन्दरी सदृश है, ज्ञानादिके सामने कभी ठहर नही सकती है। अथवा गुरुउपदेशके बिना परदातरके सुन्दरीके सदृश जीव धक्काका डरसे मोक्षमार्ग से दूरही रहकर दुःखी होते हैं, इससे अवश्य गुरुमुख शब्दका विचार करना चाहिये। अथवा भाव यह है कि गुरुउपदेश बिना मोक्ष की सीढ़ी सांकरीमें जीव नहीं जाते हैं। और जो पीछे सकनाचूर का जगह है, उसीमें परदातरकी सुन्दरीरूप माया जीवोंको गिराती है। और फिर आप इनसे दूर रहती है। अर्थात् विषय उनकी इच्छा लोकादि की इच्छासे मोह मायाआदि जीवोंको मानों धक्का देकर संसारमें गिराते हैं। और फिर सदा विषयादि प्राप्त नहीं रहते है। इत्यादि ॥

९२ साखी दोहा ।

संसारी सबे विचारी, क्या बिरही क्या योग ।

अवसर मारे जातहैं, चेत विराने लोग ॥ ६२ ॥

टीका—गुरुमुख शब्दके विचार विना जीवोंको कल्याण नहीं होताहै, इससे विचार की कर्तव्यताका उपदेश देतेहैं, कि हे संसारी लोगो ! क्या बिरही होजावो क्या योगी होजावो, परन्तु गुरु-उपदेशका बिचारी बनो अर्थात् चाहे बिरही भक्तहोवो वा योगीहोवो सब कोई गुरुमुख शब्द द्वारा आत्मतत्त्वका विचारकरो। अथवा हेसंसारियो! तुम सब विचारशील होजावो, क्योंकि बिरही होनेसे वा हठादि योगसे क्या होसकताहै, अर्थात् उससे तुम्हारा कल्याण नहीं होसकताहै। और 'हे विराने लोगो! ' नाम हेतटस्थ ईश्वर विषयादिकों के वशवर्ती लोगो ! तेरे 'अवसर' नाम सुन्दर अमूल्य समय बिरहादि मेंही 'मारे' नाम बीते जातेहैं, इससे शीघ्र चेतो। अर्थात् बिचारी होकर बिरहीपनसे रहित आत्मनिष्ठ होजावो। और अविचार रहित होकर सतमार्ग सतवस्तुको समझो इत्यादि। अथवा 'हे संसारी ' मनुष्यो ! ' सबे यह विचारी ' नाम विचारकरो कि ईश्वर ब्रह्मात्मासे बिरही क्याहै, और उससे योग नाम सम्बन्ध क्याहै। हे विरानेलोगो !इसप्रकार विचारकर तुम अपने स्वरूपको शीघ्र चेतो ये अमूल्य अवसर व्यर्थ मारे जाते हैं। सबेके समय बिरही के गिरही,पाठभेदहैं तब अर्थहै, कि चाहे गृहस्थहो वा योगी बिरक्तहो किन्तु हेसब संसारी मनुष्यो ! समयका विचारकरो। और हे विराने लोगो नाम लोक विषयादिमें भूलेहुये मनुष्यो ! यह अवसर व्यर्थ नष्ट होताहै उसे चेतो नाम समझो और समयके अनुसार पुरुषार्थकरो जिससे कल्याण होवे। अथवा अवसर माराजाता है उसे चेतो। और लोग नाम सब स्वर्गादि लोक संसार स्त्री पुत्रादि विरानेहैं नाम माया मनोमय मुझसे भिन्नहैं, इनसे मुझे कुछ प्रयोजन नहींहै, इसप्रकार विचारसे समझो इत्यादि ॥ शांकर अपरोक्षानुभूतिमें लिखा है कि [नोत्पद्यते बिनाज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः। यथा पदार्थभानंहि प्रकाशेनबिनाक्वचित्] विचार बिना अन्यसाधनों से ज्ञान नहीं होताहै जैसे सूर्यादिरूप प्रकाशके बिना कहीं घटादिका भान नाम प्रकाश नहीं होताहै इत्यादि ॥

६३ साखी दोहा।

संशय सब जग खंधिया, संशय खँधे न कोय।
संशय खंधे सो जना, शब्द विवेकी होय ॥ ६३ ॥

टीका—और भी साहेब कहतेहैं, कि चाहे कैसा तर्कशील बुद्धिमान् होवे, परन्तु तर्ककी प्रतिष्ठा सीमा नहीं होनेसे गुरुमुख शब्दोंके विचार बिना उस पुरुषके संशय मिथ्या ज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती है। और सो संशय ही 'सबजग' को नाम सब संसारी जीवोंको 'खंधिया' नाम खाया है और खाता है नाम नष्ट करता है। आत्मानात्मके संशय मिथ्याज्ञानसे ही जीव सब जन्मादि कष्टको प्राप्त करते हैं, और गुरुमुख शब्दों का विचारसे बिहीन कोई मनुष्य भी संशयको नहीं खंधते हैं, नाम नष्ट

नहीं करते हैं, न कर सकते हैं, किन्तु जन्मादिके हेतुरूप संशयको सोई मनुष्य खंधते नष्ट करते हैं, कि जो शब्दविवेकी नाम गुरुमुख शब्दोंके विचारशील होते हैं। तथा असार शब्दोंसे विवेक पूर्वक जो पुरुष गुरुके सारशब्दों को पहचानते हैं, और गुरुके सारशब्दसे जो पुरुष विवेक पूर्वक आत्मवस्तुको जानते हैं, सो सब संशयको खाय जाते हैं। और नित्यमुक्तहो जाते हैं। इससे अवश्यही गुरुमुख शब्दोंका बिवेक विचार करना चाहिये इत्यादि। खंधिया, खंधे, खंधे, के, खण्डिया, खण्डे, इत्यादि पाठ भेद हैं। उनके खण्डन छेदन नाश अर्थ है। श्रुति आदि के बचन हैं कि [**नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ॥ १ ॥ तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ॥ २ ॥ ब्रह्मैवानुभवी तेन ब्रह्मप्रोक्तं विबुद्ध्यते ॥ ॥ ३ ॥ नावेदिचेदिहालस्या द्विनष्टिर्महती भवेत् । कदाचिज्जन्म पश्वादि रूपं स्यादिति वेत्तिकः ॥ ४ ॥**] हे प्रियतम नचिकेतः! यह आत्मवस्तु विषयक मति केवल तर्क से प्राप्तकरने योग्य वा निषेध करने यग्य नहींहै, किन्तु नास्तिकादिसे भिन्न ज्ञानी सद्गुरुसेही प्रोक्त नाम उपदिष्ट यह मति आत्मवस्तुका साक्षात्कारके हेतु होती है ॥ १ ॥ हे अर्जुन! जिस ज्ञानमें सब कर्म फल समाप्त होजाते हैं उस ज्ञान की प्राप्ति गुरुके प्रति प्रणिपातसे समुचित प्रश्नसे और गुरुसेवासे होती है सो जानो ॥ २ ॥ और अनुभवी गुरु ब्रह्म ही होते हैं उनसे उपदिष्ट आत्मतत्त्वका बोध होता है ॥ ३ ॥ जिस पुरुषको आलस्यादिसे इस जन्ममें आत्मतत्त्व नहीं जाना जाता है, उसको महा विनाश होता है, क्योंकि कहीं पशुआदि रूप आगे जन्म होगा तो उसे कौन जानता है।

६४ साखी दोहा।

बोलना है बहुभांति कि, नयनन नहिं कछु सूझ।
कहहिं कबीर पुकारि के, घट घट बाणी बूझ ॥ ६४ ॥

टीका—सारशब्दके बिवेक की आवश्यकता बताते हैं कि हे मनुष्यो! बोलना भी बहुत भाँति का होता है, अर्थात् अनेकों मत अनेकों ग्रन्थादि हैं। और उपदेशक लोग भी अनेकों प्रकार से उपदेश करते हैं। और ग्रन्थादिसे उपदेशोंसे जिन अर्थोंको कहते हैं, सो अर्थ स्वर्गदेवादि भी नेत्रोंसे कछु नहीं सूझते हैं, कि जिससे प्रत्यक्षबलसे परस्पर विरुद्ध भी अर्थादि मान लिये जायें, और विवेक विचारादि की आवश्यकता नहीं होवे। अथवा बोलना बहुत भाँति का है इससे विचारादि बिना किसी की बोलीसे यथार्थज्ञान नहीं होसकता है। और नेत्रसे भी कुछ नहीं सूझता है, अर्थात् नेत्रसे सत्यवस्तु नहीं दीखती है,किन्तु मिथ्या मायिकवस्तु दीखती है। इससे साहेब पुकारकर कहते हैं कि हे सज्जनो! तुम सत्यात्म तत्त्वको जाननेके लिये ' घट घट की बाणी

को बूझो' अर्थात् समझो कि कौन सारशब्द कौन शब्द निर्लोभी परोपकारी दयालु ज्ञानी महात्माओं से कहे गये हैं, कौन ग्रन्थादि उनसे बनायगये हैं, और कौन शब्द ग्रन्थादि अज्ञान लोभादिसे होते हैं वा हुये हैं, और कौन शब्द व्यवहारोपयोगी हैं, कौन मोक्षोपयोगी हैं, कौन दोनों में उपयोगी हैं, इसप्रकार घट २ की वाणीको बूझो बिचारकरो। और गुरुमुख सारशब्दका विवेक करके उसके विचारसे अपना कल्याण करो। अथवा हे सज्जनो ! एक सत्यात्मवस्तुको समझानेके लिये सत्यमार्ग दिखानेके लिये भी महात्माओं का 'बोलना' नाम बोली बहुत भाँति की है। अर्थात् अनेकों प्रकारसे महात्माओंने साधनादिको उपदेश किये हैं, क्योंकि सत्यात्मवस्तु 'नयनन' नाम इन्द्रियोंसे कुछ सूझ नाम जान नहीं पड़ता है, इसीलिये अनेकों प्रकारसे समझाये हैं। साहेब पुकार कर कहते हैं, कि हे सज्जनो ! तुम घट घटमें रहने वाले आत्मवस्तुका बोधक उन महात्माओंके ही वाणियों को नाम शब्दको बुझो नाम विवेक करो उनके विचारादि करो। अथवा हे सज्जनो ! शब्दके विवेक विना जिनको बाहर भीतरके नेत्रोंसे कुछ नहीं सूझता है, उनकी बोलना बहुत भाँति की है उन सबके घट घट में वाणी मात्रही बूझो नाम जानो। अर्थात् वे लोग अनेकों प्रकारके शब्दको ही जानते हैं तत्त्वज्ञानसे रहित होते हैं। तुम उन वाणियोंको अपने घटसे निकालनेके लिये शब्दोंका विवेक करो।

९५ साखी दोहा।

मूल गहन ते काम है, तैं मति भरम भुलासि।

मन सायर मनसा लहर, बही कतहुँ मति जासि ॥ ९५ ॥

टीका—फिर भी मुमुक्षुजिज्ञासुके प्रति उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो ! गुरुके सारशब्दको विवेक पूर्वक सब आनन्दादिके 'मूल' स्वरूप सत्यात्मवस्तुको 'गहनते' नाम ज्ञानसे प्राप्ति करनेसे ही काम है, नाम मोक्षरूप प्रयोजनकी सिद्धि होती है। इससे 'तैं' नाम तुम मूलको छोड़कर भ्रमरूप मिथ्या मायिक शरीर विषय लोकादिरूप परिछिन्न वस्तुओंमें 'मति भुलासि' नाम नहीं भूलो, उन्हें सत्य सुखदादि रूप नहीं मानो। और 'मन हीं सायर' नाम समुद्र रूप है। और 'मनसा' नाम मनोरथ उस मनरूप समुद्रमें 'लहर' नाम तरङ्ग है। उस तरङ्ग युक्त समुद्रके वशमें होकर 'कहीं बह मत जावो' अर्थात् गुरुके उपदेशरूप सत्यमार्ग, और आत्मवस्तुको छोड़कर मनसे कल्पित असत्यमार्ग वा किसी लोकविषयादिमें प्रवृत्त तथा आसक्त नहीं होवो। और उक्त मूलको ही गहो जिससे तेरा कल्याण होवे। इत्यादि भगवान् मनुने कहा है कि [**वेदाभ्यासस्तपो ज्ञान मिन्द्रियाणां च संयमः। अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयस्करंपरम् ॥ १ ॥ सर्वेषामपि चै तेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्। तद्ध्य ग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥ २ ॥**

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । समंपश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥ ३ ॥] उपनिषदादिरूप वेदार्थके अभ्यास, सात्विक तप, ब्रह्मात्माके ज्ञान, इन्द्रियोंके निरोध, अहिंसा, गुरुसेवा, ये सब श्रेष्ठ कल्याणके साधन हैं ॥ १ ॥ इन सबमेंसे भी आत्मज्ञानपर है, वह सब विद्याओंमें मुख्य है, क्योंकि उसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ सब प्राणियोंमें अपने आत्माको समान रूपसे देखता हुआ और सब प्राणियो को अपने विभुचिदात्मामें सामान्य रूपसे देखता हुआ आत्मयाजी जीव पुरुष स्वाराज्य नाम मोक्ष पाता है ॥ ३ ॥

६६साखी दोहा ।

भवँर बिलम्बा बाग में, बहु फूलन की बास ।

जीव बिलम्बा विषय में, अन्तहुं चला निरास ॥ ६६ ॥

टीका—गुरुसे उपदिष्ट मार्गको त्यागकर विषयों में जाने मात्रसे जो हानि होती है उसका वर्णन करते हैं, कि जैसे भवँरा अपने स्थानको छोड़कर किसी बागमें जाता है, और यदि वहां उसको 'बहुत फूलों की वास' नाम गन्ध की प्राप्ति होती है, तो वह भवँरा उस बागमें 'बिलम्ब जाता है' नाम स्थिर हो जाता है, फिर वह अपने स्थानको भूल जाता है, परन्तु फूलोंके नष्ट होनेपर वहाँसे निराश होकर चलता है । तैसेही जो जीव वासना आदिके वश विषयों में जाता है वा गया है सो विषयोंमें ही विलम्ब जाता है और विलम्बा है । अर्थात् जो गुरुमुखशब्द के विचार बिना विषयमें प्रवृत्त हुआ सो उसीमें आसक्त है । वासना कामकर्मके अधीन तुच्छ भोग भोगता है । और भोगकालमें भी रागद्वेषादि से पीड़ित ही रहता है । और 'अन्त हुँ' नाम मरणकालमें विषयोंका नाशकालमें भी निराश होकर चलता है । अर्थात् अज्ञान मोहादि बश विषयोंसे सदा सुख चाहता है, परन्तु मरणादि कालमें उस आशा चाहकी पूर्ति बिनाही परबशके सदृश चलना होता है । और बासनाआदि के बश अत्यन्त दुःखी होता है । और अन्य स्थान योनि आदि में फिर भी विषयकी इच्छासे अनेकों बासनाके अधीन होता है, वहाँ भी सोई दशा होती है, इससे गुरुमुखशब्दको विचार कर विषयमें जाना अन्तःकरणसे त्याग देना चाहिये इत्यादि । लिखा है कि [राज्यस्य सारं विषयेषु भोगो भोगस्य चान्ते न च किञ्चिदस्ति । विमृश्य चैतन्मुनयोऽप्यजस्रं मोक्षाधिकारं परिचिन्तयन्ति ॥ १ ॥ सदैव भोगाय तपः प्रवृत्ति र्भोगावसानेहितपो विनष्टम् । मैत्र्यादि संयोगपराङ्मुखानां विमुक्तिभाजां न तपो न भोगः ॥ २ ॥] विषयोंमें भोगकी प्राप्ति राज्यके सार हैं । और भोग के बाद कुछ नहीं रहता है । यह विचारकर मुनि लोग सदा मोक्षाधिकार की ही चिन्तन करते हैं । ॥ १ ॥ भोगके लिये सदा तपमें प्रवृत्ति होती है और भोगके अन्तकालमें वहतप नष्ट हो जाता है ।

इससे मैत्र्यादिके संयोगसे जो संसारसे पराङ्मुख, विरक्त, मुक्त पुरुष हैं उनकी न तपमें प्रवृत्ति होती है न उन्हें भोग होता है।

६७ साखी दोहा।

भवँर जाल बक जालहै, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबिर ते बांचिहैं, जाके हृदय विवेक॥ ६७॥

टीका—जिन विषयोंमें फँसकर जीव सब जन्मादिको प्राप्त होतेहैं, उन्हें जालरूपसे वर्णन करते हैं, कि लोक परलोकके विषय भवँरजाल और बकजालरूपहैं। तहाँ इसलोकके विषय भवँरजालरूपहैं, जैसे भवँरा वर्तमानपुष्पमें आसक्त होकर उसफूलमें आसक्तिसे बँधजाताहै। अथवा कमलके सम्पुट में बँधजाता है, या व्याधा आदिसे रचित जालमें स्वयं जाकर बँधताहै। तैसेही जीव सब आसक्ति से और कर्मफांस यमफांससे बँधे हुये हैं। अपने वासना आदिके अधीन सब कष्ट भोगते हैं। और जैसे कमलके सम्पुटमें भवँरा बँधता है तैसेही अपने ५ हृदय कमलमें बँधे हैं। और स्त्री विषयक वासनासे इस शरीरको त्यागकर भी उसके गर्भाशयरूप कमलमें भवँराके सदृशही बँधजाते हैं। शरीरके रहते हुये भी स्त्रीमें प्रायः बँधेरहते हैं। जिससे कठिन २ आपत्तियोंके आनेपर भी भोगसे उपराम नहीं होते हैं, इससे वर्तमान विषयादि भवँराको बाँधने वाले पुष्पोंके सदृश वा जालोंके सदृश हैं। और स्वर्गादिके भावी विषयादि बकजालके सदृश हैं, जैसे बकुला अप्राप्त मछलीके ध्यान बश बन्धनके हेतुरूप जालको नहीं देखता है, जिससे उसमें फँसकर मृत्युको प्राप्त होता है। तैसेही जीव सब स्वर्गादिके विषय सुखादिके ध्यान बश संसाररूप बन्धन माया मोहादिको नहीं देखते हैं, इससे माया मोह कर्मादि फाँसोंसे बँधाकर बारम्बार जन्ममरणादि को प्राप्त होते हैं। और इन विषयरूप भवँरजाल बकजालोंसे बँधाकर 'बहुत अचेत' नाम अविवेकी मूर्खलोग प्रथम भी संसाररूप सागरमें बूड़े हैं और बूड़ते हैं। तहाँ साहेब कहते हैं कि इस संसाररूप समुद्रमें बूड़नेसे सोई पुरुष बँचते हैं, संसारसे पार होते हैं कि जिनके हृदयमें आत्मानात्मादिका विवेक होता है। और उस विवेकसे जो अनात्म दुःखरूप अपवित्र विषयादिको त्यागते हैं उनमें आसक्त नहीं होते हैं इत्यादि। अथवा जो मनुष्य भवँरजाल नाम पुष्पमें आसक्त भवँर समुदायके सदृश हैं, और बकजाल नाम बकध्यानीके समुदायरूप हैं, सो सब अचेत बहुत पुरुष संसारात्मक सागरमें बड़े और बूड़ते हैं। किन्तु जिस किसी श्रेष्ठपुरुषके हृदयमें विवेक रहता है सोई पुरुष बँचता है। अथवा सांसारिकविषय और उनमें बिलम्बना संसाररूप समुद्रके भवँरजालरूप हैं, नाम जलके चक्रका समुदायरूप हैं, सोई जीवोंको संसारमें फंसानेके लिये 'बकजाल' नाम बक्र ढेढा कठिन जालरूप हैं। जिन भवँर समुदाय रूप दुःखद जाल फाँसी रूप विषयादिमें फंसकर 'बहुत अचेत' नाम अत्यन्त मूर्ख जीव सब बूड़गये। जिनके हृदयमें विवेक है सोई बँचेंगे, इसलिये विषयासक्तिको त्यागकर गुरुमुखशब्दका बिवेक विचारादि करो जिससे कल्याण होवे इत्यादि।

९८ साखी दोहा ।

तीनि लोक टीड़ी भया, ऊड़ा मन के साथ ।

जाने बिन भटकत फिरै, परे काल के हाथ ॥ ९८ ॥

टीका–बिबेक बिना जीवों की जैसी दशा होती है उसका वर्णन करते हैं कि केवल मर्त्यलोक बासी वा मनुष्यही भवँरजालमें पड़कर नहीं बूड़ते हैं, किन्तु मनके साथ उड़ता हुआ 'तीनों लोक टीड़ी भया है' अर्थात् मनोरथके अधीन विषयादिमें प्रवृत्त होनेवाले तीनों लोकके जीव सब विवेक बिचारादि बिना अनेकों योनि आदिमें टीड़ीके सदृश भरमते हैं। और जैसे टीड़ी पांख होनेपर उड़ती है और जहां तहां भटकती है फिर अपने स्थानपर नहीं जाती है, किन्तु काकादि उसे पकड़कर खालेते हैं। तैसेही चिदानन्द रूप आत्माको जाने विना तथा विषयोंको दुःखद जाल रूप जाने बिना विवेक विचारादि रहित सब मनुष्य देवादि भी विषय सुखादि की इच्छा वासनासे मनके साथ होकर भटकते फिरते हैं। और सर्वत्र बारम्बार कालके हाथमें परते हैं, नाम मरते दुःख भोगते हैं। अथवा यह जीव विवेक विना तीनलोक तथा तीनअवस्था मात्रमें उड़नेवाला टीड़ी हुआ है, मनके साथ उड़ता है। ज्ञानबिना भटकता फिरता है और कालके हाथमें परता है। या जानेविना भटकता है और जाननेसे कालका हाथसे परे नाम भिन्न होजाता है। (हरिजन हरि जाने बिना) यह तृतीय पादका पाठ भेद है, अर्थ भेद है कि सात्विक राजस तामस तीनों प्रकारके लोक टीड़ी हुआ, और मनके साथ उड़ा, और हरिजन नाम ज्ञानी गुरुको तथा हरि नाम सर्वात्मस्वरूप ईश्वरको जानेबिना, अथवा हरिजन होकर हरिको जानेबिना, अथवा हरिजनको हरिरूप जानेबिना कालके हाथमें परा। अथवा हरिजन तथा हरिको कालके हाथसे परे जानेबिना तीनलोक टीड़ी हुआ और मनके साथ उड़ा इत्यादि।

९९ साखी दोहा ।

नाना रङ्ग तरङ्ग है, मन मकरन्द असूझ ।

कहहिं कबीर पुकारिके, अकल कला लै बूझ ॥ ९९ ॥

टीका—विवेक रहित मनके संकल्प विकल्पादिरूप वृत्तियोंको संसार समुद्रके दुःखद तरङ्ग रूपसे, और विषयानन्दादिको मादक मकरन्द अर्थात् पुष्प रस रूपसे, वर्णन करते हैं, और तत्त्वोपदेशदेते हैं, कि हे सज्जनो ! जिस मनके साथ जीव उड़ता है उस मनके ही 'नाना रङ्ग' नाम संकल्प विकल्प इच्छाभय क्रोध लोभादिरूप आकार, इस सँसारात्मक सागरके तरङ्गरूप हैं। और मनरूप भँवराको जो विषयरूप पुष्पमें मकरन्द नाम रस भासते हैं

नाम मनके बशबर्ती जीवोंको जो विषयोंमें आनन्द भासते हैं, सोई मादक मकरन्द हैं, जिनसे जीव सब असूझ हुये ह। अर्थात् मनके रङ्गरूप तरङ्गोंसे इन मकरन्दोंमें आसक्त होनेसे जीव सब अज्ञानी सँसारी भटकने वाले हुये हैं, इससे साहेब पुकारकर कहते हैं कि हे सज्जनो! वस्तुतो 'अकल' नाम सब कला अवयवसे रहित ब्रह्मात्माकेही 'कलाओं' को गुरुसे बूझलो। अर्थात् गुरुसे पूछकर पूर्ब बर्णित षोडश कलाओंको अकल आत्मामें कल्पित जानकर मनके रङ्ग और उक्त मकरन्दोंको त्यागो। अथवा अकल और कलायुक्तको बूझलो। या अकलवस्तुमें कलाओंके लयको बूझो,जानो, जिससे कल्याण होवे और भटकना छूट जावे इत्यादि। अथवा हे सज्जनो! साँसारिक नाना रङ्ग नाम नाना विषयपुष्प सँसाररूप सागरके तरङ्ग हैं, और मनहीं मकरन्द है, उन तरङ्गोंके बशबर्ती और मादक मनमकरन्दको पान करनेवाला जीवरूप भवँरा असूझ हुआ है। अथवा मनके सँसार विषयक रागसे जीव असूझ दृष्टिहीन हुआ है, इससे साहेब पुकारके कहते हैं कि हे सज्जनो! अपनी 'अकल' नाम बुद्धि की 'कला' नाम प्रकाश कुशलता लेकर नाम प्राप्त करके बूझलो जिससे तेरा कल्याण होवे। अथवा मनके नाना रङ्ग तरङ्ग हैं, और मनके मकरन्दरसभी 'असूझ'नाम अनन्त हैं, इससे इन्हें बुद्धि की कलासे समझो वा सबको निरवयव आत्माके कलारूप जानकर इन्हें त्यागो। अथवा हे सज्जनो! मनके जो नाना रङ्ग हैं सोई तरङ्ग हैं, जिनसे मनहीं में आत्मानन्द रूप मकरन्द है नाम उत्तमरस है सो तुझे नहीं सूझता है इसलिये बुद्धि की कलासे उन तरङ्गोंको नष्ट करके उस मकरन्दको बूझो और प्राप्त करो जिससे उड़ना भटकना छूट जावे इत्यादि।

१०० साखी दोहा।

बाजीगर का बान्दरा, अस जिव मन के साथ।
नाना नाँच नचाय के, राखै अपने हाथ॥ १००॥

टीका। पूर्वकही रीतिसे समझेबिना जो मन जीवोंको दुःख देताहै, उसीकी शक्ति विशेषका वर्णन करते हैं कि जैसे बाजीगरका बन्दर अज्ञानादि बश उसके साथ रहता है। और वह नाना नाँच नचाके उस बन्दरको अपने हाथमें रखता है। 'अस' नाम इसीप्रकार अज्ञानी गुरुमुखशब्दके बिचारसे रहित जीव मनके साथ रहते हैं। और उसके साथ उड़ते भटकते हैं। और वह मन इन जीवोंको नाना योनियोंमें तथा अनेकों देशादिमें नाना नाँच नचाकर फिर भी अपने बशमें रखता है। अर्थात् विचारादि रहित मनुष्य मनमाने अनेक कर्मादिसे संसार में अनेकों कष्ट भोगते हैं, तौभी मनमाने कर्मोंमें ही प्रवृत्त होते हैं। यह अविद्या की अद्भुत महिमा है, इसलिये विचार विवेक ज्ञानसे उसे नष्ट करना चाहिये इत्यादि।

१०१ साखी दोहा।

मन रङ्गे सब रङ्गिया, रङ्गिया रङ्ग कुरङ्ग।

कहहिं कबिर कस बांचिहो, बसेहु शब्द के सङ्ग ॥ १०१ ॥

टीका-विवेक विचारादि बिना और भी जीवों की जो दशायें हैं उसका वर्णन करते हैं कि हे मनुष्यो! काम संकल्पादि जो मनके रङ्ग हैं, उनमेंही तुम सब रङ्गे हो। और उन कामादिकों में भी जो कुरङ्ग हैं नाम परस्त्री धनादि विषयक जो कामादि हैं उनमें रङ्गे हो। और उन कुरङ्गों से रङ्गाकर 'शब्द' नाम विषयोंके सङ्ग बसे हो, तो साहेब कहते हैं कि कैसे बँच सकते हो नाम किस प्रकार संसाररूप बन्धनसे दुःखसे छूट सकतेहो, और कैसे सुखी होसकते हो, अर्थात् किसी प्रकार कुरङ्गमें रङ्गे, रहने पर भी नहीं बँच सकते हो, इसलिये मनके रङ्ग तथा कुरङ्गको त्याग दो। और काम संकल्प धृति आदि सब मनके परिणाम होनेसे मनरूप हैं, उन्हें अपने धर्मादि नही समझो न उनके आधीन होजावो तब तेरा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं होसकता है। अथवा काम संकाल्पादि मनके रङ्गमें सब रङ्गे हैं। और चञ्चलता चोरी आदि आगे वर्णित कुरङ्गों में भी सब जीव रङ्गे हैं। अर्थात् मनके शुद्धता धैर्य, विचारादि भी रङ्ग हैं, परन्तु उनरङ्गोंमें नहीं रङ्गाकर अधिक लोग चञ्चलता चोरी आदि कुरङ्गोंही में रङ्गे हैं। और उन रङ्गोमें रङ्गाकर असारशब्द और उसके उपदेशक गुरुवाओंके साथ जो जीव सब बसे हैं, उनमें मन लगाते हैं, उनसे साहेब कहते हैं कि तुम शब्दके सङ्गमें बसे हो तो कैसे बँच सकते हो, अर्थात् तुम्हारा मन स्वभावसे ही चञ्चल है और फिर भी अनेकों असारशब्द सुनते हो मिथ्यापदार्थोंमें मन लगातेहो अशान्त पुरुषोंके सङ्ग करतेहो तो कैसे शान्त सुखी हो सकते हो, किन्तु नहीं हो सकते हो। इससे गुरुवा आदिकोंके असारशब्दोंको त्यागपूर्वक सारशब्दके सङ्ग बसो जिससे कल्याण होवे। अथवा हे सज्जनो! मनकेही रङ्गोंमें संसारके सब वस्तु रङ्गे हैं, क्योंकि एकही स्त्री व्यक्ति मानस भावनाओंके अधीन अनेक पुरुषोंकी दृष्टिमें पुत्री, बहन, भार्या, माता आदि भासती है। तथा एकरत्नादि भी पुरुषोंकी दृष्टिमें अनेकरूप भासते हैं। विरक्त लोभी चोर उसके स्वामी दरिद्रादि एकही रत्नको मानस भावनाओंके अधीन अनेकरूप देखते हैं। तैसेही सब वस्तुओंमें जानना चाहिये। इससे सबपदार्थ मनके रङ्गों से रङ्गे हैं। परन्तु साहेब कहते हैं कि तुम मनके कुरङ्गरङ्गसे रङ्गे हो, और असतशब्दके सङ्गमें बसेहो तो कैसे बँच सकतेहो, शान्ति, शुद्धता आदि सुरङ्गमें रङ्गो जिससे कल्याण होवे इत्यादि। श्रुति आदि भी कही हैं।

[कामःसंकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वंमनएव॥१॥ समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे। यद्येवंब्रह्मणि स्यात्तत्को न मुच्यतेबन्धनात् ॥ २ ॥ सर्वप्रत्ययसाक्षित्वा दविकारीचसर्वगः। विक्रियेतयदि द्रष्टा

बुद्धयादीवाऽल्पविद्भवेत् ॥ ३ ॥] कामादि सभी मनरूप ही हैं ॥ १ ॥ प्राणियों के चित्त जैसे विषयमें आसक्त हैं तैसे यदि ब्रह्मात्मामें होवे तो कौन बन्धनसे नहीं मुक्त होवे ? द्रष्टा आत्मा सब वृत्तिरूप ज्ञानका साक्षी होनेसे अविकारी और विभु है यदि वह विकारी होगा तो सबका साक्षी नहीं होगा किन्तु बुद्धि आदि के सदृश अल्पज्ञही होगा ॥

१०२ साखी दोहा

इ मन चञ्चल इ मन चोर, इ मन शुद्ध ठगहार ।
मन मन कहत सुर नर मुनि, मन के लक्ष दुआर ॥ १०२ ॥

टीका—मनके रङ्गोंका संक्षेपसे वर्णन करतेहैं कि यह मनहीं अदृष्ट, बासना, और सङ्गादि के अधीन चञ्चल होताहै, तथा चोर होता है, और शुद्ध, छलादि रहित, सत्यभाव, और समदृष्टि आदि वालाहोता है, और 'ठगहार' नाम छली असत्यभाव और विषमदृष्टि वाला भी होता है, इससे 'सुर' नाम श्रेष्ठ देवता तथा श्रेष्ठ मनुष्य और मननशील मुनि सभी मन मन कहते हैं । अर्थात् सब संसार मनके अधीन है चञ्चल चोरादि मनहीहै आत्मामें चञ्चल चोरादिपन नहीं है, किन्तु भ्रमसे अनेक धर्म भासते हैं । और वस्तुत आत्मामें संसार नहीं है, किन्तु अज्ञानसे भासता है । इससे ज्ञान, विज्ञान, अज्ञान, हर्ष, शोक, दुःख और सुखादिभी मनहीं है ये मनमेंही हैं इसप्रकार श्रेष्ठ सुरआदि कहते हैं । और उस मनको वशमें करनाभी सब चाहते हैं, परन्तु साहेब कहतेहैं कि उस मनको विषयादिमें भागनेके लिये लाखों द्वारहैं, इससे एक द्वारके रोकनेपर दूसरेसे दूसके रोकनेपर तीसरे से मन भागताही है इसलिये इसे रोकनेके लिये महान् यत्नकी आवश्यकताहै । अथवा सुरआदि सब कहतेहैं कि मन चञ्चल है इसे रोकना चाहिये इत्यादि परन्तु तौभी वह नहीं रुकता है, क्योंकि उसके लाखों द्वारहैं । या मनके लाखों द्वार नाम परिणाम वृत्तियाँ होतीहैं, इससे उन सभोंको सुरआदि मन मनकहतेहैं (ईमन चञ्चल चोरई, ईमन शुद्ध ठगार । मनकरि सुर मुनि जहँड़िया, मनके लक्ष दुआर) ऐसा पाठ भेदहै, भाव यह है कि जो यह मन चञ्चल चोरादिहै, उसमन करकेही देव मुनिभी जहँड़े जिस मनके लाखों द्वारहैं ॥

१०३ साखी दोहा ।

बिरह भुवङ्गम पैठिके, कीन्ह कलेजे घाव ।
साधु अङ्ग नहिं मोरहीं, ज्यों भावै त्यों खाव ॥ १०३ ॥

टीका—गुरुवा तथा शब्दके सङ्गमें बसनेसे जिनके मन चञ्चल रहतेहैं उनकी दशाका वर्णन करतेहैं कि अनेकों शब्दोंको सुननेसे तथा बिषयोंमें आसक्ति होनेसे जो जीवोंको आत्मवस्तु

से 'बिरह' नाम वियोग सिद्धहै। तथा उसके बिरह नाम अभावके जो निश्चय हुआहै। अथवा अपने पतिसे 'बिरह' नाम वियोगका जो निश्चय हुआहै सो 'बिरह भुवङ्गम' नाम सर्पके सदृशहै सो शब्दोंके सङ्गसे ही जीवोंके हृदयमें पैठकर कलेजेमें घाव करदियाहै। अर्थात् हृदयके अन्दर जो आत्मा और पतिसे वियोगका निश्चय हुआहै सोई अनेकों शोक मोहादिरूप घाव कियाहै। तैसेही सत् चिदानन्दात्माके अभाव निश्चयादि भी शोकादिरूप घाव कियेहैं, और कर रहे हैं, परन्तु तौभी दृढ़ विवेक विचारादि बिना 'साधु' नाम सज्जन जिज्ञासु आदि भी उस बिरह भुवङ्गमसे अङ्ग नहीं मोरते हैं। मन नहीं हटाते हैं, किन्तु तन मनका अर्पण उसीके प्रति करतेहैं, कि ज्यों भावै नाम जैसे चाहो तैसे खावो। अर्थात् आत्मवस्तु के बिरही अनात्म विषयआदि मेंहीं तन मन बचनका अर्पण कियेहैं जो महादुःखद है। और पतिसे बिरह मानने वाले उसपति से मिलने के लिये कष्ट साध्यतपआदि में तन मन आदिका अर्पण करते हैं सुखमय आत्मबिचारादि नहीं करते हैं सोई मानों उक्त सर्पके प्रति तन मनादिका अर्पण करते हैं। अथवा 'बिरह' नाम अज्ञानरूप भुवङ्गम हृदयमें पैठकर काम, क्रोधादिरूप घाव किया है, जो पुरुष उन घावोंके तरफसे 'साधु' नाम अत्यन्त कुशलता पूर्वक युक्ति से अङ्गको नाम मनको नहीं मोरतेहैं, उन्हें वह बिरह भुवङ्गम जैसे चाहता है तैसे खाताहै॥ [स्वरूप आत्मनः स्थान माहुर्निःश्रेयसंबुधाः । ततोऽन्येनाभिसम्बन्ध आत्मनोऽज्ञानहेतुकः ॥] ज्ञानी लोग अपने स्वरूपमें स्थितिको मुक्ति कहते हैं उस आत्मा से अन्य के साथ सम्बन्ध को अज्ञान जन्य बताते हैं॥ साधुन अङ्ग न मोरहीं ॥ यह पाठ भेद है अर्थ स्पष्ट है॥

१०४ साखी दोहा ।

करक करेजे गड़ि रहा, वचन बर्छि के फाँस ।
निकसाये निकसे नहीं, रहा सो काहु गांस ॥ १०४ ॥

टीका। और भी साहेब कहते हैं कि गुरुआओंके बचनरूप बर्छियोंके 'फांस' नाम भालाओंके नाककर्णिका जीवोंके कलेजे में गड़ रही है नाम उनके अर्थ हृदयमें धँस गये हैं, और सोई 'करकते हैं' नाम बारम्बार पीड़ित करते हैं। पतिसे बिरहादि बोधक बचन बर्छिके फांस अंकुश कड़कते हैं। और जिसके हृदयमें वे फांस दृढ़ता पूर्वक गड़गये हैं उसके हृदयसे यदि गुरुमहात्मा निकालते हैं, तौ भी वे सर्वथा नहीं निकलते हैं। अर्थात् उपदेशों से निकालने परभी, उसकी बासना आदि नहीं निकलती हैं, इससे काहुगांसि नाम किसी सन्धीमें वे फांस रह जाते हैं। अर्थात् वह जीव बिरही रह जाता है अपना कल्पित पतिसे वियोग किसी न किसी रूपसे मानताही है। और यथार्थज्ञान बिना आत्मस्वरूप वास्तविक पतिसे भी उसको वियोगके तुल्यही रहता है और कल्पितसे भी वियोग रहता है, इससे उन वचन रूप बर्छियोंके फांससे सदा दुःखी रहता है। बर्छिके वृक्षपाठ भेद है, अर्थ है कि शब्दके सङ्ग बसनेसे बचन रूप वृक्षकेफांस नाम खैंच सूक्ष्म अवयव रूपकांटा

जीवोंके कलेजेमें गड़ रहा है, और सदा करकना है निकालनेसे भी नहीं निकलता है, किन्तु किसी सन्धीमें रह जाता है स्वर्गादिकी बातोंको सुनकर उनकी बासना रह जाती है। स्त्री आदिके शब्दों की बासनायें रह जाती हैं, जिन्हें निकालना कठिन होता है, इससे सङ्ग त्याग पूर्वक महायत्न करने सेही ये फांस निकाले जाते हैं अन्यथा नहीं निकल सकते हैं।

१०५ साखी दोहा।

बिरह भुवङ्गम तन डंस्यो, मन्त्र न मानै कोय।
राम वियोगी ना जीवै, जिवै त बौरा होय ॥ १०५ ॥

टीका। बचनबर्छिके फांसको नहीं निकलनेमें हेतु बताते हैं। और बिरहियोंकी दशाका बर्णन करते हैं कि असारशब्दोंके सङ्गमें बसनेसे, जिन्हें बिरह भुवङ्गम तनमें दंश लिया है नाम काट लिया है। अर्थात् जिन्हें आत्मा परमात्माके अभाव वियोगादिका निश्चय गुरुवाओंके बचनादिसे हो गया है, वे लोग सतगुरुके उपदेशरूप 'कोय' नाम कोई मन्त्र नहीं मानते हैं, इसीसे वे 'राम वियोगी' नाम ईश्वरके बिरहसे तथा आत्मारामके बिरहसे युक्त वे बिरही लोग जीते भी नहीं हैं। अर्थात् नित्य चेतनात्मारूपसे सदा स्थिर नहीं होते हैं, किन्तु शरीराभिमानी होकर बारम्बार मरणको ही प्राप्त होते हैं। और शरीरके वर्तमानकालमें शरीरीरूपसे जबतक जीते हैं, तबतक भी 'बौरा' नाम अज्ञानी पागल होकर जीते हैं। अर्थात् उस रामके वियोग चिन्ताआदि जन्य दुःख से बदहोस होकर जीते हैं और मरते हैं इसप्रकार संसारमें भ्रमते हैं। अथवा जिसको असदुपदेश रूप बिरह भुवङ्गम तनमें दंशा है अर्थात् रामसे वियोगादिके उपदेशरूप सर्प जिसके तनमें काट लिये हैं, जिससे विषय लोक भेदादिकी बासना विषसब जिसके अन्तःकरणमें छा लिये हैं, और वे विष गाढ़ होनेसे जब कोई मन्त्रको नहीं मानते हैं नाम उपदेशसे निवृत्त नहीं होते हैं, तब वह रामवियोगी जीव नहीं जीता है और यदि जीता है तौभी बौरा हुआ रहता है ॥ [**यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्चपरस्यच। भिन्नदृष्टेर्भयंमृत्युस्तस्य कुर्यान्नसंशयः**] जो पुरुष अपने आत्मा और परमात्मामें भेददृष्टि करता है उस भिन्न दृष्टि वालेको मृत्यु भय प्राप्त कराती है इसमें संशय नहीं है ॥ रामगीता ॥

१०६ साखी दोहा।

राम वियोगी विकल तन, इन दुःखवै मति कोय।
छूवतहीं मरि जाहिगें, ताला बेली होय ॥ १०६ ॥

टीका। विवेक वैराग्यादि युक्त अधिकारियोंके प्रति और अनुभवी सत्सङ्गी दुराग्रह रहित पुरुषोंके प्रति साहेब कहते हैं, कि जिन पुरुषोंको बिरहभुवङ्गम तनमें डँसा है, इससे जिन राम वियोगियों के तन नाम बुद्धि विकल हैं, जैसे कामबश बिरहिणी स्त्रीका तन विकल रहता है, तैसे

ही जिनके हाल हैं, हे सज्जनो! इन पुरुषोंको कोईभी मति दुखावो, इनसे ऐसी बात नहीं कहो कि जिससे ये लोग दुःखी होवें। इन्हें युक्तिसे समझावो, यदि समझें तो ठीकही है, नहीं समझें तो छोड़ दो। जिसमें लगे हैं उसीमें लगे रहने दो, नहीं तो ये लोग छूतेही मरजावेंगे नाम इनके असत समझका निषेध करतेही ये लोग नष्ट होजावेंगे, क्योंकि ये'तालाबेली' नाम लज्लावन्ती नामक तृणविशेषके सदृश 'होय' नाम होते हैं। जैसे लज्जावन्ती छूतेही संकुचित हो जाती है, तैसेही दृढ़ बिरही उनसे माने हुये असत वस्तुओंका निषेध करनेपर क्रोधादिसे मूर्छित होजाते हैं। और ज्ञानकी योग्यता नहीं रहनेसे कोई बिरही सतउपदेशको नहीं समझनेसे वा विपरीत समझनेसे कर्म धर्म ब्रह्म सबसे भ्रष्ट होजाते हैं। अथवा तालाबेली नाम तापयुक्त बेली स्त्री सदृश रहते हैं इससे मानो छूतेही मरजाते हैं। इसलिये इन्हें धीरे २ सतमार्ग पर युक्तिसे लावो यदि आसकें नहीं तो छोड़ दो दुःखावो नही। अथवा बिचारादिसे अत्यन्तविमुख जो बिरही बिचारादिकी बात सुनतेही क्रोधादियुक्त होजाते हैं। उनके विषयमें व्यङ्गबचन कहकर समझाते हैं कि रामसे वियोगीके तन अज्ञान शोकसे स्वयं विकल रहता है, इसमें विकलता बश यदि वे लोग तुम्हें दुखावें भी तो, हे सज्जनो! तुम कोई भी इन बिरहियोंको नही दुखावो। क्योंकि तुम समर्थहो उनके अपकारोंको सह सकते हो और वे लोग छूतेही मर जावेंगे, क्योंकि इनमें प्रथमसेही तालाबेली नाम ताप घबराहटादि होरहे हैं। बिरह भुजङ्गमके विष इनके अन्दर तलफ रहा है इत्यादि। अथवा गुरुवाओंसे कहते हैं कि हेगुरुआ लोगो! जो जीव आत्मारामके वियोगी स्वयं अज्ञानसे बने हैं, उन्हें असत-उपदेश देकर तुम मत दुखावो, नही तो वे लोग छूतेही मरजायँगे अत्यन्त अनात्म परायण हो जावेंगे। तब तुझे संसारकोटमें बन्द करनेवाला 'ताला' रूप 'बेली' प्राप्त होगी नाम तेरे पापसे मायारूप बेली तुझे संसारमें बन्द करेगी इससे उन्हें असतमार्ग कष्टमें नहीं फँसावो इत्यादि।

१०७ साखी दोहा

काला सर्प शरीर महँ, खाइन सब जग झारि।
बिरला ते जन बांचि हैं, रामहिं भजैं बिचारि॥ १०७॥

टीका—उन बिरही रामवियोगियों को जिस रीतिसे समझाना सतमार्गमें लाना चाहिये उसका सक्षेपसे वर्णन करते हैं कि हेरामवियोगियो! काल तथा अज्ञान काम, क्रोध, लोभ और मोहादि जो राजस, तामस पदार्थ हैं, सोई इस शरीरके अन्दर महाविषधर कालासर्प हैं। और वे सर्प सब जगको झारिकर खाये हैं और खाते हैं। परन्तु इन सर्पोंसे वे बिरलेजन बचेंगे और बँचते हैं, जो शुभप्रवृत्ति सत निष्कामधर्म पूर्वक रामके पूर्णविवेक विचारका सम्पादन करते हैं। और पूर्णबिवेक बिचार करके अन्यका त्यागपूर्वक जो सर्वात्मरामहीको भजते हैं इत्यादि।

भाव यह है कि अमुक राम वा खुदाआदि एकदेशी आदि होनेसे ईश्वर चैतन्य आनन्दस्वरूप नहीं हैं, तेरा कथन मिथ्या है वा तुम्हीं रामादि हो । इसप्रकार प्रथम कहनेसे रामवियोगी वा अनधिकारी लोग क्रोधित दुःखी मार्गभ्रष्टादि होते हैं । इससे उन्हें प्रथम सुविचार भूमिमें लाकर ब्रह्मात्माका बोध कराना चाहिये । और समझाना चाहिये कि तेराही स्वरूप राम तथा ब्रह्म है उसी का अज्ञान तथा मोह कामादिसे सँसारमें बँधे हो इत्यादि । और तुम्हारे समझके अनुसार एक-देशी ईश्वरको भी द्वेषादि रहित होनेसे तुम अपनेही अज्ञान काम कर्मादिसे बन्दर शुक पशु आदिके सदृश स्नेहादि करके बँधे हो, यदि तुम नित्यानन्दरूप आत्माको जानकर सब कामकर्म वासनादिको नष्टकर दो तो तुझे ईश्वर भी नहीं बांध सकता है। और वस्तुत एकदेशी एकरूपवाला एक ईश्वरसे अचिन्त्य महान् जगतके कार्य नहीं सिद्ध हो सकते हैं । इससे अनन्तशक्ति देशादिकृत अन्तरहित सर्वात्मस्वरूपही राम हैं उस चेतनात्मा राममें केवल उपाधिसे भेद है । वास्तविक भेदमें कोई प्रबल प्रमाणादि नहीं है । इसलिये गुरुमुखशब्दका विचार करके उसी रामको भजो जिससे पूर्वकहे सर्पों से बचोगे इत्यादि समझाना चाहिये । अथवा साहेब उपदेश देते हैं कि रामके वियोगी सब जगको झारकर कालासर्परूप अविद्या, तमोगुण, पाप और दुःख ये सब खायलेते हैं, जो शरीरमेंही रहते हैं । जो कोई गुरुके शब्दको रामको विचारकर रामहीको भजता है सोई विरला पुरुष बँचता है और बँचेगा । इसलिये हे मनुष्यो ! विचारकर रामको भजो । राम गीता में लिखा है कि [यदा परात्मात्मविभेदभेदकं विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम् । तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा सकारकाकारणमात्मसंसृतेः] जब परमात्मा जीवके भेद का नाशक भास्वरज्ञान अन्तःकरणमें उत्पन्न होता है तब संसारके कारण कारक सहित माया शीघ्र ही लीन हो जाती है ॥

१०८ साखी दोहा ।

काल खड़ा शिर ऊपरे, जागु विराणे मींत ।
जाका घर है गैल में, सो क्यों सोव निचींत ॥ १०८ ॥

टीका—और भी समझानेकी रीति बताते हैं वा उपदेश देतेहैं कि 'हे बिराने मीत !' नाम हे अनात्म वस्तुओंके मित्ररूप रामवियोगियो ! सब प्राणियोंके ' शिरके ऊपर' काल खड़ा है, इससे शीघ्र जागो नाम अज्ञान मोहरूप निद्राको त्यागो, और उसे त्यागनेके लिये सदा विचार सत्सङ्गादि करो, क्योंकि जिसका घर ' गैल ' नाम एकान्तमें है सो निश्चिन्त होकर क्यों नाम कैसे सोय सकता है । तेराघर भी हृदयरूप एकान्तदेशमें है, जहाँ काम क्रोधादिरूप चोरों के और मृत्युरूप डांकूका भय बना रहताहै । तौभी तुम अनात्मरूप पतिके भरोसे क्यों सोते हो, उसे भी अन्य देशादि में बसनेसे उससे भी गैल नाम परोक्षमें तेरा घर है । इससे अन्यकी आशाको त्यागकर जागो और

अपनी रक्षा ज्ञानादिसे आपही करो। वस्तुतो अपनी रक्षा आपसेही होसकती है किसी अनात्मासे नहीं होसकती है सो जानो। अथवा जिनके अनात्मवस्तु मित्रहैं, और उनकेही भरोसे जो सोयेहैं। उनके प्रति कहतेहैं कि हे विराने मीतवालो! विरानेको मीत करनेसेही तेरे शिरके ऊपर सदा मृत्यु मन मायारूप काल खड़ा रहताहै। और तुम उन मित्रोंकी आशासे मोहनिद्रायुक्त रहते हो, परन्तु उन मीत्रोंसे तेरा कल्याण नहीं होताहै, इससे मोहनिद्राको त्यागो और जागो, क्योंकि जिसका घर गैलमें नाम एकान्तमें ग्रामसे बाहर होवे सो निश्चिन्त नहीं सो सकताहै। तैसेही तेरा शरीररूप घर संसारमार्गमें है तथा मन बुद्धिरूप घर भी संसारमें है संसारसे परवस्तुमें नहीं प्राप्त हुआहै, इससे निश्चिन्त नहीं होजावो किन्तु आत्मचिन्तन विचारादि किया करो, ब्रह्मात्मारूप आनन्दसहरमें प्राप्त होनेपर निश्चिन्त होना इत्यादि। गारुडपु० में लिखाहै कि [कालोनज्ञायते नाना कार्यैःसंसारसम्भवैः।सुखंदुःखंजनोहन्त नवेत्तिहितमात्मनः॥प्रारब्धव्येनिरुद्योगो जागर्तव्ये प्रसुप्तकः। विश्वस्तव्यो भयस्थाने हा नरः को न हन्यते] संसारके हेतुरूप नाना कार्योंसे काल मनुष्योंको नहीं जान पड़ता है, और न सुखदुःख जान पड़ते हैं परन्तु खेद है कि यह जन अपना हित जानता भी नहीं है। अर्थात् मोक्षका उपाय नहीं जानता है, इससे अपना अहित आपही करता है। और प्रारम्भ करनेयोग्य मोक्षके उपायोंमें उद्योग रहित रहता है जागने योग्य ब्रह्मविचार चिन्तनमें सोया रहता है भयके स्थान संसारमें विश्वास करता है तो खेद है कि ऐसा कौन मनुष्य यमसे नहीं मारा जावेगा ?।

१०९ साखी दोहा।

कलि काठी कालो घुना, यतन यतन घुन खाय।
काया मध्ये काल बस, मरम कोइ नहिं पाय॥ १०९॥

टीका—फिर भी समझाने की रीतिका वा उपदेशका वर्णन करते हैं, तहां [कलिःशयानो भवति संजिहानस्तुद्वापरः । उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतंसम्पद्यते चरन्] धर्मादिका ज्ञानसे रहित कर्तव्याकर्तव्यमें मोहयुक्त पुरुष कलि होता है। जानने वाला द्वापरके सदृश होता है। और कल्याणके लिये सतधर्मादि विषयक यत्न करनेवाला त्रेता होता है। धर्मादिके ठीक २ आचरण करलेनेपर कृतयुग रूप पुरुष होता है। इस शास्त्रके अनुसार अज्ञानी कलि है। सोई अज्ञान मोह निद्रायुक्त पुरुष 'काठी' नाम लकड़ी है। और 'काल' नाम यम मृत्यु घुन है सो घुन 'यतन २' नाम अनेकों युक्तियोंसे कलिरूप काष्ठको खाता है। अथवा जबतक जानकर भी मोक्षके लिये आचरण पुरुष नहीं करते हैं, तबतक मानस इच्छा आदि रूप अनेकों यत्न करनेपर भी वह घुन खाताही है। मानस वाचिक कायिक तीनों धारणा ठीक होनेपर कालका वश नहीं चलता है। अथवा अज्ञान कामादि रूप काल अनेकों मिथ्या यत्न उपाय जीवोंसे ही

कराकर इन्हें खाता है। और वह नाश करनेवाला काल सब प्राणियोंके 'काया' नाम शरीर मेंही बसता है, परन्तु मोह निद्रा वश उसका मर्म कोई कलिरूप अज्ञानियों नहीं जानते हैं, इससे उसके बशमें बारम्बार पड़ते हैं। भाव यह है कि अज्ञानियोंके मन, काम, क्रोध और संशयादिकही वस्तुतः शरीरके अन्दर काल हैं, परन्तु उनसे रहित होनेके लिये अज्ञानी लोग भेद नहीं जानते हैं। इससे जन्म मरणके बशमें पड़ते हैं इत्यादि। अथवा कलि नाम कलह अज्ञान जन्य द्वेषादिके स्थानरूप शरीर काष्ठ है, काल नाम यम घुन है, सो यतन यतनसे शरीरको खाता है। और वह शरीरके भीतर है, परन्तु उसके मर्मको कोई नहीं जानता है। अर्थात् वह भी आत्मवस्तु में कल्पित है सो कोई विरलाही समझता है। और अन्यलोग इस शरीरमें अभिमान पूर्बक मोह निद्रामें सोये रहते हैं कि इतनेही में वह काल नष्ट कर देता है इत्यादि। [काया काठी काल घुन] यह पाठ भेद है। अर्थ स्पष्ट है।

११० साखी दोहा

मन माया की कोठरी, तन संशय का कोट।
विषहर मन्त्र न मानये, काल सर्प का चोट॥ ११०॥

टीका-शरीरके अन्दर रहनेवाले कालका वर्णन करते हैं कि सूक्ष्मस्वरूप मन मायाकी कोठरी है नाम मायासे रचित मायामय कोठरीरूप मन है, इससे उसमें पैठनेही सब पदार्थ विपरीत भासते हैं। अथवा छल, प्रपञ्च, मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरणादिरूप मायाकी कोठरीरूप मन है, छलादि सब अबशीभूत मनमेंही रहते हैं, इससे मनके वशवर्ति पुरुष छलादि में प्रवृत्त होते हैं। अथवा अनिर्वचनीय अद्भुतस्वरूप स्वभाववाली जैसे माया है तैसेही मनभी है, इससे मानों मायाकी कोठरीरूप उसको रहनेके लिये स्थानरूपही मन है। इसीसे उसके बशीभूत पुरुष भी मायाकी कोठरीरूप होते हैं। और तन नाम शरीर संशयका कोटरूप है नाम उसके कार्यरूप है, इससे इसका निश्चय नहीं होता है कि कबतक किसप्रकार रहेगा कब किस प्रकार नष्ट होगा किस कर्मसे हुआ है, इससे प्रथम कौन शरीर था फिर कौन होगा इत्यादि। अथवा आत्मवस्तु विषयक संशयके कार्यरूप कोट शरीर है। इससे इसे उत्पन्न होनेपर इसमें आसक्त पुरुषोंको अनेकों संशय होते हैं कि मुझे पैदा करनेवाला कौन है? कैसा है? कहां रहता है? किसप्रकार मिलेगा? कैसे प्रसन्न होगा? इत्यादि। अथवा करोड़ों संशयोंको रहनेके लिये कोटरूप यह शरीर है और इसमें अभिमान करनेहीसे जीव संशयके कोट होते हैं, इससे इनके ऊपर कालरूप सर्प चोट करता है। और विषहर मन्त्ररूप रहस्यउपदेशको भी नहीं मानता है। भाव यह है कि वह माया तथा संशयही काल है वा कालके प्राप्तिका हेतु है। उन्हें अभ्यास वैराग्यादिसे नष्ट होनेपरही

कल्याण होता है। अथवा तन नाम शरीरही मन और मायाकी कोठरी है और संशयका कोटरूप है। और वे मन माया संशय तीनों कालके नाम मृत्युके हेतुरूप सर्प हैं, वे तीनों सर्प जिसपर चोट करते हैं सो पुरुष विषयरूप विषको हरनेवाला मन्त्रको नहीं मानता है, इसे प्रथम अभ्यासादिसे मन आदिकी चोटोंका नाम धावाका निवारण करना चाहिये जिससे कल्याण होवे। अथवा जिज्ञासा हुई कि कायामें रहनेवाले कालको कौन नहीं जानता है? तब साहेब कहते हैं कि जिनके मन माया की कोठरी है नाम शुद्ध नहीं है, और तन संशयका कोट है नाम आत्मवस्तु विषयक संशय विपर्ययके कोटरूप जिनका शरीर है, वे लोग पूर्ण मनन विचारादि बिना उक्त कालके मर्मको नहीं जानते हैं। इसीसे कालरूप सर्पकी चोट विषहरमन्त्रको भी नहीं मानता है॥

१११ साखी दोहा।

मन माया दुइ एकहै, माया मनहिं समाय।
तीनि लोक संशय परी, काहि कहो समुझाय॥ १११॥

टीका-जिसप्रकार मन मायाकी कोठरी है, और तन संशयका कोटहै सो संक्षेपसे कहतेहैं, तहां [**विश्वरूपतयैवेदं तनोतिमलिनंमनः॥ इन्द्रोमायाभिःपुरुरूपईयते॥ मायांतुप्रकृतिं विद्यात्**] मलिन मनही समष्टिव्यष्टि रूपसे इस जगतका विस्तार करताहै। परमेश्वरही मायासे देव मनुष्यादि बहुत रूप होते हैं। मायाकोही जगतकी प्रकृति नाम उपादान कारण जानना चाहिये। इत्यादि शास्त्रार्थके अनुसार, अर्थहै कि मन और माया दोनों एकहीहै, नाम दोनों एकही स्वभाव सामर्थ्य वालेहैं, दोनोंकी गति अचिन्त्यहै, दोनों अज्ञानीको बन्धनमें डालनेवालेहैं, और सबका मूलकारणरूप मायाहै, इससे कारणरूपसे मनमें समाई हुई है। यद्यपि माया सब कार्योंमें समाई हुईहै, तथापि उद्बुद्ध विशेषरूपसे मनमें समाईहुईहै। अर्थात् मायाही मनरूपताको धारणकी है। और उस मायामय मनके अधीन तीनोंलोकमें देव मनुष्य तिर्यग्रूप शरीर हैं। अर्थात् सकाम, मलिन, बासना और कर्मयुक्त मनसे शरीरोंका धारण हुआहै, इससे तीनोंलोकमें संशय परी है। अर्थात् सन्देहरूप माया व्याप्तहुई है। तहां साहेब कहतेहैं कि मनकी शुद्धिआदि बिना मैं किसको समुझाकर कहूँ जिससे वह कालके बशमें नहीं होवे इत्यादि। अथवा एकहीवस्तु मन मायारूपहै और मायामें मनहीं समाताहै। इससे तीनोंलोकके संशयरूप माया मनमें परीहै नाम उन लोकोंकी इच्छारूप माया मनमें पैठीहै त मैं किसको समुझाकर कहूँ। दुइ, के, तो। समुझायके विलगाय, पाठ भेदहैं, अर्थभेद है कि मन माया दोनोंमें तो एकही सत्यवस्तुहै, जो एकवस्तु मायामें समाताहै सो मानो मनहीमें समाताहै अर्थात् साक्षात् मायाके आश्रय होकर मनआदिका आश्रय होताहै, इसलिये मनके देशमें भी उसे मायासे आच्छादित रहनेसे तीनोंलोकमें वह संशयरूप माया परीहै, उससे विलगाय नाम विवेक पूर्वक किससे कहूँ उसको समझनेवाले अधिकारी कठिनसे होतेहैं और मिलते हैं इत्यादि।

११२ साखी दोहा।

बेढ़ा दीन्हों खेतको, बेढ़ा खेतहिं खाय।

तीनि लोक संशय परी, काहि कहो समुझाय॥ ११२॥

टीका—मनकी शुद्धि बिवेक बिचारादि विना मन मायाके अधीन रहनेवाले शरीरकी दशा का वर्णन करते हैं कि जैसे कोई पुरुष क्षेत्र (खेती) की रक्षाकेलिये जिअल, गदा, सीझ, आदि की 'बेढ़ा' नाम बाड़ा, घेरा क्षेत्रको देतेहैं, तहां जिअल आदि बढ़कर अपनी छाया आदिसे क्षेत्रको खालेते हैं नाम क्षेत्र (खेती) को नष्ट करतेहैं, तैसेही (मानिक कोट पषाणक ताला) इस रमयणीमें वर्णित रीतिसे तथा अनुभवके अनुसार शरीररूप क्षेत्रका मनरूप बेढ़ाहै, और सब कोई उस मनको शरीरकी रक्षामें दियेहैं नाम लगाये हैं, परन्तु यह चञ्चल, मलिन मन रूप बेढ़ाही शरीरको अनेकों दुष्टमार्गमें प्रवृत्त कराकर और शुभमार्गसे रोककर इस शरीररूप क्षेत्र (खेत) को खाता है, अनेकों दुःखद कष्टसाध्य कर्मादिमें लगाकर इसे व्यर्थ नष्ट कर रहाहै। और इसीके नाश से जीवोंको भी व्यर्थ पीड़ित कर रहा है। और इस बेढ़ाकी निन्दित प्रवृत्ति आदिसेही तीनों लोकमें संशयरूप अविद्या मायापरी है तहां मैं किस २ को कैसे समझाकर कहूँ। अथवा कहतेहैं कि सद्गुरुने शरीररूप क्षेत्रकी विवेक विचारादिरूप ऐसी बेढ़ा दीहै कि जो बेढ़ा शरीरकी रक्षा करती हुई भी मूलसहित शरीररूप क्षेत्र (खेत) को खालेतीहै। और जीवको भी मुक्त सुख स्वरूप कर देती है, परन्तु गुरुवा लोगोंकी वाणीरूप संशय तीनोंलोकमें परी है मैं किसको समुझाकर कहूं इत्यादि।

११३ साखी दोहा।

मन सायर मनसा लहर, बूड़े बहुत अचेत।

कहहिं कबिर ते बांचिहैं, जिन के हृदय विवेक॥ ११३॥

टीका—साहेब कहते हैं कि पूर्व वर्णित स्वभाव स्वरूप वाला मनहीं विवेक रहित अज्ञानियोंको डूबनेके लिये संसारसमुद्र रूप है, और 'मनसा' नाम मनोरथ लहररूप है उस लहरके वशमें पड़कर 'बहुत' नाम अनन्तों 'अचेत' जीव सब बूड़गये अर्थात् विवेक विचार रहित सबही बूड़ गये और बूड़ते हैं। जन्मादिको प्राप्त होतेहैं। साहेब कहतेहैं कि तेई पुरुष बचेंगे जन्मादि रहित होवेंगे कि जिनके हृदयमें आत्मानात्मादि का विवेक है वा होता है, क्योंकि विवेकी लोग शरीरक्षेत्रमें मनकी बेढ़ा नहीं लगाते हैं शरीर विषयादिमें मनको आसक्त नहीं होने देतेहैं, किन्तु विवेकाग्निसे उसके दोषोंको दग्ध करके शुद्ध मनको शुद्ध चिदानन्दमें स्थिर कर देतेहैं।

जिस आनन्दघनमें स्थिर प्रसन्न मन पुरुषको मुक्त कर देता है। और उक्त रीतिसे मनको, स्थिर करनेवालेही पुरुष वस्तुतो विवेकी हैं, और संसारमें नहीं डूबते हैं। अथवा मनरूप समुद्रमें मन हीं रूप लहरसे 'बहुत अचेत' नाम अत्यन्त अचेत लोग बूड़गये। और जिनके हृदयमें कुछ भी विवेक हुआ है और सतमार्गमें तनमन से लग गये हैं वे लोग अवश्यही बचेंगे इससे कुछ भी विवेक करके विचारादिरूप सतमार्गमें प्रवृत्त होना चाहिये।

११४ साखी दोहा।

सायर बुद्धि बनाय के, बाम विचक्षण चोर।

सब दुनियाँ जहड़े गया, कोइ न लागा ठौर ॥ ११४ ॥

टीका। बूड़नेवाले अचेतोंकी दशा और आचरणका संक्षेपसे वर्णन करते हैं कि दक्षिण शुभमार्गको त्यागकर अशुभ धर्म विचार आचारादिरूप बाममार्गको सेवन करनेवाले अविवेकी बाममार्गियोंने 'सायर बुद्धि बनायकर' नाम मानस संसारसमुद्रमेंही सत्यसुखादि बुद्धि करके 'विचक्षण' नाम चतुर चोररूप एहु हैं। अर्थात् अपने कल्याणको नष्ट करतेही हैं परन्तु अन्यके सुख सर्वस्वका भी चतुराईसे हरण कर रहे हैं, अधर्म दुःख अपवित्रादिमेंही धर्मादिका उपदेश देकर सबको भ्रष्ट तथा दुःखी कर रहे हैं, इससे वे उपदेशक बाममार्गी और उनके शिष्यरूप बाममार्गी सब दुनियाँ जहड़ेमें गई नाम दुःखी होनेवाले मार्ग और स्थानमें प्राप्त हुए और होते हैं। जन्म मरण यमयातनादि जन्य कष्टको भोगते हैं, कोई भी बाममार्गी न ठौर लगा न लगता है नाम मुक्त सुखी नहीं होता है। अथवा [**अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभामध्येचवैष्णवाः। नाना-रूपधराःकौला विचरन्ति महीतले**] भीतरसे शाक्त बाहरसे शैव, वेषधारी सभामें अपने को सात्विक वैष्णव कहनेवाले और नानारूपको धारण करनेवाले 'कौल' नाम बाममार्गी पृथ्वी पर बिचरते हैं। इस वचनमें वर्णित आचरणवाले सब दुनियाँके बाममार्गी विचक्षण चोररूप हैं। सो 'सायर बुद्धि बनाय कर' नाम ग्रन्थके अध्ययन कल्पना आदिसे अपनी बुद्धिके समुद्र तुल्य बनाय करभी सब दुनियाँमें जँहड़े, और अन्यकोभी जँहड़ानेके लिये बाममार्गी गया, इससे कोई अविवेकी जीव ठौर नहीं लगा न बाममार्गी ठौर लगा। अथवा टेढ़ी चालवाला चतुर चोररूप मनहीं बुद्धिकोभी 'सायर' रूप बनाकर नाम संसारमें प्रवृत्त कराकर वह मन सब दुनियाँमें जँहड़ने गया, और जाता है, कोईभी विवेक रहित मन आत्मवस्तुरूप ठौरमें न लगा न लगता है। [सायर बुद्धि जु मानवा। सारी दुनियाँ जँहड़िया] ये प्रथम तृतीया पादके पाठ भेद हैं, अर्थ है कि जो पुरुष मानस संसारसमुद्रमें बुद्धिको लगाते हैं, उन सायर बुद्धिवाले मनुष्योंके सुख कल्याणको हरनेवाले कामादिरूप चोर विचक्षण हैं। और बाम हैं नाम दुष्ट हैं बहुत टेढ़े हैं। और उन कामादिकोंके वशमें पड़कर केही सारी दुनियाँ जँहड़गई है कोई ठौर नहीं लगा ॥ [सायर बूझी मानवा] ऐसा भी

प्रथम पादके पाठ भेद है तब अर्थ है कि हे मनुष्यो! मलिन मनको संसारसमुद्र रूप और बाम नाम दुष्टरूप तथा चतुर चोररूप बूझो नाम समझो, क्योंकि उसे समुद्रादिरूप जानेही बिना सब दुनियाँ जँहड़गई कोई भी ठौर नहीं लगा। अथवा हे मनुष्यो! बाम विचक्षण चोर सायररूप मनको अपना हित आदि बूझकर सब दुनियाँ जहड़गई इसलिये उससे सावधान रहो। इत्यादि अर्थ हैं।

११५ साखी दोहा।

मानुष है के नहिं मुवा, मूवा डांगर ढोर।
एको जीव हिं ठौर नहिं, भै सो हाथी घोर॥ ११५॥

टीका—साहेब कहते हैं कि पूर्वकहे बाममार्गी आदि जहँड़नेवाले में से कोई भी 'मानुष है के नहिं मुवा' अर्थात् अविवेकसे अधर्म दुराचारादि करके जो कोई मुये सो मनुष्य होकर वस्तुतो नहीं मुये। न अभी भी अविवेकी लोग मनुष्य होकर नाम मनुष्यके आचरणादि करके मरते हैं। क्योंकि अविवेक अज्ञान पूर्वक व्यवहार करना पशुपन है, विवेक विज्ञानादिकही मनुष्यपन है। इससे जो विवेक, विज्ञान, सतधर्म और शुद्धाचार रहित होकर मुये सो मनुष्य होकर नहीं मुये, इससे फिर भी मनुष्य नहीं हुये, क्योंकि मानव जन्म भी श्रेष्ठ मानवधर्मकाही फल है। और बाममार्गी मानुष होकर मुवा नहीं, किन्तु डांगरढोर नाम दुर्बल निन्दित पशु होकर मुवा, इससे बाम कर्मादिवाला एको जीव ठौर नहीं लगा, नाम शान्ति, सुखमय स्थान और अच्छी योनिमें भी नहीं प्राप्त हुआ, मोक्ष तो अत्यन्त दूरही रह गया। इसलिये सो जीव मरकर हाथी घोड़ा कूकर शूकरादि हुआ और होता है। इसलिये मनुष्योंको विवेक करके बाम कर्मधर्मादिका अवश्यही त्याग करना चाहिये। अथवा जो कोई वस्तुतो मानुष हुआ, अर्थात् मनुष्यके लिये कर्तव्य विवेक, विज्ञान और सतधर्मादिका जिसने सम्पादनादि किया, सो पुरुष मनुष्य होकर नित्यात्मास्वरूप होगया शरीराभिमानको त्याग दिया, इससे नहीं मुवा। और आगामी जन्म मरणादिसे रहित होगया। और जो कोई शरीराभिमानी असतधर्म परायणादि होकर मुवा सो मनुष्य नहीं हुआ था, किन्तु वह डांगरढोर था, इससे वह शरीराभिमानी एको जीव मरनेपर भी सुखस्थितिके ठौरसे नहीं मिला, इसलिये सो जीव हाथी घोरा कीट पतङ्गादि मरकर हुआ और होता है। (एको ठौर न लागिया) यह तृतीय पादके पाठभेद है अर्थ स्पष्ट है॥ पुराणके वचन हैं कि [सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्यदुर्लभम्। यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्रकः॥ निद्रामैथुन-आहाराः सर्वेषां प्राणिनांसमाः। ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुःस्मृतः] मोक्षके सोपानरूप दुर्लभ मनुष्यत्वको प्राप्त करके जो अपनेको संसार रहित नहीं करता है, उससे अधिक पापी कौन है। निद्रा, मैथुन और आहार सब प्राणियोंमें तुल्य ही हैं इससे ज्ञान विवेकादि

वालाही वस्तुतो मानव है और ज्ञानहीन पशु कहा गया है । अपरोक्षानुभूतिके वचन हैं कि [जीवन्मुक्तस्तुनिष्कामो न मृतिंप्रतिपद्यते । प्राणोत्क्रान्तिर्मृतिः सा तु ज्ञानिनोनहि विद्यते] जीवन्मुक्त निष्कामपुरुष नहीं मरते हैं क्योंकि प्राणकी उत्क्रान्तिको मरण कहते हैं सो ज्ञानीको नहीं होती है ॥

११६ साखी दोहा

मनुष विचारा क्या करै, जाके शून्य शरीर ।
जो जिय झांकि न ऊपजै, काह पुकार कबीर ॥ ११६ ॥

टीका—जो कोई सज्जन मनुष्य वामिकादिको भी मनुष्य समझते हैं, और उनके सङ्गादि करना चाहते हैं । उनके प्रति साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो ! जाके नाम जिस मनुष्यके शरीर सद्विचार विवेकादिसे 'शून्य है' नाम रहित है, जिसके अन्तःकरणमें विवेकादि नहीं हैं न उनके लिये यत्नही करता है, उसमें मनुषविचारा नाम मनुष्यपनका विचार क्या करते हो । और 'हे कबीर !' नाम हे सज्जन जीवो ! 'जो जिय' नाम जिस पशुआदिकों के अन्तःकरण में 'झांकि' नाम विवेकदृष्टि नहीं ऊपजती है, उन पशुआदिकों को 'काह' नाम क्या पुकारोगे क्या कहोगे। अर्थात् जैसे पशु आदिके अन्तःकरणमें शुभअशुभादिके विवेक नहीं रहताहै,तैसे जिसके जिय नाम अन्तःकरणमें विवेक नहीं उत्पन्न होता है उसे मनुष्य नहीं समझो, और उसके सङ्गादि भी नहीं करो । अथवा अविवेकियोंकी दुर्दशाका वर्णन करते हैं कि 'जिसमनुष्य विचारा' नाम जिस बेचारा हीन तुच्छ परवश अधर्मी मनुष्यके शरीर विवेक विचारादिसे शून्य है, सो क्या करै नाम वह अपने कल्याणके लिये क्या करसकता है, अर्थात् कुछ नहीं करसकता है, इससे वह मरकर अवश्यही डांगरढोर होताहै । क्योंकि जब उसके अन्तःकरणमें उपदेशादि करनेपर भी किसीप्रकार झांकी नाम विवेक दर्शनरूप ज्ञान नहीं उपजताहै तो कबीरसाहेब कहतेहैं कि उसे मैं क्या पुकारूं वा अन्य महात्मा लोग उसको क्या करसकतेहैं और क्या कह सकतेहैं अर्थात् । उसके कल्याणादिके लिये महात्मा लोग भी कुछ नहीं करसकते जबतक वह कुमार्गको त्यागकर सुमार्गमें चलनेके लिये उतारु ('उपस्थित') न होवे।। अथवा कहतेहैं कि हे मनुष्यो ! अन्यवस्तु आदिको क्या विचार करते हो उससे तुझे ठौर नहीं मिलेगी, क्योंकि 'जाके' नाम जिस ब्रह्मात्माके 'शून्य' नाम आकाश भी शरीरहै, नाम शरीर सदृश जिसके अधीन है 'जो' नाम यदि उस सर्वसाक्षीकी 'झांकी' दर्शन अपने जियमें नहीं उपजा तो अन्यको पुकारने विचारने आदिसे क्या होगा नाम कुछ नहीं होगा सो हे कबीरो ! समझो । अथवा जीवोंकी दुर्गति सुनकर शिष्यजिज्ञासु कहताहै कि जिसके शरीर विवेकादिसे शून्यहै, वह मानुष वेचारा क्याकरे उसकी चाराही क्या चलतीहै । और उसके जियमें झांकी नहीं उपजती है तो हे सद्गुरु कबीर ! वह क्या पुकारे क्या करे इससे उसके कोई दोष नहीं प्रतीत होता है इत्यादि । इस पक्षमें आगेकी। साखीमें उत्तरहै ॥

११७ साखी दोहा।

मानुष ते बड पापिया, अक्षर गुरु हिं न मान।
बार बार बक कूतिया, गर्भ धरे अवधान॥ ११७॥

टीका-और भी साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! 'ते' नाम वे बाममार्गादि वाले अविवेकी मनुष्य बडपापी होते हैं नाम अत्यन्त मलिन होते हैं। इससे गुरुके उपदेशरूप अक्षरको नहीं मानते हैं, किन्तु 'कूतिया' के सदृश बारबार बकते हैं, नाम जैसे कुतिया भूंकती है तैसे कल्पित मिथ्या शब्दोंको निष्प्रयोजनही वारवार बकते हैं। और बक भकभकर गर्भमेंही अवधान धरते हैं। अर्थात् बारम्बार गर्भमें प्राप्त करानेवाले कर्मादिकमें चित्तको एकाग्र करते हैं, और गर्भमें प्राप्त होते हैं। अथवा मिथ्या पदार्थको अपने चित्तके अन्दर गर्भके सदृश सावधानता पूर्वक धारण करते हैं, इससे उनके सङ्गादि नहीं करना चाहिये। अथवा कहते हैं कि वे मनुष्य बड़ा पापी हैं जो ज्ञानी गुरुकोही 'अक्षर' ब्रह्मात्मारूप नहीं मानते हैं, और अक्षर मानकर उनकी भक्तिसेवा जो नहीं करते हैं, तथा जो उनके उपदेशको नहीं मानते हैं, ऐसे पापी मनुष्य बारम्बार बक और कुतियाके गर्भमें अवधान धरते हैं नाम हीन पशु पक्षी योनियोंमें प्राप्त होते हैं, इसलिये गुरु भक्ति आदि करना चाहिये। अथवा उत्तर देते हैं कि वे पुरुष बड़ पापी नाम दोषी हैं, क्योंकि कामादिमें स्वयं फँसकर गुरुके उपदेश और गुरुको नहीं मानते हैं। अथवा विषय लोलुप होकर अक्षर ब्रह्मात्मको और गुरुको नहीं मानते हैं, इन्हें विचारते खोजते नहीं हैं। यदि अक्षरगुरुको मानते गुरुके अक्षरको मानते तो इनको अवश्य झांकी होतो, परन्तु ये लोग बार२ कुतियाके सदृश बकते हैं। और गर्भहीमें अवधान करते हैं इत्यादि। [**गुरुरात्मवतांशास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्। अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतोयमः**] विवेकी सतपुरुषोंको शासन करने वाले गुरु होते हैं। दुष्टात्माओंका शासन कर्ता राजा होताहै। छिपकर पाप करनेवालोंको शासन करने वाला वैवस्वतयम होता है। (बार बार बन कूकुही, गर्भधरे चौखान) यह पाठ भेद है, तब अर्थ है कि गुरुके उपदेशको नहीं माननेवाले बार २ बनके कूकुही नाम मुर्गी सदृश लोक परिवारमें आसक्त होते हैं। और चारो खानके गर्भमें प्राप्त होकर शरीरका धारण करते हैं।

११८ साखी दोहा

मनुष विचारा क्या करे, कहे न खुले कपाट।
स्वनहा चौक बिठाइये, फिर फिर ऐपन चाट॥ ११८॥

टीका—फिर भी जिज्ञासु सज्जनोंके प्रति साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! पूर्वकहे गुरु विमुखमें मनुष्यपनका विचार क्या करते हो कि यह भी मनुष्य है इसको भी कल्याण तथा ज्ञान

होगा इत्यादि, जिसको कहने पर भी हृदयके अज्ञान मोह अविवेकादि रूप कपाट नहीं खुलते हैं, वे लोग वस्तुतो मानव नहीं हैं किन्तु कुत्ता हैं । इसीसे जैसे 'श्वनहा' नाम कुत्ताको स्नानादि कराकर पवित्र चौकामें बैठाया जावे तो वह उस चौकामें नहीं स्थिर होता है, किन्तु जहां तहां फिर २ कर 'पेपन' नाम अपावन हड्डी आदिको चाटता है। अथवा उस चौकामें रहते भी अपने व्रण घावादिको फिर २नाम बारम्बार चाटता है। तैसेही बाममार्गी अविवेकी आदिको यदि पवित्र चौका आदिमें बैठाया जाता है तो वहां स्थिर नहीं होते हैं जहां तहां जाकर हड्डी आदि चाटते हैं। अथवा कैसा भी पवित्रस्थान होवे वहां मद्यमांस हाड़ादि ले आते हैं उन्हें खाने पीने लगते हैं। तथा अत्यन्त अविवेकी मूढको यदि आत्मवस्तुरूप चौकामें उसके अन्तःकरण हृदयरूप चौका में बिचारादि करनेके लिये बैठाया जाता है तो, उन चौकाओंमें स्थिरनहीं रहता है, किन्तु बारम्बार अपावन विषयोंको भोगता है, तथा अपावन शरीरमें आसक्त होता है, इससे सो भी वस्तुतो मनुष्य नहीं है। उसमें मनुष्यपनका विचार व्यवहारादि नहीं करना चाहिये। अथवा कहते हैं कि जिसको कहने पर भी कपाट नहीं खुलता है, सो मनुष्य बिचारा नाम बेचारा हीनमनुष्य क्या करै नाम क्याकर सकता है, उसका तो ऐसा हाल होता है कि जैसे कुत्ताको चौकामें बैठाया जावे तो वह बारम्बार पेपन नाम अपावनको चाटता है। अथवा चौकामें बैठाकर उसे 'पेपन' नाम दर्पण दिया जावे तो उसे भी चाटने लग जाता है बिगाड़ देता है । तैसे अविवेकी अत्यन्त जड़ लोग सतशास्त्रसतउपदेशको भी चाटने लगते हैं, उससे भी भोगही चाहते हैं उसके भी भावमर्म को बिगाड़ देते हैं इत्यादि तो ऐसे पुरुष अपने कल्याणके लिये क्याकर सकते हैं वा कोई महात्मा उनका कल्याण कैसे करसकते हैं इत्यादि। अथवा जो गुरुका उपदेशहीको नहीं मानता है उसको विचारशील मनुष्य नाम मानव धर्मादियुक्त मनुष्य क्याकर सकते हैं कहने पर भी तो उसके कपाट खुलताही नहीं है इत्यादि ।

११६ साखी दोहा ।

मनुष बिचारा क्या करै, जाके हृदया शून ।
श्वनहा चौक बिठाइये, फिरि फिरि चाटै चून ॥ ११६ ॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि जिसके हृदय विवेकादिसे शून्य है, उसमें मनुष्यपनका विचार क्या करते हो, वह कुत्ताके सदृश है। जैसे 'चून' नाम आंटेआदिसे चौकाको पूर्ण करके उस पवित्र चौकामें कुत्तेको बैठाया जावे, और उसको उपदेश दिया जावे तो वह नहीं मानता है, किन्तु बारम्बार चूनहीं चाटता है। तैसेही अविवेकी बाममार्गी आदिको मानव शरीररूप या पवित्र स्थानरूप चौकामें बैठाकर, यदि सतधर्म आत्मवस्तुका उपदेश दिया जावे तो वे लोग उस उपदेशको नहीं मानते हैं, किन्तु तुच्छ विषयोंको चाटते हैं, विषयरसमें मग्न होते हैं। इससे ऐसे लोलुप कामी को मनुष्य क्या समझते हो, इन्हे अपवित्र समझकर इनके संगादिको त्यागो। अथवा जिसके हृदय

शून्य है वह बेचारा मनुष्य अपने कल्याण क्या कर सकता है, किन्तु चौकामें बैठाया हुआ कुत्ताके सदृश वह मनुष्य विषयरस रूप चूनकोही बारम्बार चाटता भोगता है । अथवा जिसके हृदय शून्य है उसको मानव बिचारवाले विवेकी लोग भी क्या कर सकते हैं वह कुत्तेके सदृश बारम्बार विषयमेंही जन्म बीताता है। अथवा इन दोनों साखियोंसे जिज्ञासु शंका किया है कि जिसको कहने से भी कपाट नहीं खुलता है, जिसके हृदय शून्य है, वह मनुष्य बेचारा क्या कर सकता है, उसका. कोई दोष नही है, वह तो अज्ञानादिके बश होकर दुःखद अपवित्र विषयोंमेंही फंसा रहता है । जैसे अविवेकी कुत्ते फंसे रहते हैं इससे पवित्र चौकामें बैठाने पर भी अपावनवस्तु और चून चाटते हैं इत्यादि ।

१२० साखी दोहा।

मानुष जन्म दुलर्भ है, बहुरि न बारम्बार ।
पक्का फल ज्यों गिरि परा, बहुरि न लागै डार ॥ १२० ॥

टीका—जो कूकरादिके सदृश तुच्छ विषयादिमें आसक्त हैं, उन्हें उन विषयादिकोंको त्यागनेके लिये साखियोंसे आगे उपदेश देते हैं। और विवेकी जिज्ञासुओंको कुसङ्गादिका त्याग पूर्वक आत्मविचारादि परायणताका उपदेश देते हैं । तहां प्रथम मानवतनकी दुलर्भताका बर्णन करते हैं कि मानुष्य जन्म दुर्लभ है, क्योंकि चौरासीलाख योनियोंमेंसे एक २ योनिमें अनेकों २ बार जन्म होनेपर चिरकालतक यमयातना सहनेपर किसी सञ्चित शुभकर्मके बलसे मानवतन एकबार होता है। उसके बाद फिर भी अन्य योनियोंमें अनेकों २ बार प्राप्ति होती है, परन्तु मानव जन्म फिर भी बारम्बार नहीं होता है, किन्तु अत्यन्त चिरकाल बीतनेपर फिर कभी एकबार होता है । इससे इस मानवतनका मानों ऐसा हाल है कि 'ज्यों' नाम जैसे 'पक्काफल' जिस डारसे 'गिरपरा' नाम गिर परता है, सो फिर उस डारमें नहीं लगता है, किन्तु उसी फलके बीजसे दूसरा वृक्ष होने पर उस फलके सदृश दूसरा फल उसी फलसे दूसरे डारमें लगता है । तैसेही वर्तमान मानव शरीररूप फलके बीजरूप कर्म बासनासे दूसरे माता पितासे कबही दूसरा मानवतन होता है, इससे उस फलके सदृशही चिरकालमें प्राप्त होनेवाला दुर्लभ मानवशरीर है। किसी भागशीलको तुरन्त मानवतन वा देवतन प्राप्त होजावे उसका निषेधमें भी तात्पर्य नहीं है, परन्तु सोभी दुर्लभ है इत्यादि। अथवा पूर्व वर्णित शंकाके उत्तर इस साखी और आगेकी साखीसे देते हैं कि मानुष जन्म श्रेष्ठकर्मका फल होनेसे दुर्लभ है। और तहां जिसके इन्द्रिय अविकल हैं जो गुरुशरणमें प्राप्त होसकता है, बिचार सत्सङ्ग कर सकताहै, सो पुरुष दुर्लभ फिर बारम्बार नहीं मिलने योग्य इस शरीरको प्राप्त करके अपने कल्याणके लिये अपनी शक्तिके अनुसार भी विवेक विचार सतधर्मादि नहीं करता है, इससे दोषी पापी है। वह पुरुष जब पका हुआ श्रेष्ठफलके सदृश इस मानवशरीरसे गरपरेगा, अर्थात् श्रेष्ठ पका हुआ शरीररूप फल जब उस पुरुषसे वियुक्त होगा, और वह पुरुष

अब इस शरीरसे च्युत होगा तो फिर उस पापीको ऐसा सुअवसर शीघ्र नहीं प्राप्त होगा इस मानव शरीररूप डारमें शीघ्र फिर नहीं लगेगा । किन्तु अबकी बारके अपराधके बदला संसारात्मक चक्रमें परेगा और परवश अनन्त कालतक कष्ट सहेगा, इससे अपनी शक्तिभर नहीं चूकना चाहिये इत्यादि ।

१२१ साखी दोहा ।

मानुष जन्म हिं पाय के, चूके अब की घात ।
जाय परे भव चक्र में, सहे घनेरी लात ॥ १२१ ॥

टीका—साहेब कहते हैं कि जो पुरुष मानुष जन्म पाकर भी 'अबकी घात' नाम अपूर्व इस अवसर पर चूकगये वा अपूर्व दायको चूकते हैं, नाम अपने कल्याणके लिये जो पुरुष न यत्न किये न करते हैं, प्रमादके वशमें जो रहते हैं और रहे वे फिर संसार रूप चक्रमें जाकर परते हैं । और प्रमादरूप अपराधके बदलेमें घनेरो लात सहेंगे और सहते हैं, इसलिये सब मनुष्यको सामर्थ्यके अनुसार शुभयत्न पूर्वक दुःखद, अपवित्र, पापकर्म और कुमार्गका त्याग सावधानता पूर्वक करना चाहिये ऐसे करनेसे अवश्य कल्याण होता है । अथवा मनुष्य जन्म पाकर जो पुरुष चूके वा चूकते हैं नाम सतधर्म आत्मविचार श्रवणादि नहीं करते हैं, उन पुरुषोंको अबकी बार घात होता है नाम आत्मघातके दोष लगता है । और आत्मघात कामादिदोष युक्त होनेसे वे लोग भवचक्रमें जाकर परते हैं । और महानाशको प्राप्त होते हैं । अथवा जो मानुष जन्म पाकर ' अबकी बार ' अन्यप्राणीके ' घात ' हिंसा अपकारसे चूकेहैं, नाम अन्यके घातमें प्रवृत्त होनेसे सतमार्गसे गिरे हैं, सो पुरुष अवश्यही भवचक्रमें जाकर पड़ते हैं । और घनेरी दुष्टदशा और लात सहते हैं । इसलिये सबमें आत्माको जानकर विचारादि परायण होकर अपना वा अन्य किसीका भी घात नहीं करना चाहिये इत्यादि ।

१२२ साखी ।

रतन का तो यतन करु, मांटी का सिंगार ।
आया कबिरा फिरि गया, फींका है संसार ॥ १२२ ॥

टीका—और भी साहेब उपदेश देते हैं, कि 'हे कबिरा' नाम हे जीवो ! इस दुर्लभ मानव तनको पाकर छठीली स्वरूप आत्मवस्तु रूप रतनकी ही प्राप्तिके लिये यत्न करो, उस आत्मा के माटीका श्रृङ्गाररूप यह शरीर है नाम उसके आगन्तुक भूषण सदृश यह शरीर है, सो कुसङ्गादि होनेपर अनर्थके हेतु होता है, इससे कुसङ्गादिको त्यागकर यह शरीर जिसका श्रृङ्गार है उसका यतन करो, नाम उसकी प्राप्तिके लिये सत्सङ्ग विचार सतधर्मादि करो । और हे कबिरा ! यह शरीररूप श्रृङ्गार भी आत्मारूप रत्नमें अविद्या कुसङ्गादि रूप दोषोंसे आया है और आता

है, फिरभी चलागया और चला जाता है नाम नष्ट होजाता है। और ज्ञानसे अत्यन्ताभावको प्राप्त होता है, इससे फीका है नाम निरस मिथ्यामायिक दुःखमय है, इसलिये इसके यतनादिमें नहीं भूलोकिन्तु रतन का ही यतनकरो। और केवल शरीरही नहीं मिथ्या है, किन्तु रतनरूप स्वयं प्रकाश आत्मासे भिन्न सब संसार फीका है। और आत्मवस्तु की सत्तास्फूर्तीसे सब संसार उत्पन्न नष्ट होताहै, इससे सभी संसार आत्माके शृङ्गार हैं। जिसकी मायाशक्तिसे कल्पित शृङ्गार सदृश संसार होता है, उसी रतनका यत्नकरो जिससे कल्याण होवे। अथवा आत्माकी प्राप्तिके लिये वा ज्ञान रूप रतनके लिये यत्न करो, क्योंकि रतनके लिये यत्न करना ही इस मानव शरीररूप 'माटीका शृङ्गार' नाम शोभा है। और जो'कबिरा'इस मानवतनमें आयकर रतनके लिये यत्न करे बिनाही फिर गया॰नाम मरगया उसके लिये संसारमें मनुष्य होकर आना फीका है नाम व्यर्थ है। तथा संसार दुःखरूप है। अथवा जो ज्ञानरूप रत्न का यत्न करके माठीरूप शरीरका शृङ्गारके दिया, सो कबिरा नाम जीव संसारमें आया लोगों से पूज्यादि भी हुआ, परन्तु संसार शरीरआदिमें आसक्त नहीं होकर संसारसे फिरकर आत्मवस्तु में गया मुक्त होगया। फिर संसारमें नहीं आया क्योंकि उसके लिये संसार फीका मिथ्या तुच्छ है। तथा हे कबीरा! विन्दुरूप रत्नका यत्न करो, माटीके शरीरपर शृङ्गार की हुई स्त्रियोंको देखकर नहीं भूलो विवेकसे समझो कि वह माटीकेही शरीरका शृङ्गार की है। और जो पुरुष विवेक बिना उसके बशमें आया सो फिर भवचक्ररूप उसके गर्भमें गया इससे उस पुरुषके लिये फीका दुःखरूप संसार है इत्यादि। ज्ञान रतनका यत्न करु, यह प्रथम पादके पाठ भेद है अर्थ उक्तही है॥

१२३ साखी दोहा।

बांह मरोरे जात है, सोवत लिया जगाय।
कहहिं कबीर पुकारिके, यहि पिण्ड हे कि जाय॥ १२३॥

टीका। जिसको सद्गुरुका उपदेशसे मन्द विवेक बोध हो गया होवे, परन्तु दृढ वैराग्य अभ्यास सत्सङ्गादि विना बासनाके वश होकर संसारमें फिर आसक्त होता होवे, उसके प्रति साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! सोते हुये तुझको नाम गाढ अविवेक ग्रस्त तुझको गुरु महात्माओं ने जगाय लिया है, तौभी मानों उनके बाहुँको मरोर कर, अर्थात् उनके सदुपदेशोंसे विमुख होकर बासना आदिके वश फिर संसारमें तथा कुमार्गमें जाते हो, और बासना रहित होनेके लिये सुबिचार अभ्यास नहीं करते हो, परन्तु तौभी साहेब पुकारके कहते हैं कि 'यहि पिण्ड' नाम इसी शरीरसे अभ्यास विचार पूर्वक यथार्थअनुभवसे चाहे अविनाशी रूप संसार रहित होजावो वा इसी पिण्डसे 'जाय' नाम नष्ट होवो। अर्थात् अज्ञान कामकर्म बासनादिके अधीन चाहे बारम्बार जन्मो मरो दोनों बात इस शरीरसे होती है जो तुझे अच्छी लगे सो करो। अथवा कहते हैं कि हे मनुष्यो! शरीर बल आदिके अभिमानसे तुम सब बांह मरोरे जाते हो नाम पेठकर टेढीचाल चलते हो 'सोई' मानों तुम सब संसारमें सोये हो। और मैं प्रथम उपदेश दिया हूं सोई मानो तुझे

जगाया हूँ। और फिरभी पुकारके कह देता हूँ कि इसी तनसे रत्नका यतन करके अविनाशी नित्य होवो, वा शरीरादिके अभिमानादिसे जावो बारम्बार नाशको प्राप्त होवो इत्यादि। अथवा जीवन्मुक्त ज्ञानी महात्मा समाधि वा विचारपरायण होकर मानों सांसारिक व्यवहारोंसे सोये रहते हैं, सब चिन्ता आदिसे मुक्त रहते हैं, परन्तु कोई संसारचक्रसे पीड़ित अत्यन्त दीन मनुष्य उनके दृष्टिगोचर होता है, और अपना कल्याणके लिये कुछ पूछता है आर्तनाद करता है वा वह कुछ शुभसंस्कार युक्त दिख पड़ता है, तब दयालु महात्मा समाधि सुखको त्यागकर उसका कल्याण के लिये उपदेश देते हैं। इस आशयसे साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! सोतेहुये मुझको तुम सब अपने आर्तनाद दुःखादिसे जगाय लिये हो, और अब फिर बांहमरोरे उस दुःखद मार्गमेंही जाते हो सत्यापदेश नहीं मानते हो सो अनुचित करते हो, तौभी मैं पुकारकर कह देता हूँ कि इसी पिण्डमें होवेंगे कि जावेगे इत्यादि। पैंड़े ह्वै के जाय, यह चतुर्थ पादके आधुनिक पाठ भेद है, अर्थ है कि साहेब पुकारके कहते हैं कि आत्मज्ञानादि नहीं प्राप्त होसकता होवे तौभी सुमार्गसे जावो कुमार्ग बाममार्गका त्याग करो शक्तिभर सुमार्गहीमें चलो इत्यादि॥

१२४ साखी दोहा।

बेरा बांधिन सर्पका, भवसागर के मांहिं।
जौं छाड़ै तो डूबई, गहे तो डँशय बांहिं॥ १२४॥

टीका। इस मानव तनसेही जीव जिसप्रकार होते हैं और जाते हैं उसका साखियों से वर्णन करते हैं। तहां जिसप्रकार जाते हैं, उसका दोसाखीसे वर्णन करते हैं कि जिन पुरुषोंने इस संसाररूप सागरसे पार तथा दुःखरहित सुखकी प्राप्तिके लिये इस 'भवसागरके मांहिं' विषयादि रूप सर्पके बेरा बांधिन है नाम दुःखरहित होनेके लिये विषयोंका संग्रह किया है, स्वर्गादि देवादिमें मन लगाया है। तथा टेढ़ी गति वाले शरीरादि अनात्मवस्तुमें जो आत्मा ईश्वर सुखद आदि बुद्धि करते हैं वा किये हैं सोई पुरुष मानों मोह रागद्वेषादिरूप विषयुक्त अनात्मवस्तु रूप सर्पोंके भवसागरमें बेरा बांधे हैं, तुच्छ तरनेके उपाय बनाये हैं, जो सर्वथा दुःखद हैं। इससे दृढ विवेक वैराग्यादिरूप तथा आत्मानुभवरूप वृहद् दृढ जहाजको पकड़े बिना यदि इस सर्पका बेराको छोड़ते हैं, नाम बाहरसे विषयोंके संग्रहका तथा स्वर्गादिके हेतु कर्मादिका यदि बाहरसे त्याग करते हैं, तौभी बासना संचित कर्मादिसे संसाररूप सागरमें डूबतेही हैं। और नाशको प्राप्त होते हैं। अर्थात् बाहरसे त्यागी होने परभी विषयादिमें सत्यबुद्धि उपादेयबुद्धि रहनेपर संचित कर्मबासना वश जन्मादिको प्राप्त होतेही हैं। और यदि इन विषयादिरूप सर्पोंसे रचित बेड़ाको भोग्य ज्ञेय ध्येय आत्मादिरूप से अविवेकी लोग गहे रहते हैं नाम पकड़े रहते हैं तौभी ये सर्परूप बेड़ा इन जीवोंके बांहमें डंशते हैं, संसारसे पार ले जानेवाले शुभ विवेक विचारको नष्ट करते हैं। तथा बारम्बार जन्म मरणको प्राप्त कराते हैं। अर्थात् जैसे सर्प काटता है तब पुरुष विषसे मूढ़ होकर मर जाता है, तैसे

ही विषयादिमें आसक्त पुरुष गाढ मूढ होकर मरता है। इससे जो मनुष्य विवेक विचारादि रहित होकर कभी भी केवल विषयादिका अवलम्बन करता है और वासनाको वैराग्य अभ्यासादिसे नष्ट नहीं करता है सो पुरुष नाशको प्राप्त होता है।

१२५ साखी दोहा।

हाथ कटोरा खवा भरा, मगु जोहत दिन जाय।
कबिरा उतरा चित्त सों, छांछ दिया नहिं जाय॥ १२५॥

टीका। और गुरुबिमुख अभिमानीका भी नाश होता है, क्योंकि जैसे किसीके हाथमें कटोरामें 'खवा' नाम खोवा दूधके परिपक्व सार भरा होवे, और वह किसी खाने वाला योग्य सत पुरुषके मगुभी जोवता होवे, नाम आगमनका रास्ता देखता होवे कि कोई सतपुरुष आवें तो मैं उन्हें खानेके लिये दूँ, परन्तु जो पुरुष उस दाताके चित्तसे उतरा रहता है उसके प्रति उससे छांछभी नहीं दिया जाता है। तैसेही सद्गुरुभी आत्मानन्दरूप खोवा ज्ञानकटोरीमें भरकर हृदयरूप अपने हाथमें रखे रहते हैं और चाहते हैं कि योग्य अधिकारीको इस आत्मानन्द रसका पान कराऊँ परन्तु जो अनधिकारी गुरुविमुख उनके चित्तसे उतरे हैं। जिन्हें सद्गुरु समझते हैं कि इस श्रद्धा रहित बहिर्मुख क्रूरको आत्मवस्तु आदिका उपदेश देनेसे अच्छा परिणाम नहीं होगा, उसके प्रति उनसे छांछ सदृश लौकिक ज्ञान उपदेश भी नहीं दिया जाता है न देते हैं। इससे वह जीव इस मानव तनसेही नष्ट होता है। अथवा विषयादिसे सुख चाहने वाले मनुष्योंके हृदयरूप हाथमें बुद्धिरूप कटोरीमें आत्मानन्दरूप खोवा भरा हुआ है। परन्तु अज्ञान वश अन्य वस्तुओंमें आनन्दका मगु जोहतेही इन जीवोंके दिन बीते जाते हैं। और ये कबिरा नाम जीव सब अपने चित्तोंसे उतरे हैं, नाम बहिर्मुख हुये हैं, चित्तवृत्ति आत्मानन्दको नहीं विचारते हैं, इस विचारसे भ्रष्ट हुये हैं। और आत्मानन्द खोवाको त्यागकर विषयरूप छांछको गहे हैं। और उसेभी ऐसा गहे हैं कि वह किसीके प्रति दिया नहीं जाता है नाम सतधर्मके लिये सतपुरुषके प्रति दान नहीं किया जाता है, जिससे अन्तरात्मा पवित्र होवे। इसलिये इसी तनसे नष्ट होते हैं। कर खोरा खोवाभरा। पाठ भेद है। अर्थ उक्तही है॥

१२६ साखी दोहा।

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
हहु जैसे रहहु तैसे, कहहिं कबीर पुकारि॥ १२६॥

टीका—इस मानव तनसेही जिसप्रकार अविनाशी होता है उसकी जिज्ञासा होनेपर जिज्ञासुके प्रति उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! छठीली आत्मानन्द रूप वस्तुकी प्राप्तिसे जीव

अविनाशी रूपसे स्थिर होताहै, परन्तु उस सच्चिदानन्द निरवयव और हेय उपादेय से भिन्न अपने आत्माको यदि 'एक कहों' तो वह एक नहीं है, क्योंकि जिसमें एकत्वसंख्या समवाय सम्बन्धसे रहती है, और पर्याप्ति नामक सम्बन्धसे द्वित्वसंख्या नहीं रहती है, सो द्रव्य लोकन्याय से एक कहाजाता है। और द्वितीयादिकी अपेक्षासे एक कहाजाताहै। और आत्मवस्तु निर्गुण अद्रव्य स्वरूप द्वित्व एकत्व रहित ही शास्त्र ज्ञानीका अनुभवसे सिद्ध है। इससे निरुपाधि शुद्धात्मा एकत्व संख्यावाला नहीं कहा जासकता है। जो श्रुति एक कहती है उसका भी द्वित्वादिका निषेधमें ही तात्पर्य है। और व्यवहार कालमें अविद्या अन्तःकरणादि उपाधिसे भी अनेकरूप भास रहा है, इससे भी एकस्वरूप सर्वथा नहींहै, किन्तु पारमार्थिक एकस्वरूप है एकत्वसंख्या उसमें कल्पित है। और औपाधिक व्यवहारिक स्वरूपवाला अनेक है। और यदि पारमार्थिक दोय नाम द्वैतयुक्त अनेक कहो तौभी गारीहै, नाम दोष है। अर्थात् द्वय कहना गालीके तुल्य निन्दित शब्द है, क्योंकि जो वस्तु सखण्ड एकदेशी अनेक हैं, सो सब दृश्य अनात्मस्वरूप विनाशी हैं अखण्ड एकदेशी अर्थमें कोई प्रबल प्रमाण नहीं है। और विभु अनेक चेतनात्मामें भी कोई प्रबल प्रमाण वा अनुभव नहीं हैं। इससे उत्कर्षापकर्षादि से रहित साक्षीस्वरूप सर्वात्माको दोय कहनेमें भी दोषही है, इसलिये हे सज्जनो! द्वित्वैकत्वादिसे रहित जैसे चिदानन्दस्वरूप हो तैसेही सब कल्पनाको त्यागकर रहो एकत्व द्वित्वादि की कल्पना नहीं करो सो साहेब पुकार कर कहते हैं कि जिससे अविनाशी निर्विशेष निर्गुण रूपसे स्थिर होनेसे जीव नित्य अविनाशी होय जावें इत्यादि। (है जैसा रहै तैसा, कहहिं कबीर विचारि) यह पाठ भेद है, अर्थ है कि जिस वस्तुका उपदेश देनेके लिये सद्गुरुको योग्य अधिकारीके मगु देखते दिन जाते हैं। और उस वस्तुको समझने या बूझने वाले अधिकारी कोई विरलेही मिलते हैं। उस वस्तुको यदि एक कहो तो जिस एकको कहेंगे सो वह नहीं है, और यदि दो उसे कहें तो यह कहना गारीके तुल्य है, इससे वह कहेगये एक दोसे भिन्नही जैसे विशेषरूपसे निर्देशके अयोग्य सबकी आत्मा है वैसाही रहता है। साहेब कहते हैं कि मैं यह पूर्ण विचार करके कहता हूँ। योग वासिष्ठका वचन है कि

[सम्यग्ज्ञानवतो ज्ञस्य यथा भूतार्थदर्शिनः। बुद्धिर्भवति चिन्मात्ररूपाद्वैतैक्यवर्जिता]

यथाभूत अर्थको देखनेवाला सम्यक् ज्ञानवाला ज्ञानीकी बुद्धि द्वैत एकतासे रहित चिन्मात्ररूप वाली होती है। इस विषयका विशेष विचार वेदान्तके आकर ग्रन्थोंसे ही ज्ञेय है।

१२७ साखी दोहा।

अमरित केरी पोटरी, बहुविधि दीन्हों छोरि।
आप सरीखे जो मिले, ताहि पियावों घोरि॥ १२७॥

टीका। और भी साहेब कहते हैं कि हेसज्जनो! गुरुरूप मैंने अमृतकी नाम अविनाशी, नित्य, मुक्त स्वरूप, आत्मवस्तुकी 'पोटरी' को नाम अज्ञान, संशय और विपरीत ज्ञानको 'बहु

विधि' नाम बहुत प्रकारसे 'छोरी' नाम खोल दिया हूं। अर्थात् बन्धनोंके खोलनेके लिये बहुत प्रकारसे उपदेश दिया हूं और जो कोई 'आप सरीखे मिले' नाम अपने अनुकूल, गुरुभक्त, सच्चरित्र अधिकारी मिल जावे तो मैं गुरुरूप होकर 'ताहि' नाम उस अमृतको घोरकर अभीही पिलादूँ, तथा आगे भी पिलाऊंगा, जिससे वह पुरुष अविनाशी नित्य मुक्त स्वरूप होजावेगा। भाव यह है कि साधन युक्त श्रेष्ठ अधिकारीको सद्गुरुका उपदेशसे शीघ्रही ज्ञान होता है, गुरुको परिश्रम नहीं होताहै। अनधिकारीको महान् परिश्रम करने परभी ज्ञान नहीं होता है, इससे प्रथम अधिकाररूप सच्चरित्रादिका सम्पादन करना चाहिये। अथवा मुमुक्षुओंके प्रति उपदेशदेकर शिक्षा देते हैं कि हे सज्जनो मैंने तुम्हारे विषयादि सर्पके विषको नष्ट करनेके लिये अमृतकी पोटरी को 'बहु विधि' से छोरकर माने खोलकर अमृतवस्तु तुझे दिया हूं, नाम उपदेशोंसे कामादि बन्धनोंको नष्ट करके आत्मवस्तुको लखायाहूँ, क्योंकि मेरा स्वभाव है कि जो आपसरीखे मिलताहै, उसको घोरकर वह अमृत पिलाताहूं। वैसे तुझे जो कोई आपसरीखे जिज्ञासुमिले उसको इस अमृतका पान कराना। अथवा साहेब कहतेहैं कि एकत्वद्वित्व रहित आत्मवस्तुके उपदेशरूप अमृतकी पोटरी नाम गठरीको लोग सब बहुबिधि छोड़दियेहैं, नाम अत्यन्त त्याग कियेहैं, परन्तु जो मनुष्य आपसरीखे नाम असङ्ग वा अपना मनुष्यत्व सदृश आचरण करनेवाले बिवेकी मिलें, तो मैं इस अमृतको घोरकर उन्हें अवश्यही पिलादूं। पोटरी के पूरिया, पाठ भेद है भाव उक्तही है॥

१२८ साखी दोहा।

अमरित केरी पोटरी, शिरसो धरी उतारि।
जाको मैं एके कहौं, सो कहै मोहिं चारि॥ १२८॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! मैंने अमृतकी पोटरी शिरसे उतार कर धरदी है। अर्थात् नित्य मुक्त आत्मवस्तु के उपदेशरूप मोटरीको अपना हृदयसे प्रगट करके इस "बीजक" में धरदिया हूं, और मनुष्योंके प्रति उसको प्राप्त कराना चाहताहूं, परन्तु 'जाको' नाम जिस मनुष्यको मैं एक अमृत स्वरूप सब विशेष रहित आत्मवस्तुको कहता हूं नाम जिसके प्रति नित्य मुक्त एक आत्माका मैं उपदेश करताहूं। सो मुझसे चार कहताहै, नाम वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध रूप, वा राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न रूप, वा ईश्वर, जीव, प्रकृति, जगतरूप, वा आकाश, काल, दिशा, आत्मारूप, वा अर्थ, धर्म, काम, मोक्षरूप, वा सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्यरूप, चार वस्तुको सत्य सुखदादिरूप कहताहै। इसी प्रकार अन्य अनेकों मतवाले अनेक वस्तुओंको सत्यादि कहतेहैं। कोई चार वर्ण चार आश्रम चार धामादिको बतातेहैं। कोई चार फिरिस्ते आदिका वर्णन करतेहैं। अथवा चार माने अनन्तो वस्तुओंको सत्यादि बतातेहैं, और सब कल्पनाओंसे रहित नहीं होतेहैं, इससे बन्धनमें पड़ते हैं इत्यादि। या कहते हैं कि इन मनुष्योंने अमृतकी पोटरीरूप विवेक, विराग, विचार, विज्ञानको, तथा सत्यात्मवस्तुका उपदेशको शिरसो उतारकर धरदिया है नाम त्यागदिया है विषयादि

विषकी मोटरीको शिरपर धरीहै, इसीसे जिनको मैं एक कहताहूं सो मुझसे चार कहतेहैं नाम अनेकों देव विषयादिको सत्य बतातेहैं, उनहीं के लिये यत्न करतेहैं, इससे नष्ट होतेहैं । उक्त अमृतको प्राप्त करने वाला अविनाशी मुक्तस्वरूप होजाता है, इत्यादि ॥

१२९ साखी दोहा ।

जाको मुनिवर पत करे, वेद्थके गुणगाय ।

सोई देउं शिखापना, कहि न कोइ पति आय॥ १२९ ॥

टीका—और भी जिज्ञासुओंके प्रति साहेब कहते हैं कि 'जाको' नाम जिस वस्तुको जानने आदिके लिये 'मुनिवर' नाम निष्काम मुनिलोग इन्द्रियोंका निरोधादिरूप तप करते हैं, और जिसके गुणोंको गाकर नाम कथन करके मानों वेदभी थक गये हैं । अर्थात् जिस सर्वात्मा निर्वि-शेषवस्तुकी महिमाओंको मायाशक्तिसे जन्य सूर्यचन्द्रादि विभूतियेंको बताकर, तथा सत चित आन-न्दरूप अन्तर्यामी आदिरूपता का वर्णन करके भी थकेहुयेके सदृश जिसका वर्णन किये हैं, इससे [यतोवाचोनिवर्तन्ते अप्राप्यमनसासह ॥ अन्यदेव तद्विदितादथोऽविदिता-दधि ॥ सएषनेतिनेत्यात्माऽगृह्योनहिगृह्यते] इत्यादि वचनोंसे, अविषयस्वरूप विदित अविदितसे भिन्न हेय उपादेयसे अन्यरूपसे तथा उपाधियेंका निषेध पूर्वक अग्राह्य आत्मस्वरूपसे ही उसका बोध वेदेंने भी कराया है । साहब कहते हैं कि 'सोई' नाम उसी सर्वसाक्षी वस्तुकी 'शिखापना' नाम शिक्षा में 'देउं' नाम देता हूँ कि विशेष कल्पनाओंको त्यागकर आत्मवस्तुको जानो । अथवा सोई नाम उसीरूप में शिक्षा देता हूँ । या तुम सोई हो यह शिक्षा देता हूँ, परन्तु मेरी 'कही बात' नाम उपदेशको वा वेदादिमें कही सत्य बातको कोई नहीं पति आता है, न आत्मवस्तु को समझता है । अर्थात् सत्यउपदेश सत्यवस्तुमें श्रद्धा विश्वास नहीं करता है, इससे उसे समझता भी नहीं है । किन्तु सब मनुष्य किसी कल्पित वस्तुको सत्य मानते हैं, गुरुवा लोगोंके वचनोंमें विश्वास करते हैं जिससे नाशको प्राप्त होते हैं । कोई विरला सतपुरुष सद्गुरुके वचनोंमें विश्वास करके सत्यात्माको जानता है सो अविनाशी होता है । कोई नहिं पतिआय यह चतुर्थपादका पाठ भेद है अर्थ उक्तही है।

१३० साखी छं० मुक्तामणि ।

एकहिं ते अनन्त अनन्त, अनन्त एक हो आया ।

परिचय भया जु एकते, एकहिं माहँ समाया ॥ १३० ॥

टीका—जिसके लिये मुनिवर तप करते हैं जिसके गुणोंको गाकर वेदथके हैं, उसीका

वर्णन करते हैं। अथवा जिसप्रकार उसे जाननेसे जीव मुक्त होते हैं, उसका उपदेश देते हैं कि जो निर्विशेष एकस्वरूप है, उस एकही वस्तुसे 'अनन्त अनन्त' नाम अनन्तो देव अनन्तो मनुष्य अनन्तो पशुपक्षी आदिहुवे हैं। अर्थात् अविद्या अन्तःकरण मायारूप उपाधियोंमें आभासादिसे एकही वस्तु अनन्तो स्वरूप भासरही है। और उसीकी अनिर्वचनीय मायाशक्तिसे अनन्तों भूत भौतिक पदार्थ उत्पन्न हुवे हैं। और सोभी अनन्त पदार्थ एकसे भिन्न नहीं है, किन्तु एकही अनन्त होकर आया है नाम एकही वस्तु मायाशक्तिसे अनन्तस्वरूप भासती है। और जब जिस जीवको एकात्मवस्तुसे परिचय हुआ वा होता है नाम जब उसका आत्मस्वरूपसे जिसको अनुभव हुआ वा होता है, तब उसकी दृष्टिसे वे अनन्तभी एकहीमें समाजाते हैं। अर्थात् जैसे रज्जुमें भासते हुए सर्पादि रज्जुके परिचयसे रज्जुमें समाजाते हैं। वैसेही अनन्तपदार्थ आत्मवस्तुमें समा जाते हैं। अथवा एकही अनन्त नाम विभु सर्वात्मस्वरूप नित्यवस्तुसे सृष्टिकालमें अनन्त नाम असंख्य पदार्थ उत्पन्न हुवे हैं। और प्रलयकालमें वे अनन्त एक होकर भी, वासनासे फिर आये हैं। अथवा एकही अनन्तरूप होकर भी आया है उन अनन्तोंमें एकही सतवस्तु है। और उस एकसे जिसको जब परिचय हुआ तब मन, बुद्धि, इन्द्रियादि अनन्तों उसके उपाधि सदाके लिये एकवस्तु मेंही समा गये और समा जाते हैं। अथवा एक वक्ष्यमाण ओंकारसे अनन्तों शब्द और अनन्तों अर्थ हुवे हैं इत्यादि उसी एकके लिये मुनिवर तप करते हैं। उसीके गुणोंको वेद गाते हैं। और उसीको सबका आत्मादि स्वरूप नित्य विभु जाननेसे जीव सब मुक्त होजाते हैं इत्यादि।

१३१ साखी दोहा।

एक शब्द गुरुदेवका, तामें अनन्त विचार।
थाके ज्ञानी मुनिवर, वेद न पावै पार ॥ १३१ ॥

टीका-जिज्ञासा हुई कि उस एकवस्तुका परिचय किस शब्दके विचारसे होता है? वेदशास्त्र तो अनन्त हैं अल्पायु मनुष्य सबका विचार नहीं सकता है, तब साहेब कहते कि गुरुदेवका एकहीॐकार शब्द जीवोंके कल्याणके लिये समर्थ है। जिसकी [ॐकार आदि जो जाने] इत्यादि वचनोंमें चर्चाकी गईहै, परन्तु तामें उस ओंकारमेंभी अनन्तों विचारहैं उसका अनेकों प्रकारसे लोगोंने विचार कियाहै। और उसीका विस्तार रूप वस्तुतो वेद है। और उसका विचार करते२ ज्ञानी मुनिवर थक गये, और उसके बिचारको वेदभी पार नहीं पाया तो 'नेति' कहदिया इत्यादि, तौभी उस ओंकारका युक्तिसे संक्षेप ही बिचार करने पर उस एकवस्तुका परिचय होताहै। अथवा गुरुदेवका एक ओंकार शब्दहै उसीमें देश-कालादि कृत अन्त रहित वस्तुको बिचारो वा उसीमें अनन्त वस्तुओंका विचार होता है सो जानो। अर्थात् ओंकार युक्त उपनिषदादिमें उसका अनुभव होता है वा उसीके विस्तारमें विचारसे अनन्त वस्तुका अनुभव होता है। और जो ज्ञानी मुनिवर ओंकारसे अन्यके विचारमें प्रवृत्त हुए सो

विचारादि करके व्यर्थ थके, और मायिक वस्तुके पार नहीं पाये। और वेद भी अनन्त मायिक वस्तुको वर्णन करके उसका पार नहीं पाता है, इससे उसको विचारना व्यर्थ है। और एक आत्मवस्तुके विचारसेही सब वस्तुका विचार सिद्ध होता है, इससे एक ओंकार द्वारा आत्मविचारही करना चाहिये उसीसे एकवस्तुका परिचय होगा। अथवा जिज्ञासा हुई कि यदि एकवस्तुका ज्ञानसे जीवको कल्याण होता है तो शास्त्रज्ञ आदि लोग उसीको क्यों नहीं जान लेते हैं? तब साहेब कहते हैं कि गुरुदेव नाम ब्रह्माजीका एक ओंकाररूप वा वैखरी वाणी वेदरूप एक शब्द है, उसीमें अनन्तों विचार करते २ शास्त्रज्ञ ज्ञानी पण्डित लोग और मुनिवर लोग थक गये, इससे शब्दात्मक वेदसेही पार नहीं पाये। और शब्दजालमें फँसनेसे एकात्मवस्तुको नहीं जानसके न जानसकते हैं सो जानो। थाके मुनिवर पण्डिता, ऐसा तृतीय पादका पाठ भेद है॥ तामें का ताके, भेद है।

१३२ साखी दोहा

राउर केर पिछुआरे, गावहिं चारो सैन।

जीव परा बहु लूटमें, नहिं कछु लेन न दैन॥ १३२॥

टीका। श्रेष्ठ और भिन्नको राउर कहते हैं, और परोक्ष तथा पीछेको पिछुआरे कहते हैं, इससे अर्थ है कि गुरुदेवके एकशब्द तो सत्य एकवस्तुको प्रत्यक्षही कहता है तथा उसके सदृश महावाक्यादि भी सत्यात्मवस्तुकोही साक्षात् कहते हैं। अथवा गुरुदेवके एकशब्द नाम एक वस्तुके बोधक सब उपदेशरूप शब्द सत्यात्माकाही प्रतिपादन करते हैं, परन्तु उनसे भिन्न कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड रूप चारवेद भी उसी 'राउर' नाम श्रेष्ठ सर्वात्मस्वरूप वस्तुको 'सैन' नाम इसारासे गाते हैं। अर्थात् कर्मकाण्ड वेद उसी सत्यवस्तुको कर्माङ्ग सोपाधिक देवता आदिरूपसे गाते हैं। और उपासनाकाण्ड वेद उसीको उपास्य उपासक रूपसे गाते हैं। तथा 'पिछुआरे' नाम परोक्षरूपसे उसीको कर्मकाण्डादि गाते हैं, परन्तु उस सैनको समझे बिना जीव बहुत लूटमें परा है। अर्थात् उस सत्यात्मवस्तुको जाने बिना देवादिभावकी वासनाओंसे जीव संसारचक्रमें परा है। तथा मोह काम क्रोधादि रूप शत्रुओंके बशमें परा है। और जिन अनात्म पदार्थोंको अज्ञानादि बश लेना चाहता है नाम कर्मादिसे प्राप्त करना चाहता है, तथा अज्ञान मोहादि बश इष्ट मित्रादिको देना चाहता है, सो सब मायिक पदार्थ मिथ्या हैं, इससे कर्मादिसे वस्तुतः कुछ लेना देना भी नहीं है तोभी सैन समझे बिना जीव सब लेन देनमेंही फँसते हैं इत्यादि। अथवा कहते हैं कि हेजीवो! 'राउर' नाम तुम्हारे श्रेष्ठस्वरूपके 'पिछुआरे' नाम पीछे जो कार्यस्वरूप देवादि हैं, उनहीके 'सैन' चारो वेद गाते हैं। इसीसे तुम सब बहुत पदार्थोंके लूटमें परे हो नाम उन्हें प्राप्त करनेके लिये लगे हो, परन्तु वस्तुत उन बहुत पदार्थोंके लूटमें तुझे कुछ लेनादेना नहीं है इसलिये उन्हें लूटना त्यागकर एकवस्तुकाही परिचय करो जिससे तेरा कल्याण होवे। या सर्वात्म स्वरूप राउरके जो जीव पिछुआरे हैं नाम उसे नहीं जानते हैं, सो जीव 'चारोसैन' नाम सैनरूप चोरा

वेदोंको गाते हैं, परन्तु समझे बिना बहुत लूटमें परते हैं, और वस्तुतः लेनदेन कुछ नहीं है। अथवा जो पुरुष 'राउर' नाम तेरे स्वरूपभूत एकवस्तुसे पिछुआरे हैं उसके परोक्षमें हैं सोई पुरुष वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि चारों वस्तुओंकी सैन गाते हैं और वे गाने वाले जीव बहुत लूटमें परे और लेनदेन कुछभी नहीं हुआ इत्यादि।

१३३ साखी दोहा।

चौ गोड़ा के देखते, व्याधा भागा जाय।
एक अचम्भा देखिया, मुवा काल को खाय॥ १३३॥

टीका—वेदकी सैनको समझे बिना और आत्मतत्त्वको जाने बिना जो घटना होरहीहै, उसका वर्णन करतेहैं, कि जैसे चौगोड़ा नाम किसी लक्ष्यरूप मृगको देखतेही सिंहादिका भ्रमसे उस मृगको चाहनेवाला व्याधा भी भागा जाता हो, तैसेही चारवेदरूपी चौगोड़ेको देखतेही जीव सब स्वर्गादिमें भागे जाते हैं, उन वेदोंको देखकर कुछ कर्मानुष्ठानादि करके स्वर्गादिमें और अनेकों योनियोंमें कामकर्म वासनाके अनुकूल प्राप्तहोतेहैं, और आनन्द खोजते फिरतेहैं, परन्तु कहीं आनन्द नहीं मिलताहै यदि वेदगुरुकी सैनको समझें तो सहजही आनन्दस्वरूप स्थिर होजावें, परन्तु सो समझते नहीं हैं। साहेब कहतेहैं कि उस सैनको समझे बिना आनन्द क्याहोगा बल्कि उलटा एक आश्चर्यही दीख पड़ताहै कि जो स्वयं मुवेहैं नाम नष्टस्वरूप कल्पित मायिक मिथ्या जड़ हैं, सो विषयादिरूप कालको खारहेहैं नाम ज्ञानाग्निसे उन्हें दग्ध करनेवाले जीवको पीड़ितकर नष्ट कररहेहैं, सो अचम्भा नाम आश्चर्यहै। अथवा 'चौगोड़ा' नाम चतुष्टय अन्तःकरण वा चार अवस्था युक्त चारखानिके शरीरादिको आत्मस्वरूप आत्मसम्बन्धी आदिरूपसे देखतेहुए जीवरूप 'व्याधा' चारखानि तथा अनेकों लोकादिमें भयभीत होकर अनादि कालसे भागेजातेहैं। परन्तु सैन समझे बिना एक अचम्भा देखताहूं कि मुवा सदृश जड़ मन आदि काल सदृश प्रबलजीवों को अनेकों योनि आदिमें भ्रमडालकर खारहे हैं। या ज्ञान होने पर वेदगुरुकी सैनको समझनेपर होनेवाली घटनाका वर्णन करतेहैं कि जीव सब जबतक गुरुवेदकी सैनको नहीं समझते हैं, तबतक बहुत लूटमें पड़तेहैं गुरुवारूप और काल काम क्रोधादिरूप चोर व्यधा इनके सर्वस्वको लूटतेहैं, परन्तु गुरुकृपासे सैनसहित चौगोड़ेरूप वेदक देखतेही अन्तःकरणादिरूप चौगोड़ोंको अनात्मस्वरूपसे देखतेही या गमनके साधन चार अन्तःकरणरूप गोड़वाला चौगोड़ा आत्माको विवेक पूर्वक देखतेही तथा पूर्णसाधन चतुष्टय युक्त होतेही सब व्याधा उस पुरुषसे दूर भगजातेहैं नाम उक्त गुरुआ तथा काल कामादि, जीवोंको नष्ट करनेवाले व्याधके सदृश हैं, सो फिर पासमें नहीं आतेहैं। और साहेब कहतेहैं कि एक आश्चर्य और देखताहूं कि जो महात्मा सब अभिमान कामक्रोधादिके त्यागनेसे जीतेही मानों मुवा सदृश होजातेहैं, सो सैन जाननेवाले कालको भी खालेतेहैं उनके ऊपर कालका भी कुछ वश नहीं चलताहै। तथा कालस्वरूप जो मन मायादि हैं उन्हें वे ज्ञानीलोग नष्ट करदेते हैं सो आश्चर्य है इत्यादि।

१३४ साखी दोहा।

तीनि लोक चोरी भई, सर्वस सबका लीन्ह।
बिना मूड़का चोरवा, परा न काहू चीन्ह ॥ १३४ ॥

टीका—सैन समझे बिना जो और भी घटना हुई उसका वर्णन करतेहैं कि तीनो लोकमें चोरी हुई नाम मन मायादि रूप चोरोंने तीनों लोकमें शान्तिसुखको चुरालिये और ऐसी चोरी किये कि उन चोरोंने सबके सर्वस्वरूप विवेक विज्ञान मोक्षकोही लेलिये, और तुच्छविषय सुखादि दिखाकर जीवोंको भुलादिये तथा मोहनिद्रामें डालदिये, और वे मनमाया रूप चोर बिना मूड़केहैं, इससे 'काहु' नाम किसीको शीघ्र नतो चिन्ह पड़ा और न चीन्ह पड़ता है। अर्थात् जैसे शिर रहित शरीर शीघ्र नष्ट होता है और शीघ्र चीन्ह नहीं पड़ता है। वैसे ही मन मायरूप चोरभी स्वतः सत्ताचेतनता रूप शिरसे रहित हैं, और चेतनस्वरूपको आवरणादि करनेवाले हैं, इससे चोर हैं। अविद्या, मन और मायारूप चोर अन्यकी सत्ता आदिसे सत्यादि स्वरूप भासनेसे वस्तुतो अपने स्वरूपसे नहीं पहचान पड़ते हैं। अथवा अज्ञानदशामें ओंकारसे अनन्तों शब्द और अर्थकी उत्पत्तिका वर्णन करके फिर उसीमें लयका वर्णन करते हैं, कि सैन समझे बिना तीनों लोकोंकी प्रलयकाल में चोरी हुई और वह चोर अज्ञानियोंके लोकादिरूप सर्वस्वको लेलिया नाम अपनेमें लीन करलिया, और सबके सर्वस्वको लेनेवाला वह ॐकार रूप चोर बिना मूड़का है नाम निरवयव है। और अक्षर कालेखरूपमें अन्य अक्षरोंके सदृश शिरो बन्धन रहित है सो सबके लयके स्थानरूप शिर रहित चोर किसीको चीन्ह नहीं पड़ा, इसीसे जीवों के सर्वस्वका बारम्बार हरण होता है जो उसे जानता है सो उस चोरके भयसे रहति होजाता है। यहां वाच्य वाचककी अभेद दृष्टि तथा शिरोबन्धन रहित लेखसे बोधित ॐकारशब्दोंमें लयका वर्णन किया गया है। अथवा परम्परासे बिना मूड़का यह शब्द ओंकारके अर्थकाही बोधक है इससे कोई दोष नहीं है।

१३५ साखी दोहा।

चलती चक्की हौं दिखा, नयनन आया रोय।
दोय पट्टके अन्तरे, सामिल गया न कोय ॥ १३५ ॥

टीका—सैन समझे बिना जीवोंकी दुर्दशाका वर्णन करते हैं, कि पुण्य, पाप, गमनागमन सुख और दुःखादिसे युक्त नीच ऊँच योनि और नीचे ऊंचे लोकोंको मैं चलती हुई चक्कीरूप देखता हूं। वा हौं नाम मैं चलती चक्की सदृश देख चुका हूँ, क्योंकि ऊपर नीचे लोकादिरूप दोय पट्टके अन्दर जो कोई आया नाम इनमें अभिमान करके जो जन्म लिया सो नयनोंसे रोकर आया और आता है, और आकर कोई भी अज्ञानी आसक्त पुरुष 'सामि

नाम आनन्द खुशीसे नहीं गया, किन्तु रोते गया। अथवा सालिम नाम साबित पूर्ण आत्मस्वरूपी होकर नहीं गया किन्तु पिसाकर तुच्छ बनकर दुःखी होकर गया, इसलिये यह संसार चलती चक्कीके सदृश है। अथवा साहेब कहते हैं कि चलती हुई चक्कीके सदृश चलायमान इस नीचे ऊपर संसारको मैंने देखातो जीवोंके दुःखोंको देखकर दयाबश मेरे नयनोंसे रुलाई आई, क्योंकि शुभ अशुभादि द्वन्द्वमय दोपट्टके अन्दर आयकर कोई ज्ञान हीन सामिल नाम सुखी इज्जह प्रतिष्ठा पूर्वक नहीं गया। किन्तु महाकष्टसे गया और जाता है। इससे जीवोंके दुःखोंकी निवृत्तिके लिये मैं उपदेश करताहुँ इत्यादि। चलती चक्की देखिके, नयनन आया रोय। दोयपट भीतर आयके, साबित गया न कोय। यह पाठ भेद है, अर्थ है कि उक्त चोरको पहिचाने बिना पुण्य पापादि द्वन्द्व रूप चक्की चलती है, सुखदुःख फल देती और सदा उत्पन्न होती जाती है। और उसे देखकर जीवों के नयनोंसे रुलाई आती है। तौ भी इस दोपटके भीतर आकेर कोई भी उस चोरको न पहिचानने के कारण साबित नहीं गया किन्तु द्वैतमायाको नष्ट करके एक आत्मवस्तुका जानने वालाही साबित गया इत्यादि। लिखा है कि (पाप पुण्य दुइ चक्की कहिये, खूँटा द्वैत लगाया है। तेहि चक्कीतर सबै पीसिगै, सुर नर मुनि न वंचाया है॥ चक्की चली जो रामकी, सब जग पीसा झारि। कहहिं कबिर ते ऊबरे, किल्ली दियो उखारि [विदधाति मतिं यत्र यत्रानात्मनिमन्दधीः। व्यथयेद्धितदेवेमं हृदयेशूलमार्पितम्) मन्दबुद्धि पुरुष जिस २ द्वैत विषयादिमें प्रेम करता है सोई व-तु हृदय में प्राप्तशूलके सदृश इसको पीडित करती है इत्यादि॥

१३६ साखी दोहा।

चार चोर चोरी चले, पगु पनही ऊतारि।
चारो दर थूनी हरी, पण्डित करहु विचारि॥ १३६॥

टीका--उक्त सैनको समझे बिना तथा सद्विचार अनुभवादि बिना और भी अन्तःकरण की विषम प्रवृत्तिका वर्णन तथा उपदेश करतेहैं कि हेजिज्ञासुओ! सैनके समझविचारसे रहित मनुष्यों के अन्तःकरणरूप 'चारचोर' विवेक विचाररूप पगुपनही को ऊतारकर चोरी करनेके लिये चलेहैं। अर्थात् जैसे चोर जूता त्यागकर चोरी करने चलताहै क्योंकि उसके शब्दसे जागकर मुझे कोई पकड़लेगा वैसेही विवेक विचारको त्यागकर मानों जीवके सर्वस्व शान्तिसुखको हरनेके लिये विषयादि मार्गसे अन्तःकरण चले हैं। और कामकर्म, उपासना असत व्यवहार, तुच्छसुख भोगादिमें जीवोंको फंसाकर मोहनिद्रा में डालकर उनके शान्ति, सुख, ज्ञानादिको हर रहे हैं। हे पण्डितो नाम जिज्ञासुओ! तुम इन चोरोंसे बचनेके लिये इन चारों दरों में नाम स्थानोंमें हरिरूपथूनीको गाड़ो। अर्थात् इन चारोंकोही दर नाम गड़ा छिद्ररूप बनावो, और इन दरोंमें सर्वात्मस्वरूप हरिको अजर, अमर, बृहद् यज्ञस्तम्भ रूपसे स्थिर करो, जिससे पवित्र होकर ये चोर तेरा सर्वस्व सुख शान्तिको नहीं हरेंगे, यातो उन चारोंके पासमें हरिरूप थूनीको गाड़

कर उस थूनीमें उन्हें बांधदो जिससे ये चोर तेरे सुखशान्तिको नहीं हरसकें। अर्थात् आत्मवस्तु केही मनन चिन्तन अभिमान निश्चय करो, और अन्य वस्तुके मननादिको त्याग दो, और जो कुछ करो सो विचारकर करो। अर्थात् विचारपूर्वक सब काम शुभ और निष्कामही करो जिससे तुम्हारा कल्याण हो। अथवा जिज्ञासा हुई कि चारवेद स्वर्गादिमें सुख बताते हैं, और उसके लिये अनेकों कामकर्मका विधान करते हैं, तौ भी स्वर्गादिमें आनन्दका अभाव किस आशयसे कहा गया है? तब साहेब कहते हैं कि वेदोंका त्यागमें एकात्मवस्तुके बोध करानेमेंही तात्पर्य है, परन्तु उस तात्पर्य रूप सैनको जो नहीं जानता है उसके सम्पत्तिको चोरानेके लिये भी चारवेद रूप चोर चले हैं, सो भी पगुपनही उतार कर चले हैं नाम दुःखमेंही सुखबुद्धि कराकर छिपके चले हैं। हे पण्डितो! इनसे बचनेके लिये चारोंवेद रूप दरमें हरिरूप थूनीका ही विचार करो जगतगृहके आश्रय थूनीरूप हरिको चारोंवेदमें विचारो अर्थात् जानो। अथवा जीवोंके दुःखद संसार को चुराने, नष्टकरने के लिये चारवेद रूप चोर चले हैं, उनका नियमित प्रवृत्ति कराने द्वारा स्वाभाविक अनर्थकारक प्रवृत्तिसे निवृत्तिमें हीं तात्पर्य है। स्वर्गादि में अनुकूल सुखबुद्धि कराने द्वारा अन्यविषयोंसे निवृत्ति करानेमें उनका तात्पर्य है इससे चारों अन्तःकरणमें हरिरूप थूनीका विचार करो। अथवा वेदकी सैनका ज्ञानसे रहित चारवर्ण चार आश्रम चार सम्प्रदाय तथा मुसलमान, यहूदी, इसाई, सावी, आदि सब चार २ चोररूप हैं, सो जिज्ञासुओं की जिज्ञासा तथा मोक्ष सुखको चुरानेके लिये सद्विचाररूप पगुपनही उतार कर चले हैं। और सैन जाननेवालों के लिये सबही चारो दरोंमें हरिही थूनी हैं इत्यादि। हरी के हनी, पाठ भेद है, उसका गाड़ना अर्थ है, इससे चारों अन्तःकरणरूप चोर चारखानिमें वासना रूप थूनी गाड़े हैं। चारवेद चार अन्तःकरणमें स्वर्गादिकी बासनारूप थूनी गाडे़ हैं। चार वर्णादि भी जीवों के अन्तःकरणमें अनेकों वासना दृढ़किये हैं इत्यादि भाव हैं।

१३७ साखी दोहा

बलिहारी वा दूध की, जामें निकरत घीव।
आधी साखी कबीर की, चार वेद का जीव॥ १३७॥

टीका—पूर्वकही रीति से चारवेदका चोररूपसे वर्णन सुनकर जिज्ञासु सर्वथा वेद विमुख न होजावें, और, जान जावें कि सैनका समझसे रहित विचारादिसे रहित पुरुषोंके लिये ही वेद चोररूप हैं। इसलिये साहेब कहते हैं कि 'वा' नाम उस चारवेद रूप दूधकी बलिहारी है, धन्यवाद है, कि जिसमें से आत्मज्ञानरूप पराऽपरात्मक ॐकाररूप घृत निकलता है, क्योंकि कबीरकी नाम हमारी मन्तव्यरूप जो आधीसाखी रूप ओंकार है सोई चारवेदका भी जीव स्वरूप नाम साररूप है। अर्थात् उसीके अर्थस्वरूप आत्मा का उपदेश वेद करता है, इससे वेदकी बलिहारी है। भाव यह है कि जैसे फटेहुवे दूधमें वा बट गूलरादिके दूधमें घृत नहीं निकलता है

उसकी कोई बड़ाई नहींहै, वैसे ही जिसग्रंथ, मजहबादिमें आत्मवस्तु तथा ओंकार के विचारादिका प्रतिपादनादि नहीं हैं उन ग्रन्थादिकोंको कोई बड़ाई नहीं है । और आत्मस्वरूप ओंकारके विचारादि युक्त वेदकी बड़ाई है, इससे विचार हीन सैनके समझसे रहित पुरुषके लिये ही वेद चोररूप होजाते हैं । अथवा कहते हैं कि चारवेदके जीवरूप, कबीरकी आधीसाखी स्वरूप घृत, जिस शुद्ध अन्तःकरण रूप दूधमेंसे वा जिस वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, हिन्दू मुसलमान, यहूदी आदि रूप शुद्ध दूधमेंसे निकलता है । अर्थात् जिसको अर्थसहित ओंकारका अपरोक्ष अनुभव होता है उसी अन्तःकरणादि की बलिहारी है और अन्य सब निन्दनीय हैं इत्यादि । ओंकारकी आधीसाखी रूपताका प्रथम वर्णन किया गया है, और ओंकार सारशब्दके अर्थका उपलक्षक है । और ओंकार में पर अपर ब्रह्मादि रूपता उपनिषद्में प्रसिद्ध है ओंकारसे सर्वात्मस्वरूपमें साहेबका तात्पर्य है इत्यादि ।

१३८ साखी दोहा

बलिहारी तिहि पुरुष की, परचित परखन हार ।
साईं दीन्हों खांड़ के, खारी बोझु गँमार ॥१३८॥

टीका—पूर्वकही रीतिसे वेदोंमें सकामकर्म उपासना आदिका तथा आत्मतत्त्वका प्रतिपादन है । इस बातका वर्णन करके तथा वेद और उनके भावादिको बताकर, अब उन पुरुषकी हीनता बताते हैं कि जो पुरुष विवेकादि बिना, सकाम, निष्काम, बुभुक्षु, मुमुक्षु आदि सब पुरुषके प्रति अपने अपने सम्प्रदाय समझादिके अनुकूल एकही वस्तुका उपदेश करता है । और तत्त्व-जिज्ञासुओंको भी कल्पित मिथ्या पदार्थोंमें फंसाताहै, तथा सद्गुरुकी प्रशंसा करता है कि जिससे जिज्ञासु सद्गुरुके शरणमें प्राप्त होकर आत्मज्ञानकी प्राप्ति करके मुक्त होवें । वहाँ प्रथम कहते हैं कि 'तिहि' नाम उस सर्वथा विवेकी ज्ञानी पुरुष रूप गुरुकी बलिहारी है कि जो गुरुरूप पुरुष 'पर चित्तको' नाम जिज्ञासु आदिके चित्तोंको परखनेवाले हैं, नाम विवेकपूर्वक जानने वालेहैं, और परखकर जो जिज्ञासा आदिके अनुसार हित उपदेश देनेवाले हैं । अथवा जो पुरुष कार्य कारण रूप सम्पूर्ण संसारसे 'पर' नाम भिन्न शुद्ध सूक्ष्म रूप 'चित' नाम चेतनात्माको स्वयं परखनेवाले हैं, और अन्यको परखानेवाले हैं उन सद्गुरुओंकी बलिहारी है । और जैसे किसीको खांड़के 'साईं' नाम बयाना अगुवान कोई दे और वह साईं खंड़के लिये लेकर खारी उसको देनेके लिये तैयार करे, और गाड़ी पात्रादिमें बोझने लगे तो उस अविवेकीको लोग गँवार मूर्ख कहते हैं । वैसेही जो अज्ञानी गुरुआ लोग, जिज्ञासुओंके कल्याण करनेके लिये या उसे सतमार्गपर स्थिर करने के लिये भेंट पूजा आदिरूप साईं लेकर और वेदकी सैनका ज्ञान विवेकसे स्वयं रहित होनेसे उसके लिये मिथ्या मायिक वस्तुकी उपदेश देते हैं, और पूर्ण विवेक वैराग्यादिका तथा आत्मतत्त्व का उपदेश नहीं देते हैं, वेदकी सैन नहीं बताते हैं वे गँवार हैं । इससे निष्कामको भी बलात्कारसे

स्वर्गादिकी कामनामें फँसा देते हैं। और सकामको अत्यन्त मोह ममतारूप कीचड़में फँसा देते हैं, जिससे उसका उद्धार होना कठिन होजाता है, अनेकों भ्रम मिथ्याज्ञानमें डालदेतेहैं जिससे वह भटक भटक कर मर जाता है। इसलिये सावधानीसे विवेकी दयालु सद्गुरुके शरणमें प्राप्त होना चाहिये, जिससे कल्याण होवे इत्यादि। बोझुका बुझे पाठ भेद है उसका समझना अर्थ है, इससे साई दिया मुक्तिरूप खांड़के लिये, और गँवार लोग विषयभोग जन्य सुख स्वर्गादि समझे जिससे महा अनर्थ हुआ इत्यादि।

१३९ साखी दोहा।

विषके बिरवे घर किया, रहा सर्प लपटाय।
ताते जियरहिं डर भया, जागत रैनि बिहाय॥ १३९॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि विवेक विज्ञानादिकी प्राप्ति बिना तथा विवेकादि युक्त गुरुकी प्राप्ति बिना जीवोंने 'विषके बिरवे' नाम विषके वृक्षरूप संसार और शरीरको ही घर किया है अर्थात् संसारको ही घरके सदृश स्थितिकी जगह मानकर शरीर लोकादिमें सब आसक्त हुवे हैं। जिस वृक्षमें विषय इन्द्रिय काम क्रोधादिरूप सर्प लिपट रहे हैं, तथा सबसे वृहद मृत्यु रूप सर्प जिसमें लिपट रहा है। साहेब कहते हैं कि 'ताते' नाम सर्पयुक्त विषवृक्षको घर समझनेसे उसमें आसक्त होनेसे ही अविवेकी अज्ञानी 'जियरहिं' नाम जीवोंको 'डर भया' नाम महा भय हुआ है। और उस डरसे वे लोग 'रैनिबिहाय' नाम रातदिन जगते हैं, अर्थात् कभी भी उनके चित्तमें शान्ति सुख नहीं होता है, सदा विषयादिकी चिन्तासे व्याप्त रहते हैं, इसीसे समाधिरूप निद्राभी नहीं होती है। अथवा वे लोग चिन्तावश जागते ही रैनिको 'बिहाय' नाम बीताते हैं। अथवा विषके बिरवोंके नीचे जिन्होंने घर किया है, और उस वृक्षमें अज्ञानरूप सर्प लिपट रहा है उससे जिन जीवोंको डर हुआ है। उन्हें साहब उपदेश देते हैं कि हे जीवो! तुम अभी भी मोहरूप रात्रिको त्यागकर 'जागत' नाम जागो तुम्हारा कल्याण होगा। अथवा सब जीव अज्ञान कामकर्मादि वश विषके बिरवारूप संसारमें शरीररूप घर किये हैं। और इस घरमें रागद्वेष मोहरूप सर्प लिपटे हुवे हैं, उन सर्पोंसे जिन सत स्वभाववाले सज्जन जीवोंको डरहुआ, वे लोग विवेक विचारादिसे मोहनिद्राको नष्ट करके सदा जागते रहनेसे, अज्ञानमय रात्रिको विहाय दिये नाम अत्यन्त नष्टकर दिये, और उन सर्पोंसे बच गये। और जो पुरुष उन सर्पोंके जाने बिना मोह-निद्रासे ग्रसित हुवे सो स्वयं नाशको प्राप्त हुवे और होते हैं इत्यादि।

१४० साखी दोहा।

जो घर हैगा सर्पका, सो घर साधु न होय।
सकल सम्पदा ले गया, बिषहर लागा सोय॥ १४०॥

टीका—अविवेकियोंकी भयस्वरूप संसारमें स्थितिका वर्णन करके अब विवेकियोंकी सुखमय स्थितिका वर्णन करतेहैं कि जो संसारशरीर रूपघर पूर्वकहे सर्पोंका'हैगा'नाम है वा होगा या होता है सो घर साधुका नहीं होता है। अर्थात् उस घरमें साधुलोग नहीं रहते हैं, उसमें आसक्त नहीं होते हैं, किन्तु साधुपुरुष शम, दम और श्रद्धा आदिरूप सब 'सम्पदा' नाम सम्पत्तियोंको लेकर, तथा विवेक वैराग्य श्रवणादिसे आत्मवस्तुरूप सम्पत्तिको लेकर सर्पयुक्त ससारगृहसे गये और जाते हैं। अर्थात् दुःखमय संसारसे रहित ब्रह्मात्मामें साधुलोग प्राप्त होगये और होते हैं। और परमानन्दरूपसे स्थिर रहते हैं, क्योंकि 'सोय' नाम उस साधुपुरुषको 'बिषहर' नाम विषयादिरूप विषको हरनेवाला, अर्थात् नष्ट करनेवाला गुरुके उपदेशरूप मन्त्र लग गया और अभी भी लगता है, इससे साधुपुरुष संसारादिरूप गृहमें आसक्त न होकर नित्य मुक्त सुखी होजाते हैं। अथवा अविवेकियोंकी दशाका वर्णन करते हैं कि जो घर पूर्वकहे सर्पोंका है, उस घरमें आसक्त रहनेवाले जीवोंको कभी 'साधु' नाम भलाई कल्याण नहीं होता है। क्योंकि पूर्वकहा जो 'बिषहर' नाम विषधर सर्प है, सो इन मनुष्योंके सकल सम्पत्तियोंको ले गया और ले जाता है नाम कल्याण सुखको नष्ट कर देता है। और 'सोय' नाम वही मृत्युरूप विषधर इन जीवोंको लगा और लगता है इससे साधु नहीं होताहै। या दोनों साखीके अर्थहैं कि जो पुरुष विषबिरवा रूप गृह बनाया है, और उसमें स्त्री रूप सर्प लिपटाये रहता है, इसीसे जीवोंको डर हुआहै, और रातदिन जगते हैं दुःखी होते हैं। क्योंकि जो घर सर्पका है उसमें साधुता भलाई नहीं होती है। और वह सर्पही जीवोंके सब सम्पत्तिको लेगया, और गलेमें कालरूप होकर लिपटा इत्यादि। अथवा सर्पके घरको 'मान' इस देशमें कहते हैं, इससे अर्थ है कि जो पुरुष वा जिसके अन्तःकरण सर्पका घररूप है, नाम मानरूप अभिमानमय है। सो घर नाम मानमय पुरुषका अन्तःकरण कभी साधु सज्जन नहीं हो सकता है। और वह मानहीं सबकी सम्पत्तिको लेगया और सोई सर्परूप होकर सबको लगा इत्यादि। सम्पदाके सम्प्रदा पाठ भेद है उसका सम्प्रदाय, मत, मजहब, अर्थ हैं, भाव यह है कि सब सम्प्रदायों को मानने ही नष्ट किया और सब सम्प्रदायवाले अभिमानियोंको मृत्यु लेगई और विषधर रूपसे लगी इत्यादि।

(क्षेपक) साखी दोहा।

[घूंघुची भर के बोये, उपिजु पसेरी आठ।
डेरा परिया काल का, सांझ सकारे जाठ (त) ॥ ३ ॥
मनभर के जो बोइये, घूंघुची भर न होय।
कहा हमार मानै नहिं, अन्तहुं चला बिगोय ॥ ४ ॥

गुरु की भेली जिव डरै, काया सींचन हार ।
कुमति कमाई मन वसे, लागि जुआ की लार ॥ ५ ॥]

टीका—जिस पुरुषके अन्त करणमें अभिमान, काम, क्रोधादि रहते हैं, और उनके मूल रूप अज्ञान बासना आदि जिस पुरुषमें वर्तमान रहते हैं, उस पुरुषसे 'घूंघुची भर' नाम एक कर्जनी भर बोया जावे तो आठ पसेरी उपजहोती हैं । अर्थात् बासना सहित थोड़ेही कर्मादि करनेपर मन भरके सदृश अनेकों शरीर परम्परा संचित कर्म मानस बासनादिके अधीन होते हैं, मन भी दिन दिन पुष्ट होते जाता है । अथवा बासनारूप गुञ्जाभरके बोनेसे पाञ्चतत्त्व तीनगुणमय शरीररूप आठ पसेरी उपजते हैं । या पुर्यष्टकमय, वा प्रकृत्यष्टकमय संसार जीवको प्राप्त होते हैं । और आठ पसेरीके उपजनेसेही जीवोंको नष्ट करनेके लिये कालका डेरा परा है । और उससे बारम्बार इन जीवोंका नाश भी होरहा है । और मृत्युरूप सांझ होनेपर फिर जीव सब 'सकारे' नाम शीघ्रही माताके 'जाठ' नाम जठरानलमें प्राप्त होकर जर रहे हैं । फिर सकारे जन्मादिको प्राप्त होरहे हैं । इस प्रकार अज्ञानी निरन्तर भ्रम रहे हैं ॥ ३ ॥ और बासना कामादि बिना यदि मनभरके भी बोया जावे, तो घूंघुची भर भी नहीं होता है । अर्थात् राग द्वेषादि बिना अनन्तों परोपकारादि कर्म करनेपर, अष्टाङ्ग योग अष्ट सिद्धि आदिको भी निर्बासन चित्तमें प्राप्त होनेपर बन्धनके हेतुरूप पुण्यमय अदृष्ट बासना आदि भी कुछ नहीं होते हैं, इससे विरागयुक्त बासना रहित ज्ञानी सर्वथा मुक्त हो जाते हैं । परन्तु, साहेब कहते हैं कि 'हमारा' नाम गुरुके कहे हुये को मनुष्य नहीं मानते हैं, नाम काम बासनाको गुरुसे दर्शित मार्गसे नष्ट नहीं करते हैं, इससे इस दुर्लभ मानवतनको विषय भोगादिमें 'विगोयकर' नाम नष्ट करके अन्तमें संसारचक्रमें चलते हैं ॥ ४ ॥ और साहेब कहते हैं कि विवेक बिना 'गुरुकी भेली' नाम गुड़के भेली सदृश मीठी वाणीसे जीव सब डरते हैं, और 'काया को सींचन हार' नाम पोषणहार सब हुवे हैं। और उस शरीरको सींचने के लिये 'कुमति' नाम कुबुद्धि अन्याय पूर्वक 'कमाई' नाम धन द्रव्यादिके उपार्जन संग्रह में इन जीवोंका मन बसता है । और द्रव्यका उपार्जनके लिये इन जीवोंको कठिन पापमय जूवा की 'लार' नाम आदत भी लग जाती है । अथवा गुरुकी कही बातको मानना तो दूर रहा, 'गुरु की भेली' नाम गुरुकी सङ्गति उनके पासमें प्राप्त होना, उनके ही किसी प्रकारसे होनेसे भी जीव डरते हैं, और विषयोंसे शरीरको सींचते बढ़ाते हैं । और कुमतिकी ही उपार्जन में इनका मन बसता है । अथवा इनकी कुत्सित बुद्धि और मन द्रव्यादि कमाने में ही बसते हैं, कभी विचार के तरफ नहीं जाते हैं, इससे मानों जीवोंको जूआकी लार लग गई है । जैसे जूआकी आदत वाले को अनेकों हानियाँ होती हैं परन्तु तौ भी लाभके लोभसे प्रवृत्त होता है, और अर्थ, धर्म, समय सब को निष्प्रयोजन नष्ट कर देता है । तैसे ही सब मनुष्योंके शरीरका सिंचन द्रव्योपार्जनादिकी आदत परी है इत्यादि । ये तीनों साखी कहीं मूल रूपसे लिखी हैं, कहीं क्षेपक में हैं । और गुड़

के ढेलाको भेली कहते हैं, और होनारूप सिद्धहोना आदि रूप क्रिया अर्थ में भी भेल भेली का प्रयोग होता है, इससे अर्थ भेद किया गया है।

१४१ साखी दोहा

तामस केरे तीन गुन, भँवर लेहिं तहँ बास।
एकहिं डारी तीन फल, भांटा, ऊँख, कपास ॥१४१॥

टीका—कामादिके बशमें रहनेवाले अभिमानियों को जो तुच्छ फल प्राप्त होते हैं, उन फलोंका वर्णन करते हैं कि 'तामस केरे' नाम तमोगुण प्रधान प्रकृतिके तीनगुण हैं तीन गुणमय भूतभौतिक संसार तामस माया का कार्यरूप है 'तहँ' नाम उसी में 'भँवर' नाम भँवराके सदृश विषयगन्धके लोभी अभिमानी जीव बास लेते हैं नाम बसते हैं, वा उसके स्वाद लेते हैं। और उस एक तामस प्रकृतिरूप डार नाम मार्गविशेषमें ही भांटा, ऊंख, कपास के सदृश तामस, राजस, सात्विक, तीनों प्रकारके फल जीवोंको प्राप्त होते हैं, नाम लोक देह भोग्य पदार्थ सब तामस मायासे ही मिलते हैं। भाव यह है कि यद्यपि स्वर्ग मर्त्य पातालरूप लोकादिमें सात्विक राजस तामसपनका व्यबहार होता है तथापि ये सब तमोगुण प्रधान प्रकृतकेही कार्य हैं। उसीमें यत्किञ्चित विचित्रतासे सात्विकादि पनके व्यवहार भी होते हैं। अथवा उस एक तामसडारमें हीं अर्थ धर्म काम रूप तीन फल लगते हैं, उनमें अर्थ भंटा सदृश है, और काम ऊंख सदृश है, और कर्म जन्य अदृष्टरूप धर्म कपास सदृश है, परन्तु ये सब मिथ्या मायिक अन्तमें दुःखरूप ही हैं। इनसे पर आतमतत्त्व स्वरूप मोक्ष ही सत्य सुखस्वरूप है। इसलिये गुरुशरणमें प्राप्त होकर उसकी प्राप्ति करनी चाहिये जिससे नित्यतृप्ति होवे इत्यादि॥

१४२ साखी दोहा।

मन मसलन्द गयन्द है, मनसा भयो सचान।
यन्त्र मन्त्र मानै नहीं, उड़ि उड़ि लागै खान ॥ १४२ ॥

टीका—और साहेब कहते हैं कि अज्ञानी लोभ अभिमानादि युक्त जीवोंके मन 'मसलन्द' नाम मतवाला 'गयन्द' नाम हाथी रूप है, जो अङ्कुश सदृश उपदेशको नहीं मानता है। और उस मनके 'मनसा' नाम मनोरथ संकल्प विकल्परूप वृत्तियाँ 'सचान' नाम बाजपक्षी सदृश हुई हैं। अथवा मनसासे मनहीं सचान सदृश हुआ है। इससे मनसायुक्त अज्ञानी अभिमानियोंके मन गुरुके उपदेश युक्ति आदि रूप यन्त्र मन्त्रको नहीं मानता है, किन्तु जैसे बाजपक्षी उड़ २ कर मांसादि खाता है, वैसे ही उक्त मन पूर्व वर्णित सात्विकादि तीनों फलोंको उड़ २ कर खानेमें लगा है और

लगता है, विचारादिमें नहीं प्रवृत्त होता है। इससे अभिमान मनोरथको त्यागकर गुरुके उपदेशको सुनना चाहिये और विचारादि करना चाहिये जिससे कल्याण होवे इत्यादि। मन्मनङ्ग गइयर हनै) इत्यादि पाठभेद है तब अर्थ है कि मनरूप हाथी जीवरूप 'गइयर' नाम गौ 'नीलगाय' को हनता है, और मनसा सचान रूप होकर उड २ करके उस नष्ट जीवको खाने लगता है, और यन्त्र मन्त्र कुछ भी नहीं मानता है। अर्थात् सकाम अभिमानी जीव मन और मनोरथ दोनोंसे अत्यन्त पीड़ित होते हैं। इसलिये काम और अभिमानको त्यागकर मनोरथ सहित मनको जीतना चाहिये इत्यादि।

१४३ साखी दोहा।

मन गयन्द मानै नहीं, चले सुरति के साथ।
म्हावत बिचारा क्या करु, जो अङ्कुश नहिं हाथ॥ १४३॥

टीका—और कहते हैं कि जिसका 'मनरूप गयन्द' नाम हाथी गुरुके उपदेशादिको नहीं मानता है, और अपनी 'सुरति' नाम मनोरथरूप वृत्तिके साथ चलता है, वहां यदि जीवरूप म्हावत नाम पिलवानके 'हाथमें' नाम बुद्धिमें विवेक निरभिमानिता आदि रूप अङ्कुश नहीं होवे, तो वह 'विचारा' नाम बेचारा म्हावत क्या कर सकता है? अर्थात् उस मनको किसी प्रकार भी बशमें नहीं कर सकता है। अथवा कामादिके बशबर्ती जीव क्या बिचार कर सकता है? यदि विवेक विरागरूप अङ्कुश उसके हाथमें नहीं है तो वह कुछ भी सद्विचार नहीं कर सकता है। इसलिये अभिमान कामादिको त्यागकर प्रथम विवेकादिकी प्राप्ति करनी चाहिये। म्हावत तो क्या करे, दीन म्हावत क्या करे। तृतीयपादके पाठभेद हैं भाव उक्त ही है। म्हावत विचारा करै, ऐसा पाठ होवे तो अर्थ है कि 'सुरति' नाम विषयप्रीतिके साथ चलनेवाला मनरूप गयन्द नहीं मानता है, किन्तु जीवोंको विषयमें भ्रमाता है। और ज्ञानादिरूप अंकुशके बिना जीवके बशमें नहीं होता है इसलिये यदि अंकुश हाथमें नहीं होवे तो उसकी प्राप्तिके लिये जीवरूप म्हावत निरन्तर आत्मानात्मादिका विचार किया करे, जिससे विज्ञानादि रूप महाअंकुशकी प्राप्ति होवे। और मन बशमें होवे। इत्यादि। अथवा जिस किसीके मनरूप गयन्द नहीं माने सुरतिके साथ चले, और अपने हाथमें अंकुश न होवे, तो गुरुरूप म्हावतके साथ विचार करे वह युक्ति बतावेंगे इत्यादि।

१४४ साखी दोहा।

ई माया है चूहड़ी, औ चुहड़े की जोय।
बाप पूत अरुझावई, संग न काहुक होय॥ १४४॥

टीका—काम अभिमानादिको त्यागनेके लिये साहेब उपदेश देते हैं कि हेमनुष्यो! तामस प्रकृतिरूप तथा संसार स्त्री कनकादि रूप 'यह माया चूहड़ी है' नाम महा अपवित्र चण्डालनी

डोमिनीरूप है। और अज्ञानी अभिमानी कामी पुरुष जो महा अपवित्र हैं, उन 'चुहड़ों' की ही यह माया 'जोय' नाम जाया स्त्री है। या उन्हें यह जोहनेवाली नाम खोजनेवाली है। और व्यभिचारिणी तथा चञ्चला ऐसी है कि बाप और पुत्र दोनोंको अरुझाती है नाम अपनेमें फँसाती है वा दोनोंको परस्पर लड़ाती है, और किसीके सङ्ग नहीं होती है। अर्थात् नाश शीला होनेसे किसीके साथ नहीं लगती है, इससे भी जीवोंको दुःखही देती है। इसलिये नित्य, अनित्य, शुचि, अशुचि रूप आत्मानात्म वस्तुको विवेकसे जानो, और मायाको यथा योग्य तनमनसे त्यागकरो जिससे कल्याण होवे। अथवा यह माया चूहड़ी नाम चोरनी है आवरणशक्तिसे जीवोंके आनन्दस्वरूपको छिपा देती है। और चुहड़े नाम चोर छली प्रपञ्ची जीवोंकी ही जाया है, और वस्तुतो असङ्ग रूपभी 'बाप' नाम ईश्वरको और 'पूत' नाम जीवको वह तामस माया अरुझाती है नाम उनमें सङ्गकी प्रतीति कराती है, और वस्तुतः किसी जीवका स्वरूपके साथ इसका सङ्ग नहीं होता है केवल मिथ्या प्रतीति कराती है। अथवा 'पूत' नाम पवित्रस्वरूप बापको भी यह अरुझाती है, परन्तु विवेक दृष्टि से किसीको भी इसके साथ सङ्ग नहीं होता है।

१४५ साखी दोहा

कनक कामिनी देखि के, तूं मति भूल सुरङ्ग।
मिलन बिछुरन दुहेलरा, केंचुरि तजै भुवङ्ग॥ १४५॥

टीका—और कहते हैं कि 'हे सुरङ्ग!' नाम हे कल्याणार्थी जिज्ञासुओ! वा हे चिदानन्द स्वरूपवाले जीवो! 'कनक' नाम सुवर्णादि द्रव्यों को देखकर और 'कामिनी' नाम किसी स्त्रीको देख कर तुम 'मति भूलो' नाम लोभ मोह कामादिके वशमें नहीं होवो, किन्तु सावधानता पूर्वक लोभादिको त्यागकरो। और जैसे सांप केंचुरीको त्यागकर फिर उससे मिलना बिछुरना दोनों को त्याग देता है नाम उससे उदासीन होजाता है। वैसेही हे सुरङ्ग मनुष्यो! तुम भी कनक कामिनी दोनोंको त्यागकर फिर इन दोनोंसे मिलन बिछुरन 'दु' नाम दोनों व्यापारोंको 'लरा' नाम लाग त्यागो और उदासीन होवो जिससे तुम्हारा कल्याण होवे॥

१४६ साखी दोहा

माया के बशि सब परे, ब्रह्मा विष्णु महेश।
सनक सनन्दन नारदहुं, गौरी पूत गणेश॥ १४६॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि यदि सब संसार मायास्वरूप है तो इससे कोई कैसे बच सकता है? और कैसे इसे त्याग सकता है? तब साहेब कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सनक सनन्दन

नारद और गौरीके पुत्र गणेश ये सबभी मायाके वशी होकर नाम मायाके बशमें अधीन होकर, और फिर विवेक विचारसे काम बासना अभिमानादिके त्यागसे उस मायासे 'परे' नाम भिन्न हो गये। इसी प्रकार विवेक विचारादि बिना जीव सब संसारमें हैं। परन्तु विवेक विचारादि करें तो मायाके वशी जीव सब संसारमायासे परे हो सकते हैं। अथवा कामासक्ति आदिके क्रोधीपन आदिके वर्णनों का अभ्युपगम बादसे मायाकी प्रबलनाको जनानेके लिये, और शिष्यकी अत्यन्त सावधानताके लिये कहते हैं कि हेजिज्ञासुओ! मायासे बचनेके लिये अत्यन्त सावधान और निरन्तर विचार परायण हो जावो। यह अत्यन्तप्रबल है इस कनक कामिनी आदि रूप मायाके 'वशी' नाम बशमें और काम क्रोध अभिमानादि रूप भीतरकी मायाके बशमें ब्रह्माजी आदि भी कभी २ परे, कोई २ इस मायाका सदा चेरही बना रहा। इसलिये इससे अत्यन्त सावधान होवो। अथवा लोक प्रसिद्ध कनक कामिनी आदि रूप मायाको त्यागनेके लिये उपदेश देकरके ब्रह्मलोकादि पर्यन्तको मनसे त्यागनेके लिये उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! ब्रह्मादिपद तथा उनके सुख सम्पत्तिआदिको भी इस लोकके कनक कामिनी आदिके सदृशही जानो। क्योंकि ब्रह्मा आदि सभी मायाके बशमें परे हैं। अर्थात् उन सबकी भी विभूति सिद्धि आदि मायिक हैं। और उनके स्थूल सूक्ष्म संघात भी मायिक हैं। इससे उन सभोंकी इच्छाको भी त्यागो उन्हें सुनकर मत भूलो विवेक विचारादि परायण होवो जिससे तुम्हारा कल्याण होवे इत्यादि। अथवा कहते हैं कि मायाके बशी जीव सब ब्रह्मा आदिकी भक्ति चिन्तनादिमें परे हैं। और उनसे भी कनक कामिनी आदि और भोग विशेषादि चाहते हैं, और विचारादि नहीं करते हैं, परन्तु हे सुरङ्ग! तुम इस मार्गमें भी नहीं भूलो। किन्तु आत्म-विचारादि करो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि।

१४७ साखी दोहा।

तन संशय मन श्वनहा, काल अहेरी नीत।

एकहिं डांग वसेड़वा, कुशल पुछहु का मीत?॥ १४७॥

टीका—जो मनुष्य मायिक पदार्थोंसे ही अपनी तथा इष्टमित्रोंका कुशल मानते हैं। और पूछते हैं, तथा विषयादिकों को कुशलरूप मानकर किसीसे चाहते हैं, उपाय पूछते हैं। वैराग्यके लिये उनके प्रति साहेब उपदेश करते हैं कि हे मीत! नाम हे सज्जनो! सब प्राणीका 'तन' नाम शरीर संशयरूप है। अर्थात् नश्वर क्षण भङ्गुर है। किसी लोक में किसीका शरीर अविनाशी निश्चलस्वरूप नहीं है। तथा आसक्त पुरुषके लिये संशयका घररूप शरीर है। और विवेकादि रहित प्राणियोंके मन अभक्ष्य भक्षण करने वाल अशुचि 'श्वनहा' नाम कुत्ताके तुल्य है। और अविवेकी अभिमानी पुरुषोंको कालभी नित्यही अहेर करता है। अनेकों कष्ट भोगाता है। तेरा तथा अन्य सभी मायाके बशबर्ती मनुष्योंकी एकही डांग [जंगल] में 'वसेड़वा' नाम वसेड़ा स्थिति है। 'एकहि डांग' नाम

दण्ड सब भोग रहे हो फिर किससे वा कहांका कुशल क्या पूछते हो ?। अथवा एकही डाँग नाम किनारे वा संसाररूप पहाड़पर सब प्राणी सब लोकोंकी स्थिति है, फिर कुशल क्या पूछते हो ?। अर्थात् विवेकादि बिना अपनेही सदृश सर्वत्र दुःख जानो, किसी लोक प्राणी आदिमें विवेकादि बिना सुख नहीं समझो न कहींकी आशा आदि करो इत्यादि। अथवा तनके अन्दर जो आत्मादिका संशयरूप मन है सोई श्वनहा है। और सोई कालरूप होकर नित्य अहेर करता है। और उस अबशीभूत मनके साथ जबतक एकही इस शरीररूप डांगमें तेरी वा अन्यकी स्थिति है, तबतक अपना मीतसे क्या कुशल पूछते हो। या हे मीत ! तबतक अपने कुशल किसीसे क्या पूछते हो ? जबतक संशय रहित होकर मनका साथ नहीं छोड़ोगे तबतक कल्याण नहीं हो सकता है। इसलिये विवेकसे मनके सङ्गको त्यागो। (तनशशा मन श्वान है] ऐसा पाठ होवे तो अर्थ है कि शरीर खरगोस है और उसके नष्ट करनेके लिये मनहीं कुत्ता है। सो कालरूप होकर नित्यही अहेर करताहै। और सो तन मन जबतक एकडांगमें बसेड़ा करतेहैं नाम जबतक मन शरीरमें आसक्तहै, तबतक कुशल क्या पूछते हो ? मनको आत्मविचारादिमें आसक्त करनेहीं पर तेरा वा अन्य किसीका कुशल कल्याण हो सकता है अन्यथा नहीं हो सकता है सोई करो।

१४८ साखी दोहा।

साहु चोर चीन्हे नहीं, अन्धा मति के हीन।

पारख बिना विनाश है, करु विचार हे भीन॥ १४८॥

टीका—जिससे तन मनके साथमें विवेक विचारादि बिना कुशल नहीं होता है। इससे साहेब उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो ! जो पुरुष विवेक विज्ञान रहित होनेसे अन्धेके सदृश हैं और विचारादिकी शक्ति युक्त बुद्धिके अभावसे मतिके हीन हैं, सो पुरुष सर्वसाक्षी आत्मस्वरूप साहुको और दुष्ट स्वभाव वाले मन मायादिरूप चोरोंको नहीं चीन्हते हैं। तथा वे लोग सद्गुरुरूप साहुको, और गुरुआ आदिरूप चोरोंको भी नहीं चीन्हते हैं। तथा मनके सदसद्वृत्तियाँ रूप साहु चोरोंको भी नहीं चीन्हते हैं। इससे ऐसे विवेक विचाररूप चक्षु रहित अन्धे पुरुषोंका तथा ज्ञानरहित मतिके हीन कुत्सित बुद्धि वाले पुरुषोंका 'पारख बिना' विनाश हो रहा है, और होता है। इसलिये हे सज्जनो ! साहु तथा चोरोंको विवेक पूर्वक चीन्हकर, और चोरोंसे भिन्न होकर कल्याणके लिये सदा विचार करो, जिससे पूर्ण पारखकी प्राप्ति होवे और बारम्बार नाश होना छूट जावे इत्यादि। अथवा कहते हैं कि हे अन्धा मतिके हीन जीवो ! तुम स्वयं सुरङ्ग होनेसे साहु हो, परन्तु मन माया-दिरूप चोरोंको नहीं चीन्हते हो, इससे पारख बिना उन चोरोंका सङ्ग करते हो, उनमें आत्मादि बुद्धि करते हो जिससे तुम्हारा नाश हो रहा है। यदि अपनी भलाई चाहो तो विवेकसे अबहीं उन चोरोंसे भिन्न हो जावो और विचार करो इत्यादि।

१४९ साखी दोहा ।

गुरु सिकलीगर करि लेहु, मनहिं मसकला देइ ।
शब्द छोलना छोलिके, चित दर्पण करि लेइ ॥ १४९ ॥

टीका—विवेकादिकी प्राप्तिके साधनों का उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो ! 'गुरुको सिकलीगर करलो' नाम तरवारको साफ और तीक्ष्ण करनेवाला कारिगर रूप गुरुको समझो । और अपने मनको गुरुकी आज्ञा सेवाभक्ति आदिमें अर्पण करो । सोई मानो 'मनको मसकला' नामक साफादि करनेके साधनरूप गुरुके प्रति देदो । और गुरुके उपदेशरूप शब्दको छोलना समझो उस छोलनासे चित्तमें जमे हुये दोषोंको छोलकर नाम उस खोदनासे छीलकर दोषोंको पृथक् तथा नष्ट करके एकाग्र शुद्ध चित्तरूप तरवारको दर्पणके सदृश करलो नाम गुरुसे उपदिष्ट सतमार्ग से चित्तको अत्यन्त शुद्ध और एकाग्र करो । और फिर विवेक विज्ञानादिसे समूल संसारको नष्ट करो जिससे बारम्बार नष्ट होना छूट जावे इत्यादि । गुरुको सिकलीगर नाम दर्पणको साफ करने वाला वा बनाने वालाके सदृश समझो । और उनके उपदेशसे स्वयंभी सिकलीगर होवो । और मनको मसकला नाम साफ करनेका साधनरूप चित्तमें दो नाम लगावो । और गुरुके शब्दरूप छोलनासे नाम शस्त्रसे छोलकर नाम गढ़कर चित्तको दर्पण करलो । और उस दर्पणसे आत्मानात्म रूप पदार्थोंको विवेक पूर्वक जानो । या शब्द छोलनासे अनात्म मलको छोलकर चित नाम चेतनात्माको वा चित्तको ही शुद्ध दर्पण करलो । जिससे सब पदार्थ ज्योंका त्यों भासने लग जावें । और अज्ञानजन्य दुर्दशा नष्ट हो जावे इत्यादि ।

१५० साखी दोहा ।

चित दर्पण मन मसकला, कल्मा कुलुफ लगाय ।
ये अजीज मांजत रहु, मुर्चा लागि न जाय ॥ १५० ॥

टीका—और भी साहेब उपदेश करते हैं कि 'ये अजीज' नाम हे मन मायादिसे पीड़ित मनुष्यो ! वा हे अजीत मनुष्यो ! वा हे सज्जनो ! चित्त वा चैतन्यको दर्पण बनाकर उसे स्वच्छ मल रहित करके और उसमें मनके मसकला करके, अपनी बुद्धिरूप नेत्रमें गुरुके उपदेशरूप 'कल्मा' नाम मन्त्रके 'कुलुफ' नाम चश्मा लगाकर भी उस दर्पणको सदा सत्सङ्ग विचारादिसे मांजते रहो, तथा चश्माको भी मांजते नाम विचारते रहो, जिससे उक्त दर्पण वा चश्मेमें 'मुर्चा' नाम मैल फिर नहीं लगे । और अपरोक्ष यथार्थ अनुभव हो जावे जिससे कल्याण होवे । अथवा ऐ अजीज ! [प्यारे] जीवो ! चित्त रूपी दर्पणको साफ करते रहो । जिससे अज्ञान रूपी मोर्चा, [काई] न लगे । कलमा कुली बनाय । ये अजिज मन मांजत रहु, ये द्वितीय तृतीय पादके पाठभेद हैं, तब

अर्थ है कि चित्तके 'दर्पण' नाम शीसा कांच बनावो। और मनको 'मसकला' नाम उसे काटनेकी सलाका तथा साफ करनेकी सामग्री मसाला आदि रूप बनावो। और 'कल' रूप शरीरको 'माकुली' नाम काष्ठका बना हुआ सामग्री और पारा आदि रूप बनावो। और इस प्रकार दर्पणको तैयार करके हे अजीज मन नाम अजीत मनवाले पुरुषो! उसे मांजते रहो जिससे उसमें मोर्चा नहिं लग जावे।

१५१ साखी दोहा।

गुरु बिचारे क्या करैं, शिष्यहि में है चूक।
शब्द बाण बेधे नहीं, बाँस बजाये फूँक॥ १५१॥

टीका—चित्तकी स्वच्छता आदिका प्रयोजन बताते हैं कि यदि शिष्यही में अत्यन्त चूक है तो दयालु बिचारा [दयालु गुरु भी] क्याकर सकते हैं? अर्थात् अत्यन्त बहिर्मुख विवेकादि रहित मनुष्यको जन्मादिरूप संसारसे रहित करनेके लिये गुरु भी असमर्थ हो जाते हैं। क्योंकि उस मल विक्षेप युक्त पुरुषके हृदयमें आत्मवस्तुके उपदेशरूप शब्दात्मक बाण नहीं बेधता है। किन्तु जैसे बांसकी बाँसुरी फूँकनेसे बाजती है उसमें शब्द होता है, परन्तु उसमें शब्द बेधता नहीं है। वैसेहो चित्तशुद्धि विवेक विचारादि रहित शिष्य गुरुसे कहे शब्दोंको कह देते हैं, परन्तु वे शब्द उनके अन्तःकरण में बेधते नहीं हैं। अर्थात् अपरोक्ष अनुभव दृढ़ विरागादिको नहीं सिद्ध करते हैं। इसलिये शिष्यको अवश्यही चित्तको शुद्ध करना और रखना चाहिये। और कुल, जाति, धन, विद्या और रूपादिके अभिमानोंको दूर त्यागकर सद्गुरुमें ईश्वरके सदृश श्रद्धाभक्ति युक्त होना चाहिये। चित्तको क्षुब्ध करनेवाले विषय व्यवहारादि से इन्द्रियोंका निरोध करना चाहिये जिससे गुरुका उपदेशसे ज्ञान और कल्याण होजावे इत्यादि। अथवा जो कोई शिष्य नाममात्र बनाते हैं, और उचित मार्ग नहीं बताते हैं, वे बिचारे असमर्थ गुरु शिष्य क्या करते हैं नाम क्या शिष्य बनाते हैं। यदि शिष्य होनेपर भी उसमें 'चूक' नाम अज्ञान पापादि प्रवृत्ति विद्यमान हैं तो उसे शिष्य बनाना व्यर्थ है। और चूक रहते भी बिचारे गुरु शब्दरूप बाण से उसे बेधते नहीं हैं, किन्तु जैसे कोई बांस बजाता है तैसे बिचारे गुरुआ लोग कान फूँक देते हैं इत्यादि।

१५२ साखी दोहा।

सब तरुवर तर जायके, सब फल लीन्हा चीख।
कबीर फिरि फिरि माँगई, शब्दोहीं का भीख॥१५२॥

टीका—चूकजन्य प्रवृत्तिका वर्णन करते हैं कि ये जीव सब 'सब तरुवर तर जायकर सब फलोंको चीख लिये हैं' नाम अनेकों अवस्थादि रूप शाखाओं से युक्त सब योनि लोक ब्रह्मा-

ण्डादि रूप सब वृक्षोंके फल अनादि कालसे जीव उन २ योनि आदिकों में प्राप्त हो हो कर भोग चुके हैं, कोई अपूर्व फल इस संसारमें भोगनेके लिये बाकी नहीं है । साहेब कहते हैं कि तौभी विवेक विचारादि बिना अज्ञानके बशबर्ती जीव 'फिर २ कर' नाम उन योनि आदिकों में प्राप्त हो २ कर लौट-लौट कर बारम्बार भोगे हुये 'शब्दों का' नाम वाचारम्भणरूप विषयों की ही भीख मांगते हैं, अर्थात् कर्मादि करके देवादिकों से भिक्षाके सदृश तुच्छ विषयादिक ही चाहते हैं, और प्राप्त करके अपूर्वके सदृश भोगते हैं। और विषयोंके नाशादिसे फिर महा दुःखी होते हैं। इसलिये अज्ञान चूक तत्पूर्वक प्रवृत्तिका निवारण करना चाहिये । अथवा साहेब उपदेश देते हैं कि सब लोकादिमें जाकर सब फल भोग चुके हो, और उससे तुम्हें तृप्ति मुक्ति नहीं होती है। तो हे जीवो ! फिर बारम्बार शब्दों हीं की भीख क्या मांगते हो? नाम विषयादि क्या चाहते हो? अर्थात् नहीं चाहो। या महात्माओं के शरणमें जाकर सारशब्दों काही भीख मांगो इत्यादि । या अनेकों सम्प्रदाय रूप सब तरुतर जाकर सब फल जीव भोग लिये हैं, और आत्मज्ञान बिना उससे कल्याण भी नहीं हुआ है, तौभी अज्ञान वश गुरुवाओं के शब्दों की भिक्षा जीव मांगते हैं वास्तविक अर्थरहित कल्पित शब्द मन्त्रमात्र का उपदेश लेते हैं इत्यादि ।

१५३ साखी दोहा ।

शब्द स्वरूपी ते भये, किया शब्द सो मेल ।
शब्द न चीन्हें बावरा, फिरि फिरि खेलु अहेल ॥ १५३ ॥

टीका--और भी साहेब कहते हैं कि जिन पुरुषों शब्दसे मेल किये नाम अनित्य वाचारम्भणमात्र विषयादिसे प्रेमकिये, वे लोग स्वयं भी शब्द स्वरूपी हुवे, और होते हैं, नाम अनित्य शरीरादिमें अभिमानादि करके नश्वर वाचारम्भणमात्र होते हैं अपनेको अनित्य स्वरूप समझते हैं। और विचारादिसे रहित होनेसे उस शब्दको अनित्य तुच्छ नहीं चीन्हते हैं, इससे फिर २ कर बारम्बार उन शब्दोंका ही 'अहेल' नाम अहेर शिकार खेलते हैं नाम कर्मोपासना लौकिक व्यवहारादिसे उसीको प्राप्त करते हैं । अथवा अहेल नाम हेलने पैौड़नेके अयोग्य अगाध समुद्र तुल्य विषयादि रूप शब्दोंमें क्रीड़ा करते हैं । जिससे संसारमें बूड़कर मरते हैं। इससे शब्दसे मेलको त्यागना और उसे पहचानना चाहिये जिससे कल्याण होवे। अथवा जिन श्रेष्ठ पुरुष गुरुके सारशब्दसे मेल किये उनके उपदेशोंको माने वे लोग शब्दस्वरूप हुवे नाम शब्दसे जाने हुवे कल्याणस्वरूप हुवे शब्दके अनुसार सतमार्ग सतवस्तुमें स्थिर हो गये। और जो बावरा सारशब्दको नहीं चीन्हता है सोई संसारमें बारम्बार अहेल खेलता है नाम तुच्छ विषयादिके लिये बारम्बार जन्म लेता है। इससे गुरुके सारशब्दसे मेल करना चाहिये । और लोक वासना आदिको त्यागना चाहिये ।

१५४ साखी दोहा।

मूरख के समुझावते, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोयला है न ऊजरो, सौमन साबुन लाय ॥ १५४ ॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि प्रमाद अज्ञानादि वश जीव यदि जन्मादिको प्राप्त होते हैं, तो दयालु गुरु उपदेश देकर उन्हें प्रमाद अज्ञान रहित क्यों नहीं करते हैं? तब साहेब कहते हैं कि 'मूरख' नाम अत्यन्त प्रमादी ज्ञानीपनके अभिमानी आग्रही अज्ञानियोंके प्रति सतमार्ग सतवस्तु समझानेमें गांठिके ज्ञान व्यर्थमें ही जाता है, नाम हृदयसे प्रेम दया पूर्वक किया गया भी ज्ञानोपदेश व्यर्थ ही होता है, उसको उपदेशसे ज्ञानादि नहीं होते हैं। प्रमादादिकी निवृत्ति नहीं होती है। जैसे कोयलामें यदि सैकड़ों मन साबुन 'लाय' नाम लगाय दिया जावे तौ भी वह उज्वल नहीं हो सकता है। तैसे ही विवेकादि रहितको ज्ञान नहीं होता है। या अत्यन्त मूढ़ अभिमानीको समझानेसे समझाने वालेके गांठिका भी ज्ञान, नाम ज्ञानजन्य धारणादि नष्ट हो जाते हैं, उसके बचन व्यवहार सङ्गादिसे चित्तमें क्षोभ क्रोधादि उन्मुख हो आते हैं, और कोयला सदृश वह पुरुष भी नहीं उजल होता है, इससे उसके प्रति महात्मा लोग उपदेश नहीं करते हैं। सौमनके नौमन केतो ये दो पाठ भेद हैं भाव उक्त ही है।

१५५ साखी दोहा

मूढ़ कर्मि मानै नाहीं, नखशिख पाखण्ड आहिं।
वाहनिहारा क्याकरै, वाह न लागै ताहि ॥ १५५ ॥

टीका—और भी कहते हैं कि 'मूढ़कर्मि' नाम लोक परलोकके विषयादि रूप फलोंकी कामनासे लौकिक वैदिकादि कर्मोंको करने वाला मोहयुक्त आग्रही ज्ञानाभिमानी अज्ञानी पुरुष गुरुके उपदेशको नहीं मानता है। क्योंकि उसके नखसे शिखातक मिथ्याज्ञान छल दम्भादिरूप पाखण्डही भरे रहते हैं। और यदि 'ताहि' नाम उसको उपदेशरूप 'वाह' नाम घोड़ा जो संसारसे पार करनेवाला है सो नहीं लगता है, तो 'बाहनिहारा' नाम संसारसे पार प्राप्त करनहारा वा ज्ञानोपदेशरूप बाहनवाला सद्गुरु उसे क्या करैं? अथवा यदि सकामकर्मादिरूप 'बाहन' नाम सवारी उसको लगा है, उसपर वह सवार है, उससे उतरता नहीं है, तो ज्ञानादिरूप बाहनवाला गुरु उसको क्या कर सकते हैं? यदि उसको 'बाह' नाम ज्ञानादिके मार्ग और मर्म सामर्थ्यका पता कुछ लगताही नहीं है तो गुरु क्या करें? इत्यादि। [मूढ कर्मिया मानवा, नखशिख पाखर आहिं। बाहन हारा क्या करे, बाण न लागै ताहि ॥] यह पाठ भेद है तब अर्थ है कि मूढ़कर्मी जो मनुष्य है, उसके नखसे शिखातक पाखर है नाम नखसे शिखातक अज्ञानादि रूप पाखर वह पहिरा

है जैसे लोहेका बना हुआ भूल विशेष हाथी वा घोड़ा पहिरताहै, तैसेही यह मूढ़कर्मी अज्ञानादिको कवचके सदृश पहिरा है। तहां 'वाहन हारा' नाम ज्ञानोपदेश रूप बाण चलानेवाले गुरु क्या करें ? यदि उसको बाण नहीं लगता है इत्यादि ॥

१५६ साखी दोहा ।

सीमर केरा सूगना, छिहुले बैठा जाय ।
चोंच समारै शिर धुनै, ई उसही का भाय ॥ १५६ ॥

टीका—फिर जिज्ञासा हुई की मूढ़कर्मी और कैसा होता है, कि जो सद्गुरुके सुखद उपदेशको नहीं मानता है ? तब साहेब कहते हैं कि जैसे किसी 'सीमर के' वृक्षपर रहनेवाला 'शुक' पक्षी उस सीमरके 'छिहुले' नाम ढेंढीपर अर्थात् उसके फल पर वा उसके पासमें जाकर बैठा, और उसे खानेके लिये चोंच समारने लगा, और उसे सुन्दर रसयुक्त फल जानकर आनन्द से शिर धुनने लगा, तैसे ही संसाररूप सेमरपर रहनेवाला, और गृह स्त्री पुत्र धनादिरूप इस संसारके नीरस फलपर वा उसके पासमें बैठनेवाला, मूढ़कर्मी इसीसे आनन्द की प्राप्तिके लिये सब व्यापार करता है, और आनन्द मानता है। इससे 'ई' नाम यह मूढ़कर्मी 'उसहीका' नाम उस अविवेकी मूर्ख सुगनाकाही 'भाय' नाम भ्राता है, उसीके सदृश अत्यन्त मूढ़ है, इसीसे गुरुके कल्याण कारक उपदेशको भी नहीं मानता है । कहीं आक तथा पलासको भी, छिहुला, सिहुला, कहते हैं। इस प्रान्तमें सीमरके फलको छिहुला कहते हैं। इससे दूसरा अर्थ है कि सीमरका सुगा सीमरके फलमें रस नहीं पाया किन्तु रुआ देखकर निराश हुआ, तब अकवन वा लाल पुष्प युक्त पलासपर जाकर बैठा कि इसके फलसे तृप्त होऊंगा, और यह नहीं समझा कि ये आक पलास उस सीमरके ही भाई हैं । तैसेही मूढ़कर्मी इस लोक योनि आदिमें नीरस विषय भोगादिसे नहीं तृप्त होकर लोकान्तरादि में जाते हैं और यह नहीं जानते हैं कि सभी मायिक विषय लोकादि नीरस और मिथ्या हैं, इनसे कभी तृप्ति नहीं हो सकती है इत्यादि। अथवा साहेब उपदेश देते हैं कि हे सीमरके सुगना ! तुम छिहुलापर जायकर क्यों बैठा ? और चोंच सवारता हुआ क्यों शिर धुनता है ? यह तो उसीका भाई है। अर्थात् हे सुगना सदृश मनुष्यो ! सभी विषय वस्तुतो नीरस और दुखद हैं इत्यादि ।

१५७ साखी दोहा ।

सुगना सीमर सेइया, दो ढेंढी की आश ।
ढेंढी फुटी चेनाकद, सुगना चला निराश ॥ १५७ ॥

टीका-विवेकादि बिना संसारात्मक सीमरको सेवने वालोंकी दशाका साहेब वर्णन करते हैं कि जैसे कोई सुगना दो ढेंढी की आशासे सीमरको सेवन किया, परन्तु 'चनाकदे' नाम चन ऐसा शब्द करके जब 'ढेंढी फुटी' उसमें से रुआ ऊड़ने लगा तब वह निराश होकर चला। तैसेही ये मूर्ख अविवेकी अभिमानी मनुष्य लोक परलोकके विषय सुखादि रूप दो ढेंढीकी आशासे संसाररूप सेमर को सेवते हैं, परन्तु जब देखतेही देखते शरीर विषयादि नष्ट हो जाते हैं इनसे तृप्तिरूप आशाकी पूर्ति नहीं होती है, तब उन नष्ट हुवे पदार्थों से निराश होकर चलते हैं। फिर मोहादि बश अन्यकी आशा करते हैं। और वे मूढकर्मी अन्य शरीरादिकी प्राप्ति करते हैं, उनसे भी नहीं तृप्त होकर उन्हें भी नष्ट होनेपर निराश होकर चलते हैं। इसी प्रकार मुढकर्मी मोह तथा कामना बश निरन्तर भटकते हैं। और गुरुके उपदेशको नहीं मानते हैं जिससे नित्य सुखी होवें इत्यादि।

१५८ साखी दोहा।

सुगना सीमर बेगि तजु, घनी विगूचन पांख।
ऐसा सीमर स सेवे, जाके हृदय न आंख॥ १५८॥

टीका—साहेब उपदेश देते हैं कि 'हे सुगना!' नाम संसाररूप सीमरको सेवने वाले हे सज्जन मनुष्यो! वा हेजिज्ञासुओ! तुम सब इस संसाररूप सीमरको 'बेगि' नाम शीघ्रही 'तजु' नाम त्यागो। क्योंकि जैसे सुगनाको 'घनी' नाम सघन और 'विगूचन' नाम विगुर्चे हुवे अर्थात् विशेष रचना युक्त शीघ्र उड़ने योग्य सुन्दर दो पांख रहते हैं। तैसेही तुझे भी ऊहापोह विवेक विरागादिके योग्य सुन्दर सुन्दर मन बुद्धि रूप दो पांखें हैं, सो घनी विगुर्चन हैं इन पाखों से संसारात्मक सीमरको शीघ्र त्याग दो। क्योंकि आनन्द रहित दुःखमय इस संसाररूप सीमरको सोई पुरुष सेवते हैं कि 'जाके' नाम जिनके हृदयमें शुद्ध सुन्दर मन,बुद्धि रूप आंखें नहीं रहती हैं। अथवा जिसके भीतर विवेक युक्त बुद्धि हृदयमें नहीं रहती है, और बाहर भी आंख नहीं रहती है सोई पुरुष इसको सेवता है तुम लोग इसे त्यागदो। विगूचनके विगुर्चन। ससेवेके सेव जो। चतुर्थ पादके हृदया नाहीं आंख। ये पाठ भेद हैं। अर्थ भेद है कि हेसुगना! संसारात्मक सीमरको शीघ्र त्यागो तेरे 'घनी विगुर्चन' नाम अत्यन्त सघन सुन्दर पांखके सदृश मन बुद्धि आदि वर्तमान हैं। यदि इसको नहीं त्यागोगे तो ये प्राप्त आँखें नष्ट हो जावेंगी क्योंकि 'ऐसा' नाम दुखमय इस संसारको जो सेवता है उसके हृदयमें आँख नहीं रह जाती है प्राप्त विवेकादि भी गर्वादिसे नष्ट हो जाते हैं। इसलिये इस संसार विषयक आसक्ति आदिको युक्तिसे त्यागदो। अथवा कहते हैं कि हे मनुष्यो! संसार रूप सीमरको शीघ्र त्यागो नहीं तो घनी पांखके सदृश विवेकादि की शक्ति मनुष्यत्वादिके भी विगूचने नाम विगुर्चने फजिहती दुर्दशा नाश होने चाहते हैं, संसारका सेवन इन सबको नष्ट करने वालो है, तौ भी इस सेमरको जो सेवते हैं उनके हृदयमें विवेक विचारादि रूप आंख का अत्यन्त अभाव जानो।

१५९ साखी दोहा।

जानि बूझि जड़ है रहै, बल तजि निर्बल होय।
कहहिं कबिर ता सन्त कै, पला न पकरै कोय॥ १५९॥

टीका—और भी साहेब उपदेश देते हैं कि जो पुरुष संसारको असार तथा दुःखमय जानबूझ करभी जड़ हो रहे हैं नाम विवेक विचारादि पूर्वक इसे त्यागनेके लिये यत्न नहीं कर रहे हैं, किन्तु अज्ञानियों के सदृश इसमें आसक्त हैं। और जो विवेक विराग विचारादि रूप बलको त्यागकर निर्बल हो रहे हैं कि जो ईश्वर खुदा आदि करेंगे सोई होगा मैं क्या करूं और क्या कर सकता हूँ? इत्यादि। साहेब कहते हैं कि 'तासन्तके' नाम उन नकली वेषधारी आदि सन्तों का 'कोईभी पला नहीं पकड़ो' नाम विचारादि रहित उन पुरुषों के साथमें कोई नहीं लागो क्योंकि न वे संसारसे पार हो सकते हैं न दूसरेको पार कर सकते हैं। अथवा विवेक विचारादि रहित पूर्वक-हे सन्तके 'पला' नाम पक्षको कोई नहीं पकड़ता है। अर्थात् जिसके भरोसे रहते हैं सो कोई भी विवेक विचार सत्सङ्गादि रहित पुरुषको संसारसे पार करनेके लिये न उद्यत होता है न पार करता है, इससे विवेक विचारादिरूप पुरुषार्थ अवश्यही करना चाहिये। अथवा साहेब कहते हैं कि जो पुरुष विचारादिसे स्वयं आत्मादि वस्तुको जानकर और गुरुसे बूझकर अर्थात् पूँछकर भी अनधिकारी बहिर्मुख पुरुषों के आगे जड़ सदृश होकर रहते हैं, अपनी विद्वत्ताको मानादिके लिये प्रगट नहीं करते हैं। और अपकारियों से बदला लेने योग्य बलयुक्त रहनेपर भी जो उस बलके प्रयोगको त्यागकर निर्बल सदृश हुए रहते हैं अर्थात् क्षमाशील रहते हैं। 'ता सन्त के' नाम उन सन्तों के पला कोई नहीं पकड़ सकता है। अर्थात् जैसे किसी अपराधीके 'पला' नाम चादर धोतीको पकड़कर लोग बिलमाते हैं, उसे पकड़नेके लिये उसके पाछ पकड़ते हैं दौड़ते हैं। तैसे उन सज्जनोंका कोई कुछ भी नहीं पकड़ सकते हैं, न मोहादि द्वारा कोई पदार्थ ही उन्हें संसार में बिलमा सकते हैं। और न कोई शत्रु आदिके नाई उनके पीछे धावा ही कर सकते हैं। अथवा उन सन्तोंके 'पला' नाम पक्षको जो कोई पकड़ते हैं सो संसार से पार हो जाते हैं, परन्तु मोहादि बश उनकी पलाको कोई पकड़ते ही नहीं हैं, किन्तु देवादिके भरोसे संसारमें ही लोग आसक्त रहते हैं। मनु आदिमें लिखा है कि [**जानन्नपिहि मेधावी जड़वल्लोकमाचेरत्॥ बुधो बालकवत् क्रीड़ेत् कुशलो जड़वच्चरेत्। वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्यां नैगमश्चरेत्॥ क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतं च भावि च। क्षमा तपः क्षमा शौचं क्षमयेदं धृतं जगत्**] जानता हुआ भी बुद्धिमान् लोकमें जड़ सदृश विचरे बुध होकर बालक सदृश रागद्वेषादि से रहित होकर क्रीड़ा करे, लोक व्यवहार में कुशल होते जड़सदृश व्यवहार करे विद्वान् होते उन्मत्त सदृश बोले वेदवेत्ता होते गोसदृश विचरे जिससे

राग लोक मानादि नहीं घेरलेवें। क्षमा ही ब्रह्म, सत्य, भूत, भावि, तप, शौच, सब रूप है सबको प्राप्त कराने वाली है और क्षमा ही जगत को धारण की है।

१६० साखी दोहा।

लोग भरो से कौन के, बैठ रहे अरगाय।
जियरहिं लूटत यम फिरै, मेंढ़हिं लुटे कसाय॥ १६०॥

टीका—दयालु-गुरु बहिर्मुख पुरुषोंके प्रति भी उनके योग्य हित उपदेश देते हैं कि हे लोगो! 'कौन के' नाम किसके भरोसे 'अरगाय' कर अर्थात् चुप होकर तथा विचार सत्सङ्गादि से अलग बेपरवाह होके बैठ रहे हो अर्थात् गुरु महात्माओं से कल्याणके लिये पूछना आदि त्याग कर किसके भरोसे बैठे हो गुरुका उपदेश सत्सङ्ग विचारादि बिना तुम्हारा कल्याण करनेवाला कोई नही है। इससे काम उद्धतपन मूढ़ता आदिको त्यागो, और अन्यके भरोसा आदिको त्यागकर विचार श्रवणादि करो। क्योंकि अन्यके भरोसा करके चुप बैठने वाले विचार श्रवणादि से रहित बेपरवाह 'जियरहिं' नाम जीवोंको यम इस प्रकार लूटते फिरता है अर्थात् वारम्बार मृत्यु इस प्रकार पीड़ित करती है कि जैसे 'मेंढहि' नाम भेंड़ा आदिको कसाई लूटते हैं, अर्थात् पीड़ित तथा बध करते हैं। इसलिये उस यम से बँचने के लिये अवश्य उपाय करो सदुपदेश सुनो विचारादि करो अन्य की आशाओं को त्याग दो इत्यादि। अरगाय के अगराय। तृतीय पादके ऐसे जियरहि यम लुटे। ये पाठ भेद हैं। खेल आदि करने को अगराना कहते हैं।

१६१ साखी दोहा।

हीरा सोइ सराहिये, सहै घनहुं की चोट।
कपट कुरङ्गी मानवा, परखत निकला खोट॥ १६१॥

टीका—जिन अनात्म विषय स्वर्ग देवादिकों के भरोसे उन्हें सत्य सुखदादि मानकर मनुष्य चुप बैठते हैं, उन्हें मिथ्या मायिक दर्शाने के वास्ते साहेब उपदेश करते हैं कि 'हेमानवा!' अर्थात् हे मनुष्यो! सोई हीरा 'सराहिये' नाम सराहने योग्य है और सच्चाहै, जो लोहेके घनहुं की चोट को सहताहै, और उससे टूटता फूटता नहीहै नकि कपटसे बनाया हुआ। और 'कुरङ्गी' नाम कुत्सित रङ्ग वाला नकली हीरा घनसे पारख करनेपर खोटही निकलता है अर्थात् टूट फूट जानेसे किसी कामका नही रहताहै। तैसेही सर्वात्मस्वरूप जिस साक्षी चेतनको सर्वात्मा होनेसे उसका बाध वा नाश कभी भी किसी प्रकार नही होताहै सोई अभेद्य, अदाह्य, अजर और अमरात्मा रूप हीरा सराहने योग्य प्राप्तकरने तथा जानने योग्यहै। और सोई सर्वात्मा होनेसे तर्कादिरूप घनोंकी चोटोंको भी सहताहै, किसी तर्का-

दिसे वस्तुत उसका अभाव नहीं सिद्ध होता है। और कपटरूप मायासे सिद्ध हुए वा कपटी गुरुआ आदिसे सत्य माने गये कुत्सित मायिक त्रिगुणादि रङ्गवाली सबवस्तु परखनेपर खोट ही निकली और निकलती हैं। अर्थात् सब एकदेशी दृश्य होनेसे स्वप्नगन्धर्व नगरादिके सदृश मिथ्या सिद्ध होजाते हैं, सतर्क विचारादिको नहीं सहते हैं। इसलिये उनसे मोक्ष सुखादि की भरोसा त्यागदो अभेद्य आत्मवस्तु के विचार श्रवणादि करो। अथवा आत्मवस्तुको जानबूझ कर भी जड़ सदृश रहने वाले, क्षमा, शील, अविनाशी और स्थिर स्वरूपताको प्राप्त सोई महापुरुष रूप स्वयंप्रकाश हीरा सराहने योग्य हैं, जो काम क्रोधादि रहित होने से सब उपद्रवादि को सहने वाले शान्त स्वरूप हैं। और जो मनुष्य कपटरूप कुरङ्गवाले हैं, अन्यकी आशामें हैं, अथवा कपट युक्त और कुरङ्गी नाम मृगीस्वरूप हैं अर्थात् हरिणी सदृश चञ्चल अनात्मपति आदिके अधीन जो हैं, सो परखनेही खोट निकलते हैं, विचारादि नहीं सहते हैं, शीघ्रही कामक्रोधादिके बशमें होजाते हैं, और आनन्दरूप अपने आत्माको छोड़कर अनेकों विषयादिमें सुख खोजते फिरतेहैं, कहीं स्थिर नहीं होते हैं, इससे मृगी के सदृश हैं। और पारखमें नहीं ठहर सकने से पारख करनेपर केवल दुःख के भागी अविवेकी ही निकल पड़ते हैं। (झूठ जवाहिर को वनिज, तबलगि पूरिहैं पूर। जब लगि मिलै न पारखी, धनपर चढ़ै न कूर)॥

१६२ साखी दोहा।

हरि हीरा जन जौहरी, सबन पसारी हाट।
जब आये जन पारखी, तब हीरों की साट॥ १६२॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि सर्वात्मस्वरूप हरि ही पूर्व वर्णित सराहने योग्य हीरा है। और गुरुके विवेकी शिष्य जौहरी हैं, नाम उस हीराके परखने वाले तथा आत्म-रूपसे प्राप्त करनेवाले हैं। और अन्य सब लोगोंने नकली हरि आदि रूप हीराओंको संसाररूप हाट में पसारे हुये हैं। अर्थात् वे लोग अनात्म शून्यपर्यन्त पदार्थोंको सत्य आत्मादि मानकर जिज्ञासुओं के प्रति उपदेश कर रहे हैं, परन्तु जब इनके हाटमें पारखी जन आकर प्राप्त होते हैं, तब उन नकली हीराओं की योग्य 'साट' नाम मूल्य जाना जाता है। अथवा हे जौहरी जिज्ञासुओ! कपट कुरङ्गी लोग सब अनात्मस्वरूप अनेकों हरिरूप हीरा मानकर हाटमें पसारे हुये हैं, परन्तु जब जनपारखी गुरु आये तबभी जिज्ञासुजन का भी पारख करके नकली असली सब हीराओंकी मोलसाट कर दिये, और कर देते हैं। और अन्य लोगो से उनकी ठीक साट नहीं होती है। इस-लिये गुरुसे ही जानना चाहिये। या सर्वात्मस्वरूप हरि हीरा है, और जिज्ञासु जन जौहरी हैं। सो गुरुसे परखाने के लिये संसार सत्सङ्गादिरूप हाटमें पसारे हुये हैं, परन्तु जब उनके शुभ अदृष्टसे पूर्ण पारखयुक्त गुरु आये, तब हीराओंकी साट करदिये और कर देते हैं। पूर्ण पारख

करा देते हैं, जिससे घनकी चोट सहनेवाला साक्षीस्वरूप जिज्ञासुजन हो जाते हैं। अथवा जौहरी पारखी जन तो हरिरूप हीरास्वरूप ही हैं, और अन्य लोग सब हीराको हाटमें पसारे हुए हैं, वहां जब पारखी जन आये तब उन हीराओंको साठ दिये, नाम आत्मस्वरूप में लय करदिये मिलाय दिये, इत्यादि। पारखी के भी जौहरी, पाठ भेद है।

१६३ साखी दोहा।

हीरा तहाँ न खोलिये, जहमाँ खोटी हाट।
सहजहिं गांठी बांधिये, लगिये अपनी बाट ॥१६३॥

टीका— संसाररूप हाटमें पारखी गुरू हीराओंकी साट करते हैं, यह सुनकर कोई जिज्ञासु यह न समझ जावें कि मूढ़कर्मी आग्रही आदिकों के प्रति भी ज्ञानी गुरु जन लोग वास्तविक सर्वात्मस्वरूप हीराका उपदेश देते हैं, इसलिये साहेब जिज्ञासुओं के प्रति फिरभी उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! जहाँपर आग्रही मूढ़कर्मी कपट कुरङ्गी अनधिकारी पुरुषों की रागद्वेषादि युक्त 'खोटी हाट' होवे तहाँ सत्य हीराको 'न खोलिये' अर्थात् नहीं खोलना चाहिये, इससे वहाँ उसके उपदेश चर्चा नहीं करिये, किन्तु 'सहजहिं' नाम स्वतःसिद्ध आत्मस्वरूप में गाँठी बांधलो। या सहज स्वभाव सहज समाधि से अपने हृदय में गाँठी बांध लिजिये। उनसे बोलना भी त्याग दिजिये। और 'अपनी बाट में लगिये' नाम जो अपने गन्तव्यमार्ग हैं उसमें चल दिजिये। और एकान्त में स्वयं विचारादि करिये। अथवा अपने स्वरूपात्मक मोक्षमार्ग में लगिये। या दोनों साखी से उपदेश देते हैं कि हे जौहरी विवेकी जिज्ञासुजनो! सर्वसाक्षीस्वरूप हरि सत्यहीरा हैं और अन्य लोग अनेकों अनात्मवस्तु हाटमें पसारे हुये हैं उनकी साट तुम नहीं करो, किन्तु हे जन! जब किसी पारखीको यहां आया हुवा देखो तो हीराओं की ही साटकरो, और तौभी जहाँ खोटी हाट देखो तहाँ हीराको नहीं खोलो किन्तु उस पारखीके साथ अपनी बाटमें लगो इत्यादि। जहँ कुञरों की हाट। यह द्वितीय पादका पाठ भेद है, कुञरोंके सदृश मूढ़कर्मी आदिका समुदाय जहां होवे वहाँ हीरा नहीं खोलो किन्तु चुपके से अपने रास्ता पकड़ो।

१६४ साखी दोहा

हीरा परा बजार में, रहा छार लपटाय।
मूरखथा सो चलि गया, पारखि लिया उठाय ॥ १६४ ॥

टीका—जिज्ञासा हुई की यदि खोटी हाटमें आत्मस्वरूप स्वयंप्रकाश हीराको नहीं प्रगट करना चाहिये, तो जब आये जन पारखी, तब हीराओं की साट। इस कथनका क्या तात्पर्य है? तब साहेब कहते हैं कि जैसे सच्चा 'हीरा' कहीं 'बजार में' प्रगट ही पड़ा रहा, परन्तु उसमें 'छार'

अर्थात् मलरूप धूल अथवा भस्म लिपटा रहा । तहाँ जो मूर्खथा अर्थात् जौहरी नहीं था, सो उसे देखकर भी उसे त्यागकर पहिचाने बिना तुच्छ वस्तुओं को लेकर चला गया । और पारखी पुरुष उस हीराको ही उठा लिया। तैसे सत्य चिदानन्दरूप हीरा सबके आधार आत्मा स्वरूपसे संसारात्मक बजार में परा है, और प्रत्यक्ष ही वर्तमान है, परन्तु उसमें नामरूपात्मक अविद्या पञ्चकोशादिरूप छार लिपटे हुये हैं, इससे विवेकादि रहित मूर्ख लोग उसे नहीं जानते हैं, न आत्मस्वरूप से प्राप्त ही करते हैं, किन्तु नामरूप को ही सत्य आत्मादि जानकर संसारचक्र में गये और जाते हैं । और पारखी अर्थात् विवेकादि युक्त अधिकारी पुरुष श्रद्धा आदि युक्त होनेसे गुरुका उपदेशसे उस आत्मवस्तुको उठा लेते हैं नाम प्राप्त करलेते हैं । तथा पारखी गुरु उस आत्मवस्तुको प्राप्त करते हैं । अन्य पुरुष नहीं प्राप्त करते हैं यह तात्पर्य्य है । या खोटी हाटमें उक्त हीराको क्यों नहीं खोलना चाहिये ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि आत्मस्वरूप हीरा बजारमें पड़ाहुवा है, और जन्म मरणादि के अध्यासरूप छार उसमें लिपटे हुये हैं, इससे मूर्ख विवेकादि रहित जो था सो गुरुके उपदेशादि को सुनकर भी संसारमार्ग में ही गया और जाता है, इसलिये उसके प्रति उपदेश देना व्यर्थ है । और कोई विरला अधिकारी पुरुष स्वयं गुरुसे पूछकर और पारखी होकर उस हीराको प्राप्त किया, और करता है । इसलिये खोटी हाटमें हीरा को नहीं खोलो इत्यादि । अथवा इस साखीके अनुसार हरि हीरा इत्यादि का भाव है कि जौहरी विवेकी जिज्ञासुजन सब हरिरूप हीराको सत्सङ्गादिरूप हाटमें पसारे हुये हैं, परन्तु जब पारखी गुरु आये तब उन्हें हीराओं की ठीक साट हो गई अन्यको नहीं हुई, इसलिये खोटी हाटमें हीरा नहीं खोलो । और समझो कि हरिरूप हीरा शरीर के भीतर बाहर सर्वत्र संसारमें है मूर्ख उसके बिना ही गये और जाते हैं पारखी ही उठाये और उठाते हैं इत्यादि । केते मूरख चलि गये । बहुतक मूरख फिरि गया । ये तृतीय पाद के पाठ भेद हैं उनके पूर्वोक्त ही भाव हैं । अथवा आत्म-वस्तु को नहीं ताककर बहुत पदार्थको ताकनेवाले नाम देखनेवाले बहुतक पुरुष, बहुत पदार्थ-रूप छारयुक्त हीराको समझे बिना मरगये और मररहे हैं । और पारखी बहुत पदार्थके तरफ नहीं देखकर आत्मवस्तु को ही जानते हैं इत्यादि भाव हैं ।

१६५ साखी दोहा ।

अपने अपने शीरकी, सबहिन लीन्हों मानि ।
हरि की बात दुरन्तरें, परी न काहू जानि ॥ १६५ ॥

टीका–जिज्ञासा हुई कि यदि आत्मा प्रगटहै, और महात्मालोग उपदेश भी देतेहैं तौभी सब किसी को उसका अनुभवज्ञान क्यों नहीं होताहै ? तब साहेब कहतेहैं कि असतउपदेशसे तथा विवेक बिचा-रादिके अभावसे सबही मनुष्य अपने २ शिरकी बातको मान लियेहैं । अर्थात् भिन्न २ कल्पना करके अपने२

पति शिरोधार्य वस्तुविषयक बातोंको सब कोई सत्य मान लियेहैं, और मानी हुई कल्पित वस्तुओंको ही ध्यान पूजाआदिमें तथा पूजा आदिके लिये द्रव्योपार्जनादिमें मनुष्य लगे रहतेहैं, इससे वास्तविक हरि की बात तथा सद्गुरुके उपदेशरूप बात बहुत दूरके अन्तरमें अर्थात् व्यवधानमें परीहै, उनके लिये बिचारादि मानों दूर भगजाते हैं। यां हरिकी बात उनके लिये दुरन्तरमें नाम दुष्ट व्यवधानमें परी है, इससे अनात्मवस्तु की बातोंको शिरकी बात मानने वाले उन काहूको नाम किसी पुरुषोंको भी अपना स्वयंप्रकाश आत्मा नहीं जाना गया न उसकी बातही जान परी न जान पड़ती है। अर्थात् जैसे प्रत्यक्ष दशमको भ्रमकाल में अपने स्वरूपका दशमरूप से नहीं ज्ञान होता है, और प्रत्यक्ष रज्जुका सर्पभ्रमकालमें उपदेश से भी नहीं ज्ञान होता है, तथा दिग्भ्रमकालमें दिशाओं का नहीं ज्ञान होताहै, और जैसे किसी राजाने धूर्तोंके कथनसे अपने जीवित भरक्षु नामक तपस्वीरूप मन्त्रीको जटाभस्मधारी प्रेतरूप जान लिया था। इससे दैवयोगसे फिर उसको आंखसे देखलिया तौभी यथार्थज्ञान नहीं हुआ इसलिये उस सुखदमन्त्रीसे भय मानकर भाग गया। तैसेही उपदेश देनेपर भी अपरोक्षस्वरूप अपने स्वरूपके ज्ञान दोषों की निवृत्ति बिना नहीं होता है।

१६६ साखी दोहा।

हाड़ जरै जैसे लकड़ि, केश जरै जस घास।
कबीरा जरै राम रस, कोठी जरै कपास ॥१६६॥

टीका—चिदात्मारूप हरिका स्वरूप तथा उपदेशों को समझे बिना जो जीवों की दुर्दशा होतीहै उसका वर्णन करतेहैं कि हरिकी बातको दुरन्तर पड़ने से जीव बारम्बार जन्मते और मरते हैं। और हरिको जाने बिना जिस शरीरमें आसक्त रहतेहैं, जिसका अभिमान करतेहैं, सो नष्ट हो जाताहै। उसका हाड़ लकड़ी के सदृश जरताहै। केश घास सदृश जरतीहै। और 'कबीरा' नाम वे जीव सब अपने अपने सिरके माने हुवे अनात्मस्वरूप रामके रससे नाम प्रेम वासना आदिरूप अग्नि से जरते हैं। अर्थात् आत्मज्ञानादि बिना मरनेपर अनात्म वासनाके अधीन गर्भमें प्राप्त होतेहैं, और वहाँ जरतेहैं। जैसे कोठीके भीतर 'कपास' नाम रुई जरती होवे तैसे गर्भमें जरतेहैं। तथा गर्भसे बाहर भी कल्पित रामादि विषयैक रससे नाम प्रेम वासनासे तथा बिरहाग्निसे जरतेहैं जैसे कोठीमें कपास जरती होवे। अर्थात् ज्ञान बिना अनात्म कल्पित राम विषयादिको श्रेष्ठ सुखद मानकर उनकी बासना युक्त उनमें प्रेम करनेवाले पुरुष कोठीके अन्दर जरती हुई कपासके सदृश शरीररूप कोशके अन्दर अभिमानादि करके राग, द्वेष, मोह, शोक, चिन्ता और विरहादिरूप अग्निसे जरते रहतेहैं, कभी विश्राम शान्ति नहीं पातेहैं। इससे माने हुवे अनात्म रामादिरूप सिरकी वस्तुओं की बात चिन्ता बासनाओंको त्यागकर आत्मनिष्ठ विचारादिपरायण होना चाहिये कि जिससे फिर नहीं जरना होवे। जैसे लकड़िके जस लाकड़ी यह पाठ भेद है।

१६७ साखी दोहा

घाट भुलाना बाट बिन, बेष भुलाना कानि ।

जाकी मांड़ी जगतमें, सो न परा पहिचानि ॥ १६७ ॥

टीका—और भी साहेब कहतेहैं कि जैसे सुन्दर बाट नाम रास्ता बिना नदीके घाट भूल जाता है, इससे मनुष्य कुघाटमें चला जाता है कि जहाँ दुःखी होताहै । तैसे संसाररूप समुद्रसे पारजाने का घाट बेषधारी मनुष्यों को भी सुन्दर बाट बिना 'भुलाना है' नाम वैराग्य, बासनात्याग, और विज्ञानोपरति रूप संसारसे पारहोने के लिये घाटहैं, और बिवेक, शम, दम, श्रवण, भक्ति और सत्सङ्गादि उक्त घाटों की प्राप्तिके लिये बाटहैं, उसके बिना उक्त घाट भूले हुवेहैं । और जिन बेषधारियों को सुघट नहीं प्राप्त हुवेहैं, सो 'वेष' नाम बेषधारी सबभी 'कानि' नाम अपनी अपनी कल्पित मर्यादारूप कुमार्ग से अनात्मवस्तु रूप कुघाट में भूलेहैं अर्थात् भूलसे प्राप्त हुवेहैं, अनेकों कामकर्म, जप, तप और नियमादि करके अनात्मवस्तुको ही प्राप्त करतेहैं, असतमार्गको त्यागकर सतमार्गका खोजभी नहीं करतेहैं, किन्तु असतमार्गमें ही भटकते रहतेहैं । इससे 'जाकी' नाम जिस सत्यात्मा की जगतमें 'मांड़ी' नाम विस्तारहै वा मण्डन शोभाहै । अथवा जिसकी सबमें व्याप्ति है, अर्थात् जो सर्वात्माहै, और जिसके मन माया रूप शक्तिसे सब विस्तार हुवेहैं, और होतेहैं, सो सत्य आत्मा इन कानिमें भूले हुवे वेषधारियों को भी "नहीं पहिचानि" परा नहीं समझमें आया कि वह कौन है इत्यादि, इससे सब रामरसमें जरतेहैं । असत मायिक वस्तुओं में फँसकर दुःखी होतेहैं इत्यादि । अथवा जैसे घाट सतबाट बिना भूलताहै, तैसे विवेकादि बिना 'बेष और कानि' नाम मर्यादा असत नियमादिमें जीव सब भूलेहैं । इसलिये जिस मायाकी जगतमें विस्तारहै सो माया जिसकी है सो नहीं पहचान परा इत्यादि ।

१६८ साखी दोहा

मूरखन सो क्या कहिये, शठसो क्या बौसाय ।

पाहन में का मारना, चोखो तीर नशाय ॥ १६८ ॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि जो सुमार्ग सुघाट को नहीं जानते हैं वे लोग तो भटकते ही फिरते हैं । परन्तु जो ज्ञानाभिमानी जाने हुवे सतमार्ग से नहीं चलते हैं, उन प्रमादी 'मूरखन' नाम मूर्ख लोगों से क्या कहिये नाम क्या कहा जावे, क्योंकि उनके प्रति कुछ कहना व्यर्थ ही होता है, और कहनेपर भी नहीं समझ सकनेवाले अत्यन्तमन्द बुद्धि वाले शठपुरुषों से बौसाय क्या है ? उनके लिये उपदेशक भी क्याकर सकते हैं ? क्योंकि इनके प्रति आत्मवस्तुका उपदेश देना पत्थरमें तीर मारनेके समान है, जैसे पाहनमें तीरको मारनेसे चोखे तीर भी

नष्ट होजाते हैं, और उसमें बेधते भी नहीं हैं। सोई हाल मूर्ख तथा शठके प्रति उपदेशका होता है। इसलिये आग्रहादि रहित सज्जन विचारशील को ही गुरुके उपदेशसे भी जिसकी मांड़ि है सो पहचान पड़ता है। और कानि आदिमें भूले मनुष्यों को मूर्ख वा सठ स्वरूप होने से उन्हें ज्ञान नहीं होता है। इससे रामरसमें जरते हैं इत्यादि। अथवा जिज्ञासा हुई कि संसारमें जरते हुवे, कुधारमें भटकते हुवे, सब मनुष्यों को उपदेश देकर महात्मा लोग उन्हें दुःखसे रहित क्यों नहीं कर देते हैं? तब साहेब कहते हैं कि विवेकादि रहित अत्यन्त बहिर्मुख गैरसमझ मूर्खसे क्या कहा जावे? और धूर्त छली आदि रूप शठके प्रति क्या बौसाय किया जावे? ये दोनों गुरु महात्माओं से असाध्य हैं इत्यादि। मूरखों सो मूरख सो क्या बोलिये। ये प्रथम पादके पाठ भेद हैं, कामारना के क्या मारिये, यह भेद है॥

१६९ साखी दोहा

जैसे गोली गुमजकी, नीचपरे ढहराय।
तैसे हृदया मूर्खका, शब्द नहीं ठहराय॥ १६९॥

टीका—और भी कहतेहैं कि जैसे मन्दरादिके 'गुमजपर' नाम ढरकाव उच्च सिखरपर धरी गई 'गोली' नाम वर्तुल गेन्दादि पदार्थ वहाँसे 'ढहराय' कर [लुढ़ककर] नीचमें गिर पड़ते हैं, नाम ऊपर से लुढ़ककर नीचे स्थानमें स्थिर होते हैं, वहाँ नहीं स्थिर रहतेहैं। और जैसा वह गुमज रहता है तैसा ही वेषादिके मर्याद अभिमानादि युक्त अनम्र स्वरूप मूर्खों का हृदयपर होता है, इसलिये जैसे गुमजकी गोली नहीं ठहरती है, तैसे ही मूर्ख उद्धत ज्ञानाभिमानी आदिके हृदयमें गुरुके उपदेशरूप सारशब्द नहीं ठहरतेहैं, किन्तु वही शब्द नम्र निरभिमानी सज्जन जिज्ञासुओंके हृदय में ठहरता है। इसलिये मूर्खके प्रति उपदेश देना व्यर्थ होता है नम्र सज्जन जिज्ञासुओं के प्रति सार्थक और उचित होताहै।

१७० साखी दोहा।

ऊपर की दोऊ गई, हिय की फूटी आंखि।
कबिर बिचारा क्या करै, जो जीबहिं नहिं भांखि॥ १७०॥

टीका—शठोंके विषयमें कहते हैं कि जिन शठपुरुषोंके ऊपर की दोनों आंखे नष्ट हो गई हैं, अर्थात् आंखसे देखे हुवे जड़, नश्वर, अशुचि और दुःखमय पदार्थोंमें भी जिन्हें आत्मा, ईश्वर, शुचि, सुखद और पूज्यादि बुद्धि हो रही हैं, तथा ज्ञानी सतपुरुषों के रागद्वेषादि रहित सुखद प्रत्यक्ष व्यवहार आचारादि को देखकर भी जो नहीं समझ रहे हैं, उनके ऊपर की दोनों आंख मानों नष्ट होगई हैं। और अपने हृदयमें भी कभी आत्माऽनात्म सुमार्ग कुमार्गादि के विवेक विचारादि नहीं करते हैं। सद्गुरु के उपदेशको भी नहीं समझते हैं। इससे हृदय के विवेक

विचारकी शक्तिरूप आंख भी मानों फूट गई है। साहेब कहते हैं कि इन शठोंको देखकर मुझे दया उत्पन्न होती है, परन्तु इनके कल्याणके लिये क्या विचार करूं? क्योंकि इन जीवोंको किसी प्रकार भी सतमार्ग सतवस्तु की 'झांकि' नाम दर्शनज्ञान होता ही नहीं है, तो इन शठोंके लिये मेरा विचार कौन कार्य कर सकता है। अथवा कबिर नाम कवि महात्मा लोग उनके लिये क्या विचार करें? वे लोग उन्हें समझानेके लिये असमर्थ हैं। गुरु महात्मा उपदेश देते हैं, विचार करना शिष्यको उचित है। यदि शिष्य विचारादि विमुख असमर्थ होवे तो गुरु उसके लिये क्या विचार कर सकते हैं? अथवा वे शठ जीव विचारे भी क्याकर सकते हैं जब किसी सतवस्तु सत मार्गकी झांकी उन्हें नहीं होती है, इत्यादि। हियकी गई हिराय। कहहिं कबिर चारो गई, ताको काह उपाय॥ तासो कहा बसाय॥ ये पाठ भेद हैं॥ इस साखीसे शठोंको उपदेशकी अनधिकारिताका व्युत्पादन किया गया है॥

१७१ साखी दोहा।

केते दिन एहूं गया, अनरूचे का नेह।

ऊषर बोयन ऊपजे, जो घन वरषे मेह॥ १७१॥

टीका--और भी साहेब कहते हैं कि जिन मूर्खों तथा शठोंको सत्य उपदेश नहीं रुचता है, यानी अच्छा नहीं लगता है, उन 'अनरूचे' पुरुषोंके साथ उनकी भलाईके लिये 'नेह' करनेसे कितने दिन 'एहूं' नाम निष्फल गये। अथवा कितने दिनोंका उनके साथका नेह निष्फलही गया, क्योंकि उन्हें श्रेष्ठ सङ्गति उपदेशसे भी विज्ञान विराग नहीं हुवे। जैसे ऊषरभूमिमें सुन्दर बीज बोया जावे और यदि मेघ भी 'घन' नाम पूर्ण वरषे तौभी वह खेत नहीं उपजता है। तैसेही मूर्ख शठपुरुषों के प्रति आत्मज्ञान सतधर्मके उपदेशरूप बीज बोकर उनमें कितनाहूं नेह किया जावे नाम हितबुद्धिसे समझाया जावे, परन्तु उनके ऊषर सदृश हृदयमें विज्ञानके अङ्कुर नहीं उपजते हैं। मूर्खके हृदयमें कथञ्चित ऊपजता भी है तो स्थिर नहीं रहता है। या कहते हैं कि 'अनरूचे' नाम दुःखमय मिथ्या पदार्थोंके साथ 'नेहसे' कितनेदिन अज्ञानियोंके निष्फल गये, और उससे तृप्ति नहीं हुई, तौभी उनके हृदयरूप ऊषरभूमिमें सदुपदेशरूप बीज बोनेपर नहीं उपजताहै। यदि आनन्द घनरूप वस्तुके उपदेशरूप मेघ भी बरषे तौभी उनके हृदयमें आनन्द नहीं उपजता है इत्यादि। इन वचनोंके भाव यह हैं कि मूर्ख शठपुरुषोंकी मूर्खता शठताकी निवृत्तिके लिये प्रथम यत्न करना चाहिये, और मूर्खता शठता सब किसीको त्यागना चाहिये, ये महा अनर्थके मूल हैं, इन्हें रहते किसी प्रकार किसीसे भी कल्याण नहीं हो सकता है, परन्तु किसी यत्नसे भी जिसकी मूर्खता शठताही नहीं निवृत्त हो सकती होवे उससे नेह करना भी व्यर्थ है। और साहेब यह विचार प्रगट करते हैं कि दया करनेपर भी सब पुरुषोंकी मूर्खता शठताको कोई नहीं नष्ट कर सकता है,

इसीसे यह असाध्य कार्य है। और अनादि अनन्त संसार सब जीवोंके लिये बना है। कोई बिरले ही उपदेशसे भी साध्य होते हैं, सोई मुक्त होते हैं इत्यादि। एहुंके ऐसे गये, यह पाठ भेद है।

१७२ साखी दोहा।

मैं रोवों यह जगत को, मोको रोव न कोय।
मोकों रोवै सो जना, शब्द विवेकी होय॥ १७२॥

टीका—साहेब कहते हैं कि गुरुरूप मैं इस जगतको रोता हूं, नाम इसकी भलाई सुख-शान्ति मुक्तिके लिये चिन्ता करुणा दया करता हूं, इस जगके कष्टसे कष्ट सहता हूं, परन्तु मोको कोई भी मूर्ख शठ नहीं रोता है नाम मेरी चिन्ता करुणाको नहीं समझता है, इससे इसके ऊपर दया नेह भी व्यर्थ जाते हैं। और जो कोई मोको रोता है, 'सोजना' नाम वह पुरुष सार असार शब्दके पूर्णविवेकी ज्ञानी हो जाता है। और जो शब्दविवेकी होता है, सोई पुरुष मोको रोता है, नाम गुरुकी दया करुणा आदिको सोई पुरुष समझता है, इससे गुरुकी सेवा भक्ति भलाई सोई करता है। और सद्गुरुकी प्राप्ति प्रसन्नता वास्ते रोता है कि किस प्रकार सद्गुरुकी प्राप्ति प्रसन्नता होगी कि जिससे मेरा कल्याण होगा इत्यादि। यह जगतका सब जगत, पाठ भेद है।

१७३ साखी दोहा।

साहब साहब सब कहै, मोहि अँदेशा और।
साहब सो परिचय नहीं, बैठहुगे किहि ठौर॥ १७३॥

टीका—शंका हुई कि सब मनुष्य अपने २ शिरके मानकर अपने अपने कल्याणके लिये साहेब ईश्वर राम शिव आदि जपते भजतेही हैं, उससे उनका कल्याण होहीजावेगा फिर सद्गुरु सब जगतके लिये क्यों रोते हैं, तब साहेब कहते हैं कि सब मनुष्य अपनी २ मानी हुई वस्तुओंको यद्यपि साहेब साहेब कहते हैं, और अपने २ माने हुवेको सबसे बड़ा समर्थ भी बताते हैं तथापि 'मोहि' नाम मुझे अन्य बातकी अन्देशा है कि जिस अनात्म साहेबको तुम सब पुकारते हो उस साहेबसे भी तुझे परिचय नहीं है, उसे भी ठीक नहीं समझेहो तो किस ठौरमें बैठोगे। अर्थात् अपनी बासनाके बशमें होकर भटकते फिरोगे तुझसे माना हुआ एकदेशी अनात्मस्वरूप साहेब सत्य नहीं है कि जिससे तुझे सच्चा कल्याण होगा। अथवा अपनी २ मानी हुई वस्तुओं को सब कोई साहेब २ कहते हैं, परन्तु मुझे 'और अन्देशा है' नाम अन्य सन्देशा समाचार सुनाना है वा चिन्ता है 'कि' सर्वात्मस्वरूप सच्चा साहेबसे तुम सब मनुष्योंको परिचय नहीं है तो किस ठौरपर बैठोगे नाम कहां स्थिर होगे, किन्तु कहीं भी स्थिर नहीं होगे संसारचक्र में भ्रमते ही रहोगे, इसीसे मैं तुम सबके लिये चिन्ता करता हूं तुम अभी भी सच्चा साहेबसे परिचयके लिये यत्न करो और विचारो इत्यादि।

१७४ साखी दोहा ।

जीव बिना जिव जिवै नहीं, जिव का जीव अधार ।
जीव दया करि पालिये, पण्डित करहु बिचार ॥ १७४ ॥

टीका—जिज्ञासु आदिके प्रति साहेब उपदेश देते हैं कि हे पण्डितो ! दयालु सतगुरु रूप जीव बिना अन्य अज्ञानी जीव किसी प्रकार नहीं जीता है, नाम नित्य चेतनरूपसे सदा स्थिर नहीं रहता है, किन्तु शरीरमें अभिमान करके सदा जीते मरते रहता है, और सतगुरु के उपदेश पूर्वक ज्ञानसे अजर अमर चेतनस्वरूप रहता है, इससे अज्ञानी जिज्ञासु सज्जन जीवोंका सतगुरु रूप जीव आधार हैं । इसलिये हे पण्डितो ! ज्ञानकी प्राप्ति करके अन्य जीवोंको भी दया करके उपदेशसे पालन करो । और अपने कल्याणके लिये तथा अन्यके कल्याणके लिये विचार करो । अथवा अन्यके भरोसे रहनेवाले केवल साहब २ करनेवाले शास्त्रज्ञ पण्डितोंके प्रति कहते हैं कि हे पण्डितो! जीव बिना जीव नहीं जीता है नाम अपने विचारादिरूप पुरुषार्थ बिना जीवका कल्याण अन्यसे नहीं होता है इससे जीवका नाम जीव अपना आधार आपहीहै इसीसे अपने कल्याणके लिये विचार करो और अपनेपर दया करके अपना पालन संसारसे निस्तार आप करो अन्यकी आशाको त्यागो इत्यादि । अथवा साहेबसे परिचय बिना ठौर नहीं मिलता है, और वह परिचय अहिंसा दया सत्यविचारादि बिना नहीं होता है, इसलिये उपदेश देते हैं कि हे पण्डितो ! जीवके बिना जीवका जीवन नहीं होता है, यदि माता दूध नहीं पिलावे तो सब बालक नष्ट हो जावें, राजा शासन नहीं करे तो सब मनुष्य परस्पर लड़भिड़कर मरजावें पशुओंसे दूधादिकी वृक्षादि से फलादिकी प्राप्ति नहीं होवे तो कोई भी जीवित नहीं रहसकें, इसलिये परस्पर जीवोंके जीवही आधार हैं । वहां मोह रागादि बश तो सभी अज्ञानी पशुपक्षी आदि भी अपने पुत्र सम्बन्धी आदि के पालन करते ही हैं, परन्तु दया विचारसे नहीं करते हैं, इससे उसके पुण्य अन्तःकरणकी शुद्धि आदि विशिष्ट फल नहीं होते हैं, और तुम विचार करो विचारपूर्वक दयासे जीवोंका पालन सामर्थ्यके अनुसार करो, नाम दयापूर्वक अहिंसा परोपकार करो राग द्वेषादिसे किसीको पीड़ित नहीं करो जिससे तेरा कल्याण होवे ।

१७५ साखी दोहा ।

हौं तो सबहीं की कही, मोकों काहु न जान ।
तब भि अछा अब भी अछा, युग युग होउँ न आन ॥ १७५ ॥

टीका—ज्ञानके अधिकारी अनधिकारी का वर्णन पूर्वक पूर्व वर्णित उपदेश करके फिर साहेब कहते हैं कि 'हौं तो' नाम मैंने तो 'सबहींकी' नाम सब मनुष्योंकी भलाईकी

बात कही है। परन्तु 'मोको' नाम मुझे काहु नहीं जानता है। अर्थात् शब्दोंके विवेक बिना गुरुको कोई नहीं पहचानता है न उनकी दया करुणाको समझता है, परन्तु कोई पहचाने तोभी मुझे अच्छाही है और कोई नहीं पहचाने तोभी मुझे अच्छाही है मुझे किसी से रागद्वेष नहीं है, और मेरा एकरस निर्विकारस्वरूप है, इससे मैं युग युगमें 'आन' नाम अन्य स्वरूप नहीं होता हूँ। अथवा जो कोई मुझ गुरुरूपको 'तब' नाम पूर्वही जान गया, उसको भी अच्छा नाम कल्याण होगया। औरजो 'अब भी' जानता है उसको भी अच्छा होता है, गुरुस्वरूप मैं अनन्तों युगमें भी आन नहीं होता हूँ। इस कथनसे उपदेशक गुरुकी धारणा दर्शाई गई है, और उनमें सदा निर्विकारिता बताई गई है। या आत्मतत्त्वका उपदेश देकर कहते हैं कि मैं तो सभीके स्वरूपकी बात कही है, परन्तु मुझे सर्वात्मस्वरूप कोई जानता नहीं हैं। अर्थात् यह नहीं समझता है कि ज्ञानी गुरुकी दृष्टिसे सब उनके स्वरूप हैं, और जान बूझकर अपना अपकार आपही कोई नहीं करता है, किन्तु भलाई करता है, इससे गुरु मेरी भलाई करते हैं इत्यादि कि जिस समझनेसे भावी कालमें अच्छा होवे, और वर्तमानमें भी अच्छा होवे, और उसके आत्मा स्वरूप मैं भी युग युग में आन नहीं होऊं ऐसा कोई नहीं जानता है। अथवा कहते हैं कि मैं सब की अपने २ शिरकी मानी हुई असत वस्तुओंकी बात कही है, परन्तु मुझको कोई नहीं जानते हैं, नाम असत कल्पना करनेवाले मुझे नहीं समझते हैं कि जो मैं तबभी अर्थात् भूत भावी कालमें भी 'अच्छा' नाम स्वच्छ शुद्धस्वरूप हूँ, और अबभी अच्छाहूं, और अनन्त युग बीतनेपर भी आन नहीं होता हूं। या जो मैं तब नाम असत कल्पना कालमें और अब नाम कल्पना रहित ज्ञानकालमें शुद्धही हूं युगयुग में रहता हूं अन्यरूप नहीं होता हूं उस रूपवाला मुझे कोई नहीं समझतेहैं जिससे कल्याण होवे किन्तु केवल साहब साहब सब कोई कहते हैं और नष्ट होते हैं इत्यादि। शास्त्रीय ज्ञानदृष्टिसे साहेबने यह उपदेश दिया है।

१७६ साखी दोहा।

प्रगट कहों तो मारिया, परदहिं लखै न कोय।
सहना छपा पुआरतर, को कहि बैरी होय॥ १७६॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि मैं सबके हितकी बातोंको यदि प्रगट कहता हूँ कि मूर्खता शठताको त्यागकर, तथा मनसे कल्पित शिरके वस्तु आदिकोंको त्यागकर उन्हें मायिक मिथ्या जानकर छठी सत चेतन आनन्दस्वरूप आत्माको जानो और प्रगट नाम प्रत्यक्ष चेतन स्वरूप तुम्ही हो, तेरे स्वरूपसे भिन्न अनात्म सब वस्तु मिथ्या मायिक हैं इत्यादि 'तो मारिया' नाम मनुष्य मारते हैं, अर्थात् भला नहीं मानते हैं और कहते हैं कि क्या मैं मूर्ख वा शठ हूँ कि

मूर्खता वा शठताको त्यागूं क्या मुझसे मानी गई वस्तु सब मुझसे भिन्न होते भी मिथ्या हैं कि उन्हें मैं मिथ्या जानूं, क्या मैं आनन्दस्वरूप हूँ, मैं तो संसारी दुःखी परबश जीवहूँ, कभी ईश्वरादिकी कृपासे विषयादिकी प्राप्तिसेही मैं आनन्द होता हूँ इत्यादि । और यदि परदासे कहता हूँ तो कोई लखताही नहीं है । अर्थात् यदि कहता हूँ कि एकही ब्रह्मात्मा सत्य है उसे शठ वा मूर्ख पुरुष नहीं जानते हैं वह मायासे आच्छादित है और सबके हृदयमें विद्यमान है, उससे भिन्न सब वस्तु मिथ्या हैं इत्यादि, तो कोई पुरुष समझताही नहीं है । जिज्ञासा हुई कि परदासे कहनेपर मनुष्य क्यों नहीं लखते हैं ? तब साहेब कहते हैं कि 'सह' अर्थात् वह सत्यस्वरूप 'ना' अर्थात् पुरुष शरीरादिरूप 'पुआरतर छपा है' नाम असार कोशोंसे आच्छादित है, इसलिये इसारासे कहनेपर शीघ्र कोई नहीं समझतेहैं, और प्रगट कहनेपर लोग बुरा मानते हैं तो प्रगट कहकर कौन संसारके बैरी होवे नाम संसारको अपना बैरी कौन बनावे इत्यादि । अथवा कहते हैं कि यदि प्रगटही जीवोंका हितके लिये कहता हूँ तो ये लोग मारनेके लिये दौरते हैं, और कहने बिना अज्ञान रूप परदेमें रहने वाली वस्तुको कोई नहीं समझते हैं, तथा परदेसे कहनेपर भी कोई नहीं समझते हैं, और सबका मनरूप 'सहना' शरीर विषयादिरूप पुआरतर छिपा है। अर्थात् इस जीव तथा शरीर के रक्षक 'सहना' नाम कोतवाल वा सिपाहीरूप मन सब संसारको रचकर उसमें आनन्दादिकी बुद्धि कराके इसीमें आसक्त है और मनसे विपरीत कहनेपर जीव सब विरोध मानते हैं तो प्रगट कहकर इनसे कौन बैरी बने जिज्ञासु सतपुरुष परदेसेही समझ लेवेंगे इत्यादि । सहना शब्दके चोर अर्थ सम्प्रदाय सिद्ध है, तब अर्थ है कि जैसे किसी धनीके धनको हरकर चोर पुआतर छिपा होवे, तहां प्रगट कहनेसे दुष्टात्मा चोर मारता है, और परदेसे कहनेपर धनी समझता नहीं है, तहाँ प्रगट कहकर दुष्टात्मा चोरके बैरी कौन होवे, तैसेही प्रगट गुरुआ आदिके जालोंको कहनेपर गुरुआ आदि मारते हैं, परदेसे कहनेपर जीव समझतेही नहीं हैं जीवरूप धनीके आत्मसुख सम्पत्ति विचारादिरूप धनको चोरानेवाले माया मिथ्या पदार्थोंमें छियेहुवे गुरुआ आदिको प्रगट कहकर कौन बुद्धिमान उनका बैरी होवे इत्यादि ।

१७७ साखी दोहा ।

कलि खोंटा जग आंधरा, शब्द न चीन्है कोय ।
जाहि कहों हित आपना, सो उठि बैरी होय ॥ १७७ ॥

टीका—प्रगट कहनेपर क्यों मारता है ? और बैरी होता है, ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि 'कलि' नाम कलियुग खोंटा युग है, और विवेकादि रहित जग अँधरा है, इससे सारशब्दरूप उपदेशको कोई नहीं मानता है न चीन्हता है इसीसे मैं जिसको

अपना हित सज्जन जानकर उसकी भलाईकी बात कहता हूँ सोभी वैरी हो उठता है। यद्यपि कालात्मक युग स्वयं खोटा नहीं है, तथापि खोटे पुरुषोंके आचरणका कालमें आरोप करके कालको खोटा कहा गया है। या कलि नाम अज्ञान कलहयुक्त यह खोटा जग विवेकादि बिना अन्धा है, इससे सार असार शब्दोंको कोई भी विवेक पूर्वक नहीं चीन्हता है, इसीसे जिस पुरुषको उसके अपनाही हित वास्ते कहता हूँ अर्थात् उसका मोक्षके लिये सुमार्ग बताताहूँ सोभी उस सुमार्ग से उठकर उसे त्यागकर उलटा वैरी होजाता है इत्यादि।

१७८ साखी दोहा।

देश विदेश हौं फिरा, मन हीं भरा सुकाल।
जाको खोजत हौं फिरो, ताका परा दुकाल ॥ १७८ ॥

टीका—और कहते हैं कि 'हौं' नाम मैं देश विदेशमें सर्वत्र फिरा, परन्तु सब स्थानोंमें मनहीं भराहुआ पाया, और मनहींका सुकाल देखा। अर्थात् विवेक विचार बिना मनके अनुसार चलनेवाले मनसे कल्पित वस्तु आदिको सत्यादि माननेवाले पुरुष सर्वत्र बहुत मिले और मिलते हैं। और 'जाको' नाम जिन विवेक विचारशीलोंको मैं खोजता ढूंढता फिरताहूँ 'ताका' नाम उनका दुकाल परा है। अर्थात् जैसे दोशालतक अत्यन्त वृष्टिके अभावसे अन्नका मिलना कठिन होजाता है किसी बिरले पुरुषके यहां अन्न मिलता है तैसेही विवेक विचारादि किसी बिरले शरीरमें मिलते हैं, और विवेकादि रहित बन्धनके हेतु मन सर्वत्र पूर्ण होरहा है, इससे विवेकादि रहित मनुष्य हित कहनेपर अज्ञानादि बश बैरी होते हैं।

१७९ साखी दोहा।

मसि कागज छूवों नहीं, कलम धरों नहिं हात।
चारिहुं युगके महातम, मुखहिं जनाई बात ॥ १७९ ॥

टीका—आत्मतत्त्व तथा सतमार्गका उपदेश देकर साहेब कहते हैं कि मैं सबके हितकी बातको उपदेश देकर भी विशेष और विस्तारसे प्रगट लिखनेके लिये 'मसि' और 'कागज' नहीं छूता हूँ न छूऊँगा और विशेष विस्तार पूर्वक लिखनेके लिये 'हात' नाम हाथमें कलम भी नहीं धरूंगा, क्योंकि जिनसे जीवोंको कल्याण हो सकता है, ऐसे जो 'चारोयुगके महातम' नाम महत्त्व, अर्थात् चारों युगमें कल्याणकारक जो श्रेष्ठ गुणकर्म स्वभाव वस्तु हैं उनकी बात मैं जनाई है उनका उपदेश देदिया है। और उनके उपदेशके लियेभी 'मुखहिं' नाम मुख्य बातही जनाई

है विस्तार नहीं किया है, क्योंकि विस्तार करनेसे भी जीव सब भाव समझे बिना शरीरादिको ही आत्मा आदि मान लेते हैं, इससे विस्तार नहीं करके जिन अहिंसा आदिकोंसे जिस आत्म-ज्ञानसे जीवोंका कल्याण होता है, उन चारोयुगके महातमस्वरूप मुख्य बातोंको ही मैं जनाई है। चारि युगके महातमा ॥ यह तृतीय पादके पाठ भेद है, अर्थ है कि मैं अन्य बातोंको लिखनेके लिये मसि कागज नहीं छूता हूँ न हाथमें कलम धरता हूँ,क्योंकि चारों युगके महात्मा लोगोंने समय २ पर मुख्यही बात जीवोंका कल्याणके लिये जनाई है सोई बात मैं भी जनाया है। कोई अर्थ करते हैं कि मैं मसि आदि नहीं छूता हूँ, केवल मुखसे उपदेशरूप बात जनाई है लेखक अन्यहीं होंगे इत्यादि ॥

१८० साखी छन्द सार

फहमें आगे फहमें पीछे, फहमें बाँयें डेरी।
फहमें पर जो फहम निबेरै, सोइ फहम है मेरी ॥ १८० ॥

टीका—क्या मुख्य बात जनाई है ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि 'फहमें' नाम ज्ञानस्वरूप चेतनातमाही 'आगे पीछे बाँयँ' और 'डेरी' नाम दहिने सर्वत्र है, उस फहमेंपर जो पुरुष विवेक विचार अनुभवरूप फहमको निबेरा करे, उसीके विवेकादि करे, साहेब कहते हैं कि 'सोई मेरी फहम है' नाम मुख्य जनाई हुई सोई बात है। अथवा 'आगे' नाम भावी, और 'पीछे' नाम भूतपदार्थोंके, और 'बाँयँ' डेरी' नाम शुभ अशुभ वर्तमान कालके पदार्थादिकोंके पुरुष फहम करे, नाम अनुभव विचारादि करे। और सब फहम नाम अनुभवोंसे पर साक्षीस्वरूप जो फहम है, उसका निरुआरा करे नाम विवेक पूर्वक अपरोक्ष अनुभव करे। साहेब कहते हैं कि सोई मेरी फहम है मुख्य बात है। या जीवको जो आगे पीछे आदिके फहम होती है नाम प्रतिभा होती है ज्ञान होता है, उन सबोंसे परे साक्षीरूप फहमका जो निबेरा नाम निर्णय है सोई फहम मेरी है इत्यादि । बाँयँ डेरीके दहिने डेरी, पाठ भेद है तब डेरी शब्दके बाँयँ आदि अर्थ हैं ॥

१८२ साखी दोहा ।

हद चले सो मानवा, बेहद चलु सो साध।
हद वेहद दोनों तजै, ताकी मता अगाध ॥ १८१ ॥

टीका—फहम करनेवालों तथा न करनेवालों में उत्तम मध्यम कनिष्ठरूप भेदका बोधके लिये वर्णन करते हैं कि जो पुरुष केवल लौकिक वैदिकादि मर्यादारूप हद्दमें चलता है, परम्पराकी रीतिमात्रका अनुसरण करता है, और हद्द नाम सीमावाले

एकदेशी देव विषय शरीर गृहादिमें सत्य मैं मेरी आदि बुद्धि करता है, और जाति कुलादिका अभिमान करता है, सो हद्दमें चलनेवा । मनुष्य 'मानवा' नाम सामान्य मनुष्य है, अर्थात् मेरे पिता आदि अमुक कार्य करते थे अमुक २ वस्तु खाते थे अमुक २ को पूजते थे इसलिये मुझे भी करना खाना पूजना आदि चाहिये, ऐसी बुद्धिसे कुछ करने आदि वाला विचार रहित अविवेकी मनुष्य कनिष्ठ मनुष्य है, चाहे दैवयोगसे वह श्रेष्ठ ही रास्ता परम्परामें चलता होवे, परन्तु विवेक विचारादिसे उसे जानता नहीं होवे, किन्तु केवल अन्ध परम्पराकी रीतिसे उसे पकड़ लिया होवे तो, यद्यपि प्राक्तन कर्माधीन उस पुरुषकी भलाई होगी, जिस कर्मके अधीन वह सत्यमार्गमें प्राप्त हो गया है तथापि वर्तमान बुद्धिकी दृष्टिसे केवल हद्दमें चलनेवाला मनुष्य विवेक विचारादि रहित होनेसे कनिष्ठ है। और विवेक विचारादिसे पूर्व कहे सब हद्दोंको त्यागकर जो पुरुष बेहद्दमार्गमें सीमारहित सत्यात्मवस्तुमें चलता है नाम सब जाति कुलके अभिमानादिको त्यागकर बेहद्दब्रह्मात्मारूपसे जो स्थिर होता है, ब्रह्मानन्दका अनुभव करता है पक्षपातादिसे रहित होता है, सो पुरुष 'साध' नाम साधु कुशल है, और जो पुरुष प्रथम बेहद्दमें चलकर फिर हद्द बेहद्द दोनोंको तजता है, नाम दोनोंके अभिमानको त्यागता है और बेहद्दस्वरूप हो जाता है, अर्थात् हद्द बेहद्द व्यवहारको भी माया आदिरूप उपाधिकृत जानकर जो पुरुष केवल शान्तरूपसे स्थिर होता है, और अभिमान बिना ही प्राप्त उचित यथा योग्य व्यवहारको जो करता है वा नहीं करता है 'ताकी' नाम उस सर्वोत्तम ज्ञानी महात्माकी 'मता' नाम मत समझ धारणा अगाध है, नाम साधारण मनुष्योंसे अगम्य है। तथा माया आदिके अविषय और संसारसे पर है। यहां तीन प्रकारके मनुष्योंका वर्णनसे साहेबने उपदेश दिया है कि विवेक विचारादि बिना बेहद्द चलनेवाले सबमर्यादासे रहित पुरुष भी पशु आदिके तुल्य हैं। अथवा विचारपूर्वक जो हद्दमें चलता है सतमार्गादिका उलंघन नहीं करता है, सो सच्चा मनुष्य है। और जो बेहद्द आत्माराममें चलता है उसके विचारादि करता है सो साधु महात्मा है। और जो बेहद्दका अनुभव करके हद्द बेहद्द दोनोंके विचारको त्याग देता है बेहद्दस्वरूप हो जाता है उसकी मति अगाध है। और इन तीनोंसे भिन्न मनुष्य पशु आदिके तुल्य हैं इत्यादि।

१८२ साखी दोहा।

समुझे की मति एक है, जिन देखा सब ठौर।

कहहिं कबिर वै बीचके, बलकहि औरक और ॥ १८२ ॥

टीका—बेहद्द चलनेवालेको साधु कहनेसे, और हद्द बेहद्द दृष्टिको त्यागनेवाले की मति को अगाध कहनेसे, जिज्ञासु यह न समझ जावें कि बेहद्द चलनेवाला अज्ञानी होता है। दोनोंको त्यागने हो वाला ज्ञानी होता है। इस आशयसे साहेब कहते हैं कि जिन पुरुषोंने आत्मतत्त्वको

सब ठौरमें बेहद्स्वरूप देखा है, उन समुझे हुवे अर्थात् समझनेवाले सब महात्माओंकी मति 'ज्ञान' एक ही है, ज्ञानके अभ्याससे ज्ञानीकी अवस्थामात्रमें भेद हो जाता है, बेहद वस्तुको समझने वाले चाहे उस दृष्टिसे युक्त रहें वा चित्तके निरोधादि कालमें उस दृष्टिसे रहित रहें, परन्तु वे अज्ञानी वा विपरीत ज्ञानवाले नहीं होते हैं। और ज्ञानवान् पुरुषसे जानी हुई वस्तु भी एक ही सत्य है उसमें भेद नहीं होता है, वह अनादि एकरस है, किन्तु जिन पदार्थोंके गुरुआ आदि लोग और के और 'अनेकों भिन्न २।' बल (सामर्थ्य) कहकर उनकी भक्ति उपासना आदि करते हैं साहेब कहते हैं कि वे सब पदार्थ बीचके हैं (कल्पित कार्यरूप मिथ्या हैं,) इससे उनके ज्ञान भी अनेक हैं। अथवा साहेब कहते हैं कि जिन पुरुषोंने सर्वत्र आत्माको देखते हैं, उन समझनेवाले सब पुरुषोंकी मतिसे आत्मा एक ही है। परन्तु वे संसारके बीचके पुरुष और के और 'बलकहिं' नाम बलकते हैं नाम अनेकों वस्तु प्रगट करते हैं विचारादि बिना अपने २ शिरके वस्तुओंको बकते हैं। अथवा उस आत्मासे भिन्न जो बीचके कार्य्यादिरूप वस्तु संसारके अन्दर हैं, उनकेही औरके और बल कहीं २ है जिससे संसार विचित्र है, इत्यादि ॥

१८३ साखी दोहा।

राह बिचारी क्या करै ?, पन्थी न चलै सुधारि।
अपनैं मारग छोड़िके, चले उजारि उजारि ॥ १८३ ॥

टीका—पूर्व वर्णित मोक्षमार्गको तथा सबके हितकी बातोंको सुनकर जिज्ञासा हुई कि उक्त मार्गको रहतेभी सब जीवका कल्याण क्यों नहीं होता है ? तथा वेद शास्त्रादिरूप मार्ग रहतेभी जीव क्यों दुःखी होते हैं? तब साहेब कहते हैं कि मोक्षमार्ग महात्माओंके उपदेशरूप 'राह' नाम रास्ता 'बिचारी' नाम बेचारा 'क्या करे' नाम यत्नहीन विचारादिसे विमुख आलसी मनुष्योंको कैसे प्राप्त हो जावे और कैसे मोक्षकी प्राप्ति करा देवे यदि संसाररूप पथके 'पन्थी' नाम पथिक जो जीव हैं सो सुधारकर नहीं चलते हैं। अर्थात् कुमार्गका त्यागपूर्वक शम दमादिसे ज्ञानरूप मोक्षके मार्गको नहीं प्राप्त करते हैं, तो वह मार्ग कुछ नहीं कर सकता है, किन्तु सुधारकर चलनेसे मोक्षकी प्राप्ति करा सकता है। और यह जीवरूप पथिक अपने मारगको छोड़कर या आत्म-वस्तुकी प्राप्तिके हेतुरूप ज्ञानमार्ग आत्मविचार सत्सङ्ग सच्छास्त्रके विचारादिको छोड़कर 'उजारि उजारि' में चलना फिरता है। अर्थात् मिथ्या मायिक पदार्थादिकोंका चिन्तनादि करता है, दुःखद मार्गादिमें ही मोहादि वश प्रवृत्त होता है असत शास्त्रोंको विचारता है, सतशास्त्रके मुख्यभावको नहीं समझता है तो मार्ग क्याकरे? इत्यादि। अथवा सुन्दर सुखद मार्गका उपदेश देकर साहेब कहते हैं कि राहको बिचारी नाम विचारने जाननेवाले और उपदेश देनेवाले गुरु क्या करसकतेहैं, यदि पथिक सुधारकर गुरुसे विचारे हुवे मार्गोंपर नहीं चलता है, और उलटा उस

कल्याण-कारक अपने मार्गको छोड़कर शून्य उजारमेंही चलता फिरता है, तो गुरु क्याकर सकते हैं ?। अथवा शंका हुई कि गुरुसे प्राप्त होनेयोग्य रास्ता किसी बिरलको प्राप्तहोता है, इससे ठीक नहीं है। तब साहेब कहते हैं कि राह बिचारी क्या करे उसका दोष क्या है? यदि पथिक सुधारकर नहीं चलता है, कल्याणकारक ठीक रास्ता यही है, परन्तु जीव इसे त्यागकर 'उजार २' में चलता फिरता है जिससे यह सुमार्ग ही कठिन प्रतीत होता है इत्यादि।

१८४ साखी दोहा।

ऊजर जाय बसाइया, छाँड़े बसन्ता गाम।
नहिं वह बसा न ऊजरा, भया बसे का नाम॥ १८४॥

टीका—जीवरूप पथिक उजारि ५ में चलता फिरता है। इसके भावको साहेब स्वयं प्रगट करते हैं कि जीवोंने 'बसन्ता गाम' रूप आत्माको छोड़कर अर्थात् जिसमें सब संसार आनन्दपूर्वक बसता है, तथा जो आनन्दस्वरूप वस्तु संसाररूप गाममें सर्वत्र बसता है, उसे त्यागकर जिसमें रहनेके लिये कोई सत्य स्थान नहीं है तथा वस्तुतः आनन्द नहीं है, उस ऊजर [शून्य] आकाशमें मनसे जाकर जीवोंने अनेकों ग्राम बसाया है, कल्पनासे अनेकों आश्रय सिद्ध किया है। और जिन विषयादिकोंमें वस्तुतः सुख नहीं है, उनमें आनन्द-बुद्धिसे ग्राम बसाया है। परन्तु वह कल्पित लोक विषय सुखादिरूप ग्राम न तो वस्तुतः बसा है न ऊजरा है, किन्तु बसनेका नाम-मात्र हुआ है। अर्थात् वाचारम्भण मात्रको लोकोंने सत्य अविनाशी आदि अज्ञानसे मान लिया है और कहताहै इत्यादि।

१८५ साखी दोहा।

बोलि हमारी पूरबी, बूझै बिरला कोय।
मेरी बोली सो बुझै, धूर्ब पूर्वका होय॥ १८५॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि हमारी बोली पूरबी है, नाम सबसे पूर्बकालमें विद्यमान रहनेवाली अनादि चेतनात्माके बोध करानेवाली कहनेवाली है, इससे मुख्य बातरूप है। और उस मेरी बोलीको ऊजरमें गाम बसानेवाले तो कोई बूझतेही नहीं हैं। किन्तु संसारसे उपरत चित्तवाले कोई बिरलेही पुरुष मेरी बोली बूझते हैं [समझते हैं,] और सो बिरले भी वेही पुरुष समझते हैं कि जो 'धूर्व' नाम अचल अविनाशी अविकारी असङ्ग पूर्व वस्तुकेही होजाते हैं, नाम जो केवल आत्मपरायण जिज्ञासु होजाते हैं सोई पुरुष गुरु उपदेशसे सत्यात्म वस्तुको जानते हैं। जैसे जो निश्चय करके पूर्वदेशके रहता है सोई पूर्व देशकी सब बोलीको समझता है इत्यादि। धूर्वके धूर पाठ होवे तोभी उक्तही भाव है, रथादिके अग्रभागको वा धूरीको धूर कहते हैं जिसके

आश्रित रथादि स्थिर रहते हैं, जो सब संसाररूप रथके धूरी सदृश तथा प्रधान-अङ्गके सदृश है उसको जिज्ञासु पुरुषही मेरी बोली समझता है इत्यादि। हमें लखै नहीं कोय। हमको तो सोई लखै॥ यह द्वितीय तृतीय पादके पाठ भेद है तब चेतनात्मा वा सदुपदेशक-गुरु हम शब्दके अर्थ हैं। मेरी बोली पूर्व देशकी है, इत्यादि अर्थ स्पष्ट है।

१८६ साखी दोहा।

मूआहै मरि जाहुगे, बिनु शर थोंथे भाल।
परेहु कराहल वृक्षतर, आज मरहु की काल॥ १८६॥

टीका—उजारमें फिरने वालोंके प्रति दयालु-गुरु उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो! यह संसार मूवा है, और तुम सबभी अनन्तों बार मुवेहो, और फिरभी अवश्यही मरजावोगे। और सो भी कैसे मरेहो और मरोगे कि जैसे कोई बिना शरके थोंथे-भालसे नाम तीरके कुण्ठित नोकसे अत्यन्त-पीड़ित होकर मरे, तैसेही मरेहो और मरोगे। और वह मरना अत्यन्त-निकट है 'आज मरोगे वा काल मरोगे' और तोभी सुधारकर नहीं चलतेहो अपने कल्याणके लिये! तत्पर नहीं होतेहो, किन्तु संसाररूप 'कराहल' नाम करीलके वृक्षतर परेहो। अर्थात् सकण्टक पत्रसे रहित दुःखद करील-वृक्षके सदृश संसारमें आसक्त हो, और मृत्यु उपस्थित होगयी इससे यह भला नहीं करते हो, अभी भी चेतो जिससे कल्याण होवे इत्यादि। या आसक्ति आदिके त्यागनेके लिये उपदेश देते हैं कि बिना शरके थोंथे-भालों द्वारा मृत्युसे पीड़ित होकर अनन्तों बार मुवे हो, और फिर भी मरोगे, इसलिये उससे बँचनेके लिये गुरुके उपदेशरूप बोलीको समझो। जिज्ञासा हुई कि मरने आदि कालमें दुःख क्यों होते हैं? और क्यों कोई शीघ्र थोरी-अवस्थामें मरता है? कोई अधिक-अवस्थामें मरता है? तब साहेब कहते हैं कि 'कराहल' नाम कर्मरूप वृक्षतर परे हो, अर्थात् अज्ञान जन्य कामकर्मरूप वृक्षतर वा कर्मबीजके विस्ताररूप वृक्षतर उसके अधीनमें बन्धाकर परे हो, और उक्त कर्मके अधीनही आज मरो वा काल नाम कुछ समय बीतनेपर मरो, उक्त कर्मही जन्म स्थिति मरण दुःखादिके कारणहैं। इससे उन्हें त्यागदो और संसार शरीरादिको दुःखमय जानकर विचार विरागादि युक्त होवो जिससे कल्याण होवे। कराहलके करायल वा कराइल पाठ भेद है भाव उक्तही है।

१८७ साखी दोहा

जा चलते बन्दे परा, धरती भई बिहाल।
स सामन्त घामें जरे, पण्डित करहु विचार॥ १८७॥

टीका—जिज्ञासु आदिके प्रति उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! जिस राजाके चलतेमें नाम कहीं जाने आदि कालमें 'बन्दे' नाम दास टहलू सिपाही आदि परे रहते हैं, नाम उसकी सेवा हुकुम

आदि करनेके लिये तैयार और आगे खड़े रहते हैं। या जिसके प्रभुत्व चलनेपर उसके डरसे वा हुकुमसे लोग 'बन्देमें' नाम परदामें वा बन्धनमें परे रहते हैं। और जिसका भयसे धरती बिहाल हुई वा होती है। अर्थात् सब पृथिवीके बासी मनुष्य जिससे डरते हैं 'स सामन्त' (वह राजा) भी समय पाकर सूर्यके घाममें और गर्भाग्निके घाममें जरताही है, और अन्यायसे प्रजाको पीड़ित करता हे तो चिरकालतक नरकाग्निके घाममें भी जरता है। हे पण्डितो! इस बातको विचारो और समझो कि संसाररूप करीलतर किसीको शान्ति सुख छायाकी प्राप्ति नहीं होती है। और राज्यादिकी इच्छा अन्यायादिको त्यागो जिससे तेरा कल्याण होवे। जाते रवि परदे परा, ऐसा प्रथम पाद होवे तो, अर्थ है कि जिस राजाका तेजसे मानों सूर्य भी परदेमें पर गये। अथवा जिसकी सेनाको चलनेसे उड़ी हुई धूलीसे सूर्य छिप गये इत्यादि। अथवा जिस विन्ध्यपर्वत वा राहु आदिके चलनेसे सूर्य परदेमें पड़ गये वा परते हैं। धरती बेहाल हुई और होती है। सो विन्ध्यादि भी 'सामन्त' नाम सब तरफ घामसे जरते हैं। सोई हाल संसारात्मक करीलतर जीवोंको विचारो, और सब गर्वादिकोंको त्यागो इत्यादि। जा चलते रौंदेपरा, इस पाठका अर्थ है कि जिस जीवके वास्ते अनन्तों स्वर्गादिरूप तम्बू बने हैं, जिसके वास्ते अनन्तों वस्तुओंको उत्पन्न करती २ पृथिवी बेहाल है, सो जीव संसाररूप करीलतर निरन्तर तीनतापसे जरता है। इसलिये हे पण्डितो! इन तापोंसे बँचनेके लिये विचार करो इत्यादि।

१८८ साखी दोहा।

पाँवन पुहुमी नापते, दरिया करते फाल।
हाथन पर्वत तौलते, तिहि धरि खायो काल॥ १८८॥

टीका—वैराग्यकी दृढ़ताके लिये सब सामर्थ्य तथा सिद्धिको तुच्छ दर्शाते हैं कि जिन वावन आदिकोंने पावोंसे महत्त्वसिद्धि करके पृथिवीको नापतेथे, तथा जिन हनुमानादिकों ने उड़ने आदिकी सिद्धिसे समुद्रादिरूप दरियाको फाल करतेथे, अर्थात् एक डेग एक फलाङ्गमें दरियावके पार पहुँचतेथे, तथा जिन श्रीकृष्ण रावण हनुमानादिकोंने हाथोंसे पर्वतोंको तौलतेथे, अर्थात् तौलनेके सदृश अनायास से ऊठातेथे, उन सबको भी काल धरके खा लिया, नाम ये लोग भी मृत्युके बशमें प्राप्त हुवे, संसारात्मक करीलतर किसीकी रक्षा नहीं हुई मृत्यु जन्य तापका अभाव किसी सिद्धि आदिसे भी नहीं हुवा, किन्तु विराग विचार विज्ञान आदिसे ही रक्षा हुई। इसलिये हे पण्डितो! विचारादि करो और अन्य सामर्थ्य सिद्धि आदिकी इच्छा बासनाओंको त्यागो जिससे कल्याण होवे इत्यादि॥

१८९ साखी दोहा।

नव मन दूध बटोरिके, टिपके किया विनाश।
दूध फाटि काँजि भया, भया घीव का नाश॥ १८९॥

टीका—अष्ट सिद्धि का सामर्थ्यको तुच्छ दर्शाकर, नव निद्धिको तुच्छ दर्शाते हैं कि जैसे कोई नवमन दूध बटोरकर उसमें दशपांच खटाईके 'टिपके' नाम बुन्द गिरा देवे तो वह दूध फाटकर कांजी होजाता है, और घृतका भी नाश हो जाता है। तैसेही जो पुरुष अनेकों साधनोंसे नवनिद्धि की प्राप्ति करते हैं, परन्तु जब मृत्युरूप टिपका प्राप्त होता है, तब वे निद्धिरूप दूध फाटकर कांजी होजाते हैं। अर्थात् उस पुरुषके मरनेपर उसके लिये वे सब निरर्थक होजाते हैं। और उनसे जो उस पुरुषको आनन्दरूप घृत मिलता है, उनका भी नाश होजाता है। इसलिये हे पण्डितो! इनकी इच्छा आदिकों भी त्यागो और विचारकरो। संसारात्मक करीलतर ये भी छायाके हेतुरूप नहीं हैं। अथवा अभिमान युक्त बासनाको त्यागनेके लिये उपदेश करते हैं, कि हे मनुष्यो ! चतुष्टय अन्तःकरण पाञ्चज्ञानेन्द्रियरूप सात्विक नवमन दूध सदृश वस्तुको प्राप्त करके, अथवा नवधा भक्ति आदिरूप दूधको प्राप्त करके, अज्ञान जन्य अभिमान बासना आदिरूप टिपकाओंसे तुम उनका विनाश किये हो और करते हो, अभिमानादिक संही उक्त दूध फाटकर कांजी सदृश हुवे हैं और विवेक विज्ञानादिरूप घृतभी नष्ट हुवे हैं। इससे अभिमानादिको त्यागो जिससे संसारात्मक करीलतर तपना नहीं होवे, किन्तु आनन्दघन छायाकी प्राप्ति होवे इत्यादि। यद्यपि खटाईसे भी दूध यमकर दधि होजाताहै नव घृतका नाश नहीं होता है, तथापि अधिक खटाई परनेसे बिना समयके अधिक गरम आदिमें परनेसे फट जाताहै उस दृष्टिसे वर्णन किया गया है।

१९० साखी दोहा।

सबहीं ते लघुता भला, लघुता ते सब होय।
ज्यों द्वितीया के चन्द्रमा, शिर नावै सब कोय ॥ १९० ॥

टीका—बैराग्यादिके लिये उपदेश देकर फिरभी गुरु आदिके प्रति तथा सब मनुष्यादिकों के प्रति यथा योग्य श्रद्धा भक्ति नम्रता पूर्वक व्यवहार करना चाहिये, यह कल्याणार्थीके प्रति उपदेश देते हैं कि जिससे गुरुकी प्रसन्नता तथा सब प्राणीसे अपनी अनुकूलता अपने चित्तमें स्वच्छता प्रसन्नता अभिमानादि रूप मलकी निवृत्ति आदि सहजहीमें होजावें, कहते हैं कि हे सज्जनो! सब ही प्राणियोंसे लघुता (नम्रता) पूर्वक व्यवहार करना 'भला' नाम श्रेष्ठ और सुखद है। या सुख कल्याणादिके सभी साधनोंमें लघुता भली है, नाम गुरु महात्मा आदिके प्रति श्रद्धा लघुभाव शुश्रूषा भक्तिरूप साधन सब सधनोंसे श्रेष्ठ है, क्योंकि प्रथम लघुता होनेहीसे सब सुख और सब साधन होजाते हैं अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष सबही लघुतासे प्राप्त होतेहैं लोकमान्यता, प्रतिष्ठा, पूज्यता आदिभी लघुतासे होते हैं। जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाको लघुरूप होनेपर सब कोई सिर नमाते हैं प्राणाम करते हैं। तैसे ही लघुतासे ही पुरुष सबके पूज्य प्रणम्य होजाता है। इसलिये अभिमानादिको त्यागकर लघुताका धारण करना चाहिये। अथवा अभिमानादिरूप टिपकाको त्यागनेके लिये इस साखीसे लघुताका उपदेश दिया गया है।

१९१ साखी दोहा ।

आपा तेजै हरि भजै, नख शिख तजै बिकार ।
जीवन ते निरबैरता, साधु मता है सार ॥ १९१ ॥

टीका—और भी साहेब उपदेश देते हैं कि जो पुरुष अपना कल्याण चाहें सो 'आपा को' नाम पक्षपात मैं मेरी बुद्धिको अन्तःकरणसे त्याग देवें, और सर्वोत्तमस्वरूप 'हरिको भजैं' नाम उक्त हरिके चिन्तन बिचारादि करें। और नखसे शिखातक जितने बिकार हैं, उन्हें त्याग देवें, नाम इनसे होनेवाले बुरे कर्मादिकोंको छोड़ देवें, पैर आदिसे किसीको मारें नहीं, अपवित्र अयोग्य स्थानमें नहीं जावें, हित मधुर बोलें, गुरु आदिके प्रति सिर झुकावें, अभक्ष्य भक्षण अगम्यस्त्रीके प्रति गमन मानस दुर्भावादिका सर्वथा त्यागें। या नखसे शिखातक शरीर को विकाररूप तुच्छ मलीन जानकर इस विषयक अभिमानादिको त्याग देवें, सब जीव मात्र से निर्बैरताका सम्पादन करें किसीसे भी द्वेषभाव बैर नहीं करें। क्योंकि यही साधुओंके 'सार' नाम मोक्षको देनेवाला 'मता, नाम सिद्धान्त और अनुभव है ॥

१९२ साखी दोहा ।

पक्षापक्षिक कारणे, जगतो जात भुलान ।
निर्पक्षी ह्वै हरि भजै, सोई सन्त सुजान ॥ १९२ ॥

टीका—ये साधुओंके सारमत हैं, इस पूर्वकथनको सुनकर जिज्ञासा हुई कि साधुका क्या लक्षण है, तब साहेब कहते हैं कि पक्ष और अपक्षके कारणसे नाम अपनी पराई बुद्धिसे मत सम्प्रदायादिका भेदसे, रागद्वेषादि करके, और बाद बिबादादि करके यह 'जगत' नाम संसारी जीव कुमार्ग दुःखद स्थानरूप संसारमें 'भुलान' नाम भूला जाता है, सोई तो असाधु है। और उससे विपरीत स्वभाववाले जो महात्मा 'निर्पक्षी होकर' नाम सब पक्षपातादिसे रहित सत्यन्यायरूप मार्गमें स्थिर होकर हरिको भजते हैं, नाम सर्वोत्तमस्वरूप हरिके चिन्तन विचारादि करते हैं सोई पुरुष 'सुजान' नाम चतुर संसारात्मक सागरसे पारहोनेमें कुशल 'शन्त' नाम साधु हैं इत्यादि ॥

१९३ साखी दोहा

बूड़े बड़े बड़ापने, रोम रोम हंकार ।
सतगुरु के परिचय बिना, चारो वर्ण चमार ॥ १९३ ॥

टीका—अज्ञानादि जन्य पक्षपातादिसे जैसी दशा होती है उसका वर्णन करते हैं कि बड़े कुलजाति आदिवाले तथा बड़े २ बुद्धिमानादि भी 'बड़ापने' नाम बड़ेपनके अभिमान करके तथा कुलजाति आदिके पक्षपात अन्याय मिथ्या भाषणादि विवेक बैराग्यादि विना करके संसारात्मक सागरमें बूड़े और बूड़ते हैं। जिनके रोम २ में मिथ्या जातिकुल शरीरादिके अभिमान भरा रहता है वे लोग कभी संसारसे नहीं उबरते हैं। और रोम २ में अहंकारोंसे युक्त कहने मात्रके चार वर्ण भी सतगुरुकी शरणागति और उनके उपदेशसे आत्मवस्तुके परिचय बिना चमार हुवे हैं, नाम चर्ममय शरीरमें अभिमानादि करके चर्मकाररूप वा उसके तुल्य हुवे हैं। अथवा सतगुरुसे शुभ अशुभादिके परिचय विवेक ज्ञानके बिना मद्य मांसादिके सेवनादिसे वस्तुतः प्रायः चारोवर्ण चमार हैं, केवल मिथ्या अभिमान पक्षपात अन्याय करके और अधिक अनर्थ करते हैं, अतः विवेक करके इन सबको त्यागना चाहिये। जो इन्हें त्यागता है सोई साधु होता है। या जिज्ञासा हुई कि यदि पक्षपातादिके त्यागनेसे पुरुष साधु होता है तो बड़े २ लोगभी पक्षपातादिको क्यों नहीं त्यागते हैं? तब साहेब कहते हैं कि जिनके रोम २ में अहंकार है, ऐसे बड़े २ लोग बड़ापनमेंही बूड़ गये, इससे पक्षपातादिसे रहित साधु नहीं होसके, और सतगुरुके परिचय बिना चारोवर्ण चमार हुवे। अथवा सतगुरुसे परिचय बिनाही चारवर्ण और चमार नाम अन्त्यजादि भेद हुवे और हैं, जिसको सतगुरुसे परिचय होजाता है, सो इन सबसे भिन्न साधु होजाता है इत्यादि। भाव यह है कि पक्षापक्षी आदिसे रहित पूर्वोक्त साधु श्रेष्ठ पुरुष हैं। और पक्षापक्षी आदिसे युक्त अत्यन्त अहंकारी विवेकादि रहित बड़े कहानेवाले वा चारवर्ण कहानेवाले भी हीन दुरात्मा असाधु हैं इत्यादि।

१९४ साखी दोहा।

माया तजे क्या भया, मान तजा नहिं जाय।
जिहि माने मुनिवर ढहे, मान सवन को खाय॥ १९४॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि जो अहंकारी पक्षपाती मनुष्य हैं सो यदि गृह स्त्री पुत्र धनादिरूप मायाको त्यागतेभी हैं, तो उस त्यागसे क्या फलहुआ वा क्या होसकता है? यदि उनसे 'मान' नाम अभिमान नहीं तजा जाता है, तो मायाको त्यागनेसे कुछ नहीं होता है न वस्तुतः मानत्यागे बिना माया त्यागीही जाती है, और जिस मानसे बड़े २ मुनिवर 'ढहे' नाम संसारात्मक सागरमें प्राप्त हुवे सतमार्गादि से गिरगये सो मानही त्यागे बिना सब अभिमानियों को खाता है, नाम संसारात्मक चक्रमें भ्रमाकर नष्ट करता है, इसलिये माया मानरूप दोनों शत्रु से रहित होना चाहिये। अथवा छलादिरूप मायाको त्यागनेसे भी क्या भया, यदि कल्पित वस्तुकी अहमितरूप कल्पनारूप मान नहीं तजा जाता है, क्योंकि जिस मानसेही मुनिवर भी फिर ढह गये, अर्थात् मायाके त्यागादिरूप श्रेष्ठमार्गसे भी च्युत होगये मायाको त्याग करभी जिस मानमें फंसे

रहनेवाले फिर मायाके फन्देमें पड़ गये, सो मानहीं सब श्रेष्ठ गुण विचारादिको भी नष्ट करता है, इससे लघुताका धारण विचारादि करके प्रथम मानकोही अन्तःकरणसे त्यागना चाहिये, इसको त्यागनेसे माया सहजही छूट जायगी। और सच्ची साधुता प्राप्त होगी इत्यादि॥

१९५ साखी दोहा।

माया के झँक जग जरै, कनक कामिनी लागि।
कहहिं कबिर कस बाँचिहो, रूई लपेटि आगि॥ १९५॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! अभिमानादिको त्यागे बिना अज्ञान मोहादिरूप 'माया के झक में' नाम काम क्रोधादिरूप मायाकी ज्वाला तेज में जग जररहा है और कनक कामिनीके लिये शोक संतापादिरूप मायाके झंकसे जग जर रहा है, नाम जन्म मरणादिरूप कष्ट भोग रहा है। अथवा मायाके झंकसे और कनक कामिनीरूप मायामें लगकर नाम आसक्त होकर जग जर रहा है, तब तुम सब अग्निसे लपेटी हुई रूईके सदृश माया कनक कामिनी से आच्छादित होकर कैसे बँच सकते हो। या अग्निमें लपटी हुई रूईके सदृश माया और मायिक कनक कामिनीमें लपटकर उसमें आसक्तादि होकर कैसे बँच सकतेहो मानादिको त्यागकर मायाको त्यागो जिससे तुम्हारा कल्याण होवे, और सतवस्तुसे परिचयादि होवे। अथवा कनक कामिनीरूप मायाके लिये उसीके 'झंक' नाम मद अहंकारसे जग जरताहै, तो हे सज्जनो! रूईमें लपेटी अग्निके सदृश कनकादिमें लपेटी हुई अभिमितिके सङ्गमें तुम कैसे बँच सकते हो अर्थात् नहीं बँच सकते हो, इसलिये कनकादिके अभिमानादिको त्यागो जिससे कल्याण होवे।

१९६ साखी दोहा।

माया जग साँपिनि भई, बिषलै बैठी बाटि।
सब जग फन्दे फन्दिया, चले कबीरू काटि॥ १९६॥

टीका—और भी कहते हैं कि हे मनुष्यो! अनिर्वचनीया मायाही जगरूप साँपिनी हुई है। और जगमें कनक कामिनी आदिरूप साँपिनी हुई है। तथा जीवोंके जन्ममरणके हेतुरूप साँपिनी हुई है। अर्थात् जैसे साँपिनी अनेकों संतानोंको पैदा करती है, और स्वयं उन्हें खा लेती है, कोई बिरलाही संतान उसके कुण्डलनासे भागता है, सोई बँचता है। तैसेही माया सबके शरीरादिकोंको बार बार उत्पन्न करके नष्ट करती है, जो उसके ब्रह्माण्ड लोकादिरूप कुण्डलनासे भागता है, इनमें आसक्त नहीं होता है न किसी प्रकार अभिमान करता है, सो पुरुष फिर जन्मादिसे रहित होता है। और यह मायारूप साँपिनी संसारके सब बाटि नाम रास्तेमें कर्मादि मार्गोंमें विषय अभिमानादिरूप बिषको लेकर बैठी हुई है। और वह अनिर्बचनीया अज्ञानादिरूप

माया तथा कनक कामिनीरूप माया सब जगको अपने फन्देमें 'फन्दिया' नाम फँसा ली हैं, काम मोहादि से विषयादिमें आसक्त करदी है। और संसारात्मक मार्गमें जो 'कबीरू' नाम जीव चले हैं, उन्हें वह माया काटती है। अथवा जीवोंको काटकर वह माया चलती है, नाम मोहादियुक्त जीवोंको दृढ़ करके भी कनकादिरूप माया स्थिर नहीं रहती, इसलिये दुखद इस मायाको अवश्यही त्यागना चाहिये। अथवा सब जग तो उस मायाके फन्देमें फँस गया, परन्तु 'कबीरू' नाम श्रेष्ठ जिज्ञासु ज्ञानी लोग उस मायाके सब फन्द अभिमानादिकोंको काटकर चले, अर्थात् उसके कुण्डना फांस संसारसे बाहर चलदिये। और संसारसे परे आत्मतत्त्वमें स्थिर मुक्त होगये, जहाँ फिर कभीभी माया साँपिनीका भय नहीं होता है। अथवा माया जगमें साँपिनी हुई है और मोक्षमार्गरूप विवेक विरागादि स्वरूप बाटमेंभी विष लेकर बैठीहै, अर्थात् विषयादिमें फंसाकर उस मार्गसे जीवोंको रोकती है, उसमें चलने नहीं देती है, सब जगको अपने फन्देमें फँसा ली है, परन्तु कोई बिरले विवेकी उस फन्द-सहित मायाको विचारादिसे काटकर मिथ्या समझकर मोक्षमार्गमें चले हैं और चलते हैं इत्यादि।

१९७ साखी दहा।

साँप बिछी का मन्त्र है, महुरो झारा जाय।
बिकट नारि पाले परे, काढ़ि कलेजा खाय॥ १९७॥

टीका—मायाके अन्यस्वरूपोंकी अपेक्षा स्त्रीस्वरूप पुरुषोंके अत्यन्त-दुःखद मोहके जनक है, इससे साहेब कहते हैं कि साँप तथा बिच्छीके बिषको झारनेके लिये संसारमें मन्त्र तथा उपाय हैं जिनसे बिषको झार देनेपर मनुष्य सुखी होजातेहैं, और 'महुरो' नाम माहुर डँकरा संखिया आदि भ झारे जाते हैं, परन्तु जो पुरुष किसी'बिकट'नाम दुष्ट कामातुर नारीके'पालेमें' [बशमें] पड़ जातेहैं, तो वह नारी उस पुरुषके कलेजाको काढ़कर खा लेती है अर्थात् शरीरके सार विर्यको नष्ट कर देती है। और पुरुषको मोहित करके बिबेक बिचार लज्जा धर्म सबसे रहित कर देतीहै। और हृदयमें वृत्ति आत्मवस्तुके अनुभव-शक्तिको खालेती है। इससे स्त्रीरूप मायामें कभी नहीं आसक्त होना चाहिये। इसका बिष झाड़फूंक भी नहीं सुनता है, इसलिये जो पुरुष इस मायारूप साँपिनीके बशमें पड़ते हैं सो नष्ट होकर रसातलमें प्राप्त होते हैं इस बातका ध्यान रखना चाहिये। नारी के पाले परे, यह तृतीय पाद का पाठ भेद है अर्थ उपरोक्तही है।

१९८ साखी चौपाई।

पीपरि एक जु महा गम्हानी। ताको मरम कोइ नहिं जानी॥
डारि लभाय कोइ नहिं खाये। खसम अछत बहु पीपरि जाये॥ १९८॥

टीका—पूर्वकहे मान मायाको त्यागे बिना सत्यात्मारूप महान्-फलको त्यागकर जीव सब मिथ्या मायिक पदार्थोंमें भटकते हैं। उसका बर्णन करते हैं। या माया किस वस्तुओं में फँसाती है। और किस फलेजेको काढ़कर खालेती है ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि संसाररूप वा मानव शरीररूप वा बुद्धिरूप ही पीपलके बृक्ष है, उसमें 'एक' नाम अद्वितीय नित्य मुक्त आत्मस्वरूपी ही 'पीपरि' नाम उक्त पीपरके फल है नाम उक्त पीपरमें प्राप्त करने योग्य फल है 'जो फल महागम्हानी' नाम महान् है अर्थात् विभु है, और गम्भीर है अर्थात् अथाह अक्षय अतुल स्वरूप है, कि जिसके जाननेसे पुरुष अन्य सब फलादिकी इच्छासे रहित हो जाते हैं, परन्तु अभिमानी मन मयाके बशबर्ती कोई पुरुष 'ताकी मर्म नहीं जानते हैं' नाम उस फलकी प्राप्तिके भेद उपायादिको नहीं जानते हैं, इसीसे संसारादिरूप उक्त बृक्षकी 'डारि' नाम शाखाको 'लभाय' कर कोई अबिवेकी पुरुष उक्त फलको नहीं खाते हैं, कि जिससे नित्य तृप्ति होजावें। अर्थात् उक्त बृक्षके शाखारूप मन इन्द्रियको लभाय कर [नवाकर झुकाकर] विषयोंसे खैंचकर इन्हें अपने बशमें लघुता नम्रता युक्त करके आत्मानन्द मोक्ष शान्ति सुखको जीव नहीं प्राप्त करते हैं, तथा मायिक वस्तुको तुच्छादि समझकर आत्मपरायण नहीं होते हैं, किन्तु अज्ञान अभिमानादिके बशमें होकर 'खसम' नाम आकाश तुल्य विभु असङ्ग फलके पासमें 'अछते' नाम विद्यमान रहते हुए, अथवा 'खसम' नाम रक्षक पति गुरुको पासमें रहते ही बहु पीपरिके लिये जातेहैं। अर्थात् अनेकों तुच्छ मायिक फलोंके लिये बासना आदिके बश अनेकोंलोक योनि आदिमें प्राप्त होते हैं। और माया उन फलोंमें फंसाती है। और ज्ञानरूप कलेजा काढ़कर खाती है, इससे अन्य फलोंको अवश्य त्यागना चाहिये। या कहते हैं कि सब बिषको नष्ट करने वाली 'एक पीपरि' नाम पिप्पली नामक औषधी सदृश ज्ञानरूप औषधी महागम्भीर है। अथवा निर्पक्षी होकर हरिको भजना रूप पिप्पल औषधी वा पिप्पल बृक्षका फल महा गम्भीर है, परन्तु उसके मर्मको कोई नहीं-जानता है, इससे अन्य फलोंको डारिके अर्थात् त्यागके इस फलको लभाय के [प्राप्त करके] कोई नहीं खाता है, किन्तु जो छत [नाश] रहित होनेसे अछत खसमस्वरूप है, सोई अज्ञान बश बहुत पीपरीके लिये जाता है इत्यादि।

१६६ साखी दोहा।

साहू से भौ चोरवा, चोरन ते भौ सूझ।

तब जानेगा जीयरा, मार परेगा तूझ ॥ १६६ ॥

टीका-खसमको अछते बहुत पीपरीके लिये जाने वालोंके प्रति साहेब कहतेहैं कि, हे जीयरा ! [हे जीवो !] तुम सब 'साहूसे चोरवा हुवे हो' नाम सर्वात्मस्वरूप सच्चे पतिसे तथा सत्य-वक्ता साधु स्वरूप ज्ञानी-गुरु आदिसे, चोर सदृश छिपे रहते हो इनके सम्मुख नहीं होते हो अज्ञान

मोह जालसे अपनेको छिपाये रहते हो, और 'चोरनते' नाम सत्यामन्दके चोराने वाले विषयी पुरुष असत-पति गुरुआ विषय मन मायासे सूझ हुवे हो। अर्थात् अज्ञानादि बश इनके सन्मुख दासादि हुवे हो। साहेब कहते हैं कि यद्यपि इस विपरीत आचरण-कालमें अभी तुझे कुछ बूझ नहीं पड़ता है तथापि हे जीयरा! जब इसके बदले तुझे मार पड़ेगी तब तुम सब जानोगे। अर्थात् जब संसार-चक्रमें डालकर यम तुझे अत्यन्त-पीड़ित करेगा, तब इस अपराधके फलको समझोगे अत्यन्त-बिकल दुःखी होगे, इसलिये अभीसे सम्हारो जिससे महाभयसे त्राण होवे।

२०० साखी दोहा।

ताकी पूरी क्यों परै, गुरु न लखाई बाट।
ताके बेड़ा बूड़हीं, फिरि फिरि औघट घाट॥ २००॥

टीका—साहुसे चोर होने वालेको जो मार पड़ती है उसका वर्णन करते हैं कि जिस पुरुषको सतगुरुने संसारसे पार जानेके लिये 'बाट' [रास्ता] नहीं लखाई है 'ताकी' नाम उस पुरुषकी 'पूरी' कैसे पर सकती है, अर्थात् नित्य तृप्ति इच्छाकी सर्वथा निवृत्ति कैसे होसकती है? किन्तु नहीं हो सकतीहै। और ज्ञान विरागादि बिना उस पुरुषके मानव शरीररूप तथा मनरूप बेरा [नौका] भी बारमबार अवघट घाटमें ही डूबतीहै अर्थात् नष्ट होती है। वा गुरुसे मार्गको समझे बिना काम-कर्म विषयादिमें फँसकर वह पुरुष मरता है, और बारमबार कुयोनि कुदेशादिमें बासना बश जन्म लेता है जहाँ ज्ञानकी प्राप्ति दुर्ल हो जाती है, इससे बारम्बार मार पड़ती है। अथवा जो पुरुष चोर के स मुख होकर उसीको गुरु मान लिया है, अतः वह गुरु स्वयं बाट नहीं जाननेसे जिसको सत्य बाट नहीं बताया है, उस पुरुषको पूरी कैसे परे, अर्थात् पूर्ण व्यापकस्वरूप आत्माकी प्राप्ति कैसे होवे? वा वृद्धि कैसे होवे? उलटा उसका 'बेरा' नाम आयु रूप समय विशेष बारम्बार अवघट घाटमें कुमार्ग कुवस्तु आदिमें ही नष्ट होजाती है। जिससे मार पड़ती है इत्यादि।

२०१ साखी दोहा।

जाका गुरु है आँधरा, चेला काह कराय?।
अन्धे अन्धा ठेलिया, दोनों कूप पराय॥ २०१॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि सब मनुष्य किसी न किसीको बाट लखाने वाला गुरु मानते हैं, और कुछ उपदेश लेते हैं, तौभी इनकी बेड़ा क्यों अवघट घाटमें डूबती है? तब साहेब कहते हैं

कि यद्यपि बाट लखाने वाले गुरु सब किसीको मनुष्य मानते हैं, तथापि जिन पुरुषोंके गुरु आँधरा है अर्थात् विवेक विज्ञानरूप नेत्रसे रहित है, तो वह गुरु चेलोंके 'काह' नामं क्या उपकार कर सकता है? अथवा उस अन्धे गुरुका चेला क्या कर सकता है? किस पुरुषार्थ वा शुभ मार्गको प्राप्त कर सकता है?, बल्कि जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धेको 'ठेलिया' अर्थात् किसी कुमार्गमें प्राप्त कराता होवे, और जाने बिना दोनों कूपमें पड़ जावें, तैसेही अज्ञानी गुरु और चेला दोनों संसार रूप तथा नरक गर्भादि रूप अन्ध-कूप में पड़ते हैं, और विवेकादि बिना दोनों दुःखी होते हैं इत्यादि। अथवा सद्गुरुरूप खसमके अछते (रहते हुवे) गुरुआ आदिरूप चोरोंके सङ्ग करके उन्हें गुरु आदि मानकर, बहु पीपरीके लिये जाने वालोंकी दुर्गतिका इस साखीसे वर्णन किया गया है।

२०२ साखी दोहा।

चारि मास घन बर्षिया, अति रे परबल नीर।
पैन्हें जड़ तन बख़तरी, चुभी न एको तीर॥ २०२॥

टीका—और कहते हैं कि रे अज्ञानी गुरुआ लोगोंके फन्दों में फंसे हुवे बहु पीपरिको चाहने वाले मनुष्यो! चारयुग रूप चौमासेमें सद्गुरु महात्मारूप 'घन' अर्थात् मेघोंने सत उपदेश रूप जलकी वृष्टि अति कियाहै, अत्यन्त-प्रबल ज्ञान विज्ञान रूप नीरकी वर्षा सद्गुरुने चारो मासमें किया है, जिससे सत-पुरुष जिज्ञासुओंके अज्ञान काम पापादि रूप सब मल तथा दोष नष्ट हुवेहैं और होतेहैं परन्तु तुम 'जड़' अर्थात् जड़तारूप बख़तर बुद्धिरूप तनमें पहिरे हो। अथवा हे जड़! हे अविवेकी-पुरुषो! तुम सब तनरूप बख़तर पहिरे हो, शरीरमें आत्मादि बुद्धि किये हो, जिससे एकभी उपदेशरूप तीर तुम्हारे अन्तःकरणमें नहीं चुभती है, अर्थात् नहीं लगती है न लगी है, इससे भी जड़ता आदिरूप बख़तरको त्यागो जिससे कल्याण होवे। अथवा साहेब कहते हैं कि गुरुरूप मैंने चारो युग चारो अवस्था में अत्यन्त—प्रबल नीररूप ज्ञानकी 'घन' अर्थात् अत्यन्त—वर्षाकी है, परन्तु 'रे जड़—मनुष्य! तुम तनरूप बख़तरी पहिराहै, इससे एको अर्थात् एक अद्वितीय सत्यात्मा रूप तीर अथात् उसके उपदेश तुझमें नहीं प्रवेश करते हैं, अभी भी तन बख़तरीको त्यागो जिससे अनुभव और कल्याण होवे। अती अपार बल नीर, अति अपूर जल नीर, अति अपूर बल नीर। अति अपूर्व शर नीर इत्यादि द्वितीय पादके पाठ भेद हैं। चुभी के चुभै. भेद है। भावार्थ उक्तही है। अथवा चारों युगके गुरुआवोंने अत्यन्त असमर्थ एकदेशी दुःखद नीरकी वर्षाकीहै, उसीसे जड़—लोग तनकी बख़तरी पहिरे हैं, जिससे एको तीर नहीं चुभती है इत्यादि भाव है।

२०३ साखी दोहा।

मानुष का गुणहीं बड़ा, मांस न आवै काज।

हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजन बाज ॥ २०३ ॥

टीका-शरीरके अभिमानादिसे जिन जड़ मनुष्योंको उपदेशरूप तीर नहीं लगती है, उन्हें अभिमानादिके त्यागनेके लिये उपदेश देते हैं कि हेमनुष्यो ! मानुषका गुणही बड़ा है, यानी अहिंसा दया क्षमा सत्यादि धर्म तथा ज्ञान विरागादिक ही मनुष्योंमें पशुपक्षी आदिकी अपेक्षा से श्रेष्ठ हैं। और अन्य कोई भी मनुष्यशरीर में श्रेष्ठपदार्थ नहीं है यानी पशु आदिकी अपेक्षा अन्य कोई वस्तु भली इस मानवतनमें नहीं है, क्योंकि इसका मांस किसी मनुष्यका काजमें नहीं आता है जो कुत्ते गीदड़ादि खाते हैं सो भी पागल हो जाते हैं, इसके हाड़ भी हस्ती आदिके हाड़ों के सदृश 'आभरण' यानी भूषणरूप नहीं होते हैं, इसकी त्वचाके बाचन भी नहीं बाजता है, इससे ज्ञानादि बिना इस मानव—शरीरमें अभिमानादि करना अत्यन्त - जड़तारूप है। उसको त्याग कर गुणोंका सम्पादन करो जिससे कल्याण होवे।

२०४ साखी दोहा।

सबन की उतपति धरती, सब जीवन प्रतिपाल।

धरति न जानै आप गुणे, ऐसा गुरु विचाल ॥ २०४ ॥

टीका—सतगुरु बिना अभिमानियों के भयका वर्णन पृथ्वीका दृष्टान्त द्वारा दो साखी से करते हैं कि जैसे पृथ्वी सवनकी उत्पत्तिका हेतु है, और सब जीवोंका 'प्रतिपाल' अर्थात् रक्षा का हेतु भी है, तौभी जड़तासे 'आपगुण' यानी अपने गुण सामर्थ्यको नहीं जानती है ऐसो [ऐसाही] हाल गुरुका विचाल [वियोग] से जीवोंका भी है, अर्थात् ये व्यष्टिजीव अपने कामकर्म बासना आदिसे सबकी उत्पत्ति पालनके हेतु हैं, और निरुपाधिक सत चेतनरूपसे सब के प्रकाशक अधिष्ठान-स्वरूप हैं, परन्तु गुरु बिना शरीरादिमें अभिमान करके जड़ता अविवेक-युक्त होनेसे विवेक विज्ञानादिरूप अपने गुणोंको और अपने उक्त सामर्थ्यको नहीं जानते हैं, इससे जन्मते मरते हैं और अनेको भय सहते हैं। अथवा मानव शरीरमें कौन गुण हैं ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं कि यह मानव-शरीररूप धरती विवेक विचारादि बिना भी सबकी उतपत्तिका हेतु है, क्योंकि सब योनि आदिमें उत्पत्तिका हेतु शुभ अशुभ कर्मादि इसी शरीर से होते हैं, और सब जीवोंका प्रतिपाल भी इसी शरीरसे होता है, क्योंकि इसी शरीरमें किये कर्मादिसे सर्वत्र आयु भोग सुख भी मिलतेहैं, तथा विवेक विचारादि करनेपर इसी शरीरसे मोक्षभी होताहै, इससे यह शरीर सब जीवोंकी रक्षा कल्याण करनेवाला है। परन्तु यह मनुष्य गुरु बिना अपनी इस धरतीके गुणको नहीं जानता है, इससे अन्यकी आशा आदि करके बन्धनमें पड़ता है और दु:खी होता है ऐसा अनर्थका हेतुरूप गुरुसे बिचाल होनाहै। या ऐसा गुरु यानी भारी बिचाल अर्थात् कुचाल मनुष्योंके है कि जिससे मानव शरीरके गुणको

मनुष्य नहीं जानते हैं। बिचालका विचार, पाठ भेद है, तब अर्थ है कि जो धरती सबकी उत्पत्ति के हेतुरूप और सबके प्रतिपालरूप है, उस जड़ शरीरको अपना गुणरूप नहीं जानो तुम उससे असङ्ग हो। अथवा अपने गुण चेतनता आदिको धरतीमें नहीं मानो उसमें अभिमानादि नहीं करो ऐसाही सतगुरुका विचार कल्याण-कारक उपदेश है सो जानो जिससे कल्याण होवे इत्यादि॥

२०५ साखी दोहा।

धरती जो जानति आप गुण, कबहिं न होती डोल।
तील तील गरू ई होती, होति ठिको की मोल॥ २०५॥

टीका—औरभी कहते हैं कि यदि पृथिवी अपने गुणोंको जानती होती तो इसमें 'डोल' यानी कम्प भय कभी नहीं होती अर्थात् कम्पयुक्त कभी नहीं होती और तील तील, में ई [यह धरती] 'गरू होती' अर्थात् अत्यन्त गुरुता युक्त होती यानी इसके तिलोंके सदृश अवयव भी अत्यन्त-गुरुत्वसे युक्त होते जिससे डोल नहीं हो सकता, परन्तु जड़ता पराधीनतासे डोलती है। और यदि यह अपने गुणको जानती होती तो क्या इसके 'ठिको' यानी ठीका पट्टा वा मोल दाम होते, किन्तु नहीं होते? अर्थात् यह किसी राजा आदिके अधीनमें नहीं होती। तैसेही जीव सब यदि अपने गुणोंको जानते होते तो इन्हें 'डोल' यानी चञ्चलता भय गमनागमनादि कभी नहीं होते और तिलोंके सदृश सूक्ष्म सोपाधिक व्यष्टिस्वरूप में भी 'गरू' यानी विभु गुरुत्व युक्त ये जीव सब होते अर्थात् अपने गुणोंको जाननेपर निरुपाधि शुद्ध चेतनरूपसे जीव सब स्थिर होते, तब क्या इनमें किसीके दास दीन भावादि होते? किन्तु नहीं होते। इससे अपने गुणोंको नहीं जानने सेही इनमें पराधीनता दीनता सब अनर्थ हैं, इससे अपने गुणोंको जानना चाहिये। अथवा यह जीव 'जो' [यदि] आप शरीररूप धरतीके गुणोंको जानता तो इसको कभी डोल अर्थात् चञ्चलता नहीं होती और सर्वत्र गुरुरूपसे रहता, और इसके मोल आदि नहीं होते। अथवा सर्वत्र ज्ञानरूप रहता, तब 'ठिको की' यानी ठीक सत्यात्मस्वरूप की मोल इसकी होती अर्थात् शुद्ध चिदानन्द स्वरूप यह जीव हो जाता, जाने बिना संसारी बना है। अथवा जो धरतीरूप सबके धारण-कर्ता जीव आप अपने गुणको जानता है अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूपको समझता है, उसमें कभी डोल नहीं होती है, और सदा सब देशमें उसमें गुरुपन श्रेष्ठता होती है, और सत्यवक्ता सतपुरुष की मोल होती है इत्यादि। धरती जो जानति के धरती जानति और तील तील के तिल तिल, पाठ भेद हैं तब दोहा है।

२०६ साखी दोहा।

तहिया कृतम ना होता, धरति न होते नीर।

उतपति परलय ना हुते, तब की कहैं कबीर ॥ २०६ ॥

टीका—और भी कहते हैं कि जैसे जीवको अपने गुणोंके जाननेपर वा मानव तनके गुणोंके जाननेपर जीवितदशा मेंही डोल आदि नहीं होते हैं, और गुरुता आदि होते हैं। तैसेही 'तहिया' यानी जाननेपर 'कृतम' अर्थात् अत्यन्त कार्यरूप क्षणभंगुर शरीर फिर नहीं होता है, और उसको भोगादि देनेके लिये धरती तथा नीर भी नहीं समर्थ होते हैं। अथवा उसे गर्भमें धारण करने वाली धरती रूप माता फिर नहीं होती है, और वीर्यरूप नीरको देनेवाला पिता उसके फिर कोई नहीं होता है, इससे उसके कभी उत्पत्ति प्रलय नहीं होते हैं अर्थात् उसके जन्म मरण नहीं होते हैं। अथवा उसकी दृष्टिसे संसारको मायामात्र सिद्ध होजानेसे किसी पदार्थके भी वस्तुतः उत्पत्ति प्रलय नहीं होते हैं, तब फिर उस ज्ञानीके प्रति 'कबीर' यानी कवि आचार्य लोग की कहैं अर्थात् क्या कहैं ? उस पुरुषके प्रति उपदेशकी प्रवृत्ति नहीं होती है कुछ कहना भी नहीं बनता है। अथवा उस ज्ञानदशामें जब कृतमादि नहीं होते हैं, तब कोही बात सदुपदेशक.कबीर अर्थात् कवि आचार्य लोग कल्याणकेलिये कहते हैं। जहिया किरतम ना हता, धरती हती न नीर। उतपति परलय ना हता, तबकी कहैं कबीर ॥ यह पाठ भेद है, तब अर्थ है कि गुरुआ अज्ञानी जीव सब अनेकों अनात्मवस्तु को सत्य अपने सेव्यादि मानते हैं और कहते हैं, परन्तु जिस सृष्टिसे पूर्व कालमें और ज्ञानकाल में शरीर पृथिवी जलादि नहीं थे तथा उत्पत्ति आदिभी नहीं थी न रहतेहैं तब वे लोग क्या कहतेहैं? अर्थात् मायासे आच्छादित आत्मा प्रथम था, और ज्ञानकालमें आत्माही रहता है, इससे सोई सत्य उपास्य ध्येय पूज्य है, अन्य सब मायासे कल्पित असत्य हैं, इससे आत्माहीको कहना जानना चाहिये इत्यादि॥ अथवा जाने बिना डोल होती है परन्तु जाननेसे क्याहोता है ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि उस कालमें कृतमादि नहीं होते हैं, तब होनेवाली कौन बात कबीरलोग कहें वह कहनेसे परवस्तु है, इत्यादि।

२०७ साखी दोहा।

जहाँ बोल तहँ अक्षर आया। जहँ अक्षर तहँ मनहिं दृढ़ाया।
बोल अबोल एकहै सोई। जिन यह लखा सो बिरला होई ॥ २०७ ॥

टीका—ज्ञानी पुरुषोंके प्रति उपदेशकोंका उपदेशकी क्यों नहीं प्रवृत्ति होती है ? और कुछ कहना क्यों नहीं बनताहै ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि जब 'जहाँ बोल' यानी बोलना रूप व्यवहार व्यापार होता है, उसके लिये यत्न किया जाता है, तब तहाँ वर्णरूप अक्षरही आया [आता है।] अर्थात् वाचारम्भणमात्र विकाररूप मायिक अर्थोंके उपदेश प्रायः उपदेशक लोग करते हैं, और जहाँ अक्षर होता है तहांही अज्ञानी लोग मनको दृढ़ाते हैं, अर्थात् जिन वाच्य

स्वरूप विकाररूप अर्थोंको अक्षर कहते हैं उनमेंही अज्ञानी लोग चित्तको स्थिर करते हैं उन्हेंहीं सच्चिदादि मानतेहैं और कहतेहैं, और यानी [वह ज्ञानी] बोल अबोल सब दशामें एकहै, और बोलरूप शब्द अबोलरूप अर्थ सबके आत्मारूप वह ज्ञानी एक है इससे उसके प्रति किसी अज्ञानीके उपदेशकी प्रवृति नहीं ह ती है न कुछ कहना बनताहै, परन्तु बोल अबोल दशामें एक इस अपरोक्ष सर्वात्माको जिन पुरुष सतगुरुके उपदेशरूप इसारासे लखेहैं, वे लोग संसारमें बिरलेही हुवे और हैं। अथवा जहाँ अर्थात् जिस संसार-कालमें . त है, तहां अक्षर आया है, और जहां अक्षर हुआ तहाँ मनहीं किसी अनात्म अर्थकी कल्पना करके दृढनिश्चय करलिया और कर लेता है । अथवा अक्षर होनेपर जीवों ने मन हीं को दृढ़ाया उसीको आत्मा आदि मान लिया, और सो आत्मा बोलादिसे भी प्रथम था, इससे बोल अबोल सब दशामें तथा बोलने वाले मनुष्यादिमें अबोलने वाले वृक्षादिमें सर्वत्र एक है जिन्होंने इसे लखा सो बिरले ही हैं और होवेंगे । अथवा जिनके प्रति कुछ कहना नहीं बनता है उनकी स्थितिका वर्णन करते हैं कि ज्ञानी लोग जिस व्यवहार विचार दशामें बोलते हैं तहाँ उस बोलीके लक्ष्यस्वरूप अक्षर [अविनाशी] आत्माही आया और आता है अर्थात् सिद्ध होता है । और जहाँ यानी जिस अबोल समाधी आदि कालमें अक्षर वस्तु अभिव्यक्त होता है, तहाँ वे महात्मा मनको दृढ़ करते हैं । अथवा जिस गुरुमें अक्षरका अनुभव रहता है, तहाँ जाकर अपने मनको संशयादिसे रहित करते हैं । अथवा जिस महिमामें वा हृदयमें अक्षर वस्तु स्थिर वा व्यक्त रहता है, तहाँ मनको दृढ़ करते हैं, और सो व्यावहार समाधि आदि दशामें एकस्वरूप रहते हैं । परन्तु जिन सज्जनोंसे ऐसे ज्ञानी लखे जावें सो पुण्यात्मा भी बिरलेही होते हैं ।

२०८ साखी दोहा ।

तौं लगि तारा जगमगै, जौं लगि उगै न सूर ।

तौं लगि जीव कर्म बशी, जौं लगि ज्ञान न पूर ॥ २०८॥

टीका—और साहेब कहते हैं कि जैसे तभीतक तारा जगमग करते हैं [प्रकाश करते हैं] कि जबतक 'सूर' [सूर्य] नहीं उगता है तैसेही तबतक जीव सब कर्मके बशमें रहते हैं अर्थात् कर्म बासना आदिके अधीन तबतक जन्मते मरते आदि हैं कि जबतक 'पूर' [पूर्ण] अपरोक्ष पूर्व वर्णित आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं होता है..आत्मज्ञान होते ही सब कर्म बासना आदि नष्ट होजाते हैं. जिससे जीव निर्बन्ध सुखस्वरूप होजाते हैं, इसलिये आत्मतत्त्वको लखना चाहिये । अथवा ज्ञानरूप सूर्यका उदय जबतक नहीं होता है, तबतक जीवरूप 'तरा जगमगे' अर्थात् संसारके मार्गमें रहता है क्योंकि जबतक पूर्ण व्यापक स्वरूप आत्मा का ज्ञान अपरोक्ष अनुभव नहीं होता है, तबतक जीव कर्मके बशमें रहता है संसार में उसके अधीन हो कर भटकता है ज्ञान होनेपर संसारसे रहित मुक्त होजाता है इत्यादि ॥

२०९ साखी दोहा।

नाम न जाने ग्राम का, भूला मारग जाय।

काल्ह गड़ेहींगा कांटा, अगमन कस न खराय॥ २०९॥

टीका—भावी दुःखोंकी निवृत्तिके लिये साहेब उपदेश देते हैं कि जैसे कोई पुरुष गन्तव्य ग्रामका नाम नहीं जानता होवे और चलतारहे तो वह भूलाहुआ पुरुष कुमार्गमें जाता है, उसे काँटे गड़ते हैं इत्यादि। तैसेही हे मनुष्यो! तुम सबके आश्रयस्वरूप आत्माके नाम नहीं जानतेहो, अर्थात् गुरुशरणमें जाकर प्राप्त करनेयोग्य आत्मवस्तुको पूर्ण रीतिसे नहीं जानतेहो, तथा ज्ञानके साधनोंको भी नहीं पूछ लिये हो, और भूलकर असत कामकर्म उपासना आदि मार्गमें जाते हो, तो तुझे 'काल्ह' यानी कुछ समयके बाद तथा इस शरीरके बाद अवश्यही काँटे गड़ेंगे, अनेकों दुःखादि प्राप्त होवेंगे, शोक संतापादिरूप शल्य बारमबार हृदयको छेदन भेदन करेंगे, ऐसा जानकर भी तुम 'अगमन' [आगेही] कस न खराय अर्थात् भावी दुःखकी निवृत्तिके लिये प्रथमही खराकाम क्यों नहीं करते हो, सत्यनिष्काम ज्ञानमार्गमें क्यों नहीं प्रवृत्त होतेहो। अथवा खरा स्वरूप क्यों नहीं होते हो। अथवा हे अगमन अर्थात् हे अज्ञान युक्त मनवालो! खरा क्यों नहीं करते हो? अवश्य अपना खरा भलाई करो नहीं तो फिर महाकष्ट भोगोगे और पश्चात्ताप करोगे इत्यादि। काल्हके काल। अगमन कस न खरायके अगुमन कस न खराय। ये पाठ भेद हैं, तब अर्थ है कि जो पुरुष प्रसिद्ध सत्यात्मवस्तुको नहीं जानता है, और भूलकर संसारात्मक मार्गमें जाता है, असत मार्गोंमें प्रवृत्त होता है, उसको काल [मृत्यु] रूप कंटा गड़ेगा। अथवा समय पाकर शोकादिरूप कांटे गड़ेंगे। और शोकादिमय दुःखद मार्गमें भटकाने वाले अगुमन [अगुआ गुरुआ लोग] भी 'कस न खराय' यानी खोरि दोषके भागी वे लोग भी क्यों नहीं होंगे, किन्तु अवश्य दोषभागी होंगे। इससे सत्यमार्गके जाने बिना किसीके प्रति उपदेश नहीं देना चाहिये इत्यादि।

२१० साखी दोहा।

संगति करिये साधुकी, हरै ओर की व्याधि।

ओछी संगति कूर की, आठों पहर उपाधि॥ २१०॥

टीका—ज्ञानादिकी प्राप्ति तथा अज्ञान जन्य दुःखकी निवृत्तिके लिये। साहेब उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! कल्याणार्थी मनुष्यो! पक्षपात रहित निर्वैर सच्चरित्र ज्ञानी साधुओंकी सङ्गति करो, क्योंकि वे महात्मा सङ्गति करनेसे कृपा पूर्वक उपदेश देकरके 'ओरकी' यानी अनादि अज्ञान

जन्म मरणादिरूप व्याधियोंको हरलेते हैं (नष्टकर देते हैं।) अथवा उनकी संगतिही पुण्यादिकी उत्पत्ति द्वारा अनादि पापादिरूप व्याधिको हरती है। और हेसज्जनो! 'कूरकी' यानी मूर्ख शठ दुश्चरित्र पक्षपाती आदि मनुष्योंकी सङ्गति नहीं करो, क्योंकि उनकी सङ्गति 'ओछी' नाम हीन दुःखद होती है। इसीसे क्रूरोंकी ओछी सङ्गतिसे आठोंपहर [दिन रात] द्वेषादिरूप उपाधिही [उपद्रवही] होतेहैं। और अज्ञान संसार जन्य दुःख सदा क्रूरके सङ्गमें होतेहैं। इससे क्रूरोंकी सङ्गतिको अवश्यही त्यागो।

२११ साखी दोहा

संगति ते सुख ऊपजे, कुसंगति ते दुख होय।
कहहिं कबिर तहँ जाइये, अपनी संगति होय॥ २११॥

टीका—और भी उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! साधु महात्मा ओरकी व्याधियोंको हरते हैं। इससे उनकी सङ्गतिसे व्यवहारकालमें भी सदा सुख ऊपजता है, चित्त प्रसन्न और स्वच्छ रहता है। और क्रूरकी सङ्गतिमें उपाधि होती है, इससे सदा कुसङ्गतिसे दुखही होता है। इसलिये साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! 'तहँ' यानी उस साधुकीही संगतिमें जाना चाहिये कि जहाँ प्रसन्न स्वच्छ चित्तको रहनेसे अपनी [अपने स्वरूपकी] 'सङ्गति' यानी प्राप्ति अनुभव होवे। अथवा जहाँ अपनी (अपना अनुकूल) सज्जनोंकी सङ्गति होवे, उस देश वा स्थानादिमें जावो। और दैवयोगसे कुसङ्ग होगया होवे तो उसे त्यागदो जिससे सदा सुखी रहोगे इत्यादि।

२१२ साखी दोहा।

आजु काल्हु दिन कैकमें, अस्थिर नाहीं शरीर।
कहहिं कबिर कस राखिहो, कांचे बासन नीर?॥ २१२॥

टीका—औरभी उपदेश देते हैं कि कुसङ्गका त्याग पूर्वक साधु की सङ्गति करके शीघ्र अपनी सङ्गति करो, आगेकी आशा आदिको त्यागदो। क्योंकि आजु (वर्तमान) दिनमेंहीं वा 'काल्हु' यानि दूसरे दिनमें वा गिने हुवे कैकदिनोंमें यह मानव 'शरीर नाहीं' यानी नहीं रहनेवाला है, अर्थात् नष्ट होजाने वाला है। क्योंकि यह शरीर 'अस्थिर है, अर्थात् स्थिर रहने वाला नहीं है, किन्तु नश्वर क्षणभङ्गुर है। इससे साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! कांचे बासन यानी पाक रहित माटीके घड़ेमें नीरके सदृश इस शरीरमें प्राणको स्थिर करके कैसे रख सकते हो, किन्तु नहीं रख सकते हो। इसलिये शरीरमें प्राणको रहते युवा अवस्थामेंहीं अपने कल्याणके लिये सत्सङ्गादि करो वृद्धावस्था आदिकी आशाको त्यागदो। केतिक दिन नल राखिहौ, यह तृतीय पादका पाठ भेद है, तब

अर्थ है कि आज काल्ह वा कैकदिनोंमें अस्थिर यह शरीर नहीं रहेगा। क्योंकि हे नल ! काँचे बासनके सदृश इस शरीरमें प्राणरूप नीरको कितने दिनतक रख सकते हो ? अथवा आज काल्हादि कैक-दिनोंमें अस्थिर इस शरीरमें तुम्हीं नहीं रहोगे। क्योंकि कांचेबासन सदृश शरीरमें नीररूप अपने को कैसे और कबतक राख सकते हो ? इससे इसके आसक्ति अभिमानादिको त्यागकर शीघ्र सत्स-ङ्गादि करो इत्यादि।

२१३ साखी दोहा।

बहु बन्धनते बाँधिया, एक विचारा जीव।
की बल छूटै आपनो, की छोड़ावैं पीव ॥ २१३ ॥

टीका—और भी उपदेश देते हैं कि हे जीव ! विवेक वैराग्य सत्सङ्गादि करनेके लिये तुम एक हो, तेरे लिये दूसरा कोई विवेकादि नहीं कर सकता है। और अज्ञान मोह काम क्रोधादिके वशमें होनेसे विचारा (विगत चारा) अर्थात् सामर्थ्य हीनहो, और उस परभी तुम लोकलाज लौकिक वैदिक नियम अनन्त बासना आदिरूप बहुत बन्धनोंसे बांधे हुवे हो। अथवा तुम प्रथमसे तो काम-कर्मादिसे बंधेही हो। उस परभी गुरुआ लोगोंने तुझे अनेकों दृढ़ बन्धनोंसे बांध दिये हैं। तहां इन बन्धनोंसे की तो अपने विवेक विराग विज्ञानादिरूप बलोंसे छूट सकते हो, की सतउपदेश देने वाले निर्पक्ष साधुस्वरूप पीव (गुरु) तुझे उपदेश देकर युक्ति बनाकर छोड़ावेंगे। अर्थात् अपने विवेक विचारादिरूप बलसे और गुरुका उपदेशसेही सम्पूर्ण बन्धनसे रहित होवोगे। इससे बृद्धादि अवस्थाकी तथा किसी अन्यकी आशाओंको त्यागकर शीघ्र उक्त पीवके शरणमें प्राप्त होवो। और विवेक बिचारादिसे इन बन्धनोंको शिथिल करके गुरुका उपदेश जन्य अनुभवसे मूल सहित सब बन्धनों को नष्ट करदो। और इन बन्धनोंके बहुत होनेसे और दृढ़ होनेसे बृद्धावस्थामें वा किसी एकक्षणमें नष्ट होना असम्भव और दुष्कर जानकर प्रथमसेही यत्न करो इत्यादि। अथवा अभिमानी कुसङ्गादि युक्त मनुष्योंके प्रति उपदेश देते हैं कि हेमनुष्यो ! बहु बन्धनसे बांधा हुआ भी एक विवेकी विचार-शील जीव वेचारा की तो अपना बलसे छूटता है अर्थात् कुछ बन्धनोंको तो अपने विवेक विरागादि से नष्ट करता है-तथा कुसङ्गादिका त्यागसे कुछ बन्धनको नष्ट करता है। और 'की छोड़ावै पीव' यानी कुछ अज्ञानादि रूप बन्धनको गुरु महात्मा उपदेशसे छोड़ातेहैं। इसलिये तुम भी अपनेसे नष्ट करने योग्य बन्धनोंको आप नष्ट करो और गुरुका उपदेशकी प्राप्ति करके अत्यन्त—निर्बन्ध होवो जिससे शान्ति सुखकी प्राप्ति होवे इत्यादि।

२१४ साखी दोहा।

जिव जनि मारहु बापुरा, सबका एकै प्राण।
तीरथ गये न बांचिहौ, कोटि हिरा दे दान ॥ २१४॥

टीका—चित्तकी प्रसन्नता के लिये, तथा हिंसाजन्य कठिन पापकी अनुत्पत्तिके लिये साहेब अज्ञजीवों के प्रति उपदेश देतेहैं, कि हे बापुरा मनुष्य ! अज्ञान स्वार्थादि बश किसी जीवको जनि मारो, और समझो कि सबका प्राण एकही सदृश प्याराहै, जैसे तुझे अपना मरण अनिष्ट प्रतीत होताहै, तैसेही सब प्राणीको अपना २ मरण अनिष्टहैं। और यदि विवेक बिना स्वार्थादि बश हिंसा करते हो, तो यह ऐसा कठिन पापहै, कि तुम तीर्थमें जानेसे तथा वहां जाकर करोड़ों हीराओंको दान देकर भी उस पापसे नहीं बचोगे, किन्तु अवश्य भोगना होगा, इससे अवश्यही हिंसाको त्यागो। अथवा हे 'बापुरा !' जीवोंको नहीं मारो, किन्तु सबका एकही प्राणहै (आत्माहै) ऐसा जानो, और सब पर दया आदि करो, यदि ऐसा नहीं करोगे तो तीर्थमें जाकर कोटि हीराका दान देकर भी नहीं बचोगे यानी मुक्त सुखी नहीं होंगे। जिव मति मारहु बापुरा, सबका एकै प्राण। हत्या कबहु न छूटिहैं कोटिन सुने पुराण ॥ यह पाठ भेदहै सोई सङ्गत प्रतीत होताहै। अर्थ स्पष्टहै ॥

२१५ साखी दोहा।

जिव जनि मारहु बापुरा, बहुरि लेत वै कान।
हत्या कबहुं न छूटिहैं, कोटिन सुनहु पुरान ॥ २१५ ॥

टीका—और भी उपदेश देतेहैं कि हे बापुरा बावरा अज्ञानी मनुष्यो ! तुम किसी जीवको नहीं मारो, क्योंकि जिन्हें तुम मारते हो वै (निश्चय) वे जीव सब बहुरि (फिर) समय पाकर ' कान ' [बदला] लेतेहैं, औरलेंगे। क्योंकि हत्या [हिंसा] जन्य पाप कभी नहीं छूटेंगे या काल वीतनेसे भी पाप नहीं नष्ट होंगे, और चाहे तुम करोड़ोंबार पुराण सुनोगे तौभी हत्या नहीं छूटेगी। इसलिये धर्मकी बहानासे वा काम क्रोधादिसे भी किसीको नहीं मारो इत्यादि। जीव घात ना कीजिये, बहुरि लेत वह कान। तीरथ गये न बाँचिहो, कोटि हिरा दे दान॥ यह पाठभेदहै, सोई सङ्गत प्रतीत होताहै। अर्थ भेदहै कि जीवोंका घात नहीं करो वह जीवघात फिर लाज मर्यादारूप कानको नष्ट करताहै। और तीर्थमें जानेसे कोटि हीराका दान देकरभी उस घातसे नहीं बचोगे इससे उसे त्यागो। इत्यादि ॥

२१६ साखी दोहा।

तीर्थ गये ते बहि मुये, जूड़े पानि नहाय।
कहहिं कबीर पुकारिके, राक्षस है पछताय ॥ २१६ ॥

टीका—जो पुरुष हिंसा आदि अधर्मको नहीं त्यागते हैं, तथा मन इन्द्रियको बशमें नहीं करते हैं, और समझतेहैं कि काशी काञ्ची मथुरा आदिमें जानेसे, वहां प्राणत्यागने मात्रसे मुक्ति होती

है, और इसी समझसे जो प्रथम काशीकरवट आदिमें आत्मबध किये वा अभी भी कहीं कहीं करते हैं, जाड़ेके दिनोंमें जूड़े [ठण्ढे] पानीमें नहाकर जो तीर्थोंमें जलशयन करतेहैं, ते (वे) परप्राणियोंके घातक तथा आत्मघातक तमोगुणी विवेक विचार विमुख अमूल्य जन्मको व्यर्थ खोने वाले वे पुरुष तीर्थमें गये वा जाते हैं। और केवल जूड़ेपानी में नहालिये और नहाते हैं, (स्नानमात्र करतेहैं) और हिंसा आदिको नहीं त्यागतेहैं। और समझते हैं कि मैं स्नानसे पापरहित हुआ इत्यादि। परन्तु हिंसा आत्मघातादिसे संसारमें बहकर मुवे और मरते हैं। अर्थात् संसारात्मक सागर में बहकर तीर्थोंमें भटक कर व्यर्थ मरतेहैं। उन्हें पुण्य वा कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती है। और साहेब पुकारके कहते हैं कि वे हिंसक आत्मघाती तीर्थके भरोसे रहकर विवेक विचारादि बिना राक्षस होकर पश्चात्ताप करतेहैं। क्योंकि उनके पापोंकी तीर्थोंमें नहानेसे निवृत्ति नहीं होती है। इसलिये हे मनुष्यो! तीर्थोंकी आशाको त्यागकर अहिंसादि व्रतोंका धारण करो और विचारादि परायण होवो जिससे कल्याण होवे॥

२१७ साखी दोहा।

तीर्थभई बिष बेलरी, रही युगहुं युग छाय।
कबिरन मूल निकन्दिया, क्यों न हलाहल खाय॥ २१७॥

टीका—और भी साहेब कहतेहैं कि मुक्तिके हेतु, और पापपुञ्जके विनाशक मानी गई नदी, नदीके जलादिरूप तीर्थ, हिंसा आत्मघात व्यर्थभ्रमण बहिर्मुखता आदिके हेतु होनेसे, मनुष्यों के नाशके लिये बिषबेलरी स्वरूप हुई, जिसके सङ्गादिसे मनुष्य नाशको प्राप्त हुवे और होतेहैं। और सो विषबेलरीरूप तीर्थ 'युगहुँ युग, में संसारमें छाय रहीहै अर्थात् व्याप्त और प्रतिष्ठित होरहीहै। जिज्ञासा हुई कि बिषबेलरीरूप तीर्थके सङ्गादि मनुष्य क्यों करने लगे? अर्थात् तीर्थोंमें आत्मघात तथा उनके भरोसे हिंसादि कैसे करने लगे? तब साहेब कहतेहैं कि तीर्थोंके महात्म्य प्रशंसा आदि लिखने वाले कबिरन (कबियोंनेही) 'मूल निकन्दिया' यानी मूल सत्यसुखके साधन अहिंसा विवेक विचारादिको कन्द यानी जड़सहित उखाड़ दिया, मूलवस्तुके विचारको मूलसहित नष्ट किया। और विवेक विज्ञानादि से होनेवाली मुक्तिको तीर्थमरण स्नानादिसेही कवियोंने वर्णन किया, सोई मानों हलाहल बिषकी बेलरी लगाई। तो उनके बचनोंमें विश्वास रखनेवाला अविवेकी मनुष्य क्यों न हलाहल खाय या 'कबिरन' अर्थात् जिन जीवोंने सत्यमूल वस्तुको 'निकन्दिया' यानी त्यागकिये वा निषेधकिये, वे जीव हलाहल क्यों नहीं खायें? किन्तु हलाहल विषभी तीर्थमें वे लोग अज्ञानबश खातेहैं तथा पापरूप हलाहल खातेहैं। और आत्मारूप अमृतको त्यागकर हलाहल सदृश तीर्थका सेवन करते हैं इत्यादि॥ कौन हलाहल खाय। यह पाठभेदहै, तब अर्थ है कि जीवो ने ही मूलका निकन्दन किया है, तो हलाहल कौन खाय? जीवही अपने अन्यायके फल भोगता है

इत्यादि । अथवा जिज्ञासाहुई कि तीर्थ जानेसे मनुष्य क्यों बहमुवे ? और क्यों राक्षस होकर पछताते हैं तब साहेब इस साखीसे उत्तर देते हैं कि विषकी बेलरी सदृश जो मायाहै सोई तीर्थरूप भी हुईहै, और जीवोंको भुलानेके लिये तीर्थरूपसे सब युगोंमें छाई रहती है। सो कबियोंके मूलको भी छिपातीहै तो जीव हलाहल क्यों नहीं खायें इत्यादि ।

२१८ साखी दोहा ।

तीरथ गये तीन जना, चित खोंटा मनचोर ।

एको पाप न काटिया, लादिन मनदश और ॥ २१८ ॥

टीका—विशेष करके जो पुरुष तीर्थमें वहमरे और मरतेहैं, तथा राक्षसहोकर पछताते हैं, तथा जिनके लिये तीर्थ विषबेलरी हलाहलरूप होतीहै और हुई है, उनका वर्णन करतेहैं कि तीर्थमें यदि 'तीन जना' यानी तीन प्रकारके पुरुष गये वा जातेहैं, तो वे लोग एकोपाप भी नहीं काटे न काटतेहैं, किन्तु उलटा 'और' अर्थात् अन्य दशप्रकारके पाप मनपर लाद्लिये और लादतेहैं। वे कौन तीनजनाहैं कि एक तो जिनका चित्त खोटाहै, [चञ्चलहै] और अनेकों चिन्ताओंसे व्याप्त है, वे लोग देखने आदि केही लिये जहां तहां दौड़ते फिरतेहैं। दूसरा जिनका मन खोटाहै, अर्थात् बुरे संकल्प विकल्पवालाहै, वे लोग व्यभिचार व्यापारादिकी कामनाओंसे, तथा पाप करके उसकी निवृत्तिकी कामनादिसे,तीर्थमें जाते हैं। और तीसरा जो चोर हैं, सो अन्यायसे पर द्रव्यको लेनेके लिये तीर्थमें जाते हैं, और येही तीन प्रकारके लोग तीर्थमें अधिक जाते हैं परन्तु इनके एकभी पाप नष्ट नहीं होताहै, उलटा दशेन्द्रिय जन्य दशप्रकारके पाप ये लोग मनपर लादते हैं । जैसे कि वेश्या आदिके गानादिको सुनना, पर स्त्री को कुदृष्टिसे देखना, अभक्ष्य पदार्थोंको मलिन स्थानमें स्वाद लेना, दुर्गन्धोंको सुंघना, निन्दित स्पर्श करना, अवाच्य शब्दोंको बोलना, निन्दित वस्तुका हाथसे ग्रहण करना, निन्दित स्थानमें पैर से जाना, जलमें सड़कादिमें मलमूत्रको त्यगना इत्यादि कर्मोंसे पाप लाद लाते हैं। अथवा शरीरसे हिंसा चोरी निषिद्ध मैथुनरूप, वचनसे झूठ, कठोर, चुगली, असम्बद्ध प्रलापरूप, मनसे परद्रोह परद्रव्य की इच्छा नास्तिकतारूप, दश पाप मनपर लादते हैं । इससे हिंसा आदिको त्यागो और तीर्थकी आशा भरोसाको भी छोड़ो जिससे कल्याण होवे । तीरथ गये तेइ जना यह पाठ भेद है, तब अर्थ है कि जिनके चित्त खोटा है और मन चोर है, उन लोगोंनेहीं यदि तीर्थमें गये तो एकोपाप काटे नहीं उलटा उनके मन दश पाप लाद लिया। या जिन विचारादि रहित मनुष्योंने तीर्थमें गये, उन्होंने खोटा चित्तवाले और चोर मनवाले हुवे इत्यादि । विशेष भावार्थ यह है कि यद्यपि पृथिवीपर कोई २ स्थान शुद्ध वायु आदि वाले हैं, तथा जहां कोई विशेष महापुरुष सिद्ध योगी ज्ञानी आदि निवास करते हैं । वहांके परमाणु आदि कुछ विचित्र अदृष्टशक्ति युक्त होजाते हैं कि जिनके संसर्गसे तथा उन महापुरुषादिके स्मरणादिसे कुछ मनुष्योंके चित्त स्वच्छ प्रसन्न होते हैं तथापि

उन स्थानोंमें भी शुभभाव बासना आदि वालोंकेही चित्त स्वच्छ तथा प्रसन्न होते ह, अन्यके नहीं होते हैं, अशुभ भावादि वाले वहाँ भी अशुभकीही वृद्धि करते हैं । और जिन स्थानों केवायु परमाणु स्वच्छ रहते हैं जहाँ महापुरुषादि निवास किये रहते हैं वहाँ भी यदि मलिन अशुभ वस्तु प्राप्त हो जावें चोर लवार हिंसकादि बसने लगें, कुक्रिया करने लगें, तो वहाँकी स्वच्छताशक्ति नष्ट हो जाती है । फिर अज्ञान मोहादि बश वहाँ जाने बसने आदिसे उलटा हानि होती है नफा नहीं होता है । और स्वच्छताशक्ति रहतेभी उसकी प्राप्ति शुभभावादि वालाही करताहै जैसे लोहाको चूम्बकही आकर्षण करता है अन्य नहीं करता । इससे शुभभावादि वाला अहिंसककोही फायदा होता है इत्यादि इन बातोंको जाने बिना केवल जहां तहां भटकने वाले बह मरते हैं, राक्षस होकर पछताते हैं, विश्वास करके हलाहल खाते हैं । और तीर्थोंमें जाकर खोटे चित्तवाले दुष्ट, चोर, मन वाले होते हैं इत्यादि । मैत्रेयी उपनिषद्में लिखा है कि [उत्तमा तत्त्वचिन्तैव मध्यमं शास्त्रचिन्तनम् । अधमा मन्त्रचिन्ता च तीर्थभ्रान्त्यधमाधमा] आत्मतत्त्वका चिन्तन उत्तम है । शास्त्रचिन्तन मध्यम है । मन्त्रचिन्तन अधम है । और तीर्थमें भ्रमण करना अधमोंसे अधम हीन है। ब्रह्मपुराणके वचन हैं कि [मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं वाचां तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च । एतानि तीर्थानि शरीरजानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति । चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानै र्न शुद्ध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि] पुरुषके विशुद्ध मन तथा वाक् और इन्द्रियोंका निग्रह वस्तुतः तीर्थ हैं, और येही शरीरसे उत्पन्न तीर्थ सब स्वर्गके मार्गको जनाते हैं । और बाह्य तीर्थके स्नानो से अन्तर्गत दुष्टचित्त शुद्ध नहीं होता है, किन्तु सैकड़ों वार जलसे धोया हुआ मद्यके भांड सदृश अशुद्धही रहता है । महाभारत में लिखा है कि [यस्यहस्तौच पादौच मनश्चैव सुसंयतम् । विद्यानपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ प्रतिग्रहादपावृतः सन्तुष्टोयेनकेनचित्। अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ अकल्कको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो स तीर्थफलमश्नुते ॥ अक्रोधनश्च राजेन्द्र ! सत्यशीलो दृढव्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते] जिसके हाथ पैर मन संयत रहते हैं, और विद्या तप कीर्ति संयत रहते हैं नाम अभिचार दम्भ पाप कीर्तिसे रहित रहते हैं, सो पुरुष तीर्थफलको पाता है । और प्रतिग्रहसे निवृत्त, जिस किससे सन्तुष्ट, अहंकार रहित, और अकल्कक नाम शठतादिसे रहित, निरारम्भ, लघु अहारवाला, जितेन्द्रिय, सब पापकर्मसे निवृत्त, और क्रोधरहित, सत्यशील दृढ़ व्रतवाला तथा सब प्राणी को अपने समान समझने वाला पुरुष तीर्थफलको भोगता है । और गरुड़ पुराणके बचन हैं कि (त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्मरणोत्सुकः।म्रियते मुक्तिक्षेत्रेषु सर्वै मोक्षमवाप्नुयात्॥ अयोध्या मथूरा माया काशी कांची अवन्तिका । पुरीद्वारावतीज्ञेयाः सप्तैता मोक्ष-

दायिकाः । जो मरणोत्सुक पुरुष गृह त्यागकर तीर्थमें बसे, और जो मुक्तिक्षेत्रोंमें मरता है, सो अवश्य मोक्ष पाता है । अयोध्या आदि ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं । यद्यपि इस बचनके अन्यभाव होसकते हैं, परन्तु काशीकरवटमें गिरकर तथा, जगन्नाथमें विष खाकर लोग मरते थे, सो प्रसिद्ध है जिसको सरकार वन्दकर दिया है, उसी आशयसे साहेबका कथन है ।

२१९ साखी दोहा ।

ऐ गुणवन्ती बेलरी, तव गुण बरणि न जाय ।
जहं काटे तहँ हरियरी, सींचेते कुंभिलाय ॥ २१९ ॥

टीका—अविद्या माया कुबुद्धि युक्त जीवोंके प्रति, तथा तीर्थबासना युक्त जीवोंके प्रति, साहेब कहते हैं कि हेजीवो ! ये अविद्यादि त्रिगुणयुक्त बेलरी हैं, सो तव (तुम्हारी) हैं अर्थात् तेरे अधीन हैं, और इनके गुण वर्णन नहीं किये जाते हैं । क्योंकि जहाँ जो कोई इन्हें काटता है तहां हरियरी रहती हैं, अर्थात् जो पुरुष इनका निषेध करता है, इन्हें मिथ्या समझता है, सो आनन्दी रूप मुक्त होजाता है । और जो इन्हेंही सींचते हैं, इन्हें सत्य समझते हैं सो पुरुष कुम्भिलाते हैं (दुःखी होते हैं) इससे तुम इन्हें मिथ्या समझो इत्यादि । अथवा माया आदिके बशबर्ती जीवोंके प्रति कहते हैं कि हेगुणवाली बेलीस्वरूप जीवो ! तेरे विपरीत गुणोंका वर्णन नहीं किया जाता है, क्योंकि 'जहां' अर्थात् जिस तीर्थ हिंसा कुकर्मादिमें तुम काटे जातेहो नष्ट किये जातेहो, तहां हरियरी वाला अर्थात् प्रसन्न होते हो, और सतविचार अहिंसादिका उपदेशरूप अमृतसे सींचने से कुंभिलाते हो दुःखी होते हो सो आश्चर्य है इत्यादि । अथवा जो हत्या पुराण सुननेसे नहीं नष्ट होती है, यह हत्या गुणवन्ती मायाकी बेलीरूप है, और हे जीवो ! वह तुम्हारा गुणरूप है जिसका वर्णन नहीं किया जाता है, वह हत्या जहाँ काटी गई 'तहां हरियरी' आनन्द लहरी रहती है जो उसे सींचते बढ़ाते हैं वे लोग पीड़ित होतेहैं । या यह संसार तथा सब तीर्थादि गुणवन्ती बेलरी जो माया उसरूप हैं । जिस मायाके गुण हे जीवो ! तेरे प्रति वा तुझसे वर्णन नहीं किये जा सकते हैं इत्यादि । जर काटे ते हरियरी, यह पाठ भेद है । अविद्या माया संसारादिके जर हैं ।

२२० साखी दोहा ।

बेलि कुढंगी फलबुरा, फुलवा कुबुधि गँधाय ।
और विनष्टी तुमरी, सरो पात करुआय ॥ २२० ॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि पूर्व वर्णित अविद्या माया बासना हत्या आदिरूप बेली कुढंगी है, बुरी है । उसके चाल स्वभाव निन्दितहैं । क्योंकि उसके बुरे दुःखरूपही फल लगते हैं । और कुबुद्धिरूप नवीन २ फूल लगतेहैं । सो दुष्टफूल गँधाते हैं अर्थात् हीन बासनाओंको उत्पन्न

करतेहैं, तथा लोकमें अपयशादिको प्रगट करतेहैं। अथवा कुबुद्धिरूप बेलिके कुकर्मरूप फूल गँथातेहैं। और यह बेलि ओरसे(अनादिसेही) विनष्टी अर्थात् विनाशशीलाहै या मिथ्या स्वरूप स्वभाव वालीहै, और तुमरी है [तुम्बाकी बेलिरूप है] इससे सरा यानी सम्पूर्ण इसके कार्यरूप पात 'करुआय' यानी करुआ तिक्तहीहैं अर्थात् सब दुःखदहैं कोई सत्य सुखद नहींहैं। अथवा इसके पात सरेगले के सदृश सुस्वादसे रहितहैं और करुआपन युक्तहैं इससे इस बेलीको सर्वथा त्यागना चाहिये जिससे दुःखकी निवृत्ति होवे इत्यादि ॥

२२१ साखी दोहा।

परदे पानी डाहिया, सन्तो करहु विचार।
शरमा शरमी पचि मुआ, काल घसीटनिहार ॥ २२१ ॥

टीका—फिर साहेब जिज्ञासुओं के प्रति उपदेश देतेहैं कि जैसे विशेष पानी यदि अग्निसे परदारहित होताहै, तो उसे नष्ट करदेताहै, परन्तु परदायुक्त रहनेपर चुल्हीकी अग्निसे गर्म होजाता है। और चुल्हीकी अग्नि बटुलीका पानीको परदासेही डाहतीहै। तैसे तेरा स्वरूप आनन्दात्मा है प्रगट होनेपर उक्त बेलि दुःख आदि सभोंको नष्ट करनेवालाहै, परन्तु अज्ञानरूप परदेमें तुझे रहनेसे आनन्द स्वरूप तुझकोभी कामक्रोध दुःखादि डाहतेहैं। इससे हे सन्तो! उस परदाको नष्ट करनेके लिये विचार करो, और निरर्थक लोकलाज मान प्रतिष्ठा आदिरूप शरमाशरमीको त्यागदो, क्योंकि जो लोग शरमाशरमी में पचकर नाम पीड़ित होकर मुवे वा मरतेहैं, उन्हें काल घसीटने वाला है, यदि तुम शरमाशरमीमें रहोगे तो तेरी भी सोई दशा होगी। इसलिये उसे त्यागो और विचारादि करो जिससे कल्याण होवे। या अनेकों मत आदिके परदेमें पानीरूप जीव डाहा गया, और पचमुवा। इससे हे सन्तो! विचार करो परदाको नष्ट करो पक्षपातादिको त्यागो नहीं तो काल घसीटने वाला होगा। अथवा हे सन्तो! 'पर' नाम उक्त बेलिसे भी परे परमात्मारूप अक्षय अग्निमें देकर महात्माओं ने संसारात्मक समुद्रके अविद्यादिरूप पानीको दग्ध किये हैं। और मुक्त हुवेहैं इससे तुमभी दुःखरूप फलसेरहित होनेके लिये सोई विचार करो, क्योंकि उस विचार बिना जो शरमाशरमीमें परा हुवा लोकव्यवहारादिमें पचकर मुवा, उसको काल पीड़ित करने वाला अनेकों योनि आदिमें घसीटने वाला है इत्यादि।

२२२ साखी छन्द, सार, वा, दोवै।

आस्ति कहों तो कोइ न पतिजै, बिना आस्ति का सिद्धा।
कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, हीरी हीरहिं विद्धा ॥ २२२ ॥

टीका–अविद्या अविचार मूलक संसार दुःखकी निवृत्तिके लिये विचारका उपदेश देकर, साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! सुनों सबके कल्याणके लिये 'आस्ति' यानी अत्यन्त यथार्थ बात मैं कहताहूं, अथवा सर्वथा सत्यवस्तुको कहता हूँ, तो 'कोई' हतभाग्य मनुष्य 'न पतिजै' नाम नहीं विश्वास प्रतीति करताहै। और बिना आस्तिका [अत्यन्त मिथ्या] वस्तुको अर्थशून्य मिथ्या बातको 'सिद्धा' अर्थात् सिद्ध सत्य प्रमाणरूप मानताहै। इससे मानों हीरी (काचही) हीरा को विद्धा [बेधन] कर रहीहै, औरकी है। अर्थात् मिथ्या उपदेशसे सत्य उपदेशका तिरस्कार होरहा है, और विचारादि बिना मिथ्या संसार सत्यस्वरूप जीवको पीड़ित कर रहाहै, इससे मिथ्या उपदेश संसारका तिरस्कारके लिये भी विचारादि करो। सिद्ध, विद्ध, अन्तमें होवे तो सरसी छन्द है। हीरा हीरहिं विद्ध, पाठहोवे तो अर्थहै कि मैं आस्तिक मत कहताहूं तो कोई विश्वास नहीं करता है, और अनात्मविषयक नास्तिक मतमेंहीं सब कोई अपनेको सिद्ध महात्मा समझता है, परन्तु हे सन्तो ! सुनो जैसे हीरा हीरासेही बेधा जाताहै। तैसे आस्तिक उपदेश आत्मज्ञानसेही संसारकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होती है। इसलिये आस्तिक विचार विश्वास करो नास्तिकता का त्याग दो इत्यादि ।

२२३ साखी दोहा।

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुटहिं सौ बार।
दुर्जन भांड़ कुम्हार का, एकहिं चोट दरार ॥ २२३ ॥

टीका–और भी साहेब कहतेहैं कि जैसे सोना सैकड़ोंबार टूटकर जूट जाताहै। तैसेही 'सज्जन' यानी विराग शम दमादि युक्त मनुष्य तथा 'साधु जन' यानी बिबेकी कुशल पक्षपातादि रहित मनुष्य टूटकरभी अर्थात् किसी व्यवहार रोगादि बश विचार रहित विक्षेप युक्त होने पर भी सैकड़ोंबार विघ्नोंके प्राप्त होनेपरभी, फिर विचार सत्यमार्गमें जुट जातेहैं, जबतक अपरोक्ष यथार्थ अनुभव नहीं होताहै, तबतक विचार सत्सङ्गादि करतेही जातेहैं, विचारादिको नहीं त्यागते हैं। और यदि दैवयोगसे दुर्जन भी बिचारादिरूप सतमार्गमें प्रवृत्त होते हैं, तो दुःसाध्य अनुभव को हुवेही बिना किसी एक विघ्नक्षोभादिके होतेही विचारादिको त्याग देतेहैं, क्योंकि दुर्जन मनुष्य कुम्हार के भांड़ाके सदृश होतेहैं। जैसे माटीका पक्काघड़ा एक चोटमेंही दरार होजाता है, नाम फूट जाताहै और फिर जुटता नहींहै। तैसेही दुर्जन एक चोटमें दरक जातेहैं और विचारादिमें नहीं जुटतेहैं, इससे उन्हें यथार्थ अनुभवभी नहीं होताहै। इसलिये तुम सदा विचारादि करो साधु सज्जन बनो इत्यादि। इसी प्रकार मित्रता परोपकारादिमें भी जानना चाहिये। सज्जनको कुछ भेद होवे तौभी मित्रता आदिको नहीं त्यागतेहैं दुर्जन त्यागदेते हैं इत्यादि, क्रोधयुक्त होकर भी सज्जन शीघ्र प्रसन्न होजातेहैं और दया करते हैं। मूर्ख हठको नहीं त्यागतेहैं इत्यादि।

२२४ साखी दोहा।

काजर की है कोठरी, बुड़ता ई संसार।
बलिहारी तिहि सन्त की, पैठि जु निकलनिहार ॥ २२४ ॥

टीका—और भी कहते हैं कि ये माया और मायिक वस्तु संसार शरीरादिकही काजरकी कोठरीरूपहैं, और समुद्ररूप हैं। उनमें आसक्त होनेसे रागद्वेषादि रूप कालिमा युक्त विचार रहित 'ई संसार' यानी यह संसारी जीव उनमें बूड़ताहै जन्म मरणादिको प्राप्त होता है। अर्थात् जैसे तुम्बा किसी वस्तुके भारसे जलमें बूड़ताहै। तैसे संसारी विचार रहित जीव विषय बासना रागद्वेषादिसे संसारात्मक सागरमें बूड़ताहै। परन्तु 'तिहि' यानी उस टूटकर जुटनेवाले सन्तोंकी बलिहारी है, कि जो इस कोठरीमें पैठकर भी रागद्वेष पापादिरूप दाग बिनाही विचारादिसे निकलनेवाले हैं, और जो आसक्तिको त्यागकर संसारात्मक सागरसे पार होनेवाले हैं, उनकी ही बलिहारी है। इससे हेसन्तो! विचारो और इस कोठरीसे निकलो संसारसे पार होवो इत्यादि। या यह संसार काजरकी कोठरी है उसमें अन्य जीव बूड़ताहै, परन्तु उन सन्तोंकी बलिहारीहै जो पैठकर निकल नहारहैं इत्यादि।

२२५ साखी दोहा।

काजर की है कोठरी, काजर हीं का कोट।
तोंदी कारी ना भई, रहा सु ओटहिं ओट ॥ २२५ ॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि काजरकी कोठरीसे दाग रहित सन्तलोग कैसे निकल जाते हैं? तब साहेब कहते हैं कि ये शरीरादिरूप संसार काजरकी कोठरी रूपहैं, और ब्रह्माण्ड माया आदि रूप काजरहीका कोटहैं। उनमें आसक्त होकर विचारादि रहित मनुष्य काम क्रोध लोभ तृष्णादिरूप कालिमासे अत्यन्त व्याप्त होगये, तथा पाप युक्त होगये। परन्तु उन सन्तोंको तोंदीमात्र यानी अंगुलीके अग्रभाग मात्रभी नहीं कारी हुई अर्थात् उन्हें कामादि कुछ नहीं हुवे, किन्तु वे लोग सुखपूर्वक विचारादिसे 'ओटहिं ओट रहगये' यानी उस कोठरी वा कोटसे भिन्नही भिन्न रह गये, उसमें आसक्त नहीं हुवे, इससे दाग रहित निकल गये। अथवा विचार सद्गुरुकी भक्ति आदिके 'ओटहिं ओट' यानी परदे परदेमें रहगये। अथवा विचार विज्ञान युक्त उक्त सन्तोंसे वे कोठरी और कोटही परदे परदेमें रहगये, ज्ञानाग्निके सामने नहीं हुवे, और सन्मुख हुवे सो दग्ध होगये, इससे वे लोग दागरहित निकल गये और शुद्धात्मास्वरूपसे स्थिर होगये इत्यादि।

२२६ साखी दोहा।

अर्ब खर्ब ले द्रव्य है, उदय अस्त ले राज।
भक्तिमहातम ना तुले, ई सब कौने काज॥ २२६॥

टीका—काजरकी कोठरी आदिसे दागरहित निकलनेके लिये द्रव्यादिकी तुच्छताका और भक्तिके महत्त्वका वर्णन करते हैं कि सौकोटिके एक अर्ब होता है, और सौअर्बके एक खर्ब होताहै, उस अर्ब खर्ब आदि तक जिसको द्रव्य है, और उदयाचलसे अस्ताचलतक राज्य है, उसके सबही द्रव्य और राज्यके 'महातम' [महत्त्व] भक्तिके महत्त्वके तुल्य नहीं हो सकता है। या परात्मतत्त्व के विचार चिन्तनादिरूप, और सद्गुरुकी सेवा शुश्रूषा आदिरूप भक्तिके तुल्यसब द्रव्य और राज्य नहीं होसकते हैं, क्योंकि भक्ति ज्ञानकी प्राप्ति कराके सब दुःख शोक संसारसे रहित कर देती है। और द्रव्य राज्यादि दुःखादिसे रहित नहीं करते हैं, किन्तु उलटा विचारादि रहितको दुःखादिकेही जनक होते हैं, इससे द्रव्यादि ये सब कौन काय करनेवालेहैं, अर्थात् किसी श्रेष्ठ कार्यको नहीं करने वाले हैं उलटा मोहादिको उत्पन्न करके मोक्षके बाधक हैं। इसलिये इनकी इच्छा इन विषयक आसक्ति आदिको त्यागकर विचारादि करो जिससे कल्याण होवे इत्यादि।

२२७ साखी दोहा।

मच्छ विकाने सब गये, धीमरके दरबार।
अँखिया तेरि रतनारी, क्यों करि पेन्हीं जार॥ २२७॥

टीका—यद्यपि सबसे श्रेष्ठ और संसारात्मक बन्धनसे रहित करनेवाली भक्तिहै तथापि मनुष्य सब 'मच्छ' (मछरी) सदृश होकर गुरुआरूप वा कालरूप धीमरके दरबारमें विकाने के लिये गये हैं और जाते हैं। अर्थात् जैसे लोहेकी कांटीमें लगेहुवे अन्न मांसादिके लोभसे तथा महान् नदी समुद्रादिको त्यागकर छोटे २ जलाशयोंमें जानेसे मछलियाँ धीमरके बशमें होती हैं। तैसेही तुच्छ विषयादिकोंके लोभसे दुःख रागद्वेषादि कण्टक युक्त विषय—सुखादिकी इच्छा आदिसे, और विभु महासमुद्रस्वरूप आत्मवस्तुको त्यागकर अर्थात् उसके विचारादिसे विमुख होकर लोक, शरीर विषयादिरूप तुच्छ जलाशयमें जानेसे, उनमें मनको लगानेसे सब मनुष्य विवेक दया आदि रहित गुरुवा रूप धीमरके दरबारमें गये वा मृत्युरूप धीमरके दरबारमें गये और जाते हैं। तहां साहेब कहते हैं कि हे मछलियो! पल नहीं लगनेसे 'तेरी अँखिया रतनारीहै' [रत्न सदृश है वा लाल है] तौभी तुम छोटे जलाशयोंमें जाकर जाल क्यों पहिरली? अर्थात् हे

मनुष्यो ! तुझे विवेक विचारादिकी शक्ति तथा बुद्धिरूप रत्नसदृश वा लाल आंखे हैं तौभी शरीर विषयादिमें आसक्त होकर मोहादिरूप जाल कैसे पहिरे हो ? यह अनुचितहै इसे त्यागो । या जिज्ञासुओंके प्रति कहते हैं कि तुम सब मच्छरूप होकर गुरुवा रूप धीमरके दरबारमें विकने गये हो सो अनुचित है, क्योंकि तेरे विवेकादि रूप आँखे रत्नसदृश हैं तौभी मिथ्या फन्दोंमें क्यों परते हो । वस्तुतः भक्ति बिना द्रव्य राज्यादिरूप जलमें रहनेवाले संसारात्मक समुद्रके मच्छसदृश मनुष्य सब काल रूप धीमरके दरबारमें विकने गये हैं । उनके प्रति साहेब कहते हैं कि हेमनुष्यो ! तेरे समझ रत्नसदृश हैं तौभी यह जाल क्यों पेन्हे हो ? इस बातको विचारो और इससे रहित होवो इत्यादि ।

२२८ साखी दोहा ।

पानी भीतर घर किया, शय्या किया पताल ।
पासा परा करीम का, मैं तैं पेन्ही जाल ॥ २२८ ॥

टीका – गुरुवाओंके भक्त तथा विषयासक्तादि लोग कहते हैं कि जैसे मछली पानीके भीतर घर करती है, और पतालको यानी पानीके अन्दर भूमिको शय्या बनाती है, तौभी ' करीमका ' (ईश्वरका) वा ईश्वरकी इच्छाके अधीन कर्मका 'पासा' (फांस) पड़नेपर उसे उपस्थित होनेपर मछली जाल पहिरतीही है। तैसेही मैंने अपने गुरुओंके बानी उपदेशरूप पानीके भीतर घर कियाहै। या स्त्री पुत्र धनादिरूप सुखद पानीके अन्दर घर किया है, और जहाँ दुःखद पदार्थादि नहीं प्राप्त होते हैं, ऐसे स्वर्गादिरूप पतालको शय्या किया है अर्थात् स्वर्गादिको स्थितिका स्थान किया है, तौभी 'करीम' (भगवान ईश्वर) का वा उनके अधीन कर्मका 'पासा परा' तें यानी उसीसे मैं प्रथम भी जाल पहिरा माया आदिके बशमें हुवा, और अभी भी पहिरता हूं। अर्थात् ईश्वरकी जैसी इच्छा होती है सोई होता है । मैं क्या विचारादि कर सकता हूं ईश्वरही सबको मोह मायादिसे बांधकर भ्रमाते हैं, चाहते हैं तो मुक्त करते हैं इत्यादि । या साहेब कहते हैं कि हे जीवो ! तुम सबने मिथ्या उपदेश विषयादिरूप पानीके अन्दर घर किया है, और दृढ़ अंधकार मय पतालसदृश अविद्या मोहादिका शय्या किया है, और विचारादि नहीं करते हो इसीसे करीमका पासा परा है और 'मैंतें' [मेरी तेरी] आदि बुद्धिरूप जाल भी उसीसे तुमने पेन्हा है,इससे उक्त घर तथा शय्याको त्यागदो । तब मैं पहिरा जाल । तामें पहिरा जाल । ये अन्तिम पादके पाठ भेद हैं । उनमें दूसरा पाठ पक्षका भी यही अर्थ है कि जीवोंने पिताके वीर्यरूप पानीके भीतर घर किये, फिर माताके गर्भरूप पतालको शय्या किये, उससे शरीर होनेपर अनेकों कामकमका 'पासा परा' यानी अनेकों पुण्य पाप करने लगे, तो फिर तामें इन्होंने जाल पहिरा अर्थात् मृत्युके बशमें हुवे इस प्रकार धीमरके दरबामें विकने गये इत्यादि ।

(क्षेपक) साखी दोहा ।

(मच्छा भये न बांचिहो, धीमर तेरो काल ।
जिहि जिहि डाबर तूं फिरो, तहँ तहँ मेलिहिं जाल ॥ ६ ॥

टीका---साहेब कहते हैं कि हेमनुष्यो ! विचार रहित मच्छासदृश होनेसे वा माननेसे विषयादिरूप जालमें आसक्त होनेसे नहीं बचोगे,अर्थात् जन्मादि रहित नहीं होसकोगे, क्योंकि मच्छ सदृश होनेपर काल तेरे लिये धीमररूप है। इससे जिस जिस देश लोक विषय शरीरादिरूप 'डावरमें' (जलाशयमें) तुम फिरते हो, तहाँ २ वह अवश्यही कर्मादिरूप जाल मेलताहै। (डारता) इसलिये मच्छरूपताको त्यागकर विचारादि युक्त समर्थपुरुष होवो ऐसेही करनेसे तेरा कल्याण होगा अन्यथा नहीं हो सकता है। या असत उपदेशरूप जलके मच्छा होनेसे नहीं बचोगे अज्ञानी गुरुवारूप धीमर तेरा कालसदृश हैं, जिस २ सम्प्रदाय मतरूप डाबरमें तुम फिरते हो तहां २ सर्वत्र गुरुवा लोग जाल मेलते हैं कोई बिरलेही अभिमानादि रहित ज्ञानी होतेहैं, उन्हेंही खोजो जिससे कल्याण होवे इत्यादि। यह साखी भी कहीं मूलरूपसेहै कहीं क्षेपक है

२२९ साखी दोहा ।

बिनु रसरी खलको बँधा, तासु बन्धा अलेख ।
दीन्हा दर्पण हस्त मधे, चसम बिना क्यों देख ? ॥ २२९ ॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि यदि मच्छा होनेसे मनुष्य नहीं बचेंगे ? तो कैसे बचेंगे? तब साहेब कहते हैं कि ये 'खलक' (संसार) बिना रसरीकेही बन्धे हैं, अर्थात् संसारी जीव सब किसी सत्य- बन्धनके हेतु बिनाही मिथ्या स्वरूप अविद्या माया मोहादिसे मिथ्या संसारात्मक बन्धन युक्त हुवे हैं, और साभास अन्तः करणरूप जीवोंको अविद्या आदिसे बँधानेसे 'तासु' यानी उन जीवोंमें 'अलेख' यानी स्वयंप्रकाश अविषय स्वरूप साक्षी आत्मा भी बन्धा है अर्थात् बन्धाया हुवा भासता है। या बिना रसरीकेही खलक बँधा है, क्योंकि 'तासु' [खलकमें] अर्थात् संसारमें 'अलेख' यानी निर्बन्ध अविषय वस्तुही बन्धा है, अविद्या अविचारादिसे बन्धाया भासता है। इससे सिद्ध हुवा कि अविद्या आदि कृत बन्धनकी विद्या विचारादिसे निवृत्ति होनेसे मनुष्य बचेंगे और बचते हैं। फिर जिज्ञासा हुई कि यदि विद्यादिसे जीव बचते हैं तो महात्मा लोग सब मनुष्यको ज्ञानोपदेश करके उनकी रक्षा क्यों नहीं करते हैं ? तब साहेब कहते हैं कि महात्मागुरु लोगोंने उपदेश रूपी दर्पण हाथमें भी दिये हैं अर्थात् सत शास्त्ररूप उपदेश सबके सन्मुख कर

दिये हैं, परन्तु तौभी विवेक बुद्धिरूप चसम बिना जीव सत्यात्मवस्तुको कैसे देख सकता है। इससे सिद्ध हुवा कि विवेकादि बिना मनुष्योंको ज्ञान नहीं होता है, और ज्ञान बिना मिथ्या बन्धसे युक्त रहते हैं जिन सत पुरुषोंको विवेक होता है, सो आत्मानन्दको जानकर सब संसारात्मक बन्धन दुःखसे रहित हो जाते हैं इत्यादि। या बिना कारणकेही संसार बंधाहै, और उस संसारमें भी वस्तुतः 'अलेख' [अनिर्वचनीया] मायादिकही बन्धा यानी बन्धनहै, परन्तु हस्तमें दर्पण सदृश उपदेश देनेपर भी विवेक बिना क्या देखा जावे ? इत्यादि। खलको वँधा के खलक बँधा गर सब बन्धा। तासु बन्धाके तासों बंधा हस्तमध्य के हस्तमें। क्योंके क्या, पाठ भेद हैं ॥

२३० साखी दोहा।

समुझाये समुझे नहीं, परहथ हाथ विकाय।

मैं खैंचत हौं आपको, वह चल यमपुर जाय ॥ २३० ॥

टीका—फिर जिज्ञासा हुई कि यदि विवेकादि बिना उपदेशसे भी आत्मज्ञान नहीं होता है तो विवेकादिके लियेही महात्मा लोग प्रथम क्यों नहीं उपदेश करते हैं ? तब साहेब कहते हैं कि अनादि दुरदृष्ट कुबासना दुराग्रहादि युक्त मनुष्य समझानेसे भी नहीं समझते हैं, किन्तु 'परहथ' होकर अर्थात् गुरुवाओंके अधीन होकर अन्यके हाथमें बिकाते हैं, अर्थात् कल्पित मत मृत्यु आदिके बशमें होतेहैं। या स्त्री पुत्र विषय मन आदिके हाथमें होकर कालादिके हाथ विकाते हैं। सोई कहते हैं कि 'मैं आपको खैंचताहूँ' यानी ज्ञानी महात्मा जीवको सत मार्गमें, तथा उसके आत्मस्वरूपके विवेक विचारादिमें लगाना चाहता हूँ, संसार दुःखादिसे खींच-कर सुखस्वरूप किया चाहता हूँ परन्तु वह हीन कर्म बासनावाला मनुष्य स्वयं यमपुरमें जाता है, अर्थात् अज्ञानी मनुष्योंके शरणमें जाताहै और कुमार्गादिमें प्राप्त होता है कि जिससे बारम्बार मृत्यु आदि जन्य दुःख भोगना पड़ता है इत्यादि, और विवेकादि नहीं होते हैं ॥ हाथ विकाय के आपु विकाय पाठ भेदहै। चला सयमपुर जाय। यह अन्तिम पादका पाठ भेद है यह जीव सत्यमार्गादि को समझानेपर भी नहीं समझता है, और समझने बिना मच्छा सदृश आप दूसरे अनात्मपति गुरुवा आदिके हाथमें विकता है, और मैं अपने आत्मा मोक्षमार्गके तरफ खैंचताहूं तौभी सो जीव यमपुर चला जाता है इत्यादि अर्थ हैं।

२३१ साखी दोहा।

नित खरसान लोहघुन छूटै। नित कि गुष्टि मायामोह टूटै ॥२३१॥

टीका-और भी साहेब कहते हैं कि बहुत पुरुष समझानेपर कुछ सत्यमार्गको समझभी लेते हैं. परन्तु निरन्तर विचार सत्सङ्गादि बिना ज्ञान रहित तथा माया मोहादि युक्तही रह जाते हैं, वह मन्द समझ भी कुसङ्गादिसे नष्ट होजाताहै, क्योंकि जैसे नितदिन खरसान करनेसे लोहाके घुन छूटता है। अर्थात् उसके स्वरूपको तथा तीक्ष्णताको नष्ट करने वाला जंग काई मल माँजते रहने से छूटे रहते हैं। और वह तरवारादिरूप लोह तीक्ष्ण शुद्ध बना रहता है। तैसेही नितकी गुष्टिसे अर्थात् सत्सङ्ग विचारादिसे माया मोहादिरूप मल बन्धन टूटते हैं। और पूर्ण अनुभव होनेसे जीव अत्यन्त मुक्त होजाता है। और सत्सङ्ग रूप गुष्टि बिना माया मोहकी बृद्धि होती है जिससे मन्द बोधभी नष्ट होजाता है। इससे श्रद्धा भक्ति पूर्वक सदा सत्सङ्ग विचारादि करना चाहिये जिससे कल्याण होवे इत्यादि।

२३२ साखी दोहा।

लोहा केरी नावरी, पाहन गरुआ भार।
शिरपर विषकी मोटरी, उतरन चाहै पार॥ २३२॥

टीका-और भी साहेब कहते हैं कि यह मनुष्य समझाने परभी नहीं समझते, तथा सत्सङ्गादि बिना ज्ञानरूप श्रेष्ठ नौका सतगुरु रूप कर्णधारादिको त्यागकर सकामकर्मोपासना शरीरादि रूप लोह खण्डके अनगढ़ 'नावरी' [नौका] बनाया है। इन्हेंही संसारसे पार दुःखरहित होनेके लिये साधन मानकर इनमें आसक्त है। और मनोरथ काम तृष्णा आदिरूप 'गरुआ' पाहनके भार उस नावरीपर लादा है अर्थात् उन कर्मादिकोंसे अनेकों फलोंकी प्राप्तिके लिये मनोरथादि करता है। और शिरपर विषयरूप विषकी मोटरी भी धरा है अर्थात् वर्तमान भोगोंके लिये अनेकों विषयों का सँग्रह कियाहै, और तौभी मोह बश संसारात्मक सागरसे पार उतरना चाहताहै, इससे संसारमें बूड़ता है तथा दुःखी होता है इत्यादि इससे इन्हें त्यागना चाहिये।

२३३ साखी दोहा।

कृष्ण समीपी पांडवा, गले हिमालै जाय।
लोहा को पारस मिले, काहे काई खाय॥ २३३॥

टीका—बहुत लोग समझते हैं कि आत्मविवेक विषयत्यागादिकी कोई जरूरत नहीं है, किन्तु रामकृष्णादि की भक्ति उपासनासेही जीव मुक्त होजाते हैं, कितने शरीरसहित बैकुण्ठ साकेतादिमें भक्ति आदिसेही चलेगये, और सब शोकादिसे रहित होगये इत्यादि उन लोगोंको समझानेके लिये साहेब कहतेहैं कि हे मनुष्यो! समझो कि श्रीकृष्णजीके दृढ़भक्त अत्यन्त समीपी युधिष्ठिरादि पांचोभाई पाण्डव और उनकी स्त्री द्रौपदी ये सब हिमालैमें जाकर गले थे, और

अनेकों कष्ट भोगेथे, तथा सदा शोकादिसे व्याप्त थे। और नरकमें प्राप्त होकर पुनरावृत्तिवाला माहेन्द्र स्वर्गमें प्राप्त हुवे थे, तो कहांकि यदि लोहाको सच्चा पारस मिल जावे तो उसे काई काहे और कैसे खासकती है? किन्तु नहीं खासकतीहै। तैसेही यदि उन्हें मोक्षका साधन मिल गया होता और वे मुक्त होते तो शोकादि युक्त नहीं होते और नरकमें भी नहीं जाते इत्यादि। अथवा समझाने पर भी नहीं समझनेसे तथा सदा गुष्टि नहीं करनेसेही कृष्णदेवके समीपी पाण्डव हिमालयमें जाकर गले। यदि लोहारूप उनको आत्मस्वरूप पारस मिला होता तो काई कलह कामादि काहे खाते? इत्यादि । मनोरथसे ही गलना हुवा। और किसी देवलोकादि की प्राप्ति वस्तुतः पारससे मेलरूप नहींहै, किन्तु ब्रह्मात्माके ज्ञानसे अविद्यादिके अत्यन्ताभाव पूर्वक सूक्ष्म समाजके ब्रह्मात्मामें लय होना पारससे परसरूप मुक्तिहै। उसके लिये कहीं गलने आदिकी जरूरत नहीं होती है इत्यादि भावहैं। या जो कोई ब्रह्मात्माके ज्ञानादि विनाही सत्संगादिसे भी व्यक्तस्वरूप राम कृष्णादिकी प्राप्तिकोही मुक्ति मानतेहैं, उनके प्रति कहतेहैं कि यदि कृष्णदेव सत्यपरमात्मा मोक्ष दाताहैं तो कृष्ण समीपी पाण्डवा हिमालयमें जाकर क्यों गले? सदेहमुक्त क्यों नहीं हुवे? वा शोकादि रहित क्यों नहीं हुवे? लोहाको पारस मिलनेपर काई कैसे खा सकतीहै ? इत्यादि, इनके शोकादिका भारतमें विस्तार से वर्णन है ॥

२३४ साखी दोहा।

पूर्व उगै पश्चिम विशवै, भक्षे पवन का फूल।
ताहु को राहु गरसिया, मानुष काहे भूल? ॥ २३४ ॥

टीका—जो लोग विचार सत्संगादिको त्यागकर लौकिक भोग बल प्रतापादिकी प्राप्तिसे ही वा प्राणनिरोधादिसेही कल्याण चिर जीवित्वादि चाहतेहैं, और उन्हें प्राप्त होनेपर गर्व करते हैं। उन लोगोंके प्रति कहतेहैं कि हे मानुष! अर्थात् हेमनुष्यो! जो सूर्य पूर्व उगता है, और पश्चिम विशवताहै, यानी संसारको तपाकर तथा प्रकाशकर जो पश्चिम प्रवेश करताहै (अस्त होता है) और पवन 'वायु' के फूलोंका भक्षण करता है, अर्थात् श्रेष्ठवायुसे भ्रमता और प्रकाशताहै। उस सूर्यको भी राहु ग्रासताहै यानी उसमें भी ग्रहण लगता है, वा कालरूप राहु उसको भी एकरोज नष्ट करदेताहै। तब तुम क्यों भूलेहो, क्यों नश्वर भोग बल प्रतापादि चाहतेहो, और क्यों इनके गर्वादि करतेहो, ये तुझे थोड़ेदिन रहने वाले हैं और अत्यन्त तुच्छहैं। इससे भूलको त्यागो तथा सत्सङ्ग विचारादि करो जिससे कल्याण होवे इत्यादि। अथवा जिन मनोरथ विषयवासना आदिसे पाण्डव हिमालयमें जाकर गले। उनका कुछभी अवशेष रहनेपर वे जीवोंको पीड़ित करते हैं। जैसे शिरमात्र भी अवशेषराहु पूर्व उगने आदि वाला सूर्यको भी ग्रसताहै। इसलिये निरवशेष भी मनोरथ विषयवासना आदिको त्यागना चाहिये इत्यादि। पौराणिक रीतिसे ग्रासका वर्णन है।

और ज्योतिष ग्रन्थमें लिखा है कि [छादको भास्करस्येन्दुरधस्थोघनवद्भवेत् । भूछायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्यभवेदसौ ॥ पश्चाद्भागाज्जलदवदधःसंस्थितोऽभ्येत्यचन्द्रो भानोर्बिम्बंस्फुरदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या। पश्चात्स्पर्शोहरिदिशिततोमुक्तिरस्यातएव । क्वापिछन्नः क्वचिदपिततोंनैषकक्षान्तरत्वात्] मेघकी नाई चन्द्रमा नीचेसे आकर सूर्यको ढांपताहै, तब सूर्यग्रहण होताहै । आगे चलता हुवा चन्द्रमा पृथिवीकी छायामें पैठता है तब चन्द्रगहण होता है । नीचे रहनेवाला चन्द्रमा अपनी असितमूर्तिसे पश्चाद् भागसे आकर दिप्त सूर्यबिम्बको ढाँपता है इसीसे पश्चात्स्पर्श होता है और पूर्वमोक्ष होता है । और कक्षान्तर होनेसे कहीं ढँपा रहता है कहीं नहीं ढँपा रहता है । और चन्द्रमामें पूर्वस्पर्श होता है पश्चात् मोक्ष होता है इत्यादि ।

२३५ साखी दोहा ।

नयनक आगे मन बसे, पलक पलक करदौर ।
तीनि लोक मन भूपहै, मन पूजा सब ठौर ॥ २३५ ॥

टीका—मनुष्य कैसे क्या भूले हैं ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि विवेक विचारादि बिना इन मनुष्योंके मन ' नयनके ' अग्रभागमें जाग्रतमें सदा बसता है, और वह पलक २ (पल २) में दौड़करता है, यानी विषयोंपर दौड़ताहै । उसकी इच्छा लोभादि करताहै । अथवा पल २ में संकल्प विकल्प अभिमानादिका विस्तार करताहै । और उस मनके निरोधके लिये मनुष्यादि यत्न नहीं करतेहैं । इससे तीनों लोकके तथा तीनों लोकमें मन ही भूप [राजा] है । और उस मनकीही सबठौर में पूजा होरही है । अर्थात् विवेक विचारादि बिना मन स्वतन्त्र होकर सर्वत्र विचरताहै । और कल्पना मनोरथादि किया करता है । और जीवोंको भी अनेकों दुःखद मार्गादिमें घसीटे फिरता है। और विवेकादि रहित जीव शुभ अशुभादि समझे बिना मनमाने कर्मादि करते हैं। और मनसंकल्पित अनात्मवस्तुकी पूजा करते हैं। और मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये बराबर यत्न करते रहते हैं । और आत्मविचार सत्सङ्गादि नहीं करते हैं सोई मनुष्यादि भूलकरते हैं इत्यादि ।

२३६ साखी दोहा ।

मन स्वारथी आपरस, विषय लहर फहराय ।
मनक चलाये तन चले, ताते सर्वस जाय ॥ २३६ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि जिस मनकी सब कोई पूजा करते हैं । सो मन स्वार्थी है । और अपना विषयरस चाहता है अर्थात् सत्य असत्य पुण्य पाप सुख दुःखादिका तथा जीवके

कल्याणका विचार नहीं करके, केवल विषयके संग्रहादि तथा भोग चाहता है, इससे अनित्य पापादिको भी स्वार्थ बश नित्य शुभादि बतलाता है। और विषयकी 'लहर' यानी भोग उत्कट इच्छादिसे वह मन फहराताहै। (उमगताहै) अथवा विषयोंकी लहर यानी ज्वाला वा तरङ्ग में उछलता कूदता है। और जो जीव उस मनको वशमें नहीं किये हैं सो उसके बेगको नहीं रोकसकते हैं। उनके तनभी 'मनके चलाये' यानी उसकी प्रेरणासे चलता है। या मनसे प्रेरित स्थूलशरीर कुकर्म हिंसा चोरी व्यभिचारादिमें प्रवृत्त होजाता है 'ताते' यानी उस तनमनको चलनेसे भले बुरे कर्मादि करनेसे इन अविवेकी जीवोंका सब सर्वस्व गये और जा रहे हैं। अर्थात् मनुष्यत्व ज्ञान मोक्षादि सब नष्ट और दुर्लभ होरहे हैं ये भूलकेही फल हैं।

२३७ साखी दोहा।

मन गया तो जानेदे, गहि के राखु शरीर।
उतरा रोद कमान का, क्यों कर लागे तीर॥ २३७॥

टीका—जिससे विवेक विचारादि बिना तनमनकी प्रवृत्तिसे सर्वस्व नष्ट होताहै, और अनर्थ की प्राप्ति होतीहै। इसलिये साहेब उपदेश देतेहैं कि हे मनुष्यो! विचारादि बिना स्वभाविक चञ्चलतासे यदि मन किसी अनात्मविषय कुमार्गमें गयाहो तो उसे जानेदो, परन्तु विचारादि से शरीरको गहकर रखो मनके साथ शरीरको नहीं जानेदो, किन्तु शरीरको शुभमार्गमें प्रवृत्त करो, इसप्रकार अभ्यास करनेसे मन बशमें होजावेगा। और केवल मनको कुमार्गादिमें जानेसे तुझे पापादि भी नहीं होंगे। क्योंकि कमानका (धनुषवंशका) रोद (रोदा) उतरा होवे तो तीर कैसे लग सकती है? अर्थात् नहीं लगसकती है। इसीप्रकार रोदारूप शरीरके विना केवल मन पापादि क्रिया नहीं करसकताहै। इसलिये मनके जानेपरभी शरीरको अवश्य रोको जिससे सर्वस्व नहीं जावे इत्यादि। या मन गया हो तो जानेदो, परन्तु शरीरको रोककर राखो, इस अभ्याससे जब मन बशमें होजावेगा तब शरीरभी स्वयं कुमार्गमें नहीं प्रवृत्त होगा क्योंकि मनरूप तांतके उतरनेपर शरीरको छोड़कर आत्मविचारादि निष्ठ होनेपर रागादि पूर्बक प्रवृत्ति रूप तीर कैसे लग सकती है? मन विना शरीर मृतकसदृश रागादि बिना केवल शरीरयात्रा के लिये प्रारब्धवश भ्रमताहै इत्यादि।

२३८ साखी दोहा।

काशी गति संसार की, ज्यों गाड़र की गाड़।
एकपरा जिहि गाड़में, सबे परे वहि गाड़॥ २३८॥

टीका—जिज्ञासाहुई कि आपने शरीर इन्द्रिय मनको रोककर सत्सङ्ग विचारादि पूर्वक बड़ी कठिनाईसे मुक्ति कही है। और बहुत लोग काशीमें वा काशीकरवटादिमें मरनेहींसे मुक्ति मानते हैं और वहां जाकर मरते हैं सो क्यों? तब साहेब कहते हैं कि संसारकी यानी संसारी अज्ञानी मनुष्योंकी जो काशीमें गति होती है, सो वैसी ही होती है कि ज्यों [जैसी] 'गाड़र' यानी भेंडियोंकी गाड़में [गड़हे कूपादिमें] गति होती है सो लोकप्रसिद्धहै। तैसीही काशीमें संसारकी गति है। क्योंकि एक गाड़र जिस गाड़में पड़ताहै उसी गाड़में उसके साथी सब गाड़र पर जाते हैं। तैसे ही किसी स्थानको मोक्षस्थान मानकर जहां एकमरा तहां जाकर सब मरते हैं, और मोक्ष मानते हैं, परन्तु विवेक विज्ञानादि बिना कहीं भी मुक्ति नहीं होती है। भाव यह है कि विवेक-शीलादि महात्माओंको काशीमें बसने कालमें बिबेक विज्ञानादिसेही वहां मुक्तिलाभ करनेसे किसीने काशीकी वा अन्य स्थानोंकी स्तुतिकी फिर लोगोंने वहां मरनेमात्रसे मुक्ति मान बैठे। श्रुतिमें भी नासिकाको वाराणसी पापनाशक कहाहै उसकाभी यहभाव नहीं है कि जिसको नाक होवे वा जो नाकको देख लेवे उसके पाप नष्ट होजाते हैं और वह मुक्त होजाता है, किन्तु नासिकास्थान में धारणा आदिपूर्वक ज्ञान-लाभसेही मुक्ति होतीहै। और पाप नष्ट होतेहैं। तथा काशीमें मुक्ति कहनेकाभी ऐसाही भाव होसकता है। परन्तु जन्मभर कुछ करो काशीमें मरनेसमय कानमें तारक-मन्त्र का उपदेश देकर शिवजी मुक्त करते हैं इत्यादि, कवियोंके कथनमें विश्वास करके विपरीत ज्ञान युक्त मनुष्य गाड़में गिरकर मरते हैं और मोक्ष मानते हैं इत्यादि। काशीके कैसी ऐसी ये पाठ भेद हैं, तब अर्थ है कि विचारादि पूर्वक मनको तथा शरीरको रोके बिना संसारकी कैसी वा ऐसी गति है जैसी गाड़रकी गाड़में होती है। क्योंकि एक अज्ञानी जिस असत्मार्ग कल्पितवस्तु आदिमें पड़ता है उसी प्रकार सब उसीमें प्राप्त होते हैं इत्यादि।

२३६ साखी दोहा

मारग तो अति कठिन है, तहाँ कोइ मति जाय।
गया सोइ बहुरा नहीं, कुशल कहै को आय ॥ २३६ ॥

टीका—(जियत न तरहु मुवेका तरिहो) इत्यादि वर्णित रीतिसे औरभी साहेब उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! तुम कहतेहो कि विवेक विचारादिरूप मार्ग कठिनहै, परन्तु प्रत्यक्ष आनन्दका हेतु होनेसे यह मार्ग वस्तुतः कठिन नहीं है। किन्तु काशी आदिमें मरना मोक्षके लिये लोकान्तरमें जाना आदिरूपही मार्ग अति कठिनहै। क्योंकि वर्तमान कालमें भी विवेक विरागादि बिना काम शोकादिसे पीड़ित होना होताहै। और मरनेपरभी जन्मादि कष्ट सहना पड़ताहै। इसलिये हेसज्जनो! तुम उस मार्गमें नहीं जावो,औरभी कोई मनुष्य उस मार्गमें नहीं जावे,ऐसा यत्न उपदेश

करो। यदि कोई कहेकि काशी आदिमें मरनेसे तथा साकेत वैकुण्ठ शिवलोक चतुर्थ सप्तम असमानादिमें जानेसे स्वयं काम शोकादि नष्ट होजातेहैं, इसीसे जन्मादि नहीं होतेहैं तथा वह मार्ग कठिन भी नहीं है। तब साहेब कहते हैं कि जो कोई मरकर गया सोई बहुरा नहीं, तो वहांके कुशल कौन आकर कहे जिससे निश्चय किया जावे कि वहां कामादि नष्ट होजाते हैं, अर्थात् मरनेपरभी कर्मोपासना वासनाके अनुसार गति होती है यह श्रुति युक्ति अनुभवसे सिद्ध है। और मरनेसे वा कहीं जानेसे मोक्ष में कोई सत्य प्रबल-प्रमाण नहीं है। तुझे कोई आकर नहीं कहाहै कि अमुकस्थानमें मरनेसे वा अमुक लोकमें जानेसे मैं कामादि रहित मुक्त होगया हूँ। और जीवन्मुक्त ज्ञानी प्रारब्धवश शरीरधारी होकर प्रत्यक्षही कामादिके अभावका वर्णन करतेहैं, और व्यवहारादिसे काम शोकादि रहित प्रतीत होतेहैं । और यदि उन लोकोंसे खबर कहनेके लिये किसीको बहुरना मानो सो कामादि बिना हो नहीं सकता । इससे कहीं मरनेसे वा कहीं जानेसे मुक्ति मानना आदिरूप मार्ग अति—कठिन दुःखद है । उन मार्गोंमें कोई नहीं जावो, किन्तु सत्सङ्ग आत्मविचारादि करो जिससे कल्याण होवे इत्यादि ॥

२४० साखी दोहा

मारे मरै कुसङ्ग के, ज्यों केला सँग बेर ।
ये हालै वै चीरवै, बिधिना सङ्ग निबेर ॥ २४० ॥

टीका—औरभी मुमुक्षुओंके प्रति उपदेश देते हैं कि बहुत जिज्ञासु आदि सज्जन भी काशी आदिमें मरनेके लिये उपदेश देनेवाले लोकान्तरादिके विषयोंको चाहनेवाले विषयी वा पामर पुरुषों के सङ्गरूप कुसङ्गके मारे यानी कुसङ्ग करके मरते हैं वा जन्म मरण शोक मोहादिको प्राप्त होते हैं। ज्यों [जैसे] कांटोंसे युक्त कुत्सित बृक्षरूप बैरके सङ्ग करके केला मरता है । क्योंकि वायुसे ये (यहकेला) 'हालै' [हिलाता है] और वै [वह बैर] कांटोंसे इसे 'चीरबै' यानी फाड़ता है, जिससे उस केलाका नाश होता है। तैसेही जिज्ञासु भी मोक्षकी इच्छा आदिसे कुसङ्गमें रहकर यदि काम—युक्त अज्ञानियोंसे कल्याणके लिये कुछ पूछतेहैं वा केवल सङ्गही करतेहैं, तो वे लोग अनेकों दुःखद कामकर्म उपासना आदिमें वा मरणरूप आत्मघातके हेतु कर्मोंमें प्रवृत्त कराते हैं। जिससे जिज्ञासु पुरुष भी चिरकालतक कष्ट भोगतेहैं। औ मोक्षसुखसे बञ्चित रहतेहैं । इससे हे सज्जनो ! 'बिधिना' यानी युक्त उपायसे कुसङ्गको निबेर करो यानी त्यागो, और ज्ञानी सज्जन दयालु महात्माओंका सङ्ग करो जिससे कल्याण होवे इत्यादि । या जिज्ञासा हुई कि यदि वह मार्ग कठिन है तो मनुष्य उस मार्गमें जाकर क्यों मरते हैं ? तब साहेब कहते हैं कि कुसङ्गके मारे यानी कुसङ्गसे मारे जानेसे जीव मरते हैं इत्यादि ।

२४१ साखी दोहा ।

केला तबहिं न चेतिया, जब ढिग लागा बेर ।
अब के चेते क्या भया, कांटन लीन्हों घेर ? ॥ २४१ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि इस मनुष्ययोनिमें शरीरका लाभ करके शीघ्रही कुसङ्गादिको त्यागो, और आगेकी आशा वा आलस्यादि नहीं करो, क्योंकि यदि केलाके जब ढिग [पासमें] बेर लगा तभी वह नहीं चेता यानी अपनी छायासे बेरको नहीं दबाया, तो जब कांटोंसे बेर उसे घेर लिया तो अबके [घेरने परके] चेतनसे क्या हुवा और क्या होसकता है ? । तैसेही बाल युवा अवस्थामें मानव शरीरमें यदि विचारादिसे कुमार्ग कुसङ्गादिका नहीं त्याग हुवा, तो वृद्धावस्था जन्मान्तरमें कैसे त्यागे जासकते हैं ? उस समय कष्टरूप फलकी प्राप्ति होनेपर 'अबके चेते, यानी उसकी निवृत्तिके लिये इच्छा करनेसे न कुछ हुवा न होताहै, इससे प्रथमही चेतकर कुसङ्गादिको त्यागो । अथवा कुसङ्गादिसे पीड़ित मनुष्योंके प्रति कहते हैं कि हे केला सदृश कोमल-स्वभाववाले मनुष्यो ! तुम तभी नहीं चेत किया जबकि गुरुवा आदिरूप बेर पासमें लगे थे, तो अब असत उपदेश मोहादिरूप कांटे जब तुझे घेर लिये हैं तो पश्चात्तापादि करनेसे क्या होसकता है ? इत्यादि । या कुसङ्गसे मरनेपर फिर चेतनेसे जीवोंको कल्याण होता है वा नहीं ऐसी जिज्ञासा होने पर साहेब कहे हैं कि केला इत्यादि ।

२४२ साखी दोहा ।

जीव मरण जानै नहीं, अन्ध भया सब जाय ।
बादी द्वारे दाद नहिं, जन्म जन्म पछताय ॥ २४२ ॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो ! इसलिये भी तुम कुसङ्गका शीघ्र त्याग करो कि कुसङ्गमें रहनेवाले जीव मरणको नहीं जानते हैं अर्थात् अवश्य मरना होगा इस बातको भूलकर परप्राणीको पीड़ित करते हैं । तथा अन्याय कुकर्मादि करते हैं । अथवा पुनर्मरण रहित मरणरूप मोक्षके मर्मको जीव कुसङ्गमें नहीं जानते हैं, इससे अन्धा होकर सब संसार-चक्रमें जाते हैं । और जहां तहां भटककर मरते हैं तथा कालके वशमें होते हैं । और कुसङ्गके त्यागे बिना अनेकों असत मतबादियों द्वारा ' दाद नहीं पाते हैं ' यानी न्यायमार्ग वा कल्याणस्वरूप मूल वस्तुको नहीं पाते हैं न जानते हैं, इससे बारमबार जन्मलेकर सब जन्मोंमें पछतातेहैं । इसलिये सब अनर्थके मूलरूप कुसङ्गको शीघ्र त्यागो और सत्सङ्ग करो इत्यादि । (जीवहिं मरणन

जानये, अन्ध भया सब जाय। द्वारे दाद न पावये, जन्म जन्म पछताय।) इस पाठ भेदका अर्थ है कि हे मनुष्यो ! जीवको मरण नहीं जानता है, अर्थात् जीवकी प्रतीक्षा नहीं करता है कि जीव आनन्दभोग वा कल्याण करलेगा तब मैं प्राप्त होऊंगा, इससे अचानकमें हीं सब अन्ध होकर मृत्युके बशमें जाते हैं, और किसी गुरुवा आदि द्वारा दाद नहीं पाते हैं, इससे जन्म २ में पश्चाताप करते हैं। इसलिये शीघ्र गुरुवा आदिके सङ्गको त्यागो । अथवा जो जीव मरणको नहीं जानते हैं वा जिन्हें मरण नहीं जानता है, सो सब जीव अन्धा होकर संसारात्मक कोटमें और चौरासीलाख योनियोंके अन्दर भटकते हैं। और मानव शरीररूप द्वारपर भी आजाते हैं जिस द्वारा इस संसाररूप दु:खद कोटसे बाहर होसकते थे, परन्तु कुसङ्ग विषय बासनारूप 'दाद' रोग बश इस द्वारको बादी लोग नहीं समझते हैं, और द्वारेहीपर दादकी अधिकतासे कुसङ्ग विषयी आदि इसद्वारसे नहीं निकलने पाते हैं, इससे जन्म २ में पछताते हैं। भाव यहहै कि जैसे कोई अन्धा दादरोग युक्त होवे। और किसी कोटके अन्दर होवे। और उस कोटसे निकलनेके लिये दिवाल पकरकर धूमता होवे कि जहां द्वार पाऊंगा, वहाँ निकलूंगा, परन्तु द्वारके पास जानेपर दादमें अत्यन्तखाज दुरदृष्ट बश होनेसे उसे खजुआता हुवा दिवालको छोड़कर वह चलता रह जावे। और दरवाजाको लांघ जानेपर फिर बारम्बार इसीप्रकार भटके। सोई हाल सब जीवोंका है। इससे उक्त दादसे रहित होनेके लिये शीघ्र यत्न करो इत्यादि।

[क्षेपक] साखी दोहा।

जाको सतगुरु नहिं मिला, व्याकुल दहुं दिशि धाव।
आँखि न सूझै बावरा, घरजरं घूर बुताव ॥ ७ ॥
वस्तु अनत खोजे अनत, कैसे आवै हाथ ?।
ज्ञानी सोइ सराहिये, पारख राखै साथ ॥ ८ ॥

छ० अवतार।

सुनिये सबकी बारता, निबेरिये अपना।
सिन्धोरे का सिन्धोरा, झपने का झपना ॥ ९ ॥

दोहा।

बाजन दे बाजन्तरी, कलि कुकुरी मति छेंर।
तुझे बिरानी क्या परी, तूं आपनी निबेर ॥१०॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो ! जाको नाम जिन कुसङ्गमें रहने वाले मनुष्योंको 'सतगुरु नहिं मिले हैं, वे लोग बादियोंके बाद सुनकरके व्याकुल होकर दशो दिशाओंमें दौड़ते हैं। और विवेक विज्ञान बिना उन्हें बुद्धिरूप आँखसे वा बाह्य आँखसे यथार्थ वस्तु नहीं सूझती है, इससे अपना अन्तःकरणरूप घर अनेकों शोक संतापादिसे जर रहाहै। उस को शान्त करनेके लिये अज्ञानकी निवृत्ति द्वारा शोकादिकी निवृत्तिके लिये यत्न नहीं करते हैं। और घूर सदृश शरीर इन्द्रियको बूताते हैं, अर्थात् विषय भोगादिसे तृप्त किया चाहते हैं। अथवा सद्गुरु जिन्हें नहीं मिले हैं वे लोग दशो दिशामें व्याकुल होकर दौड़ते हैं, और उन्हें आँखसे नहीं सूझता है। इससे सबके अधिष्ठानरूप चेतनात्मा घर जरता है नाम अविद्यासे उसमें दुःखाग्नि भासतीहै। और अन्य देवादिरूप घूरको बुताते हैं अर्थात् उन्हें प्रसन्न किया चाहते हैं। या अपने मन शरीरादिरूप घर तापोंसे जरते हैं, और स्त्री, पुत्र, गृह, वित्तादिरूप घूरको बुताते हैं नाम इन्हें स्थिर सुखी किया चाहते हैं कि मैं इनसे स्थिर सुखी होऊंगा इत्यादि ॥७॥ और सुख प्रकाश स्वरूप आत्मा 'अनत' यानी अन्यत्र है अर्थात् अपने अन्तःकरणमेंहीं प्रगट है, परन्तु सतगुरुसे मिले बिना जीव अन्यत्र सुखादि खोजते हैं, यानी दशोदिशा लोक विषयादिमें जीव सब सत्यसुखादि खोजते हैं, तो वह सत्यवस्तु कैसे हाथ आसकती है ? अर्थात् कैसे प्राप्त होसकती है, किन्तु नहीं प्राप्त होसकती है। परन्तु सोई पुरुष ज्ञानी हैं और सराहने योग्य प्रशंसनीय हैं कि जो अन्यत्र सत्य सुखादि वस्तुको नहीं खोजते हैं, किन्तु अपने साथमें पारख रखते हैं यानी सत्य असत्यादिके विवेक आत्मानुभव जो रखते हैं सोई सराहने योग्य हैं ॥ ८ ॥ इसलिये हेसज्जनो ! सबकी बातोंको सुनो, परन्तु अपना निबेरा यानी विवेक अवश्य करो। और विवेकादि पूर्वक अपना यथार्थ निश्चय करो,क्योंकि अपना निबेरा करनाहीं 'सिन्धोरेका' यानी तुच्छ संसारात्मक सिन्धुका अर्थात् समुद्रका भी समुद्र है,यानी नदियाँ जैसे समुद्रमें लीन होती हैं, तैसे संसाररूप समुद्र जिन निरुआर में लीन होताहै। या स्त्रीयाँ जिसमें सेन्दुर रखतीहैं, उसे सिन्धोरा कहतेहैं। संसार सब रङ्गोंके आश्रय सिन्धोरा तुल्यहै, उस सिन्धोरेका भी सिन्धोरा तुल्य जो अपना स्वरूप सबका अधिष्ठानहै उसका निरुआर करो और वह अपना निरुआर वा स्वरूप कैसाहै कि 'झँपनी' यानी सबको झाँपनेवाली जो अविद्या तथा माया उसे झाँपनेवाला यानी नष्ट करनेवाला और व्याप्त तथा आच्छादित करनेवाला है । इसलिये अपना निबेरा करो इत्यादि ॥ ९ ॥ और सबकी बात सुननेपर भी जो कोई अविवेकी 'बाजन्तरी'यानी शरीरधारी वक्ता पुरुष बाजते हैं, (बोलते हैं) बाजेके सदृश निरर्थक शब्द करते हैं, वा किसीसे बकवाद करते हैं, तो उन्हें बाजने दो उनके साथ बकबाद नहीं करो वे अविवेकी कलिके कुकुरी हैं। उन्हे 'मतछेंड़ो' और तुझे बिरानी यानी अनात्म वस्तुविषयक बर्तासे क्या परी है ? कौन सिद्धि होनी है ? तुम अपनी बानकी निबेरा करो तथा अपनी अविद्याको नष्टकरो इत्यादि ॥ १० ॥ तुं अपनी आप निबेर, यह पाठ भेद है ।

२४३ साखी छं० सार ।

गावै पढ़ै विचारै नाहीं, अनजाने का दोहा ।
कहहिं कबिर पारस परशे बिनु, पाहन भीतर लोहा ॥ २४३ ॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि जो पुरुष सतगुरुसे मिले बिना अनेकों ग्रन्थ वाणी नामादिको गानेहैं और पढ़तेहैं, परन्तु कुसङ्गका त्यागपूर्वक उन ग्रन्थादिकोंके तात्पर्यको तथा सत्यात्माको नहीं विचारतेहैं। उस अनजानेका अवश्य 'दोहा' [दोहरा] अर्थात् स्थूल सूक्ष्मके संघात बारमबार होताहै। और सो दोहा अनजानेका होताहै, यानी अज्ञानका फलरूप होताहै। या जन्म मरण रूप 'दोनों हा' यानी कष्ट अनजानेको होतेहैं। अथवा विचारे बिना गाना पढ़ना दोनों भी खेदजनक हानि कारक वा व्यर्थही होतेहैं। जिज्ञासा हुई कि सतशास्त्रके पढ़ने आदिसे ज्ञान तथा मोक्ष सुना जाताहै, फिर पढ़ना आदिको व्यर्थ कैसे कहा गयाहै ?, और पढ़ने आदि परभी कैसे जन्मादि होतेहैं ?, तब साहेब कहते हैं कि जैसे पारससे परशे बिना [स्पर्श होने बिना] पाहन के भीतर लोहा लोहही रह जाताहै, पारसको प्राप्त होनेपर भी सुवर्ण नहीं होताहै। अर्थात् पत्थर से लोहाको जुदाकर लेनेपर उसको वस्तुतः पारससे स्पर्श होताहै, इससे सुवर्ण होजाताहै अन्यथा नहीं होताहै। तैसेही कुसङ्गका त्यागपूर्वक विवेकयुक्त होकर विचारे बिना तथा सत्सङ्गादि करे बिना पुरुषको गुरुरूप पारससे, तथा सत्य चिदानन्दरूप पारसके साथ गाने पढ़ने आदिसे भी नहीं स्पर्श होताहै, इससे अज्ञानी संसारी बना रहताहै। और कुसङ्गादिको त्यागकर विचारादि करनेसे उक्त पारसके साथ स्पर्शसे वह पुरुष पारसही होजाताहै। सो कहेहैं कि [पारससे पारस भया] इत्यादि, इसलिये कुसङ्गादिका त्यागपूर्वक विचार सत्सङ्गादि करो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि। पढ़ैके कथै पाठ भेद है उसका उपदेश देना व्याख्यान करना आदि अर्थ है, का के स्थानमें, को पाठहै तब अर्थ स्पष्टहै ॥

२४४ साखी दोहा ।

मरणे मरणे सब कहै, मरण न जानै कोय ।
ऐसा होय के न मुआ, बहुरि न मरण होय ॥ २४४ ॥

टीका—औरभी कहतेहैं कि त्रिवेक विचारादि रहित भी सब मनुष्य मरतेहैं, और मरणे २ कहतेहैं कि अमुक मरे अमुक मरे इत्यादि, परन्तु वास्तविक मरणको विवेकादि बिना कोई नहीं जानते हैं। अर्थात् पुन जन्म रहित मरणके मर्म कोई नहीं जानतेहैं। इससे कोई कुसङ्गी विचार रहित मनुष्य ऐसा होकर नहीं मुआ कि जिससे फिर नहीं मरना होवे। इसलिये हे सज्जनो ! कुसङ्गको अर्थात् कुत्सित शरीर विषय पुरुषादिके सङ्गको त्यागकर विचारादि युक्त होकर मरो कि जिससे

फिर नहीं मरना होवे । अथवा मरने २ सब कोई कहतेहैं, परन्तु मरणजन्य दुख: मरणके स्वरूपको कोई नहीं जानतेहैं, अर्थात् पूर्वके मरणोंको भूलगयेहैं । और भावी मरणका अनुभव मरणकालमें नहीं होताहै, और युक्तिसे जाननेपर भी मनुष्य उसको याद नहीं रखतेहैं, इससे ऐसा होकर नहीं मरतेहैं कि जिससे फिर नहीं मरना होवे इत्यादि ।

२४५ साखी दोहा ।

मरते मरते जग मुआ, बहुरि न किया विचार ।
एक सयानप आपनी, परबश मुआ संसार ॥ २४५ ॥

टीका—और हेसज्जनो ! यह 'जग [मरते मरते मुआ' यानी विषय कुसङ्गादि बश कष्ट भोग २ कर मुआ । या अनेकों योनियोंमें प्राप्त होकर मरते मरते मनुष्य होकर भी अन्य प्राणियोंके सदृशही मरा । और विषय कुसङ्गादिसे बहुरि [लौटकर] कुसङ्गादिको त्यागकर आत्मबिचारादि नहीं किया । और जो विचारादिकही एक अपनी सयानप हैं, यानी मनुष्यमें श्रेष्ठ चतुराईरूप हैं । अथवा जो बिचारादि एक आत्मवस्तुके सयानपरूप हैं, उन विचारादिकोंको नहीं करनेसे यह संसार ज्ञान बिना परबश होकर मुआ और मरताहै । अर्थात् विचारादि बिना अविद्या माया गुरुवा इन्द्रिय विषयादिके बशमें होकर बारमबार मरताहै । इसलिये विचारादि करो जिससे फिर परबश होकर नहीं मरना होवे इत्यादि । अथवा यह जग कुसङ्गादिमें ही मरते २ मुआ, और कुसङ्गादिसे बहुरकर विचार नहीं किया नाम कुसङ्गका त्यागपूर्वक गुरुशरणमें जाकर बिचार नहीं किया, इससे केवल एक आपनी लौकिक सयानपसे संसार परबश नाम ईश्वरके बशमें होकर मुआ इत्यादि ।

२४६ साखी दोहा ।

कबिरन भक्ति बिगारिया, कंकर पत्थर धोय ।
अन्दर में विष डारिके, अमरित डारिन खोय ॥ २४६ ॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि हेसद्गुरो ! अब खर्वादिरूप द्रव्योंको तथा राज्यादिको त्यागकर आत्मतत्त्वके अनुसंधानादिरूप भक्तिको और कुसङ्गादिका त्यागपूर्वक विचारादिको आप मोक्षका हेतु कहतेहैं । और बहुत लोग मूर्तिपूजाको शालग्रामादि जिसमें धोये गये होवें, उस जलके पानादिको मोक्षका हेतु तथा भक्तिस्वरूप कहतेहैं । सो क्यों कहते हैं ? और वे लोग आपसे वर्णित भक्ति क्यों नहीं करतेहैं ? इत्यादि, तब साहेब कहतेहैं कि हेसज्जनो ! कबिरन यानी कवियों ने वा जीवोंने कंकड़ पत्थरको धोयकर, वास्तविक भक्तिको बिगार दियाहै, यानी पत्थरादि-को धोने आदिकी विधि अनुष्ठान उपदेशादिसे वास्तविक अनादि भक्ति मार्गको लुप्त सदृश कर

दियाहै । और मिथ्या भक्तिको प्रगट कियाहै । और इन लोगोंने अपने अन्दरमें (अन्तःकरण में) विषयादिरूप विषको राखिके अर्थात् विषय लोकादिकी वासनाओंको हृदयमें धारण करके मोक्षरूप अमृतको खोडारा या भक्तिरूप अमृतके अन्दर कंकड़ पत्थररूप विषय विषको डारकर नाम मिलाकर अमृत स्वरूप भक्तिको खोडारा नाम नष्टकर दिया। इससे बहुतसे लोग वास्तविक भक्ति नहीं करतेहैं। किन्तु कोई बिरले गुरुशरणागत विवेकी वास्तविक भक्ति करतेहैं इत्यादि। इससे सिद्ध होताहै कि मूर्तिपूजा आदि रहित ही सनातनभक्ति धर्म और मोक्षके मार्गहै। बीचमें कबिरोंने मूर्तिपूजा आदि चलायाहै। जैसे थोड़ेदिनोंसे पुस्तकपूजा आदि चलीहै। और मूल ज्ञानोपासना मार्गभी एक एकही है। एकही वस्तु सोपाधिक निरुपाधिक दोरूपसे ही उपासना तथा ज्ञानके विषयस्वरूप प्रथम आरम्भसे है, सोई मार्ग अभी भी सत्यहै। और ज्ञानी गुरुसे प्राप्तकरने योग्य सब वेद सतशास्त्रके सिद्धान्तरूप है इत्यादि। और उनसे भिन्न सब बीच के कल्पितहैं विषयोंमें फंसानेवाले और दुःखदहैं। इससे कल्याणार्थीसे हेयहैं। सो आगेकी साखीसे प्रगट होगा इत्यादि। राखिके स्थानमें डारिके यह पाठ भेद है।

२४७ साखी छ० सार।

रही एक की भइ अनेक की, बेश्या बहुत भतारी।
कहहिं कबिर काके सङ्ग जरिहैं, बहुत पुरुष की नारी ॥२४७॥

टीका—और हे सज्जनो! भक्तिके बिगाड़नेसे ही कैसा हाल हुआहै कि जैसे कोई एककी स्त्री रही सो बहुत भर्तारवाली बेश्या होनेसे अनेककी स्त्री होगई। तो वह बहुत पुरुषकी नारी बेश्या किसके साथ जर सकतीहै? अर्थात् उसको किसीके साथभी स्थिर प्रेम नहीं होताहै, किन्तु मिथ्या प्रेम होनेसे वह किसीके साथ नहीं जरतीहै। तैसेही सब मनुष्य वा जीव एक निरतिशय आनन्द-स्वरूप ब्रह्मात्माके हैं। अर्थात् निरुपाधिक प्रेमका विषय आत्माकी सत्तासेही साभास अन्तःकरण रूप जीव सब व्यवहारादि करतेहैं। उस एक अखण्ड पूर्वकालसे विद्यमानपतिको रहतेभी जीव सब अनेकों विषय देवता आदिके तथा मूर्ति आदिरूप अनेकों मायिक पदार्थोंके स्त्री तुल्य हुवे हैं। एक ब्रह्मात्माके पूजा ध्यानादि नहीं करके कल्पित अनात्म वस्तुओंके ही पूजा ध्यानादि करतेहैं। तहां साहेब कहते हैं कि ये जीव किसके साथ स्थिर होवेंगे, अथवा किसमें लीन होवेंगे? अर्थात् किसीके साथ नहीं स्थिर होवेंगे न किसीमें लीन होवेंगे, किन्तु संसारचक्रमें भ्रमते रहेंगे। क्योंकि जिन पदार्थोंको ये लोग पति सुखदादि मानेहैं, उन पदार्थादिकोंके ही नाशादि होतेहैं। तो उन्हें प्राप्त होनेवाले जीवोंकी तो कथाही क्या है? इत्यादि। या जीव सब एकके रहे और एकस्वरूप गुरुको छोड़कर अनेक गुरुआओंके हुवे इत्यादि। इससे हे सज्जनो! अनेकको त्यागकर एक आत्म-वस्तुको जानो और भजो जिससे स्थिरताका लाभ होवे।

२४८ साखी दोहा।

तन वोहित मन कागहै, लख योजन उड़ि जाय।
कबहुं भ्रमे अगम दरिया, कबहुंक गगन समाय॥ २४८॥

टीका—पूर्वसाखीमें वर्णित अज्ञानियोंकी स्थिरताके अभावका ही वर्णन करतेहैं कि यह तन [शरीर] संसारात्मक समुन्द्रमें वोहित (जहाज) है और इसपर 'मन' रूप काग बैठाहै। सो विचारादि रहित मनरूप काग सुनेहुवे स्वर्ग विषयादिमें 'लाखों' योजन' बासनाद्वारा उड़कर जाताहै। और जहां जाताहै तहँा मरणादि कालमें जीवको भी घसीटके लेजाताहै। इससे जीव स्थिर नहीं होने पातेहैं, किन्तु जाग्रत स्वप्न मरण कालमें मनकी बासनाओंके अधीन भटकते फिरतेह। और वह मनरूप काग और उसके सङ्ग जीव 'कबहुँ' जाग्रत स्वप्नादि कालमें इस संसारलोक विषयादिरूप 'अगम दरिया' (समुद्र) में भ्रमताहै। और 'कबहुँक' यानी सुषुप्ति-आदि कालमें गगनमें समाताहै यानी हृदयका नाड़ीके अन्दर समाताहै। अथवा संसारमें भ्रमण करके प्रलयकालमें ईश्वरमें बासना सहित प्रवेश करताहै। फिर इसीप्रकार भ्रमताहै। और आकाशमें समाताहै और आत्मस्वरूपमें स्थिर नहीं होने पाताहै। जैसे समुद्रमँ जहाजकेऊपर गयाहुआ काग कभी समुद्रमें भरमताहै और कभी उसके ऊपरके पोलरूप आकशमें समाताहै,कबहुँ स्थिर नहीं होन पाताहै। सोई हाल विचारादि रहित जीवोंका है। इसलिये हे सज्जनो! एक सर्वात्मा नित्य अचल परप्रेमास्पद वस्तुको जानकर उसीरूपसे स्थिर होवो जिससे तेरा अनादि संसारात्मक दुःख छूट जावे इत्यादि।

२४९ साखी दोहा।

ज्ञान रतन की कोठरी, चुपक दियेहै ताल।
पारखि आगे खोलिये, कूंजी बचन रसाल॥ २४९॥

टीका—औरभी उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो! स्थिरता और आत्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये कुसङ्ग-का त्यागपूर्वक सद्गुरुके शरणमें प्राप्त होवो। सो गुरु ज्ञानरूप रत्नकी कोठरीरूपहैं, और 'चुपक' [मौन] रूप ताला दियेहैं। अर्थात् उनके शरीर मन बुद्धि ज्ञानकी कोठरी है उसमें मौनका धारण कियेहैं। और वह ताला इसलिये दियेहैं कि अनधिकारी पुरुष इस ज्ञानकी प्राप्ति करके दुरुपयोग नहीं करे। और 'पारखी' यानी विवेक युक्त विचारशीलके आगे 'रसाल' यानी आत्मानन्द युक्त बचनसे खोलें, इसलिये चुपक ताला दियेहैं। इससे उन गुरुके शरणमें प्राप्त होकर ज्ञानात्मक रत्नकी प्राप्ति करो। या सत्यसुखादिके लिये संसारमें तथा अनेकों मत पथादिमें भ्रमते हुए मनुष्योंके प्रति उपदेश देतेहैं कि हेमनुष्यो! यथार्थ ज्ञानही सत्यसुख आत्मवस्तु स्वरूप रतनकी कोठरी है। सो ज्ञानी महात्माओंमें विद्यमान है। उसमें चुपकरूप ताला दियेहैं। इसलिये प्रेमभक्ति रसयुक्त बचन

रूप कुञ्जीसे नाम प्रश्नसे पारखीके आगे उस कोठरीको खोलकर उक्त रत्नकी प्राप्ति करो, जिससे भ्रमणादि छूट जावें इत्यादि। या शिष्यके प्रति आत्मोपदेश करके शिक्षा देतेहैं कि हेसज्जनो! आत्मज्ञानरूप रत्नकी कोठरी तुझे मैं दिया हूँ। और उसमें विचारयुक्त मनको फाटक समझो, और मौनका उपदेशरूप तालाभी मैंने दियाहै। उस ताला और कोठरीको ज्ञानी सत्सङ्गी जिज्ञासुरूप पारखीके आगेही रसाल बचनसे खोलना इत्यादि।

२५० साखी दोहा।

स्वर्ग पताल के बीचमें, दुई तुमरिया बिद्ध।
षट दरशन संशय परी, लख चौरासी सिद्ध॥ २५०॥

टीका—और साहेब उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो! सबसे ऊपर ब्रह्मलोकरूप स्वर्गमें, और सबसे नीचे पतालमें, और उन दोनोंके बीचमें सर्वत्र दो तुमड़ी बिद्धहैं, (व्याप्त हैं) अर्थात् तन और मनरूप, वा समष्टि व्यष्टि शरीररूप दो तिक तुमड़ी सर्वत्र व्याप्तहैं। अथवा हे सज्जनो! सर्वत्र उक्त दो तुमड़ीकेही बिद्ध [विद्धि] जानो और उन दोनोंकेही संशय षटदर्शन योगी आदिमें पराहै यानी उनकीही प्राप्ति आदिकी चिन्ता षटदर्शनमें परीहै। अथवा वे दोनों तुमड़ी संशयरूपसे षटदर्शनोंमें परीहैं अर्थात् व्याप्तहैं। इन तुमड़ियोंका भी यथार्थ निश्चयज्ञान जिन षटदर्शनोंको नहीं हुआहै, उन्हें चौरासी लाख योनि सिद्धहैं। अर्थात् तन मनको वा समष्टि व्यष्टि शरीरको जो सत्यादि समझतेहैं, और इनमें आसक्त रहतेहैं, तथा इन्हेंही प्राप्य ज्ञेयादि समझतेहैं, वे अवश्य चौरासी लाख योनिमें भ्रमतेहैं। इसलिये तुम इनके संशय चिन्तादिको त्यागो। या माया अविद्यारूप, वा जीव शिवरूप दो तुमड़ी सर्वत्र वेधीहैं सो संशयरूपसे षटदर्शनमें परीहैं। इससे चौरासी लाख योनि सिद्धहैं। या पर अपर ब्रह्मरूप दो तुमड़ी वेधीहैं, परन्तु उनका संशय षटदर्शन चौरासी लाख सिद्धोंमें भी है, किसी बिरलाको यथार्थ निश्चयज्ञान होताहै। या शरीरादिमें मैं मेरी बुद्धिरूप वा आत्मानात्मरूप दो तुमड़ी व्याप्तहैं इत्यादि। हे मनुष्यो! यदि कल्याण चाहो तो उक्त संशयसे यावत् द्वन्द्वोंसे रहित होवो, एक सत्यब्रह्मात्माको जानकर चौरासी लाख योनिसे रहित होजावो इत्यादि।

२५१ साखी दोहा।

कबीर दुर्मति दूरि करु, अच्छा जन्म बनाव।
काग गवन बुधि छोड़िदे, हंस गमन चलि आव॥ २५१॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि हे सज्जनो! एकदेशी मायिक पदार्थोंमें सत्य ईश्वरादि बुद्धिरूप, तथा स्वार्थादि बश हिंसा, राग, द्वेष, झूठ, और अन्यायादिके हेतु मिथ्याज्ञान, मोहरूप, दुर्मति को और उक्त दो तुमड़ी विषयक संशयरूप दुर्मतिको विचार सत्सङ्गादिसे दूर करो। और अच्छा

जन्म बनावो नाम अपना मनुष्य जन्मको स्वच्छ पवित्र करो, विराग आत्मविचार अहिंसा सत्य-भाषणादिसे वास्तविक मनुष्यत्वको सिद्ध करो। और आत्मानात्म, सत्य,मिथ्या,न्याय,अन्याय,शुभ और अशुभादिको विवेकपूर्वक जानकर, जिस बुद्धिसे काग सदृश गमन करतेहो, उस बुद्धिको छोड़ दो। और उस गमनको भी सर्वथा त्यागदो और सभी आसुरी सम्पत्ति अविवेकादिकोंको त्यागकर हंसगमनमें चले आवो अर्थात् विवेकपूर्वक सत्य शुभ वस्तु तथा मार्गमें स्थिर होवो। सदा सत्य अनुशीलनादि करो जिससे चौरासीमें भ्रमण आदि छूट जावें इत्यादि।

२५२ साखी दोहा

मन का दौर अनेक है, तीनि लोक पगु एक।
बलिहारी तिहि सन्त के, मन को राखे टेक ॥ २५२ ॥

टीका-दुर्मति तथा कागगमनका त्याग, और अच्छाजन्म तथा हंसगमनकी प्राप्ति मनको दुर्व्यसन विषयादिसे रोके बिना नहीं होतेहैं, इससे साहेब कहतेहैं कि हे सज्जनो ! मनके अनेकों दौड़हैं, नाम अनेकों प्रकारकी शीघ्र गति मनमें है। और उसके विस्तार विषय निमित्तादि भी अनेकों हैं। जिनसे विषय लोकादिमें वह मन दौड़ताहै। और उसकी अनन्त गतिहै जिससे तीनों लोकको एक पगु (एक धाय) कर लेताहै, अर्थात् शीघ्र तीनों लोककी कल्पना करताहै। और संकल्पादि द्वारा सर्वत्र शीघ्र घूम जाताहै। अथवा इस मनके कामरूप दौड़ अनेकों हैं जिनसे तीनों लोकोंको एकडेगके तुल्य करताहै। और कहींभी भ्रमण करके सन्तुष्ट नहीं होताहै। साहेब कहतेहैं कि उन सन्तकी बलिहारी है कि जो ऐसे मनको भी टेककर (पकड़कर) अपने बशमें रखतेहैं। तुमभी उसे बशमें करो, और कागगमनादिको त्यागो हंसगमनका धारण करो। तथा जो महात्मा मनके टेक राखेहैं, उनहींके शरणमें जाकर उनसे बताई युक्तियोंसे मनको बश में करो, जिससे धन्यबाद योग्य होवोगे इत्यादि।

२५३ साखी छ० सार।

जैसी कहै करै जो तैसी, राग द्वेष निरुआरै।
तामहँ घटै बढ़ै रतियो नहिं, यहि विधि आपु समारै ॥ २५३ ॥

टीका-जिज्ञासा हुई कि मनको कैसे बशमें करना चाहिये? तब साहेब कहतेहैं कि जो बात जैसी कहै सो तैसीही करे। रागद्वेष छल लोभादिके बशमें होकर अन्यथा कथन और अन्यथा व्यवहार नहीं करे, और रागद्वेषको निरुवारे [नष्ट करे] और 'तामहँ' यानी कथन और व्यवहारमें रती-मात्र अल्पभी नहीं घटे बढ़े या तामहँ यानी दैवयोगसे प्राप्त रागद्वेषके वेगमें भी व्यवहारको रती-

मात्रभी नहीं घटावे वढ़ावे सत्यन्याय पथको नहीं त्यागे इसप्रकार पुरुष अपनेको समारे [सुधारे] मनको वशमें करे इत्यादि। या जो पुरुष जैसी कहै तैसी करे, रागद्वेषको निरुआरै, तामहँ उस पुरुष में वह मन रतिओं नहीं घटता बढ़ताहै बशसे होताहै। इससे यही विधिसे अपना समार करना चाहिये इत्यादि। अथवा जिज्ञासा हुई कि कैसे अच्छा जन्मादि बनाना चाहिये? और कैसे मनको रोकना चाहिये? इत्यादि, तब साहेब कहतेहैं कि गुरुशरणमें प्राप्त होनेपर गुरु जो बात जैसी कहें, वा उन से प्राप्त सतशास्त्र जैसी रीति बतावें, वैसीही पुरुष करे, नाम तैसेही विचार व्यवहारादि करे। और विचारादिसे मोहको नष्ट करके गुरुके उपदेशके अनुसारही रागद्वेषको निरुआरे। और गुरु आदिके कथन तथा व्यवहार अनुष्ठानमें रतीमात्रभी नहीं घटे बढ़े, इसी प्रकार अपनेको समारो। अर्थात् सर्वथा गुरुका उपदेशके अनुसार व्यवहारादि करके अच्छाजन्म हंसगमनादिकी प्राप्ति करनी चाहिये। और मनको बशमें करके शुद्ध चिदानन्दमें स्थिर होना चाहिये इत्यादि। रागद्वेषका निवारणसे काम, मत्सर, स्पृहा, कृपणता, लोभ, तृष्णा, दम्भ और पाखण्डादिका, तथा ईर्षा, क्रोध, असूय, द्रोह, आमर्षादिका भी मोहको निवारण पूवक निवारणमें तात्पर्य है।

२५४ साखी दोहा।

भरम भरा तिहुं लोकमें, भरम भरा सब ठाम।
कहहिं कबीर पुकारि के, बसहु भरम के गाम॥ २५४॥

टीका—जिन विषयादिकोंको सत्य सुखदादि मानकर उनके लिये मनुष्य रागद्वेषादि करते हैं। उन्हें भ्रम मायास्वरूप बताते हैं कि जिससे रागद्वेषादिके जनक अज्ञान मोहकी निवृत्ति होवे। या सतगुरुके उपदेशको माने आदि बिना फैलाहुआ मिथ्या ज्ञानरूप भ्रमका वर्णन करतेह कि हे मनुष्यो! तीनों लोकमें भ्रमही भ्रम भरा हुआहै अर्थात् माया मायिक पदार्थ मिथ्या ज्ञानही तीनों लोकमें व्याप्त हैं, कोई दृश्यवस्तु उसके ज्ञान सत्य नहीं हैं। और तीनों लोकमें भी सब ठाममें भ्रम भराहै। और साहेब पुकारकर कहतेहैं कि तुम भ्रमका ही ग्राममें मैं मेरी बुद्धिसे बसे हो, और राद्वेषादि करतेहो, तहां शरीर विषयादिकोंको भ्रमके ग्राम समझकर मैं मेरी बुद्धि सहित रागद्वेषादिको त्यागो इत्यादि। या तीन लोकके जीवोंमें तथा सब ठाममें भ्रम भराहै, और तुमभी भ्रमयुक्त मनुष्योंके ग्राम (समुदाय) में बसतेहो, जिससे मोहादिकी निवृत्ति नहीं होतीहै। इसलिये उस ग्राममें बसना त्यागकर गुरुशरणमें बसो जिससे मोहादिकी निवृत्ति होवे इत्यादि। भराके मंड़ा पाठ भेद है उसकाभी उक्तही अर्थहै। कहीं भ्रमके स्थानमें ब्रह्म पाठहै, तब अर्थ है कि सर्वात्मस्वरूप ब्रह्म तीनों लोक सब ठाममें भरा है वा मंड़ाहै नाम व्याप्त है इत्यादि॥

२५५ साखी दोहा।

रतन लड़ाइन रेत में, कंकर चुनि चुनि खाय।

कहहिं कबीर पुकारिके, बहुरि चले पछताय ॥ २५५ ॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि हे सज्जनो! जिन मनुष्योंने आत्मज्ञानरूप वा आत्मस्वरूप रतनको 'रेतमें' यानी उक्त भ्रमस्वरूप माया विषयादिमें लड़ायेहैं नाम गमायेहैं, शरीरभोगादिमें आसक्त होकर उन रत्नोंकी प्राप्ति नहीं कियेहैं। और कंकर सदृश दुःखदायी विषयोंको ही चुन चुन कर खातेहैं, अर्थात् अनेकों कामकर्मादिसे उन्हें प्राप्त करके भोगतेहैं। साहेब पुकारकर कहतेहैं कि वे लोग अनित्य विषय शरीरादिके नष्ट होनेपर बहुरि (फिर) बारम्बार पश्चात्ताप करके चलतेहैं। और अज्ञान मोहादि वश फिर उसीमें प्रवृत्त होतेहैं। सो जानकर अज्ञान मिथ्या ज्ञानादिको नष्ट करो जिससे पश्चात्ताप नहीं करना होवे इत्यादि।

२५६ साखी दोहा।

जेते पत्र बनासपति, औ गंगा के रैणु।

पण्डित बिचारा क्या करे? कबिर कहे मुख बैणु ॥ २५६ ॥

टीका—जिज्ञासाहुई कि यदि संसार भ्रमरूप दुःखदायी है, तो बड़े २ शास्त्रज्ञ पण्डित वा कल्याणार्थी जिज्ञासु भी सांसारिक विषयोंको सत्य सुखदादि मानकर उनके लिये सकामकर्म उपासना आदि क्यों ककरते हैं? तब साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! पिप्पलादिरूप बनस्पतिमें जितने पत्रहैं, और गंगामें जितनी 'रैणु' धूलीहैं, उतनीही बैणु [बाणी] कबिर [कवियों] ने मुखसे कहीहै। अर्थात् अनन्त बाणी अनेकों प्रकारसे कबिलोगोंने कहीहै। तहां उस बाणी जालमें पराङ्मुख उक्त पण्डित क्या विचार करे? वह बाणीका अन्त तात्पर्यको जाने बिना कहीं भूलकर फँसजाताहै। या वह पण्डित विचारा [बेचारा] असमर्थ पण्डित क्या करे? अनेकों प्रकारके उपदेशरूप बाणी जालको देखकर पूर्णविचारके सामर्थ्यसे रहित होनेसे अदृष्टादि बश भ्रमरूप असत्य वस्तुकोही सत्य मानकर उसकी प्राप्तिके लिये कामकर्मादि करताहै। इसलिये तुम वाक्विस्तरको त्यागकर धारणा युक्त सद्गुरुके बचनोंको सुनो पूर्णविचारशील होवो इत्यादि। अथवा जिज्ञासुओंके प्रति उपदेश देतेहैं कि हे पण्डितो! बुद्धिमान जिज्ञासुओं! इस संसारमें जितने बनस्पत्तियोंके पत्ते और गंगाके रेणुहैं। इतनेहीं भ्रमहैं (अनन्तों भ्रमहैं) और भ्रमस्वरूप मायिक मिथ्या पदार्थादि भी अनन्तहैं। उन अनन्तोंको क्या विचार करते हो, उनको भिन्न २ विचारना व्यर्थ और असक्य है। इसलिये कबीर (मैंने) जो मुख (मुख्य) वैन कहीहै। और अन्य महात्मा कबियोंने जो मुख्य बाणी कहीहै। उसीको विचारो जिससे कल्याण होवे। या हे बेचारे पण्डितो! उन अनन्त भ्रम-पदार्थसे क्या करोगे? उनसे तुझे तृप्ति आदि नहीं होगी। इससे तेरे हितके लिये मैंने मुख्यबाणी कही है इत्यादि।

२५७ साखी दोहा ।

सद्गुरु बचन सुनहु हो सन्तो ?, मति लेहू सिर भार ।
हौं हजूर ठाढ़ कहतेहौं, तैं सम्भार सँभार ॥२५७॥

टीका—पूर्वसाखीमें कहे अर्थकोही स्पष्ट वर्णन करतेहैं कि हेसज्जनो ! जिज्ञासुओ ! सत्यवक्ता ज्ञानी दयालु सद्गुरुके ही बचनोंको सुनो, तथा आत्मतत्त्वका विचारादि करो। और गुरुवाओंके उपदेशरूप शब्दजालका तथा अन्य मायिक मिथ्या यानी रूपका भार (दुःखद बोझ) शिरपर नहीं लो। अर्थात् उन्हें न सुनो न विचारो न उनमें आसक्त होवो । मैं हजूर (प्रत्यक्ष) उपस्थित होकर तथा खड़े होकर तेरे हितके लिये कहताहूं कि तैं (तुम) सब 'सम्भार सँभार' यानी शीघ्र चेतो । या सचेत होकर अपने स्वरूपको सँभारो समझो । और सद्गुरुके वचनोंको सुनकर लिये हुवे भारोंको भी त्यागो । तथा अन्यसे बचो मननादि करो इत्यादि । अथवा तुम हजूर नाम प्रगट आत्मा हो उसीको अवश्य जानो यह मैं ठाढ़े कहताहूं ।

२५८ साखी दोहा ।

आगे आगे दौ बरै, पीछे हरियर होय ।
बलिहारी वाहि बृक्ष की, जर काटे फल होय ॥ २५८ ॥

टीका—सद्गुरुके वचनोंको सुनने आदिसे जो फल होते हैं। उनका वर्णन करते हैं कि हेसज्जनो ! गुरुके बचनोंके श्रवण मननादि करनेसे इस संसारात्मक बनमें 'आगे २ दौ बरताहै' यानी ज्ञानरूप दवाग्नि प्रथम लगती है । जिससे अज्ञानके दाह पूर्वक काम, क्रोध, राग, द्वेष, पुण्य, पाप, जन्म, मरण, और भूत भौतिकादि सभी दग्ध बाधित मिथ्या आदि सिद्ध होजातेहैं । और उसके 'पीछे' अव्यवहित उत्तरकालमें वह श्रवणादि करनेवाला पुरुष हरियर [आनन्द] स्वरूप होजाताहै । अथवा यह संसार ज्ञानाग्निसे दग्ध होनेपर ज्ञानीकी दृष्टिसे हरियर अर्थात् सत्य आनन्दरूप होजाता है । या बाह्य नामरूप भागको मायिक मिथ्या जाननेपर सर्वत्र एकरस चिदानन्द भासता है । साहेब कहते हैं कि संसारात्मक बनके उस जिज्ञासु ज्ञानीके शरीर, मन, बुद्धिरूप बृक्षकी 'बलिहारी' धन्यबाद है, कि जिस बृक्षके अज्ञानादिरूप जरको काटनेपर नित्यतृप्ति शान्तिरूप दुःखके सर्वथा अभाव रूप फल होते हैं । और अन्य जर सहित बृक्ष दुःखरूप कुत्सित फलके हेतु होतेहैं इससे निन्दनीय तुच्छ हैं इत्यादि ।

२५९ साखी दोहा ।

गुणिया तो गुणही कहै, निर्गुण गुणहिं घिनाय ।
ज्ञायफर दीजैबैलहिं, क्या बूझै क्या खाय ? ॥२५९॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि उक्त सद्गुरुके वचनोंको श्रवण करनेपर भी सब मनुष्य ज्ञानी सुखी क्यों नहीं होते हैं ?, तब साहेब कहते हैं कि ज्ञानगुणवाले ज्ञानी गुरुतो गुणही कहते हैं, यानी ज्ञानकी ही बात कहते हैं। परन्तु निर्गुण यानी विवेक वैराग्य शमदमादि गुण रहित मनुष्य उस ज्ञान गुणसे घिनातेहैं। [घृणा करते हैं।] जैसे बैलको यदि जायफर दिया जावेतो वह बैल उसके स्वाद गुणादिको क्या बूझ सकताहै, और क्या खासकताहै ? अर्थात् उसको न भूझताहै न खाता है। तैसेही अत्यन्तमूढ़ तमोगुणी आदिके प्रति दैवयोगसे मोक्ष तथा ज्ञानका उपदेश दिया जावे तो वह न समझताहै न उक्त फलको प्राप्तही करताहै इत्यादि। इसीसे महात्मालोग उसके प्रति ज्ञानोपदेश नहीं करतेहैं। कहैके गहै पाठ भेदहै, तब अर्थहै कि गुरु तथा गुरुवाओंके अनेकों प्रकारके उपदेशोंको सुनकर भी, शुभ संस्कारवाला गुणिया (विवेकी] पुरुष सत्य उपदेशरूप गुणहीको गहताहै। और निर्गुण पुरुष उस गुणसे घृणा करताहै तथा अवगुणका ग्रहण करताहै। जैसे बैल जायफरको त्यागकर घासका ग्रहण करताहै इत्यादि। या जो पुरुष 'गुणिया' नाम त्रिगुण उपासक तथा त्रिगुणमय शरीरादिमें आसक्त है। सो गुणमय पदार्थोंको ही सत्यादि कहताहै और गहताहै। और निर्गुन चेतनरूपसे स्थिर महात्माओंके गुणोंसे घृणा करताहै और कराताहै। परन्तु वे ज्ञानी ज्ञान विरागरूप जायफल उक्त अबिवेकी गुणियाको देतेहैं तो वह नहीं समझताहै न प्राप्त करताहै जैसे बैल जायफरको नहीं समझता है इत्यादि।

२६० साखी दोहा।

मुख की मीठी जो कहै, हृदया है मति आन।
कहहिं कबिर ता लोक से, तैसे राम सयान ॥२६०॥

टीका—और साहेब कहतेहैं कि जो पुरुष समझे बिना मुखकी मीठी बातमात्र कहते हैं। परन्तु उनके हृदयमें आन मतिहै, यानी मुखसे विराग आत्मज्ञान सत्यधर्मादिक बात कहतेहैं। और हृदयमें राग अनात्म अधर्म वर्तमानहैं। या जो पुरुष मुखसे मधुर बचनसे आत्मज्ञानादिका वर्णन करतेहैं। और उनके हृदयमें छल भेद रागद्वेषादिरूप मति विद्यमान है. तो साहेब कहते हैं कि हे सयाने जिज्ञासुओ ! उन लोगोंसे सर्वात्मस्वरूप रामभी तैसेही रहतेहैं, अर्थात् उन्हें बाहर भीतर अन्य २ राम भासतेहैं सर्वत्र सत्य एकराम उन्हें नहीं भासतेहैं। या जैसे वे पुरुष कपट चतुराई करते हैं। तैसेही उनके आत्माराम उनके प्रति कपट चतुराई मायासे करताहै। इससे जैसा सयान जो पुरुष होताहै। उसको फल देनेवाला ईश्वर भी उसकी सयानताके अनुसारही सयान होताहै। इसलिये, बाहर भीतरमें भेद छलादि कभी नहीं करना चाहिये। और छलादि रहित होकर सद्गुरुके वचनोंको सुनना चाहिये। अथवा गुरुके उपदेशको सुनकर जो अद्वैत आत्मादि विषयक मीठी

बात कहतेहैं। और हृदयमें अन्य वस्तुकी भेदविषयक मति रखतेहैं। हे सयान! उनसे राम भी अन्य और भिन्नही रहजाताहै राम उन्हें नहीं प्राप्त होताहै। इसलिये आनमतिको अवश्य त्यागना चाहिये।

२६१ साखी दोहा।

इतते तो सबहीं गये, भार लदाय लदाय।
उतते कोइ न आइया, जासों पूछौं धाय॥ २६१॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि जो पुरुष सकाम कर्मोपासना करतेहैं। जिनके हृदयमें भेद रहताहै। वे लोगभी मरनेपर स्वर्गादिमें सत्यरामको प्राप्त करतेहैं तथा सुखी होतेहीहैं। फिर कामकर्म भेदादिसे क्या हानिहै? तब साहेब कहतेहैं कि हे सज्जनो! 'इतते' यानी इस मनुष्यलोकसे तो सबही कोई कामकर्म उपासना भेदादि भार लदाय २ कर [स्वयं लाद लादकर] और गुरुवाओं से लदवाकर गये। परन्तु उतते (वहां से) कोई कहनेवाला नहीं आया कि अमुक पुरुषको स्वर्गादिमें जाने सेही राम मिलगये वह मुक्त होगया इत्यादि, कि जिससे धायकर (दौड़कर) पूछौं और उस बात सेभी निश्चय किया जावे। यदि साधनोंका अनुष्ठानसे वहाँ रामादिकी प्राप्ति कहो तो यहाँहीं साधनों का अनुष्ठान करना चाहिये। क्योंकि आगे करसकोगे कि नहीं इसका निश्चय नहीं है। और यहां जैसे प्रत्यक्षही शान्ति निष्कामता जीवन् मुक्ति आदि ज्ञानसे होतेहैं ऐसा स्वर्गमें प्रत्यक्षनहीं है इत्यादि।

२६२ साखी दोहा।

भक्ति पियारी रामकी, जैसी प्यारी आगि।
सारा पट्टन जरिगया, फिरि फिरि लावै मांगि॥ २६२॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि यदि कामकर्म उपासना भेददृष्टिसे वस्तुतः रामकी प्राप्ति नहीं होती है। तथा बाहर भीतर भेद रखनेसे राम यदि भिन्न ही रहजातेहैं। तो मनुष्य कामादिमें क्यों फँसते हैं? भेददृष्टि क्यों रखते हैं? इत्यादि तब साहेब कहते हैं कि अविद्या युक्त मनुष्योंको स्वभावसेही कामकर्मादि प्यारे लगतेहैं। और काम मन्दबुद्धि आदि युक्त मनुष्योंको स्वभावसेही अनात्म स्वरूप रामकी भक्ति प्यारी लगतीहै, तथा प्यारीहै। अर्थात् स्वभावसेही मनुष्य परोक्षवस्तुमें अधिक भक्ति रखतेहैं। जैसे भोज्य वस्तु विशेषकी कामनावाले मनुष्योंको अग्नि प्यारी लगती है। इसीसे यदि अग्निसे ही 'सारापट्टन' नाम सम्पूर्ण शहर जरगया होवे तौभी फिरि फिरि (बारम्बार) उस अग्निको मनुष्य मांगलाते हैं। तैसेही जिन काम भेददृष्टि आदिकोंसे दुःख रागद्वेषादि करके सब संसार जराहै और जरताहै। उन्हेंही मनुष्य गुरुवासे अज्ञान मोहादिवश फिर बारम्बार प्राप्त करते हैं। बिरले सतपुरुष बिबेकी ज्ञानी काम भेददृष्टि आदिको नष्ट करके मुक्त होतेहैं। अथवा कहते हैं कि यहाँसे कहीं जाना जीवोंके लिये कल्याण कारक नहींहै, किन्तु बिचारादिरूप आत्मा-

रामकी भक्तिही जीवोंके लिये प्यारी [हितकारिणी] है। जैसे शीतार्त पुरुषके लिये अग्नि प्यारी होतीहै। इसीसे ज्ञानियोंके शरीरादिरूप सारापट्टन शहर जिस भक्ति जन्य ज्ञानाग्निसे जरगया है। उसी ज्ञानाग्निको जिज्ञासु लोग सद्गुरुसे फिरि २ मांगलाते हैं नाम प्राप्त करतेहैं। इससे उस ज्ञानकी अब प्राप्ति करनी चाहिये तथा उसके लिये साधन करना चाहिये इत्यादि।

२६३ साखी दोहा।

प्रथम एक जो हौं किया, भै सो बारह बान।
कसत कसौटी नाटिका, पीतर भया निदान॥ २६३॥

टीका – जिज्ञासा हुई कि वस्तुत. आत्मा एक है। और उसके उपदेश सद्गुरु सदा करते आते हैं। तौभी अनेकों मत पथ कैसे होगये ? तथा अनेकों गुरुवा कैसे हुवे ? और अपने ही अनर्थ के लिये असत मार्गोंको कैसे रचलिये। और कैसे हिंसा राग द्वेषादि युक्त भेदमार्गोंमें जीव फँस गये इत्यादि। तब साहेब कहतेहैं कि 'प्रथम' नाम सृष्टिके आदि कालमें हौं यानी मैंने जो एक सत्य-मार्ग किया सोई पुरुषोंके समक्ष बुद्धिभेदसे 'बारह बान' अथात् अनेकों चाल स्वभाववाला होगया। अर्थात् मेरा स्वरूपभूतही गुरु प्रथम एक सत्यमार्ग किये। परन्तु मन्द अधिकारी लोग उस मार्गको सुनकर सत्यमार्गकेही नामसे ज्ञान विन अनेकों मत पथादि रचलिये। परन्तु हेसज्जनो! एक सत्यमार्गसे भिन्न अनन्तों असत वस्तु असत मार्ग विचारादिरूप कसौटीपर कसनेसे न टिके न टिकते हैं, किन्तु विचारादि करनेपर 'निदान' यानी केवल पीतर अर्थात् असत्यही हुवे और होतेहैं। या एक मार्गसे बारह बान हुवे सो कैसे हुवे ? कि जो पुरुष पारखी गुरुके कसौटी विचार पारखादिसे कसनेपर उस मार्गपर नहीं टिका सत्यसुवर्ण तुल्य नहीं हुआ सो 'निदान' नाम अन्तमें पीतर सदृश हुआ और होता है। अथवा कसौटी पारखादिपर नहीं टिकनेसे अविद्या रूप निदान नाम कारणसे सब पीतर सदृश हुवे। इसीसे बारह बान हुआ और होताहै। या प्रथम एक मार्ग करनेपर, चार वर्ण, चार आश्रम, चार सम्प्रदायरूप बारह बान हुवे। या सत्यमार्ग सेही आस्तिक नास्तिक बारह दर्शनरूप बारहबान हुवे। अथवा **[मोहो दैन्यं भयंह्रासं हानि-ग्लानीक्षुधातृषा। मृत्युःक्षोभो वृथाकीर्ति बाटा ह्येतेहि द्वादश]** मोह, दीनता, भय, शरीर बुद्धि आदिके ह्रास, द्रव्यादिकी हानि, उससे खेद, भूख, प्यास, चञ्चलता, व्यर्थ व्यवहार, यश, ये बारह बाटरूप बारहबान भये नाम इन बारहो निमित्तोंसे मार्ग सब सिद्धहुवे। सो कोई भी मार्ग कसौटीसे कसनेपर सत्य नहीं ठहरा अन्तमें केवल पीतर हुआ इत्यादि। अथवा जो पुरुष प्रथम एकहौं यानी अभिमान किया सो बारहबान होगया इत्यादि।

२६४ साखी दोहा।

सज्जन हुना दुर्जन भया, सुनि काहू की बोल।

तामां कांसा ह्वै रहा, हता हिरण्य का मोल ॥ २६४ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि बारहबान होनेपर जो पुरुष स्वभावसे सज्जन हता [सज्जन था] रागद्वेषादि रहित जिज्ञासु जो पुरुष था, सोभी कुसङ्गसे किसीकी बोली सुनकर दुर्जन भया और होताहै। अर्थात् हिंसा भेद पक्षपातादि युक्त होताहै। और जिसकों सज्जन रहने पर हिरण्यका मोल प्रथम हता, [था] अर्थात् जिसमें श्रेष्ठता मोक्षके अधिकारीपन प्रथम था, सो पुरुष तामाँ कांसाके सदृश तुच्छ होकर दुर्जनतासे संसारहीमें रहा और रहताहै। अथवा किसी की बोली सुनकर जो 'सज्जन हता' यानी नष्ट हुआ सज्जनताको त्यागा और दुर्जन हुआ उस पुरुषके हिरण्यका मोल नष्ट हुआ। और तामाँ कांसा सदृश तुच्छ होकर संसारमें रहगया इत्यादि। इसलिये किसीके बातको सुनकर सज्जनताको नहीं त्यागना चाहिये। मायिक मिथ्या वस्तुओंमें नहीं फँसना चाहिये इत्यादि। सज्जन तो दुर्जन भया, नहिं हिरण्य, ये पाठ भेद है।

२६५ साखी दोहा।

अपनि कहै मेरी सुनै, सुनि मिलि एकै होय।
हमरहिं देखत जग गया, ऐसा मिला न कोय ॥ २६५ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि सज्जनको भी दुर्जन होजानेसे ऐसा कोई नहीं मिला कि जो पुरुष अपनी जिज्ञासा गुरुसे 'कहै' और 'मेरी' नाम सद्गुरुकी सत्य उपदेशरूप वाणीको सुनै, और सुनकर मननादि करे, फिर ज्ञानी होजानेसे गुरुसे सुनकर और मिलकर गुरुके सदृश ज्ञानी एकात्मस्वरूपही होजावे, भेददृष्टि पक्षपात रागद्वेषादिको त्यागदेवे। साहेब कहते हैं कि हमारे देखते २ में जग जारहा है, परन्तु ऐसा पुरुष कोई नहीं मिलताहै। तथा दुर्जन होनेसे न कोई सद्गुरुसे कहताहै न सुनताहै। या कहते हैं कि अपनी बात कहै और मेरी सुन नाम परस्पर विचार करै, और सुनकर तथा मिलकर रागद्वेषादि रहित एकात्मस्वरूप होकर रहे, ऐसा पुरुष कोई मिला नहीं, अर्थात् कोई विरला मिला। और यह संसार हमरहिं देखता हुआ जाता है। अर्थात् ये वस्तु गृह, वित्त, मातादि हमारे हैं, येही श्रेष्ठ हैं, इत्यादि विचारादि बिना समझता हुआ संसारी जीव जन्मादिको प्राप्त होरहा है। तथा एक होकर स्थिर मुक्त नहीं होता है इत्यादि। या जो पुरुष दुर्जन पापी होगयाहै, सो अपने अवगुणोंको गुरुसे कहै, और गुरुके उपदेशको सुनै, और सुनकर उस उपदेशसे मिलकर एक हो जावे, नाम सर्वथा उपदेशहीके अनुसार व्यवहार विचरादि करे तो वह फिरभी सज्जन हो सकता है। परन्तु अनेक विषय असत उपदेशादिको भी बिबेक बिना हितकर देखता हुआ जीव संसार में जा रहाहै, इससे ऐसा कोई नहीं मिला इत्यादि।

२६६ साखी दोहा।

बैठा रहै सो बणियाँ, खड़ा रहै सो ग्वाल।
जागत रहै सो पाहरु, तिहि धरि खायो काल॥ २६६॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! बारहबान होनेसे यथार्थज्ञान बिना जो पुरुष बासना आदि सहित जप ध्यानादिमें बैठा रहताहै, सो बणियाँ है। अर्थात् जैसे बणियाँ बैठकर ब्यवहार करताहै और उससे लौकिक विषयकी प्राप्ति करताहै। तैसेही वह पुरुषभी मानसादि ब्यवहारोंसे मायिक वस्तुकी प्राप्ति करताहै। और जो कामी पुरुष तप आदि करनेके लिये खड़ा रहताहै सो ग्वालहै। अर्थात् जैसे दूध घृतादिके लिये पशुको चरानेवाला ग्वाला खड़ा रहताहै। तैसेही वह पुरुषभी राज्य स्वर्गादि भोगसे इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये खड़ा रहताहै, मानों इन्द्रियरूप पशुओंको चराताहै। और सिद्धि आदिकी कामना युक्त जो योगी आदि जागते रहतेहैं, तथा बहुत सावधानीसे ऋद्धिसिद्धि आदिके साधनोंका जो अनुष्ठान करतेहैं सो पाहरुहैं। जैसे पहरु दूसरेकी सम्पत्तिकी रक्षाके लिये जागताहै, तथा अन्यको जगाता है। तैसेही ये लोगभी इन्द्रियोंके भोग्य वस्तु आदिकी प्राप्ति वा रक्षाके लिये जागते हैं। तथा मन इन्द्रियोंको जगातेहैं। साहेब कहते हैं कि 'तिहि' नाम उन बैठने आदिवाले सबही पुरुषोंको ज्ञान बिना काल धरके खाया और बारम्बार खाता है इत्यादि। इसलिये बारह बानको त्यागकर अवश्यही यथार्थ ज्ञानादिकी प्राप्ति करनी चाहिये। या उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो! बैठे आदि रहनेवाले बणियँा आदि जातिको वा जप ध्यानादि करने वालोंको भी काल अवश्य धरके खाया। कोई व्यापार करनेसे किसी प्रकार रहनेसे किसीके शरीरादि सदाके लिये न रहे न रह सकते हैं। इसलिये इन सब विषयक मोह दुर्जनता आदिको त्यागकर बारहबान छलादिसे रहित होकर सद्गुरुका बचन सुनो तथा अपनी सुनावो इत्यादि जिससे सच्चासुख कल्याण होवे इत्यादि। लिखा है कि [**विचारितमलं शास्त्रं चिरमुद्ग्राहितंमिथः। संत्यक्तबासनान्मौना दृते नास्त्युत्तमं पदम्**] शास्त्रोंको अच्छीतरह विचारा परस्पर सत्सङ्ग किया परन्तु बासनाके सम्यक् त्यागरूप मौनबिना मोक्ष नहीं होता है यही निश्चय हुआ।

२६७ साखी दोहा।

बिरहिनि साजी आरती, दरशन दीजै राम।
मूये दरशन देहुगे, आवत कौने काम?॥ २६७॥

टीका—औरभी साहेब कहतेहैं कि हे सज्जनो! बारहबान होनेहींसे नित्य प्राप्त आत्मवस्तुका यथार्थज्ञान बिना 'बिरहिनी' नाम अपने पतिसे वियोगिनी स्त्रीके सदृश जीवों

ने देशान्तर तथा लोकान्तरमें अनात्मस्वरूप रामको मानकर उस रामसे मिलनेके लिये 'आरती साजी' और अभीभी आरती साजते हैं, नाम वे लोग अपनेमें आरत नाम दुःखीपन सिद्ध करतेहैं। और धूपदीपादिसे आरती करतेहैं। और आरत होकर विनय करतेहैं कि हे राम! हेपरमेश्वर! मुझे दर्शन दिजिये। मेरे दुःखोंका निवारण किजिये। यदिमैं आपके वियोगादि जन्य दुःखोंसे मरजाऊंगा तो उस मूयेके बाद आप दर्शन देंगे तो वह मुझे कौन काम आवेगा ?। वा वह पीछे होनेवाला दर्शन अभी कौन काम आताहै ? यदि अभी आप दर्शन देते तो मैं यमके बशमें नहीं परता। आपही यमराज रूपसे मरनेपर अवश्य दर्शन देतेहैं, परन्तु उस रूपके दर्शनसे कल्याण नहीं होता है। इसलिये अभी दर्शन दिजिये। या पतिव्रता बिरहिनी स्त्रीको मरनेपर पतिका अवश्य दर्शन होताहै। तैसे मुझे भी आप मरनेपर अवश्य दर्शन देंगे परन्तु अभी वह काम नहीं आताहै। इससे दर्शन दिजिये मृत्यु बिरहादि जन्य दुःखोंसे रक्षा कीजिये। तथा अपने देश लोकको लेचलिये इत्यादि। अज्ञानी लोग शोक तथा विनयादि करते हैं, तौ भी काल खाताही है। इसलिये हेसज्जनो! सर्वात्मस्वरूप वस्तुको जानो जिससे सब शोक दुःखकी निवृत्ति होवे इत्यादि। या हेराम! मैं बिरहिनी आरती साजी है। आप दर्शन दिजिये. जिससे यमपुरीमें नहीं जाना होवे। यदि मरनेपर यमराज रूपसे आप दर्शन देवोगे तो वह कौन काम आवेगा वह दर्शन कल्याणका हेतु नहीं होगा। इसलिये जीतेहीमें दर्शन दो इसप्रकार बिरही लोग विनय करतेही रहते हैं, तौभी काल धरकर खा लेताहै। गुरुज्ञान बिना मोक्ष नहीं होता है, इसलिये सद्गुरुके वचनको सुनो।

२६८ साखी दोहा।

पलमहँ परलय बीतिया, लोगन लागु दवारि।
आगिल शोच निबारिके, पाछे करहु गुहारि॥ २६८॥

टीका—उन बिरहियोंके प्रति साहेब कहते हैं कि 'हेलोगन, बिरहियां! इन आरती विनयादिकोंसे ज्ञान बिना कल्याण नहीं होगा। क्योंकि आरती आदि करते रहनेपर भी 'पलमात्रमें प्रलय बीतिया' नाम अज्ञानियोंका पलमात्रमें प्रलय हुआ और होताहै। और 'दवारि' नाम दावाग्नि रूप अरि पलमात्रमें लगताहै, अर्थात् शत्रु तुल्य काल दुःखद अग्निके सदृश प्राप्त होताही है। क्योंकि तुम लोग,'आगिल शोच निवारके' नाम प्रत्यक्ष उपस्थित गुरुउपदेश सर्वात्माके बिचार मननको त्यागकर 'पाछे' नाम परोक्ष अनात्म मायिक वस्तुके 'गुहार' नाम पुकार करतेहो, इस अपराधसे अवश्यही तुम सबके प्रलयादि हुये। और होंगे। इसलिये आगिलका शोच विचारादि करो जिससे कल्याण होवे इत्यादि। या जिज्ञासुओंके प्रति उपदेश देतेहैं कि हे सज्जनो! बिरही लोग पूर्व कही रीतिसे आरती विनय करतेही रहते हैं, तौभी पलमात्रमें प्रलय होजाता है। और ज्ञान बिना उन लोगोंको दवारि लगताहै। या पलमें प्रलय होना है। और प्रलय बीतनेपर गर्भादिमें उन्हें दवाग्नि लगतीहै। इसलिये 'आगिल' नाम पूर्व बीतेहुये वा आगेमें उपस्थित बर्तमान शरीर, बिषय, सुख, दुःख, स्त्री और

पुत्रादिके शोचोंको निवारण करके नाम त्याग करके ' पाछेका गुहार करो ' नाम भावी जन्म मरणका तथा ने गादिके अविषय आत्म वस्तुका गुरुसे पुकार करो, तथा नम्रता प्रेमादि पूर्वक प्रश्न करो जिससे दवारिकी निवृत्ति होवे इत्यादि । दवारिके तमारि पाठ भेद है, तब अर्थ है कि जिन पुरुषोंको पूर्वकही रीतिसे तम नाम अज्ञानरूप अरि लगा है, उनका पलमें प्रलय होता है। इससे तुम तमारिकी निवृत्ति के लिये आगिल शोचको निवारण करो पाछे काही गोहार पुकार करो इत्यादि ।

२६६ साखी दोहा ।

एक समाना सकल में, सकल समाना नाहिं ।
कबिर समाना बूझ में, तहाँ दूसरो नाहिं ॥ २६६ ॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि आरती साजने आदि परभी यदि दवारि लगता है, तो दवारिसे रहित कौन होता है ?, तब साहेब कहते हैं कि एक सच्चिदानन्द ब्रह्मात्मा सकल संसार स्थावर जङ्गममें ' समाना ' नाम समाया है प्रत्यगात्मा रूपसे पैठाहै, और विभु है। अथवा सबमें समान-स्वरूप एकरस है। और 'सकल' भूत भौतिकादि संसार ' ताहि ' नाम उस एकवस्तुमें समाया है, उसके अन्दर मायासे कल्पित है। अथवा उसके प्रति सब समानरूप हैं, अग्नि, जल, और वायु आदि सब उसके लिये तुल्य हैं । किसीसे वह दग्ध गीला आदि नहीं होताहै, वह सबसे असङ्ग है । साहेब कहते हैं कि जो कोई पुरुष उसके ' बूझमें समाना ' नाम समाये हैं तथा ज्ञाननिष्ठा वालेहैं । अथवा उसके बूझमें समानरूप होगये हैं राग द्वेषादिको नष्ट करके सर्वात्म स्वरूपसे जो पुरुष स्थिर हैं। तहाँ नाम उन पुरुषोंमें काल बारहबान भय शोकादि तथा संसार ये सब दूसरे कुछभी नहीं हैं, अर्थात् उस ज्ञानीकी दृष्टिसे सब संसार मिथ्या है केवल एक आत्मतत्त्वही सत्यहै। इससे भय शोकादिसे तथा यावत् दवारिसे ज्ञानी पुरुष रहित हैं। और जो दवारि सहित हैं, सो बूझमें समाये हुये ज्ञानी नहीं हैं इत्यादि । अथवा कहतेहैं कि एक सबमें समायाहै । और सब एक में समाये हैं। और मैं ' बूझमें ' नाम ज्ञान विचारादिमें वा प्रकाशस्वरूपमें समाया हूँ । तहाँ दूसरे मनुष्य नहीं समाते हैं । इसीसे उन्हें दवारि लगा है इत्यादि । तहाँके जहाँ पाठ भेद है अर्थ है कि जिस बूझमें दूसरा नहीं है उस बूझमें मैं समाया हूँ तथा ज्ञानी जीव समाये हैं इत्यादि ।

२७० साखी दोहा ।

इक साधे सब साधिया, एक बिना सब जाय ।
उलटि जु सींचै मूलको, फूलै फलै अघाय ॥ २७० ॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि बूझमें समानेसे कौन२ पुरुषार्थ सिद्ध होतेहैं ? और सब ताप निवृत्त होते हैं कि कुछ रहतेभी हैं ? तब साहेब कहते हैं कि एक बूझकोही वैराग्य उपरति बासना त्याग सहित साधनेसे नाम प्राप्त करनेसे सब पुरुषार्थ साधे जातेहैं। जन्मादिके अभावसे सब ताप निवृत्त

होजातेहैं। अथवा एक आत्मवस्तुको विवेक वैराग्यादि पूर्वक साधनेसे यानी जाननेसे प्राप्त करनेसे सब वस्तु साधे जाते हैं अर्थात् वस्तुतः ज्ञात होजाता है। और सब पुरुषार्थ सिद्ध होजाते हैं। और 'एक' बूझ बिना वा आत्मस्वरूपता बिना 'सब' अर्थादि 'जाय' नाम अप्राप्त होजातेहैं। और प्राप्त भी नष्ट होजाते हैं। अथवा एक ज्ञान आत्मतत्त्वकी प्राप्ति बिना मनुष्यत्वादि सब 'जाय' नाम व्यर्थ हैं। तथा लौकिक कर्म, धन, सम्पत्ति, मान, बड़ाई, कुल और जाति आदि सब एक बिना निष्फल हैं। जैसे मूलमें सींचे बिना शाखा पत्रादिमें सींचना व्यर्थ होता है, तैसेही ये सब आत्मविचार बूझादि बिना व्यर्थ हैं। और पत्रादि सींचनके सदृशही अनेक कर्मादि क्लेशके हेतु भी हैं। और जैसे शाखा पत्रादिके सिञ्चनसे 'उलटकर' नाम निवृत्त होकर यदि केवल मूलहीको सींचा जावे तो उसीसे फूल फल सब लगते हैं। और सब अघाते हैं नाम तृप्त पुष्ट होते हैं। तैसेही सबके मूल नाम अधिष्ठान स्वरूप आत्माकोही यदि जाना जावे तो सब जाने जाते हैं। अर्थात् सब प्रयोजन सिद्ध होजाते हैं। तथा सब देव प्रसन्न होजातेहैं। तथासब प्राणी हित होजातेहैं इत्यादि। सब साधे एक जाय, जो सींचै निज मूलको यह द्वितीय तृतीय पादके पाठ भेद हैं। एक साधनेसे सब सधता है, और सब झूठको साधनेसे एक सत्यवस्तु नहीं प्राप्त होती है। ऐसा जानकर जो निज मूलको जानताहै इत्यादि अर्थहै।

२७१ साखी दोहा।

जेहि बन सिंह न सञ्चरै, पची नहिं उड़ि जाय।
सो बन कबिरन हींड़िया, शून्य समाधि लगाय॥ २७१॥

टीका—फिरभी साहेब कहते हैं कि हेसज्जनो! जिस बनमें सिंह भी सञ्चार नहीं करता है, अर्थात् भयानक सघनादि होनेसे जिसमें नहीं जाता है। और जिस बन वा बर्फादि युक्त देशमें पक्षी भी उड़कर नहीं जाता है। 'सो बन' उस शून्य निर्जन बन वा देशमें 'समाधि लगाकर' उक्त एक आत्मरामके जाने बिना 'कबिरन' नाम जीवोंने अनात्मस्वरूप रामको 'हींड़िया' और हींडते हैं यानी बारम्बार खोजते हैं, तौभी विवेकादि बिना तथा गुरु बिना सबमें व्यापक हृदय-वृत्ति जिस रामको नहीं जानते हैं। उसी रामको जानो इत्यादि।

२७२ साखी दोहा।

बोली एक अमोल है, जु कोइ बोले जान।
हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आन॥ २७२॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि किसीकी बोली सुनकर सज्जन भी दुर्जन होजाता है। कोई आरती साजता है। तथा शून्य बनमें हींड़ता है इत्यादि। परन्तु ऐसी बोली कौन है? कि जिससे दुर्जनता आदि नष्ट होजाते हैं। तब साहेब कहते हैं कि एक अमोल बोली है, जो दुर्जनता आदिको नष्ट

करती है। उसे बोलना कोई विरले ही जानते हैं। जो महापुरुष हृदयरूप तराजूसे तौलकर तब उसे मुखसे बाहर करते हैं। उन्हीं की बोली अमोल है। अर्थात् विवेक विचारादि पूर्वक स्पष्ट हितमित बचन जो कोई बोलते हैं सोई अमूल्य बचन बोलते हैं उससे दुर्जनता आदिकी निवृत्ति होती है। अथवा जो कोई अर्थको जानकर अर्थात् शब्दार्थका यथार्थ अनुभव करके फिरभी हृदयरूप तराजूसे तौलकर पूर्ण विचार करके, तब उस शब्दको मुखसे बाहर करते हैं, उन्हीं की एक बोली अमूल्य है। और उससे भिन्न सब बोली दुर्जन करनेवाली और तुच्छ हैं। उन्हें त्यागना चाहिये इत्यादि। अथवा एक आत्मवस्तुको बोध करानेवाली बोली अमोल है। यदि उसे कोई बोलना जानता होवे। और हृदयात्मक तराजूसे तौलकर उच्चारण कर्ता होवे इत्यादि।

२७३ साखी दोहा।

करु बहियाँ बल आपनी, छाडु बिराणी आश।
जिहि अँगना नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥ २७३॥

टीका—साहेब उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! अन्यको होंड़ना तथा आरती साजना आदिरूप जो विराणी 'विरानी' आशा है, उसे छाड़दो अन्यसे सुख तथा मोक्षकी आशा नहीं करो, किन्तु अपनी बाहु बलकी आशा करो। अर्थात् अपनी बुद्धिकी तथा विवेक विचारादिकी आशा करो। और बुद्धि विवेक विचारादिकाही संपादन करो। और अमूल्य एक बोली गुरुसे सुनो तथा बोलो। क्योंकि जिस पुरुषके अँगनामेंहीं नदी बहती हो, सो तन-दुरुस्त पुरुष दूसरोंकी आशामें पियाससे कैसे मर सकता है?, अर्थात् आलस्य अज्ञान आदिसे वह मर सकता है। अन्यथा नहीं मर सकता है। तैसेही तुम हृदयरूप अँगनामें विभु आनन्दस्वरूप वस्तुके रहते हुये अन्यकी आशामें अपना पुरुषार्थ विवेक विचार विज्ञानादि बिनाहीं तृष्णा आदिसे मरतेहो, विवेकादिके प्राप्त होनेपर नहीं मरोगे, इससे अपनी बहियामें बलकरो इत्यादि।

२७४ साखी दोहा।

ऊतो वैसे ही हुआ, तूं मति होवहु आन।
तैं गुणवत वै निर्गुणी, मति एके कै सान॥ २७४॥

टीका—जिज्ञासुओंके प्रति उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! 'ऊतो' नाम किसीकी बोली सुनकर दुर्जनादि होनेवाला तो 'वैसेही हुआ' नाम जैसा पुरुषकी बोली सुना वैसाही होगया। तथा जैसा का सङ्ग किया तैसा होगया, परन्तु तुम आन मति होवहु, अर्थात् विवेक विचारादिसे और रामसे

पृथक तथा भिन्न नहीं होवो। अपने स्वरूपही को सत्य चिदानन्दस्वरूप राम जानो। क्योंकि 'तैं' नाम तुम शम दमादि शुभ गुणवाले हो। और दुर्जनादि होनेवाले वे पुरुष गुण-रहित हैं। इसलिये तुम अपनेको उनके साथ एक करके नहीं सानो, उनका सङ्गादि नहीं करो तथा उनके सदृश विवेकादि रहित आचार व्यवहार नही करो, आशासे रहित विचारादि युक्त होवो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि। अथवा अविवेकी आदितो बारह बानादि हुये और पियासे मरतेभी हैं, परन्तु तुम सद्गुरु के वचनोंसे आन नहीं होवो। क्योंकि तुम अभी त्रिगुण-युक्त हो। और अमोल बोलीरूप गुरुके बचन निर्गुणी है। या तूंहीं गुणवाला और निर्गुणरूप 'वै' नाम निश्चय हो। इसलिये सद्गुरुके बचनोंको सुनकर अपनी 'मति' नाम बुद्धिको 'एक' आत्माकार करके उसीमें सानदो, मिलादो, लीन करदो इत्यादि।

२७५ साखी दोहा।

साधु भया जो चाहहू, पक्का हो के खेल।
कच्चा सरसो पेरिके, खरि भया न तेल ॥ २७५ ॥

टीका—औरभी उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! यदि तुम सच्चा साधु होना चाहते हो अर्थात् यदि कुशल परोपकारी कल्याणस्वरूप होना चाहते हो तो पक्का होकर 'खेलो' नाम सत्यमार्ग सत्य वस्तुमें दृढ़ एकाग्रचित्त होकर, सत्य-वक्ता होकर, आहार गमनागमनादि व्यवहारोंको खेल सदृश करो। और संसार तथा संसारके व्यवहारको मिथ्या खेल सदृश जानकर इनमें आसक्त नहीं होवो। अथवा बिवेक विज्ञान दृढ़से पक्का नाम सत्य अविनाशी स्वरूप होकर उसीमें खेलो क्रीड़ा करो, जिससे तुझे जीवन मरणादि सभी दशाओंमें सत्यसुखकी प्राप्ति रहे। और पक्का होकर खेले विना जैसे कच्चा सरसोको पेरनेसे खली तथा तेल कुछ नहीं होता है। तैसेही कच्चे पुरुषोंको विदेह-मुक्ति और वर्तमान सुख कुछभी नहीं प्राप्त होते हैं। क्योंकि विषयादिकी प्राप्ति होने परभी संशय-तृष्णा भयादिसे वह पुरुष सदा दुःखीही रहता है। इसलिये हे सज्जनो! पक्का होकर खेलनेके लिये अवश्यही यत्न करो जिससे नित्य अखण्ड अतिशय रहित सुखकी प्राप्ति होवे इत्यादि। पक्काके सँगखेल। यह द्वितीय पादका पाठ भेद है, तब अर्थ है कि हे मनुष्यो! यदि तुम साधु होना चाहतेहो वा अपना साधु भलाई चाहते हो, तो सत्य-वक्ता पूर्ण ज्ञानी महात्माओंके साथ खेलो नाम उनके साथ व्यवहार विचारादि करो। और दुर्जनोंका सङ्गको त्यागो, क्योंकि जैसे कच्चा सरसो पेरनेसे खली तथा तेल कुछ नहीं होता है तैसेही अन्यायी, झूठे और अज्ञानियोंके सङ्गादिसे किसीभी पुरुषार्थ तथा सुख की प्राप्ति नहीं होती है इत्यादि।

२७६ साखी दोहा।

ज्ञानी सोइ सराहिये, कच्चा फल नहिं खाय।
किञ्चित फल पक्का मिले, युग युग क्षुधा बुताय ॥ २७६ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि हेसज्जनो! 'सोइ' नाम उसी ज्ञानी पुरुषको 'सराहिये' अर्थात् प्रशंसा करिये। जो कच्चा फल नहीं खाते हैं यानी जो मिथ्या विषयादि जन्य सुखको वा अर्थादिको नहीं भोगते हैं। तथा इनमें आसक्त नहीं होते हैं। और जो कच्चा फल नहीं खाते हैं उन महात्माओंकोही किञ्चित जो पक्का फल मोक्ष है सो मिलता है। अर्थात् विराग उपरति युक्त निर्वासन ज्ञानीकोही विषय-जन्य सुखादिसे बिलक्षण अज्ञानियोंसे अप्राप्य अविषय स्वरूप बचनके अविषय आनन्दस्वरूप कोई अन्तिम फल मिलता है, कि जिस फलसे उन महात्माओंकी क्षुधा युग युग मीट जातीहै, अर्थात् वे लोग नित्य तृप्त मुक्त स्वरूप होजाते हैं। इसलिये हेसज्जनो! तुमभी कच्चा फल नहीं खावो और कच्चा फल खानेवालोंका सङ्गभी नहीं करो, किन्तु नित्यफल खानेवाले महात्माओंके सङ्गादिको करो जिससे नित्य तृप्त होजावोगे इत्यादि। अथवा कहते हैं कि हेज्ञानियो विवेकियो! सोई पुरुष सराहने योग्य हैं कि जो अर्थ सकामकर्म और कामरूप अनित्य फलको नहीं खाते हैं। और अर्थादिका त्याग पूर्वक निष्काम कर्म विवेकादिरूप किञ्चित मात्रभी यदि उन्हें पक्का फल मिलता है, तो गुरुका कृपासे तथा श्रवणादिसे उनको नित्य तृप्ति होजाती है। अर्थात् साङ्ग सम्पूर्ण अर्थ सकामधर्मादिकी अपेक्षा निष्कामकर्मादि अङ्ग-रहित अपूर्णभी कल्याण कारक हैं, इससे उनकेही अनुष्ठानादि करना चाहिये इत्यादि।

२७७ साखी दोहा।

सिंहो केरी खोलरी, मेढ़ा ओढ़े जाय।
बानीते पहिचानिये, शब्दै देत लखाय॥ २७७॥

टीका—प्रथम यह कहा गया है कि ज्ञानीका सङ्ग करो दुर्जनका सङ्ग नहीं करो, तहाँ जिज्ञासा हुई कि विराग, शम, दमादि युक्त ज्ञानी, और रागादि युक्त अज्ञानी, दोनों वैराग्य संन्यास साधु आदिके श्रेष्ठ वेष धारण किये रहते हैं तथा तुल्य मनुष्य दीखते हैं तो कैसे जाना जावे कि ये पक्का फल खानेवाले हैं, ये कच्चा फल खाने वाले हे? इत्यादि। तब साहेब कहते हैं कि जैसे सिंह के खालको कोई मेंढ़ा ओढ़े जाता हो, ता वह बानीसे पहचाना जाता है, क्योंकि उसका शब्दही उसके जातिको लखा देता है। तैसेही ज्ञानी अज्ञानी वाणीसे पहचाने जाते हैं, उनके शब्दही ज्ञान अज्ञानको लखा देता है। अज्ञानी लोग शरीरादिके अभिमान, भेद, राग, द्वेषादि युक्त शब्दोंका प्रायः उच्चारण करते हैं। और ज्ञानी लोग अभिमान, छल, कपट, राग, द्वेष, पक्षपातादि रहित स्पष्ट सत्य शब्दोंका उच्चारण करतेहैं, अर्थात् हृदयरूप तराजूसे तौलकर हितमित बात बोलते है। इससे आत्म अनात्मादि विषयक भिन्न २ प्रकारकी बानीही कच्चा और पक्कापनको प्रगट कर देतीहै। इसलिये हेसज्जनो! वाणीसेही पहचानकर तथा धारणा चाल देखकर ज्ञानी महात्माओंका सङ्गकरो इत्यादि।

२७८ साखी दोहा ।

जो मत वाले रामके, मगन रहे मन माहिं ।
ज्यों दर्पण की सुन्दरी, गहे न आवे बाहिं ॥ २७८ ॥

टीका—औरभी कहते हैं कि जो पुरुष सर्वात्मस्वरूप रामके जाने बिना अनात्मस्वरूप रामके मतवाले हैं, तथा किसी अनात्म मायिक व्यक्तिको राम खुदा आदि मानकर उसीके चिन्तनादि में बावराके सदृश हुवे हैं, सो पुरुष अपने मनमें मग्न रहते हैं। अर्थात् कल्पित मानस पदार्थमें आनन्द मानकर उसीमें मग्न रहते हैं। परन्तु वस्तुतः उन्हें कुच्छ प्राप्त नहीं होता है। जैसे दर्पण की सुन्दरीको देखकर मग्न होनेवालोंको वह सुन्दरी गहनेसे अपनी बाहु बशमें अर्थात् हाथमें नहीं आती है। अर्थात् दर्पणमें सुन्दर स्त्रीका प्रतिबिम्ब होवे वा चित्र होवे और कामी पुरुष मनमें मग्न होकर उसे पकड़ना चाहे तो वस्तुतः स्त्री हाथमें नहीं आती है। अथवा उस चित्र प्रतिबिम्बकी बांह पकड़ना चाहे तो वह बांह गहनेमें नहीं आती है। 'तैसेही सर्वात्म वरूप रामसे भिन्नमें मग्न होनेवालोंको सत्यसुख वा वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती है, केवल मतवाला होकर मनमें मग्न रहते हैं इत्यादि। अथवा जो जिज्ञासु वा ज्ञानी पुरुष आत्मारामके मतवाले हैं, उसीके चिन्तन विचार अनुभवसे मस्त आनन्द रहनेवाले हैं, सो अपने 'मन' नाम अन्तःकरणमेंहीं रामको प्राप्त करके मग्न सब शोकादिसे रहित सुखी रहतेहैं। और अनात्म वस्तुको दर्पणकी सुन्दरी सदृश मिथ्या जानकर नहीं गहतेहैं और न आप किसीकी बांहके आश्रित होतेहैं, किन्तु अपनी बाँहके बल करतेहैं। तथा स्वतन्त्र विवेक बिचारादि परायण वा आत्मनिष्ठ रहते हैं इत्यादि।

२७९ साखी दोहा ।

जिहि खोजत कल्पो गया, घटहिं हती सो मूरि ।
बाढ़े गर्ब गुमान के, अन्तर परिगौ दूरि ॥ २७९ ॥

टीका—अनात्म राममें मग्न रहनेसे तथा धन शरीरादिके गर्ब गुमानादि करनेसे जीवोंके संसारका वर्णन करते हैं कि जिस रामको अनात्मस्वरूप मानकर 'खोजते २ कल्पो गया' नाम अनन्तों कल्प बीत गये 'सो मूरि' नाम वह संसारात्मक रोग रूपी दुःखको नष्ट करनेवाली औषधि घटहीमें थी और है। अर्थात् जिस रामकी प्राप्तिसे संसारात्मक रोग नष्ट होजाताहै सो सर्वात्मस्वरूप राम घटहीमें हैं। तौभी अनात्म शरीरादिमें 'गर्व' नाम अहंकारके बढ़नेसे और गुण जाति कुलादि विषयक गुमानके (गुरुत्वके) अभिमानके बढ़नेसे उस घटके अन्दर रहनेवाला रामसे भी जीवोंको बहुत दूरिके 'अन्तर' यानी भेद व्यवधान परदा पड़ गया है। इससे सर्वथा अनात्मवस्तु विषयक गर्ब गुमानादि को त्यागना चाहिये। कल्पो गया के कल्पे गया पाठ भेद है, तब अर्थ है कि जिस कल्याण स्वरूप

रामको भिन्न मानकर खोजता हुआ जीव कल्पमें गया है नाम संसारके साथ उत्पत्ति नाशमें प्राप्त हुआ है अर्थात् जन्मता मरता है। अथवा कल्पनामें पड़ा है, सो मूलवस्तु घटहीमें है, परन्तु अनात्म विषयक गर्बरूप गुमानसे जीव सब बाढ़ेहैं, इससे वह आत्मा दूर अन्तरमें पड़ गया है। और कल्प तथा कल्पनासे छूटनाभी दूर अन्तरमें पड़ा है। [जेहि खोजत कल्पहुँ गया, घटहि माँहिं सो मूरि। बाढ़े गर्ब गुमानते, ताते परिगौ दूरि] यहभी पाठ भेद है भाव पूर्वोक्तही है।

२८० साखी दोहा।

रामहिं सुमिरे रण मरै, फिरे और के गैल।
मानुष केरी खोलरी, ओढ़े फीरे बैल॥ २८०॥

टीका—और कहते हैं कि जिन्हें गर्ब गुमानादिसे वास्तविक रामसे बहुत दूरके अन्तर पड़ गया है, वे लोग कल्पित किसी अनात्मस्वरूप रामको सुमिरते हैं, और रणमें भी मरते हैं, अर्थात् सत्यरामकोही अनात्मादि बुद्धिसे भजते हैं वा अनात्मकोही राम बुद्धिसे भजते हैं, परन्तु यथार्थ ज्ञान बिना रागद्वेषादि पूर्वक युद्ध झगड़ा करतेही मरते हैं। और वस्तुतः रामके जाने बिना 'औरके गैल' नाम किसी अनात्मवस्तुके पासमें वा मार्गमें फिरते हैं। अर्थात् जाने बिना रामसे भिन्नहींको राम मानकर उसके पीछे वा मार्गमें प्राप्तिके लिये विचरते हैं। और इस प्रकार फिरने वाले मनुष्य विवेकादि रहित होनेसे वस्तुतः बैल हैं, परन्तु मानुषके खोलरी ओढ़े फिरते हैं। अर्थात् रागद्वेषादि युक्त अनात्म मार्गमें विचरनेवाले मनुष्य रामको सुमिरने परभी बैलके सदृश जड़ही हैं केवल शरीरहीसे मनुष्य हैं बुद्धिकी दृष्टिसे बैल हैं इत्यादि। मरैके भिरै पाठ भेद है भाव उक्तही है।

२८१ साखी दोहा।

लोगन केर अथाइया, मति कोइ बैठु जाय।
एकाहि खेत चरत हैं, बाघ गदहरा गाय॥ २८१॥

टीका—(जो मतवाले रामके) इत्यादि कथनोंसे संक्षेपसे अज्ञानियोंके स्वभावादिका बर्णन करके उनके संग त्यागका उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो! एकही खेतमें चरते हुये बाघ गदहा गौके सदृश परस्पर बिरोध सहित माया और मायिकवस्तु शरीरादिमें विचरते हुवे वा विषयोंको भोगते हुवे 'लोगनके अथाइया' नाम सभामें तुम सब कोई भी जाकर नहीं बैठो। अर्थात् विवेकादि रहित व्याघ्रके सदृश क्रूर बलयुक्त राजसी, और गदहाके सदृश अत्यन्त जड़ अपवित्र तामसी और गौके सदृश कुछ पवित्रतासे युक्त सात्विक, ये सब लोग

जहाँ विवेकादि बिना तथा कुसङ्गादि के प्रभावसे शरीर विषयादिरूप किसी कल्पित वस्तुरूप एक क्षेत्रमें चरते हैं वा आसक्त हैं और उनकीही चर्चा करते हैं, और आत्मतत्त्वके विचारादि नहीं करतेहैं न करही सकते हैं, तहाँ उन लोगोके समुदायरूप सामान्य जनकी सभामें नहीं बैठो। क्योंकि द्वेष विरोधादि युक्त मनुष्योंके सङ्गसे तुझेभी द्वेषादि उत्पन्न होंगे फिर शरीरादि में आसक्ति अविवेकरूप घटा उमड़ेगी, आत्मविमुख होकर ससारमें जन्मादिके अधिकारी होगे, इसलिये उनके अथाइयामें नहीं बैठो उनके सङ्गका त्याग करो यदि दैवयोगसे लोगोंके समुदाय में प्राप्त होजावो तौभी उन जन समुदायमें प्रेम नहीं करो इत्यादि।

२८२ साखी दोहा।

खेत भला औ बिज भला, बोइन मुठिके फेर।
काहे बिरवा रूखरा, ई गुण खेतहिं केर ॥ २८२ ॥

टीका—बाघ गदहरा गायके सदृश एकखेतमें चरनेसे उन मनुष्योंकी क्या हानि होती है? कि उनके सङ्गसे जिज्ञासुकी हानि समझी जावे। ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! जैसे खेत भलाहो नाम जोत खोदकर ठीक कियाहो, और बीजभी भलाहो तथा खेतमें फिरकर ठीक मूठी करके बीजभी बोया गयाहो तोभी यदि बिरवा रूखरा नाम उदास होताहै तो क्यों होता है? वह खेतहीका ऊपरपन गुण रहता है। तैसेही मानव शरीररूप खेत भलाहै पुण्यसे प्राप्त हुआ है, तथा सदुपदेश सतशास्त्ररूप बीजभी भले हैं, और महात्मा लोग संसारमें फिरकर सदुपदेशरूप बीजभी ठीकही बोये हैं कि जिससे विवेक विज्ञान विरागादिरूप वृक्षलगे, और नित्यानन्दरूप फलकी प्राप्ति होवे, परन्तु तौभी विवेकादिरूप बिरवा रूखरा क्यों है? हे जिज्ञासुओ! यह विचारो, तथा विचारनेसे समझोगे कि यह खेतहीका गुण है। अर्थात् बाघ गदहा गौके सदृश एकक्षेत्रमें आसक्त होकर चरनेहीं का यह गुण अनिष्ट फलहै इत्यादि। अथवा कुसङ्गसे क्या हानि होती है? ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं कि जैसे खेत सर्वथा भला होवे बीजभी वैसाही होवे परन्तु बहुत बोनेवाले मूठीके फेरसे बोये होंवे, नाम जैसा चाहिये उससे उलटाही बोये होंवे, कहीं बहुत बीज गिराये होंवे कहीं नहीं गिराये होंवे, और पारख बिना धानके खेतमें यव आदि और यवादिके खेतमें धान बोये होंवे, तो वहां बीरवा काहे रूखरा होता है? क्या वह खेतकेही गुण रहता है? अर्थात् खेतके गुण नहीं रहता है, किन्तु बोनेवालेका अवगुण रहता है। तैसेही लोगोंके सङ्ग तथा गुरुवाओंके सङ्गसे वे लोग अयोग्य शब्दके उपदेशरूप बीज सतक्षेत्रमें भी बोतेहैं, जिससे जीवरूप बिरवा तथा विवेकादिरूप बिरवा रूखरे हैं। इसलिये उन का सङ्गादि नहीं करना चाहिये इत्यादि। अथवा जिस बिरवाका मातारूप खेतभी भला है, तथा पिता भी भला है दोनों सच्चरित्र हैं, वीर्य पुष्ट है तथा शास्त्र-विधिसे पिताने बीज बोयाहै, तौभी पुत्ररूप

बिरवा क्यों रूखरा होता है ? यह क्या खेतहीके गुण है अर्थात् खेतके गुण नहीं है न बीजके गुण है, किन्तु सङ्गका गुण है कुसङ्गादिसेही माता पिता गुरुको अच्छे होतेभी पुत्र शिष्यादि कुबुद्धि कुमार्गी होजातेहैं । इसलिये । अवश्यही जन-समुदायादिके सङ्गोंको त्यागना चाहिये इत्यादि ।

२८३ साखी दोहा ।

गुरु सीढ़ी से ऊतरै, शब्द विमूखा होय ।

ताको काल घसीटि हैं; राखि सकै नहिं कोय ॥ २८३ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि जो पुरुष कुसङ्गादि करके गुरुसीढीसे ऊतर जाता है, नाम सद्गुरुका उपदेशरूप सतमार्गसे भिन्न मार्गमें जाता है, विवेक विराग शम दमादिसे च्युत होजाता है । अर्थात् अदृढ़ विवेक विरागादिको प्राप्त करके जो फिर कुसङ्ग कामादिसे उन्हें नष्ट करता है । और शब्दरूप सदुपदेशसे जो बिमुख होता है उसके श्रवण विचारादिके लिये नहीं प्रवृत्त होता है, किन्तु विषयादिमेंही प्रवृत्त होता है । साहेब कहते हैं कि 'ताको' नाम उस गुरुसीढ़ीसे उतरा हुआ और गुरुके उपदेश सतशास्त्रसे विमुख पुरुषको अवश्यही काल बारमबार 'घसीटि हैं' यानी संसारात्मक चक्रमें भ्रमावेगा । और उस अज्ञानी गुरु शब्दसे विमुख पुरुषको कोईभी राख नहीं सकेगा । अर्थात् देव मनुष्य विषयादि वा ईश्वरभी उसके काल तथा जन्मादि दुःखसे रक्षा नहीं कर सकते हैं, इसलिये गुरुसीढ़ीसे कभी नहीं उतरना चाहिये न शब्दविमुख होना चाहिये इत्यादि ।

२८४ साखी छं० सार ।

दादा भाइ बाप कै लेखों, चरणन होइ हो बन्दा ।

अबकी पुरिये जो नर समुझै सो नर सदा अनन्दा ॥ २८४ ॥

टीका—गुरुविमुखतासे अनर्थकी प्राप्ति होती है इससे साहेब उपदेश देते हैं कि हेसज्जनो ! सद्गुरु को ही 'दादा भाई बाप' करके जानो नाम पितामह भ्राता पिताके सदृश पूज्य सहायक हित चिन्तकादि लेखो [समझो] और सद्गुरुके चरणोंके 'बन्दा' नाम वन्दनशील दास 'होइ हो' नाम होना । और उनके चरणोंका बन्दा होकर शब्दसे अविमुखता पूर्वक आत्मतत्त्वको जानो । क्योंकि ' अबकी पुरिये ' नाम इस मानव जन्म मनुष्य-लोकमें जो कोई आत्मतत्त्वको समझना है, गुरुभक्ति श्रवण विचारादिसे अपरोक्ष यथार्थज्ञान निष्ठाको प्राप्त करता है, सो मनुष्य सदा आनन्दस्वरूप होजाता है । अथवा 'ये' नाम ये संसार शरीरादि ' अवकी पुरि ' नाम पुरग्राम हैं अर्थात् कार्यरूप सहर हैं इससे अनित्य मिथ्यास्वरूप हैं । आत्माहीं अज अविनाशी सत्यहै इसप्रकार गुरुका उपदेशसे जो मनुष्य समझता है सो सदा आनन्द रहता है । इसलिये तुमभी सद्गुरुसे ऐसा समझो इत्यादि । अथवा उपदेश देते हैं

कि हेमनुष्यो ! गुरु तथा शब्दसे विमुख होकर जो किसी अन्यको दादा भाई बाप करके देखते हो सो अनुचित करते हो ऐसा करनेसे बारमबार इनकेही चरणोंके बन्दा होगे, अर्थात् ज्ञान बिना बारमबार तेरे जन्म और दादा भाई बापादि होंगे, और तुम उनके चरणोंके बन्दा होते रहोगे, इसलिये शरीरकेही दादा आदि जानकर तुम अपनेको जन्मादि रहित समझो जिससे तेरा कल्याण होवे । क्योंकि इस मानव तनमें जो पुरुष दादा आदिके पौत्रता आदिसे रहित आत्माको समझता है सो सदा आनन्द रहता है इत्यादि ।

२८५ साखी दोहा ।

जहँ गाहक तहँ हौं नहीं, हौं तहँ गाहक नाहिं ।

बिन विवेक भरमत फिरे, पकरि शब्द की छाँहिं ॥ २८५ ॥

टीका—गुरुबिमुखतासे संसारमें भ्रमणका साहेब वर्णन करते हैं कि हे सज्जनो ! गुरु-विमुख अज्ञानी लोग जहां ग्राहकहैं, नाम जिस विषयादिमें सुखके ग्राहक इच्छावाले हैं, 'तहाँ हौं' नाम मैं वा कोई विवेकी महात्मा नहीं हैं । अर्थात् जिन स्वर्ग विषयादिकोंमें अज्ञानी लोग आसक्त रहतेहैं तथा नित्य सुख चाहते हैं । तहाँ ज्ञानी लोग नहीं आसक्त होतेहैं न सुखादि चाहते हैं । और जिस सत्यवस्तु सत्यमार्गमें 'हौं' नाम मैं हूँ, अर्थात् जहाँ ज्ञानीलोग रहते हैं वा दृढ़ विवेकादि युक्त जिज्ञासु रहतेहैं। तहाँ जो पुरुष ग्राहक नहींहैं, सो गुरु और सारशब्दसे विमुख अविवेकी पुरुष 'शब्द की छाँहिंको' यानी असार मिथ्या शब्दको पकड़कर, स्तुति आदिरूप शब्दोंकोही सत्य सारशब्द मानकर, सत्य अर्थ और सत्यशब्दके विवेक पूर्वक ज्ञान बिना संसारात्मक चक्रमें भ्रमते फिरतेहैं । इसलिये सद्गुरुके मार्गमें प्राप्त होकर सार असार वस्तु शब्दका अवश्य बिवेक करना चाहिये जिससे भ्रमण छूटे । अथवा कहतेहैं कि 'जहाँ' नाम जिस मनुष्यमें 'गाहक' नाम मोक्षके ग्राहकपनहै, अर्थात् श्रेष्ठ जिज्ञासाहै 'तहाँ हौं' नाम सांसारिक विषयादिके अभिमान नहीं रहताहै । और 'जहाँ हौं' नाम अंहकार रहनाहै, तहँा गाहकपन नहीं रहताहै, इससे वह पुरुष शब्दकी छाहींको पकड़कर संसार में विवेक बिना भटकता फिरताहै तथा स्थिर पदको नहीं प्राप्त करताहै । या पूर्णविवेक वैराग्यादि बिना 'जहाँ' जिन दादा भाई आदिके सङ्गमें 'गाहक' नाम जिज्ञासु हैं, तहाँ मैं गुरु नहीं हूँ और जिन सत्सङ्गादिकोंमें मैं हूँ तहाँ जिज्ञासु नहींहैं, इससे विवेक बिना मन्द जिज्ञासु भी शब्दकी छाँह पकड़कर भ्रमते फिरतेहैं इत्यादि । अथवा जिस पुरुषमें विषयोंके ग्राहक इच्छायुक्त मनहै, उस पुरुष में ज्ञानस्वरूप तथा आनन्दस्वरूप मैं ब्रह्मात्मा नहीं प्रगट होताहूँ और जहाँ प्रगट होताहूँ, तहाँ गाहक मन नहीं रहताहै, इससे विवेक बिनाही असत शब्दों विषयोंको पकड़कर इच्छायुक्त मन भरमते फिरताहै । इसलिये अवश्य बिवेक युक्त इच्छारहित मनको करना चाहिये इत्यादि ।

२८६ साखी दोहा ।

स्वप्ने सोवै मानवा, खोलि न देखै नैन ।
जीव परा बहु लूटमें, ना कछु लेन न दैन ॥ २८६ ॥

टीका—औरभी साहेब कहतेहैं कि हेसज्जनो ! सद्गुरु सतशब्दसे बिमुख होनेहीसे 'मानवा' नाम मनुष्य सब अज्ञान मोह निद्रासे स्वप्न-तुल्य संसारमें सोयेहैं । अर्थात् जैसे स्वप्न में पुरुष मिथ्या पदार्थोंको देखताहै, और उनमें ही मैं मेरी बुद्धि करताहै । तैसेही अज्ञान मोह निद्रा से प्रतीयमान पदार्थोंमें अविवेकी लोग मैं मेरी बुद्धि करतेहैं, और विवेक विचारादिसे ज्ञान 'नैन' नाम नेत्रको खोलकर नहीं देखतेहैं, कि जिससे मिथ्या संसाररूप स्वप्न नष्ट होजावे और सत्यात्मा दीखपड़े । और सद्गुरु आत्मज्ञानादि बिनाही जीव बहुत लूटमें पड़ेहैं यानी जन्म, मृत्यु, रोग, शोकादि, और काम क्रोधादि इनके शान्ति सुख मोक्षको लूट रहेहैं । और विचारमानकी दृष्टिसे इस स्वप्नके सदृश संसारमें वस्तुतः 'कुछ' लेन देनहै नहीं नाम कुछ त्यागना वा ग्रहण करना नहींहै । क्योंकि ग्रहण त्याग सहित संसार मिथ्याहै, इससे जीव सब अज्ञानवश व्यर्थही बहुलूटमें परेहैं । और तुम अज्ञान को त्यागकर इससे रहित होवो इत्यादि । या अज्ञानी जीव कहां गाहकहैं ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहतेहैं कि मनुष्य स्वप्नमें सोयेहैं और स्वप्नकेही पदार्थोंको चाहतेहैं यानी मिथ्या पदार्थमें अज्ञानसे आसक्तहैं, और ज्ञानरूप नेत्र खोलकर अपना सत्यस्वरूप नहीं देखतेहैं, इससे ही मानव शरीरमें भी प्राप्त जीव बहुलूटमें पड़ेहैं । और जो कुछ लेनेलायकहै सो न लेतेहैं, और देनेयोग्य जो कुछहै उसे देतेभी नहींहैं नाम नहीं त्यागतेहैं, इसीसे अन्तमें काल सबको लूटलेताहै इत्यादि । अथवा हेमानवा ! जो कोई जीव स्वप्ने सदृश संसारमें सोयाहै, अर्थात् नैन खोलकर नहीं देखताहै, सो जीव बहुलूटमें पड़ाहै, और उसे कुछ लेन देन भी नहींहै, किन्तु केवल अज्ञान मोह निद्रासेही पीड़ित होरहाहै । उस पीड़ासे बचनेके लिये यत्नकरो, यह उपदेश देतेहैं इत्यादि ।

२८७ साखी दोहा ।

नष्टा का यह राजहै, नफरक बर्तै टेक ।
सार शब्द टकसारहै, हृदया माँह बिबेक ॥ २८७ ॥

टीका—संसारको स्वप्न सदृश मिथ्या सुनकर जिज्ञासाहुई कि प्रमाणु प्रकृति आदि सत्य-पदार्थोंका कार्यरूप संसार मिथ्या किस प्रकारहै ? तब साहेब कहतेहैं कि अद्वैत सत्यस्वरूप आत्मा से भिन्न होनेसे तथा श्रुति आदिसे भी प्रकृति प्रमाणु आदि संसारके उपादान कारण सत्य नहीं सिद्ध होतेहैं, इससे अनिर्वचनीय मिथ्यास्वरूप मायात्मकही प्रमाणु वा प्रकृतिके कार्य होनेसे

यह संसाररूप राज्य नष्टाका है। अर्थात् परिणामशीला माया इस संसारका उपादान कारणहै। चेतनकी सत्तासे सोई नष्टा माया जगतकी उत्पत्ति आदि करतीहै। और उसीके अधीन चेतनमें भी कर्ता आदि पनहै, सो मायी कर्ताभी वस्तुतः अकर्ताहै, इससे सत्य-साधन रहित यह संसार स्वप्न तुल्यहै। और नष्टाके राज्यरूप संसारमें उस नष्टाके नफर (टहलू) रूप मनका वा अन्य मायिक देवादिका 'टेक वर्तता है' नाम उस नफरकोही नियम प्रभुत्व तेज विराजमानहै। अर्थात् मायासे मोहित मनसेही सब पदार्थ सत्य सुखदादि भासतेहैं, इससेभी संसार मिथ्याहै। और पूर्वकही शब्दकी छायासे भिन्न सारशब्द ही टकसारहै नाम सत्यहै, अर्थात् सत्य वस्तुका बोधक है। सोभी उसीका बोधकहै कि जिसके हृदयमें विवेक रहताहै। अर्थात् विवेकादि युक्त मनुष्यों को सत्यात्मवस्तुके अपरोक्ष ज्ञान करानेवाला टकसारस्वरूप सारशब्द है, उस सारशब्दसे विमुख नहीं होना चाहिये। या हृदय में ही दृढ़विवेक करानेके लिये सारशब्द टकसाररूपहै। या सार शब्द और विवेक दोनों टकसाल स्वरूपहैं। जैसे टकसालघरमें रूपया बनताहै तैसे इन दोनोंसे हृदयमें अनुभव सिद्ध होताहै जिससे कल्याण होताहै इत्यादि। टेक का तेज पाठभेदहै अर्थ स्पष्टहै।

२८८ साखी दोहा।

छप्पर छाये कौन गुण ?, सबे बांध चुचु आय।
जिहि नित छप्पर छाइया, सो परदेशहिं जाय॥ २८८॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो! इस मिथ्या संसारमें भी वैसा छप्पर छानेसे कौन गुणहै कि जिसको किसी प्रकारभी छाया जावे तोभी उसके सब बन्धनों के स्थानोंमें 'चुचु आय' नाम चूता होवे, और जो पुरुष प्रतिदिन छप्परको छायेहो उसके कुटुम्बादिके सहित परदेशही जाना होवे तो उस स्वार्थ परमार्थ दोनोंसे रहित छप्परके छानेसे कोई गुण फल नहीं होताहै। तथा व्यर्थ हैरानी होतीहै। तैसेही इस शरीररूप छप्परकी आसक्ति पूर्वक प्रतिदिन छानेसे कोई गुण नहीं है क्योंकि यह किसी प्रकारभी विषय भोगादिसे छाया जाताहै, तो इसके सब बान नाम सब बन्धनस्थान सब सन्धी द्वार चुचु आतेहैं मल मूत्रादि तथा स्वेद सम्पूर्ण शरीरसे निकलतेहैं। और रोगादिसेभी यह सदा पीड़ितही रहताहै। और जो जीव इसको अनेकों विषयोंसे नितप्रति छायाहै, सो जीव अवश्यही इन्द्रिय प्राणादिरूप कुटुम्ब सहित इसे त्यागकर परदेश जाताहै। इसलिये केवल इसको छानेमें कोई गुणनहीं है, किन्तु सारशब्दके विचार विवेकादिकही इस मानब शरीरके गुणहै। इसलिये केवल इसे छाने विषयक आसक्तिको त्यागकर कल्याणभावी भलाई के लिये सामर्थ्यके अनुसार अवश्य यत्न करना चाहिये जिससे वर्तमान जन्म में ज्ञानकी प्राप्ति नहीं भी होसके तो आगे ज्ञानकी प्राप्ति होनेका सम्भवहै क्योंकि किया हुआ प्रयत्न व्यर्थ नहीं होताहै इत्यादि।

२८९ साखी दोहा।

इहई सम्बल करि लेहु, आगे बिषमी बाट।
स्वर्ग बिसाहन सब चले, जहँ बणियाँ न हाट॥ २८९॥

टीका—पूर्व साखीके भावका इस साखीमें वर्णन करतेहैं कि हेसज्जनो! 'इहई' नाम इस मानव शरीर और लोकमेंहीं भावी मोक्ष, सुख, जन्म, तथा मार्गके सम्बल करलो। अर्थात् अब मुक्त होसको तो मुक्त होजावो, नहीं तो आगे मोक्षादिके लिये श्रेष्ठ विवेक विचारादिका वा निष्काम कर्मादिका तथा श्रवणादिका अनुष्ठान करो। क्योंकि इस जन्ममें सम्बल किये बिना 'आगे' पशुपक्षी आदि योनिरूप वा देवादि योनिरूप भी बिषमी बाटहैं, नाम कठिन बाट हैं। उनमें ज्ञान कल्याणादिके साधनोंका प्राप्त होना कठिन तथा असम्भवहै, क्योंकि पशुयोनि आदि जड़योनि प्रत्यक्षही है। और देवयोनि भोगका स्थान होनेसे प्रमादके स्थानरूप है, इसलिये आगेकी आशा नहीं करो। और यह समझो कि इस भेदके जाने बिना ही सब अज्ञानी विषयी लोगोंने स्वर्ग बिसाहने चलेहैं, अर्थात् स्वर्गमें कल्याण मोक्ष सुखको खरीदने प्राप्त करने चलेहैं, तथा चाहतेहैं कि वहां सत्यानुभव युक्त मुक्त होजाऊंगा। और जहाँ नाम जिस स्वर्गमें सद्गुरुरूप बणियाँ और सत्सङ्गरूप हाट नहीं है, इससे वहां मोक्षादिकी प्राप्ति होनी असम्भव है। अथवा पूर्वकहे भेदोंको जाने बिना जहाँ नाम जिन योनि अवस्था वा स्थानोंमें किसी कल्याण कारक वस्तुकी बणियाँ हाटादि सामग्री नहीं हैं। तहाँ मनुष्य सब स्वर्ग नाम सुख और कल्याण बेसाहने चलेहैं, इससे सुखादिका वस्तुतः लाभ नहीं होताहै। इसलियें उक्त भेदको सद्गुरुसे जानकर इसी लोक और जन्ममें सम्बल करलो इत्यादि।

२९० साखी दोहा।

जिन जिन सम्बल नहिं किया, अस पुर पट्टन पाय।
झालि परे दिन अस्त भै, सम्बल किया न जाय॥ २९०॥

टीका—और कहतेहैं कि हेसज्जनो! इस मानव शरीररूप ऐसे पुरको, और मनुष्यलोकरूप ऐसा सुन्दर अनुकूल 'पट्टन' नाम सहरको पाकर जिन जिन मनुष्योने युवा-अवस्था आदिमेंही भक्ति विवेक वैराग्य ज्ञान सत्कर्मादिरूप सम्बल नहीं किये तो 'झालिपरे' नाम अत्यन्त वृद्धावस्थारूप तथा राजस तामस योनियों में प्राप्तिरूप अन्धकार होनेपर और प्राण इन्द्रिय रूप दिन करके अस्त होनेसे आयुरूप दिनके अस्त होनेपर, अर्थात् मरण मूर्छादि कालमें फिर उन मनुष्योंसे सम्बल नहीं किया जासकता है, इससे वे लोग फिर केवल कष्ट भोगते और पश्चात्ताप करतेहैं। इसलिये 'ईहई' अर्थात् इसी जगह (मानुष तनमें) सम्बल करलो जिससे फिर पश्चात्तापादि नहीं करना पड़े इत्यादि।

२६१ साखी दोहा ।

सम्बल सम्बल सब कहै, सम्बल परो न हाथ ।
सम्बल घटये पगु थके, जीव बिराणे हाथ ॥ २६१ ॥

टीका—औरभी साहेब कहतेहैं कि यद्यपि सब कोई सम्बलकी प्राप्तिके लिये सम्बल सम्बल कहतेहैं, और कुछ काम्य कर्मादि करके कहतेहैं कि मेरे पास सम्बलहै इत्यादि तथापि गुरुकृपा सत्सङ्गादि बिना इन मनुष्योंके हाथमें सत्य अक्षय सम्बल नहींपरा है। यां 'परो' नाम उत्कृष्ट साधनरूप सम्बल इन कामी आदिकोंके हाथमें नाम पासमें नहींहै कि जिससे अविनाशी सुख प्राप्त होसके किन्तु अनित्य तुच्छ सम्बल इनको प्राप्त हुआहै जो भोगादिसे क्षीण होजाता है, इससे काम्य कर्मादिरूप सम्बलके घटनेपर, और बुद्धि बलादिरूप कर्मादि मार्गमें चलनेवाले पगुओंके थकनेपर हीन योनि आदिमें प्राप्त जीव 'बिराणे' नाम अन्यके हाथमें पड़तेहैं। अर्थात् काल कर्म ईश्वर देवता आदिके बशमें और कुबुद्धि मलीन मन इन्द्रियादिके बशमें होजातेहैं । और परबश होकर संसारमें भटकतेहैं। और सामर्थ्यादि बिना कुछ करभी नहीं सकतेहैं इत्यादि-इससे अपने कल्याणके लिये विज्ञानादिरूप अक्षय सामग्रीका सम्पादन करना चाहिये। अर्थात् जिन साधनोंसे अक्षय नित्य मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होतीहै, उन साधनोंकाही शक्ति के अनुसार सम्पादन करना चाहिये, जिससे नित्य स्वतन्त्र और आनन्दस्वरूप होजावे इत्यादि ।

२६२ साखी दोहा ।

तीनि लोक भौ पींजड़ा, पाप पुण्य भौ जाल ।
सकल जीव सावज भये, एक अहेरी काल ॥ २६२ ॥

टीका—औरभी कहतेहैं कि हेसज्जनो ! अक्षय फलको देनेवाला सम्बलकी प्राप्ति बिना अज्ञानी कामादि युक्त जीवोंको बझानेके लिये तीन लोक तथा उन स्वर्गादि लोकोंके शरीर ही पींजड़ारूप हुवे हैं। और पापपुण्यस्वरूप कर्म तथा कर्मजन्य अदृष्ट जालरूप हुवेहैं। और सकल अज्ञानी कामादिसे युक्त अनित्य सम्बलवाले जीव सावजरूपहैं। उक्त जालमें बझकर उक्त पींजड़ेमें बझनेवाले रहनेवाले हुवे हैं । अर्थात् पुण्यपापके अधीन तीनों लोकादिमें भ्रमने वालेहैं । और इन्हें बझाने भ्रमानेवाला तथा पीड़ित करनेवाला अहेरी (सिकारी) रूप एक काल हुआहै । अथवा इन पुरुषोंके लिये एक ईश्वरही अहेरी और कालरूप हुआहै । और सोई अज्ञानी जीवोंको पीड़ित कर रहाहै । उस कालजन्य पीड़ासे बचनेके लिये इहई अक्षय सम्बल करलो इत्यादि ।

२९३ साखी दोहा।

ई जग तो जँहड़े गया, भया योग नहिं भोग।
तील झारि कबीर लिया, तिलठी झारै लोग॥ २९३॥

टीका—(समुझेकी मति एकहै) इस पूर्व वर्णित रीतिसे सब ज्ञानी महात्माओंको एक तथा अपना स्वरूप मानकर, और 'कबीर' नाम कायामें रहतेभी कालको जीतनेके लिये वीर मानकर, साहेब औरभी कहतेहैं कि हेसज्जनो! अक्षय सम्बलकी प्राप्ति बिना कामादि युक्त 'ई जग तो' नाम यह संसारी जीव तो 'जँहड़े गया' नाम कालके बशमें होकर जहन्नुममें अर्थात् नरकमें गया और जाता है। अथवा जहड़ने वाला दुःखद असत मार्गमें गया और जाता है। और इस जीवसे मोक्ष के साधन कर्मयोग ज्ञानयोगादि भी नहीं होसके और न इसको सच्चा सुखका भोगही हुआ किन्तु संसारमें तिल झारकर 'कबीर लिये' नाम ज्ञानी लोग लिये अर्थात् सत्यसुखद मार्ग सत्यसुख रूप सार वस्तुको ज्ञानी महात्मा लोगोंने प्राप्त किये और करते हैं। और अज्ञानी कामी लोग असार विषयादिरूप तिलठीको झाडतेहैं। अर्थात् तुच्छ निःसार विषय कुत्सित कर्मादिकसेही अज्ञानी लोग सुखादि चाहते हैं। और उनकेही भोग अनुष्ठानादि करतेहैं। तथा मिथ्या मन्त्र तन्त्र अर्थजालादिमें भटकते हैं। सद्गुरुके शरणमें जाकर सारकी प्राप्ति नहीं करतेहैं। हेसज्जनो! तुम तिलठी झाड़ना त्यागकर सारका ग्रहण करो इत्यादि।

२९४ साखी दोहा।

शब्द सँभारे बोलिये, शब्द को हाथ न पाँव।
एक शब्द कर औषधी, एक शब्द करु घाव॥ २९४॥

टीका—सार वस्तुकी प्राप्तिके लिये साहेब उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो! सब्दको संभारकर बोलना चाहिये, तथा विचार पूर्वक नम्रता युक्त सत्य, मधुर, बचन गुरुशरणमें प्राप्त होकर बोलना चाहिये, और टकसार शब्दकी प्राप्तिके लिये सद्गुरुसे संभारकर प्रश्न करना चाहिये, और लोकव्यवहार में भी संभारकर हित बचन बोलना चाहिये, क्योंकि जिस शब्दको हाथ पाँव नहीं है, सोभी संभार कर बोला गया सत्य प्रिय हित एक शब्द औषधी करताहै, नाम जन्मादि रोगात्मक दुःखसे रहित कर देताहै। तथा सत्यवस्तु सुख आरोग्यकी प्राप्ति कराताहै। और श्रोता वक्ता दोनोंको सुखद होताहै। तथा दृष्ट अदृष्ट लौकिक अलौकिक सब फल देताहै। और एक असंभारकर बोला हुआ शब्द घाव करता है, अर्थात् झूठ क्रूरता युक्तादि पापजनक शब्द श्रोता वक्ता दोनोंको घाव सदृश पीड़ित करता है। तथा सत्य मार्गसे विमुख करके संसार अनर्थमें प्राप्त कराता है। भाव यह है कि हाथ पाँववाले इष्ट

मित्र शत्रु आदि जितने उपकार अपकार भी नहीं कर सकते हैं। उतने उपकार अपकार सत्य, असत्य, प्रिय, अप्रिय, सार, और असारादि शब्द करनेवाले हैं। इसलिये हेसज्जनो! शब्दको सर्वथा संभारकर बोलो और औषधी तुल्य शब्दोंको बोलकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक सार वस्तुकी प्राप्ति करो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि।

२६५ साखी दोहा।

यन्त्र बजावत हैं सुना, टूटि गये सब तार।
यन्त्र बेचारा क्या करे?, चले बजावनि हार ॥ २६५ ॥

टीका—औरभी उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो! जैसे किसीको सितारादिरूप यन्त्र बजाता हुआ मैंने सुना परन्तु दैवयोगसे यन्त्रके सब तार टूट गये, और बजावने वालाभी चल दिया, तो वह बेचारा असमर्थ यन्त्र क्याकर सकताहै? अर्थात् वायु आदिके लगनेसे अश्राव्य कुत्सित शब्द कर सकताहै, परन्तु मनोहर, मधुर, सुखद, शब्द उससे नहीं हो सकताहै। तैसेही जीव तथा मन दोनों शरीररूप यन्त्रको बजातेहैं, जिसे मैं तथा अन्य लोगोंने भी सुनाहै। अर्थात् संभारकर सावधान मनसे सुन्दर शब्द जीव सब बोलतेहैं, सो प्रत्यक्ष सुना जाताहै, परन्तु बिबेक बिचारादि जन्य मानस वृत्तिरूप जब सबतार इसके टूटगये, और अनवधानतासे जब जीव चल होगये नाम चञ्चल मनवाले विषयासक्तादि होगये तो यह शरीररूप यन्त्र गुरुके पासमें रहकरभी क्याकर सकताहै? अर्थात् विषयादिमें चलायमान चित्तवाले मनुष्यको वेषधारण गुरुशरणमें रहने आदिसेभी सार शब्दका उच्चारण मधुर हित भाषण सत्य फलकी प्राप्ति आदि नहीं हो सकतेहैं, किन्तु प्राणवायुके सम्बन्धादिसे अश्राव्य शब्दादि करताहै, इसलिये सदा संभारकर मानस तारको ठीक करके बोलना चाहिये, जिससे कल्याण होवे इत्यादि। अथवा शरीरविषयक आसक्ति आत्मबुद्धि आदिका त्यागपूर्वक संभारकर बोलनेके लिये उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो! जिनको यन्त्र बजातेहुवे सुनाहै सो बजावनहार जब इस शरीरीसे चले वा चलतेहैं, तब इस शरीरके श्वास प्रश्वासादिरूप सबतार टूटगये और टूट जातेहैं। फिर यह बेचारा यन्त्र क्याकर सकताहै? किन्तु कुछ नहीं बल्कि इसका नाश होजाताहै यह प्रत्यक्ष है, इससे मिथ्या तुच्छरूप इस यन्त्रमें आसक्ति आदिका त्यागपूर्वक संभारकर शब्द बोलना चाहिये। या विभु एक चेतनात्मा और शरीरसे भिन्न जीव कैसे जाना जाता है? कि जिसके अहेरी कालको कहा गयाहै, ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहतेहैं कि यन्त्रको बजानेवाला जीव है, यह बात सतगुरु सतशास्त्रसे मैंने सुना है, और बजाताहै सो शब्दभी हम लोगोंने प्रत्यक्ष सुनाहै, और उसीके चलनेसे जब नाड़ी प्राणादि रूप सबतार टूट गये, तो विभु आत्माके रहने हुये भी यह बेचारा यन्त्र क्याकर सकताहै? इससे सिद्ध हुआ कि जिसके रहनेसे यन्त्र बजताहै जिसके चलजानेसे नहीं बजताहै सोई जीव कालके बशमें होताहै इत्यादि।

२६६ साखी दोहा।

जौं लगि ढोला तौं लगी, बोला धन व्यहार।
ढोला फूटा धन गया, कोई न झांकै द्वार ॥ २६६ ॥

टीक—औरभी साहेव उपदेश देतेहैं कि हेमनुष्यो! जौं लगि [जबतक] ढोला [शरीर] रहतेहैं, तबतक जो मनुष्य धनकेही व्यवहार बोलतेहैं, या धनके और राज्य लोग कुटुम्बादिके व्यवहारोंकोही जो बोलतेहैं, और संभारकर अपने कल्याणके लिये नहीं बोलतेहैं, उन लोगोंका जब ढोला फूटताहै वा फूटा, तब उनका धन गया और जाताहै, अर्थात् कोई धनादि उनके नहीं रहते हैं। और उनके इष्ट, मित्र, भाई, बन्धु और धनादि कोई भी मृत्युके द्वाको नहीं झांकतेहैं अर्थात् मृत्युके मार्गको नहीं बन्द करतेहैं। अथवा जब धन जाने लगतेहैं तो उनके मार्गको भी कोई नहीं बन्द करतेहैं। अर्थात् इष्टमित्र कोईभी उन धनोंको साथ नहीं भेजते हैं। या आश्चर्यहै कि ढोला फूटनेपर धनादि सब अवश्यही जातेहैं, तौभी उन्हें त्यागकर कोई मोक्षके द्वारको नहीं झांकताहै यानी नहीं देखताहै, तथा संभारकर सारशब्द नहीं बोलताहै किन्तु मानव तनको मिथ्या धन व्यवहारमेंही वीताताहै। परन्तु तुम धन व्यवहारादिके आसक्तियोंको त्यागकर अपने कल्याणके लिये यत्न करो इत्यादि। [जौं लगि ढोला बोलिया, तौं लगि धन व्यवहार] यह पाठ भेद है अर्थ है कि जबतक शरीर बोलते रहताहै तभीतक पुरुषके धन व्यवहार सब बने रहतेहैं। और ढोला फूटनेपर धन चला जाताहै। और व्यवहारके लियेभी इसके द्वारपर कोई नहीं झांकता नाम नहीं देखताहै इत्यादि।

२६७ साखी दोहा।

जैसी लागी ओरकी, तैसि निबाहै छोर।
कौड़ी कौड़ी जोरि कै, जूटे लच्छ करोर ॥ २६७ ॥

टीका—औरभी कहतेहैं कि पूर्वकही रीतिसे धन न, किसीके साथ जाताहै न मृत्यु वा दुःखके द्वारको ढांपताहीहै, तौभी मनुष्योंकी चित्तवृत्ति 'जैसी ओरकी' नाम अनादि कालकी वा बाल्यावस्थाकी धन सम्पत्तिमें लगी रहतीहै और लगीहै। तैसी ही वृत्तिको लोग 'छोर' नाम अन्त मरणकालतक निबाहतेहैं यानी स्थिर रखतेहैं। और अनेकों अन्याय परपीड़ा आदिसे 'कौड़ी २' धन जोड़कर तब लक्षकरोड़ादि धन इन्हें जूटताहै, फिरभी उसमें आसक्त रहनेसे विवेकादि बिना उचित दया दानादिका सम्पादन नहीं करतेहैं। परन्तु हेसज्जनो! तुम इस विषयक आसक्तिको त्यागो इत्यादि। अथवा कहतेहैं कि हेसज्जनो! जैसे अविवेकी लोग ओरसे छोर-तक धनमें लगी वृत्तिको निबाहतेहैं। और कौड़ी २ जोड़कर लक्षकरोड़ धनको जुटातेहैं। तैसेही

तुम धनको नश्वर जानकर, संभारकर बोलनेमें विवेक वैराग्य विचारादिमें जैसी वृत्तिको ओर में लगावो, नाम गुरुउपदेशादि कालमें जैसी वृत्तिहोवे तैसी सतमार्ग विचारादिमें लगी वृत्तिको अनुभव वा मरणरूप छोरतक निबाहदो, तो करोड़ोंके सदृश तेरा लक्ष्यस्वरूप जुटेगा नाम आत्माकी प्राप्ति होगी। अथवा कौड़ी २ जोड़के जैसे लक्षकरोड़ जुटताहै। तैसे धीरे २ भी सदा श्रवणादि करने से तुझे विज्ञान तथा मोक्षकी प्राप्ति अवश्य होगी। इससे अवश्य अपने कल्याणके लिये सावधानता पूर्वक ओरसे छोरतक यत्न करो इत्यादि।

२९८ साखी छन्द सरसी।

पारस परसि तामाँ भौ कञ्चन, बहुरि न तामाँ होय।
परिमल बास परासहिं बेधे, काष्ठ कहै नहिं कोय॥ २९८॥

टीका—पूर्वकही रीतिसे सदा शब्दको संभारकर बोलनेसे, तथा गुरुशरणमें प्राप्त होकर सदा विचारादि करनेसे, गुरुरूप पारसका परससे जीव पारस होताहै, और आनन्दस्वरूप नित्यमुक्त ब्रह्मात्मारूप चन्दनका परससे आनन्दस्वरूप मुक्त होताहै, सो फिर कभी संसारी नहीं होताहै न उसे कोई संसारी कहताहै। जैसे पारसका स्पर्शसे जो तामाँ लोहा कंचन होगयाहै, सो फिर तामाँ लोहा नहीं होताहै। और परिमल (चन्दन) के बास सुगन्ध जिस परासमें बेध जाताहै, उसको कोईभी काष्ठ नहीं कहताहै, किन्तु चन्दन कहताहै। तैसेही गुरुका सङ्ग और उनके उपदेशका स्पर्श आत्मनिष्ठासे जो जीव पुनरावृत्ति रहित मुक्त होजातेहैं, कोई विचारमान फिर उन जीवोंको संसारी आदि नहीं कहतेहैं। परन्तु जिन पुरुषोंको विषय बासना आदि रहनेसे अन्तः-करणसे स्पर्श नहीं होताहै वे लोग गुरुके पासमें रहतेभी संसारी रहजातेहैं। उनमें गुरुके उपदेश नहीं बेधताहै, इससे सब वासना आदिका त्याग तथा विचार सत्सङ्गादि करना चाहिये जिससे कल्याण होवे इत्यादि।

२९९ साखी दोहा।

सारा पट्टन जरि गया, अपनी अपनी आगि।
ऐसा कोइ न देखिये, जासो रहिये लागि॥ २९९॥

टीका—औरभी उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो! अज्ञानी देवादि सबही अपनी अपनी कामादि रागद्वेषादिरूप अग्निसे जरगये और जररहेहैं। और सब विषयादिभी रागद्वेषादिके विषय तथा नश्वर हैं। इससे 'सारा पट्टन' नाम यह सम्पूर्ण संसार अपनी अपनी आगिसे जर गया। और जररहाहै। इसलिये कामादिरूप अग्निसे रहित तथा नित्य अविनाशी आनन्दस्वरूप सद्गुरुसे और ब्रह्मात्मासे भिन्न कोई ऐसी पुरुषादि नही देखे जातेहैं, कि 'जासो' नाम जिनसे लागकर रहा

जावे वा रहें, और कल्याण होवे। इसलिये सबके सङ्ग सब विषयक आसक्ति आदिको त्यागकर सद्गुरुके सङ्ग आत्मविचारादि करो जिससे नित्य अविनाशी आनन्दकी प्राप्ति होवे इत्यादि। ई जग जरते देखिया। यह प्रथम पादका पाठभेद है।

३०० साखी दोहा।

ताहि न कहिये पारखी, पाहन लखै जु कोय।
ई दिल नग जु कोइ लखै, रतन पारखी सोय॥ ३००॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि वास्तविक ज्ञानी किनको जानना चाहिये कि जिनके शरणमें प्राप्ति से जीवोंको कल्याण होताहै, क्योंकि किसी देव लोक वस्तु गुण कर्मादिके ज्ञानी सब मनुष्य हैं। तथा सब प्राणी हैं। तब साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! ताहि [उस] पुरुषको वास्तविक पारखी[ज्ञानी विवेकी] नहीं कहना चाहिये, कि जु कोय [जो कोई] हीरा लाल पन्ना आदि रूप 'पाहन' नाम पत्थरको लखता होवे। तथा उसके सदृश जड़ प्रकृति आदि कोभी जो लखता होवे, उस अनात्म पारखीको भी वस्तुतः पारखी नहीं कहना चाहिये। किन्तु 'सोय' नाम सोई पुरुष वास्तविक स्वयं प्रकाश रूप रतनका पारखी है, कि जो कोई 'इ दिल नग' नाम अपरोक्ष अन्तःकरणमें वृत्ति नग सदृश आत्मवस्तु को लखता है। या 'नग' नाम गमनादि रहित कूटस्थ आत्मवस्तु को जो अपने दिलमें लखता है, सोई सत्य रतनका पारखी है। इससे जो कोई पाहन लखता होवे उसको पारखी नहीं कहना चाहिये इत्यादि न जानना चाहिये। इसलिये दिलरूप अङ्गुठी और उसके नगरूप आत्माको जानने वाला वास्तविक ज्ञानीकेही शरणमें जिज्ञासुको प्राप्त होना चाहिये जिससे कल्याण होवे इत्यादि।

३०१ साखी छ० चौपाई।

तीनि लोकमें लागी आगि।
कहहिं कबिर कहँ जैहहु भागि॥ ३०१॥

टीका—शंका हुई कि मनुष्य-लोकमें काम राग द्वेषादि व्याप्त हैं, इससे सद्गुरु की शरणागति बिना अज्ञानियोंके सङ्गादिसे कल्याण नहीं होसकता है, परन्तु स्वर्गादिमें तो कामादि रहित दिव्य स्वभाववाले देव लोग रहते हैं, इसलिये कर्मोपासनादिसे उन लोकोंमें प्राप्त होनेसेही कल्याण होसकता है। तब साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! जो कोई लोक हैं सो सब तीन लोकके अन्दर हैं। और अनात्म स्वरूप तीनों लोकोंमें काम क्रोधादि रूप अग्नि अज्ञानियोंमें लगी है, कोई अज्ञानी कहीं भी कामादिरूप अग्निसे रहित नहीं हैं, तो ज्ञान विरागादि बिना इन अग्नियोंसे बँचने के लिये कहाँ भागकर जावोगे, कि जहां बँचोगे? अर्थात् गुरुशरणागति पूर्वक ज्ञानकी प्राप्ति विरति विरागादि बिना कहींभी जानेसे कल्याण नहीं होसकता है। इसलिये कहींभी जानेकी इच्छा नहीं करो किन्तु विवेक विज्ञानादिकी प्राप्ति करो इत्यादि

३०२ साखी दोहा।

नग पषाण जग सकल है, लखबैया सब कोय।
या नग उत्तम पारखी, जग में बिरला होय ॥ ३०२ ॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि तीनों लोकोंमें सर्वत्र कामादि रूप अग्नि क्यों लगी है ? तब साहेब कहते हैं कि यह सकल जग असत नग और पषाण रूप है, नाम जड़ पत्थरके सदृश है, या सम्पूर्ण जगमें नाम पृथ्वीमें हीरा आदि रूप नग और अनेकों चालके पाषण हैं तथा मन और मनोरथादि रूप पाषाण सकल जगमें हैं, उन पाषाणों के 'लखबैया' नाम उन्हें सत्य सुखादिरूपसे जाननेवाले सब कोई हैं, परन्तु 'या नग' नाम इस अपरोक्ष चेतनरूप उत्तम नगके पारखी इस तीन लोकरूप जगमें कोई बिरलेही होते हैं, इससे तीनों लोकमें अग्नि लगी है। अथवा आत्मवस्तु स्वरूप स्वयं प्रकाश कूटस्थ चेतनरूप नग पाषाण सकल जगमें व्यापक है, और उसको सामान्य रूपसे परोक्ष लखबैया 'जानने बाला' भी सब जोई हैं, मैंहूँ, चेतनहूं इत्यादि अहं आदि स्वरूपसे उसको सब कोई जानते भी हैं, परन्तु इस नगके उत्तम पारखी नाम सत चित आनन्द असंसारी आदि रूपसे उसके यथार्थ अपरोक्ष अनुभववाले पुरुष जगमें विरलेही होते हैं। और उत्तम पारखी हुये बिना अग्निकी निवृत्ति नहीं होती है, इससे तीनों लोकमें अग्नि लगी है। इत्यादि

३०३ साखी छ० सरसी।

एक न भूला दोय न भूला, भूला सब संसार।
जानि बूझि के जो नर भूला, ताको बार न पार ॥ ३०३ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! पूर्वकहे पारख बिना, तथा उसके हेतु विचार सत्सङ्गादि बिना, इस दुःखद संसारमें एक वा दो प्राणी नहीं भूले हैं, किन्तु सब संसार भूले हुये हैं यानी कुमार्ग दुःखद वस्तु जन्म मरणादिमें सब संसारी जीव जारहे हैं। और राग-द्वेषादिसे जरभी रहेहैं। परन्तु इनमें भी जो मनुष्य जान बूझकर भूलाहै, नाम किसी महात्मासे पूछकर और धर्म, अधर्म, सत्य, मिथ्या, सुख, और दुखादिको जानकर भी, जो उत्कट-राग द्वेषादिके बश होकर और विचारादिके अभावसे जो भूला है, अर्थात् अधर्म अभिमानादि परायण हुआहै, साहेब कहतेहैं कि उस मनुष्यको इस संसारात्मक समुद्रके बार-पारमें प्राप्ति नहीं होतीहै, किन्तु वह पुरुष बारम्बार इसमें बूड़ताहै। और पीड़ित होताहै। अर्थात् जो पुरुष जान बूझकर उत्कट काम अभिमान नास्तिकता प्रबल बासना आदिसे अधर्म कुमार्ग विषयादिमें आसक्त होताहै, उसको अपरोक्ष अनुभव आत्म-साक्षात्कार नहीं होताहै। इससे अविद्यादि बश शाब्द परोक्षज्ञान होनेपरभी बारम्बार जन्मता मरताहै इत्यादि। इसलिये सद्गुरुसे जान बूझकर अत्यन्त सावधानीसे भूलोंको नष्ट करना चाहिये। भाव यह है कि ज्ञात

पापादि अत्यन्त कठिन होजाते हैं, अज्ञातकी कथञ्चित् निवृत्ति भी होती है। या कहते हैं कि इस संसारमें पूर्ण-पारखके प्राप्त करनेवाले एक वा दोही नहीं भूले हैं, और उनसे भिन्न सब संसार ही भूला है, परन्तु उसमें भी जो जान बूझकर नाम विवेकादि को प्राप्त करके तथा लौकिक चतुराई को प्राप्त करके भूला है, उसको 'बार' नाम संसारही होता है। और वह पार नहीं होता है तथा ज्ञानी मानकर वह बहुत अन्याय अनर्थ करता है इत्यादि।

३०४ साखी दोहा।

जरा युवा कुमार बालापन, चारि अवस्था आय।
जस मुसवा को तकै बिलइया, अस यम घात लगाय॥ ३०४॥

टीका—अनवधानता, चूक, विस्मरण और प्रमादरूप अनर्थके हेतु भूलको और उसके हेतु अविद्याको शीघ्र निवारण करनेके लिये फिरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि हेमनुष्यो! पुरुषकी बाल, कुमार, युवा,और वृद्ध ये चार अवस्था 'आय' होती हैं। और उन चारों अवस्थाओंमें इसको मारनेके लिये यम'अस' नाम इस प्रकारसे घात लगाये रहता है कि जैसे मूसको बिलाई ताकती रहती है, और उसको मारनेके लिये दावघात लगाये रहती है। इसलिये तुम वृद्धादि अवस्थाओंकी आशा नहीं करो किन्तु मूलसहित भूलको शीघ्रही नष्ट करो तथा पारखी गुरुके शरणमें जाकर यथार्थ अपरोक्ष ज्ञानकी प्राप्ति करो इत्यादि, जिससे बारम्बार यमके बशमें नहीं पड़ना होवे। अथवा कहते हैं कि हे सज्जनो! मनुष्यकी चार अवस्था भी प्राप्त होगई तोभी जैसे मूसको बिलाई ताकती है, तैसेही भूल-युक्त मनुष्य पर प्राणीकी हिंसा अपकारके लिये यमघात लगाये रहते हैं। और वह भूल इन मनुष्यों के ऊपर यमरूप होकर घात लगाये रहता है। इसलिये इस अनर्थके हेतु भूलको विवेक, विचार, पारख, और सावधानतासे नष्ट करो इत्यादि।

३०५ साखी दोहा।

श्रोता तो घरमें नहीं, वक्ता बकै सो बादि।
श्रोता वक्ता एक है, कथा सुनावहु आदि॥ ३०५॥

टीका—जिज्ञासुओंके प्रति तथा साधारण मनुष्योंके प्रति कर्तव्याकर्तव्यादिका उपदेश करके ज्ञानी शिष्य तथा उपदेशकके कर्तव्याकर्तव्यका संक्षेपसे वर्णन करते हैं, कि जो 'श्रोता' घरमें नहीं होवे अर्थात् अपने शरीर वा हृदयमें सावधानता पूर्वक पूर्वकही रीतिसे नहीं हो, किन्तु मनोरथ इच्छा संकल्पादि द्वारा विषय लोकादिमें भटकता होवे, ऐसे श्रोताके प्रति जो वक्ता उपदेशक बकता है, तथा उसके भावादिको जाने बिना कुछ कहता है, सो उसका कहना बादि (निरथक) होता है। इसलिये हे वक्ताओ! जब श्रोता 'एक है' नाम एकाग्र समाहित चित्तवालाहो, तथा केवल मोक्षपरायण होजावें, तब आदिकी कथा सुनावहु यानी तब अपनी माया तथा सत्तासे

संसारके आदि स्वरूप वस्तुके उपदेश करो। या हेवक्ताओ! जब श्रोता वक्ताके साथ एकता होजावे, यानी वक्तामें श्रद्धाभक्तिसे युक्त होजावे और गुरुपरायण शुभाचारादि युक्त होवे, तब आदिकी कथा सुनावहु, जिससे सूक्ष्मवस्तु-मार्गका उसको बोध होवे। बहिर्मुखके उपदेश देने परभी आत्मवस्तुका बोध नहीं होसकता है, इसलिये बहिर्मुखको प्रथम बिराग शुभाचार भक्तिकाही उपदेश देना चाहिये यह तात्पर्य है।

३०६ साखी दोहा।

औरन को उपदेशते, मुहड़े परिहैं रेत।
राशि बिरानी राखते, खाइन घरका खेत॥ ३०६॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! 'औरनको' नाम घरमें नहीं रहनेवाले विवेक श्रद्धा भक्ति आदि रहित अनधिकारी पुरुषोंको 'उपदेशते' नाम उपदेश देनेसे अविवेकी उपदेशकके 'मुहड़े' नाम मुखमें रेत पड़ेंगे, और पड़ते हैं। अर्थात् फलहोना दूर रहता है मुखमें धूली पड़ती है, तथा व्यर्थ हैरानी होती है। अथवा अमूल्य आत्मवस्तु विचारादिरूप 'मुहर' नाम मोहरमें अन्यको उपदेश देनेसे रेत पड़ेंगे और पड़ते हैं। अर्थात् अनधिकारी आग्रही आदिके प्रति उपदेशसे और उनके सङ्गादिसे रागद्वेषादिकी आपत्ति होगी तथा अभिमान बढ़ेंगे मन्दज्ञानका नाशभी होगा जीवन्मुक्तिके आनन्द नहीं प्राप्त होंगे इत्यादि। इससे अनधिकारियोंको उपदेश देनेवालोंने मानों 'बिरानी राशिको' नाम अन्नादिके समुदायको 'राखतेमें' नाम उसकी रक्षा करतेमें घरके खेतकोभी खागये नष्ट करलिये। अर्थात् अनधिकारीको उपदेश देनेवाले उसका कल्याणभी नहीं करसके, और अपने कल्याणमें भी विघ्न उपस्थित करलिये और करलेते हैं। जैसे कोई पुरुष अन्यकी राशिकी रक्षा करताहो सोभी नहीं होसके और उसका अपना खेतभी पशु आदि चरजावे इत्यादि, इससे अनधिकारीके प्रति उपदेश नहीं देना चाहिये।

३०७ साखी दोहा।

कबिरा कुत्ता राम का, मुतिया वाका नाँय।
गले प्रेम की जेवरी, जित खींचे तित जाय॥ ३०७॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि 'कबिरा' नाम ये जीव सब कर्मका फल देनेवाला 'राम का' नाम ईश्वरका कुत्ता सदृश होगयाहै। अर्थात् जैसे कुत्ता एक टुकड़े रोटी आदिके लिये स्वामीके अधीन रहता है। तैसेही तुच्छ भोगोंके लिये जीव सब ईश्वरके बशमें हुये रहते हैं। और जैसे किसी कुत्ताकाभी मुतिया अर्थात् मोतिया नाम होवे यानी श्रेष्ठ नाम होवे, और वह श्रेष्ठ होवे नहीं। तैसेही मानव तनको प्राप्त जीवोंके मोतिया नाम है, अर्थात् श्रेष्ठ मोतीके सदृश कहेजाते हैं, तथा अन्य जीवोंके अपेक्षा बिवेकी समझे जाते हैं, परन्तु तुच्छ भोगादिको चाहनेवाले मनुष्य वस्तुतः

श्रेष्ठ नहीं हैं। क्योंकि जैसे कुत्तेके गलेमें जेवरी रहनेसे उसे स्वामी जिधर ही खींचताहै उधर ही कुत्ता जाता है। तैसेही इन मनुष्योंकी बुद्धिमें स्वामी विषयक और विषयादि विषयक प्रेमकी जेवरी है यानी स्नेह विषयासक्तिकी डोर लगी है। और उस प्रेमसेही वह ईश्वर इन्हें जिन योनि आदिकोंमें खींचता है, ये जीव सब उसी तरफ उन योनि आदिकोंमें जाते हैं, इससे इनके प्रति सत्यात्मवस्तुके उपदेशादि व्यर्थ होजाते हैं। सम्प्रदायसे एक कथा इस साखीके विषयमें सुनी जाती है कि कोई एक विषयी मनुष्य था। दयाबश कोई महात्मा उसे बिचार बिरागादिके लिये उपदेश दिये। तब वह कहा कि स्त्रीसम्बन्धी सुखको भोगकर आपका उपदेश श्रवण करूँगा। फिर कुछ दिनोंके बाद उपदेश दिये, तो बोला कि पुत्रोंका विवाहादि करलूंगा, तब श्रवण करूँगा। फिर बृद्ध होनेपर कहा कि दूसरे जन्ममें श्रवण करूंगा फिर वह मरकर कुत्ता हुआ, उसके मोतिया नाम हुआ। वह महात्मा अपनी दिव्य दृष्टिसे उसे जानकर कुछ समझशक्ति देकर पूर्वजन्मका याद दिलाये और उपदेश दिये तो बोला कि यहाँभी कुछ आनन्द भोग लेने दीजिये। फिर उसे बृद्ध होनेपर महात्मा उपदेश दिये कि अब भी तो चेतो अब क्या आनन्द तुझे मिलरहा है व्यर्थ दुःख भोगतेहो। तब वह बोला कि महात्माजी मेरा मोतिया नाम है, और यहाँके स्त्रीयाँ झगरतीहैं, तो मेरेही नामसे परस्पर गाली देती हैं। अर्थात् कहतीहैं कि तुम्हारा मोतिया पति भर्ता है, सो सुनकर मुझे बहुत आनन्द होता है, इसे अनुभव करने दीजिये इत्यादि। जैसे वह कुत्ता नाममात्रसे आनन्द मानताथा। तैसेही अज्ञानी मनुष्यभी नाममात्रसे आनन्द मानकर और उस सुख तथा तटस्थ राममें प्रेम करके बंधे रहतेहैं, और भटकते हैं, इससे इनके प्रति उपदेश निष्फल होता है। इसलिये जब श्रोता घरमें हो तभी सत्यात्माका उपदेश देनाचाहिये इत्यादि। वस्तुतः अर्थ है कि जो 'कबीरा' नाम जीव सद्गुरुस्वरूप रामका, तथा सर्वात्मस्वरूप रामका कुत्ता तुल्य है, रामके प्रति अभिमानादि रहित और श्रद्धाभक्ति युक्त है, इससे सत्य प्रेमरूप जेवरी जिसके गलेमें है, और सद्गुरु जिस मार्गमें खींचते हैं उधरही जाता है। या ईश्वर जिस सुख दुख दशामें खींचते हैं, उधर भी जाता है। अर्थात् आनन्द पूर्बक सुख दुखरूप प्रारब्धको जो भोगता है, और शोक चिन्तादि रहित होकर भक्ति पूर्बक बिचारादि करता है, सोई पुरुष सत्यात्मोपदेशका अधिकारी है इत्यादि। इससे उसीके मोतिया नाम है वह आब युक्त मोती तुल्य है और आवागमनसे रहित मोती वह हुआहै। तथा संसारात्मक समुद्रके जलभाव उसको नष्ट होगया है इत्यादि।

३०८ साखी दोहा।

चाखा चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
दो खाँड़ एक म्यान में, अबतक सुना न कान॥ ३०८॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि जो पुरुष 'प्रेमरस' नाम परप्रेमका विषय आत्मानन्द स्वरूप मोक्ष सुखकोभी 'चाखना चाहता है' नाम प्राप्त करना और अनुभव करना चाहता है, और 'मान' नाम जाति, कुल, गोत्र, गुण और विद्यादिका अभिमान भी रखना चाहता है, तो उस

पुरुषको प्रेमरसकी प्राप्ति नहीं होसकती है । या प्रेम भक्तिका रस अभिमानीको चाहने परभी नहीं प्राप्त होता है । क्योंकि एक म्यानमें जैसे 'दोखाँड़' नाम दो खड्ग अबतक कानसेभी नहीं सुना गया है । तैसेही एक हृदय तथा बुद्धिमेंभी परस्पर विरोधी प्रेमरस और मान दोनों नहीं रह सकते हैं, इसलिये मान रहितके प्रति उपदेश देना चाहिये । और मान रहित होकर प्रेमरस को चाखना चाहिये इत्यादि । अथवा अनात्म वस्तुका मान आग्रहादिसे सत्य प्रेमरसकी प्राप्ति नहीं होती है, इसलिये उन्हें त्यागना चाहिये जिससे कल्याण होवे इत्यादि ।

३०६ साखी दोहा ।

अहिरहुं तजि खसमहुं तजी, बिना दांत का ढ़ोर ।
मुक्ति बिना बिललातहै, बृन्दा बन की खोर ॥ ३०६ ॥

टीका—जो पुरुष ईश्वरसे तुच्छ भोग चाहते हैं, और भोगहीके लिये प्रेम करते हैं, और सद्गुरु परात्मामें सत्यप्रेम नहीं करते हैं, किन्तु अभिमान करते हैं । उनकी दुर्दशाका वर्णन करते हैं कि जैसे दांत रहित किसी बृद्ध ढ़ोर [बैल] को चरानेवाला अहीर और उसका स्वामी दोनों त्याग दियेहो, और वह बृद्ध ढ़ोर शरीरसे मुक्त हुये विना अपना अभक्ष्य तुलसीके पवित्र बनमें भटकताहो, और उस तुलसीको अभक्ष्य होनेसे पवित्र उस औषधीसेभी अपने क्षुधादि जन्य दुःखको वारण नहीं कर सकताहै । तैसेही अभिमान आग्रह जड़तायुक्त विवेक विचार सत्य प्रेमादिरूप दाँत रहित जिस मनुष्यरूप ढ़ोरको सद्गुरुरूप अहीर और सर्वात्म-स्वरूप खसम दोनों त्याग दिये हैं । सो मुक्ति बिना इस संसाररूप बृन्दाबनके 'खोर' नाम खोरी गली मार्गमें, अर्थात् अनेकों योनि आदिमें बिललाता फिरता है नाम बेहाल दीन होकर भटकता फिरता है । या बृन्दाबनके 'खोर' नाम अपराधसे भटकते फिरता है । अर्थात् गुरु आदि बिना बृन्दाबनादि तीर्थोंके गलियोंमें भी बेहाल हुआ मुक्ति रहितही फिरता है इत्यादि इसलिये अवश्य विवेकादि युक्त होकर सत्य प्रेम भक्ति युक्त होना चाहिये, और अभिमानोंको त्यागना चाहिये, जिससे कल्याण होवे इत्यादि ।

३१० साखी दोहा ।

धरती फाटे मेघ जल, कपड़ा फाटे डोर ।
तनफाटे की औषधी, मन फाटे नहिं ठौर ॥ ३१० ॥

टीका—जिज्ञासा हुइ कि वह पुरुष मुक्ति बिना क्यों बिललाता है? तब साहेब कहते हैं कि फटी हुई पृथ्वी मेघके जलसे जुट जाती है, और कपड़ा फटनेपर डोरासे सीनेपर जुटजाता है, और रोग शस्त्रादिसे कुछ शरीर फटनेपर औषधीसे जुट जाता है, परन्तु सतगुरु सतमार्ग

तथा ब्रह्मात्मासे मनको फठनेपर, अर्थात् पृथक होजानेपर जीवको कहीं ठौर ठिकाना नहीं मिलता है। इससे अविद्या कामकर्म बासनादि बश होकर भटकते फिरता है तथा सत मार्गादिमें नहीं जुटता है इत्यादि।

३११ साखी छन्द हरि गीतिका, वा, सार।

दिलका महरमि कोइ न मिलिया, जो मिलिया सो गरजी।
कहहिं कबिर असमानहिं फाटा, केतिक सीवे दरजी॥ ३११॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि उस फटा हुआ दिलका 'मनका' महरमी 'भेदी' अर्थात् उसके स्वरूप स्वभावादिको जानकर उसे सतमार्गादि में जुटानेकी इच्छावाला न कोई मिला न मिलता है। भाव यह है कि सतगुरु सर्वात्मासे मेल कोई बिरले जिज्ञासु चाहते हैं, अन्य लोग नहीं चाहतेहैं। या पूर्वकहे फटे हुये मनको सतमार्गादिमें जोड़नेवाले मरमी सतगुरु भी कोई नहीं मिलते हैं। किन्तु जो कोई गुरु वा शिष्य मिले वा मिलते हैं, सो गरजीही मिले वा मिलते हैं। अर्थात् अज्ञानी विराग विवेकादि रहित गुरु शिष्य दोनों लौकिक प्रयोजन मर्यादादि केही भूखे हैं, सत मार्गादिमें मनको नहीं जोड़तेहैं तथा उसके भेदकोभी नहीं जानतेहैं। जिज्ञासाहुई कि जो कोई मरमी ज्ञानी महात्मा हैं, सोई सब मनुष्योंके मनोंको सतगुरु सतमार्गादि में क्यों नहीं जोड़ देते हैं? तब साहेब कहते हैं कि असमान ही फटा हुआ है तो उसका दरजी 'केतिक' नाम कहाँतक सीवे अर्थात् स्वभावसे और गुरुवाओंसे बहके बहकाये हुये कुमार्ग असत्य वस्तुमें फँसे हुये सब मनुष्योंके मनोंको जो महात्मा होतेहैं सो कहाँ-तक सतमार्गमें जोड़ सकते हैं, अर्थात् नहीं जोड़ सकते हैं। इससे जीव संसारमें बिललाते हैं इत्यादि।

३१२ साखी छ० चौपाई।

एक बिराजु महलमें बैठा। दोसर कहहु कौनदे पैठा।
जाके घरमें लागै भूता। सो कस बकै हरामी पूता॥ ३१२॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि जबतक मनुष्योंके हृदयरूप महलमें दुष्ट मन रूप वा कोई असत्य पदार्थरूप वस्तु वा असत उपदेश बैठा हुआ विराजमान होरहा है, और सब जगह दरवाजोंको रोक रखा है तो कहो कि तबतक दुसरा सत्य उपदेश कौनदे? अर्थात् किस द्वारेसे पैठा वा पैठ सकता है? या विषयाशक्ति आदिको त्याग पूर्वक मनको वशमें किये बिना तथा विचारादि बिना सत्य उपदेश भी निष्फल होजाता है। और 'जाके' नाम जिस पुरुषके हृदयरूप 'घरमें भूत लगेहैं' नाम भूतावेशके सदृश भूतभौतिक पदार्थ वा असत्य उपदेश जिसके हृदयमें लग गयेहैं, उनमें ही आग्रह सत्य सुखदादि बुद्धि जिसको होगयेहैं, सो पुरुष सत्य उपदेश देनेपर कैसे बकताहै कि जैसे 'हरामीके पूत' नाम पुत्र

बकता हो, अर्थात् दुष्टा स्त्रीके कुपुत्र सदृश वह बोलताहै। या मुसलमान कुत्ता सूकरको हराम कहतेहैं। उसकी स्त्री हरामीहै उसके पुत्र सदृश भूमभौतिकमें आसक्त पुरुष सत्य उपदेश सुनकर बोलने लगजातेहैं। उनके मनको सतमार्गादिमें जुटना दूर रहजाताहै। क्योंकि एकतो मनुष्योंको सदुपदेशक नही मिलतेहैं, तथा मिलनेपर भी उनके उपदेशको दुरदृष्टि बश नही मानतेहैं, इसलिये बिललाते फिरतेहैं यह सिद्धहुआ। अथवा जो पुरुष सद्गुरु ब्रह्मात्मासे दिल फटनेसे अनात्मवस्तुको अपने शरीर हृदयादिमें पैठा हुआ मानते और भजतेहैं। उनके प्रति कहतेहैं कि एक अखण्डचिदात्मा सब प्राणीके महलोंमें बैठकर क्रियारहित विराज रहाहै, नाम प्रकाश कर रहा है, तो कहो कि दूसरा परमात्मा 'कौनदे' नाम किस रास्ते वा किस प्रयोजनके लिये पैठा? अर्थात् सत्यचिदात्मा एकही सत्यहै। अन्य औपधिक कल्पित मिथ्या हैं, तोभी जिस पुरुषके शरीर हृदय बुद्धिरूप घरमें भूत लगेहैं सो पुरुष हरामीके पूतके सदृश अनेक चेतन अनेक सत्यवस्तु ईश्वरादि बकता है इत्यादि।

३१३ साखी दोहा।

कबहुंक मन खलखल हँसे, कबहुंक ऊठे रोय।
कबहुंक मनुआँ पर जरे, कबहुंक चला विगोय॥ ३१३॥

टीका—भूत लगनेसे ही जो जीवोंकी दशा होरहीहै उसका वर्णन करतेहैं कि भूताविष्टके सदृश जो यह 'मन' नाम विवेकादि रहित मनके बशवर्ती जीव है, सो कबहुँ तो खल खल शब्द करके हँसताहै नाम स्त्री पुत्र धनादिकी प्राप्ति कालमें आनन्दयुक्त होकर हँसताहै। और उनसे वियोगादि कालमें 'कबहुँ रो उठता है' नाम रोने लग जाताहै। और 'कबहुँक' नाम विरोधादि कालमें यह पर पुरुषको तथा उसकी सम्पत्ति आदिको देखकर जरताहै। अथवा कठिन रोग शोकादि कालमें 'पर जड़ता है' नाम अत्यन्त तापोंसे पीड़ित होताहै। और 'कबहुँ' मरणादि कालमें प्राप्त शरीर सम्पत्ति आदिको ' विगोयकर चलता है ' नाम नष्ट करकेतथा त्याग करके चलताहै। या कबहुँ सब बात व्यवहारादिको भुलाकर तथा छिपाकर इस शरीरको नष्टभ्रष्ट करके चलता है, इससे भूताविष्टके सदृश असत व्यवहारवाले मनुष्योंके घरमें भूत लगा है यह प्रतीत होताहै। और उनके प्रति सत्य उपदेश भी व्यर्थ होताहै इत्यादि।

३१४ साखी दोहा।

जासु गोइ भीतर रहै, सो जानै सब बात।
जानि बूझि अजगुत करे, ताहि कहाँ कुशलात?॥ ३१४॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि भूताविष्टगरजी विवेकादि रहित होनेसे, हिंसा चोरी असत्य भाषाणादि करके 'जासु' नाम जिस अन्य पुरुषसे 'गोय कर' नाम छिपाकर अपने अपने शरीरके भीतर पुरुष रहते हैं, सो पुरुष सब बात जानते हैं। अर्थात् सबका अन्तरात्मा एकहै सो सब छिपाई हुई बातोंको भी प्रकाशताहै। इससे जो पुरुष जान बूझकर 'अजगुत' नाम अनर्थ आश्चर्यरूप कर्मादि करतेहैं। उन्हें छिपाने आदिसेभी 'कुशलात' नाम कुशलता भलाई कहाँ हो सकतीहै? किन्तु कहीं नहीं होसकती है। इसीसे वे भूताविष्टके सदृश संसारमें बिललाते हैं। इत्यादि अथवा अज्ञानी लोग पापादिको 'जासु' नाम जिन हेतुओंसे गोकर भीतर रखतेहैं, और प्रगट पापादिकोंको शब्दजाल युक्ति आदिसे जिन हेतुओंसे छिपातेहैं, कि कोई जान जावेगा तो दण्ड देगा निन्दा होगी इत्यादि, सो सब हेतु और सब बातका हृदय रूप महलमें विराजनेवाला चिदात्मा जानताहै। इसलिये जान बूझकर जो अजगुत करताहै सद्गुरु सतमार्गमें अपने मनको नहीं जोड़ताहै उस पुरुषका कल्याण कहाँ होसकताहै, अर्थात् कहीं नहीं होसकताहै। इसलिये गोकर नहीं रखना चाहिये। और अजगुत भी नहीं करना चहिये इत्यादि। (जासो गोइ रहे सोइ, मन जानै सब बात। यह पाठ भेदहै, अर्थहै कि जिस हेतु वा जिस पुरुषसे छिपाकर रहतेहैं। सो पुरुष सर्वात्मारूपसे मनकी सब बातोंको जानताहै। या जिस दूसरे को दुखदायी जानकर छिपातेहैं, सोई दुखद अन्यस्वरूप मनहै, और सो सब बात जानताहै। उस मनको जान बूझकर भी जो पुरुष अजगुत करतेहैं, उन्हें कुशलात कहाँ है अर्थात् नहीं है। उन्हें उपदेश देना भी व्यर्थ होताहै इत्यादि।

३१५ साखी दोहा।

सांकठ कोइ न देखिया, सबे बैष्णवा झारि।
संशय ते सांकठ भया, कहहिं कबीर पुकारि॥ ३१५॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि किसी मनुष्यको मैं सांकठ (गुरु रहित) नहीं देखताहूँ न कोई सांकठ किसीको भी दीख पड़ताहै किन्तु 'सबे' नाम सभी मनुष्य झार बैष्णवही हैं। अर्थात् सब कोई किसी न किसीको 'विष्णु' नाम परमात्मा मानकर और उस विष्णुके मन्त्र सब मनुष्य अपने २ गुरुओंसे लियेहैं, और लेतेहैं, परन्तु आत्मवस्तुके संशयादिसे सब वस्तुतः सांकठ हुवेहैं। अर्थात् वास्तविक विष्णुके यथार्थज्ञान बिना और सद्गुरु सतवस्तु और सतमार्गमें मनके जुटे विना संशयस्वरूप मनके अधीन होकर सब मनुष्य वस्तुतः साँकठ हुवेहैं, इससे बिललातेहैं। सो साहेब पुकारकर कहतेहैं इत्यादि। या कोई सांकठ नहीं दीख पड़ताहै, क्योंकि सब मनुष्य तथा सब प्राणी झार बैष्णवहैं, अर्थात् सभी ब्रह्मात्मासरूप विष्णुके स्वरूप सम्ब-

न्धी हानेसे वैष्णवहैं, परन्तु संशयसे अनेक अनात्म विषयक विष्णु आदिपनके संशयज्ञान होने से सभी साँकठ हुवेहैं। और बिललातेहैं। सो साहेब पुकारके कहतेहैं इत्यादि।

३१६ साखी छ० सार।

छौ दर्शन का एक बिचारा, तासु नाम बनबारी।
कहहिं कबिर सब खलक सयाना, इस में हमहिं अनारी ॥ ३१६ ॥

टीका—जिसप्रकार सभी वैष्णवहैं, और वस्तुतः सांकठहैं उसका वर्णन करतेहैं कि योगी जङ्गमादि छःदर्शनोंका एकही बिचारहै कि तासु (उसका) नाम बनबारीहै अर्थात् अपने स्वरूपसे अत्यन्त भिन्न अनात्मस्वरूप परोक्ष शिव विष्णु आदिका बनवारी नामहै, क्योंकि ये लोग भक्ति आदि से प्रसन्न होनेपर संसाररूप बनका वारन यानी नाश करनेवाले हैं। तथा संसारात्मक जंगलसे रहित करके जीवको सुखी करनेवाले हैं। और अन्यायी पापीकोभी भक्ति ध्यानमात्रसे मुक्त करनेवाले ईश्वर ये लोगहैं। या संसारात्मक समुद्रके कुकर्मादिरूप 'बन' नाम जलको वारण करनेवाले शिवादिहैं। इस-लिये इनकी भक्तिसे तथा योगयुक्ति कामकर्म व्रतादिकही से कल्याण होजाताहै। और विवेक आत्मबिचार साम्यबुद्धि आदिके कोई फल नहींहैं, इत्यादि। छःदर्शनोंके प्रायः एक सदृशही विचारहै। और साहेब कहतेहैं कि इस एक विचारवाला 'सब खलक' नाम सम्पूर्ण संसार अपनी दृष्टिसे 'स-यानाहै' नाम आप अपनेको ज्ञानी मुक्तादि मानताहै। और इस संसारमें ' हमहिं ' नाम ज्ञानी महा-त्मालोग ही संसारकी दृष्टिसे अनारी (अज्ञानी) हैं। इससे यह संसार ज्ञानी महात्माओंसे न सुमा-र्गादि पूछताहै न कहनेपर श्रद्धादि पूर्वक सुनता है तथा मानता भी नहींहै, इसीसे यह संसार मुक्ति बिना बिललाताहै, तथा भूताविष्टके सदृश बकताहै इत्यादि, अथवा छःदर्शनके कल्याण कारक छः-दर्शनके मुख्य दया, अहिंसा, आत्मादि विषयक बिचार एकही है सो सत्यहै। और सत्य एक आत्मा कोही किसी २ उपाधि द्वारा सब विचारतेहैं। और 'तासु' नाम उसी बिचारका वा उस विचार के विषय सत्यवस्तुका बनबारी नामहै। इससे सब खलकही सयानाहै, परन्तु इसमें ' हमहिं ' नाम अहंकार करनेवाले ही अनारी हैं। अथवा सद्विचारही सबके लिये बनबारी है, परन्तु सब खलक अपने मनसेही सयाना है और इसमें हमीं सब अनारी होजातेहैं इत्यादि।

३१७ साखी दोहा।

सुर नर मुनि औ देवता, सात द्वीप नव खण्ड।
कहहिं कबिर सब को लगे, देहधरे का दण्ड ॥ ३१७ ॥

टीका—अनात्मस्वरूप देवादिकोंको भजकर देवादि भावकी इच्छा करनेवाले उन्हें बनबारी कहनेवाले उनसे मोक्षादि चाहनेवाले अभिमानियोंके प्रति उपदेश देतेहैं कि 'सुर' नाम सामान्यदेव, और 'नर' नाम सामान्यमनुष्य, और 'मुनि' नाम मननशील महात्मा, और 'देवता' नाम विशेषशक्ति दिव्यदृष्टि आदि युक्त देवता आदि जो कोई देहधारी सातद्वीप, तथा नवखण्डादिमें हैं। उन सभी देहियोंको देहधरेका दण्ड लगताहै। अर्थात् देहधारी होनेपर सबको दैहिक दुख भोगना पड़ताहै। इससे उन अवस्थाओंको किसी शरीराभिमानीको मुक्ति तथा मुक्त नहीं मानना चहिये। परन्तु आश्चर्यहै कि देह विशेषादिकेही लिये ये मनुष्य कामकर्मादि करतेहैं, और अपनेको सयान भी मानतेहैं, और अभिमानादि रहित महात्माओंके उपदेश को नहीं सुनतेहैं इसीसे मुक्ति बिना बिललाते हैं, और सर्वत्र देहाभिमानसे दण्ड भोगते हैं। इत्यादि भाव है॥ या कहतेहैं कि ज्ञान रहित संशययुक्त पुरुष चाहे सुरनरादि कोई होवें, और सातद्वीपादिमें कहीं जावें, परन्तु सबको देहधरेका दण्ड लगता है नाम देहमें आत्म अभिमानादि करनेसे दण्ड भोगना पड़ताहै, इससे देहाभिमानादिको त्यागना चाहिये एकात्मवस्तुको बिचारना तथा जानना चाहिये इत्यदि।

३१८ साखो चौपाई।

पूछत बात करै हंकारा। ज्यों आरण बन बड़ हड़ बारा॥

सांची बात कही मैं अपनी। भया रोष तब लागी कपनी॥ ३१८॥

टीका—साहेब कहतेहैं कि यद्यपि देहधारियोंको सर्वत्र दण्ड भोगने पड़तेहैं, तोभी विवेकादि रहित ज्ञानाभिमानी मनुष्य किसी महात्मासे जब कोई बात पूंछताहै उस कालमें भी 'हंकार' नाम अभिमान करताहै। वह कैसे पूछताहै कि मानो जैसे 'आरण बनके' नाम महाजङ्गलके मार्ग 'हड़बारा होवे' नाम दुष्ट क्रूर पशु वा व्याधा होवे, और पूछनेपर भी मैं 'सद्गुरुने' यदि अपनी उपदेशरूप सांची बात कही वा कहता हूँ तब उसको सुनकर अभिमानियोंको 'रोष' नाम क्रोध हुआ और होताहै, और रोष होनेसे उन्हें कँपनी लगी और लगती है इससे बारम्बार शरीर धरके बिललाते हैं। अथवा कहतेहैं कि सतशास्त्र युक्ति आदिसे सिद्धहै कि सब देही तथा देहाभिमानी दण्ड भोगतेहैं, तोभी सयानमानी अभिमानी षट्दर्शनादिकोंसे यदि बात पूंछी जावे कि देवता आदिको किस प्रकार सुखमय मानतेहो, या वक्ष्यमाण रीतिसे यदि उत्पत्ति आदिका पेड़ादि पूछे जावें तोभी वे लोग अहंकार ही करतेहैं, अहंकार रहित होकर बिचार सत्सङ्गादि नहीं करतेहैं क्योंकि ये लोग आरण बनके बड़े भारी हड़बाराके तुल्यहैं। और मैंने अपनी सांची बात कहीहै कि सब देहधारी दण्ड भोगते हैं। अथवा 'अपनी' नाम आत्मवस्तुके सत्य उपदेशरूप बात मैंने कही है। या 'अपनी' नाम अपनेही सतकर्म बिचारादिसे सुख कल्याण होतेहैं। केवल ईश्वर भी सुखादि

नहीं देतेहैं यह मैं सांची बात कही है, तोभी अभिमानियोंको उस बातसे रोष हुवा और होताहै। और रोष होनेसे इन्हें कँपनी लगी और लगती है। इससे मुक्ति बिना बिललातेहैं इत्यादि।

३१९ साखी दोहा।

बाणी तें पहि चानिये, चोर साधु की घाट।
जो करणी अन्दर बसै, निकले मुख की बाट॥ ३१९॥

टीका—जिज्ञासुके प्रति साहेब उपदेश देतेहैं कि अहंकारादि रहित विवेकी ज्ञानी आदि रूप साधुकी 'घाट' नाम घाटीको अर्थात् गुप्तमार्ग या दावको, तथा अभिमानी आदि रूप चोरोंकी घाटीको, उनकी बाणियोंसे ही पहचानना चाहिये, तथा जो कोई चोर साधुकी घाटपर होवे, अर्थात् साधुके वेषादिको धारण किया होवे, तो उसे भी बाणीसे पहचानना चाहिये, क्योंकि 'जो करनी' नाम कर्तव्य स्वभावादि अन्दरमें बसते हैं, सो अवश्य ही मुखकी बाट नाम मुखद्वारा निकलते हैं, इससे बाणीसे पहचानकर साधुओंका सङ्गादि करना चाहिये। और भूताविष्टके सदृश बकनेवालोंके सङ्गादि नहीं करना चाहिये इत्यादि।

३२० साखी दोहा।

कहँ उतपातिका पेड़ है, कहाँ प्रलय का ठाम।
तन छूटे कहँ जाहुगे, कहाँ बसायहु गाम?॥ ३२०॥

टीका—साधु असाधुपनकी पहचानके लिये पूछना चाहिये कि संसारकी 'उतपतिका पेड़ कहाँ है' नाम जन्मादि संसाररूप फल किस वृक्षमें लगते हैं। और संसारके प्रलयका ठाम कहाँ है? अर्थात् प्रलय कालमें यह किसमें लीन होताहै। और शरीर छूटनेपर कहाँ जावोगे? और अ-भी कहाँ गाम बसाये हो? अर्थात् आपके समझसे यह संसार शरीरादि किसमें स्थिर है? इत्यादि प्रश्नद्वारा जिज्ञासा ज्ञान अज्ञानाभिमानादिका पता बाणीसे लगाकर, अर्थात् साधु असाधु जानकर सङ्ग उपदेश या श्रवणादि करना चाहिये इत्यादि। या पूछे बिनाही स्वाभाविक बाणीसे साधु असाधुपन पहचानकर, साधु जिज्ञासुओंके प्रति उपदेश देना चाहिये कि हेसज्जनो! तेरे स्वरूपसे भिन्न उत्पत्तिका पेड़ अन्यत्र कहाँ है, अर्थात् कहीं नहीं है, किन्तु तेरेही विभुस्वरूपमें अज्ञानसे सब वस्तु उत्पन्न होतेहैं। और प्रलयके ठामभी कहीं नहीं है इससे तन छूटनेपर भी अर्थात् शरीरका अत्यन्ताभावरूप मोक्ष होनेपर भी कहीं नहीं जावोगे, किन्तु स्वस्वरूपमें ही स्थिर होवोगे। और वर्तमान कालमें भी कहीं अन्यत्र नहीं गाम बसायेहो, अर्थात् प्राण इन्द्रियके समुदाय सहित किसी अन्य वस्तुमें नहीं बसेहो, किन्तु आत्मवस्तुमेंहीं बसेहो इसलिये आत्मस्वरूपको ही सत्यादि स्वरूप जानो जिससे बिललाना छूट जावे इत्यादि।

३२१ साखी दोहा।

कहहिं कबीर मैं हारा, कोटि यतन समुझाय।
बाँड़ी पूँछ उठाय के, चली बेढ़ को जाय॥ ३२१॥

टीका—सत्य उपदेश देकर इन उपदेशोंके अधिकारीकी दुर्लभताका वर्णन साहेब करते हैं कि 'मैं' गुरुने जीवोंके कल्याणके लिये करोड़ों यत्नसे इन्हें समझाकर हार गया। अर्थात् सद्गुरुओंने बहुतही यत्नोंसे कष्ट सहकर भी जीवोंको समुझाया है, परन्तु जैसे कोई सूकरी बाँड़ी पूँछ उठाकर 'बेढ़को ही जावे' नाम स्वयं हर्षपूर्वक बन्धनागार घेरोंमें प्राप्त होवे। तैसे ही मानों अज्ञानी कामी अभिमानी पुरुष स्वयं पूँछ रहित शूकररूप हैं। और इनकी कुबुद्धि शूकरीरूप है। सो इनकी कुबुद्धि गर्भाशय शरीर लोकादिरूप बेढ़में जाती है। और उसीके साथ ये लोग भी उक्त बेढ़में जाते हैं। और बन्धन तथा क्लेशको प्राप्त होते हैं। कोई विरले ही बिवेकी निर्बन्ध होते हैं इत्यादि।

३२२ साखी दोहा।

शुअरहिं दूध पियाय के, राखे पलँग सुताय।
गुरुके शब्द चीन्हे नहीं, फिरि चहले को जाय॥ ३२२॥

टीका—औरभी साहेब कहतेहैं कि जैसे कोई पुरुष शूकरको दूध पिलाकर और पलँगपर शयन कराकर राखे। और उससे कहे कि तुम अपवित्र स्थानमें नहो जावो, तो वह शूकर गुरुके शब्दको नहीं चीन्हता है। इससे फिरभी 'चहलेको जाता है' नाम अपवित्र कर्दम मलमूत्रमें हीं जाता है। तैसेही अज्ञानी अभिमानी चोरसदृश कामी पुरुषोंको, यदि कोई दयालु महात्मा सतमार्ग सतवस्तुमें प्राप्त कराते हैं। और आग्रहसे पवित्र वस्तु स्थानादिमें स्थिर करते हैं। और उपदेश देते हैं कि इसी मार्गादिमें स्थिर रहो, तो वे लोग दयालु गुरुके शब्दको नहीं चीन्हते हैं। इससे उन्हें त्यागकर हिंसा चोरी अभक्ष्यभक्षण परस्त्री मिथ्यावस्तु लोकादिमें ही प्राप्त होते हैं, तथा कामादिबश चलायमान रहते हैं, इसीसे वे लोग निर्बन्ध तथा सुखी भी नहीं होतेहैं, किन्तु कोई बिरले विवेकादि युक्त पुरुष गुरुके शब्दको चीन्हकर निर्बन्ध पवित्रात्मा होकर आनन्दस्वरूप होते हैं इत्यादि।

३२३ साखी दोहा।

चित चञ्चलता छोड़ि दे, माया ते मन फेर।
जाही ते सब कछु भया, ताही काह न हेर॥ ३२३॥

टीका—जिन कामादि जन्य चञ्चलता आदिकोंसे जीव सब बन्धनादिमें प्राप्त होते हैं। उन्हें त्यागनेके लिये उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो ? चितकी चञ्चलताको छोड़ दो, अर्थात् अहंकार कामादिका त्यागपूर्वक अभ्यास वैराग्यसे चञ्चलता रहित हो जावो। और दोष दर्शनादिसे मायासे मनको फेरलो, अर्थात् सभी मायिक मिथ्या वस्तुओंको तुच्छ दुःखदादि जानकर उनमें आसक्त नहीं होवो। और 'जाहीते' नाम जिस सत्यात्मवस्तुकी सत्तासे सब कुछ हुआ है, नाम जिसकी सत्ताको पाकर माया अज्ञानियोंके लिये सब संसारको रचती है। और रची है। 'ताही' नाम उसीको ही 'काह न हेर' नाम क्यों नहीं हेरते हो? उसे अवश्य हेरो तथा सत्सङ्गादिमें जाकर सद्गुरुसे पूछो खोजो और जानो, इत्यादि। या उपदेश देते हैं कि चितकी चञ्चलताको छोड़ दो, और मायासे मनको फेरलो, क्योंकि चञ्चलचित्त और परस्पर मिले हुये मनमायाही सब बन्धन अनर्थके हेतु हैं। और जिनसे सब संसाररूप अनर्थ हुआ है तथा होता है, उन्हें तुम सावधानी पूर्वक क्यों नहीं समझते हो, और क्यों नहिं त्यागते हो, अबभी अवश्य दुःखके कारणोंको खोजकर जानो, और उन्हें त्यागो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि॥ सब होतहैं, ताहि काहे न। यह पाठ भेद है॥

३२४ साखी दोहा।

मन माया के चोट ते, मारे सकल जहान।
सुर नर मुनि घायल भये, ऐसो जोर कमान॥ ३२४॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देते हैं कि हेमनुष्यो! मायासे अपने मनको अवश्य फेरो, क्योंकि मन और मायाकी 'चोटसे' नाम इन दोनोंके परस्पर संघर्षरूप धक्केसे वा इनके मारसे 'सकल जहान' नाम सब संसार मारे परा नष्ट हुआ और होरहा है। और बड़े बड़े सुर नर मुनि लोग भी नष्ट नहीं होनेपर भी 'घायल' नाम पीड़ित हुवे, क्योंकि अज्ञानियोंको पीड़ित करने-वाले मन मायास्वरूप 'ऐसो' ही ईश्वरके 'जोर' नाम बलवाले 'कमान' नाम धनुष हैं कि जिनसे कोई भी मायामें मन लगानेवाले पुरुष घायल हुये बिना नहीं रहते हैं। या मन मायाके ही कामादि-रूप ऐसे जोरदार कमान हैं, कि जिनसे सुर नर मुनि सब घायल होते हैं। अथवा मन मायाके 'जोर' नाम जुटाव मेलही ऐसा कमान है कि जिससे सब घायल हुवे। इसलिये यदि नाश तथा घायलपनसे बचना चाहो तो मायासे मनको फेरो इत्यादि। या कहते हैं कि माया विषयक 'चोट' नाम चाह प्रवृत्ति करायकर मनहीं सब संसारको मारता है। या मायाकी चोट घावसे मारता है। जिससे सुरादि सब घायल हुवे, क्योंकि मनमथ मनोरथादि युक्त मनके ऐसाही अपूर्व जोरदार कमान है, इसलिये मायासे मनको फेरो इत्यादि।

३२५ साखी दोहा।

एक बात की बात है, बहुविधि कहा बनाय।
भारी परदा बीच का, ताते लखा न जाय ॥ ३२५ ॥

टीका—औरभी कहते हैं कि हेमनुष्यो! अपना कल्याण आत्मतत्त्वका यथार्थ ज्ञानके लिये मायासे मनको फेरना रूर 'एक बातकी बात है' नाम एक इसी उपदेश तथा साधनकी अत्यन्त प्रधानता है तथा इसीकी आवश्यकता है। अथवा इसी उपदेशके विस्ताररूप सब उपदेश हैं। अर्थात् मायासे मनको फेरनेहीके लिये अनन्तों उपदेश किये गये हैं। क्योंकि मैंने तथा अन्य महात्माओंने इसी बातको 'बहुविधि' से बनायकर नाम सुन्दर वाक्यकी रचना आदि करके वा विस्तार करके कहा है, तोभी जैसे सूर्य और मनुष्यकी दृष्टिके बीचमें राहु वा मेघादिका भारी परदा पड़नेसे सूर्य नहीं दिखाता है। तैसेही मनुष्योंकी बुद्धि वृत्ति और आत्मतत्त्वके उपदेशके बीचमें मायाही भारी परदारूप है। और 'ताते' नाम उसी मायारूप परदासे, अर्थात् उससे मनको फेरेही बिना आत्मतत्त्व उसका उपदेशादि नहीं समझमें आता है। इनके पूर्णज्ञान अनुष्ठानादि नहीं होते हैं। इससे भी मायासे मनको अवश्य फेरो इत्यादि। या 'एक बातकी' नाम एक वाक इन्द्रियकी शक्तिकी सब बात हैं, या एकही सत्य बातकी सब बात हैं, क्योंकि उक्त शक्तिसे कल्पना करके एक बातको ही बहुविधि बनाकर लोगोंने कहाहै। और सोई बीचके कल्पित मिथ्या बहुत प्रकारके शब्द जीवोंके कल्याण मार्गके भारी परदा रुकावटरूप होगयेहैं। 'ताते' मायासे मनको फेरना पूर्णविचारादि किए बिना यथार्थवस्तु नहीं लखी जातीहै। इसलिये मायासे मनको फेरकर बिचारादि करो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि।

३२६ साखी छं० चौपाई।

जो मुहि जाने तिहि मैं जानों। लोक वेद के कहा न मानों ॥ ३२६ ॥

टीका—साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! जिसकारण एकही बातकी सब बातहैं। इससेही 'जो मुहि' नाम मुझे जानताहै, नाम मेरे मन बुद्धि इन्द्रियादि सभीको प्रकाशताहै। 'तिहि' नाम उसी सर्वसाक्षी स्वरूपको मैं भी जानताहूँ तथा उसीको आत्मा समझताहूं, उसीका उपदेश देताहूं इत्यादि। और अनेकों विस्ताररूप बन्धनके हेतुस्वरूप जो लोक वा वेदको कहा हुआहै। उसको मैं मुक्तिके लिये नही मानताहूँ उससे किसीका कल्याण नहीं समझताहूं। इससे अनात्मवस्तु विषयक बातोंको त्यागकर साक्षीस्वरूप ब्रह्मात्माको तुम सबभी जानो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि। या जो जिज्ञासु पुरुष मुझे जानताहै, यानी मेरे वा अन्य किसी ज्ञानी महात्माके शरणमें छलादि रहित होकर श्रद्धा आदि पूर्वक प्राप्त होताहै, उसीको मैं भी जानताहूं, नाम उसीके

उद्धारके लिये सत्य उपदेश देताहूं, और अदिव्य पुरुषोंके लिये कहे गये कुल जाति आदिके भेद जो लोक वा वेदमें हैं, उन लोकादिके कहे भेदोंको मैं नहीं मानताहूँ। तथा कोई ज्ञानी नहीं मानते हैं इत्यादि अर्थ है। अथवा जो इस शरीरमें मोहिं मेरी इस प्रकार मन आदिद्वारा जानता है, उसी अपरोक्षस्वरूपको मैं एक आत्मा जानता हूँ इत्यादि अर्थ हैं॥ मैंके में पाठ भेद है, उस पक्षमें जिज्ञासा हुई कि सत्य बातको तथा परदाकी निवृत्तिके उपायेंको कहाँ जाना जावे कि तहाँ उनकी प्राप्ति किया जावे। तब साहेब कहते हैं कि जो पुरुष 'मुझे' नाम गुरुको जानते हैं, और गुरु परम्परासे यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति कियेहैं, तथा गुरुको शुद्धस्वरूप समझेहैं, उन पुरुषोंमें ही सत्यात्मा सत्यसाधन समझो। और उनसे ही आत्मादिकी प्राप्ति करो उनके उपदेशों के श्रवणादि करो। और बिचारादि बिना अपनी मन्दबुद्धिके अनसार अनेकों लोक वेदके कही बातों को नहीं मानो इत्यादि।

३२७ साखी दोहा।

पैठा है घट भीतरे, बैठा है सहचेत।
जब जैसी गति चाहये, तब तैसी मति देत॥ ३२७॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि जिसकी सत्तासे सब होतेहैं, जिसकी एक सत्यबातहै, जिस साक्षीको आप गुरु लोग जानतेहैं, सो कैसाहै? और उसे कैसे जानना चाहिये? तब साहेब कहतेहैं कि वह विभु साक्षी स्वरूप आत्मा 'सब घट' नाम शरीरके भीतर पैठाहै और 'सहचेत' नाम चित्तसहित अर्थात् अन्तःकरणरूप उपाधिवाला होकर घटके अन्दर हृदयात्मक कमलमें बैठाहै। अर्थात् केवल साक्षी स्वरूपमें पैठना बैठना आदि विभु होनेसे नहीं बनसकताहै, परन्तु वही आत्मा चित्तसहित पैठाहै और बैठाहै और जिन जीवोंकी कर्मानुसार जब जैसी गति चाहताहै, तब तैसीही मति अपनी सत्ता आदिसे देताहै। या जो जीव जैसी गति अपने कामकर्म बासना आदिके अनुसार जब चाहते हैं, तब वैसीही बुद्धि वह देताहै कि जिस बुद्धिसे युक्त होकर जीव स्वयं उस गतिको प्राप्तहोतेहैं। इसप्रकार आत्मवस्तुको जानना चाहिये इत्यादि। या लोकवेदके वाणीजालमें भूलेहुवे अज्ञानी गुरुविमुखोंकी दशाका वर्णन करतेहैं कि अज्ञानियोंके घटके भीतर मनमाया ईश्वरस्वरूप काल पैठाहै। और 'सहचेत' नाम सावधानीसे बैठाहै। और नामरूप में भूलेहुवे अज्ञानियोंकी जब जैसी गति चाहताहै, तब तैसीही मति देताहै। और संसारात्मक चक्रमें भ्रमाताहै। इसलिये हेमनुष्यो! गुरुसे वेदके तत्त्वरूप आत्मवस्तुको जानो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि।

३२८ साखी दोहा।

पाव पलक के गम नहीं, करै कालहु का साज।
काल अचानक मारिहैं, ज्यों तीतर को बाज॥ ३२८॥

टीका—औरभी साहेब कहतेहैं कि उक्त साक्षीस्वरूप आत्माको तथा कालको जाने बिना ही अज्ञानी विवेकादि रहित मनुष्य पावपलकका गम नहीं रहते भी 'काल्हुके साज करते हैं' नाम एकपैर उठाने चलनेके बाद वा एकपलके बाद मरणादिमेंसे क्या होवेंगे इस बातका पता नहीं रहते भी, कालान्तरमें भोगने आदिके लिये ये धन गृह स्त्री आदिरूप सामग्रीको मनुष्य प्राप्त करतेहैं। और त्याग सत्सङ्ग बिचारादि नहीं करतेहैं। परन्तु उन मनुष्योंको अचानकमें ही काल इसप्रकार मारेगा कि जैसे तित्तिरको बाजपक्षी मारताहै। फिर विवेकादि रहित मनुष्योंको वह साज कुछ काम नहीं देगा। इसलिये हेमनुष्यो! साजविषयक आसक्ति आदिको त्यागकर कालसे बचनेके लिये यत्नकरो कि जिससे फिर नहीं मरना होवे इत्यादि॥ ३२८॥

३२९ साखी छन्द प्रियविशेष।

भूलासो भूला, बहुरि के चेतना।
ज्ञानकि छूरीसो, संशय को रेतान॥ ३२९॥

टीका—कालके साजमें तथा बाणीजालमें भूलेहुवे मनुष्योंके प्रति साहेब कहतेहैं कि हे मनुष्यो! तुमने जो 'भूलासो भूला' नाम जितना समय भूलमें बीताया सोतो बीतही गया। परन्तु 'हेना' नाम हे पुरुषो! अभी भी उस भूलके मार्गसे 'बहुरिके' नाम लौटकर अर्थात् मायासे मनको फेरकर 'चेतो' नाम आत्मबिचारादि करो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि। या जो भूल कियो सो कियो अब नहीं भूलना चाहिये, किन्तु उससे बहुरकर फिर तुझे चेतना चाहिये। और 'हेना' नाम पुरुषो! 'ज्ञानकी छूरीसे' नाम ज्ञानरूप छूरीसे संशयको 'रेतो' नाम आत्मानुभवसे संशय मिथ्याज्ञानादिको नष्ट करो। या ज्ञानकी छूरीसे अब तुझे संशयको नष्टकरना चाहिये कि जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि॥ ३२९॥

३३० साखी दोहा।

जो मीला सो गुरु मिला, शिष्य मिला नहिं कोय।
छौ लाख छानबे सहस, रमयनि जिव पर होय॥ ३३०॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि हे मनुष्यो! इस संसारमें जो कोई मिला सो सब गुरुही मिला, और जो मिलताहै सोभी गुरुही मिलता है। अर्थात् विवेकादि रहित भी षट-दर्शनादिमानी लोग अपनेको गुरुही कहते और मानते हैं, तथा मिथ्या उपदेश करते फिरते हैं, इससे कोई भी आत्मज्ञानके योग्य शिष्य नहीं मिला न मिलता है। और इससे एक जीवपर छः

लाख छयानवे सहस्त्र रमयणी होती है। अर्थात् अज्ञानियोंको गुरु बननेसे और आत्मज्ञानके योग्य विवेकी अधिकारी नहीं मिलनेसे ही छःदर्शन और छयानवे पाखण्डके अभिमानी लोग 'छौलाख' नाम छौलक्ष्य ज्ञेयध्येय वस्तुको मानकर, उनकी प्राप्तिके लिये छयानवे सहस्त्रनामा एक जीवका रमणके हेतुरूप रचे हैं। या एक बातको जाने बिना वास्तविक गुरु शिष्य बिना एक जीवपर छौलाख छयानवे सहस्त्र अर्थात् अनन्तों 'रमयणी' नाम रमणके स्थान विषय उपदेशादि होते हैं। जिससे जीव सब वक्ष्यमाण शान्ति सुखको नहीं पाते हैं। इसलिये हे मनुष्यो! विवेक पूर्वक शिष्य बनकर सद्गुरुके शरणमें प्राप्त होवो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि। अथवा ज्ञानकी छूरीसे संशयको रेतो इस उपदेशको सुनकर जिज्ञासा हुई कि वह ज्ञान कहाँ मिलता है? इत्यादि, तब साहेब कहते हैं कि जो कुछ कल्याणके साधन तथा सुख किसीको मिला वा मिलता है सो गुरुके यहाँ मिला और मिलता है। परन्तु योग्य शिष्यही कोई नही मिलता है कि जिसको सद्गुरुसे ज्ञानादिकी प्राप्ति होवे। या जो स्वयं शिष्य है नाम शिक्षा पानेयोग्य अज्ञानी है। उससे किसीको कुछ नहीं मिला न मिलता है। और जिसको नहीं कुछ मिला है, उसी जीवके लिये अनन्तों नामरूपात्मक रमयणी होती हैं। इत्यादि।

३३१ साखी दोहा।

कर बन्दगी विवेक की, बेष धरे सब कोय।
सो बन्दगी बहि जानदे, शब्द विवेक न होय॥ ३३१॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि हेमनुष्यो! यद्यपि सब कोई अपनेको गुरु कहते हैं तथापि तुम विवेककी बन्दगी करो, यानी अपना कल्याणके लिये आत्मानात्मादिके विवेक युक्त ज्ञानी मुक्तरूप महात्माओंकी बन्दना करो। और साधु संन्यासी आदिके बेष सब कोई धर लेतेहैं, परन्तु जहाँ सार असार शब्दादिके बिवेक नहीं होवे 'सो बन्दगीको बहि जानदो' अर्थात् केवल बेषकी बन्दना नहीं करो उसे त्याग दो इत्यादि। या हेसज्जनो! विवेककी बन्दगी करो नाम विवेकादिके लिये व्यवहार यत्न करो, फिर विवेक पूर्बक व्यवहार करो। और बेषतो सब कोई धरताहै, इससे केवल वेषकाही धारण नहीं करो और उस व्यवहारको त्याग दो कि जिससे शब्दादिका विवेक नहीं होवे इत्यादि।

३३२ साखी दोहा।

यह मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्म ज्ञान।
जिहि बैसन्दर जग जरै, सो पुनि उदक समान॥ ३३२॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! गुरुकी बन्दना आदि करके ज्ञानकी प्राप्ति अवश्य करो, क्योंकि जब जिस पुरुषको ब्रह्मज्ञान उपजा वा उपजता है, तब यह तीन तापसे

तपायमान उसके मन 'शीतल' नाम शान्ति सुखयुक्त हुआ और होताहै । और जिस 'बैसन्दर' नाम सम्यग् विदारण नाश करनेवाले काम, राग, द्वेष, शोक, मोह, विषय और कालादिरूप अग्निसे यह संसार निश्चय करके जर रहाहै नष्ट अर्थात् होरहाहै, सो (अग्नि) पुनि (फिर) उदक समान होजाती है। अर्थात् अपने विषयादि सहित कामादि उदकके समान होजातेहैं। अर्थात् ब्रह्मानन्दमें लीन होकर ब्रह्मानन्दरूप होजातेहैं। और ज्ञानाग्निकी तेजीके सामने कीसीकी तेजी नहीं रहतीहै, इसलिये ज्ञानाग्निकी प्राप्ति करो और उसके बिना लोक वेद वेषादि में नहीं भूलो इत्यादि।

३३३ साखी दोहा।

साँचहिं शाप न लागये, साँचहिं काल न खाय।
साँचहिं साँचे जो रहे, ताको काह नशाय ॥ ३३३ ॥

टीका—और कहते हैं कि मनके शीतल होनेपर, तथा सब कामादिरूप अग्निके शीतल होनेपर 'साँचहि' नाम सत्यवस्तुमें स्थिर सत्यवक्ता पुरुषको किसीका 'शाप नहीं लगताहै' और उसे कालभी नहीं खाताहै, अर्थात् वह जन्म मरणादिसे रहित मुक्तस्वरूप होजाता है। क्योंकि जो पुरुष 'सांचहिं' नाम सत्यस्वरूपही होकर तथा सत्यवक्ता होकर 'सांचे' नामसत्यवस्तुमें हीं रहताहै। अर्थात् शरीरादिके अभिमानोंको त्यागकर सत्यात्मस्वरूपसे जो स्थिर रहताहै। 'ताको' नाम उसको 'काह' नाम कौन वस्तु किससे नष्ट हो सकताहै ? अर्थात् वस्तुतः शाप कालादि से भी उस पुरुषके कुछ नहीं नष्ट होते हैं। इसलिये सत्यत्मस्वरूपसे स्थिर होना चाहिये ।

३३४ साखी दोहा।

केते योगी योग करु, केते भस्म शरीर।
एक शब्द के कारणे, आलम भया फ़कीर ॥ ३३४ ॥

टीका—और कहते हैं कि यद्यपि सांचसे ही शापादि नहीं लगते हैं, परन्तु उसके बिना कितने योगी बनकर ऋद्धि सिद्धि आदिके लिये योग करतेहैं। और कितने तपस्वी आदि बनकर शरीरमें भस्म लगाते हैं। और एक शब्दके कारणे अर्थात् कल्पित वाचारम्भणमात्र किसी एक मिथ्यावस्तुकी प्राप्तिके लिये 'आलम' नाम विवेकादि रहित जनसमुदाय फकीर हुआ है, इससे फ़कीर साधु आदि होनेपर भी शाप कालादिसे पीड़ित होरहाहै इत्यादि । अथवा कहते हैं कि साँचा होकर जिस साँचमें स्थिर होनेसे शाप नहीं लगता है, तथा काल नहीं खाता है, उसी एक साँचा 'सार शब्दके लिये' नाम उसके उपदेश ज्ञानादिकी प्राप्तिके लिये कितने विवेकी योगी सब इन्द्रियोंके निरोधरूप योग करते हैं। तथा कितने निष्काम कर्मादिरूप योग करते हैं। और कितने तप व्रतादि करके शरीरको भस्म [क्षीण] करते हैं, तथा संसारसे उदासीन होकर शरीरमें भस्म लगाते

हैं । और उसीकी प्राप्तिके लिये 'आलम' नाम विवेकियोंका समुदाय फकीर हुआहै और होताहै । इसलिये हेमनुष्यो ! तुमभी विवेकादि पूर्वक सारशब्दसे सत्यवस्तुकी प्राप्ति करो इत्यादि ।

३३५ साखी दोहा ।

एक फेर का फेर है, फेरहिं लखै न कोय ।
कहहिं कबिर फेरहिं लखै, छत्र धनी है सोय ॥ ३३५ ॥

टीका—औरभी साहेब कहतेहैं कि आत्मतत्त्वके अज्ञान विपरीतज्ञानरूप एक फेरका ही कार्यरूप फेर यह संसारहै । उन कार्य कारणरूप फेरोंको विवेकादि रहित कोई मनुष्य फेरस्वरूप मिथ्या दुःखदादिरूप नहीं लखताहै, किन्तु सत्य सुखदादि समझताहै, इससे दीनदुःखी बना रहताहै । और साहेब कहतेहैं कि जो कोई इस फेरका फेरस्वरूप मिथ्या लखताहै, वस्तुतः असत्यस्वरूप दुःखद समझताहै, सोई पुरुष 'क्षत्रधनी है' नाम क्षत्रधारी स्वतन्त्र चक्रवर्ती राजाके सदृश सोई पुरुष सुखी है। और सर्वथा दीनता आदिसे रहितहै । इसलिये हेमनुष्यो ! ब्रह्मात्माको जानो तथा फेरोंको समझो जिससे कल्याण होवे। अर्थात् ब्रह्मज्ञान बिनाही जन्ममरण संसारमें भ्रमण होरहे हैं इससे ब्रह्मात्माको जानकर सब मिथ्याज्ञान संसारमें भ्रमणादिसे रहित स्वतन्त्र सुखस्वरूप होवो इत्यादि । या एक सारशब्दके फेरस्वरूप असार शब्दोंके ही सब फेरहैं उन्हें कोई नहीं लखताहै इत्यादि ।

३३६ साखी दोहा ।

साँचा शब्द कबीर का, प्रगट कहै जग माहिं ।
जैसे को तैसा कहै, सो तो निन्दा नाहिं ॥ ३३६ ॥

टीका—पूर्वकही रीतिसे ज्ञान विराग ज्ञानी आदिकोंकी श्रेष्ठताका, तथा हिंसक अज्ञानी के बल वेषधारी आदिकोंकी हीनता दुर्दशाके वर्णनको सुनकर जिज्ञासा हुई कि [**परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति । स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्याभिनिवेशतः**] इत्यादि वचनोंके अनुसार अन्य पुरुषके कर्म वा स्वभावकी निन्दा वा प्रशंसा करनेवाला शीघ्रही अपने स्वार्थसे रहित होताहै, और अनर्थयुक्त होताहै । क्योंकि निन्दा प्रशंसामें अभिरुचि असत्यमें अभिनिवेशरूप है, और सो अभिनिवेश अनर्थका प्रधान हेतुरूप है तौभी अन्यके प्रशंशा निन्दा क्यों कियेगये हैं ? इत्यादि । तब साहेब कहतेहैं कि हेसज्जनो ! 'कबीरका' नाम मेरा शब्द साँचा है, यानी यथार्थ कथन उपदेशरूप मेरा शब्द है, रागद्वेषादि रहित सत्यवस्तुका बोधक है, उस शब्द

को मैंने जगमें प्रगट कहाहै। और जो किसीके कर्म स्वभावको घटाबढ़ाकर रागद्वेषादिसे कहना है सो निन्दा प्रशंसारूप होताहै। तथा किसी श्रेष्ठ परोपकारादिरूप फलोंके बिना अन्यके अवगुणों का कहना निन्दा होताहै। और हेय उपादेयरूप यथार्थ वस्तुके ज्ञानके लिये तथा परोपकारादिके लिये गुण अवगुण कर्म स्वभावादिके जैसेके तैसे कहना प्रशंसा वा निन्दा नहीं होतीहै, किन्तु वह यथार्थ कथन है इससे कोई दोष नहीं है। या कहते है कि फेरादिको लखानेवाला 'कवीरका सांचा शब्द है' अर्थात् उस सद्गुरूके शब्दही यथार्थज्ञानके हेतु है, जो कबीर 'प्रगट' (प्रत्यक्ष) आत्मस्वरूपकोही जगमें कहते हैं, और सो सद्गुरु कबीर जैसे वस्तु आदिको तैसाही कहते हैं। अर्थात् ज्ञानी रागद्वेषादिसे रहित महात्मा यथार्थ ही कहते हैं। किसीका निष्फल रागद्वेषादिपूर्बक निन्दा नहीं करतेहैं इत्यादि, इससे उनके शब्दसे यथार्थज्ञानकी प्राप्ति करनी चाहिये।

३३७ साखी दोहा।

दृश्यमान सो विनशये, अदृश्यहिं लखै न कोय।
नाहीं कोइ गाहक है, जाहि मिले सुख होय॥ ३३७॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो! निन्दा रहित मेरे शब्दोंसे, तथा बिचारादिसे समझो कि दृश्यमान जो यह जगत है सो विनशताहै, इससे सांसारिक विषयादि सभी मिथ्या मायिक स्वाप्नादि सदृश हैं। और जो इन्द्रियोंसे अदृश्य साक्षीस्वरूप अविनाशी सत्यात्मा है, उसे कोई पुरुष अविषयस्वरूप निजात्मास्वरूपसे नहीं लखता है यानी नहीं जानता है, अर्थात् कोई बिरला सतपुरुष जानता है। और उस अदृश्यात्माके कोई ग्राहक भी नहीं हैं, अर्थात् उसकी प्राप्ति भी बहुत लोग नहीं चाहते हैं, कि जिस अत्मानन्दके मिल जानेसे पुरुषोंको सुख होवे। या ऐसे श्रेष्ठग्राहक जिज्ञासु नहीं मिलते हैं कि जिन्हें आनन्दस्वरूप आत्मा मिले और सुखहोवे। इससे हेमनुष्यो! अभी भी ग्राहक होकर सुखी होवो इत्यादि। अथवा कौन सांचाशब्द है ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं कि जो दृश्यमान है, सो विनाशी नश्वर है, और जो अदृश्य अविनाशी आत्माहै उसको न कोई लखता है तथा उसका कोई ग्राहकभी नहींहै कि जिसे अविनाशी वस्तु गुरुका उपदेशसे मिले और वह सुखस्वरूप होजावे। किन्तु मिथ्या दृश्यकोही सब पुरुष सत्यादि जानतेहैं और चाहतेहैं, इससे कालके बशमें तथा दीनदुःखी हुवेहैं। और आत्मादिवस्तुको जाननेवाले स्वतन्त्र कालसे रहित आनन्दस्वरूप हैं इत्यादि सांचा शब्द हैं॥

३३८ साखी दोहा।

जो तैं चाहे मूझ को, छाड़ सकल की आश।
मूझहिं ऐसा होय रहु, सब कछु तेरे पास॥ ३३८॥

टीका—जो लोग ग्राहक हैं उनके प्रति साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! जो (यदि) तुम मुझे चाहते हो, अर्थात् मेरे रूपको वा मुझस्वरूप गुरुको यदि प्राप्त करना चाहते हो, तो विनाशी

सकल दृश्यवस्तुकी आशाको छोड़दो किसीभी अनात्मवस्तुकी इच्छा नहीं करो, और मुझही ऐसा 'होय रहो' नाम मेरेही सदृश अहिंसक सत्यवक्ता होकर तथा विरागादियुक्त होकर असङ्गचिद्रूपसे स्थिर होजावो तो जो कुछ तुम चाहतेहो सो सब कुछ तेरे पासही है। अर्थात् आनन्दस्वरूप सब दुःखसे रहित तेरा आत्माही है, विवेकादि पूर्वक विचारनेसे वह सहजही प्राप्त होजावेगा, उसके लिये कहीं जाना वा कुछ करना नहीं पड़ेगा इत्यादि। अथवा कहतेहैं कि जो [जिन] वस्तुओं को तुम चाहतेहो कि ये मुझको मिलजावें। उन सब अनात्मवस्तुओंकी आशाओंको छोड़दो, और 'मूझहि' नाम मेरेही स्वरूप तथा सम्बन्धी सब पुरुष तथा वस्तुहैं ऐसा निश्चयसे युक्त होकर रहो, या सबस्वरूप मैंहीं हूँ इस धारणायुक्त होकर रहो तो सब सुख सम्पत्ति साधन तेरे पासहीमें हैं। कोई दूर वा दुर्लभादि नहीं है इत्यादि ॥

३३९ साखी दोहा।

साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप ॥ ३३९ ॥

टीका—गुरु और गुरुरूपताकी प्राप्ति आदिके मुख्य साधन सत्यभाषण सत्यनिष्ठा हैं। इस आशयसे साहेब कहतेहैं कि हेसज्जनो! 'साँचके बराबर' नाम सत्यभाषण सत्यनिष्ठाके तुल्य अन्य कोई तप नहीं है। और झूठ बोलना झूठमें निष्ठाके बराबर अन्य कोई पाप नहीं है। अर्थात् साँचही सब तपोंसे श्रेष्ठहै। और सबके फलोंको देनेवालाहै। और झूठही सब पापोंके हेतुरूप तथा सब अनर्थका हेतुहै, इससे इस दुष्ट झूठका त्यागपूर्वक जिसके हृदयमें साँचही बसता है, जिसका सत्यमें श्रद्धा आदि रहतेहैं, उस पुरुषके हृदयमें सद्गुरुभी उपदेशद्वारा आप विराजमान रहतेहैं। तथा सर्वात्मस्वरूप परमेश्वर आप प्रगट होतेहैं। इससे उसको पासमेंही सब कुछ प्राप्त होजाताहै कुछभी खोजना वा करना नहीं पड़ताहै इत्यादि। या मेरे सदृश सत्यका धारण और झूठका त्यागकरो, क्योंकि साँचके बराबर कोई तप नहीं है। और उसीसे आप सत्यात्मा प्रगट होताहै इत्यादि।

३४० साखी दोहा ।

बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेशूल।
कहाँ लाल लै कीजिये, बिना बास का फूल ॥ ३४० ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि यह मानवा [मनुष्य] किसी प्राचीन कर्मादिसे अन्य प्राणियोंकी अपेक्षासे श्रेष्ठ बनाहै, और कारणसामग्रीसे श्रेष्ठ बनाया गया है, या आप अपने को श्रेष्ठ बनताहै [मानताहै] तथा भूषण वस्त्रादिसे सुन्दर बनताहै, और सुन्दर कर चरण व्यापार

सामर्थ्यादिसे युक्त बनायाभी गयाहै, परन्तु यदि इस मनुष्यमें आत्मानात्म सत्यासत्य धर्माधर्मादिके विवेक बुद्धि नहीं होवे तो 'वे' नाम विवेकादि बुद्धि रहित मनुष्य 'बुद्धि बिना' अपने लिये तथा अन्य के लिये शूल [रोग]रूप हैं वा त्रिशूलके सदृश सबको पीड़ित करनेवालेहैं। अथवा बुद्धि बिना उनकी श्रेष्ठता सुन्दरता सब बेशूलहैं तथा व्यर्थ हैं बेकामहैं। और बिना बासके लालफूलको लेकर जैसे कुछ नहीं किया जाता है, उससे घ्राणकी तृप्ति नहीं होती है, इससे गन्धार्थी उसे नहीं लेता है। तैसेही विवेकी सज्जनोंको संसारसे पार करनेवाले गुरु बुद्धि रहित दुर्जनको शरणमें लेकर क्याकर सकते हैं? अर्थात् अविवेकी झूठे पुरुषको सद्गुरुभी संसारसे नहीं पारकर सकतेहैं, इससे उसे शरण-में नहीं रखते हैं। इसलिये सत्य बचन विवेक युक्त होकर गुरुशरणमें प्राप्त होना चाहिये जिससे आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होवे इत्यादि। बेशूलके बेतूल, पाठभेद है तब अर्थहै कि अनेकों बेष जाति आदि करके बनाबनाया हुआ मनुष्य सत्यविवेक बुद्धि बिना उन बेषादिकोंके तुल्य नहीं है, और उसके वेषादि व्यर्थ हैं, क्योंकि सुबासरहित लालफूल लेकर क्या किया जासकताहै? इत्यादि।

३४१ साखी दोहा।

जासो दिल नाहीं मिला, शब्द न बेधा अङ्ग।
कहहिं कबिर कैसे बने, हंस बके का सङ्ग॥ ३४१॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि सत्यमें स्थितिके अभावादि होनेसे जिस पुरुषके साथ सद्गुरु का दिल नहींमिला और सद्गुरुसेभी जिसके दिल नहीं मिले, और जिसपुरुषके अङ्गमें सद्गुरुके सदुपदेश सारशब्दभी 'नहीं बेधा' नाम जिसके शरीर तथा मन बुद्धिमें उपदेश नहीं लगा, उपदेशके अनुसार समझ व्यवहार जिसके नहीं हुवे न होने हैं, तो साहेब कहते हैं कि इस दशामें उस बिवेकी सत्यवक्ता सत्यात्मनिष्ठ गुरुरूप हंसका और हिंसक अधर्मी असत्य शब्द अर्थमें स्थितिवाला उस अविवेकी पुरुषरूप बकका सङ्ग कैसे बनसकता है, किन्तु नहीं बनसकता है। इसीसे दयालुभी सद्गुरु उसे नहीं अपनाते हैं। और सत्यादिमें निष्ठावालेके साथ सङ्ग बननेसे उसे अपनाते हैं और अपना स्वरूप कर देते हैं। इसलिये अवश्यही सत्यादिमें निष्ठा करनी चाहिये इत्यादि। अर्थात् बुद्धि बिना जिस सत्यात्मा से जिस पुरुषका दिल नहीं मिला, उसके बिचारादिमें मन नहीं लगा, और हेअङ्ग! हेजिज्ञासुओ! जिस में सारशब्द नहीं बेधा, साहेब कहते हैं कि 'हेहंस' नाम हेविवेकी जिज्ञासुओ! उस बक सदृश पुरुषको सत्यात्माके साथ सङ्ग कैसे बने किन्तु किसी प्रकारभी नहीं बनता है। इसलिये प्रथम बुद्धिको बढ़ाना सद्बुद्धिको प्राप्तकरना चाहिये इत्यादि।

३४२ साखी छ० मुक्तामणि।

हौं बिगराने ओर के, बिगरों नाहिं बिगारों।
सब घट मेरो प्राण है, चोट काहि पर डारों॥ ३४२॥

टीका—ग्राहक जिज्ञासुओंको अपने सदृश होनेके लिये अपनी स्थितिका साहेब वर्णन करते हैं कि मैं रागद्वेषादिसे किसीकी निन्दा वा स्तुति नहीं करताहूं न पूर्वकहे बक सदृश मनुष्योंका सङ्गादि करताहूं क्योंकि 'हौं' नाम मैं 'ओर का' नाम अनादि कालका 'बिगड़ाने स्वरूप हूं'। नाम संसारसे पृथक असङ्ग साक्षी स्वरूपहूँ इससे न किसीसे बिगड़ताहूँ न किसीको बिगाड़ताहूं। और सब घटमें मेरा ही प्राण 'आत्मा' है तथा मेरे ही सदृश सब घटोंमें प्राणवायु हैं, तो निन्दा अपकारादिरूप चोट मैं किस पर डारूं किन्तु किसीपरभी-चोट नहीं डारताहुँ परन्तु जैसे अपने घावमेंसे कष्ट सहकरभी विकार निकाला जाताहै तैसे अपने आत्मस्वरूप जीवों मेंसे अज्ञान कामादिरूप विकारोंको दूर करनेके लिये कठिन कोमल बचन कहताहूं। इन बचनोंको सुनकर अज्ञानादिकोंको त्यागना चाहिये निन्दा आदि नहीं समझना चाहिये इत्यादि। 'हौं' के हौ और तीनों रौ के रो पाठ भेदहै, तब अर्थ है कि हे मनुष्यो! यदि तुम गुरुरूपता की प्राप्ति चाहते हो तो यदि तुझे कोई बिगाड़े तेरा अपकार करे तुझे दुःख देवे तो उसे तुम नहीं बिगाड़ो, किन्तु समझाकर वा किसी युक्तिसे अपनी रक्षाकरो, तौभी यदि नहीं रक्षा होसके तो तुम उससे द्वेषादि नहीं करो, क्योंकि वस्तुतः तेरा बिगाड़ दूसरा कोई नहीं करताहै, किन्तु तुम स्वयं ओरके 'अनादिकालके' बिगड़ानेहो यानी बिगड़े हुये हो। अर्थात् अनादि कालसे तुम अविद्या कामकर्म बासना दुःखादिसे युक्त हो, जो कोई तेरा बिगाड़ करताहै, सोभी तेरे कर्मादिके ही अधीन करताहै। इसलिये ऐसा समझकर स्वयं बिगड़ो दुःखी होवो, परन्तु अन्यको नहीं बिगाड़ो नहीं दुःखी करो। और समझो कि सबही घटोंमें मेराही प्राण है 'आत्मा है' वा मेरे प्राणोंके सदृश सबके प्राण हैं वा हिरण्यगर्भरूप समष्टि प्राण सबमें एक हैं, इससे कापर (किसपर) चोट डारूँ। और ऐसा जानकर जैसे जिह्वाको काटनेवाले दाँतोंका अपकार कोई नहीं करताहै। तथा कभी आखोंको पीड़ित करनेवाली अंगुलियोंका अपकार नहीं करताहै। तैसेही किसीको नहीं बिगाड़ो तब गुरुरूपताको।प्राप्त होवोगे इत्यादि। या तुम 'ओरके बिगराने' नाम संसारसे पृथक हो। इसलिये असङ्ग आत्मरूपसे स्थिर होकर न बिगड़ो न बिगाड़ो, किन्तु समझो कि सब घटमें मेराही आत्माहै किसपर चोट 'घाव' करूँ इत्यादि।

३४३ साखी दोहा।

ये करुवन्ती बेलरी, करुआहीं फल होय।

सिद्ध नाम तब पाइये, बेलि विछोहा होय॥ ३४३॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि हे सज्जनो! 'ये' पूर्वकहे अज्ञानरूप एक फेर, तथा उसके कार्यरूप संसार, उसकी आशा पर।निन्दा झूठ पर अपकारादि ये सब 'करुवन्ती बेलरीरूप हैं' नाम करुआपनसे युक्त बेलीके सदृश ये सब दुःखद अविद्या मायास्वरूप हैं। और जन्म मरणादिरूप करुआही फल इनके होतेहैं, अर्थात् इनके सभी फल दुःखद तथा दुखरूप होतेहैं।

हे सज्जनो ! फल सहित उक्त बेलिसे जब जिसको 'बिछोहा' नाम वियोग होताहै, अर्थात् जो पुरुष उक्त बेलिसे जब रहित होताहै, तब वह पुरुष वस्तुतः सिद्ध नाम पाताहै। स्वयं सिद्ध सत्य ब्रह्मात्मस्वरूप होजाताहै, इससे उस बेलिसे रहित होनेके लिये अवश्यही यत्न करना चाहिये इत्यादि ।

३४४ साखी दोहा ।

सिद्ध भया तो क्या भया, चहुँ दिशि फूटी बास ।
अंकुर बीज अन्तर में, फिरि जामन की आश ॥ ३४४ ॥

टीका—औरभी साहेब कहतेहैं कि हे सज्जनो ! पूर्वकही बेलिका विछोहा बिना यदि कोई अणिमादि सिद्धिकरके 'सिद्ध भया तो' सि.. होनेसे उसे क्याभया अर्थात् वैसा सिद्धहोनेसे उसको कल्याण नहीं होसकताहै, क्योंकि ज्ञानरहित अणिमादि सिद्धिवालोंकी 'बास' नाम वासना 'चहुँदिशि' नाम चारों दिशाओंमें तथा चारों खानियोंमें फूटती है । अर्थात् अन्तःकरणमें विद्यमान बासनायें सब दिशाखानि विषयादि विषयक प्रगट होतीहैं । क्योंकि अज्ञानियोंके 'अन्तरमें' नाम अन्तःकरणमें बासनाकी।अभिव्यक्ति आदिरूप अंकुरके हेतुरूप बीज अविद्या कामकर्मादि 'बसते हैं' नाम बास किये रहतेहैं, इससे उन्हें फिर जन्म लेनेकी भी आशा होतीहै । या उन्हें 'फिर जामनकी' यानी जन्मकी आश नाम सम्भावना है । इसलिये सिद्धि तथा विषयादिकी आशाओंको त्यागो, उक्त बेलिकी बिछोहाके लिये यत्नकरो कि जिससे वास्तविक सिद्धि होवे और जन्मादिका अभाव होवे इत्यादि । या दोनों साखीके अर्थहै कि जब ' बिछोहा ' नाम छोह अर्थात् दया रहित अविद्यारूप बेलि वर्तमान रहती है, तब इच्छा होती है कि सिद्धनाम लोकमें पावें, परन्तु यह इच्छा करुवन्ती बेलि है । और इसके फलभी करुआही होतेहैं । क्योंकि सिद्ध भया तो इससे क्याभया ? और चारों दिशामें यशरूप बास फैला तो क्या भया ? यदि उसके अन्तरमें अविद्या कामकर्मादिरूप बीज और अंकुर वर्तमान हैं, तो फिरभी अवश्य जामनेकी आशा है । अथवा यह संसार करुवन्ती बेलरी है इसके फलभी करुआही होतेहैं, परन्तु जब।'विछोहा' नाम छोभ चञ्चलता आदि रहित विद्या· वृत्तिरूप बेली प्राप्तहोतीहै, तब सिद्ध (प्राप्त) होता है । और सिद्ध हुआ तोभी क्या हुआ, यदि पूर्ण विराग उपरतिके अभावसे चारों दिशाओंमें बासफूटी, तो फिर उसके अन्तरमें आंकुर बीज बसते हैं । और जामनेकी आशा होती।है इत्यादि ।

३४५ साखी दोहा ।

सबे हमारे देश के, बञ्चक भूले आय ।
देखि शरद की चान्दनी, परे भुलाय भुलाय ॥ ३४५ ॥

टीका—औरभी साहेब उपदेश देतेहैं कि हेसज्जनो 'सबे' नाम सभी मनुष्य 'हमारेही देशके हैं' नाम मेरे उपदेशके अनुसार चलने योग्यहैं, कल्याणके लिये सतधर्म विचारादि करने योग्य हैं, तथा जिस आत्मवस्तुमें मैं स्थिरहूँ उसमें स्थिर होनेयोग्यहैं, और सब हमारेही आत्मस्वरूप देशसे सृष्टि कालमें अविद्या बासना आदि करके आतेहैं और आयेहैं, और नित्यसुख चाहनेसे सब उसी देशमें स्थिरभी हुये चाहतेहैं, परन्तु 'बञ्चक' नाम ठगनेवाले गुरुआ विषयादिके बशमें होकरके इस संसारमें आकर सब भूलेहैं। और अपने देशकी प्राप्तिके मार्गोंको नहीं पातेहैं न उन मार्गोंमें स्थिर रहते हैं। या स्वयं बञ्चक परअपकारी जीव हमारे देशसे संसारमें आकर विषय कुमार्गादिमें भूले हैं, और शरदकी चाँदनीके सदृश अणिमादि सिद्धि सुख बडाई आदिको देखकर तथा उन्हें सत्यादि मानकर बारम्बार भुलाय२कर संसारात्मक जङ्गल दुःखमें परे हुवेहैं। अर्थात् जैसे शरद ऋतुके चन्द्रकी चाँदनीको देखकर किसी पुरुषको प्रातःकाल का भ्रम होजावे, और रात्रीकोही कहीं चले और रास्तेको भूलकर दुःखद जङ्गलादिमें परकर पीड़ितहो तैसेही सिद्धि आदिके प्रभावादिको देखकर उनसे ही सुख तथा मोक्षादि मानकर अज्ञानी विवेकादि रहित पुरुष बारम्बार संसारमें पड़ते हैं और पीड़ित होते हैं, क्योंकि सिद्धि आदि भी सदा नहीं रहती है। या कामोद्दीपक शरदकी चाँदनीको देखकर जैसे कामी लोग मोहयुक्त होकर काम क्रीडा आदिमें भुलसे पड़ते हैं। तैसे ही सिद्धि विषयादिकोंको देखकर भावी सिद्धि विषयादिकी आशासे जीव सब संसारमें भुलाये पड़े हैं। इससे तुम भ्रम तथा आशाको त्यागो मेरे देशमें प्राप्तिके लिये यत्न करो, क्योंकि अज्ञानयुक्त तुम प्रलय सुषुप्ति आदि कालमें ब्रह्मात्मस्वरूप देशमें प्राप्तहोकर भी अज्ञान बासना आदि बश संसारमें लौट आतेहो, इससे पुनरावृत्ति रहित मेरे देशमें प्राप्तिके लिये अज्ञान बासना आदिकोंको अत्यन्त नष्ट करो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि। यहां प्रकरणके अनुसार पर ब्रह्मके बोधक देश शब्द है, और अपर ब्रह्म सत्यलोककी गौणरूपसे सूचना मात्र की गई है। सूचना करनेका भाव यह है कि यदि अन्य कामोंको त्यागकर जीव सत्यलोकमेंभी प्राप्त होजावें तो कदाचित मुक्त हो सकते हैं, परन्तु अत्यन्त तुच्छ सिद्धि विषयादिमें ही जीव भूले रहतेहैं, जिससे कल्याण होना दुर्घट हुआहै इत्यादि। इस सूचना निमित्तक ही अनेकों ग्रन्थ कबीर साहेबके नामसे रचे गये प्रतीत होतेहैं इत्यादि।

३४६ साखी दोहा।

जासो नाता आदि का, विसरि गया सो ठैर।
चौरासी के बशि परे, कहत और की और॥ ३४६॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि हेसज्जनो! बञ्चकके बशमें पड़कर भूलनेसे तथा शरद की चाँदनी सदृशको देखकर भुलानेसे ही 'जासो' नाम जिससे जीवोंको आदिका नाता है, यानी

सबसे प्रथम अनादि कालका सम्बन्ध है 'सो ठौर' (स्थितिके स्थान) जीवोंको 'बिसरि गया है' यानी उस नित्य विभु सुखस्वरूप स्थानको तथा उसके जाननेके लिये यत्नको जीव सब भूल गये हैं। और उस ठौरको भूलकर 'और की और कहते हैं' नाम मिथ्या दुःखदादिको ही सत्य सुखदादि कहते हैं। इसीसे चौरासीलाख योनिके बशमें सब जीव पड़ेहैं और पड़तेहैं। इसलिये हे सज्जनो! बञ्चकोंके सङ्गको तथा सब भूलोंको त्यागदो, और आत्मस्वरूपमें स्थिर होजावो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि।

३४७ साखी दोहा।

ब्रह्मा पूछल जननि से, कर जोरि शीस नवाय।
कौन रूप वह पुरुष है, कहु माता समुझाय ॥ ३४७ ॥

टीका—जिस आदिके नातेवाले ठौरको विसर जानेसे पुरुष चौरासीके बशमें पड़ते हैं। उसका ज्ञान सद्गुरुसेही नम्रता आदि युक्त पुरुषको होता है। इससे नम्रता पूर्वक गुरुके शरणमें प्राप्त होना चाहिये। तथा मन इन्द्रियोंका निरोध करना चाहिये। और विषयादिकोंको देखकर भूलना नहीं चाहिये। इस आशयसे साहेब कहते हैं कि शरदकी चाँदनीके सदृश विषयादिकोंको देखकर भूलेहुये ब्रह्मा आदि गायत्री नामवाली मातासे ब्रह्मात्माके ज्ञानसे मोक्ष सुने, तब उनमेंसे ब्रह्माजीने करजोकर, और शिर नवाकर अपनी जननी (माता) से पूछे कि हेमातः! जिस ब्रह्मात्मास्वरूप सबके ठौरके ज्ञानसे मोक्ष होता है, और जीव चौरासीके बशमें नहीं पड़ता है, वह पुरुषरूप ब्रह्मात्मा कौन रूपहै? सो हे मेरी मातः! मुझे समुझाकर कहो जिससे उस पुरुषको मैं जानूं और मेरा कल्याण होवे इत्यादि।

३४८ साखी दोहा।

रेख रूप जेहि है नहिं, अधर धरो नहिं देह।
गगन मण्डल के मध्यमें, देखहु पुरुष विदेह ॥ ३४८ ॥

टीका—उक्त ब्रह्माजीके प्रश्नको सुनकर माता बोलि कि जिस पुरुषको 'रेख' नाम आकार, अर्थात् अवयव, और उसके गढ़न विशेषरूप संयोग याने रचना नहीं है, और शुक्लादि रूपभी जिसको नहीं हैं, इससे जो अधर है, नाम शरीर तथा अवयवसे रहित है। क्योंकि उसको 'धर' नाम धड़ और देह नहीं है। या वह कभी देहको नहीं धरा है न धरता है। अर्थात् असङ्ग विभु चेतनरूप पुरुष न कभी देहका धारण कियाहै न करता है, किन्तु भ्रमसेही उसमें देहादि भासते हैं। इससे उस 'विदेह' नाम वस्तुतः अशरीरी पुरुषको हृदय कमलके अन्दर गगन मण्डलके मध्यमें

ध्यान बिचारादिसे देखो । अर्थात् वर्तुलाकार हृदयात्मक गगनमें ध्यान बिचारादिसे आत्मतत्त्वको जानो जो वस्तुतः रेखरूपादि रहित है तब तेरा कल्याण होगा इत्यादि ॥

३४९ साखी दोहा ।

धरिन ध्यान गगन को, लाइन बज्र किवाल ।
देखी प्रतिमा आपनी, तीनों भये निहाल ॥ ३४९ ॥

टीका—साहेब कहते हैं कि माताके उपदेशको सुनकर ब्रह्मा आदि तीनों भाई अपने हृदयवर्ती गगनमें सत्यात्मवस्तुको ध्यान धरे । अथवा अपने हृदयमें गगनको यानी आकाश सदृश विभुचेतनको या (आकाशस्तल्लिङ्गात्) इस शारीरक सूत्रमें वर्णित रीतिसे आकाश नामवाला सर्वात्मस्वरूप परमेश्वरको अपने ध्यानमें धरे अपने २ चित्तको एकाग्र करके उसे बिचारने लगे, और 'बज्रके किवाल' नाम बज्रकपाट लगाये, अर्थात् सब इन्द्रियोंके द्वारोंको दृढता पूर्वक बन्दकरके बाहरसे चित्तवृत्तिको हटाये, तथा इन्द्रियोंके निरोधमें मनको लगाये, तब तीनों भाई 'आपनी प्रतिमा' नाम अपनी मूर्तिस्वरूपको देखकर 'निहाल' नाम कृतकृत्य मुक्तस्वरूप नित्यतृप्त होगये । यद्यपि [प्रतिमानं प्रतिबिम्बं प्रतिमा] इस कोशके अनुसार प्रतिमाशब्द प्रतिछायाके बाचक है, तथापि प्रकृतमें प्रकरण और कृतकृत्यताके कथनसेभी प्रतिमाशब्द सर्वात्मस्वरूपका बोकध है । या ध्यानसे प्रथम विषयस्वरूप अन्तःकरणमें 'प्रतिमा' नाम प्रतिछायाको देखकर फिर अविषय स्वरूप नित्यमुक्त बिम्बात्माको जानकर 'तीनों निहाल होगये' नाम उस मुक्तस्वरूपही होगये । अथवा गगनस्वरूप आत्मके ध्यानसे सब चराचरको अपनीही प्रतिमा देखकर तथा रागद्वेषादिसे रहित होकरके तीनों अन्तमें निहाल होगये इत्यादि ।

३५० साखी छ० सार ।

अंकुर ते बीज बीज ते अंकुर, अंकुर बिजहिं सुधारै ।
काया ते कर्म कर्म ते काया, बिरला जन निरुआरै ॥ ३५० ॥

टीका–ब्रह्मा आदिके सदृश कोई बिरलेही अनादि जन्म मरणादिसे रहित होते हैं । इस अर्थका फिरभी साहेब बर्णन करते हैं कि जैसे अंकुर द्वारा बृक्षरूपताको प्राप्तबीजसे फिर बीज होताहै, उससे फिर अंकुर होताहै, फिर वह अंकुर बीजकोही सुधारता है, नाम रचता है, तथा धारण करता है । तैसेही कायारूप बृक्षसे कर्म बासनारूप बीज होतेहैं । और उनसे फिर काया होती है ।

इसीप्रकार अनादिसे अनन्त कालतक ज्ञान विरागादि बिना कर्मकायादिरूप संसार होते रहते हैं। उनका निरुआर कोई बिरले गुरुभक्त विवेकी जन करते हैं।

३५१ साखी दोहा ।

कहहिं कबीर कैसे बने, बिनु करते की दाव ।
ई तीनों मीलै नहीं, सूरति बोल सुभाव ॥ ३५१ ॥

टीका—फिरभी साहेब कहते हैं कि जो मनुष्य कायाकर्मके अनादि प्रवाहके निरुआरके लिये मन वचन शरीरसे उपाय करताहै। उसका दाँव बनताहै, तथा उसका मानव जन्म सफल होता है। वह मुक्त होजाताहै। और 'बिनु करतेकी' नाम मन वचन शरीरसे उपाय नहीं करनेवालोंका दाव कैसे बने, किन्तु नहीं बनता है, इससे वे संसारको नहीं जीतते हैं। और मन बचन शरीरसे मोक्ष के लिये जो पुरुष उपाय नहीं करते हैं, उनकी 'सूरति' नाम मनोवृत्ति बोल [बचन] स्वभाव [शारीरिक चाल व्यापार] ई तीनों नहीं मिलतेहैं। और इन तीनोंको सद्गुरु से बताये मार्गमें मिले बिना जीवोंको कल्याण नहीं होता है । लिखा है कि **[मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्दुरात्मनाम्। मनस्येकंवचस्येकं कर्मण्येकंमहात्मनाम्]** दुष्टात्माओंके मन बचन कर्ममें भेद रहता है। महात्माओंके मन आदिमें एक अर्थात् अभेद रहता है।

३५२ साखी दोहा ।

ज्यों गिरि सायर मुकुरमें, भींज भार कछु नाहिं ।
ऐसे सुख दुख रहित है, ज्ञानी के घट माहिं ॥ ३५२ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि जो नहीं करनेवाले हैं उनका दाँवतो नहीं बनता है, परन्तु जो करनेवाले हैं उनका दाँव बन जाताहै इससे उन ज्ञानियोंके घटमें, जीवित दशामें भी उनके आत्मा कैसे स्थिर रहता है, किस प्रकार असङ्ग सुख स्वरूप प्रकाशता है कि 'ज्यों' नाम जैसे मुकुर [दर्पण] में गिरि [पर्वत] और सायर यानी समुद्र जलसमुदाय भासते हैं, परन्तु उन भासते हुवे गिरि वा सायरसे दर्पणमें वस्तुतः भींजभार कुछ नहीं होते हैं, यानी गीलापन बोझ आदि नहीं होते हैं। 'ऐसे' नाम इसीप्रकार अज्ञानियोंको ज्ञानीके आत्मामेंभी सुखदुखादि और शरीरादि भासते हैं, परन्तु ज्ञानियोंके घटमें लौकिक सुख दुखसे रहितही नित्यचिदानन्दरूप आत्मा है। अर्थात् ज्ञानी महात्माओंके हृदयमें नित्यचिदानन्दरूप आत्मा सब संसारधर्मसे रहित एकरस एकही प्रकाशताहै, जिससे ज्ञानी जन्मादि रहित होजाते हैं।

३२३ साखी दोहा ।

अनुभव कूप अखण्ड जल, निगम कलश है चारि ।
कहहिं कबिर ता नीर के, पण्डित सब पनिहारि ॥ ३५३ ॥

टीका—ज्ञानिके घटमें रहनेवाला सुखदुःखसे रहित वस्तु कैसा है ? कैसे किसको प्राप्त होता है ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर साहेब कहते हैं कि ज्ञानी महात्माओंके अनुभव अर्थात् संशय विपर्यय रहित साक्षात्कारही कूपरूप है । और उसमें रहनेवाला चिदात्माही अखण्ड जलरूप है । अर्थात् शरीरवृत्ति परिच्छिन्न अनुभवमें रहनेपरभी असङ्ग आत्मा वस्तुतः अखण्डही है, सोई उक्त कूपमें जलके सदृश है । और उस अखण्डजलकी प्राप्तिके लिये चार निगम (चारवेद] चार कलशके सदृश हैं । और 'ता नीरके' यानी उस अखण्डजलके पनिहारी अर्थात् पण्डितगण वेदरूप कलशोंके द्वारा प्राप्त करनेवाले यानी भरनेवाले हैं । अर्थात् विवेकादि युक्त होकर गुरुसे वेदरूप उपनिषदादिके श्रवणादि करनेवाले जिज्ञासु पुरुष सद्गुरुके अनुभवमें वर्तमान अखण्डात्मारूप जलको प्राप्त करते हैं। तथा सुरति आदिको एक करके अखण्डानन्दरूप आत्माका अनुभव करतेहैं। जिससे नित्य तृप्त तृष्णाकामादि रहित मुक्त होजाते हैं इत्यादि । अथवा अपनाही अनुभव कूपरूप है । उसमें अखण्ड साक्षी जलरूप है । चारवेद कलशरूप हैं । और विवेक बुद्धि युक्त सज्जन सब पनिहारी हैं इत्यादि अर्थ हैं ॥

३५४ साखी दोहा ।

द्वारे तेरे रामजी, मिलहु कबीरा मोहिं ।
तैं तो सब में मिलि रहा, मैं न मिलूंगा तोहिं ॥ ३५४ ॥

टीका—सच्चिदानन्द रामकी प्राप्तिके लिये अनेकों देशोंमें भटकते हुये मनुष्योंके प्रति साहेब कहते हैं कि हे कबीरा ! [हे जीवो !] अखण्ड सर्वात्मस्वरूप वास्तविक रामजी तेरे द्वारेही परहैं यानी नेत्रादि द्वारा जन्य सब बुद्धि वृत्तियोंमें प्रकाश कर रहेहैं, इससे अत्यन्त समीपमें हैं । जो अज्ञानादिसे व्यर्थही अन्यत्र खोजतेहो, सो तुम ज्ञानसे उक्त रामकी प्राप्तिके लिये मोहि [मुझ] से मिलो अर्थात् मेरे सदृश मेरे स्वरूप सद्गुरुके शरणमें प्राप्त होवो, तब तुझे द्वारेहीपर रामकी प्राप्ति होजायगी । परन्तु तुमतो विषय लोक कुटुम्ब नाता और गोता आदि सबमें मिल रहेहो, इससे मैं [सद्गुरु] तोहि [तुझे] नहीं मिलूँगा । अर्थात् जबतक तुम विषयादिमें आसक्तहो तबतक तुझे वस्तुतः सद्गुरुकी प्राप्ति नहीं होसकती है । इसलिये विषयादि सब संसारकी आशा आसक्ति आदिको त्यागकर सद्गुरुसे मिलो तब बुद्धिवृत्ति हृदयादिमेंही रामजीकी प्राप्ति होजायगी । भाव यह है कि

संसारमें आसक्त पुरुष सद्गुरुकी पहचान नहीं कर सकता है, कदाचित पहचानभी लेता है तौभी उनका सङ्ग, शुश्रूषा आदि नहीं करसकता है, सङ्गादि करनेपर भी उनके उपदेशका तात्पर्य नहीं समझ सकता है, क्योंकि उसका चित्त चञ्चल रहता है, कदाचित समझ भी ले पर तौभी उस उपदिष्टि मार्गमें स्थिर नहीं रहसकता है इसलिये उसको सद्गुरुसे मिलानाभी नहीं मिलनेके तुल्यहै। इससे अन्य सब वस्तु विषयक आसक्तिको त्यागकर मुझसे मिलोतो सबकुछ तेरे पासमेंहीं प्राप्त होजायेंगे कहीं जाने आदिकी जरूरत नहीं होगी इत्यादि ।

३५५ साखी दोहा ।

इन्द्र लोक अचरज भया, ब्रह्मा बड़ा विचार ।
कबीरा चला रामपै, कौतुक कहर अपार ॥ ३५५ ॥

टीका—सब सङ्ग आसक्ति आदिको त्यागकर गुरुशरणमें प्राप्त होकर ज्ञानमार्गमें चलनेवालोंकी उत्कृष्टताका बर्णन करते हैं कि जो कबीरा [जीव सब] आसक्ति आदिको त्याग कर तथा गुरुसे मिलकर रामपै यानी वास्तविक रामके बिचारादि मार्गमें चलाहै वा चलताहै, सुरति आदिको एक करके आत्मतत्त्वमें स्थिर होताहै, उसे देखकर इन्द्रलोकमें आश्चर्य हुआ और होनाहै । अर्थात् इन्द्रलोक बासी देवताभी उसके आनन्द मोक्षको देखकर स्वयं विषयासक्त मोक्षसे वञ्चित रहनेसे अश्चर्य मानते हैं, तथा अपनेको हीन समझतेहैं और उसको धन्यबाद देते हैं । और उसे देखकर ब्रह्माभी बहुत विचार करने लगजाते हैं कि यह तुच्छ मनुष्य कैसे परमपदको प्राप्त हुवा ? और होता है ? अथवा ज्ञानमार्गमें चलनेवाले मुक्त पुरुषको ब्रह्मा अपनेसे बड़ा [श्रेष्ठ] विचारते [समझते]हैं। विषय व्यवहारादिमें स्वयं आसक्त रहनेसे विराग, उपरति युक्त जीवन्मुक्तको श्रेष्ठ समझते हैं । क्योंकि विषयासक्ति बासना आदिकोंको त्यागकर जिन मनुष्योंको सच्चिदानन्द रामपै [रामके पास] चलनाहै सो कहर अपार यानी अत्यन्त गम्भीर पारावारसे रहित कौतुक रूप है अर्थात् अज्ञानियों विषयासक्त जीवोंके लिये आश्चर्यजनक भारी तमासारूप है, इससे इन्द्र ब्रह्मादिकोंको भी आश्चर्य होताहै । इसलिये हे मनुष्यो ! गुरुसे मिलकर वास्तविक रामके पास चलो जिससे तेरा कल्याण होजावे इत्यादि । अथवा जो कोई द्वारपरके रामको नहीं जानकर लोकान्तरादिमें रामकी प्राप्तिके लिये चलतेहैं वा चलना चाहते हैं। उनके चाल व्यवहार सबके लिये आश्चर्य जनक है । इससे लोकान्तरादिमें रामके पास जो कबीरा चला है । उसे देखकर इन्द्रलोकमें आश्चर्य हुआ और होता है। और ब्रह्माजी बड़ाभारी बिचार करते हैं कि यह अज्ञानी रामके पास अन्य लोकादिमें चला है सो कहर अपार कौतुक है । अर्थात् जैसे खेलनेवाले लड़के छाया आदिको पड़ने चलते हैं। तैसे जीव सब कल्पित एकदेशीको राम मानकर खोजने चले हैं, सो अपार चेतन वस्तुमें कठिन कौतुक है इत्यादि।

३५६ साखी दोहा ।

त्यागी त्यागी सब कहै, और त्याग सब थोर ।
त्यागी तबहीं जानिये, त्यागे घट का चोर ॥ ३५६ ॥

टीका—प्रथम कहा गयाहै कि मेरे सदृश त्यागादि युक्त होनेसे सबकुछ तेरे पासमेंहीं प्राप्त होजावेंगे, और सबसे मिलना त्यागनेसे मैं तुझे मिलूँगा इत्यादि, सो सुनकर जिज्ञासा हुई कि संसारमें गृह स्त्री पुत्रादिको बहुत लोग त्यागते हैं, परन्तु उन्हें भी सबकुछ नहीं प्राप्त होते हैं न उन्हें सद्गुरु मिलते हैं। इसमें क्या कारण है ? तब॰ साहेब कहते हैं कि गृहादिकके त्यागनेवाले को भी सब कोई त्यागी २ कहते हैं, तथा वे लोगभी अपनेको त्यागी कहते हैं, परन्तु और सब त्याग थोड़े हैं, नाम केवल गृहादिके त्याग तुच्छ हैं, किन्तु मनुष्यको वास्तविक मुख्य त्यागी तभी जानना चाहिये कि जब वह अपने घटके आशारूप चोरोंको त्याग देवे। अर्थात् सभी अनात्म वस्तुकी आशाओंको त्यागनाही सच्चा त्याग है, उस त्यागसे युक्त मनुष्यको सब कुछ पासमेंहीं विचारादिसे प्राप्तहोते हैं, और सद्गुरु मिलते हैं, परन्तु आशाका सर्वथा त्यागही कठिन है, इससे सबको सद्गुरु नहीं मिलते हैं इत्यादि ।

३५७ साखी दोहा ।

बाट चढ़न्ती बेलरी, अरुझी आशा फन्द ।

टूटे पर छूटे नहीं, भया जो बाचा बन्द ॥ ३५७ ॥

टीका—जिस आशारूप घटके चोरको त्यागनेसे मनुष्य सच्चा त्यागी होता है, सो सब मनुष्यसे असाध्य है, क्योंकि जैसे वृक्षपर अपने बाटसे बेलरी चढ़ती है। तब उसके सूक्ष्म तन्तु वृक्षकी सूक्ष्म शाखाओंमें फंसते जाते हैं, सोभी ऐसे फंसते हैं कि टूट जातेहैं, परन्तु छुड़ानेसे छूटते नहीं हैं। तैसेही 'बाट चढ़न्ती' नाम संसारात्मक मार्गमें जाती हुई बुद्धिरूप बेलीके आशारूप 'फन्द' यानी सूक्ष्म तन्तु सदृश आशारूप वृत्तियाँ संसारात्मक वृक्षके विषय लोकादिरूप सूक्ष्म शाखाओंमें अरुझी हैं। सो ऐसी फँसी हैं कि यदि कोई महात्मा अपने उपदेशोंसे उस बुद्धिको संसारसे हटाकर अखण्डात्मतत्त्वमें लगाना चाहते हैं, तो वे आशारूप फन्दे से टूटते हैं, परन्तु छूटते नहीं हैं। अर्थात् कितनी आशायें निष्फल होजातीहैं तथा अन्तमें नष्ट होतीहैं, परन्तु नवीन २ होती ही जाती हैं। और पीड़ित होनेपर भी बुद्धि आशाको नहीं त्यागती है । और परोक्ष स्वर्गादि विषयक आशा नहीं छूटनेमें यह भी कारण है कि जो गुरुवाओंके साथ जीवोंको बाचा बन्द भया है। अर्थात् गुरुआ लोग असत बचनोंसे जीवोंको बाँध दिये हैं, इससे आशा नहीं छूटती है इत्यादि। अरुझीके किया छूटेके जूटे पाठभेदहैं, तब अर्थ है कि मोक्षमार्गमें चढ़ती हुई जीवरूप बेलरीने आशारूप फन्द किया और करता है, इससे श्रेष्ठ मोक्षमार्गसे टूटता है, परन्तु गर्भमें तथा बाहर जो इसको परमेश्वर तथा सद्गुरुसे बाचा बन्द हुआ है, उस सतमार्गमें यह जीव नहीं जुटता है।

३५८ साखी दोहा।

गुरु गुरुअन में भेद है, गुरु गुरुअन में भाव।
गुरु सदा सोइ बन्दिये, शब्द चिन्हावे दाव ॥ ३५८ ॥

टीका—जिससे गुरुवाओंके बचनसे असत वस्तु आदिमें आशा फँस जाती है। इसले गुरु गुरुवाओंके स्वरूप भेदादिका साहेब बर्णन करते हैं कि 'गुरु और गुरुअन' नाम गुरुवाओंमें भेद है। अर्थात् इनके स्वरूप मन बचनादि भिन्न भिन्न प्रकार वालेहैं, इसलिये गुरु तथा गुरुवाओंमें भक्ति भावका भी भेद करना चाहिये। अथवा गुरु गुरुवाओंके स्वरूपमें भेद है और इनके भावमें भी भेद है यानी इनकी भावनायें भिन्न चालकी होती हैं, बासना आदि रहित गुरुकी भावना परोपकारादि विषयक होती है। और बासना आशा आदि सहित गुरुवाओंकी भावना होती है। तथा जिज्ञासु आदिके कल्याणमें ही गुरुका भाव नाम तात्पर्य रहता है। और स्वार्थादिमें गुरुवाओंका तात्पर्य रहता है। और अपने अपने भावोंसे दोनों उपदेश देते हैं। इसलिये गुरु गुरुवाओंके विवेक पूर्वक 'सो गुरु सदा बन्दिये' यानी बन्दनीय हैं, जो गुरु शब्दों द्वारा संसारात्मक सागरसे पारहोनेका दाव चिन्हाते हैं। [बतलाते हैं] अथवा उस गुरुकी सदा वन्दना करनी चाहिये कि जो सारशब्दको ही संसारात्मक दुःखके नाशके लिये दाँवरूप बताते हैं। या जो सभी सांसारिक दाँवोंको शब्दमात्र मिथ्या चिन्हाते हैं सो गुरु सदा वन्दनीय हैं। उनसे ही आशाकी निवृत्ति हो जानेसे कल्याण होता है गुरुवाओंसे नहीं इत्यादि।

३५६ साखी दोहा।

सारो जो जन बेधिया, निर्गुण सो गुण नाहिं।
लागेउ चोट शब्द का, करक करेजे माहिं ॥ ३५६ ॥

टीका—जिज्ञास हुई कि गुरुको कैसा जानकर उनकी बन्दना करनी चाहिये? तब साहेब कहते हैं कि 'जो जन' नाम जिन गुरुजनोंमें 'सारो' नाम सारशब्द सारवस्तु बेध गये हैं, सो गुरुजन निर्गुण ब्रह्मात्मास्वरूप हैं, त्रिगुणरूप नहीं है। और जब उनके शब्दकी चोट जिसके करेजेमें लगती है, नाम हृदय वर्ती मनमें लगती है, तब उसके हृदयमें करक होताहै। अर्थात् अज्ञान मोहादि बश जिन विषयादिकोंको जीव सत्य सुखदादि समझते हैं उन्हें गुरुउपदेशसे असत्य दुःखरूप मन बुद्धिसे निश्चय करते हैं। इसलिये निर्गुणादि स्वरूप गुरुको जानकर उनकी बन्दना करनी चाहिये इत्यादि। या गुरुके बन्दना उपदेशादिसे जिज्ञासु पुरुष किस रूप होता है? ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं कि जिन जिज्ञासुओंमें गुरुके सार शब्द बेध गये हैं। उनके यथार्थ

भावका निश्चय होगया है, सो पुरुष निर्गुण हैं गुणस्वरूप नहीं हैं। इससे गुरुके शब्दसे पुरुष मुक्तरूप होजाता है। और जिनके करेजेमें गुरुवाओंके असार शब्दकी चोट लगी है, उनके करेजेमें वे शब्द सदा करकते हैं नाम दुःखशोकादिको उत्पन्न करते हैं इत्यादि। जो जनके योजन, पाठ भेद है तथ [योजनं परमात्मनि चतुष्कोश्यां च योगेच] इस कोषके अनुसार अर्थ है कि गुरुशब्दसे जानने योग्य 'योजन' नाम परमात्मा सारे संसारमें बेधा है, और सो निर्गुण है गुणस्वरूप नहीं है। अथवा 'सारो योजन' नाम सम्पूर्ण चतुष्टय अन्तःकरणरूप चतुष्कोशीमें जो व्यापकहै सो निर्गुण है गुणस्वरूप नहीं है। और उसके बोधक शब्दकी चोट जिसको लगी है, उसके करेजेमें वह चिदानन्द करकता है, नाम मन बुद्धि आदिको भी नष्टकर देता है। तथा हृदय-वृत्ति सब विकारोंको ज्ञानरूप वृत्तिमें स्थिर होकर नष्टकर देता है। या उस वस्तुके बोधक शब्दकी चोट करेजरूप 'करक' नाम कमण्डलुमें ही लगती है। अर्थात् स्थिर शुद्ध हृदयरूप कमण्डलुमें लगती है अन्यत्र नहीं लगती है इत्यादि। कमण्डलौ च करकः॥ यह कोष है॥

३६० साखी दोहा।

सारा बहुत पुकारिया, पीव पुकारे और।
लागेउ चोट शब्द का, रहा कबीरा ठौर॥ ३६०॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! जो सारवस्तु सबमें व्यापक है। उस 'सारा' नाम सारवस्तुको ही मैंने इस ग्रन्थमें बहुत 'पुकारिया' यानी बहुत प्रकारसे प्रगट करके कहा है, जिसको और लोग भी पीव (पति) परमेश्वरादि नामसे पुकारते हैं। अर्थात् जिसे भेदवादी आत्मभिन्नको पति कहते हैं। और जिस पुरुषको गुरुके सारशब्दकी चोट हृदयमें लगी सो कबीरा [जीव] उसी सार वस्तुरूप ठौरमें रहा, और जिसको लगता है सोभी उसी ठौरमें रहता है नाम उसी रूपसे स्थिर होता है। या 'सारा' नाम सत्यात्मस्वरूप ज्ञानी लोग उक्त निर्गुण वस्तुको ही बहुत प्रकारसे कहे हैं, और अन्य गुरुवा लोग सगुण वस्तुको पीव कहकर पुकारते हैं, परन्तु जिस जीवको गुरुके शब्दकी चोट लगी है, सो कबीरा गमनागमनसे रहित ठौरमें ही रहा और रहता है। अथवा कहते हैं कि जिन लोगोंको गुरुके सारशब्द नहीं लगे हैं, वे लोग 'बहुत सारा पुकारे हैं' नाम बहुत वस्तुको सत्य अविनाशी नित्य सारादि कहते हैं, तथा 'औरको' नाम आत्म भिन्न वस्तुको पीव कह करके पुकारते हैं, परन्तु जिसको सारशब्दकी चोट लगी सो कबीरा एक सत्य ठौर नाम अधिष्ठान स्वरूप रहा और रहता है। और बहुत वस्तु आदिमें नहीं प्राप्त होता है इत्यादि।

३६१ साखी दोहा।

शब्द कहै सो कीजिये, गुरुवा बड़े लबार।
अपने अपने लोभ के, ठाम ठाम बट वार॥ ३६१॥

टीका—साहेब उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो! जिन सद्गुरु सत शास्त्रके शब्दोंसे सत्यठौरकी प्राप्ति होती है। 'वे शब्द जो कहैं सो कीजिये' नाम सद्गुरु सतशास्त्रके उपदेशके अनुसार अपने कल्याणके लिये उपाय कीजिये, और अनेकों गुरुवाओंका कहा नहीं कीजिये, क्योंकि गुरुवा लोग बड़े लबार [मिथ्यावादी] होते हैं। इससे अपने २ लोभके बश होकर ठाम ठाममें 'बटवार होते हैं' नाम कर्म उपासना लोक व्यवहारादि सब मार्गमें बटवारी ठगी बञ्चकपन अविवेकसे करते हैं। तथा मोक्षमार्गमें प्रवृत्त जिज्ञासुओंको भटकाते हैं, संसारात्मक मार्गमें जीवोंके सर्वस्वादिको लूटते हैं इत्यादि इसलिये उनसे बचो जिससे कल्याण होवे॥

३६२ साखी दोहा।

बरिया बीते बलघटे, केश पलटि भौ और।
बिगरा काज सँवारिले, कर छूटे नहिं ठौर॥ ३६२॥

टीका—और भी साहेब उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो! यदि तुम युवा अवस्थामें अपना विगड़ा हुआ कार्य नहीं सुधारे हो तो जब तेरे 'बरिया' नाम बरिआई बीत गई है। और शरीरकी बरिआई बीतनेसे मन इन्द्रियोंके बलभी घट गये हैं। और केशभी पलटके और होगये हैं, [श्वेत हो गये हैं], कामोन्मादादि कुछ शान्त होगये हैं। तौभी अपना अनादिसे विगड़े हुए कार्यको सँवार लो यानी विवेकादि पूर्वक संसारात्मक दुःखका निवारण कर लो, नहीं तो जैसे ताल बृक्षादिपर चढ़े हुये मनुष्योंको दैवयोगसे कर छूटनेपर नाम हाथसे बृक्ष शाखा पत्रादिको छूटजानेपर कहीं ठौर नही मिलता है, इससे गिरकर वे पुरुष नष्ट होते हैं। वैसेही तुम्ह विवेकादि बिना इस मानव तनके छूटे ठौर नहीं मिलेगा बारम्बार नष्ट होवोगे इत्यादि। या बृद्धोंकेही प्रति कहते हैं कि बल घटनेसे तेरी बरिआई बीत गई, केशभी पलटकर और होगये, इस अवस्थामें भी अपना बिगड़े हुये कार्यको सम्भारलो। और सोई कार्य विचारादि पूर्वक करो कि जिन कार्यादिकोंको ठौर मानव शरीर छूटनेपर नहीं मिलता है, या जिन कार्यादिकोंके बिना जीवोंको ठौर नहीं मिलता है, उन्हेंही अवश्यकरो कि जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि

३६३ साखी छ० दृढ़पद।

काल्हु करन ते आजु कर, आजु करन ते अब।
पलमें परलय होयगा, बहुरि करेगा कब॥ ३६३॥

टीका—घरिआई आदिके बीतनेपर सुधारका उपदेश सुनकर मनुष्य यह नहीं समझ लेवें कि वृद्धावस्थामें ही सुधार करना चाहिये। इसलिये फिरभी साहेब उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो! जो कुछ शुभ कर्म विचारादि अपने कल्याणके लिये तुझे 'काल्ह करना है' अर्थात् वर्तमान दिनके बीतनेपर जिन्हें करनेकी इच्छा करतेहो, उन्हें आजही करो नाम आजही करना शुरु करदो, और आज किसी समय जो करने योग्य हैं, उन्हें अभी करो यानी शीघ्रही करो, क्योंकि यदि एक पलमात्रमें प्रलय होजावेगा या तेरे शरीरादि यदि क्षणमात्रमें नष्ट होजावेंगे, तो फिर कब करोगे अर्थात् शरीर क्षणभङ्गुर है इसकी स्थितिका कोई निश्चय नहीं है। इससे किसी काल वा अवस्था आदिकी अवादा (आशा) नहीं करनी चाहिये, किन्तु शीघ्रही अपने कल्याणके लिये भावादिको पलटना चाहिये। तथा श्रेष्ठमार्ग उपायका अवलम्बन करना चाहिये इत्यादि। अब्ब, कब्ब, पाठ होवे तो दोहा छन्द जानना चाहिये। लिखा है कि [श्वःकार्यमद्य कुर्वीतपूर्वाह्णे चापराह्णिकम् । नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वाऽकृतम] कलहके कार्योंको आज और सामके कार्यको सबेरे करना चाहिये, क्योंकि मृत्यु इस पुरुषके कृत और अकृत कार्योंकी प्रतीक्षा नहीं करती है।

३६४ साखी दोहा।

टाला टोली दिन गया, ब्याज बढ़न्ता जाय।
न हरि भजये न खत फटै, काल पहूंचा आय॥ ३६४॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! शीघ्र ही अविद्या काम कर्मादिकी निवृत्तिके लिये उपाय करो, नहीं तो जैसे किसी अधमर्ण कर्जदार पुरुषके 'टाला टोलीमें दिन गया' नाम एक मासमें दूंगा दो मास वा वर्षमें दूंगा इत्यादि, टालमटोल करनेसे बहुत दिन बीत गये होवें और वह उपाय करके ऋण नहीं चुकाता होवे तो दिन दिन ब्याज बढ़ते ही जाते हैं, तथा कष्ट बढ़ता ही जाता है। तैसे ही जो पुरुष शुभकर्म सत्सङ्ग विचार ध्यानादिसे आत्मतत्त्वको जानकर अविद्या कामकर्म बासना आदिको शीघ्र ही नहीं नष्ट करते हैं, किन्तु टालाटोली करते हैं कि कल्ह करूँगा वर्षदिनमें वा बृद्ध होनेपर करूँगा इत्यादि, उनके दिन टालाटोलीमें ही गया और जाता है। और आगामी मोह काम कर्मादिरूप ब्याज भी बढ़ते ही जातेहैं, तथा संचित कर्म भी ज्योंके त्यों पड़े रहते हैं। और जैसे ऋण चुकाये बिना प्रमाणपत्ररूप खत नहीं फटता है। तैसे ही मनुष्य जबतक सर्वात्मस्वरूप तथा सद्गुरुस्वरूप हरिको नहीं भजता है, तबतक कर्मरेख बासना आदिरूप तथा कर्मादिके आश्रय अविद्या अन्तःकरणादिरूप खत भी नहीं फटते हैं, यानी इनका नाश तबतक नहीं होता हैं। इससे टालाटोलीको त्यागकर शीघ्र ही हरिभजनसे उक्त खतको फाड़ना चाहिये इत्यादि, नहीं तो उक्त खत हरिभजन बिना जिनके नहीं फटे हैं, उन्हें पीड़ित करनेके लिये काल आकर पहुँचा और

पहुँचताहै। इसलिये अवश्य ही हरिको भजो, जिससे कल्याण होवे इत्यादि । या कहते हैं कि शीघ्रता नहीं करनेवालोंका टालमटोलमें दिन गया और 'व्याज' (बहाना) वा (सूद) बढ़ते ही जाते हैं। और कालके आ पहुँचनेपर भी आलसी मनुष्य न हरिको भजते हैं न उनके कर्मादिके खत ही फटते हैं इत्यादि ।

३६५ साखी दोहा ।

कबिर बैद्य बोलाइया, पकरि दिखाई बाँहिं ।
बेदन बैद्य न जानई, कफ्फ कलेजे माहिं ॥ ३६५ ॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि जो गुरुवारूप वैद्य कलेजेमें कफके सदृश शिष्यके हृदयमें रहनेवाले अज्ञान विपरीत ज्ञान संशय कामादिरूप रोगको नहीं जानता है, नाम उन्हें परखनेमें असमर्थ विवेक विज्ञान रहित है । और उन रोगोंसे जन्य जो बेदन (वेदना पीड़ा) उसे भी जो नहीं जानता है न किसी प्रकार यथार्थ समझ सकता है उस गुरुवारूप वैद्यको लोगोंने बुलाया और उसका शरण पकड़ा । और अपनी २ बाँहु दिखाई और दिखाते हैं। अथवा अपनी बाँह पकड़ कर या पकड़ाकर दिखाते हैं । अर्थात् जैसे रोगी नाड़ी द्वारे रोगको पहचाननेके लिये अपनी बाँह पकड़वाकर वैद्यसे दिखाता है। तैसे ही लोगोंने गुरुवाओंसे अपनी शुभ अशुभ दशा आदि दिखाते हैं। और ज्ञानी गुरुसे नहीं दिखाते हैं न हरिको भजते हैं, इससे उक्त खत नहीं फटते हैं इत्यादि। या साहेब कहते हैं कि विवेकादि रहित पिता माता आदि लोगोंने उस गुरुवारूप वैद्यको अपने पुत्रादिके कल्याणके लिये बुलाये, और पुत्रादिकी बाँह पकड़कर दिखलाये कर्मरेख शुभ अशुभादि शोधवाये और शोधवाते हैं कि जो वैद्य 'बेदन' नाम सार शब्दरूप बेदोंको नहीं जानता है तथा 'बेदन' नाम ज्ञानस्वरूप आत्माको भी जो नहीं जानता है । इससे जिस वैद्यके कलेजे माहिं स्वयं कफ है, अर्थात् अविद्या माया मोहादि जिसके हृदयमें वर्तमानहैं उससे बाँह दिखाने वालोंके हृदयमें भी अविद्यादि वर्तमान ही रहते हैं जिससे उक्त खत नहीं फटते हैं इत्यादि ।

३६६ साखी दोहा ।

राम नाम जान्यो नहीं, लागी मोटी खोरि ।
काया हाँड़ी काठकी, ना वह चढ़ै बहोरि ॥ ३६६ ॥

टीका—और भी कहते हैं कि बेदनको नहीं जाननेवाला वैद्यसे बाँह दिखानेसे तथा टालमटोलसे जिन्होंने रामनाम वाला सर्वोत्तम स्वरूप हरिको नहीं जाना है । उन मनुष्योंको 'मोटी' नाम बहुत भारी 'खोरी' नाम दोष लागी [लगा] और लगता है । और यह 'काया' नाम शरीर

काठकी हाँड़ीके तुल्य है, जैसे काठकी हाँड़ी अग्नियुक्त चूल्हेपर एकही बार चढ़नेसे जल जाती है, इससे फिर नहीं चढ़ती है। तैसे ही यह शरीर किसी एक ही तीव्र रोगादिसे नष्ट हो जाता है, फिर रामनाम जाननेके लिये सहायक नहीं होता है। तथा शीघ्र दूसरे बार मनुष्य ही जन्म होनेका कोई निश्चय नहीं है इससे अनेकों योनियोंमें जीव कष्ट भोगते हैं रामनाम नहीं जानने पाते हैं। इसलिये सद्गुरुके उपदेशसे शीघ्र ही रामनामको जानना चाहिये इत्यादि।

३६७ साखी दोहा।

जानै सो पूछै नहीं, पूछि करे नहिं गौन।
अन्धे को अन्धा मिला, पन्थ बतावै कौन॥ ३६७॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि यह मनुष्य जानै सो (जाननेवाले) ज्ञानी सद्गुरुसे तो पूँछता ही नहीं है, और पूँछकर भी उस सत मार्गसे यह गमन नहीं करता है। अथवा ज्ञानीसे पूँछकर नहीं गमन करता है, किन्तु अपनेसे कल्पित वा गुरुवाओंसे कहा हुआ असत मार्गसे गमन करताहै। और जैसे किसी एक अन्धाको दूसरा अन्धा ही मिला तो कौन किसको यथार्थ पन्थ बता सकता है? किन्तु कोई नहीं बता सकता है। तैसेही अज्ञानी जीवको अज्ञानी गुरुवा मिला तो कौन सतमार्गको बतावे किन्तु कोई नहीं बत लाताहै। अथवा जो पुरुष जाननेवालेसे नहीं पूछता है और उससे पूँछकर सतमार्गमें गमन भी नहीं करता है, किन्तु स्वयं अन्धा किसी अन्धेसे मिलता है तो वह अन्धा संसाररूप सघन बनसे पार होनेके लिये कौन मार्ग दिखा वा बता सकता है? अर्थात् कर्म उपासनादि कोई भी सतमार्ग नहीं बता सकता है, किन्तु असत दुःखद मार्ग ही बतलाता है। इसलिये सद्गुरुसे पूँछकर सतमार्गसे गमन करना चाहिये इत्यादि।

३६८ साखी दोहा।

एक शब्द में सब कहा, सब ही अर्थ बिचार।
भजिये निर्गुण रामको, तजिये विषय विकार॥ ३६८॥

टीका—सद्गुरुसे प्राप्त करने योग्य सतमार्गका साहेब संक्षेपसे वर्णन करते हैं कि मैंने पूर्व कही रीतिसे सत्य असत्य गुरु गुरुवा आदि सब ही अर्थका अपने अन्तःकरणमें विचार करके 'एक अन्तिम शब्दमें सब अर्थ कह दिया है' यानी सबका सार कह दिया है कि झूठे अर्थ तथा पुरुषका विश्वास नहीं करो। और सब विषय तथा विकार (कार्य और कुकर्मादिकों) को त्याग दो। और एक सर्वात्मस्वरूप रामको सत्य उपदेशसे भजो तथा श्रवणादि करो इत्यादि। या कहतेहैं कि मैंने एक शब्दमें सब ही अर्थ और सब विचार सबसे कह दिया है। जिज्ञासा हुई कि वह कौन शब्द है?

तब कहते हैं कि एक निर्गुण रामको भजना चाहिये और विषय विकारको त्यागना चाहिये, यह एक शब्द है इत्यादि। या सब महात्माओंने एक शब्द नाम एक वाक्यमें ही 'सब ही अर्थ' नाम अर्थ साधक, अर्थात् मोक्षरूप प्रयोजनको सिद्ध करनेवाले सब ही विचारोंका कह दिया है। या सब प्रयोजन के सिद्ध करनेवाले विचारको एक शब्दमें कह दियाहै कि निर्गुण रामको भजिये और पाञ्च विषय तथा मानसादि विकारोंको तजिये इत्यादि।

३६९ साखी दोहा।

कबीर माया मोहिनी, भई अँधेरी लोय।
जे सूता तिहि मूसिया, रहे वस्तु को रोय॥ ३६९॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि यदि निर्गुण रामका भजन और विषय विकारको त्यागनाही कल्याण का हेतु सत्य मार्गहै, तो लोग सगुण पदार्थोंको क्यों भजतेहैं? तथा विषय विकारको क्यों नहीं त्यागतेहैं? इत्यादि। तब साहेब कहते हैं कि अनिर्वचनीया माया 'मोहिनीहै' नाम पूर्ण विवेक विचार सत्सङ्गादि रहित मनुष्योंको मोहित करनेवालीहै। और उस मायाका स्वभावसे मोहित जो लोय 'लोग'हैं, उनके हृदयमें वह माया ही अँधेरी हुईहै। और अविद्यारूप रात्री उनके लिये संसारमें विद्यामान है। और वे लोग मोह नींदसे सोये हैं। और जो लोग मोह नींदसे सोयेहैं, उन्हें वह माया 'मूस लियाहै' नाम उनके स्वरूप निर्गुण रामको छिपा दियाहै, तथा कामादि रूप आनन्दको हर लियाहै। इससे जीव सब रहे वस्तुको भी रोते हैं। अर्थात् नित्य सुखस्वरूप प्राप्त आत्माको भी दुःखी तथा उसके अभाव नाशादि मानकर सब लोग रोतेहैं। या आत्मवस्तुके मूसनेपर प्रत्यक्ष विषयादि की प्राप्तिके लिये जीव रोते हैं तथा शोकादि करतेहैं इत्यादि।

३७० साखी दोहा।

पहिले दही जमाइया, पीछे दुहिया गाय।
बछवा वाके पेटमें, गोरस हाट विकाय॥ ३७०॥

टीका—मोहित करनेवाली मायाकी अद्भुत शक्तिका बर्णन करते हैं कि वह माया पहिले दही जमाई फिर पीछे गाय दुही। और दूधके निमित्त बछड़ा उसके पेटहीमें था तबही हाटमें गोरस विकने लगा। भाव यह हैकि दुग्ध परमाणुके सदृश त्रिगुण परमाणुहैं। और दुग्धपर माणुके कार्य सदृश त्रिगुण परमाणुके कार्य पृथिवी जलादि हैं, सोई पृथ्वी आदि मानोदही हैं। और मायाने पृथ्वी आदि स्थूल कार्यरूप दहीकोही प्रथम सब मनुष्यों के दिलमें जमाय दिया अर्थात् इनमें सत्यादि पनका निश्चय करा दिया। फिर सुख, दुख, मोहरूप त्रिगुणको मनुष्योंके

हृदयमें प्रगट किया सोई मानो पीछे गाय दुही। और लोगोंके सुख, दुख, मोहसे व्याप्त होनेपर उक्त दुग्धके निमित्तरूप सर्वात्मस्वरूप ईश्वर उस मायारूप गौके पेटमें होगये। अर्थात् गर्भगत बछड़ेके सदृश सुख,दुख, मोह, युक्त बड़े विद्वानादि लोगोंसे भी यथार्थ स्वरूपसे अज्ञेय अप्राप्य होगये और होजाते हैं। और संसाररूप हाटमें उस सर्वात्मस्वरूप ईश्वरके ज्ञान बिना उस मायारूप गोकाही कार्यरूप रस बिकताहै, अर्थात् उक्त ईश्वररूप निमित्तसे जन्य मायिक तुच्छ वस्तु तथा सुखकोही लोगोंने गुरुवाओंके उपदेशादिसे सत्यादि मानकर प्राप्त करते हैं इत्यादि।

३७१ साखी दोहा।

देखी तो सब कहत हैं, अनदेखी नहिं कोय।

अनदेखी तो सो कहै, भीतर पैठा होय॥ ३७१॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि स्थूल कार्यरूप दहीको लोगोंके चित्तमें जमने से, तथा मायिक रसको संसाररूप हाटमें बिकने आदिसेही सब लोग 'देखी' नाम दृश्य मायिक वस्तुओंको सत्य सुखादिस्वरूप कहतेहैं, और गुरुवाओंसे पूछतेहैं। और 'अनदेखी' नाम अदृश्य सर्वसाक्षीस्वरूप आत्माको कोई भी अविवेकी नहीं कहतेहैं यानी उसे सत्यादि स्वरूप न जानतेहैं न कहते हैं। तथा देखी शरीरादि कोही सब कोई अपना स्वरूप कहते हैं। और अनदेखी को नहीं कहते हैं, तथा वर्तमान देखी दुखकी निवृत्तिके लिये सब कोई कहतेहैं। और अव्यक्त माया मोह भावी आदिस्वरूप दुःखकी निवृत्तिके लिये कोई नहीं कहतेहैं। तहाँ साहेब कहतेहैं कि अदृश्य साक्षी स्वरूप आत्माको सत्य स्वात्मस्वरूप सोई पुरुष कहताहै कि जो पुरुष विवेक करके उक्त मायारूप गौके भीतर नाम पेटमें पैठा हुआ रहता है। तथा अव्यक्त माया आदिरूप दुःखको सोई पुरुष कहता है या जानताहै तथा निवृत्त करताहै कि जो पुरुष कार्योंके भीतर विवेक दृष्टिसे पैठा हुआ रहताहै। अर्थात् विवेकादि युक्त मनुष्यही अदृश्य आत्मतत्त्वको जानकर कार्य कारण रूप स्थूल सूक्ष्म सब दुःख बन्धनादिकोंको अत्यन्त नष्ट करके नित्यमुक्त होजातेहैं अन्य पुरुष नहीं होते हैं इत्यादि।

३७२ साखी दोहा।

चिड़िया तो तिल भर नहीं, डैना है नव हाथ।

भरि भरि मांस परोसई, खलरि अठारह हाथ॥ ३७२॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि वह मायारूप चिड़िया तो तिलभर भी नहीं है, अर्थात् ज्ञानियों की दृष्टिसे वह माया मिथ्या कल्पित अनिर्वचनीय तुच्छ स्वरूपहै, परन्तु उस मायारूप चिड़ियाके चतुष्टय अन्तःकरण पाञ्च ज्ञानेन्द्रियरूप नव हाथ के डैना, [पक्ष] हैं। और

उन डैनाओंमें भरि २ कर वह माया जीवोंके लिये भोग्य विषयादि रूप मांस परोसती है। और पाञ्च कर्मेन्द्रिय तथा पाञ्च प्राण पाञ्चभूत तीनगुनरूप अठारह हाथ की खलरी [त्वाचा] उक्त मायारूप पक्षी की है। अथवा यागके षोडश ऋत्विक् यजमान तथा यजमान के पत्नी ये अठार ह हाथके खलरी है। या अठारह पुराण अठारह हाथकी खलरीहै। अर्थात् आवरणशक्तिसे चिदात्माको पेटमें करके विक्षेपस्वरूप शक्तिसे मायानेहीं भोग्य भोग साधनादिको रचतीहै। इससे देखीकोही सबकोई कहतेहैं अनदेखीको कोई भी नहीं कहतेहैं इत्यादि। वस्तुतः जीवरूप तथा आत्मारूप चिड़िया शरीर बुद्धि स्वरूप वृक्षपर रहनेवाले हैं जो चिड़ीया तिलभर भी नहीं हैं, अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म हैं। और उनके पाञ्च प्राण चतुष्टय अन्तःकरणरूप नव डैनाहैं, नाम उड़नेके साधनहैं, सोई ग्रहणके हेतु हाथरूप भी हैं। और पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय पाञ्च कर्मेन्द्रिय पञ्चपर्वा अविद्या तीनगुन अठारह खलरी हैं, सोई अठारह हाथ के तुल्य हैं। और इन नवों अठारहों हाथोंमें भर२ कर अपने लिये दृश्य विषयादिरूप मांस परोसते हैं, इससे दृश्यकोही सब कोई कहतेहैं इत्यादि।

३७३ साखी दोहा।

चींटी निकालि बजार में, नव मन कज्जल लाय।
हाथी लीहिस गोदमें, ऊँट लिहिस लटकाय ॥ ३७३ ॥

टीका—जिज्ञासा हुई कि जो तिलभर भी नहीं है उससे वा उसमें यह महान् संसार कैसे होता है ? तब साहेब कहते हैं कि मायारूप चींटी वा जीवरूप चींटी संसारात्मक बजारमें निकली है। सोभी नव विध संसाररूप वा निषिद्ध शब्दादिकोंके श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन, सूंघना, मनन, चिन्ता, अहंकार और निश्चय करनारूप 'नव मन कज्जल' नाम स्याहीको अर्थात् तमको लादकर निकली है। और ब्रह्माण्डरूप हाथीको वह गोदमें 'ले लिया है' नाम अपनी अचिन्त्य शक्तिमें धारणकर लिया है। और अनेकों व्यवहारादिरूप ऊंटको लटकाय लियाहै। या हिरण्यगर्भ विराटादिरूप हाथीको गोदमें ले लिया। और अन्य देवादिरूप ऊंटको लटकाय लिया। अर्थात् जैसे महातुच्छ चींटी बड़े चावल आदिको उठा लेती है, तैसेही परमसूक्ष्म माया अविद्या चिदात्मा जीव भी इस महान् संसारको अपनी शक्ति स्वभाव सत्ता अदृष्टादिसे धारण करते हैं।

३७४ साखी दोहा।

तीन लोक लीटी भया, गीध लिये मड़ राय।
मैं तोहि पूछौं पण्डिता, कौन वृक्ष चढ़ि खाय ॥ ३७४ ॥

टीका—सत्यात्म वस्तुका उपदेश करके, तथा संसार बन्ध मोक्षादि सब पदार्थ व्यवहारादिको मायामनके कार्यरूप बनाकर, जिज्ञासुके बोधकी परीक्षाके लिये सद्गुरु स्वयं प्रश्न करते

हैं। और बोध कराते हैं कि शिष्यको उपदेश देकर भी विपरीत बोधकी निवृत्तिके लिये दयालु सद्गुरु परीक्षा लेतेहैं। और पूर्ण बोध होनेपर उपदेश देना समाप्तकर देते हैं। और कहते हैं कि हे पण्डिता! यानी हे श्रेष्ठबुद्धिवाले जिज्ञासुओ! 'तीन लोक' नाम तीनों लोकरूप संसार तथा तीनों लोकके बासी जीव सब तुच्छ 'लीटी' नाम रोटीके तुल्य हुआ है। उस लीटीको लेकर माया मनरूप गीधपक्षी आकाश-मण्डलमें मँड़राय रहा है नाम घूमरहा है। तहाँ मैं तुमसे पूछता हूं कि उक्त गीधपक्षी उस लीटीको किस बृक्षपर चढ़कर खाय ? अर्थात् स्वयं सत्ता आदिसे रहित माया किसकी सत्ता आदिसे जगतके उत्पत्ति प्रलयादि करती है, इत्यादि। अथवा मायाके ही अद्भुत शक्तिका बर्णन पूर्वक माया और उसके आश्रय चेतनके विचारके लिये उपदेश देते हैं कि मायारूप गीध तीनलोकरूप लीटीको लेकर मँड़राय रहा है, तो मैं तुमसे पूछता हूँ कि माया और मनरूप गीध उस लीटीको किस बृक्षके आश्रित होकर खाय? सो विचारो तथा जानो। या वह किसी बृक्षपर चढ़कर नहीं खाता है किन्तु तेरे चिदात्माके ही आश्रित होकर खाता है इत्यादि।

३७५ साखी दोहा।

आँगन बेलि अकाश फल, अनब्यानी का दूध।
शशा सींग के धनुष करि, खेले बाँझक पूत॥ ३७५॥

इति साखीप्रकरणं समाप्तम्।

टीका—शिष्य कहता है कि आत्मस्वरूप आँगनमें मायारूप बेलि लगी है, तथा हृदय-संसाररूप आँगनमें बुद्धिरूप बेलि लगी है, और अर्थ धर्म कामादिरूप उस बेलिके फल चिदाकाशमें लगे हैं, परन्तु सो बेलि तथा सब फल अनब्यानी गौके दूध सदृश मिथ्या और कल्पित हैं। तोभी 'बाँझ' यानी सत्यपुत्रके अहेतुरूप मायाके पुत्र सदृश जीव शशासींगके सदृश शास्त्र, शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिके धनुष करके खेलता है, नाम उक्त फलोंको शास्त्रादिसे प्राप्त करता है। और मायारूप पक्षी भी उसी आकाशरूप बृक्षपर चढ़कर उक्त लीटीको खाती है इत्यादि। या मायिक सब वस्तु तथा व्यवहार मिथ्या हैं, वह किसी बृक्षपर चढ़कर किसी लीटीको नहीं खाती है। इस आशयसे शिष्य कहता है कि आँगनमें बेलि होवेतो अकाश नाम अन्तरीक्षलोकमें उसका फल होना, अनव्यानीको दूध होना, शशासींगके धनुष करके उससे बाँझके पुत्रको खेलना जैसे कल्पनामात्र हैं। तैसेही तीन लोकरूप लीटीको लेकर मड़राना आदि हैं इत्यादि। या विचारकी कर्तव्यताका उपदेश देकर सद्गुरुही इस साखीमें आकाशके फलादिके सदृश संसारको मिथ्या बताये हैं, उपसंहाररूपसे मनमायाकृत भासादिको मिथ्या दर्शाते हैं इत्यादि, इतिशम्॥

दोहा।

अङ्क ऋषिग्रह द्विज पानि, विक्रमाब्द शुभमान।
मार्ग शीर्ष शुक्ला नवमी, योगामृत वरदान ॥ १ ॥
चन्द्रवार शुभ दिवसको, एक वर्ष त्रय मास।
बीते यह टीका भई, पूरण अतिहिं समास ॥ २ ॥

कुण्डलिया।

कुरो मणि गर्भज तनु लहि, तातहुं ते श्रीराम।
तिनके पुण्य प्रभावतें, सुगुरु मिले सुखधाम ॥
सुगुरु मिले सुखधाम, दयानिधि पर उपकारी।
दीनो अक्षर दान, गई दुर्भाग्य हमारी ॥
करी शुभाशुभ कर्म, श्रीगुरु मोहन पाहीं।
आया करि शुभ वेष, तहाँ नहिं सुखद लहाहीं ॥ १ ॥
तहँ बसत मोहि मोहगण, घेरन चाह्यो आय।
डूबतहीं भवसिन्धु में, श्रीगुरु लियो बँचाय ॥
श्रीगुरु लियो बँचाय, सदा हैं पर उपकारी।
श्रीगुरु नाम कबीर, जिनी संकल्प सुधारी ॥
बीजकते वैराग्य, लही सन्तन पहँधायो।
श्रीगुरु रमितादास, सबहिं सन्देह नशायो ॥ २ ॥
निःसंशय पद पाय इमी, क्षेम दृढ़त्व के हेत।
श्रीगुरु हरिहर आदि के, शरण गह्यो दृढ़ चेत ॥
शरण गह्यो दृढ़ चेत, लह्यो शुभ विद्या भारी।
राख्यो नहीं छिपाय, यथा मम मति यह धारी ॥
गुरुवर वचन विचारि, लहि विद्या निज गुरुन ते।
तिन आज्ञा शिरधारि, टीका लिखि हित करन ते ॥ ३ ॥
सुनिये सज्जन वृन्द अब, वीनति एक जु मेरि।

पढ़िये याहि सम्हारि कर, अर्थ जु हेरा फेरि ॥
अर्थ जु हेरा फेरि, ताहि मोर कृत मानिये ।
जो यामें सत्यार्थ, सोइ सद्गुरुकृत जानिये ॥
अल्प बुद्धि तें लिखी जो, टीका ग्रन्थ गँभीर की ।
तामें जो है सत्य, सोइ सतगुरु कबीर की ॥ ४ ॥
याते मोर न दोष कछु, अरु न ग्रन्थको जानु ।
याका अर्थ अनन्त शुभ, बुद्ध यही पहिचानु ॥
बुद्ध यही पहिचानु, कीजिये और विचारी ।
दिशा दिखायो साफ़, गुरुन तें लेहु सुधारी ॥
सत्यधर्म युत मोक्ष, याते लेहु बिचारि के ।
टारहु मोह कलङ्क, मानुष जन्म सुधारि के ॥ ५ ॥

गीतिका ।

सुरसरि तीर ग्राम फतुहाहै, दरियापुर मठ धारैं ।
विचरहिं सन्त ज्ञान मारगमें, भवभय दूरहिं टारैं ॥
जहँ शुभ नियम अहै जगपावन, विरति बिराग सिखावैं ।
यदि महान निज नियम तजैं तो, बिगलित पद हो जावैं ॥
जिहि न जाति कुल शिष्य आदिके, पक्षपात मन भावैं ।
निर्भय चलै न्याय मारगमें, सो महान पद पावैं ॥
करै न राग द्वेष काहुन सो, सम्पत्ति गुरुकी जानै ।
तिसका करै सम्हार धर्महित, सन्त सुरति करि कानै ॥
तहँ महान केशव केशव सम, जब द्युति करत प्रमानै ।
तब टीका यह लिखी रामपद*, अधिकारी पद ठानै ॥ १ ॥

* इसलिये यह टीका लिखी है कि इसे पढ़कर जिज्ञासु अधिकारी सर्वात्मा रामवस्तुमें स्थिर होवें और जब टीका लिखी गई उस समय श्री १०८ रामदासजी साहेबके पादकमलमें अधिकारी पदवी अर्पी जाती थी ।

दोहा ।

पाटलि पुत्रते पूर्व दिशि, चार कोशपर गाम ।
तहँ रहि टीका यह लिखा, हनूमान जिहि नाम ॥ ३ ॥
जिला मुज्जफ्फर पूरमें, है पुरद्वारिक गाम ।
षोड़श बर्षके उमरतक, तहाँ रह्यो शुभ ठाम ॥ ४ ॥

कुण्डलिया ।

वर्षाछि चकना आदिमें, छि इत तितहीं विताय ।
वीशहुंसे वत्तिस लों, सँस्कृतहीं मन लाय ॥
सँस्कृतहीं मन लाय, कछुक दिन गयो पढ़ावत ।
चालिसका जो शाल, तबै यह कियो यथामत ॥
जो याहि ते धर्म यश, ताकी करी नहिं आशा ।
ताको मैं अर्पत हुं, श्रीवर सद्गुरुके पासा ॥ ६ ॥

दोहा ।

जो कछु यामें सत्य है, सो सब हीं प्रभु तोर ।
तुम्हरी तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ॥ ५ ॥

शिवकरं शिववाक्यविशारदं, प्रणततापतुदं तनुतारणम् ।
निखिलवेद तदङ्गदिवाकरं, सुसदयं प्रणतोस्मि जगद्गुरुम् ॥ १ ॥

कल्याण करनेवाला, कल्याणकारक वाक्यमें पण्डित, प्रणतशिष्यके तापोंको नष्ट करनेवाला शीघ्र शरीरात्मक बन्धनसे रहित करनेवाला, सम्पूर्ण वेद और उसके अङ्गोंको प्रकाशनेवाला, सुन्दर, दयायुक्त जगद्गुरुके प्रति प्रणत हूं ॥ १ ॥

उत्पत्तेस्तु पुराह्येत यस्मिन्नासीच्चराचरम् ।
अखण्डं चित्सदानन्दं तद्ब्रह्मास्म्यहमद्वयम् ॥ २ ॥

संसारकी उत्पत्तिसे प्रथम जिसमें चराचर थे सो अद्वय सच्चिदानन्द अखण्ड ब्रह्म मैं हूं ॥२॥

इति श्री १०८ पूज्यपाद रमितादास हरिहरसुधी विनेयसाधु हनुमद्दास
कृता साखीप्रकरणस्य शिशुबोधिनी टीका समाप्ता ।

अथ बीजक परिशिष्ट प्रकरण द्वादश

१ साखी दोहा ।

साखि पुरन्दर ढहि परे, बिबि अक्षर युग चार ।
रसना रम्भण होत हैं, करि न सकै निरुआर ॥ १ ॥

टीका—साहेब कहते हैं कि यह जीव वस्तुतः अद्वैत असङ्ग साखि (साक्षी) चेतन-स्वरूप, और पुरन्दर यानी सर्वसामर्थ्य युक्त इन्द्रस्वरूप है, परन्तु सद्गुरु सदुपदेश ज्ञान विरागादिकी प्राप्ति बिना संसारात्मक समुद्रमें स्वयं ढहकर अज्ञानादिसे पड़ाहै । और चारों युगोंमें बिबि (द्वैतस्वरूप) की तथा द्वैत बोधक अक्षरोंका ही उच्चारण चिन्तन धारणादि यह अज्ञानी जीव करता है । अर्थात् शब्दजालमें और वाचारम्भणमात्र विकारात्मक अर्थमें फंसा रहता है । इससे जिसका रसनासे रम्भण (आरम्भ) होता है, उस बिबि अक्षरका यह जीव निरुआर नहींकर सकता है इत्यादि । अथवा कहते हैं कि इन्द्रके तुल्य वा इन्द्र यानी ईश्वरस्वरूप जो जीव हैं, सो साक्षी स्वरूपसे ढहकर यानी विवेक विज्ञानादि बिना अपनेको साक्षी स्वरूप नहीं जानकर बिबि (दो दो अक्षर) रूप जो राम खुदा शिव ब्रह्मादिके केवल नाम हैं, उनमेंही चारों युगोंमें जीव सब पड़े रहते हैं । इससे केवल रसनासे रामादिका आरम्भ होता है । और साक्षी स्वरूपका कोई जीव निरुआर यानी विवेक पूर्वक निश्चय निर्णय अपरोक्ष अनुभव नहीं कर सकते हैं न करते हैं इत्यादि ।

२ साखी दोहा ।

किते मनावौं पाँव परि, किते मनावौं रोय ।
हिन्दू पूजैं देवता, तुरुक न काहुक होय ॥ २ ॥

टीका—औरभी कहते हैं कि उस साक्षी स्वरूपसे ढहकर संसारात्मक सागरमें बहते हुए इन मनुष्योंको चाहे कोई पाँव पड़के कितनाहुँ मनावो, वा इनके दुखोंसे दुखी होनेसे चाहे कोई कितनाहुँ रोकर मनावो [समझावो] कि विवेक विराग विज्ञानरूप नौकाओं द्वारा साक्षीस्वरूप किनारेमें लगकर नित्यमुक्त आनन्दस्वरूप होवो क्यों व्यर्थ बहते दुखी होते हो, तो मनुष्य नहीं मानते हैं, किन्तु हिन्दूलोग तो देवताको पूजते हैं । और तुरुकलोग काहु (किसी के नहीं होते हैं । अर्थात् जन्मान्तरवादी हिन्दू देवताओंमें वा देवताओंको ही पारब्रह्म परमेश्वर मानकर उनकी पूजा उपासना

आदि करते हैं। जिससे उन्हें कभी ज्ञान विरागादिभी होसकते हैं, यदि वे लोग निष्काम कर्म उपासना करें तथा विचारादि परायण होजावें, परन्तु जन्मान्तरको नहीं माननेवाले जो नास्तिक तुरुक हैं। सो तटस्थ खुदा आदिकी कल्पनामात्र करते हैं, बस्तुतः वे लोग किसीको नहीं मानते हैं। तथा उनका माना हुआ अत्यन्त मिथ्या है। इससे वे लोग वस्तुतः किसीके उपासकभी नहीं हैं केवल कल्पनामें लगे रहते हैं इत्यादि।

३ साखी दोहा।

धीमर जाल पसारिके, आपु गया अरुझाय।
ताके पाछे मच्छ सब, जाले जाल समाय॥ ३॥

टीका—औरभी कहते हैं कि गुरुवारूप धीमर सब संसारात्मक समुद्रमें अनेकों कल्पनारूप जाल पसारकर उन जालोंमें प्रथम आप ही अरुझाय गया। (फंस गया) उसके पीछे उनके शिष्यरूप मच्छ सब भी उन जालोंमें ही बारमबार समाये, और समाते हैं इत्यादि। अथवा हिरण्यगर्भ देवता आदिरूप धीमरोंने इस संसाररूप जालको रचकर उसमें आपअरुझाय गये। और उनके पीछे अन्य जीवरूप मच्छसब भी जालसे जालमें समाते हैं। अर्थात् बारमबार कर्मादि करके शरीर धारण करते हैं परन्तु जालसे रहित होनेके लिये यत्नादि नहीं करते हैं सो आश्चर्य है इत्यादि। अथवा परमेश्वररूप धीमरने अपनी माया सत्ता स्फूर्तिसे संसाररूप जाल पसारकर उसमें आप अरुझाय गया है, यानी अविद्यासे अरुझाया सदृश भासता है। और उसके पीछे रहनेवाले विवेक विचारादि रहित जो मच्छसदृश जीव सब हैं सो जाले जालमें समाते हैं। अर्थात् पीछेके सदृश उसके परोक्षमें रहनेवाले अपरोक्ष अनुभव रहित जीव सब बारमबार जन्मते मरते हैं इत्यादि।

४ साखी दोहा।

साधू राम न मीलिया, पहुंचे जाय अनन्त।
कहहिं कबीर पुकारिके, गावहु जाय बसन्त॥ ४॥

टीका—जिस प्रकार जीव सब जालमें समाते हैं, उसका बर्णन करते हैं कि यह विवेकादि रहित जीव साधुरामसे नहीं मिलिया अर्थात् सत्य एकरामसे नहीं मिला, तथा ज्ञानी साधु महात्मा रूप रामसे नहीं मिला, किन्तु अनन्त मायिक वस्तु और गुरुवाओंके सङ्गमें जा पहुँचा और पहुँचता है, अर्थात् उनसे मिलता है इससे जालोंमें समाता है। साहेब पुकारकर कहते हैं कि हे सज्जनो! यदि तुम अपना कल्याण चाहो तो सतगुरुके शरण, तथा सत्सङ्गमें जाकर बसन्तको गावो। अर्थात् बसन्तके सदृश आनन्दजनक और आनन्दस्वरूप राममें मन लगाकर गावो। अथवा उक्त जालसे बँचनेके लिये साहेब युक्ति बतलाते हैं कि जो साधु जिसमें अज्ञानी लोग रमते हैं, उस रूपसे नहीं

मिला, सो साधु देशकालादिकृत परिच्छेदसे रहित अनन्तस्वरूप सर्वात्मा राममें जा पहुँचा और जापहुँचता है। इसलिये हे सज्जनो! तुम भी विषयादि स्वरूप रामसे नहीं मिलो, किन्तु जो सबमें बसता है, और जिसमें सब बसते हैं, उस राममें जाकर उसी रामको गावो, तथा भजो, जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि। अथवा कहते हैं कि जो वेषधारी साधुत्वके अभिमानी जीव सत्यात्मा गुरुस्वरूप एक-रामसे नहीं मिला, किन्तु अनन्त विषयादिमें जापहुँचा, सो जालोंमें फँसा। इससे हेसज्जनो! तुम बसन्तके सदृश परोपकारी गुरुके शरणमें जाकर उनके गुणोंको गावो इत्यादि।

५ साखी दोहा।

नारि कहावै पीव की, रहै और सङ्ग सोय।
जार मीत हृदया बसे, ख़सम ख़ुसी क्यों होय॥ ५॥

टीका—और साहेब कहतेहैं कि जैसे कोई स्त्री अपने पतिकी नारी कहलाती है, परन्तु अन्य किसीके साथ सोई रहती है, और उसके हृदयमें भी जाररूप मीत बसता है, तो उसके खसम (पति) किस प्रकार खुश होसकताहै, अर्थात् किसी प्रकारभी प्रसन्न नहीं रह सकताहै। तैसेही जीव सबभी सद्गुरु सत्य एक राम ईश्वरकी नारी कहलाते हैं, परन्तु विवेक विरागादि बिना देवता विषयादि अनेक वस्तुओंमें आसक्त रहते हैं, और उनके ही ध्यानादि हृदयसे करते हैं, तो सद्गुरु सर्वसाक्षी स्वरूप खसम किस प्रकार प्रसन्न और प्रत्यक्ष होसकता है? अर्थात् इन जीवोंके शुद्धात्मारूपसे कैसे भास सकता है? किन्तु नहीं भासता है। इसलिये अन्य विषयक आसक्ति आदिको त्यागना चाहिये जिससे सत्यात्मा रामका ज्ञान होवे इत्यादि।

६ साखी दोहा।

सांच कहों तो मारिया, झूठहिं लागु पियारि।
मो शिर ढारे ढेंकुरी, सींचे और कियारि॥ ६॥

टीका—औरभी कहतेहैं कि अन्यके सङ्ग सोनेसे, तथा विवेकादिके अभावसे, सांच कहनेपर यह जीव उपदेशक गुरुको भी मारताहै। और झूठही इसको प्रिय हित मालूम होताहै। और मो शिर [गुरुके शिर] पर ढेंकुरी ढारता है। [डारता है] और अन्यकी कियारीको सींचताहै। अर्थात् सब जीव गुरुका नाम लेतेहैं तथा किसी न किसीको गुरु मानतेहैं, परन्तु वास्तविक गुरुको नहीं पहचानते हैं न गुरुके उपदेशको मानते हैं, किन्तु गुरुवाके असत मार्गमें चलते हैं तथा शरीर विषयादिमें आसक्त होते हैं जिससे बारम्बार उक्त जालोंमें समाते रहते हैं इत्यादि।

७ साखी दोहा।

दृष्टिहिं माहिं विचार है, बूझै बिरला कोय।
चरम दृष्टि छूटै नहीं, ताते शब्दी होय॥ ७॥

टीका—फिरभी सत्यात्मसाक्षी वस्तुका उपदेश देतेहैं कि हे सज्जनो! नेत्रादि द्वारा निकली हुई अन्तःकरणकी वृत्तिरूप दृष्टिमेंही उसका प्रकाशक साक्षीस्वरूप रामका विचारहै, अर्थात् उक्त दृष्टिमें वा अन्तरमुख वृत्तिमें साक्षीका विचार श्रेष्ठ और सुलभ है, इससे सो विचार करना चाहिये, परन्तु अन्यमें आसक्त होनेसे उस साक्षीको कोई बिरलाही बूझता है। [जानता है] और उसे जाने बिना जीवोंकी चर्मदृष्टि नहीं छूटती है, अर्थात् बाह्यदृष्टि शरीराभिमानादि नहीं छूटते हैं 'ताते' मनुष्य सब केवल शब्दी होते हैं। अर्थात् केवल गुरुरामादि शब्दोंको कहते हैं इत्यादि। अथवा अबिनाशी चेतनरूप दृष्टिविषयक ही विचार वास्तविक विचार है, परन्तु उस विचारको कोई बिरलाही बूझता है। और जो कोई उस बिचारको एकवारभी बूझताहै तो उसको वह चरमदृष्टि नहीं छूटती है। अर्थात् सब संसारसे पर अन्तिम वह आत्मदृष्टि फिर नहीं छूटती है। तथा अविद्या माया उसके पासमें नहीं आतीहै, वह सदा चितस्वरूप नित्यमुक्त रहताहै। इसीसे वह शब्दी होताहै कल्पित विकारात्मक शब्दादिके असङ्ग अधिष्ठान साक्षीस्वरूप वह ज्ञानी होताहै, बाचारम्भणात्मक शब्दरूप नहीं होता है इत्यादि अर्थ हैं।

।८।९।१०। साखी दोहा।

साधु भया तो क्या भया, बोले नाहिं विचार।
हते पराई आतमा, जीभ लिये तरवार ॥ ८ ॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
श्रवण द्वार है संचरै, शालै सकल शरीर ॥ ९ ॥
हीरों की बोरी नहीं, मलयागिर नहिं पांति।
सिंघन के लेंहड़ा नहीं, साधु न चलैं जमांति ॥ १० ॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि जो पुरुष सत्य असत्य हित अहित आदिका विचार नहीं करके बोलता है, सो शब्दी पुरुष यदि साधु भयातो क्याभया यानी साधुके वेषोंका धारण किया वा करता है, तो उससे क्या फलहुआ वा क्या होसकता है, किन्तु कोई सत फल नहीं हो सकताहै, क्योंकि विचारसे रहित पुरुष झूठ क्रूर अहित वचन बोलता है, इससे वह जीभरूप तरवार लिये रहताहै। और उससे पराई आत्माको हनताहै, इसलिये वह वस्तुतः असाधु है, तथा अनर्थको प्राप्त होताहै। अथवा जो पुरुष दृष्टिमें आत्मतत्त्वको विचारकर नहीं बोलता है तो उसके साधु होनेसे क्या फलहुआ? उलटा वह पुरुष असत्य उपदेश देताहै, इससे मानो वह जीभ ही को तरवाररूपसे लेकर परात्माका घातही करता है ॥ ८ ॥ और वस्तुतः मधुर सत्यवचन सबके लिये औषधीरूप है। और कटुक असत्य बचन तीरके सदृश होताहै, सो कटुक असत्य वचन श्रवणद्वारा शरीरमें संचार

[प्रवेश] करता है । और सम्पूर्ण शरीरको शालताहै अर्थात् शूल पीड़ा व्यथा युक्त करता है। इससे कटुक वचनका त्यागपूर्वक मधुर सत्य वचन ही सब साधु बोलते हैं ॥ ६ ॥ परन्तु जैसे हीरोंकी बोरिया नहीं होती है, कहीं एक दो हीरा होते हैं। और मलयागिरकी पांति [पङ्क्ति] नहीं होती हैं। और सिंहोंके लेंहड़ा (झुण्ड, समुदाय) नहीं होता है । तैसेही सत्य मधुर हित परिमित भाषण करनेवाले साधुओंकी जमात नहीं चलती है किन्तु उक्त ज्ञानी महात्मा कहीं बिरलेही होतेहैं इत्यादि । लिखा है कि [**शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे । साधवो नहिं सर्वत्र चन्दनं न वने वने**] सब पर्वतमें माणिक्य और सब हाथीमें मुक्ता तथा सब स्थानमें साधु सब वनमें चन्दन नहीं होते हैं ।

साखी दोहा ।

ढाढ़स देखु मरजिव को, धँसिके पैठि पताल ।
जीव अँटक माने नहीं, ले गहि निकला लाल ॥ ११ ॥

छ० सरसि ।

रे मरजीवा ? अमरित पीवा, का धसि मरै पतार ? ।
गुरु की दया साधु की सङ्गति, निकसि आव यहि द्वार ॥ १२ ॥

टीका—(जो बन सायर सूझने, रमिया लाल कराहिं) इस साखीके अनुसार संसार और सांसारिक विषयादिकही अज्ञानी जीवोंकी दृष्टिमें लाल नामक अमूल्यरत्नके सदृश तथा सत्यादिस्वरूप हैं। और समुद्रके रत्नोंके लिये समुद्रमें डुबकी लगानेवालोंको मरजीवा कहते हैं । तहाँ साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो ! संसारात्मक समुद्रमें गोता लगानेवाला तथा विषय जन्यसुखादिके लिये उनकी वासनाओंसे वारमबार जन्मता मरता हुआ विवेकादि रहित जीवरूप मरजिवका ढाढ़स [साहस] देखो कि यह मरजिवा संसारात्मक समुद्रमें धँसकर [आसक्त होकर] पतालतक पैठ जाता है। अर्थात् गर्भाशय नरकादिमें प्राप्त होता है, तथा नरकादिके हेतु कर्मादिका अनुष्ठान करता है। और उक्त संसारात्मक पतालमें जो अँटक लगते हैं यानी अनेकों दुःख बन्धन परवशता आदि जो प्राप्त होते हैं, उन्हें यह मरजीवा जीव नहीं मानता है, [नहीं समझता है] इससे तुच्छ विषयभोगादिको ही लालके सदृश मानकर, और उन्हें लेकर यानी कर्मादिसे प्राप्त करके, और वासना आदि द्वारा उन्हें गहकरकेही गर्भाशय नरकादिसेभी निकलताहै। इससे अनेकों कष्टोंको भोगकरभी तुच्छ भोगादिकोंमें ही आसक्त रहता है ॥ ११ ॥ साहेब उपदेश देते हैं कि रे मरजीवा ! पतालमें धँसकर क्या वारमबार मरता है, अर्थात् क्यों व्यर्थही वारमबार जन्ममरणादि जन्यदुःख भोगता है, अभी भी पतालमेंका धँसना त्यागो, और अमरित पीवा [अमृत पिवो] अर्थात् विवेक विज्ञानादिसे नित्यमुक्त आत्मवस्तु की प्राप्तिकरो। और सतगुरुकी दया तथा साधुकी

सङ्गतिरूप जो संसारात्मक पतालसे निकलनेके द्वार हैं इन द्वारोंसेही निकल आवो अर्थात् संसारात्मक बन्धनसे रहित नित्यमुक्त होजावो इत्यादि ॥१२॥ या स्वर्गकी बासनासे बँधे जीवों के विषयमें कहते हैं कि इन मरजीवोंकी कर्मादि विषयक ढाढ़स देखो ये पतालमें धँसकर स्वर्गादिमें पैठे हैं । और ये जीव उससे अँटक यानी मोक्षमें विलम्बादि नहीं मानते हैं इससे स्वर्ग सुखादिरूप लाल लेकर तथा उसे गहकर फिरभी निकलते हैं अर्थात् उससेभी रहित होतेहैं ॥ ११ ॥ गुरु कहते हैं कि रे अमृतकी इच्छावाला मरजीवा ! पतालमें धँसकर क्या मरता है ? गुरुकी दया साधुकी सङ्गतिरूप इन श्रेष्ठ दरवाजोंसे निकल आवो जिससे तेरा कल्याण होवे इत्यादि ॥ १२ ॥

१३ साखी दोहा ।

दश द्वारे का पींजरा, तामें पच्छी पौन ।
रहबे को आश्चर्य है, जात अचम्भा कौन ? ॥ १३ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो ! गुरुकी दया साधुकी सङ्गति द्वारा तुम शीघ्र संसारसे निकलो नहीं तो यह मानव शरीर दशद्वार युक्त पींजरारूप है, और उसमें पौन (प्राणवायु) पक्षीरूप है । तहां खुले दशद्वारयुक्त शरीररूप पींजड़ामें पवनरूप पक्षीको 'रहबेको' ही आश्चर्य है कि कैसे इसमें फंसा रहताहै तो उसे ऊड़जाने में कौन आश्चर्य है अर्थात् कोई भी आश्चर्य नहीं है, इससे शीघ्रही उसे ऊड़नेसे प्रथमही संसारसे पारहोवो इत्यादि ॥

१४ साखी दोहा ।

जब लगि दिनपर दिल नहीं, तब लगि सब सुख नाहिं ।
चारिउ युगन पुकारिया, सो संशय दिल माँहिं ॥ १४ ॥

टीका—औरभी उपदेश देते हैं कि जिस मनुष्यका दिल (अन्तःकरण) जबतक दीनपर नहीं होताहै । अर्थात् दुःखी अनाथपर दया आदियुक्त जिसके मन बुद्धि जबतक नहींहोते हैं, तबतक दया परोपकारादि रहित उस पुरुषको सबसुख (मोक्षसुख) नहीं प्राप्त होता है। सो महात्मालोग चारों युगोंमें पुकारगये हैं। तौभी जो पुरुष दया परोपकारादि नहीं करते हैं, उनके दिलमें सो संशय (मोक्ष का संशय) तथा मरणादिका संशय अवश्य रहता है, इसलिये अवश्य दया परोपकारादि करना चाहिये । अथवा दिनपर (समयपर) जबतक मनुष्यका दिल नहीं जाता है कि यह मानवतन सम्बन्धी मेरे दिन कैसे बीते जाते हैं ? इन दिनोंमें मुझे क्या करना चाहिये ? इत्यादि तबतक मनुष्यको सबसुख नहीं प्राप्त होते हैं । और महात्मालोग जीवोंके सुखके लिये चारों युगमें पुकारे हैं, परन्तु समयपर दिलके बिना सुखकाभी संशयही दिलमें रहता है इत्यादि ॥

।१५।१६ साखी दोहा।

बूझो करता आपना, मानो बचन हमार।
पाञ्च तत्त्व के भीतरे, जिसका यह विस्तार ॥ १५ ॥
हम कर्ता सब सृष्टि का, हमपर दूसर नाहिं।
कहहिं कबिर हम नहिं चिन्हे, सकल समाना ताहि ॥ १६ ॥

टीका—फिरभी साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! हमारा बचन मानो, और अपने कल्याणके लिये 'अपना' यानी अपना स्वरूपभूत कर्ताको बूझो (समझो) जो कर्ता समष्टि व्यष्टि पाञ्चतत्त्वक भीतर है। और सबको सत्तास्फूर्ति देता है। इससे जिसके विस्ताररूप ये सब स्थावर जङ्गमादि हैं। उस कर्ताको जानो ॥ १५ ॥ जिज्ञासाहुई कि उसको किसप्रकार जानें? तब साहेब कहते हैं कि तुम इसप्रकार जानो कि हमहीं सब सृष्टिका कर्ता हैं, अर्थात् मेरीही स्वरूपमें मायाशक्तिसे ये सब प्रपञ्च विवर्त हुवे हैं। और मैं इनसे परहूँ, और हमसे परे कोई दूसरा नहीं है। साहेब कहतेहैं कि यह भारी आश्चर्य है कि सकल सृष्टि 'ताहि' यानी उसी जीवके स्वरूपहीमें समानी है, तौभी हम सबका कर्ता हैं इसप्रकार यह जीव अपनेको नहीं चीन्हता है। या सबका कर्तास्वरूप जो आप सो अपनेको नही चीन्हता है, उसी में जन्ममरणादि सब संसार समाये रहते हैं। इससे अवश्य अपना स्वरूप कर्ताको चीन्हो इत्यादि ॥ लिखा है कि [**को देवो यो मनः साक्षी मनो मे दृश्यते मया। नहिं देवस्त्वमेवासि एको देव इति श्रुतिः**] देव कौन है? जो मनका साक्षी है। मन तो मुझसे देखाजाताहै, तो तुमहीं देवहो, तथा श्रुति कहतीहै कि सब भूतोंमें एकही देव है इति॥

१७ साखी दोहा।

सिंह अकेला बन रमै, पलक पलक करु दौर।
जैसा बनहै आपना, तैसा बनहै और ॥ १७ ॥

टीका—श्रेष्ठ विवेकी पुरुषके विचार स्वभावका बर्णन करते हैं, कि जैसे सिंह बनमें अकेलाही रमताहै, और किसी बन वा पशुसे नहीं डरताहै, किन्तु पलक २ (सदा) ऐसा दौर (विचार) करताहै कि जैसा अपना बनहै तैसाही अन्य वनभी है इत्यादि। वैसेही पुरुष 'सिंह' यानी श्रेष्ठज्ञानी पुरुषभी इस संसारात्मक बनमें अकेला (अद्वितीय) और निर्भयरूपसे रमते हैं। और पलक२ में विचार तथा गौर करते हैं कि जैसा यह वर्तमान मनुष्यलोकादिरूप अपना बनहै [संसार है] तैसाही और है। अर्थात् इसीके सदृश देवलोकादि सबही मिथ्या मायिक और दुःखस्वरूप हैं, ऐसा जानकर विवेकी लोग किसी लोकादिकी इच्छा नहीं करते हैं। और निर्भय रहते हैं। इसलिये मनुष्यको

चाहिये कि श्रेष्ठपुरुषसे अनुसृत मार्गका आश्रयण करे इत्यादि । लिखाहै कि [**देहाभिमाने गलिते विज्ञाने परमात्मनि । यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥ प्रवृत्तौ जायते रागो निवृत्तौ द्वेष एव च । निर्द्वन्द्वो बालवद्धीमा नेवमेवव्यवस्थितः**] देहाभिमान छूटने पर निजरूपसे परमात्माके जाननेपर जहाँ २ मन जाता है तहाँ २ समाधिही रहती है । प्रवृत्तिमें राग निवृत्तिमें द्वेष होता है, इससे निर्द्वन्द्व ज्ञानी शुभाशुभ भावनासे रहित बालक सदृश रहते हैं ॥

१८ साखी दोहा ।

जो जियरा अकसर बसै, आश न राखै कोय ।
कहहिं कबिर तिहि दुचित्त का, मिला मिलाया सोय ॥ १८ ॥

टीका-जो मनुष्य एकसर [अकेला] एकान्त देश वस्तुमें वसे (निवास करे) और किसी वस्तु की कोई आशा नहीं रक्खे, तो साहेब कहते हैं कि उसको 'दुचित्त' यानी दुविधा चञ्चलता क्या हो सकती है ? अर्थात् नहीं होसकती है । क्योंकि वह सदा शान्तस्वरूप होकर सत्यानन्दमें मिलाहुवा और सद्गुरु आदिसे मिलाया हुवा रहता है ।

१९ साखी हरिपद ।

घरमहँ बैठा आपु बिराजै, बाहर दीसै सोय ।
खोजि खोजि सब थकित भये हैं, पार न पावै कोय ॥ १९ ॥

टीका—एकान्तवासी श्रेष्ठ महात्माओंकी आत्मा शरीरमें बैठा आप विराजताहै । और वही उन्हें बाहरभी दीख पड़ताहै । और अन्य जीव सब उसे खोज २ कर थकगये हैं, और उसका पार नहीं पातेहैं इत्यादि ।

साखी दोहा ।

भक्ति भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न आई काज ।
जहँ के क्रिया भरोसवा, तहँ ते आई गाज ॥ २० ॥
समुझो भाई ज्ञानियों, काहु न कहा सँदेश ।
जेइ गये बहुरे नहीं, है वह कैसा देश ? ॥ २१ ॥
धोखे सब जग बीतिया, धोखे गई सिराय ।
थिति नहिं पकरै आपनी, यह दुख कहा न जाय ॥ २२ ॥

टीका—श्रेष्ठपुरुष स्वरूप हुये बिना, तथा उनके मार्गका अनुसरण किए बिना ही सब कोई भक्ति भक्ति कहते हैं, और कल्पित भक्ति करतेभीहैं, परन्तु श्रेष्ठ महात्माओंके मार्गके अनुसरण बिना वह भक्ति सकामपुरुषोंका काज नहींआई न काज आतीहै, यानी इन्हें पूर्ण आनन्द नहीं देती है, किन्तु जहाँकी ये लोग भरोसा करते हैं कि अमुकदेश लोकादिमें जाकर मैं आनन्दादिकी प्राप्ति करूंगा इत्यादि, तहाँसे भी गाज आई और आती है, यानी मुखके गाज (फेन) सदृश तुच्छ विषय सुखादिकही वहाँभी प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ इससे हे भाई ! ज्ञानियोंसे पूर्णानन्द का उपाय समझो और पूछकर जानो, उनके बिना तुझे काहु [कोई] भी यथार्थ सँदेशा नहीं कहाहै न कह सकताहै। और जो कोई मरकर लोकान्तरादिमें गये, सो उसी रूपसे नहीं बहुरे न कहने योग्य अन्य किसीरूपसे बहुरे कि जिनसे जानाजावे कि वहदेश कैसाहै, इसलिये ज्ञानियों सेही देशादिको भी समझो ॥ २१ ॥ क्योंकि उनसे समझे बिना सब जग धोखेहीमें बीत गया, और धोखेमें सिराय गया [लीन हुआ] तौभी जो पुरुष ज्ञानियोंसे बूझकर अपनी स्वरूपमें थिति नहीं पकड़ता है। उसको जो यह जन्मादिरूप संसारात्मक दुख है सो कहा नहीं जाताहै, अर्थात् वह महाकष्ट भोगताहै। इसलिये सद्गुरुसे बूझकर अपनी थिति पकड़ो इत्यादि ॥ २२ ॥ अथवा हे भाई ज्ञानियो यानी विवेकी जिज्ञासुओ ! जिसको देशादिका सँदेश कोई नहीं कहा है उसे समझो। उसे समझकर जो कोई गये उसमें प्राप्त हुवे सो फिर संसारमें नहीं बहुरे। इससे वह सर्वात्मस्वरूपदेश कैसा है ? सो समझो। और अन्यभक्तिको त्यागदो ॥ २१ ॥ क्योंकि उसे समझे बिना सब जग धोखेमें बीता यानी [लीन हुवा] और सो धोखाभी नष्टहुवा इसीसे जीव अपनी थितिको नहीं पकड़ता है, किन्तु मिथ्या धोखाके साथ सदा जन्मता मरता है। तहाँ यह दुख जानेसे नष्ट होता है सो समझो इत्यादि ॥ २२ ॥

साखी दोहा।

राम कहत जग बीतिया, कोई भया न राम।
कहहिं कबिर जिन रामही, तिनके भे सब काम ॥ २३ ॥
मायाते मन ऊपजे, मनते दश अवतार।
ब्रह्म विष्णु धोखे गया, भरम परा संसार ॥ २४ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि ये जग [सब जीव] राम कहते २ बीतगये, और बीततेहैं, यानी अपनी तिथि पकड़े बिना अविवेकी लोग राम कहते २ नष्टहोते हैं, परन्तु बिबेक विज्ञानादि बिना कोईभी चिदानन्द रामस्वरूप नहीं हुवा न होताहै। साहेब कहते हैं कि जो बिबेकी पुरुष रामही अर्थात् रामस्वरूपही हुवे वा होते हैं। उनके सब काम पूर्ण होगये और होते हैं। अर्थात् ज्ञानीलोग जन्मादि रहित नित्य तृप्तस्वरूप होजातेहैं इत्यादि ॥ २३ ॥ और जो

पुरुष रामस्वरूप नहीं हुवे हैं, उनके लिये मायासे मन उत्पन्न होताहै । और मनसे दशो अवतार उत्पन्न होतेहैं । और उन मन तथा दश अवतारोंमेंही शुद्ध चिदानन्द ब्रह्मपनके धोखेमें, और व्यापक विष्णु यानी ईश्वरपनके धोखेमें सब संसार गया और जाताहै, अर्थात् मनसे कल्पित किसी पदार्थको वा व्यक्त दश अवतारोंकाही ब्रह्माविष्णु आदि जानकर संसार उन्हें प्राप्त होता है। इससे सब संसार रामस्वरूप हुये बिना भ्रममें पड़ा है। और पड़ता है इत्यादि॥ या राम हुये बिना मायासे मन ऊपजताहै और मनसे दश अवतार ऊपजते हैं । और ब्रह्मा विष्णु भी माया मन तथा अवताररूप धोखेमें गये, वा मन माया आदि ब्रह्माविष्णुकोभी धोखेमें प्राप्तकिये । और सब संसारभी आत्मारामके जाने बिना भ्रममें पड़ा इत्यादि ॥२४॥

साखी दोहा ।

देवन देखा सेवकहिं, सेवक देवन दीख ।
कहहिं कबीर मरते दिखो, यह गुरु देई सीख ॥ २५ ॥

छ० सरसि ।

तेरी गति तैं जाने देवा, हममें समरथ नाहिं ।
कहहिं कबिर यह भूल सबन की, सब परु संशय माहिं ॥ २६ ॥

दोहा ।

खालि देखि के भरमिया, ढुँढत फिरै चहुं देश ।
ढूँढ़त ढूँढ़त मरगये, मिला न निर्गुण बेष ॥ २७ ॥

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि एक आत्मारामकोही सत्य जाने बिना देवता लोगोंने भी अपने सेवकोंको आत्मभिन्न तथा सत्यदेखें, और देखते हैं । और उनसे अपना भोग उपकारादि चाहते हैं । और सेवक लोगभी आत्मभिन्न तथा सत्य देवताओंको देखते हैं, उनसे उपकार चाहते हैं । और साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो ! देवत्व सेवकत्व युक्त व्यक्तियोंको मरते हुवे देखो यानी असत्य विनश्वर जानो, क्योंकि सद्गुरुने यही शिक्षादीहै ॥ २५ ॥ और हे मनुष्यो जीवो ! तेरी गति तुम आपही हो, अपनेही स्वरूपके विचारादिसे तेरा कल्याण होसकता है, परन्तु अज्ञान मोहादिवश तुम देवताओंको अपनी गति स्वरूप जानते हो । साहेब कहते हैं कि देवताओंको अपनी गति जानना तथा ये संसार सब जीवोंके भूलस्वरूपहैं । और भूलसेही सब संशयमें पड़े हैं और पड़तेहैं। ॥ २६ ॥ औरभी साहेब कहते हैं कि खाली [शून्य] आकाश देखकर ये जीव भरम गये हैं। अर्थात् आकाशसे भी सूक्ष्म आत्मारामके जाने बिना केवल आकाशको देखकर जीव सब भरममें परे हैं कि यहां कुछ तत्ववस्तु नहीं है, किन्तु अन्य किसी देश वा स्थानमें होगा इत्यादि । और इस भ्रमसे

युक्त होकर चारों दिशाओं तथा सब देशोंमें तत्त्ववस्तुको जीव सब खोजते ढूँढते फिरते हैं, और ढूँढते २ कितने देव मनुष्यादि मरभी गये, परन्तु सद्गुरु सद्विचारादि बिना किसीकोभी निर्गुण येष नहीं मिला, अर्थात् निर्गुण ब्रह्मात्माकी प्राप्ति नहींहुई। इससे देश दिशाओंमें ढूँढना त्यागकर विवेकादि पूर्वक सद्गुरुसे निर्गुण आत्मारामकी प्राप्ति करनी चाहिये इत्यादि।

साखी दोहा।

बूझ आपनी स्थिर रहै, योगी अमर सु होय।
अब बूझै भरमहिं तजै, आपै और न कोय ॥ २८ ॥

छः मरमी।

देखा देखी सब जग भरमा, मिला न सतगुरु कोय।
कहहिं कबीर करत नित संशय, जियरा डारा खोय ॥ २९ ॥

दोहा।

काकी आश लगाइया, झूठी ह्वाँ की आश।
गृह तजि बन खँड मानिया, युग युग फिरै निराश ॥ ३० ॥

टीका—और भी कहते हैं कि जो पुरुष 'आपनी गति' अपनेको बूझकर अपनेमें स्थिर रहताहै, सु [सो] योगी पुरुष 'अमर' यानी अविनाशी नित्यमुक्त होजाताहै। इससे मनुष्यको चाहिये कि अभी भी इसी शरीरमें अपनी गति अपनेको बूझे, और भ्रमको त्यागे, ऐसा करनेसे वह पुरुष सबका आत्मा आपही होजाता है, और उसकी दृष्टिमें कोई दूसरा नज़र नहीं आता है। इससे रागद्वेषादिसे रहित होकर वह मुक्त नित्यतृप्त होजाता है ॥ २८ ॥ औरभी साहेब कहते हैं कि यद्यपि भ्रमको त्यागनेसे तथा आत्मवस्तुकी प्राप्तिसे, और उसके लिये विचार गुरुशरणागति आदिसे जीवोंका कल्याण होना है, तथापि सब जग यानी सब संसारी जीव भ्रममेंही देखा देखीसे प्राप्त हुवे और होते हैं, और सतगुरुसे कोई नहीं मिला न मिलता है, इससे अविवेकी जीव सदा संशय करता है, सतगुरु बिना संशय रहित सुखी नहीं होता है। और संशयमेंही अपनी जियरा [जीवन] को खोडाला, और खोडालता है। या जो जीव सदा संशय करता है सो जियराको [जीवको] वह संशयही खोडाला, और खोडालता है ॥ २९ ॥ इसलिये साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! संशय युक्त होकर तुम किस देश लोकादिकी आशा लगाये हो ह्वाँ की [उन देशादिकों की] आशा झूठी है, उससे सत्य सुखादि नहीं प्राप्त होते हैं। इसलिये जिन्होंने ह्वाँकी आशायुक्त होकरके गृहको त्यागकर बनखण्डको सुखद माने हैं, वे लोगभी युग २ में निराश होकर फिरते हैं, अर्थात् सत्य-सुखसे रहित होकर संसारात्मक चक्रमें भटकते हैं। अथवा ह्वाँकी आशाके झूठी होनेसेही महात्मा

लोग गृहको [यानी स्वर्गादिके हेतु गृहस्थाश्रम और सकाम कर्मादिको त्यागकर बनखण्डको श्रेष्ठ माने हैं। और सब युगोंमें निराशहोकर विचारते हैं तथा किसी देश विषयादिकी इच्छा नहीं करते हैं इत्यादि ॥

साखी छं० सरसी।

नेंवक बिचले सब घर बिचला, अब कुछ नाहिं बशाय।
कहहिं कबिर जो अबकी समुझे, ताको काल न खाय॥ ३१ ॥

दोहा।

राम रहे बन भीतरे, गुरकी पूजि न आश।
कहहिं कबिर पाखण्ड सब, झूठे सदा निराश॥ ३२ ॥
बिना रूप बिनु रेखको, जगत नचावै सोय।
मारै पांचो जो नहीं, ताहि डरै सब कोय ॥ ३३ ॥

टीका—फिरभी साहेब कहतेहैं कि जैसे घरके नेँवको [जड़को] विचलने [बिगड़ने]से सम्पूर्ण घर चलायमान होकर नष्ट होजाता है, कोई अंश स्थिर नहीं रहता है। तैसेही सर्वत्र सदा स्थिति तथा आनन्दके हेतुरूप मानव तनके विचलनेपर, इस जन्ममें स्थिति आनन्दके नहीं प्राप्त करनेपर, इस जीवके सब घर विचलते हैं, तथा सर्वत्र चञ्चलता और दुःखही प्राप्त होते हैं। और वे सब घरभी वारम्बार उत्पन्न नष्ट होते हैं। तथा सब वस्तुके नेँव यानी अधिष्ठानरूप चेतनवस्तुकी अप्राप्ति से जीव सभी घरोंमें विचरता है। और अब यानी उन अन्य शरीरोंमें जीवोंका कुछ वौशाय [सामर्थ्य] भी नहीं रहता है, इससे साहेब कहते हैं कि जो पुरुष अबकी यानी इस मानव शरीरमें ही स्थिरपदको समझता है, उसीको काल नहीं खाता है अर्थात् वही मुक्त होता है ॥ ३१ ॥ और समझे बिना इन जीवोंके आत्माराम संसारात्मक पाञ्च कोशरूप बनके भीतरही रहताहै, यानी बनके अन्दरही संसारी भासता है। और गुरुके सदुपदेशको मनुष्य नहीं मानते हैं, इससे गुरुकी आशाभी नहीं पूर्ण हुई। अर्थात् गुरु चाहते हैं कि मनुष्य ज्ञानकी प्राप्ति करके मुक्त होजावें, परन्तु विवेकादि बिना मनुष्य नहीं मुक्त होते हैं। और साहेब कहते हैं कि ये अज्ञानी झूठे जीव सभी पाखण्ड करते हैं, और पाखण्डमें पड़ते हैं। और सत्य सुखसे रहित होनेसे सदा निराश होते हैं। अर्थात् सद्गुरुके उपदेको नहीं माननेसे सद्गुरुकी तो कुछभी हानि नहीं होती है, परन्तु अज्ञानी मनमुखी स्वयं सदा दुखी निराश होकर भ्रमते हैं॥ ३२ ॥ और जो मन माया ईश्वर बिना रूपरेख केहैं अर्थात् रूपतथा आकारसे रहित हैं, सो उन गुरुविमुख पाखण्डियोंको जगतमें नचाते हैं। और जगतको भी नचाते हैं यानी वारम्बार उत्पन्न नष्टादि करते हैं। और उक्त पाखण्डी लोग सदा

मनमाया ईश्वरसे डरकर भ्रमते हैं। क्योंकि जो लोग पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय पाञ्च कोशकी नहीं मारते हैं, सो सब कोई 'ताहि' यानी उस बिना रूपरेखकी वस्तुसे डरते हैं। अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें किये बिना और पाञ्चकोशसे आत्मवस्तुको विवेकपूर्वक जाने बिना जीव सब डरते हैं। अथवा अज्ञानी झूठे मनुष्योंको बिना रूपरेखके कामादि जगतमें नचाते हैं, और जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, और मद इन पाञ्चोंको नहीं मारेहैं, उन पुरुषोंसे सब प्राणी डरते हैं। अर्थात् विषयी, लम्पट, अज्ञानी, मनुष्य सबको भयभीत करते हैं, जिससे नरकगामी होते हैं। इसलिये गुरुका उपदेशको मानकर पाञ्चोंको मारना चाहिये, झूठको त्यागना चाहिये, तथा सब प्राणीको अभय दान देना चाहिये, कि जिससे कल्याण होवे इत्यादि ॥ ३३ ॥

साखी दोहा।

डर उपजा जिय है डरा, डरते परा न चैन।
देखा रामहिं है नहीं, यही कहै दिन रैन ॥ ३४ ॥
सुख का सागर मैं रचा, दुख दुख मेला पाँव।
थिति नहिं पकरै आपनी, चले रङ्क औ राव ॥ ३५ ॥
दुख न हता संसार में, हता न शोग वियोग।
सुखहिं में दुख लादिया, बोलै बोली लोग ॥ ३६ ॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो! तुझे डर उत्पन्न हो चुका है, और तेरा 'जिय' नाम अन्तःकरणभी रूपरेख रहित व तुझसे अनेकोंबार डरा है, और उस डरसे तुझे वस्तुतः कभी चैन नहीं पड़ाहै, तथा पशु आदि शरीरोंमें तुम सदा डरसे बेचैन रहते हो, किसी शुभ कर्मादिसे तुझे मानव तन प्राप्त हुवे हैं, तहाँ भी तुम सबने सुखस्वरूप आत्मारामको नहीं देखा है। और रामके नहीं देखनेसे दिन रात यही बात कहते हो कि आत्माराम सुखस्वरूप नहीं है। अथवा बेचैन वदहोस होनेसे यह बात दिन रात कहते हो कि मैंने देखा है कि राम कोई वस्तु नहींहै। या तुमने रामहींको नहीं देखा है, इससे डर तथा दुखकीही बात सदा कहते हो ॥ ३४ ॥ और साहेब कहते हैं कि मैंने आत्मारामके उपदेशस्वरूप सुखका समुद्रही रचा है, परन्तु अभागे रङ्क और राजा सभी लोगोंने दुखही दुखमें पाँव मेले हैं नाम दुखहीके रास्तेमें सब कोई चलते हैं, और सुखद पूर्वकही अपनी स्थितिको नहीं पकड़ते हैं, इससे सब रङ्क और राजा संसारात्मक दुःखमेंही चले हैं, तथा चलते हैं। और डरते तथा दुखी होते हैं ॥३५॥ और साहेब कहते हैं कि इस संसारमें पूर्वकालमें सत्यदुःख नहीं था, न अबभी वास्तविक दुख है, और वस्तुत शोक वियोगभी नहीं था न है, किन्तु अनादि अज्ञानसे कल्पना करके जीवोंने सुखस्वरूपहीमें दुखलादा है, नाम मान लिया है। जिज्ञासा हुई कि दुख कहाँ थे कि जिन्हें आत्मामें जीवोंने लादा है। तब साहेब कहते हैं कि केवल

दुखकी बोली लोग सब बोलते हैं, परन्तु कहींभी सत्यदुख नहीं है, यदि सत्य होते तो इनकी निवृत्ति नहीं होती। या महात्मा लोग बोली बोलते हैं कि संसार और संसारमें दुखादि नहीं थे, किन्तु सब अज्ञानसे सुखहीमें लादे गये हैं इत्यादि ॥ ३६ ॥

साखी दोहा।

लिखा पढ़ीमें पड़े सब, यह गुण तजै न कोय।
सबे परे भ्रम जालमें, डारा यह जिय खोय ॥ ३७ ॥

छं० सरसी

बूझो शब्द कहाँ ते आया, कहाँ शब्द ठहराय ?।
कहहिं कबिर हम शब्द सनेही, दीन्हा अलख लखाय ॥ ३८॥
सुत नहिं मानै बात पिता की, सेवै पुरुष विदेह।
कहहिं कबीर अबहुँ किन चेतो ?, छाड़ो झूठ सनेह ॥ ३९ ॥
सबै आश करु शून्य नगर की, जहाँ न कर्ता कोय।
कहहिं कबीर बुझो जिय अपने, जाते भरम न होय ॥ ४० ॥

टीका—और भी साहेब कहते हैं कि मान बड़ाई आदिके लिये सब लोग केवल 'लिखा पढ़ीमें' नाम लिखने पढ़नेमें तथा लिखी बातोंके पढ़नेमें पड़े हैं। और अज्ञान मोहादिवश सुखमें ही दुखका लादनारूप इस प्रत्यक्ष दुःखद गुनको कोई नहीं त्यागताहै, इस गुनकी निवृत्तिके लिये कोई उपाय नहीं करता है, इससे सब कोई भ्रम जालमें पड़े हैं, और इस जीवनको खो डालते हैं। या सो भ्रमजाल ही जीवोंको खोडाला और खोडालता है ॥ ३७ ॥ और साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो! केवल लिखापढ़ी और भ्रमजालादिको त्यागकर सद्गुरुसे यह बात 'बूझो' नाम पूछकर जानो कि यह वाचारम्भणात्मक संसाररूप और अनहद नाद तथा वेदादिरूप शब्द कहाँसे आया है ? और 'कहाँ ठहराय' यानी कहाँ ठहरता स्थिर होता है, और बूझो कि सत्य वस्तुके उपदेशरूप सारशब्द कहाँसे आया है ? और आता है ? और किस पुरुषमें वह सारशब्द ठहरता है ? क्योंकि मैं सारशब्दका सनेही हूं तथा विकारादिरूप शब्दोंके विचारका सनेही हूं और सारशब्दके विचारादिसे मैंने इन्द्रियोंसे 'अलख' आत्मवस्तुको जिज्ञासुओंके प्रति लखाय दिया हूँ, और लखाता हूं। इसलिये शब्दको सद्गुरुसे बूझो ॥ ३८ ॥ और भी साहेब कहते हैं कि जैसे कोई पुत्र अपने पिताकी बातको सत्य हित उपदेशको नहीं माने, और कल्पित किसी 'विदेह' नाम मृतक वा स्वरूप रहित पुरुषका सेवन करे। तैसे ही जीवरूप पुत्र सर्वात्मस्वरूप पिताकी बातको, तथा उक्त पिता सम्बन्धी उपदेशको

नहीं मानते हैं, या पिताके सदृश रक्षक गुरुकी बातको नहीं मानते हैं, किन्तु कल्पित किसी विदेहको सेवते हैं, जिससे दुःखी होते हैं। हे मनुष्यो ! अब भी क्यों नहीं चेततेहो ? अवश्य चेतो सारशब्दसे सनेह विचारादि करो, और झूठी वस्तु विषयक झूठे सनेहको त्यागदो, जिससे तेरा कल्याण हो इत्यादि ॥ ३९ ॥ क्योंकि झूठे नेहसे ही सब मनुष्य सुखसे शून्य नगरकी आशा करते हैं, और जहाँ वस्तुतः कोई एकदेशी कर्ता नहीं है, वहाँ सत्य एकदेशी कर्ता समझते हैं। इससे हे मनुष्यो ! झूठ स्नेहको त्यागकर अपने अन्तःकरणमें ही सत्य विभु कर्ताको बूझो नाम समझ लो, जिससे अनेक असत्य कल्पित वस्तुओंमें सत्य कर्तापनके भ्रम तुझे नहीं होवे, तथा तेरा कल्याण होवे इत्यादि ॥४०॥

४१ साखी दोहा ।

दाग जु लागा नीलका, सौमन साबुन धोय ।
कोटियतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥ ४१ ॥

टीका—जैसे नीलका दाग लगनेपर सौमन साबुनसे धोनेपर भी वस्त्र स्वच्छ नहीं होता है, तैसेही करोड़ों यत्नसे परबोधनेपर, अर्थात् समझानेपर या परात्मतत्त्वके बोधके लिये कोटि यत्न करनेपर भी काक सदृश मलिन कुबुद्धि अज्ञानी पुरुष हंस सदृश स्वच्छ विवेकी ज्ञानी नहीं होते हैं।

साखी दोहा ।

यह दुनियाँ भौ बावरी, अदृष्ट सु बाँधी नेह ।
दृष्टमान को छोड़िके, सेवै पुरुष विदेह ॥ ४२ ॥
राजा रैयत है रहा, रैयत लीन्ही राज ।
रैयत चाहै सब लिया, ताते भयो अकाज ॥ ४३ ॥

छ० सरसी ।

जिसका मन्त्र जपै सब सिखिके, तिसको हाथ न पाँव ।
कहहिं कबिर मातु सुत काही, दिया निरञ्जन नाँव ॥ ४४ ॥
जनि भूलो रे ब्रह्म ज्ञानी !, लोक वेद के साथ ।
कहहिं कबिर यह बूझ हमारी, सो दीपक लिय हाथ ॥ ४५ ॥
धोखे धोखे सब जग बीता, है अगुआके साथ ।
कहहिं कबीर पेंड़ जो बिगड़े, अब का आवै हाथ ॥ ४६ ॥

टीका—औरभी जिज्ञासुओंके प्रति साहेब कहते हैं कि यह दुनियाँ बावरी हुई है, क्योंकि 'दृष्टिमान' नाम अपरोक्ष सत्यचिदानन्दको छाड़कर नाम उसके विचारादिको नहीं करके कल्पित परोक्ष केवल अनुमेयादि वस्तुओंसे यह दुनियाँ नेह बांधी है। और अदृष्ट स्वर्गादिमें नेह करके उक्त विदेह मिथ्या पुरुषको यह दुनियाँ सेवती है ॥ ४२ ॥ और हे सज्जनो! अज्ञानादिबश अपरोक्ष आत्मा और कल्पित वस्तुओंमें ऐसी व्यवस्था होरही है कि मानों राजा रैयतरूप होरहा है, और उसका राज्य रैयत लेलिये हैं, और वे रैयत ही सब राज्य लिया चाहते हैं, जिससे प्राप्त सम्पत्तिको भी नष्ट होजानेसे अकाज हुआ है। अर्थात् कल्पित अदृष्ट वस्तु इन जीवोंकी दृष्टिमें राजा हुआ है, और सर्वात्मस्वरूप राजा रैयत होगया है। अर्थात् जीव अपने आत्माको तुच्छ पराधीनादि समझते हैं, और कल्पित परोक्ष वस्तुको ही ईश्वर सब सामर्थ्यादियुक्त मानते हैं, इसीसे इन जीवों-के कल्याणरूप कार्यका अभाव हुआ है ॥ ४३ ॥ और जिसके मन्त्रको किसीसे सिख करके सब कोई जपते हैं, अर्थात् इन्द्रियोंके अविषय होनेसे जिसे आँखसे देखकर कोई नहीं कहता है, किन्तु अनादि गुरु परम्परासे उपदेश प्राप्त करके ही जिस नित्य अपरोक्षरूप आत्मारामको सब कोई जानते और कहते हैं। उसको हाथ पाँवादि नहीं हैं, तो उसके माता पिता आदि 'काही' नाम किस प्रकार हो सकते हैं? वा हाथ पाँवादि रहित 'काही' नाम किसका माता पिता आदि होसकताहै? किन्तु किसीका नहीं होसकता है। और उसका निरञ्जन नाम भी कौन किस प्रकार दिया है। अर्थात् वह नामरूपसे पर है केवल कल्पित नामों द्वारा गुरु उसका बोध कराते हैं। जैसे किसीके नामको पुकारनेसे वह सोया हुआ पुरुष नामके शक्ति आदिका ज्ञान बिना ही शब्दसे जाग जाताहै। तैसेही गुरुके उपदेशसे शिष्य अज्ञानात्मक निन्दको त्याग देताहै, और नाम रहित वस्तुको जानता है ॥४४॥ जिज्ञासा हुई कि यदि उसके माता पिता नामादि नहीं हैं तो बहुत लोग उसका माता पिता आदि क्यों कहते हैं? और वेदमें उसका नामादिका वर्णन क्यों किया गया है? तब साहेब शिष्यके प्रति कहते हैं, कि रे ब्रह्मज्ञानी! तुम 'लोकवेदके साथ होकर' यानी रूपादिसे रहित अपने स्वरूपको नहीं भूलो, लोग अज्ञानवश उसका माता पिता नामादि कहते हैं। और अज्ञानियोंके ही लिये उसके नामादिका जपादि वेद बतलाता है। इसलिये तुम उस भ्रममें नहीं पड़ो, किन्तु पूर्व वर्णित उपदेशरूप हमारा बूझ है उस बूझरूप दीपको अपने हाथ और हृदयमें सदा लिये रहो जिससे अज्ञानरूप अन्धकार कभी पासमें नहीं आने पावे ॥ ४५॥ और इस बूझरूप दीप बिना सब जग 'द्वै अगुआके' नाम द्वैत कल्पित वस्तुके उपदेश देनेवाले गुरुवाओंके साथ होकर 'धोखे २ में बीत गया' नाम नष्ट हुआ। अथवा हिन्दू तुरुकरूप दो गुरुवाके साथसे धोखे २ में सब जग बीतगया। और साहेब कहते हैं कि यदि पेँड़ही बिगड़ जावे तो अब फलफूलादि क्या हाथ आय सकते हैं? किन्तु नहीं। तैसेही यदि अगुवाही बिगड़ा हो तो शिष्यको कौन सत्य फल मिल सकताहै? कुछ नहीं। या सब वस्तुओंके अधिष्ठान आत्मवस्तुविषयक अज्ञान रहनेपर जीवको वास्तविक आनन्द कहाँ मिल सकता है? इसलिये सद्गुरुसे आत्मवस्तुको जानना चाहिये ॥ ४६ ॥

साखी दोहा ।

मैं जाना कुल हंस हौ, ताते कीन्हा सङ्ग ।
जों जानतें बक बावरा, छुवन न देता अङ्ग ॥४७॥
ढूँढ़त ढूँढ़त ढूँढ़िया, भया स गूना गून ।
ढूँढ़त ढूँढ़त नहिं मिला, हारि कहा वेचून ॥ ४८ ॥
वेचूने जग चूनिया, साँई नूर निनार ।
आखिर ताके बखतमें, किस का करो दिदार ?॥ ४९ ॥
सोइ नूर दिल पाक है, सोइ नूर पहिचान ।
जाके कीये जग हुआ, सो विचून क्यों जान ? ॥५०॥

टीका—औरभी विवेकी सज्जनोंके प्रति साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो ! मैं जानाहूँ कि तुम 'कुलहंसहो' नाम श्रेष्ठ विवेकी जीवहो ताते (इसलिये) मैंने तेरा सङ्ग किया है, और सत उपदेश का वर्णन कियाहै । यदि तुझे बकध्यानी और बावरा जानता तो मैं साक्षीस्वरूप अपना अङ्ग छूनेभी नहीं देता न किसी प्रकारसे तेरा सङ्गही करता ॥ ४७ ॥ और जो लोग बकबावरा हैं, सो अनेकों जन्मोंमें ढूंढते २ इस जन्ममेंभी अनेकों देशादिमें सत्य सुखादि खोजते हैं । और स्थिर होकर सत्सङ्ग विचारादि नहीं करते हैं, जिससे उनका सो [वह] मनुष्यत्वादिका हेतुरूप गुनभी अगुनही हुआ और होता है । या उन्हें त्रिगुणही अगुण नाम निर्गुण रूप भासते हैं । इससे जब ढूंढते २ भी उन्हें सत्यसुखस्वरूप निर्गुण वस्तु नहीं मिला, तब उन लोगोंने हारकर सत्यनिर्गुण वस्तुको 'वेचून कहा' नाम इसलोकमें अप्राप्य बहुत दूर कहे और अबही भी वेचून कहते हैं ॥ ४८ ॥ साहेब कहतेहैं कि हे सज्जनो ! सबका आत्मा होनेसे जो अज्ञानसेही वेचून है, सोई सम्पूर्ण संसारमें चूना है, नाम सबको प्राप्त है । और सांई वस्तुतः सबका स्वामी है । और 'नूर' नाम सबका प्रकाशक है । और तौभी वस्तुतः सबसे निनार (न्यारा असङ्ग) है । और संसारका आखिरी रूप उसके वख्त में यानी उसके ज्ञानकालमें अन्य किसका 'दिदार' नाम दर्शन कियाजावे ? अर्थात् उसका दर्शनके बाद किसीका दर्शन करना बाकी नहीं रहजाता है ॥ ४९ ॥ और हे सज्जनो ! सोई 'नूर' नाम प्रकाशरूप वस्तु सबप्रणीके दिल (अन्तःकरणमें) पाक है, [पवित्र है] इसलिये सोई असङ्ग नूरको पहिचानो अपना नित्यमुक्त स्वरूप उसेही समजो, और जाके कीयेसे यह जगत हुआ है यानी जिसका कार्य रूप संसार है, इससे जो जगतमें वर्तमान है, सो वेचून किस प्रकार है ? इस बातको सद्गुरु और सत विचारादिसे जानो । अर्थात् सबका आत्मा होनेसे और एकमें कर्मकर्तृभावादिके विरुद्ध होनेसे वह बेचून है सो जानो । और उसकी प्राप्तिभी अज्ञानकी निवृत्तिही मात्र समझो इत्यादि ॥ ५० ॥

साखी दोहा ।

आपु भुलावे आपमें, आपु न चीन्है आप ।
और होय तो पाइये, यह तो आपुहिं आप ॥ ५१ ॥
आपु शब्द सन्धिक लखो, कहे बिना नहिं ठौर ।
ताते सार असारही, गुरु पारख शिर मौर ॥५२॥
जागे सो स्वपना नहीं, स्वपना सार असार ।
सार शब्द निशदिन रखे, जाने मिटे विकार ॥ ५३ ॥

टीका—पूर्वकहे अर्थ कोही स्पष्ट करके कहते हैं कि वह नूर अपनेहीको अपनेमें भुलाता है, अर्थात् जिस मायात्मक जालमें अपनेको भुलाता है उसकी सत्ताभी आत्मासे भिन्न नहीं है । और जीवरूप होकर अपने कोही आप अज्ञानसे नहीं चीन्हता है, तब अपनेही को प्राप्त करना चाहता है। और जब सद्गुरुकी कृपासे अज्ञान रहित होता है, तब समझता है कि यदि कोई मुझसे और [अन्य] होवे तो उसे प्राप्तकरें, और यह आत्मस्वरूप नूरतो आपे आपहै, यानी सबकी आत्मा और विभु है ॥ ५१ ॥ इसलिये साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो ! तुम अपनेकोही गुरुसे कहेगये शब्दोंकी सन्धी नाम इसारा लक्षणासे लखो। या गुरुशब्दसे सन्धीको यानी यथार्थ मर्मको जानों, तथा शब्दोंके भेदों को समझो, क्योंकि सद्गुरुसे कहे बिना तेरा कहींभी ठौर नहीं है, तेरी कहीं स्थिति नहीं होसकती है । और उसी हेतुसे सार असार वस्तुओंका विवेक ज्ञानके लिये तथा शुभस्थिति कल्याणके लिये गुरुके उपदेशसे प्राप्तकरने योग्य पारखही सबका शिरमौर है । इसलिये गुरुउपदेशसे विवेकादि पूर्वक गुरुपारखकी प्राप्ति करो, और उसे शिरमौर बनावो जिससे तेरी अभय स्थिति होवे ॥ ५२ ॥ और हे सज्जनो ! जैसे जागनेसे स्वप्न अवस्था नहीं रहती है। और जागतेही स्वप्नके सबसार असार होजाते हैं यानी मिथ्या सिद्ध होजाते हैं, तैसेही गुरुके शब्दसे मोहनिद्राको त्यागनेपर उस पारखी की दृष्टिमें सांसारिक सब पदार्थ असार होजाते हैं अज्ञानसे जो सत्य भासते हैं सो ज्ञानकालमें मिथ्या होजाते हैं । और पारखी पुरुष नित्यमुक्त साक्षीरूपसे स्थिर होजाता है । इसलिये सद्गुरुके सारशब्दको निशदिन अपने शिरपर अन्तःकरणमें रखना चाहिये, जिससे कामक्रोधादि जन्म मरणादिरूप सब विकार मिट जावें इत्यादि ॥५३॥ लिखाहै कि [नित्यलब्धैकरूपस्य नालाभोऽज्ञानतोऽन्यतः । यथैवं तस्य लाभोऽपि तज्ज्ञानान्नान्यतोभवेत्] नित्यलब्ध एकरूपका अलाभ अज्ञानकी अपेक्षा अन्यसे नहीं है, किन्तु अज्ञानसेही अप्राप्ति है, उसका लाभभी ज्ञानकी अपेक्षा अन्यसे नहीं होता है ॥

साखी दोहा।

अलख लखो अलखे लखो, लखो निरञ्जन तोहि।
हौं कबीर सब को लखों, मोको लखे न कोहि॥ ५४॥
हमहिँ लखा तिहुं लोक में, तूं क्यों कहे अलेख ?।
सारशब्द जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख॥ ५५॥
साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देखु मन माहिं।
बिन साखी संसार को, झगरा छूटत नाहिं॥ ५६॥

टीका—औरभी साहेब कहतेहैं कि हेसज्जनो ! उस नूरको 'अलख' यानी अविषय अदृश्य स्वरूप लखो (जानो) और तुम भी 'अलखे' यानी अलख स्वरूप ही होकर अलखको लखो। अर्थात् उससे अपनेको भिन्न मानकर उसे नहीं जानो, किन्तु अपनेको अलख समझो। या अपनेको अलख लखो और अलखमें ही अपनी स्थिति लखो, और तोहि [तुम] अपनेको ही निरञ्जन लखो। और साहेब कहते हैं कि अलख निरञ्जनके लखनेसे ही मैं सबका साक्षीरूपसे लखता हूँ और साक्षीस्वरूप मुझको कोई नहीं लखता है। अर्थात् मैं सर्वसाक्षीस्वरूप हूं और मुझसे भिन्न सब जड़ मायामात्र दृश्य हैं॥ ५४ ॥ औरभी साहेब कहतेहैं कि हेसज्जनो ! यदि तुमसे कोई कहे कि यदि तेरारूप अलख है, तो उसके रहनेमें कोई प्रमाण नहीं रहनेसे वह अलेख [मिथ्या] है, इसीसे वह जानने योग्य भी नहीं है तो तुम उससे कहो कि जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिरूप तथा स्वर्ग मर्त्य पतालरूप तीनों लोकमें 'मैं ही लखा हूं' यानी अज्ञान बुद्धि आदिके साक्षीरूपसे मैं ही स्वयं प्रकाशमान हूँ, फिर तुम भी क्यों मुझे अलेख कहते हो ? या औपाधिक भेद सहित मैं ही तीनों लोकोंमें लखा हूँ, नाम अन्तःकरणकी वृत्तिका विषय सत्य चेतनरूप मैं ही सर्वत्र हूँ, तौभी मुझे क्यों तुम अलेख कहते हो ? तुम गुरुसे सारशब्दको नहीं जानते हो, इससे इस प्रकार कहते हो। और सारशब्दके जाने बिना धोखेमें ही अनेकों प्रकारका वेष पहिरे हो और अभिमानादि करते हो॥ ५५॥ और हेसज्जनो ! साखी [साक्षी] स्वरूप आत्माको ज्ञानकी आँखीसे समझकर अपने मनमें देखो क्योंकि साक्षी स्वरूप आत्माको जाने बिना संसारका झगड़ा नहीं छूटता है अर्थात् ज्ञान बिना रागद्वेष जन्ममरणादि निवृत्त नहीं होते हैं इत्यादि॥ ५६॥ या आत्माको अलख सुनकर जिज्ञासा हुई कि यदि आत्मा अलख है तो अलेख है यानी किसी प्रकार भी जानने, गिनने, स्वीकार करने योग्य नहीं है, फिर उसके उपदेशादि कैसे हो सकते हैं ? तब साहेब ज्ञानदृष्टिसे कहते हैं कि सत्तास्फूर्तिरूपसे मैं ही तीनों लोकोंमें लखा हूँ तुम अलेख क्यों कहते हो, यदि तुमने इसमेंसे सार शब्दको नहीं जाना तो धोखेहीका वेष पहिरे हो॥ ५५॥ इससे ज्ञानकी आँखीरूप साखीको अपने मनमें विचार समझकर देखो, क्योंकि साखी बिना संसारका झगड़ा नहीं छूटता है इत्यादि॥ ५६॥

साखी दोहा ।

वेद कहै सो नहिं लखै, समुझै और कि और ।
चौरासी के धारमें, कबहुं न पावै ठौर ॥ ५७ ॥
फेर परा नहिं अङ्गमें, नहिं इन्द्रिनके माहिं ।
फेर परा है बूझमें, सो निरुआरै नाहिं ॥ ५८ ॥
तिमिर जाय रवि देखते, कुबुधि जाय गुरु ज्ञान ।
सुमति जाय एक लोभते, जामें भुला जहान ॥ ५६ ॥
यह मन तो लोभी भया, खेत विरानी खाय ।
वाका फल आगे मिले, काल घमोटे धाय ॥ ६० ॥
विगरी जन्म अनेक की, सुधरी अबहीं आय ।
जब गुरु आप कृपा करी, शब्द दियो परखाय ॥ ६१ ॥

इति श्रीसद्गुरु कबीरसाहेबकृत बीजकाख्यग्रन्थस्य
पारिशिष्ट प्रकरणं समाप्तमम् ।
सपरिशिष्टश्चायंग्रन्थः समाप्तः ।

टीका—औरभी साहेब कहते हैं कि जिस पूर्व कहे सर्वसाक्षी स्वरूप अदृश्य आत्माको वेद कहता है यानी 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंसे उपदेश करता है। उस साक्षीस्वरूप आत्माको जो पुरुष नहीं लखते हैं नाम सद्गुरुके उपदेशादि द्वारा उसे जो नहीं समझते हैं, तथा औरका और समझते हैं, सो पुरुष चौरासी लाख योनियोंके अगमधारमें बहते हुये कहींभी ठौर नहीं पाते हैं यानी स्थिर सुखको नहीं प्राप्त करते हैं ॥ ५७ ॥ और कहते हैं कि हे सज्जनो! ठौर रहित इन पुरुषोंके भी अङ्गमें वा इन्द्रियों में नहीं फेर पड़ा है अर्थात् अङ्ग तथा इन्द्रिय नहीं उलट पलट हुवे हैं किन्तु ये सब ज्ञानके योग्य सुन्दर दीखते हैं, परन्तु केवल इनके बूझमें फेर पड़ा है यानी इन पुरुषोंका समझ ही उलटा हुआ है। सो फेर इनसे नहीं निरुआरा जाता है, इससे चौरासीके धारमें कहीं भी ठौर नहीं पाते हैं ॥ ५८ ॥ और जैसे रविको देखतेही अन्धकार नष्ट होजाताहै, तैसेही गुरुज्ञानसे कुबुद्धि जाती है यानी अज्ञान संशय भ्रम सबही गुरुज्ञानसे नष्ट होजाते हैं, परन्तु उस गुरुज्ञानकी प्राप्ति छलादि रहित सुमतिसे यानी शुद्ध बुद्धिसे होती है। और सो सुमति एक लोभसे जाती है। जिस लोभमें सब जहान [संसार] भूला है ॥ ५६ ॥ क्योंकि संसारी जीवोंका जो यह मन है सो लोभी हुआ है, इसीसे 'विरानी' अन्य पुरुषोंका गृह और वित्त स्त्री आदिरूप खेतीको खाता है अर्थात् अन्यायसे भोगता है, परन्तु उस लोभ जन्य पापके फल जीवोंको अवश्यही आगे मिलता

है, जब धाकर बारमबार काल घसीटता है ॥ ६० ॥ इसलिये साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो ! जब जिसके ऊपर सद्गुरुने आप कृपा करी और उसको सार शब्द परखाय दिया, तब उस पुरुषके अनेकों जन्मोंकी बिगड़ी बात 'अबहिं' तुरन्त ही आयकर सुधर गई. और सुधर जाती है। अर्थात् जिस सज्जनके प्रति गुरुकी कृपा होती है, उसकी बिगड़ी बात भी सुधरकर प्राप्त होती है, इससे तुम सब भी गुरुकी कृपाका पात्र बनकर अपनी बिगड़ी बातोंको सुधारो जिससे कल्याण होवे इत्यादि। ॥ इतिशम् ॥

अवेद्यमपरोक्षव्यवहृतेर्विषयंविभुम् ।
मनसा वचसा नौमि सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ १ ॥
सम्मतेस्वाश्रयत्वेन चाभावप्रतियोगिनम् ।
भासयन्तं स्वमात्मानं स्वप्रकाशंभजाम्यहम् ॥ २ ॥
सद्ब्रह्मात्मानमादाय नान्यंगणयतःस्फुटम् ।
आसीन्न वै कबीरस्य सङ्गः संसारकेलिषु ॥ ३ ॥
पारमार्थिकमद्वैतं प्रविश्यविभयं विभुः ।
नाबिभेज्जगतोजाला द्धाधिनाज्ज्ञानवह्निना ॥ ४ ॥
विज्ञानलभ्यंसुजनैकबन्धुं सुपूज्यविज्ञानघनास्तदोषम् ।
सुरासुरैश्चार्चितपादपद्मं श्रीमद्गुरुं तं सततं भजामि ॥ ५ ॥
अनन्तपारं करुणार्णवं स्वं त्वभेद्यसिद्धान्तमतीवरम्यम् ।
अखण्डसारं सुखसागरं स्वंश्रीमद्गुरुंतं सततं भजामि ॥६॥
क्षमाप्रधानं दममूर्तिमाद्यं शमस्वभावं सुकविं दयालुम् ।
सदाजनोद्धारपरं शरण्यं श्रीमद्गुरुं तंसततं भजामि ॥ ७॥

अवेद्य और अपरोक्ष व्यवहारके विषय विभु सच्चिदानन्द स्वरूपको मनवचनसे नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ अपने आश्रयरूपसे सम्मत वस्तुमेंभी अत्यन्ताभावके प्रतियोगीरूप मिथ्या संसारको प्रकाशता हुआ स्वप्रकाश आत्माको मैं भजता हूँ ॥ २ ॥ सत ब्रह्मात्माको प्राप्त करके अन्यको प्रगटही नहीं मानते हुवे कबीर साहेबको संसारात्मक केलिमें सङ्ग नहीं हुआ था ॥ ३ ॥ और सो विभुस्वरूप कबीरसाहेब भयरहित पारमार्थिक अद्वैतमें पैठकर ज्ञानाग्निसे दग्ध जगतके जालसे नहीं डरे ॥ ४ ॥ विज्ञानसे लभ्य सुजनोंके एक बन्धु श्रेष्ठ पूज्य विज्ञानघन दोष रहित सुर असुरसे पूजित पादपद्मवाला उस श्रीमान् गुरुको मैं सतत (सर्वदा) भजाता हूँ ॥ ५ ॥ अन्तपारसे रहित करुणानिधि सबके आत्मा और बन्धु अभेद्य सिद्धान्तवाला अत्यन्तरम्य अखण्डसार

रूप सुखसागर उस श्रीमान् गुरुको सदा भजता हूं ॥ ६ ॥ क्षमाप्रधान दमके मानों मूर्तिही आर्य-स्वरूप शमस्वभावाला सुन्दर कवि दयालु सदा जनोंके उद्धारमें तत्पर शरण्य उस श्रीमान् गुरुको सदा भजता हूँ ॥ ७ ॥

प्रभु अब देखु हमरी ओर ॥
मोह ममता मार मांते, बुझत नहिं मन मोर।
लोभ क्रोध विरोधमें पुनि, रहत है जिमि चोर ॥ प्रभु० ॥
करन पर अपकार निशादिन, शरण गहत न तोर।
योग ताजि यह भोग ध्यावे, कीन्ह बहुत निहोर ॥ प्रभु० ॥
कर्म साक्षी अनन्त पूरण, देहु शुभ गति मोर।
सुमति देइ उबार लीजे, राखु अपनी कोर ॥ प्रभु० ॥
सर्व साक्षी शुद्ध निर्गुण, कार्य कारण तोर।
पाप सत्ता रचत तिरगुण, देत सो झकझोर ॥ प्रभु० ॥
स्वबश हौं सर्वज्ञ साहेब, सबै महिमा तोर।
नमो मूल नशावहु जिहि, तजौं मन का खोर ॥ प्रभु० ॥
सर्व रूप अनन्त ताते, रूप है हम तोर।
आप अपने की खबर भी, क्यों न करते जोर ॥ प्रभु० ॥
यह वीनती हनुमानकी है, ग्रन्थि मेटहु मोर।
आप अपने को लही तुहि, राखु मैं शिर मोर॥ प्रभु अब देखु हमरी ओर०॥ १॥

सतगुरु चरण कमल बलिहारी। जिहि दुख मिटे हमारीना ॥
निज हिय बिच ध्यान लगावों, करि दण्ड प्रणाम सुनावों।
अब करिये सुधि हमारी ॥ सतगुरु० ॥
मैं अधम ज्ञान गुण हीना, नहिं जानूं कथा प्रवीणा।
शरणकी आश तुम्हारी ॥ सतगुरु० ॥
नहिं योग यज्ञ व्रत कीना, नहिं आन देव मन दीना।
है केवल आश तुम्हारी ॥ सतगुरु० ॥
मत्सर क्रोध मद लोभा, मार मोहादिक क्षोभा।

अब नाशत प्राण हमारी ॥ सतगुरु० ॥
भवसिन्धुहिं देखि डराऊँ, अरुशरण कहीं नहीं पाऊँ।
अब दीजे पोत समारी ॥ सतगुरु० ॥
इमि करत विनय जिहि जाना, तिहि मीला कृपा निधाना।
है अबकी बार हमारी ॥ सतगुरु० ॥
सब सुखी मुक्त होय जावै, सतमार्ग माहिं मन लावै।
मिट जावै भेद अँधारी ॥ सतगुरु० ॥
यहि सत्य पन्थ श्रुति गाई, सब दूजा भाव मिटाई।
अब हनुमान गहुमारी ॥ सतगुरु चरण कमल बलिहारी ॥ २ ॥
सतगुरु साहब कबीर हैं, शिरमारि जगावैं।
ज्ञानकी दियना बारि के, पट खोलि दिखावैं ॥
सहज स्वभाव दयाल हैं, शुभपद परखावैं।
मन इन्द्रीन के घातसे, सच्चेत करावैं ॥
दया रु गरीबी भावसे, निज पद पर लावैं।
काम क्रोध मद लोभको, अति दूर भगावैं ॥
मोह दम्भ अभिमानको, मिसि धूर उड़ावैं।
करिके दया गुरुदेव यों, दिल स्वच्छ करावैं॥
परम ऊदार दयाल हैं, गुण दोष दिखावैं।
अगुण अपार देखायके, शुभ पन्थ चढ़ावैं ॥
मातु पिता गुरु देव हैं, दुख द्वन्द्व मिटावैं।
विनय करत हनूमान जो, तिहि अङ्क लगावैं ॥सतगुरु॥३॥
जिन सङ्ग बसि जिन बात रसि जिन, अङ्ग सङ्ग स्वभावते।
जिन अन्न अशि जिन बास बसि जिन, दुग्ध पान प्रभावते ॥
जिन राज्य बसि जिन काज धसि जिन, शुद्ध सत्त्व अगाधते।
जिन भुतलहिं जिन देवगहि जिन, सन्त मुक्तिहुं गाहते ॥
शुभलाभ लहि अरु भाव गहि पुनि, ज्ञान मानहुं पायऊं।

तिन सन्त रु तिन देव आदिहिं। करजोरि कर शिर नायऊं ॥४॥
मम वाक्यते मम कर्मते मम, भावते जिन दुख लहा।
मम ज्ञानते मम मोहते पुनि, कामते जिन भय सहा ॥
दुख आदि के बश जो भये अरु, होतहैं जिन अवहुंते।
तिन देव दानव यक्षते तिन, सन्त आदिक सबहुं ते ॥
शुभ भावते सबते क्षमा निज, कर्म आदिहुं कर चहूं।
अति तुष्ट हो सब कीजिये जिहि, नाहिं मैं कहुं भय लहूं ॥
करजोरिके हनुमानने यह, संस्तुती सबहिन किया।
सुख सत्य औ सबरूप पूरण, देव मैं सब चीन्हिया ॥५॥

श्री १०८ गुरुवर किंकर हनुमद्दास कृता पदवाक्यार्थदीपिका
शिशुबोधिनी टीका समाप्ता ॥

श्रीगुरुभ्यो नमः।

अथ अन्यसार संग्रहः।

गुरुमुख, ब्रह्ममुख, मायामुख, जीवमुख, भेदसे कोई बीजकमें चारमुख कहते हैं। तहाँ विराग विचारादिके उपदेशोंको गुरुमुख अर्थात् कबीर साहेबके उपदेशरूप कहते हैं। ब्रह्मात्माके निरूपणादिको ब्रह्ममुख तथा पराइत वेदान्त बादादि कहते हैं। सामर्थ्य प्रभुत्वादिके वर्णनोंको मायामुख ईश्वरबाद ठोलीरूप कहते हैं। और विनय दीनता आदि वर्णनोंको जीवमुख कहते हैं। तहाँ जीवरूपताका जो अपनेमें निश्चय हुआ, सोई एक अन्तर अर्थात् अन्तराय वा परदा जीवमें बसा। फिर उस परदेसे अपनेसे भिन्न ज्योतिरूप ईश्वरका जीवने ही प्रकाश (कल्पना) किया। और उसकी इच्छारूप नारी हुई इत्यादि। व्यङ्ग है कि बाप पूतकी एके नारी इत्यादि ॥ १ ॥ अन्तर ज्योति, इत्यादि पराइत है। परदा आवरणसे ज्योतिशब्दरूप माया हुई, उसीसे ब्रह्मादि हुवे इत्यादि। बाणी आदिरूप नारीमें चित्त लगानेसे गर्भादिमें जीव प्राप्त हुवे। और उस जन्म कालमें सब एकही थे इत्यादि, साहेब कहते हैं। और बाणी माया आदिरूप अविगतिकी गति कोई नहीं जाना इत्यादि भी कहते हैं ॥ २ ॥ प्रथम आरम्भ इत्यादि, कबीर साहेबके प्रश्नोत्तर हैं। और सिद्धादि प्रगट होकर अनात्मरूप अविनाशीको मानकर उसीमें लग रहे, तथा सद्गुरु आदिके जाने बिना अनात्मरूप रामनामकी आशा करने लगे इत्यादि अनौचित्यका वर्णनहै ॥ ३ ॥ प्रथम चरणके

गुरु ब्रह्मा आदि विचारकर भी अनात्मरूप कर्ता सिरजनिहारको गाने लगे जिससे कर्म कर २ जग बौराया इत्यादि, आद्यभूलादिका अभ्युपगम बादसे वर्णन है ॥ ४ ॥ और भी साहेब अभ्युपगम-बादसे ही कहते हैं कि युगोंकी बात कहाँ ले कहूँ ब्रह्मा भी भूले यथार्थ वाणीके मार्गको नहीं चीन्हे। फिर हरि आदिके मनमें भास कल्पना हुई। तब दो अक्षरकी युक्तिसे रामादि नाम बनाये। और उसी अक्षरको अपना बन्धनरूप करके उसीमें आप बँधगये। श्रोत्रवृत्ति अनहद शब्द तथा अनात्म ज्योतिको प्रमाण (सत्यदि) माना। और उस बीबी अक्षरको पढ़कर ब्रह्मादिकोंने कर्मादि मार्ग चलाये। सोई सनकादिके मनमें भी भाये, फिर वेदादिका विस्तार किये इत्यादि ॥ ५ ॥ अद्वैत कहने वालोंके प्रति कहते हैं कि यदि रूपरेखादि नहीं है तो किस रूपरेखका वर्णन करते हो, और उसे देखा सो दूसरा कौन है ? जिसका आदि ओंकार वेदभी नहीं जानते हैं, उसमें सब भेद क्या कह सकते हो ? इत्यादि, जीवमुख वा व्यङ्ग है कि सहज शून्येत्यादि ॥ ६ ॥ उस अद्वैतमें पवनादि नहीं हैं तो सृष्टि आदिका वर्णन क्या करते हो ? इत्यादि अनौचित्यादिका वर्णन है ॥ ७ ॥ और तत्त्वमसि इत्यादि, इनके अर्थात् वेदान्त बादियोंके उपदेश हैं। यह सन्देशा उपनिषद् कहता है, इससे इन बादि-योंको यह भारी निश्चय है। इसीके अधिकारी लोग वर्णन करते हैं। सनकादिने इसी तत्त्वमसि आदि को परमतत्त्वका निज प्रमाण माना है। इत्यादि वेदान्तवाद है। कबीर साहेब कहते हैं कि सब अभिमान छोड़करभी जीता जीव मुर्दा नहीं होता है, अर्थात् परोक्ष अनात्मरूप नहीं होसकताहै ऐसा देखता हुआभी जो नहीं देखता है, किन्तु परोक्षरूप उस वाक्यसे अपनेको मानताहै, सोई अदृष्टि [अन्ध] कहलाताहै ॥८॥ और अन्धाही होनेसे अष्टकष्टादि सूतोंने जीवों को बाँधा, यमने अञ्जनी पूत हनुमानको बांधा। और जिन्होंने यमके बाहन क्रोधको जनीबाँध्यो (नहीं बाँधा) उन सब सृष्टिको यम बाँधा, इत्यादि और जो गृहविस्तादि लोह बन्धको तोकर गया सोभी अन्यको समरताहै, याद करताहै। ज्ञानी राजाभी तुरियापर चढ़कर समरता है, तथा उपासकपन्थी नाम लेकर अनात्ममें बढ़कर उसे समरता है। तथा प्रयोजनको जाने बिना कर्मी नारी समरती है, और सबप्रजा पृथ्वीमें समरती है, परन्तु बन्धन युक्तजीब अन्यके स्मरणपूर्वक अन्यको माननेसे जन्मादि तथा सुख दुःखादि फल पाताहै मुक्त नहीं होता है, तौभी आचार्य लोग कहतेहैं कि वे लोग उबरते हैं जो निशिदिन नामही लेतेहैं इत्यादि ॥ ९ ॥ परन्तु तौभी 'राही' नाम उपासक वा संसारके पथिक जीवोंको लेकर वह पिपराही माया वा मायावी बहपरा, वाणी आदिरूपसे पासमें आती हुई माया आदिको भी किसीने नहीं समुझाया, इससे वे पासमें आकार अजगून हुवे इत्यादि ॥ १० ॥ और मायाके बशमें होकर बहती हुई सृष्टि उस अनेकबिध मायाकी ही गुष्टि विचारमें बौरी हुई और होती है जिससे तीनों लोकमें ठगौरी लगी और लगती है इत्यादि ॥ ११ ॥ और स्थूल शरीररूप माटीके कोटमें लालच आशा झूठ स्नेहादि युक्त हीन जड़ बुद्धिकी मायाने पाषाणरूप ताला आदि लगाई है, सो यद्यपि जीवको भुलाने वाला बन है, परन्तु अज्ञानीका सोई रखवार है। और उस बनको देखकर जो जीव डरा, सो ब्राह्मणादि किसी एकको रक्षक जाना। उससे भी क्षेत्ररूप शरीरही उपजताहै, मोक्षका बीज नहीं पड़ता है। इसलिये हे नर ! उस झेलीझेला खैंचतानको छोड़दो, कि जिससे गुरु चेला और उकबन

को दग्ध करनेवाले योगी आदिरूप पारथी भाई संसारमें बूड़े, तथा वक्ता लोगभी बक २ के मरे परन्तु उन की बाणीरूप सियार से खैंचतान रहते कोई कार्य नहीं हुवा इत्यादि ॥ १२ ॥ जिससे मायारूप विलाईके साथ कुबुद्धि जीव नहीं बँचता है । और जिज्ञासुरूप सिंहकोभी मायारूप हस्ती खाता है, इसलिये मायारूप इस संसारका विश्वास नहीं करो, इत्यादि । सांसारिक लाभसे हानि होती है क्योंकि उसीसे बुद्धि ओछी हुई है । और ज्ञान प्रकाशरूप चन्द्र अस्त हुआ है इत्यादि ॥ १३ ॥ और सो मायारूप संसार तथा विषयात्मक विश्वको खानेवाले, बड़े पापी और गुमानी हैं तथा पाखण्डरूप हैं, इत्यादि । छली पाखण्डी ब्राह्मणभी किसीका कार्य नहीं किये इत्यादि । और कवियोंने झूठा खसमको जाना तौभी कहते हैं कि हे मेरे भक्त लोगो ! तनमन मारे रहो मैं सत्य कबीर सत्य वक्ता हूं । और जिसको मैंने जाना है सो आपही देवादिरूप है इत्यादि ॥ १४ ॥ झूठाके मिलनेसे भ्रमादिरूप वदरिया उमड़ आई । इत्यादि ॥ १५ ॥ शरीरादि कामरीको लेकर कर्म संसारमार्गमें चलते २ जिन जीवोंके जहां चरण विराय (दुख) गये हैं वे जीव तहाँ हार पड़े हैं, और अत्यन्तरिसियाने हैं । और झँखते, कल्पतेहैं कि जीनके गणगन्धर्वादि अन्त नहीं पाये, सो हरि अलोपहैं इत्यादि । साहेव कहते हैं कि जीव अपने से कल्पित बाणीबन्धनको गहेहैं । और वह बाणीमात्र नहीं सूझताहै, तथा उसीमें थाक पड़े हैं कुछ बूझते भी नहींहैं, उसीमें भूलेहैं इत्यादि । और सो बाणी अन्धकूपरात्रि होकर प्राप्त हुई है इत्यादि ॥ १६ ॥ एक मायामें समाया जीव जैसा आपहै, वैसा यदि कोई मिलता है तो इसको बहुत धर्मादि भासतेहैं । और वह मिलाहुआ अज्ञानीने जिस अज्ञानीसे कल्पित रामकी बात कही उसमें किसीकी प्रीति क्या न निर्वही किन्तु अवश्य निर्वही, परन्तु सब संसारमें ऐसी एक भावनाको देखकर जो उससे बाहर होताहै सो विवेकी होता है, तौभी जीव सो नहीं करते हैं किन्तु विषयमें मोहके फन्दको छोड़ाकर तहाँ जाते हैं कि जहाँ अज्ञानी काटते हैं इत्यादि । यद्यपि मनुष्य जन्म बड़ा श्रेष्ठ है, इत्यादि तथापि सबको एक अज्ञानी पण्डितोंने पढ़ाया है, इससे अभी पढ़ना बाकी है सो पढ़ो इत्यादि। और जिस अन्य रामके स्मरण करते हो उसके स्मरणकी आशा छोड़ो, उसकी आशा दुःखकी आशारूप है इत्यादि ॥१७॥ अन्यके स्मरणसे आश्चर्यमय पन्थ हुवे हैं जो कहे नहीं जासकते, जिससे रामभी भूले, और दुनिआँ भी भूली इत्यादि। शब्दको चीन्हे बिना जीवको यमने थानामें नाम कष्टखानामें दिया है। और संशयरूप सावज शरीरमें बसते हैं वे अनबेधहीरारूप आत्माको खालिये हैं इत्यादि ॥१८॥ और संशय युक्त रहनेसेही तुम अनहदशब्दके अनुभवकी आशा करके, अनेकों शब्दादिरूप यह विपरीत तमासा देखते हो, और हे भाई ! यह तमासा देखते हो इसीसे जहाँ शून्य है वहाँ चले जाते हो इत्यादि । और ज्ञानादि बिना जिस रामका स्मरण करते हो सो राम कालरूप होकर केश गहे हैं । या जिससे अनात्मरामका सुमिरण करते हो इससे काल केश गहा है इत्यादि ॥१९ । अनात्मरामके स्मरणसे कालके बशमें प्राप्ति होती है, तौभी आश्चर्य लोग कहते हैं कि हे अविनाशी जीवो ! अब राम नाम कहो इत्यादि । साहेब कहते हैं कि अनात्म राम नाममें लौ लगाकर जीवोंने उसे लिया, अनात्मको भृङ्गी तुल्य समझकर जीवोंने उसमें मन दिया, जिससे भारी गरुदु ख हुआ, इसलिये हे जीवो ! जो विचारसे देखो सो यत्न करो इत्यादि ।

कविलोग कहते हैं कि इच्छासे भवसागर करनेवाले रामहीं इसमें आधाररूप बोहित हैं इत्यादि ॥ २० ॥ औरभी आचार्य लोग कहते हैं कि बहुत दुःख तथा दुःखकी खानिसे तब बचोगे कि जब उक्त रामको जानोगे, क्योंकि जो रामको जानकर युक्तिसे चलता है सो युक्तिसे ही फन्दमें नहीं पड़ता है। साहेब कहतेहैं कि सब संसार युक्तिही युक्तिमें चलता है, परन्तु युक्ति आदिको हमारा कहा नाम कथन मात्र नहीं मानता है, इससे उस कर्मोपासनादिसे कनकादि सम्पत्ति युक्त थोड़े दिन रहता है, और थोड़े दिनोंमें सम्पत्तिसे बौराय गया है। और उस धर्मरायका खबर नही पाया है कि जिसे देखकर त्रास होता है, तथा मुख कुम्हिलाय गया है। और जो कहता है कि मैं सिरजों, इत्यादि॥२१॥ साहेब कहते हैं कि विचार बिना मन माया आदिरूप अलख निरञ्जनको कोई नहीं लखता है,कि जिसके प्रपञ्चरूप बन्धनमें सब बन्धे हैं। और उसे लखे बिना गुरुवा लोगोंने जिस अज्ञानीको झूठेमें बांध दिया, वह झूठी बातको ही सांच करके मानने लगा, इत्यादि ॥ २२ ॥ साहेब कहते हैं कि नेहसे मन्दिरकी प्राप्ति होनेपर स्वर्गादिमें भी अल्प सुख होता है। और आदि अन्तमें केवल दुःखही होता है इत्यादि॥२३॥ भ्रमसे बद्ध विचार से रहित तथा गुरुभक्ति ज्ञानादि से रहित मनुष्योंके प्रति गुरुवाओंने चन्द्र चकोरके ऐसे ध्यानकी बात जनाई इत्यादि। इसी प्रकार आगेके लोग सबभी मिथ्या बातादिमें चित्त देकर मनुष्यजन्मको गमाये, परन्तु जो आत्माके सम्बन्धी नहीं होसकते उन नामरूपों से जो निकला सो मुक्त हुआ तथा होता है इत्यादि ॥२४॥ २५ ॥ ब्रह्मादि अन्यको कर्ता मानकर खोजते हैं, परन्तु आत्मा आपही कर्ता हुआ है। अथवा परात्मा आप कर्ता हुआ है इत्यादि, पराइत है, गुरु सांची अपनी कहते हैं इत्यादि ॥ २६ ॥ और पराइतही कथन है कि परात्मा ब्रह्माको ब्रह्माण्ड दिया है, साहेब कहते हैं कि एक ओंकार शब्दसे सब ब्रह्माण्ड जगका पसार हुआ है इत्यादि ॥ २७ ॥ 'अस' नाम इस पूर्वकही रीतिसे जो (जिसने) 'लहा है' नाम जाना है कि अविचल पुरुष भतार भिन्न हैं सोई राम हैं और उनका मैं नारी हूं इत्यादि, सो काहुने मर्म नहीं जाना है, इसीसे जिन्होंने जगमें आकर ताना पसारा है, और नाभि कुण्ड मूर्धाकाशका गाड़ खनाया है, तथा चन्द्र सूर्य नाड़ीका नाड़ी नली) बनाया है। तथा हजारों वृत्ति आदिसे पूर्ण करते हैं इत्यादि॥२८॥ साहेब कहतेहैं कि शब्दजालादिसे बचनेके लिये, इसी पूर्वकही रीतिसे कहता हूँ परन्तु किसीने मेरी कही बातको नहीं मानी, किन्तु संसारात्मक मार्गादिमें ताना पसारा इत्यादि ॥२९॥ और षट्दर्शनी भाई भूले हैं कि जो जीवके कल्याणको नष्ट करने वाला है उस पाखण्ड वेषादिमें लपटाये हैं। और चारों वेदादिसे चतुर्गुण अन्तःकरणसे मौन साधे हैं तथा विचार नहीं करते हैं। और दौना आदिके फूलों को कोटि जीवके तुल्य मानने वाला, तथा पृथिवीकी घास गढ़ने हुवेको देखनेसे अपने जन्मको निष्फल मानने वाला जैनी भी धर्मके मर्मको नहीं जानता है इत्यादि ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ साहेब कहते हैं कि ज्ञानी आदि जिस एक भिन्न ईश्वरको सयान कहते हैं सो सयान नहीं हैं और दूसर सयानके वे लोग मर्म नहीं जानते हैं, कि जिससे उत्पत्ति आदि होते हैं, इत्यादि ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ अनन्तोंमतरूप जलके राशिरूप शब्दात्मक समुद्रकी खाई है उसीमें रवि आदि तैतिसों कोटि देव भी आसन लगाये हैं इत्यादि ॥ ४१ ॥ वेदान्त बादहै कि जब हम रहली इत्यादि, साहेब कहते हैं कि

फुर २ कहत मारु सब कोई इत्यादि ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हिरण्य कश्यपादि गये, परन्तु राम ऐसी कहानी समझ नहीं पड़ी, तथा ब्रह्माजीने भी मर्म नहीं जाना कि यह निराला पानी नाम शब्दमात्र है कि निराला दूध नाम अर्थ है, इससे पन्थ रह गया और प्राण थक गये, फिर दशों इन्द्रियोंके प्रबल होनेसे गमन हुआ इत्यादि ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मायाने जरा सन्ध आदिका संहार किया इत्यादि, किसी ने सतगुरुका प्रतीति नहीं किया, इसीसे सब अचेतही गये, परन्तु सब कोई अपनेको चेत और अन्यको अचेत कहते हैं, इससे चेत अचेतका एक झगड़ा हुआ इत्यादि ॥ ४७ ॥ मानिकपुर इत्यादि वृत्तान्त वर्णन है, दोस्त, खुदा, औलिया, मुनि आदिको हबी कहते हैं। तथा पैगम्बर आचार्यको नबी कहते हैं ॥ ४८ ॥ हे दरवेशो ! दरकी नाम अन्दरकी बात कहो इत्यादि ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जिसके लिये शिवजी आदि वियोगी हैं, सो सत्य समझाता है कि जो कोई इस प्रकार मेरा ध्यान करता है सो छठवाँ वेदान्त दर्शनमें मेरा दर्शन पाता है इत्यादि पराइत है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ साहेब कहते हैं कि यह जीव सदा जलता है तौभी अग्निमें ही मन बुद्धिरूप पशु देता है, जिससे दग्ध होताहै तौ भी कोई उसमेंसे निकलता नहीहै । और गुरुवालोग जो कानोंमें उपदेश देतेहैं सोभी मानो मसखरी ही करते हैं इत्यादि ॥ ५६ ॥ कृतिया [कार्यरूप] एक सूत्रलोक है, नाम एकब्रह्मलोक है, तहाँ ब्रह्माजीके लोग पचासों लाख वर्षके आयु कहते हैं। सो ब्रह्मा विद्या वेद पढ़ते हैं, और वे जो बचन कहते हैं सो प्रत्यक्ष सत्य होताहै तथा जितनी विद्याकी बातहै उतनी उनको पहुंचहै, तौभी बाणीके संकेतमें उन्हें भी भ्रम हुआ कि बाणी अपार है इत्यादि ॥ ५७ ॥५८ ॥५९॥ बिनु भीतके चित्र सदृश कल्पित पति और लबराईको छोड़ दो इत्यादि ॥ ६० ॥ जो धर्म कहते रहता है सोभी परातही उठकर लबरी कहता है। और गुणातीतको गानेमें आप भ्रमाया है, जिससे गुणातीतको गाता है, इत्यादि ॥ ६१ ॥ और भ्रम युक्त होकर जो तुमने कर्ता आदिका विचारादि करतेहो सो तुम जन्मादिकालमें शूद्रही रहते हो इत्यादि ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ मनुष्य कायाकोही कञ्चन तुल्य मानकर यतन करते हैं इत्यादि। और गुरुवाजनों के कहेमें जनही होकर रहते हैं, उसीमें मानो उनके हृदये में सदा धर्म बसताहै, इससे अनात्मरामको कसौटीसे कसते रहतेहैं, परन्तु गुरुका उपदेश नहीं सुनते हैं। और गुरुवाके शरणमें अन्यत्र जाकर जो कसाते हैं सो आप बौराते हैं इत्यादि॥६४॥ हेमनुष्यो ! अपने शमादि तथा विचारादि गुणोंको जो अवगुण कहते हो तथा विचार नहीं करते हो, सोई तेरा अभाग्यहै इत्यादि। और जैसे चातकके पासमें भी जल होवे, परन्तु मेघ नही बरषने पर वह उदास होकर चलताहै, तैसेही विचारभूमिरूप कल्याण तेरे पासमेंहै, परन्तु स्वाङ्ग धरके भवसागरकी आशा करते हो, और उसीको रामनाम निजसार कहते हो, और अन्य सबको संसार में झूठ कहते हो, परन्तु वह रामनाम हरि उनङ्ग अग्नि है। और तुम उसमें पतङ्ग जाति हुये हो इत्यादि ॥६५॥६६॥ ॥ ६७ ॥ साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो ! उस रामरूप गुरुके वियोगसे अनाथ हुए हो, और शब्दादिरूप कुञ्जबनमें निश्चय करके पड़े हो, तथा वेद भी बनका नकल है इस प्रकार जो समझते हैं सो भलेको मानते हैं, और अन्य ज्ञेयवस्तुको नटका खेल सदृश समझते हैं। और उसीके गुणरूप भिन्नठाकुरको भी मानते हैं। क्योंकि यह अनात्म मन आदि कहीं सब घटमें खेला है । उसीको

सब कोई देखते हैं परन्तु दूसरे आत्माको नहीं देखते हैं, इत्यादि ॥ ६८ ॥ जिसको गुरुका उपदेश लगता है सो संसारको दुखरूप जानकर सुखसिन्धु को देखता है। और गुरुउपदेश बिना योग करनेपरभी मनुष्य भूले फिरते हैं, क्योंकि वे योग गुरुउपदेश सतशास्त्रादिमें नहीं देखेगये हैं, इससे मिथ्या धोखा रूप हैं इत्यादि ॥ ६९ ॥ ७० ॥ पूरा हुये विना जिन्होंने शोक बधाईको कहने के लिये सम करके माने हैं। उनके छलादिकी बात इन्द्रभी नहीं जाना इत्यादि ॥ ७१ ॥ माया रूप वा वाणीरूप एक नारी संसारमें आई है। जिसकी माय बापसे उत्पत्ति नहीं हुइ है इत्यादि ॥७२॥ और उसे चली जाती हुई देखकर जीवोंकी बुद्धिरूप पनिहारी सद्गुपदेश, विचार तथा शरीरादिरूप गागरी को नीचे डालकर ऊपर स्वर्गादिमें चली है। फिर यह अनेकों योनि आदिरूप बाटोंमें चली जाती है, जिससे सोवनहार जीवके ऊपर शब्दजाल शरीर दुःखादिरूप खाट प्राप्त होते हैं। और जड़तासे मरते रहते भी अपनेको स्वच्छ सुखी कहते हैं, परन्तु आत्मस्वरूप खसमको नहीं चीन्हते हैं। क्योंकि इनकी बुद्धिरूप घरनी बौरी हो गई है, इसीसे सांझ सबेरे वृत्तिरूप दीप बारती है, परन्तु खसमको त्यागकर लगवारके ही साथ रहती है इत्यादि ॥७३॥ आचार्य लोग कहते हैं कि संसार दुःखकालमें भी जीव वा ईश्वरमें वास्तविक गुप्त स्थूल काया शोकादि नहीं होते हैं, वह कमलपत्रमें तरङ्ग सदृश रहता है। साहेब कहते हैं कि ये लोग निराधार रामनाम उच्चारती हुई वाणीको आधार जान लिये हैं, और जिसमें ढोरादि सड़ते हैं उसे सब धर्म जाति वाले पानी कहते हैं उससे आचार करते हैं, परन्तु माया फांससे बाहर पुरुष उस पन्थ को नहीं जोहते हैं इत्यादि ॥ ७४ ॥ पराङ्न बचन है कि उस परोक्ष अवनारोंसे भिन्न साहेबके साथ लगो इत्यादि। साहेब पुकारके कहते हैं कि उस अनुमेय पन्थमें नहीं भूलो वह स्थूलादि किसी रूप नहीं है इत्यादि ॥ ७५ ॥ और साहेब कहते हैं कि माया मोह संसारमें कठिनहै, इससे यह विचार कोई नहीं करताहै, कि मायामोह कठिन फन्दा है वहाँ जो विवेकी होता है सोई पुरुष वन्दनीय है, परन्तु आचार्यलोग कहते हैं कि रामनाम रूप बेड़ाका आधार जो लेता है सो संसारसे पार होताहै, क्योंकि रामनामही अत्यन्त दुर्लभ है इत्यादि ॥ ७६ ॥ साहेब कहते हैं कि वह एक बाणी मायारूपही सब संसारमें काल है, तौ भी विचारादि से रहित सब जगतको वाणीरूप एक नाम ही प्यारा है, जो स्त्री पुरुषादि कुछ कहा नहीं जा सकता इत्यादि ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ हे जीव ! अपने कल्याणके लिये अपना बहुत साहस पुरुषार्थ विचारादि करो, क्योंकि जिस परोक्षरामादिके भरोसे रहतेहो, उस साहेबसे तुझे स्वप्नमेंभी भेंट नहीं है इत्यादि ॥ ८०॥ ८१ ॥ जीवोंने एक सुखके बृक्षको उत्पन्न किया है यानी कल्पनासे सिद्ध किया है, सो विषय मायारूप है, यह किसीको बूझ नहीं पड़ा, इसीसे सूर्यादि छौ छत्रियोंका निपात हुआ। और पापपुण्यरूप दोफलके सब अधिकारी हुवे। उसीमें अमित स्वाद है जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता है इत्यादि। और उसमें मोहित नट सदृश साज साजकर युक्ति-रहित तमासा देखने वाले कहते हैं कि शिव शक्ति आदिभी यही तमासा देखते थे। साहेब कहते हैं कि इसी परदेमें सब गये इत्यादि ॥ ८२ ॥ जो क्षत्री हिंसादि युक्त क्षत्रीका धर्म पालन करते हैं उनके सवाई कर्म बढ़ते हैं, जिनसे संसार बढ़ता है। वे लोग क्या करें ? जिन अवधुओं जीवोंको

गुरुवा लोगोंने जैसा ज्ञान लखाया है उनका मनभी वहीं तक दौड़ता। क्षत्री वे हैं जो पाञ्चों भूतोंको मेटकर एकको बूझते हैं। और इन्द्रियोंसे संग्राम करते हैं, तथा जीवत्वरूप अध्यारोपको मेटकर जीव का प्रतिपालन करते हैं। साहेब कहते है कि हमारे देखने में येही अपना जन्म हारते हैं इत्यादि ॥८३॥ हे जीव! जो माया मोहादिरूप दुःख जगतमें व्यापक हैं, उन दुःखों को सम्भारो इत्यादि ॥ ८४ ॥ इति रमयनी प्रकरणस्य सारसंग्रहः। इसी प्रकार अन्य प्रकरणोंके भी भावान्तर ऊहनीय हैं। इति शम् ॥

नमो नमोऽस्तु किल कर्मसाक्षिणे, क्रियाकलादिगत शुद्धरूपिणे। अनन्तधाम-सदसत्स्वरूपिणे, अनन्तपारगुरुमूर्तये नमः ॥ १ ॥

कर्मसाक्षी, क्रिया कला आदि रहित शुद्धरूप, अनन्त प्रकाश, सदसत्स्वरूप, अनन्त, अपार, गुरुमूर्तिके प्रति नमस्कार है।

अथ सद्गुरोरुहिताः सिद्धाश्च मन्त्रादयो नियमाश्च।

(१) प्राथमिकोपदेशे मन्त्राः (एकदिन मन कागा रहे, करे जीव के घात। अबतो मन हंसा भया, मोती चुन चुन खात॥ कबीर दुर्मति दूर करु, अच्छा जन्म बनाव। काग गवन बुधि छोड़दे,हंस गवन चलि आव॥) इत्यादयः मध्योपदेशे मन्त्राः (जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय। छठी तुम्हारी हौ जगा, तूं कहँ चला बिगोय॥ जाय छठीली आपनी, बात न पूछो कोय। जिन यह भार लदाइया, निर्वाहेगा सोय॥) इत्यादयः उत्तमोपदेशे विचारविषया मन्त्राः (अविगति, राम, अविनाशी, ॐ, निरालम्ब, अगुण, तत्त्वमसि, अदृश्य, अमृत, स्वामी, आत्मा, सत्य, कर्ता, सूत्रधार, अम्बर,) इत्यादयः॥ (२) प्राथमिकध्यानविषया गुरुसतां मूर्तयः। माध्यमिकध्यानविषयौ कर्तृत्वादि विशिष्टावात्मपरमात्मनौ। उत्तमध्यानविषयः शुद्धः सच्चिदानन्दः स एव ज्ञेयश्च॥ (३) प्राथमिकपाठविषया विवेकविचारादि योग्यानि सर्वाणि वाक्यजातानि। माध्यमिकपाठविषया वेदादि सच्छास्त्राणि। उत्तमपाठविषयाः शुद्धात्मसद्विचारादि विषयाणि गुरुवाक्याण्येव॥ (४) सर्वात्मा सच्चिदानन्दरूपः परमात्मा सर्वसाक्षी मार्यो च॥ (५) जीवानां प्रेयसे श्रेयसे वेदाः परं प्रमाणं गुरुवाक् च॥ (६) स्वर्गापवर्गाभ्यां यथाशक्ति शमादयो ऽहिंसादयश्च सर्वैरेवानुष्ठेयाः सत्सङ्गस्वाध्यायादयश्च विधेया एतैर्विना तीर्थयात्रादयो निष्फला भवन्तीति॥ (७) सर्वेष्वात्मभा-

वादिना सर्वोपकारो विधेयो दुष्टश्चोपायेनानुकूलयितव्यो विनेयश्चासाध्यश्चेत्त-त्तव्यश्चराज्ञेश्वरेण साध्यो हि सः ॥ (८) विवेकविचाराभ्या मर्थादिकमवगम्यैव लौकिक्यः पारलौकिक्यो वा क्रियाः प्रारब्धव्याः प्रारम्भोत्तरमप्यशुभत्वेन ज्ञाता आशु त्यक्तव्याः ॥ (९) मानुष्यं दुर्लभं ज्ञात्वा दुष्कर्मणि निष्फलकर्मणि तुच्छ-फले कर्मणि वा आलस्यव्यसनप्रमादादिभि र्वा कालो न यापनीयः किन्तु सर्वथा सर्वदा सर्वात्मा ध्येयो ज्ञेयश्च परोपकारपरप्रीति परकर्मपरपदादयो विधेयाश्च ॥

श्री गुरुभ्यो नमः।

लिखितछन्दोंके ज्ञानके लिये तथा जहां मुझसे अशुद्ध लिखा गया हो तहां सुधारके लिये, छन्द' प्रभाकरादिसे कति पय छन्दों के लक्षण लिखे जातेहैं।

उल्लाला छन्द। १३ तेरह कला के।

उल्लाला तेरा कला, नियम न गुरु लघु अति भला ॥

श्याम उल्लास छं० १३ कला।

टगण डगण ढन टगण पुनि, डगण ढगण शुभजान।
दल दूजो हूं श्यामको, बावन कल सुखदान ॥
टगण ठगण अरु डगण भन, ढगण णगण गण पञ्च।
छः कल पाच कल चार कल, त्रि कल द्वि कल सुख संच ॥

अर्थ, छौ, पांच, चार, तीन, दो, मात्राओं के क्रमसे टगणादि होतेहैं। तहां टगण, डगण और ढन नाम ढगण प्रथम चरण में होवें और फिर क्रमसे टगणादि होवें तो श्याम उल्लास होता है। और उसके चारों चरणमें बावन मात्रायें होतीहैं॥

१५ मात्रा के छन्द।

चौबोला। अन्तमें, ।ऽ, लघु गुरु होतेहैं।

(बसु मुनि लग चौबोला रचौ,)

बसुमुनि अर्थात् पन्द्रहमात्रा के चरण होतेहैं। और लग नाम लघु गुरु होतेहैं सो चौबोला छन्द होताहै।

चौपई। अन्तमें ऽ। गुरु लघु होतेहैं।

(तिथि कल पौन चौपई माहिं, अन्त गुरु लघु जहाँ सुहाहिं)

चौपई में तिथिकल नाम पन्द्रह मात्रा और पौन नाम गुरु लघु रहते हैं सो गुरु लघु अन्तमें शोभते हैं।

चौबोला के लक्षणान्तर।

बिषम थलन सोलह मत्ताकर, सम थल बारह अन्तनगै।

कवि हरदेव सुचरण चार इमि, साठ कला चौबोल पगै ॥

अर्थ, प्रथम तृतीय चरणों में १६, १६, मात्रायें होतीहैं । और द्वितीय चौथ चरणोंमें १२ १२ मात्राओं के बाद एक २ गुरु होतेहैं ।

गुपाल छन्द के अन्तमें, ।ऽ।, जगण रहताहै ।

[वसु मुनि कल धरि सजहु गुपाल]

पुनीत छन्द के, अन्तमें ऽऽ।, तगण रहताहै ।

[तिथि कल पुनीत हे तात !]

१६ मात्रा के छन्द ।

पादाकुल छन्द ।

[चौकल चार जहाँ पर आनो, छन्द सुपादाकुलक बखानो]

ऽऽ, ।।ऽ, ।ऽ।, ऽ।।, ।।।।, इस पांच प्रकार के चौकल होतेहैं उनमें से चार २ चौकल चरण पीछे देने से पादाकुल छन्द होताहै ॥

लक्षणान्तर ।

मेरु हार को नेम न कीजै । चारो चरण वरण शुभ दीजै ॥

सोलह सोरह मत्ता ठानौ । पादाकुलक छन्द सो जानौ ॥

चौपाई छन्द के अन्तमें, ऽ। नहीं होताहै ।

सोरह क्रमन जतन चौपाई । सुनहु तासु गति अब मनलाई ॥

त्रिकल परे सम कल नहिं दीजै । दिये कहूं तो लय अति छीजै ॥

सम सम सम सम सम सुखदाई । विषम विषम सम समहूं भाई ॥

विषम विषम सम विषम विषम सम । विषम दोय मिलि जानिय एक सम ॥

अर्थ, सोरह मात्राओं में क्रम न यानी गुरु लघुका वा चौकलों का क्रम नहीं रहताहै, परन्तु इतनाहिं ' क्रमन ' अर्थात् क्रम जतन पूर्वक करना होताहै कि समके बाद सम और विषम के बाद विषम कला होवें और अन्तमें ' जत न ' यानी जगण तगण नहीं होवें । और त्रिकल के बाद सम कल नहीं देना चाहिये, यदि कहीं दिया जावे तो लय अत्यन्त नष्ट होता है । और सम सम सुखद होतेहैं तथा विषम विषम सुखद होते हैं यदि कहीं समकलों के बाद विषम कल आजावे तो एक और विषम कल देना चाहिये क्योंकि दो विषम मिलके समकल होजातेहैं ॥

सरसी छन्द अन्तमें ऽ।

[सोरह संभु यती गल कीजै, सरसी छन्द सुजान]

सार छन्द अन्तमें SS,

[जगण तगण यति अन्त न होवत, पाद अन्त गुरु गाई]

[सोरह रवि कल अन्ते कर्णा, सार छन्द अति नीको]

इसके अन्तमें दो गुरु कर्णा नाम कर्ण मधुर होते हैं।

समान सवैया छन्द अन्तमें भगणऽ ॥

[सोरह सोरह मत्त धरौ जू, छन्द समान सवैया शोभत]

दोहा छन्द ।

[जान विषम तेरा कला, मम शिव दोहा मूल]

दोहाके प्रथम तृतीय चरणके आदि में, जा न अर्थात् जगण नहीं होना चाहिये । अन्त में लघु होता है।

सोरठा छन्द ।

[सम तेरा विषमेश, दोहा उलटे सोरठा]

दोही छन्द ।

[विष मानि पन्द्रा साजो कला, सम शिव दोही मूल]

हरि पद छन्द ।

[विषम हरी पद कीजिये सोरह, सम शिव दै सानन्द]

इसके अन्त में 'नन्द' नाम गुरु लघु होते हैं ।

[प्रथम यति के अन्त हेय ज त, चरण अन्त ज त गा]

विष्णुपद छन्द ।

[यति षोडश दश पर यह क्रम है, इक गुरु अन्त करे]

हरि गीतका छन्द ।

हरि गीतिका यह छन्द जानो, मात्रिका वसु विंशती ।
यति प्रथम षोडश पुन द्वादश, अन्त में गुरु की गती ॥
शर भानु युक्त उनसवी लघु, और लघु षट विंशती ।
यत्यन्त जगण विहाय करिये, काव्य उरधरि श्रीपती ॥

मुक्तामणि छन्द-१३-१२-अन्तमें कर्णा SS,

[तेरह रवि कल कर्ण मह, मुक्तामणि रचि लीजै]

गीतिका छ० १४-१२ अन्त में ।S,

[रत्न रवि कल धारिकै लग, अन्त रचिये गीतिका]

गीता छ० १४-१२ अन्त में ऽ।,

[कृष्णारजुन गीता भुवन, रवि सम प्रगट सानन्द]

दृढ़ पद छ०।

प्रति पद जामें समझके, तेइस कल आनो।
कवि हरदेव सुछन्द ये, दृढ़ पद पहि चानो ॥

प्रायः इन मात्रिक छन्दोंके ही अन्दर इस ग्रन्थ के सब बचन हैं, इसमें ये लक्षण लिखे गयेहैं। और अधिक सुजन जन सुधार लेंगे इतिशम्।

श्री गुरुभ्योनमः।

श्रीगुरु रामानन्द जू, तिनके दास कबीर।
तत्त्वा जीवा शिष्य भये, तिनके ज्ञान गँभीर ॥ १ ॥
तत्त्वा जीवा शिष्य भये, तिनहुं के मतिमान।
पुरुषोत्तम जीवा भये, अति पुनीत परधान ॥ २ ॥
कुन्तादास तिनके भये, सकल ज्ञानके धाम।
सुखानन्द सुखरूपही, रतविचार गतकाम ॥ ३ ॥
सम्बोधदास पुनि तिनके, शिष्य भये बुध भूप।
देवादास सुदेवही, जिनकी कथा अनूप ॥ ४ ॥
विश्वरूपदास जु भये, सो तो जगदाधार ।
विरोधदास जु कोपगत, बिगत सदा मदमार ॥ ५ ॥
ज्ञानमुकुन्ददास भये, सुगति देन सब काहु।
सरूपदास सब शिष्यको, दे जग जीवन लाहु ॥ ६ ॥
निर्मलदास निर्मल मती, कोमलदास मृदु चित्त।
गणेशदास जु विघ्न हरि, शरणागतको हित्त ॥ ७ ॥
गुरुदयालदास जु भये, सो वैराग्य निधान।
घनश्यामदासो भये, घनश्याम इव मान ॥ ८ ॥
भरतदास विश्वक भरण, मोहनदास सुचैन।
रघुबरदास रघुबर सम, सब जन मंगल दैन ॥ ९ ॥
दयालदास भये जगत, विदित दया आगार।
ज्ञानीदास उदारमति, दीनन करत उधार ॥ १० ॥
केशवदास केशवसम, सब विभूतिके खान।
शान्तचित्त सो सन्त हित, सदासन्त परमान ॥ ११ ॥

* इति *

शुद्धिपत्रम्।

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
१०	१८	कियेथे ?	कियाथा कि
११	२८	आत्मप्राप्तिही दुर्लभ है	आत्मप्राप्ति दुर्लभही है
१२	१८	पश्चताप	पश्चात्ताप
१४	१५	प्रीतिको	प्रीतिके
१४	१७	सद्दशके	सद्दशका
१५	६	धनादि	धनादिको
१५	१८	थिनिठौर	थितिठौर
१५	२१	पाऊंगा	पाजाऊंगा
१६	१२	त्वमोक्षरूप	तबमोक्षरूप
१६	१३	तिथि	थिति
१६	१३	तीरके	तीरका
१६	१४	महाराओं	महराओं
१६	८	प्रकिया	प्रक्रिया
२०	३	उपदेशमें	उपदेशोंमें
२०	२२	क्रोधको	क्रोधके
२०	२६	जनकर	जानकर
२१	१०	खाक्षकर	खीझकर
२१	१३	[कबहूं]	[कभी]
२१	१५	भूलोनहीं	नहीं भूलो
२२	१३	आनियानी	यानी
२२	१४	ठूटेगी	टूटेगी
२४	२	होतेह	होतेहैं
२५	१३	छिपाय	छिपाये
२५	१५	नौकाके	नौकेका
२५	२०	सतुरुके	सद्गुरुका
२६	३	उनके	उनमें
२६	१६	कोलाभ	कालाभ
२८	१४	वह	यह
२८	२४	साहेबने योगका	साहेब योगका
२८	२५	कियाहै	कियेहैं
२८	२६	साहेबने बना	साहेब बता
२९	५	रामके	रामका
२९	५	बाता	बात

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
२९	१२	उनके	उनका
२९	१६	उसको	उसके
२९	१६	ढ़ाईगुणा	ढ़ाईगुणे
३०	५	छोड़ा	छोड़ो
३१	१	एतनाही	इतनाही
३१	८	नामका	नामके
३१	१८	जहँड़कर	जहँड़कर और
३२	५	पहिकर	पहिरकर
३२	९	रामको	रामके
३२	२६	साहते हैं	साहेब कहते हैं
३४	१७	विषयादिका	विषयादिकों की
३४	२१	दोषको	दोषके
३४	२४	टूटके	टूटकर
३६	२६	ıवष	विष
३७	८	होता है	होती है
३७	८	मात्रको	मात्रके
४१	१३	दिग्म्वर	दिगम्वर
४२	१	रजगुणियोंको	रजोगुणियोंको
४२	१३	मरदी	मारदी
४३	३०	उसको तरफसे	उसके तरफसे
४३	८	शास्त्रको मनन	शास्त्रके मनन
४३	१४	अपना	अपने
४३	२४	परन्तु कोई	परन्तु कोई कोई
४३	२४	उठते हैं कोई	उठते हैं और कोई
४४	४	देखही कर	देखते ही
४४	२६	वन्धनोंका	बन्धनोंके
४४	१२	पढ़े	पढ़ैं
४५	१५	देखहुँ	देखहु
४६	१६	विप्राकी	विप्रोंकी
४६	२३	ब्रह्मको	ब्रह्मके
४६	२६	यत्न करते हैं	यत्न ही करते हैं
४७	२	ब्रह्मात्मका	ब्रह्मात्माके
४७	२	आनने हैं	आते हैं

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
४७	७	प्रचीन	प्राचीन	१२५	१२	अङ्गष्ठमात्र	अङ्गुष्ठमात्र
४६	३०	प्रपञ्चदिके	प्रपञ्चादिके	१२६	४	विरोधीह	विरोधीहै
५६	८	चारखाना	चारखानी	१३०	६	सदह	शद्दश
५७	१६	जिज्ञसुओ	जिज्ञासुओ	१३१	६	यद्वा	अथवा
५९	७	झलवे	झूलवे	१३१	६	नचित्रों	इनचित्रों
७१	३	पुरुगो	पुरुपो	१३१	१८	देदीप्यामान	देदीप्यमान
७१	७	जिज्ञासा हुइ	जिज्ञासा हुई	१३२	४	भिन्ना	भिन्न
७१	३२	हेबाव	हे बाबू	१३२	१७	हेममुप्यों !	हेमनुष्यो !
७४	१०	लागु	लगा	१३७	३१	सताप	सन्तोष
७४	२४	नहीं रहो	नहीं रहे	१३८	१३	अथात्	अर्थात्
७६	५	दुर्योधनके	दुर्योधनका	१३८	२४	'टट्ट'	'टट्टा'
७६	५	बूड़ गया	डूब गया	१४१	१५	द्वापादि	द्वंद्वादि
७६	६	बूड़े बिना	डूबे बिना	१४३	१८	निर्णयेऽपिचं	निर्णयेऽहिच
७६	१८	रावणके गये	रावणका गया	१४८	२१	रामके	रामक
७६	२४	मनङ्कुर	मनोङ्कुर	१४६	५	स्वतु	वस्तु
७९	१	यह भाव भी है	भाव भी यह है	१४९	६	तर्य	तुर्य
७९	६	ईश्वरके	ईश्वरका	१४९	७	करक	करके
८१	२	आदिके लिये	आदिके लिये	१४९	७	जोई	जाई
८३	१६	अन्यभ	अन्य भी	१४६	७	प्रास	प्राप्त
८३	२७	क्षणभङ्गर	क्षणभङ्गुर	१५१	६	मनोपम्पा	मानोपम्पा
८५	१३	वाबैठी है	खा बैठी है	१५१	१३	हेतुप	हेतुरूप
८५	१३	वाती है	खाती है	१५१	१३	रू	रूप
८६	१४	अर्ात्	अर्थात्	१५३	१५	चत्रक	चित्रके
९२	२३	चलता है	चलती है	१५६	३	गुहम्याम्	गुहा[illegible]न्
९२	२४	बहता रहता है	बहती रहती है	१६०	२४	साक्षीस्वस्वरूप	साक्षीस्वरूप
९३	३२	मांगता ह	मांगता है	१६१	२२	पत्ति	पति
१११	२३	बान्दर	बन्दर	१६१	२८	कहतेहा	कहतेहो
१११	२६	होतेह	होतेहो	१६६	२४	अज्ञानादिसेसे	अज्ञानादिसे
१११	३२	छूटंगा	छूटूंगा	१७१	२१	सदश	शद्दश
११३	१३	ओर	और	१७२	२८	सत्सङ्गदि	सत्सङ्गादि
११३	१६	होसकतेहो	होसकतेहैं	१७३	२०	ली	लीन
११६	१०	जिज्ञास	जिज्ञासा	१७३	२१	परन्त	परन्तु
११६	१६	स	सो	१७४	१२	तहवा	तहँवाँ
१२०	२५	विवक	विवेक	१७७	२५	सद्गरु	सद्गुरु
१२१	२६	मध्रिगच्छति	मधिगच्छति	१८०	२२	लोढते है	लोढ़ते हैं
१२१	२६	हनुमाद्दास	हनुमद्दास	१८४	२	वियोग	विगोय
१२३	१६	कुम्भ	कुसुम्भ	१८६	२५	आध्यात्मिकतत्त्व	आध्यात्मिकतत्त्व

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१८७	१	लीजे	लीजै
१६०	२७	बिरला	बिरले
१६५	८	पाना	पानी
१६६	२	पानप	पानय
१६६	६	होवेगे	होवोगे
१६६	२०	भव	भाव
२००	१	सबभूर्तान्तरात्मा	सर्वभूतान्तरात्मा
२०६	६	निकारे	किनारे
२०८	८	उपद्रयसे	उपद्रवसे
२०६	१८	निकरुवारी	निरुवारी
२१०	१६	प्रणाव	प्रणव
२११	१५	फिया	किया
२१२	२४	प्रणात्छद्धां	प्रणात्छुद्धां
२१३	२८	बाल है	वाला है
२१४	१४	दिलमँ	दिलमें (दिल महँ)
२२०	१०	उसामें	उसमें
२३५	४	आश्रय	आश्रयण
२३५	६	लिखा हैं	लिखा है
२३६	१२	सन्बन्धसे	सम्बन्धसे
२३६	१७	लमयागिरिके	मलयागिरिके
२३७	३	आभसरहित	आभासरहित
२३६	२२	संप्त	संतप्त
२४४	३	म्रमरहित	भ्रमरहित
२४६	१३	नम	नाम
२५५	२१	करता हैं	करता है
२५८	३	वह	वे
२५६	१६	बिरला	बिरले
२६०	२१	सींचता हु	सीञ्चता हूँ
२६१	४	ससारी	संसारी
२६३	२३	मोहि कह नम	मोहि कहत नाम
२६५	१	रखनेवाला	रखनेवाले
२६६	६	जमादिको	जन्मादिको
२६७	२०	गहते नहीं है	गहते नहीं हैं
२६६	११	क्योकि	क्योंकि
२७४	१६	नम	नाम
२८०	२	हुयेह	हुये हैं,

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
२८३	२२	नाक कर्णिक	नोक कर्णिका
२८५	३	मर जावेगे	मरजावेंगे,
२८६	२०	तिर्यम्रूप	तिर्यग्रूप
२८९	२५	पैठी है त	पैठी है तो
२६१	१२	पहु है	हुवे हैं
२६२	६	मानुष है के	मानुष होके
२६३	२१	अर्थाता	। अर्थात्
२६३	२४	मिलेगी	मिलेगा
२६६	३०	गरपरेगा	गिर परेगा
३०५	२३	कार्मादिसे	कर्मादिसे
३०६	२२	वेद्क	वेदको
३०८	५	इज्जह	इज्जत
३११	२१	कल्याण हागा	कल्याण होगा
३१७	११	ब्रह्मादि पद	ब्रह्मादिपद
३१७	२५	क्षण भङ्गर है	क्षण भङ्गुर है
३२२	२३	बाहनवाला	बाहनवाले
३२२	२४	बाहनवाला	बाहनवाले
३२३	२७	चेनाकद	चनाकदे
३२४	२९	मनुप्यत्व।दिके	मनुष्यत्वादिके
३२४	२०,	नप्ठ करने	नष्ट करने
३३१	६	सुघट	सुघाट
३३३	२५	भाव यह हैं	भाव यह है
३४५	२६	सधनोंसे	साधनोंसे
३४५	२७	भोक्ष	मोक्ष
३४६	१८	आसाधु	असाधु
३४७	२२	सहव	साहेब
३४६	१८	आदिभ	आदि भी
३५३	२०	उत्त	उत्तम
३५३	२३	शरारसे	शरीरसे
३५५	२७	अया	आया
३५६	४	हती है	होती है
३५६	६	ल है	बोल है
३५६	७	कल्पना करक	कल्पना करके
३५६	२६	तरा जगमगे	तारा जगमगे
३५९	३	अरिथर	अस्थिर
३५६	२५	अयन्त	अत्यन्त
३६३	१	होते ह	होते हैं

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
३७४	२०	विवेकदि	विवेकादि	४२२	१२	करना चहिये	करना चाहिये
३७७	२३	आमघातके	आत्मघातके	४२४	७	मानना चहिये	मानना चाहिये
३७८	३	शोघ्र ही	शीघ्र ही	४२६	१०	अनसार	अनुसार
३८०	१	सहेब	साहेब	४३०	७	अदिको	आदिके
३८२	२१	मोक्षफा	मोक्षका	४३२	१६	संत्यत्मस्वरूपसे	सत्यात्मस्वरूपसे
३८३	२५	भ्रमते	भ्रमते	४३५	२	असङ्गचिद्रयसे	असङ्गचिद्रूपसे
३८४	८	फिरते ह	फिरते हैं	४३८	६	सि होनेसे	सिद्ध होनेसे
३८४	६	भ्रमना है	भ्रमता है	४४०	१५	ब्रह्मात्मक	ब्रह्मात्मके
३८५	१६	ब्रह्मरू।	ब्रह्मरूप	४४०	१४	ब्रह्मात्मस्वरूप	ब्रह्मात्मास्वरूप
३८५	२३	साख।	साखी	४४२	१५	साख दोहा	साखी दोहा
३८७	१८	करते ह	करते हैं	४४५	२१	महात्माअने	महात्मा अपने
३८८	१४	क्या ककरते हैं	क्यों करते हैं	४४६	२७	नहीं होता हैं	नहीं होता है
३८९	२१	ज्ञ।की	ज्ञानीकी	४५०	२५	दैद्यसे	वैद्यसे
३९०	२०	सत्यधर्मादिक	सत्यधर्मादिकी	४५४	१७	शब्दादकोंके	शब्दादिकोंके
३९१	२४	वरमबार	बारमबार	४५७	३	सद्गुकृत	सद्गुका
३९२	१४	ज्ञान बिन	ज्ञान बिना	४६०	२८	उस रापसे	उस रामसे
३९७	८	सांचा जावे	सींचा जावे	४७०	८	गुरकी	गुरुकी
३९७	१४	साखा	साखी	४७१	१७	वतुओंसे	वस्तुओंसे
३९९	१७	विज्ञान दृष्टसे	विज्ञान दृष्टिसे	४७१	२४	समजो	समझो
४००	२२	जता हो, तो	जाता हो, तो	४७६	२४	नियलब्ध	नित्यलब्ध
४०१	१०	सर्वात्म वरूप	सर्वात्म स्वरूप	४७९	१८	सुखसागरं स्वं	सुखसागरं खं
४०३	११	गाके	गायके	४८०	१२	पाप	पाय
४०४	२६	अवकी परि	·अवकी पुरि	४८०	१३	स्वबश हैं	स्वबश है
४०७	२४	प्रणादिरू	प्रणादिरूप	४८०	१५	अनन्त ताते	अनन्तता ते
४१०	२०	बालन चाहये	बोलनाचाहिये	४८१	६	हनुमान	हनूमान
४१२	७	मृत्युके द्वाको	मृत्युके द्वारको	४८१	२७	भुतलहिं	भूतलहिं
४२१	२	भूम भौतिकमें	भूत भौतिकमें	४८६	१	तक्तश्च	त्यक्तश्च

१—श्रीयुत महात्मा शिवधर दास जी साहब के पास।

मु०—फतुहा,

पो०—कबीर साहब के संगत में।

(जि०) पटना।

२—श्रीयुत महात्मा साधुशरण दास जो साहब के पास।

महल्ला—मुरादपुर (दरजीटोला) पटना।